प्रकाशक
अवध साहित्य मन्दिर
बलरामपुर

प्रथम सस्करण
स० २०१६

मुद्रक
बाबूलाल जन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय
दुर्गाकुण्डरोड, वाराणसी



महाराज पाटेश्वरी प्रसाद सिंह

राष्ट्रभारती के उन्नायक

साधु स्वभाव

महाराज पाटेश्वरी प्रसाद सिंह

को

उनके प्रतापी पितामह

कविकुल कल्पतरु

महाराज दिग्विजय सिंह 'भूपविजय'

का यह कीर्तिध्वज

सादर समर्पित

विषय-सूची

प्राक्कथन

हिन्दीके प्राचीन काव्य सग्रहों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हुये भी 'दिग्विजय भूषण' अब तक एक अत्य त अल्प प्रसिद्ध ग्रथ रहा है। पहली बार यह ग्रथ कविवर गोकुल और उनके आश्रयदाता महाराज दिग्विजय सिह के जीवन काल में जग बहादुरी य त्रालय (लीथो प्रेस) बलरामपुर (गोडा) से स० १६२५ में प्रकाशित हुआ था। इसकी मुद्रित प्रतियों का वितरण बलरामपुर राज्य तथा उससे सम्बद्ध व्यक्तियों तक ही सीमित रहा। फिर भी तत्कालीन साहित्य प्रेमियों में इसने इतनी शीघ्र प्रसिद्धि प्राप्त कर ली कि मुद्रित होनेके दस ही वर्षों के भीतर लिखे गये 'शिवसिह सरोज' के स दर्भ ग्र थों में इसे विशिष्ट स्थान प्राप्त हो गया। शिवसिंह जी ने 'सरोज' की भूमिका में निर्दिष्ट सदर्भ ग्रथों की सूची में इसे द्वितीय स्थान दिया है। इस ग्रथका परिचय देते हुये वे लिखते हैं—

"२ लाला गोकुलप्रसाद कवि बलिरामपुरी कृत दिग्विजय भूषण नाम सग्रह, जो स० १६२५ में बनाया गया और जिसमें १६२ कवियों के कवित्त हैं।"[1]

सगर जी ने ग्रथके मुद्रणकाल स० १६२५ को, जो आवरण पृष्ठ पर अकित था, उसका निर्माणकाल माना है। वास्तव में इसकी रचना छ वर्ष पूर्व स० १६१६ में ही प्रारम्भ हो गई थी।

सरोज में दिये गये कवि परिचय में सात कवियों के विषयमें सेंगरजी ने स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया है कि उनकी रचनायें दिग्विजय भूषण में उदाहृत हैं। ये हैं—अनीस[2], कविदत्त[3], खान[4], धुरधर[5], नायक[6], परशुराम[7], और सदान द[8]।

---

१ शिवसिह सरोज (सप्तम सस्करण, १९२६ ई०)—भूमिका, पृ० २
२ शिवसिह सरोज—पृ० ३८१ ३ वही—पृ० ३६१ ४ वही—पृ० ४०१ ५ वही—पृ० ४२७ ६ वही—पृ० ४३६ ७ वही—पृ० ४४८ ८ वही— पृ० ५०१।

इनके अतिरिक्त सरोजकार ने निम्नांकित ६३ कवियों की भी रचनायें संग्रहीत करते समय दिग्विजय भूषण से सहायता ली है। 'सरोज' और 'भूषण' में इनके उद्धृत अधिकांश छंदों की एकता से इसकी पुष्टि हो जाती है।

१ अकबर २ अनुनैन ३ अभिमन्यु ४ अमरेश ५ अयोध्याप्रसाद बाजपेयी 'औध' ६ अहमद ७ इन्दु ८ उदयनाग 'कविंद' ९ काशीराम १० किशोर ११ केहरी १२ कृष्णकवि १३ कृष्णसिंह १४ गंगापति १५ गुलाल १६ गोकुलनाथ १७ चतुर १८ चतुरविहारी १९ चतुर्भुज २० चैनराय २१ जैनमुहम्मद २२ ताराकवि २३ तारापति २४ दयादेव २५ दयानिधि २६ दिनेश २७ देवीदास २८ नबी २९ नरोत्तम ३० नागरीदास 'नागर' ३१ नृपशम्भु ३२ नेवाज ३३ पुरान ३४ प्रह्लाद ३५ बीठल ३६ बेनी ३७ ब्रजचंद ३८ भगवंत ३९ भूधर ४० मदनगोपाल ४१ मननिधि ४२ मनिकंठ ४३ मन्य ४४ ममारख ४५ महाकवि ४६ माखन ४७ मीरन ४८ मुकुंद ४९ मुरली ५० मोतीलाल ५१ रघुराय ५२ रतन ५३ रामकृष्ण ५४ रूपकवि ५५ रूपनारायण ५६ शम्भुनाथ ५७ शिरोमणि ५८ श्यामलश्याम ५९ सोमनाथ ६० हरजीवन ६१ हरदेव ६२ हरिजन ६३ हिरदेस।

सरोज के कवि परिचय खंडमें सेंगर जी ने गोकुल कवि का भी उल्लेख किया है। किंतु तद्विषयक सामग्री इतनी संक्षिप्त तथा अपूर्ण है कि उससे इनके व्यक्तित्व का कोई स्वरूप नहीं बन पाता। सरोजकार ने इनके निवास स्थान तथा चार ग्रंथोंका नाम देकर संतोष कर लिया है—

"३७ ब्रज, लाला गोकुल प्रसाद कायस्थ बलरामपुर वाले वि०।

इनके बनाये हुये दिग्विजय भूषण, अष्टयाम, चित्रकलाधर, दूतीदर्पण इत्यादि ग्रंथ मनोहर हैं।"[1]

यह उल्लेखनीय है कि सेंगर जी ने इन पंक्तियोंमें उन्हें 'वि० = विद्यमान' अथवा अपना समकालीन कवि कहा है। यदि वे चाहते तो इनके विषय में अधिक विस्तृत एवं उपयोगी सामग्री प्रस्तुत कर सकते थे। समसामयिक उल्लेख होने से उसका महत्व भी अधिक होता।

शिवसिंह जी के पश्चात् सर जार्ज ग्रियर्सन ने "द माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान" में दिग्विजय भूषण के रचयिता गोकुल का अपेक्षाकृत विशद परिचय प्रस्तुत किया—

१—शिवसिंह सरोज—पृ० ४५६।

"लाला गोकुलप्रसाद, बलरामपुर जिला गोंडाके कायस्थ, १८८३ ई० में जावित।

"इ होने १८६८ ई० म स्वर्गीय राजा दिग्विजै सिंह (सिंहासनारोहण काल १८३६ इ०) के सम्मान मे दिग्विजय भूषण नामक काव्य सग्रह, जिसम १६२ कवियों की रचनाओं के चयन है, सकलित किया। यह अष्टजाम (राग कल्पद्रुम), चित्रकलाधर, दूतीदर्पण और अन्य ग्रथों के भी रचयिता है। यह ब्रज नाम से लिखते थे।"[1]

मूल ग्रथ का अनुशीलन न करके ग्रियर्सन साहब ने दिग्विजय भूषण के रचनाकाल विषयक शिवसिंह जी की उक्ति दुहरा दी। इसी प्रकार रच नाओ की नामावली और सख्यानिर्देश मे भी इ होंने सरोज को ही प्रमाण माना। इतना होते हुये भी गोकुल कवि और उनके आश्रयदाता के उपस्थिति काल का उल्लेख करके ग्रियर्सन साहबने भविष्य में इस सम्ब ध मे होनेवाली भ्रांतियाँ सदा के लिए समाप्त कर दीं।

इसके पश्चात् नागरी प्रचारिणी सभा काशीके खोज विवरणों मे गोकुल कवि की जीवनी तथा चार कृतियों का परिचय निकला। जून १६२८ की माधुरी मे श्री रामनारायण मिश्र का गोकुल कवि के जीवन और कृतियों के विवरण सहित एक सचित्र लेख भी प्रकाशित हुआ। इस प्रकार अन्तिम रचना 'गद्दीप्रकाश' को छोडकर सभी ग्र थों की सामान्य जानकारी शोधकर्ताओं के लिये सुलभ हो गई। यह खेद का विषय है कि विविध विषयों पर प्रचुरमात्रामें लिखे गये ग्रथों से साहित्य भाडार को अलकृत करने वाले इस आचार्य कवि को हि दी साहित्य के आधुनिक इतिहास ग्रथों में स्थान न मिल सका।

दिग्विजय भूषण के आरम्भ मे दी हुई सूची में कवियों की सख्या १६२ बताई गई है। किन्तु जॉच करने पर यह ठीक नहीं उतरती। इसका कारण है कवियों की नामावली प्रस्तुत करने म सकलनकर्ता द्वारा अज्ञात रूप मे की गई कतिपय भूलें, जिनका विवरण नीचे दिया जाता है—

---

१ द माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ़ हिन्दुस्तान (हिन्दी अनु० डा० कि० ला० गुप्त)—पृ० २८६। ग्रियर्सन साहब ने जानकारी न होने के कारण गोकुल कवि के अष्टयाम को 'राग कल्पद्रुम' में उल्लिखित बताया है। वस्तु स्थिति यह है कि राग कल्पद्रुम स० १६०० में प्रकाशित हो गया था और गोकुल कवि का 'अष्टयाम प्रकाश' स० १६१६ म लिखा गया। अत पूर्वोक्त अष्टयाम किसी अन्य कवि की रचना है।

१—कुछ कवियों के व्यावहारिक नाम तथा छाप सहित विभिन्न छंदों को देखकर भ्रातिवश उन्हें दो पृथक् कवियों की रचना मान लिया गया और उसके आधारपर दो कवियों की कल्पना कर ली गई। उदाहरणार्थ—उदयनाथ "कविन्द", सुखदेव मिश्र "कविराज" और गुरुदत्तसिंह "भूपति"—इन तीन कवियों के वास्तविक नाम और छाप को जोड़कर विषय सूची में छ कवि हो गये हैं।

२—एक ही कवि के दो छंदों में दी गई छापों में किंचित् परिवर्तन देखकर उन्हें दो पृथक् कवियों की रचना मान लिया गया है। उदाहरणार्थ दत्त कवि और कविदत्त, शोभ और शोभनाथ।

३—कहीं कहीं एक ही कवि की दो रचनाओं में समान छाप मिलनेपर भी दो पृथक् कवि समझने की भूल हुई है—जैसे सुखदेव मिश्र और सुखदेव दासर (द्वितीय।)

४—एक स्थान पर कवि के मूल नाम और उसके पर्याय को दो पृथक् छंदों में छाप रूप में प्रयोग करने की परिपाटी से अनभिज्ञ होने के कारण गोकुल ने उनके आधार पर दो भिन्न कवियों के अस्तित्व का अनुमान कर लिया है, उदाहरणार्थ—सोमनाथ और शशिनाथ।

५—चार कवियों—कुमार[1], परबत, शोभनाथ और श्रीधर—का नाम सूची में आने से रह गया है।

इस प्रकार सूची में निर्दिष्ट १९२ कवियों में से ७ कवियों की पुनरावृत्ति हो जाने से उनकी वास्तविक सख्या १८५ ही ठहरती है। इसमें चार छूटे हुए कवियों को यदि सम्मिलित कर दिया जाय तो दिग्विजय भूषण की सपूर्ण कवि संख्या १८९ हो जाती है। प्रस्तुत ग्रथ में दिग्विजय भूषण की कवि सूची ही अकारादि क्रम से प्रस्तुत कर दी गई है। उसमें यथास्थान कुमार के अतिरिक्त अन्य तीन छूटे हुए कवियों का नाम समाविष्ट है जिससे संख्या १९५ हो गई है। इनके ७९२ छंद दिग्विजय भूषण में सकलित हैं।

१—इनका वृत्त 'कवि परिचय' में नहीं आ सका है। मेरा अनुमान है कि ये कुमार मणिभट्ट हैं, जो गोकुल (ब्रज) के निवासी और सं० १८०३ में विद्यमान थे। इनकी 'रसिक रसाल' नामक एक रचना का उल्लेख शिवसिंहजी ने किया है। दिग्विजय भूषण में इनके दो छंद उदाहृत हैं।

कवि सटया की भाँति ही दो व्यक्तियों—अमरसिंह और पखाने—का नाम सकलन कर्त्ता ने कवियो की श्रेणी म अनजाने ही रख दिया है। इनमें से अमर सिंह के नाम से उदाहृत छद उनके दरबारी कवि रघुनाथराय का है और पखाने के नाम से सग्रहीत छद जयपुर के राय शिवसहायदास की रचना 'लोकोक्तिरस कौमुदी' से लिये गये हैं।

एक अ य प्रकार की भूल गोस्वामी हितहरिवश के विषय मे हुई है। सग्रह कर्त्ता ने इनका नाम सूची में रखा है किन्तु मूलग्रथ के भीतर जिस पृष्ठ पर (पृ० स० १०६) उनकी रचना उदाहृत बताई गइ है, वहाँ किसी अज्ञात नाम कवि के कवित्त सकलित हैं—एक का विषय है नाति दूसरे का श्रृगार। शैली रीतिका लीन है। गो० हितहरिवश की इस प्रकार की किसी रचना का अब तक पता नहीं चला है। जो छद उद्धृत है, उसमे दो स्थलों पर हित शब्द प्रयुक्त हुआ है, सभवत, इस शब्द ने ही गोकुल को भ्रम में डाल दिया है।

इसी के साथ गोकुल द्वारा 'अ य कवि' नाम से निर्दिष्ट आठ अज्ञात कवियो की स्थिति पर भी विचार कर लेना चाहिये। दिग्विजय भूषण के प्रस्तुत सस्करण के कवि परिचय खड के दूसरे पृष्ठ पर ये सभी अन्य कवि के नाम से उल्लिखित है। इनके जो छद उक्त ग्रथ म उदाहृत हैं उनके आधार पर इनकी पहचान सभव न हो सकी। अ य स्रोतों से भी ऐसी कोइ सामग्री उपलब्ध नहीं हुई जो इस समस्या को हल करने म सहायक होती। ऐसी दशा में पाठकों की सुविधा के लिए ग्रथात में दी गई नामानुक्रमाणिका में 'अ य कवि' नामक आठ कवियों के उदाहृत छदों के पृष्ठाक पृथक् पृथक दिये गये हैं। सग्रहकर्त्ता को इन अज्ञात कवियों के छ द विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध हुए होंगे। जिससे उसने इनमे से प्रत्येक के स्वतत्र अस्तित्व की कल्पना कर ली। अ य साक्ष्यों के अभाव मे इस विषय में हम गोकुल कवि की स्मृति और सूझ को ही प्रमाण मानना पडा है और उसी के आधार पर इनका उल्लेख 'अज्ञात कवि' नाम से कर दिया गया है।

इनके अतिरिक्त दिग्विजय भूषण के शेष १८१ कवियों में केवल ४० के लग भग ही हि दी साहित्य के प्रचलित इतिहासों में स्थान पा सके हैं। शेष में से कुछ की सक्षिप्त जीवनी एव रचनाओं का उल्लेख प्राचीन हस्तलिखित ग्र थों के अ वेषण मे सलग्न विभिन्न सस्थाओं द्वारा प्रकाशित खोज विवरणों म मिलता है और कुछ के वृत्त काव्यरसिक जनता की स्मृतियों में अवशिष्ट रह गये हैं। प्रस्तुत ग्रथ के कवि

दिग्विजय भूषण (मूल)—कवि सूची का पृष्ठांक ४

परिचय खंड की सामग्री इन सभी स्रोतों से एकत्र करने का प्रयास किया गया है। जिन कवीश्वरों की जीवन गाथायें एवं कृतियाँ काल प्रवाह के साथ अनंत में विलीन हो गईं उनके लिए कहीं अनुमान और कहीं असमर्थता प्रकाशन मात्र से संतोष करना पड़ा है।

इसी से सम्बद्ध एक दूसरी समस्या समान छापसे काव्य रचना करने वाले अनेक कवियों में से दिग्विजय भूषण में सकलित छन्दों के रचयिताओं की पहचान थी। जहाँ किसी कवि के एक ही दो छंद प्राप्त हों, उसी विषय पर नामाराशी कवियों द्वारा लिखित छंदों से उस कवि विशेष की प्रवृत्तियों एवं शैलियों का पृथक्करण साधारणतया संभव न था—उदाहरणार्थ शिवनाथ नाम के तीन, गोपाल नाम के चार और बलदेव नाम के सात कवियों में से दिग्विजय भूषण के शिवनाथ गोपाल और बलदेव की पहचान करने में अनुमान ही हमारा एक मात्र सहायक रहा है। ऐसे अवसरों पर 'शिवसिंह सरोज' से हमें विशेष पथ निर्देश प्राप्त हुआ है। 'सरोज' का मुख्य सदर्भग्रथ होने से 'दिग्विजय भूषण' के बहुत से छंद उसमें उद्धृत मिलते हैं। शिवसिंहजी ने प्राय उनके निर्माताओं का सामान्य परिचय भी दे दिया है। इस सामग्री का विवेक पूर्वक ग्रहण उपयोगी सिद्ध हुआ है। डा० किशोरी लाल गुप्त के लेखों तथा 'सरोज सर्वेक्षण' शीर्षक अप्रकाशित प्रबंध द्वारा प्राप्त महत्त्वपूर्ण सूचनाओं के बिना इस ग्रंथ के कतिपय कविवृत्त अधूरे ही रह जाते। आभार प्रदर्शन उसका महत्त्व कम कर देगा।

प्रस्तुत ग्रंथ में संग्रहीत एवं गोकुल कवि के स्वरचित छंदों का प्रतिपाद्य विषय अलंकार, नायिकाभेद, षड्ऋतु तथा कवि प्रौढोक्ति वर्णन है। इन विषयों पर लिखे गये छंदों में सामंत वर्ग के आश्रित अनेक कवियों ने समसामयिक ऐतिहासिक घटनाओं एवं व्यक्तियोंका यत्र तत्र उल्लेख किया है, जिनसे मध्य कालीन राजनीतिक जीवन पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पडता है—

१—चन्दकवि—महाराज पृथ्वीराज (सं० १२२०–१२४६) का मुहम्मदगोरी पर शब्दवेधी बाण सधान।

२—केहरी—ओरछा नरेश मधुकर शाहके पुत्र रतनसिंह[1] और अकबर की सेना का युद्ध (सं० १६४८)।

३—गंग—मिर्जा राजा मानसिंह (सं० १६५६–१६७८) का शौर्यवर्णन। महाराज बीरबल और खानखाना अब्दुल रहीम की दानशीलता की प्रशंसा।

---

१ महाकवि केशवदास ने 'रतनबावनी' की रचना इन्हीं के लिए की थी।

४—प्रवीणराय—ओरछा के राजकुमार इन्द्रजीतसिंह से मधुर सम्बन्ध, सम्राट् अकबर के आमन्त्रण से उत्पन्न परिस्थिति तथा अपनी वाग्विदग्धता द्वारा राजकोप से रक्षा का वर्णन।

५—रघुनाथराय—अमरसिंह राठौर का शाहजहाँ पर सरेदरबार आक्रमण स १७०१ (२५ जुलाई, १६४४ ई०)।

६—मुकुन्द—धरमत के युद्ध (स० १७१५) में सहायकों द्वारा प्रवंचित दारा के सहायक शत्रुसाल (छत्रसाल) अथवा मुकुन्द सिंह हाडा का औरंगज़ेब की सेना से घमासान युद्ध।

७—काशीराम—निजामत खाँ की वीरता का वर्णन।

८—मतिराम—बूँदी के महाराज भावसिंह का यश वर्णन।

९—घनश्याम—बाँधवगढ (रीवाँ) के बघेल राजा (संभवत अनिरुद्ध सिंह अथवा अवधूत सिंह) का शौर्य वर्णन।

१०—नीलकंठ—औरंगजेब के सेनाध्यक्ष दलेल खाँ (दिलेर खाँ स० १७२३) का आतंक वर्णन।

११—सुखदेव मिश्र—राजा अनूप सिंह (स० १७२४ बीकानेर ?) की दानशीलता की प्रशंसा।

१२—कृष्ण—महाराज जयसिंह कछवाह (स० १६७८-१७२४) का कीर्ति वर्णन।

दिग्विजय भूषण की कोई हस्तलिखित प्रति प्राप्त न होने से विवश होकर मुझे जगबहादुरी यन्त्रालय बलरामपुर की लीथो में छपी स० १९२५ की प्रति को ही आधार बनाना पड़ा।[1] इस प्रति के मूल तथा टीका भाग में लिपिकार के प्रमाद से अगणित त्रुटियाँ मिलीं—विशेष रूप से ब्रजभाषा में लिखी गई टीका अशुद्धियों से भरी थी। पर्याप्त सावधानी बरतते हुये भी अनेक त्रुटिपूर्ण पाठ छूट ही गये। ऐसी स्थिति में प्रस्तुत ग्रंथ के 'वैज्ञानिक' सम्पादन का दावा करना धृष्टता मात्र होगी। विषय को स्पष्ट करने के लिए कुछ आवश्यक टिप्पणियाँ और शब्दार्थ पृष्ठान्त में दे दिये गये हैं। मेरा उद्देश्य कवि परिचय सहित 'दिग्विजय भूषण' को हिन्दी प्रेमियों के समक्ष प्रस्तुत करना मात्र था, जिससे

१ ना० प्र० सभा के खोज विवरण (१९२९।१४२ बी) में 'दिग्विजय भूषण' की जिस प्रति को आधार बनाया गया है वह यही लीथो प्रति है, हस्तलिखित नहीं। अन्वेषक ने भ्रांतिवश उसे हस्तलेख मान लिया है।

राष्ट्रभाषा के अनेक विस्मृत रत्न प्रकाश में आ जायँ। वह किसी प्रकार पूरा हुआ। अपने लिए यही सबसे अधिक प्रसन्नता की बात है।

इस गुरुतर कार्य में प्रवृत्त होने की सर्वप्रथम प्रेरणा देने वाले सुहृद्वर श्री यज्ञमणि दीक्षिताचार्य, एम० ए०, आत्मसचिव श्रीमती महारानी साहिबा बलरामपुर, का मैं विशेष आभारी हूँ, जिनके द्वारा प्राप्त प्रोत्साहन एवं सक्रिय सहयोग के अभाव में यह ग्रंथ इस रूप में कदाचित् ही प्रस्तुत हो पाता।

अन्त में प्रस्तुत ग्रंथ के संपादन में श्री जनार्दन शास्त्री पांडेय तथा मुद्रण में श्री बाबूलालजी फागुल्ल द्वारा प्राप्त सहयोग के लिये मैं हृदय से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

प्राध्यापक निवास (गुशी नगर)
गोरखपुर विश्वविद्यालय
विजया दशमी, सं० १६१६

भगवती प्रसाद सिंह



महाराज दिग्विजय सिंह 'भूपविजय'

महाराज दिग्विजय सिंह 'भूपविजय'

जीवन-परिचय

उत्तरप्रदेशमें सबसे बड़े जमींदारी राज्य के संस्थापक महाराज दिग्विजयसिंह जनवार क्षत्रिय थे। इनके पूर्वजों की मूलभूमि पावागढ (चम्पानेर गुजरात) का जानवार प्रदेश था, जो नीमच छावनी के निकट स्थित है। राजा नयसुखदेव[1] इसी भूखंड के शासक थे। उनके छ पुत्रों में बरियारशाह[2] बड़े शूरवीर थे। दिल्ली के सुलतान की प्रेरणा से वे सं० १३२५[3] में अवध आये और यहाँ

---

१ गोंडा जिले के गज़ेटियर में इनका नाम मनसुखिदेव और 'तारीख़ राजबलरामपुर' में तनसुखदेव लिखा है किंतु 'दिग्वजय भूपण' में इन्हें नयसुख नामसे अभिहित किया गया है। गोकुल कवि के उल्लेख को अधिक प्रामाणिक मानकर यहाँ 'नयसुख' नाम ही रखा गया है।

नमच छावनी पास है, पावागढ़ गुजरात।
राजा नयसुखदेव तहँ, बल प्रताप अवदात॥
—दिग्विजय भूषण पृ० २७

२ पावागढ गुजरात ते, आये भूप जनवार।
सुभट बीर बरिबंड बहु, संग मे सैन अपार॥
सूबा अवध को जेर करि, छीनि मुल्क सब लीन।
ता महँ यह बलिरामपुर, सुभग थली निज कीन॥
केतक भजि तजि राज गे, केतक भे जिमि दीन।
केतक दंड दै सरन परि, भये भूप आधीन॥
एक छत्र यहि ओध में, भयो भूप जनवार।
सर कीन्हों यहि मुल्क को, नाम धरे सरवार॥
—दिग्विजय चंपू (ले० गदाधर शर्मा) पत्र ३

३ गोंडा गज़ेटियर के अनुसार बरियारशाह का सुलतान फ़ीरोज़शाह तुग़लक के साथ अवध आगमन १३७४ ई० (सं० १४३१) में हुआ। दिग्विजय भूपण में दी हुई तिथि (सं० १३२५) से इसमें १०६ वर्ष का अंतर पड़ता है। यहाँ भी हमने राजकीय कागज पत्रों पर आधारित राज कवि गोकुल के एतद्विषयक उल्लेख को ही अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय माना है।

संवत् विक्रम भूप के, तेरह सै पचीस।
राज अकौना को लह्यो, बड़ बरियार महीस॥
—दिग्विजय भूषण पृ० २८

अकौना राज्य (जिला बहरायच) पर अधिकार कर के स्थायी रूप से बस गये। अपने बाहुबल से उन्होंने इस प्रदेश में फैली हुई अराजकता और विरोधी तत्त्वों का मूलाच्छेद करके एक सुदृढ़ राज्य स्थापित किया। इसी वंश में आगे चलकर सं० १४६६ में राजा माधवसिंह अकौना की गद्दी पर बैठे। इन्होंने रामगढ़ गौरी के तत्कालीन सामंत खेमू चौधरी और उसके सहायक बादल बढ़ई को पराजित करके उनका राज्य अपने अधीन कर लिया।[1] कुछ ही दिनों बाद इस नवविजित प्रदेश में शासन व्यवस्था दृढ़ करने के उद्देश्य से छोटे भाई गणेशसिंह को अकौना राज्य का प्रबंध सौंपकर वे रामगढ़ गौरी में आ बसे। इन्हीं माधवसिंह के द्वितीय पुत्र बलरामशाह के नाम पर वर्तमान बलरामपुर नगर की स्थापना हुई। तब से रामगढ़ गौरी के स्थान पर बलरामपुर ही जनवार वंश के इस दूसरे राज्य का केंद्र बन गया।[2] कालांतर में अकौना वाली शाखा में पयागपुर, गंगवल, चर्दा और भिनगा के छोटे छोटे राज्य स्थापित हुये। उनमें कोई ऐसा असाधारण शक्ति सम्पन्न एवं प्रतिभाशाली शासक नहीं हुआ जिसका अपने समकालीन राजनीतिक जीवन में कोई महत्त्व पूर्ण स्थान रहा हो। किंतु इसी राजवंश की बलरामपुर वाली शाखा में छत्रसिंह, नवलसिंह तथा बहादुरसिंह जैसे पराक्रमी एवं नीतिकुशल नर रत्नोंका आविर्भाव हुआ, जिन्होंने अवधके नवाबों द्वारा नियुक्त चकलेदारों और नाज़िमों की सेनाओंको अनेक बार परास्त और केन्द्रीय शक्ति की निरन्तर अवज्ञा कर अपना साका स्थापित किया। इन उदार शासकों की छाया में उनके वंशधर जनवार धीरे धीरे बलरामपुर के चतुर्दिक् फैल गये। जेवनार, शाहडीह, समगरा, महादेव, किठूरा, दुलहापुर, सिसई, बेनीजोत आदि गाँवों में वे अब तक बसे हुये हैं।

महाराज दिग्विजयसिंह का जन्म अवध के इसी लोकविश्रुत राजवंश में बेला के किले में आश्विन कृष्ण १२, बुधवार सं० १८७६ को हुआ। बालक दिग्विजय को आरंभ से ही आपत्तियों का सामना करना पड़ा। माता सूतिकागृह में ही रोगग्रस्त हो गईं। अतः इनके पिता महाराज अर्जुन सिंह ने दाई द्वारा दूध पिलाने की व्यवस्था करके पुत्र की प्राण रक्षा की। चार वर्ष की अवस्था में आँगन में खेलते समय आग पर रखे हुये गर्म दूध से इनका सारा शरीर बुरी तरह

१ खेमू चौधरी के नाम पर ही वर्तमान खँभौवा ग्राम की प्रसिद्धि हुई। यहाँ उसकी गढ़ी के ध्वंसावशेष अब तक वर्तमान हैं।

२ तारीख़राज बलरामपुर (ले० राजेन्द्र बहादुरसिंह), पृ० ६।

जल गया। इसके प्रभाव स्वरूप स्वस्थ हो जाने पर भी इनका बायाँ अग चलने पर कुछ झुक जाया करता था।[1]

सात वर्ष की आयु में इनका विद्यारभ सस्कार हुआ। उन दिनों नवाबी शासन के प्रभाव से अवध के सम्भ्रान्त कुलों में फारसी अरबी का बडा प्रचार था। दिग्विजय सिंह की शिक्षा पहले इसी परिपाटी पर हुई, पीछे धर्म शास्त्र, दर्शन, काव्य, ज्योतिष और राजनीति विषयक सस्कृत ग्रथों के पढ़ाने की भी व्यवस्था की गई।

पढे फारसी आरबी ग्रथ रूरे। पढे वेद भेदै सबै अग पूरे।
पढे मत्र तत्रादि यत्राधिकारी। पढे काव्य के अग जेते विचारी॥
पढे राजनीतै अनीतै बिहाई। पढे जोतिसै जो घटो ग्रग भाइ।
पढे वेद वेदात के अग भारी। पढे न्याय के पथ नीके विचारी॥

इन्होंने अरबी फारसी मिर्जा जुल्फकार बेग से पढी थी और सस्कृत का अध्ययन बाबा केशवदास तथा रघुनाथदास से किया था। महाराज अर्जुन सिंह ने मानसिक विकास के साथ ही पुत्र की शारीरिक उन्नति पर भी ध्यान रखा। बाना पट्टा सिखाने के लिये मुहम्मद खाँ, बादल खाँ और सरदार सिंह तथा तैरने की शिक्षा के लिये मीरन खान नियुक्त हुए। मनोरजन के लिये सगीत कला का व्यावहारिक ज्ञान इन्होंने उस्ताद मुहब्बत खाँ से प्राप्त किया। घुडसवारी और अस्त्र शस्त्र की शिक्षा में पिता तथा बडे भाई जैनरायन सिंह ने व्यक्तिगत रूप से दिलचस्पी ली। प्रात साय स्वय समय देकर उन्होंने दिग्विजय सिंह को युद्धविद्या में पटुता प्रदान की।

इनका यज्ञोपवीत सस्कार ११ वर्ष की अवस्था में फागुन कृष्ण २, स० १८८७ को हुआ। संयोग वश इस समारोह के ७ ही दिन बाद महाराज अर्जुन सिंह का परलोकवास हो गया। पिता की प्रेत क्रिया समाप्त होनेपर चैत्र शुक्ल १, स० १८८८ को बडे राजकुमार जैनरायन सिंह गद्दी पर बैठे। अभी उन्हें राज्य करते छ वर्ष भी पूरे न हुए थे कि अचानक कार्तिक पूर्णिमा स० १८९३ को वे दिवगत हो गये।[2] इन पारिवारिक आपत्तियों ने १८ वर्ष की छोटी आयु में दिग्विजय सिंह को राजदड धारण के लिए विवश किया।

---

१ दि० प्र०, पृ० ३१

२ 'दिग्विजय चपू' के लेखक गदाधर शर्मा ने जैनरायन सिंह का आकस्मिक मृत्यु का कारण विरोधियों का षड्यन्त्र माना है। दिग्विजय सिंह को सम्बोधित करते हुए वे लिखते हैं—

महाराज के अल्प वयस्क होने से राज्य का सारा प्रबंध नायब नल सिंह के हाथ में चला गया। उन्होंने अपना एकाधिकार स्थिर रखने के उद्देश्य से राज्य के हितैषी कई पुराने कर्मचारियों को पृथक् करके उनके स्थान पर महाराज जी आज्ञा प्राप्त किये बिना ही अपने समर्थक लोगों को नियुक्त कर दिया। इतना ही नहीं महाराज की व्यक्तिगत सेवा के लिए तैनात पाँच स्वामिभक्त अंगरक्षक भी निकाल दिये गये। दिग्विजय सिंह इस अवज्ञापूर्ण आचरण से तमतमा उठे। उन्होंने उसी क्षण अपने शक्ति शाली किंतु स्वामिद्रोही नायब को दंड देने का निश्चय कर लिया। सेना के उच्च अधिकारियों तथा सिपाहियों को नलसिंह का समर्थक जानकर उन्होंने अपने दो विश्वासपात्र सिपाहियों—रामआसरे तिवारी तथा ऊधोगिरि गोसाईं[1]—को लेकर नलसिंह के घर पर रात में धावा किया और उन्हें बंदी बना लिया। प्रातःकाल नायब तथा उनके कुटुम्बियों के बहुत अनुनय विनय करने पर ३० हजार रुपये जुर्माना वसूल करके उन्हें मुक्त कर दिया। नलसिंह ने स्वामिभक्ति की शपथ ली। इसके बाद उन्हें पुनः पूर्व पद दे दिया गया। किंतु मनोमालिन्य चलता रहा। नलसिंह को भय लगा रहता था कि राजा पुनः कोई न कोई बहाना निकाल कर उन्हें दंडित करेंगे। अतः एक रात को अपने कुटुम्ब समेत वे भाग खड़े हुए। उनके स्थान पर गजाधर सिंह नायब बने।

दो०—जैनारायन भूप तब, भये आपके भ्रात।
रामचंद्र सम सील निधि, सोइ रूप सोइ गात॥
चौ०—मातु भक्ति हिरदै निज ठाना। अवर कछू दूसर नहि जाना।
नहि जानैं कछु राज को भेवा। निसु दिन करैं मातु का सेवा॥
राजनीति बहु विधि समुझावा। जननी भै बस हृदै न आवा।
भये प्रबल काजा दुखदायक। नहि बूझैं को हैं केहि लायक॥
इहाँ भूप भे कछू दुखारी। सो बेवरा का कहौं गुरारी।
खल मिलि कियो घात बिस्वासा। सुरपुर गे नृप तजि जग आसा॥
तब परपचिन्ह हर्ष हे, कीन्ह यरावट राज।
निज नैनन आपुहु लखा, जैसो कान्हो काज॥
—दिग्विजय चंपू (हस्तलिखित)—पत्र १२-१३

१ पाछे देखे आवत सोई। तीनि पुरुष संग अवर न कोई।
जौन तीनि सै किरिया खाये। रहि न गये एकौ तहँ पाये।
एक राम आसरे तिवारी। दूजे ऊधौगिरि भट भारी॥
—दिग्विजय प्रकाश, पृ० ९२

नलसिंह ने बलरामपुर से भाग कर उतरौला के राजा मुहम्मद खाँ की शरण ली। उतरौला और बलरामपुर राज्यों मे सीमा सम्बंधी विवाद को लेकर बहुत दिनों से शत्रुता चली आ रही थी। मुहम्मद खाँ ने शत्रु के रहस्यो का पता लगाने के लिये नलसिंह का स्वागत किया और उन्हें अपने यहाँ की नायबत दे दी। नलसिंह भी अपना बैर चुकाने की ताक मे थे। उन्होंने महाराज दिग्विजय सिंह की हत्या कराने का दो बार असफल प्रयत्न किया। अंत मे चारो ओर से हार कर उन्होंने उतरौला के राजा से बलरामपुर के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करा दी। उतरौला की सेना बुरी तरह पराजित हुई। नगर पर दिग्विजय सिंह का अधिकार हो गया। इससे आतंकित होकर तुलसीपुर के राजा दानबहादुर सिंह ने भी अधीनता स्वीकार कर ली और चौथ, चौकीदारी तथा भेंट द्वारा दिग्विजय सिंह को संतुष्ट किया।

इन्हीं दिनों अवधशासन की ओर से शंकर सहाय पाठक को गोंडा—बहरायच की निज़ामत प्रदान की गई। इनकी नीति अत्यंत कुटिल थी। प्रत्यक्ष रूप से दिग्विजय सिंह के साथ मैत्रीभाव प्रदर्शित करते हुए भी इन्होंने भीतर ही भीतर बलरामपुर के पुराने शत्रुओ—उतरौला और तुलसीपुर के राजाओं से मिलकर इनका राज्य हड़पने की योजना बनाई। दैवयोग से इस षड्यंत्र के सफल होने के पूर्व ही उन्होंने बहरायच के काज़ी के पुत्र की हत्या करा दी। इस अभियोग मे वे नाज़िम के पद से हटा दिये गये। राजकोप से अपने प्राणो की रक्षा के लिये शंकर सहाय पाठक ने नैपाल के दुर्गम जंगलों की शरण ली और वहीं उनकी मृत्यु हो गई।

इसके अनंतर सं० १८९९ मे अयोध्या के राजा दर्शन सिंह नाज़िम बनाये गये। महाराज दिग्विजय सिंह के प्रभाव से वे भली भाँति परिचित थे। वे यह जानते थे कि बलरामपुर की शक्ति को समाप्त करके ही घाघरा के उत्तर पूर्वी प्रदेश में उनकी धाक जम सकती है। अतः बिना किसी कारण अथवा पूर्व सूचना के उन्होंने बलरामपुर पर चढ़ाई कर दी। उनकी विशाल वाहिनी के समक्ष बलरामपुर की छोटी सेना अधिक दिनों तक ठहर न सकी। घमासान युद्ध के पश्चात् बलरामपुर और पटोहाँ के कोट तोड़ दिये गये। सारे बलरामपुर राज्य पर दर्शन सिंह का अधिकार हो गया। दिग्विजय सिंह को विवश होकर अज्ञातवास में जाना पड़ा।

अवध की सीमा त्याग कर वे अंग्रेजी राज्य मे चले गये। गोरखपुर उनका प्रधान केन्द्र बन गया। यहीं से वे अपने सहायक एवं समर्थक श्रीनाथ सिंह को गोरिल्लायुद्ध के लिये प्रोत्साहित करते रहे और अंत में बलरामपुर स्थित नाज़िम

की सेना को पराजित किया। दर्शनसिंह ने परेशान होकर गुअज्ज़ाम खाँ मेवाती का दिग्विजयसिंह के पास सुलह का प्रस्ताव लेकर भेजा। किंतु उसम उ हें सफलता नहीं मिली। इससे चिढ़कर उ होने दिग्विजयसिंह के आवास ओरहवा छावनी (महराजगज तराई—गोंडा) पर सं० १९०६ मे आक्रमण कर दिया। राजा दर्शनसिंह के भतीजे बाधीसिंह के गिरते ही सेना में भगदड़ मच गई। बुरी तरह पराजित होकर अवशिष्ट सेना के साथ वे बलरामपुर चले आये। यह युद्ध नैपाल की सीमा में हुआ था। अतएव दिग्विजयसिंह की शिकायत पर अवध तथा नैपाल के बीच पुरानी सधि की अवहेलना करने के अपराध म नवाब वाजिद अलीशाह ने दर्शनसिंह को लखनऊ बुलाकर जेलखाने में डाल दिया।

परिस्थिति से लाभ उठाकर दिग्विजयसिंह ने पिपरा में एक सेना एकत्र की और बलरामपुर पर धावा बोल दिया। नाज़िम की सेना शत्रु के इस अचानक आक्रमण से घबडा गई। साधारण युद्ध के बाद दिग्विजय सिंह ने अपने खोये हुये राज्य पर पुन अधिकार कर लिया।

लखनऊ में बदीजीवन व्यतीत करते हुये दर्शन सिंह ने दिग्विजयसिंह से अपने अपमान का बदला लेने के लिए एक युक्ति सोची। उ होंने अंग्रेजी राज्य के कुछ निवासियों से रेजीडेण्ट के पास दिग्विजयसिंह पर हत्या के आरोप विषयक एक आवेदन पत्र दिलाया और नवाब के कर्मचारियों को घूस देकर उ हें कैद करने का फरमान निकलवा दिया। रेजीडेण्ट को भी इस आरोप की सत्यता पर विश्वास हो गया। इससे अंग्रेजी तथा नैपाल सरकारों ने भी दिग्विजयसिंह पर वारण्ट जारी कर दिये। इस भीषण आपत्ति से अपनी रक्षा के लिए उ हें पुन जन्मभूमि छोड़नी पड़ी। कुछ विश्वस्त सेवकों के साथ वेष बदलकर वे बाँसी, गोरखपुर और आजमगढ़ होते हुये बनारस पहुँचे। वहाँ पूर्व परिचित फूला नाम की एक मालिनि के मकान में ठहरे। बाद को भेद खुल जाने की आशका से उ होंने सारनाथ के पास प० शिवलाल दुबे के बगीचे का मकान किराये पर ले लिया। बनारस के अंग्रेज कलक्टर को गुप्तचरों द्वारा एक दिन इनका पता चल गया। मकान स ध्या होते ही घेर लिया गया। दिग्विजय सिंह बडी कठिनाई से पुलिस का घेरा तोडकर निकले गये।

काशी से फूलपुर, जौनपुर, शाहगज तथा अयोध्या के मार्ग से वे किसी प्रकार अपने पुराने किले पटोहाँ कोट मे आ गये। गोंडा के राजा देवीबख्शसिंह ने इस आपत्तिकाल में उनकी रक्षा के लिए दो सिपाही नियुक्त कर दिये थे। वे इन्हें गोंडा से पटोहाँ कोट सकुशल पहुँचा कर लौट गये।

दिग्विजयसिंह का पटोहाँ कोट में अधिक दिन तक ठहरना निरापद नहीं था। अतः वहाँ से वे बुटवल (नैपाल) चले गये और छिपे तौर से राना जंगबहादुर के मेहमान होकर कई महीने रहे। जलवायु अनुकूल न होने से वे बुटवल से महाराजगंज (गोंडा) चले आये। यहाँ से अपना वकील गोरखपुर के कलक्टर रीड साहब[1] के पास वारण्ट रद्द कराने की पैरवी के लिए भेजा। सौभाग्य से उस समय वहाँ कर्नल स्लीमन भी उपस्थित थे। कंपनी शासन ने इनकी नियुक्ति ठगों और डाकुओं का दमन करने के लिए की थी। बलरामपुर के वकील की बातें सुनकर कलक्टर रीड ने स्लीमन के सामने यह प्रस्ताव रखा कि यदि दिग्विजयसिंह उस प्रदेश के प्रसिद्ध डाकू रामसिंह को कैद करा दें तो वे उनके विरुद्ध कंपनी द्वारा जारी किया गया वारण्ट वापस ले लेंगे। स्लीमन ने यह स्वीकार कर लिया। वकील ने इसकी सूचना दिग्विजयसिंह को दी। इसके कुछ ही दिनों बाद दिग्विजयसिंह ने रामसिंह को कैद करके गोरखपुर भेज दिया। पूर्व निश्चित वार्ता के अनुसार कंपनी शासन ने उनके ऊपर लगाया गया आरोप खारिज करके वारण्ट वापस ले लिया।

दर्शन सिंह के उत्तराधिकारी नाजिम मुहम्मद अली खाँ और वाजिद अली-खाँ ने दिग्विजय सिंह से मैत्रीपूर्ण व्यवहार रखा। किंतु वे इस पद पर अधिक समय तक न ठहर सके। एक ही वर्ष बाद सं० १९०३ में उन्हें हटा कर नवाब ने दर्शनसिंह के पुत्र रघुबरदयालसिंह को निज़ामत दे दी। वे अपने पिता के प्रबल शत्रु दिग्विजय सिंह को नीचा दिखाने का अवसर ढूँढ ही रहे थे कि अत्याचार और कुशासन के अभियोग में वर्ष भर के अन्दर ही हटा दिये गये। उनके उत्तराधिकारी हुए दर्शन सिंह के भाई इच्छा सिंह। सरकारी कोष का धन हड़पने के जुर्म में उन्हें भी एक ही वर्ष निजामत नसीब रही। सं० १९०५ में मीरमुहम्मद हसन नाज़िम हुए। गोंडा के राजा पांडेय रामदत्त राम और महाराज दिग्विजय सिंह इस पद की प्राप्ति में उनके मुख्य सहायक थे। नये नाज़िम और पांडेय रामदत्त के बीच रुपये के लेन देन में कुछ मन मुटाव हो गया। एक दिन भेंट करने के लिये आये हुए रामदत्त को उसने अपने खेमे में ही मरवा डाला। महाराज दिग्विजय सिंह इस घटना के कुछ क्षण पूर्व वहाँ से उठ कर अपने डेरे पर चले आये थे। जब इस हत्या की खबर नवाब के पास पहुँची, मुहम्मद हसन पदच्युत कर दिये गये।

---

१ गोरखपुर में रीड साहब की धर्मशाला इनकी स्मृति को अब तक सुरक्षित किये है।

इन्हीं दिनों तुलसीपुर के राजा द्रिगराज सिंह को उनके पुत्र द्रिगनरायन सिंह ने बलपूर्वक गद्दी से उतार दिया और राज्य पर अधिकार कर लिया। सब ओर से निराश होकर द्रिगराज सिंह ने दिग्विजय सिंह से सहायता माँगी। उधर द्रिग नारायन सिंह ने नवाब के दरबारियों की जेब गर्म करके तुलसीपुर का इलाका अपने नाम लिखा लिया। दिग्विजय सिंह के सामने यह एक वैधानिक अड़चन थी, जिससे चाहते हुए भी वे द्रिगराज सिंह की सहायता करने में असमर्थ थे। अत पहले उन्होंने इसे ही दूर करने का प्रयत्न किया। उन्हें एक अच्छा अवसर हाथ लगा। इसी समय कर्नल स्लीमन ने रेजीडेण्ट के रूप में पूर्ण अवध का दौरा किया। १४ दिसम्बर १८४९ को उनका पड़ाव गोंडा में था। दिग्विजय सिंह के इशारे से द्रिगराज सिंह ने उनके समक्ष अपने अधिकार च्युत होने का वाद प्रस्तुत किया। रेजीडेण्ट ने उन्हें लखनऊ आकर भेंट करने का आदेश दिया। द्रिगराज सिंह बलरामपुर के वकील के साथ यथासमय स्लीमन साहब के समक्ष उपस्थित हुये। रेजीडेण्ट के हस्तक्षेप से द्रिगराजसिंह को पुन तुलसीपुर का राज्य शाहीफरमान द्वारा प्रदान किया गया। महाराज दिग्विजय सिंह पर इस फरमान को कार्यान्वित करने का भार सौंपा गया। उन्होंने एक विशाल सेना लेकर कगदा कोट घेर लिया। कई दिनों तक युद्ध करने के बाद किले के भीतर एकत्रित खाद्य सामग्री के समाप्त हो जाने से तुलसीपुर की सेना पराजित हुई। बूढ़े राजा द्रिगराज सिंह को पुन तुलसीपुर की गद्दी पर बिठाया गया।

सं० १९०८ में दर्शन सिंह के वंशधर मानसिंह (द्विजदेव) नाज़िम हुये। पैतृक शत्रुता का बदला चुकाने के उद्देश्य से उन्होंने लखनऊ जाते समय दिग्विजय सिंह को मार्ग में ही कैद कर लेने की योजना बनाई। किंतु उसका भंडाफोड़ समय से पूर्व ही हो गया। दिग्विजय सिंह ने वह रास्ता छोड़ कर गॅगवल (बहरायच) के मार्ग से घाघरा पार किया और बाराबंकी होते हुए सीधे लखनऊ चले गये। वहाँ रेज़ीडेण्ट स्लीमन और नवाब सय्यद अली नकी खाँ से मिलकर मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किया। इसी यात्रा में उन्हें नवाब ने 'राजा बहादुर' का खिताब दिया।

तुलसीपुर के राजा द्रिगराज सिंह सं० १९०९ में अपने पुत्र द्वारा पुन सिंहासन से हटा दिये गये। नवाब की सम्मति लेकर दिग्विजय सिंह ने द्रिगराज सिंह का स्वत्त्व स्थापित करने के लिये तुलसीपुर पर आक्रमण किया। इस युद्ध में नाज़िम के विश्वासघात करने पर भी जनरल बेनीमाधव पांडे के सेनापतित्व में बलरामपुर की फ़ौज विजयी हुई। द्रिगराज सिंह की छूटी हुई गद्दी मिल गई

कि तु उसका निष्कण्टक भोग वे अधिक दिनों तक नहीं कर सके। बलरामपुर की सेनाओं के लौटते ही उनके पुत्र ने तुलसीपुर पर चढाई की। बूढे द्रिग राज सिंह को उसने ब दी बना कर जेल म डाल दिया। महाराज दिग्विजयसिंह यह समाचार पाकर व्यग्र हुये कि तु इसके पूर्व कि वे पदच्युत राजा की सहायता कर सकें, पुत्र द्वारा दी गई असह्य यातनाओं ने द्रिगराज सिंह की ऐहिक लीला जेलखाने में ही समाप्त कर दी।

गोंडा के राजा देवी बख्श सिंह और दिग्विजय सिंह मे आरम्भसे ही मैत्री पूर्ण सम्ब ध था कि तु एक प्रश्न को लेकर उनम गहरा मतभेद हो गया। वह था दिग्विजय सिंह का गोंडा के बिसेन राजवश की क या इ द्रकुँवरि से विवाह। परम्परा से बलरामपुर के जनवारों की क यायें बिसेनों के यहाँ ब्याही जाती रही हैं। राजा देवी बख्श सिंह स्वय बलरामपुर के सगोत्री पयागपुरके राजा के यहाँ ब्याहे थे। दिग्विजय सिह के उक्त विवाह से इस सामाजिक मर्यादा की स्पष्ट अवहेलना हुई थी। इस घटना ने अवध क इन दो शक्तिशाली राज्यों में स्थायी बैर का बीजारोपण किया, जिसका परिणाम आगे चल कर समूचे राष्ट्र के लिये अहितकर हुआ। १८५७ ई० (स० १९१४) के प्रथम स्वत त्रता सग्राम में जिस समय देवीबख्श सिंह ने नवाब का पक्ष लेकर अग्रेजों के विरुद्ध क्रान्ति कारियों का नेतृत्व किया, दिग्विजय सिंह ने पुरानी शत्रुता की प्रतिक्रिया में फिरगियों की सहायता करने मे ही अपनी आन की रक्षा समझी।

अवधकी राजनीतिक स्थितिमें इसी समय एक युगा तरकारी परिवर्तन उपस्थित हुआ। अग्रेज रेजीडेण्टके निरन्तर हस्तक्षेप, कर्मचारियोंकी भ्रष्टाचारी प्रवृत्ति तथा सामन्तों एव चकलेदारोंकी प्रवचनासे तग आकर ७ फरवरी १८५६ (स० १९१३) को एक फरमान द्वारा नवाबने अवधका शासन ईस्ट इडिया कपनीको सौंप दिया। इसके फलस्वरूप वह अग्रेजी राज्यका एक अग हो गया। सर चार्ल्स विंगफील्ड गोंडा और बहरायचके प्रथम कमिश्नर नियुक्त हुये। रेजीडेन्टने इनसे पहले ही दिग्विजयसिंहकी प्रशसा कर रखी थी। अत घाघरा पार करते ही उसने इन्हें बुलानेके लिये दूत भेजे। दिग्विजय सिहकी विंगफील्ड से प्रथम भेंट सिकरौरा छावनी (कर्नैलगज–गोंडा) में हुई। इसी भेंटमें विंग फील्ड द्वारा दिये गये निमन्त्रणपर दिग्विजय सिंहने बादको पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली तथा मसूरीकी यात्रायें की थीं।

महाराज दिग्विजय सिंह भ्रमणसे लौटे ही थे कि १८५७का स्वतन्त्रता सग्राम छिड गया। उत्तर प्रदेशमें इसका सूत्रपात १० मईको मेरठकी छावनीसे हुआ। एक मासके भीतर ही गोंडा और बहरायचमें इसकी लपट फैल गई। दिगत

व्यापी क्रांतिसे त्रस्त हो कमिश्नर विंगफील्डने दिग्विजयसिंहसे गोंडा तथा सिकरौरामें रहनेवाले अंग्रेज परिवारोंको शरण देनेकी याचना की। महाराजने उनकी प्रार्थनानुसार शरण दे दी। पूर्वी अवध अब तक क्रांतिका मुख्य केंद्र बन चुका था। गोंडाके राजा देवीबख्श सिंह, चौंडी (जिला बहराइच) के राजा हरदत्त सिंह, तुलसीपुर की रानी और चरदाके राजा खुले रूपसे क्रांतिकारियोंका नेतृत्व कर रहे थे। ऐसी दशा में बलरामपुरमें शरणागत अंग्रेज परिवारोंकी सुरक्षा संदिग्ध समझकर दिग्विजय सिंहने उन्हें अपने सैनिकोंकी देखरेखमें १२ जून १८५७ (सं० १९१४) को सकुशल गोरखपुर पहुँचा दिया। वहाँ से वे सब कलकत्ता चले गये।

स्वातन्त्र्य संग्रामके नेताओंको जब दिग्विजय सिंहके इस कृत्यका पता लगा तो प्रतिशोधकी भावनासे उन्होंने शाहजादा बिरजिसक़दरसे एक फरमान निकलवा कर बलरामपुर राज्यकी जब्तीकी घोषणा करा दी। प्रान्तके अधिकांशपरसे अंग्रेजी शासन समाप्त हो चुका था। अतः दिग्विजय सिंह अपने परिवार तथा विश्वास पात्र सैनिकों सहित बलरामपुर छोड़कर पटोहाँकोट चले गये और वहाँ आठ महीने रहे। इस बीच क्रांतिकारियोंने उसपर चार बार आक्रमण किया किन्तु कब्ज़ा न कर सके। निरंतर होनेवाले इन युद्धोंसे उद्विग्न होकर उन्होंने अपने परिवारको नेपाल भेज देनेका निश्चय किया। इस सम्बन्धमें नेपालके प्रधान मंत्री राणा जंगबहादुरसे पत्र व्यवहार करके उन्होंने बुटवलमें निवास स्थानका प्रबंध भी कर लिया।

अंग्रेजोंके सौभाग्यसे भारतीयोंकी अनुभवहीनता, पारस्परिक द्वेष तथा राष्ट्रीय चेतनाके अभावके कारण क्रान्ति अधिक दिनों तक ठहर न सकी। सिख और गोरखा पल्टनोंकी सहायतासे अंग्रेज़ सेनाध्यक्ष सर कालिन कैम्पबेल और उसकी गोरी पलटनने अवधकी क्रान्ति बुरी तरह कुचल दी। नवाब वाजिदअली शाहकी बेगम साहिबा अपने पुत्र बिरजिसकदर सहित पराजित हुईं। मीर मुहम्मदहसन और राजा देवीबख्श सिंह, अयोध्याके राजा मानसिंहके फूट जानेसे, फैजाबादकी ओरसे होनेवाले अंग्रेजी सेनाके आक्रमणको रोक न सके।

पश्चिमी उत्तर प्रदेशमें अपने पैर उखड़ते देखकर नानासाहब और बालाराव अवधकी ओर बढ़े। घाघरा पार करके वे गोंडा होते हुये बलरामपुर आये। यहाँ उन्हें दिग्विजय सिंहके पटोहाँ कोटमें रहनेका समाचार मिला। उसी दिन राप्ती पारकर उन्होंने पटोहाँकोटको घेर लिया। दिग्विजयसिंहने मराठोंकी प्रशिक्षित सेनाका मुकाबला करनेमें अपनेको असमर्थ पाया अतः उन्हें ३० हजार रुपया दण्ड देकर अपना पिंड छुड़ाया। क्रांतिकारी पटोहाँ कोटसे तुलसीपुर चले गये।

उधर अंग्रेजोंकी विजयिनी सेना लखनऊको क्रांतिकारियोंके शासनसे मुक्तकर गोंडाकी ओर बढ़ी। सर कालिन कैम्पबेल और सर होपग्रांटकी सेनाएँ सम्मिलित रूपसे क्रांतिकारियोंका पीछा करते हुये घाघरा उतर आईं। यह सुनकर तुलसीपुरमें एकत्रित क्रांतिकारी नेता धीरे धीरे नैपालकी ओर बढ़ने लगे। बालाराव और नाना साहबकी सेनासे मेजर ब्रूस और सर होप ग्रांट द्वारा सचालित अंग्रेजी सेनाका जरवाके समीप घमासान युद्ध हुआ। अंग्रेजोंको विजयके साथ ही प्रतिपक्षियोंकी २२ तोप और बहुत सा लड़ाईका सामान लूटमें मिला। अवधकी पूर्वी सीमापर स्वतन्त्रता सग्रामका यह अन्तिम एव निर्णायक युद्ध था। इसके पश्चात् इस प्रदेशके विशिष्ट क्रांति सचालक हताश हो नैपालकी पहाड़ियोंमें चले गये।

शांति स्थापित होनेपर क्रांतिके महान् आपत्तिकालमें अंग्रेजोंके प्रति किये गये सौहार्द पूर्ण व्यवहारके उपलक्ष्यमें महाराज दिग्विजय सिंहको तुलसीपुर तथा बाँकीका इलाका उपहारमें दिया गया। १४ मई १८५६ (स० १६१६) को उन्हें 'महाराज बहादुर' की उपाधिसे विभूषितकर अंग्रेजी सरकारने कृतज्ञताज्ञापन किया। २२ सित० १८५६ (स० १६१६) को लार्ड कैनिंगने लखनऊमें अवधके ताल्लुकेदारोंका एक दरबार किया। उसमें महाराज दिग्विजय सिंहको प्रथम स्थान दिया गया। १८६६ ई० (स० १६२३) में आगरा दरबारमें उन्हें के० सी० यस० आई० की पदवी प्रदानकी गई और १८७७ई० (स० १६३४) के दिल्ली दरबारमें १३ तोपोंकी सलामी देकर तत्कालीन राजसमाजमें उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई गई।

अंग्रेजी शासनकी स्थापनाके पश्चात् वास्तवमें महाराज दिग्विजय सिंहके कर्मठ राजनीतिक जीवनका अंत हो गया। इनकी आयुके शेष वर्ष राज्यकी सुव्यवस्था, आमोद प्रमोद, जनहितसाधना, शिकार, तीर्थयात्रा और काव्यचर्चामें व्यतीत हुये।

स० १६१७ में राज्यके सेनाध्यक्ष और नायब जेनरल बेनीमाधव पाण्डेयकी मृत्यु हो गई। उनके स्थानपर लाला रामशंकर की नियुक्ति हुई। स० १६२२ (१८६५ ई०) में वे पृथक् कर दिये गये। इसके पश्चात् महाराजके अनौरस पुत्र जगबहादुर सिंह और उनके सहायक औतार सिंह ने आठ महीने तक किसी प्रकार काम चलाया। अंत में क्षमायाचना करनेपर जेनरल रामशंकर पुनः अपने पूर्व पदपर प्रतिष्ठित किये गये। इन्होंने जीवन पर्यंत अपना कर्तव्य बड़ी तत्परता एव स्वामिभक्तिके साथ पालन किया।

माघ कृष्ण १, स० १६३७ को दिग्विजय सिंह शिकार के लिए बनकटवा

गये। वहाँ तीन महीने ठहर कर उन्होंने समीपवर्ती जंगलों में कई शेर मारे। इसी सिलसिले में चैत्र शुक्ला दशमी को जंगली लताओं में हौदे के फँस जाने से शेर के भय से भागते हुये हाथी की पीठ से गिर कर वे बुरी तरह घायल हो गये। ढलती हुई आयु में लगे भीषण आघात ने उनका शरीर जर्जर कर दिया। इस घटना के बाद महाराज दो वर्ष और जीवित रहे। सं० १९३८ में वे जलोदर से पीड़ित हुए। बलरामपुर और गोंडा के प्रसिद्ध डाक्टरों की चिकित्सा से कोई लाभ होता न देख कर वे लखनऊ गये। वहाँ भी कोई फ़ायदा न हुआ। अपना अंतिम समय निकट जानकर उन्होंने प्रयाग जाने की इच्छा प्रकट की। वहाँ भी कुछ दिनों तक उपचार चलता रहा, किंतु स्थिति दिन प्रतिदिन शोचनीय होती गई। यहीं त्रिवेणी की लोकपावनी धारा में ज्येष्ठ शुक्ल १०, सं० १९३९ को दिग्विजय सिंह ने परमगति प्राप्त की।[1]

---

१ रावाँ निवासी संत कवि ने आश्रयदाता की मृत्यु पर दो छंद लिखे थे, वे नीचे दिये जाते हैं—

निद्धि[9] गुन[3] नन्द[9] चन्द[1] विक्रम के संवत में,
जेठ सुदी दसमी को सनिवार आइगो।
बलरामपुर के महीप दिग्विजै सिंह,
साहिबी समेत 'सन्त' गंगराज आइगो॥

हेम हय हाथी दान दीन्हें द्विज लोगन को
हेरे न मिलत आपु बेनी में हेराइगो।
बिधि लोक गयो कैधौं सिव लोक गयो कैधौं,
विष्णुलोक जाइ ब्रह्मरूप में समाइगो॥

भूप दिग्विजै सिंह जाइकै त्रिवेनी बीच,
पाँच तत्व पाँचौ में मिलायो है विनोद मैं।
'संत' कहै आई धाइ भारती कलिन्दी लिए,
हंस और गरुड़ जान परम प्रमोद में॥

दौरी जन्हुकन्यका लै बैल को विसाल ध्वजा
फैलि फैलि फहरानी दिग चहूँ कोद मैं।
बीचिनि उलीचिनि ते छीनि सिवलोक गई,
गंगा गरबीली लै महीपति कौं गोद मैं॥

आश्रयदाता और कवि

अवध के साहित्य प्रेमी राजाओं मे महाराज दिग्विजय सिंह का विशिष्ट स्थान है। हिंदी सेवा इन्हें अपने पूर्वजों से रिक्थ म मिली थी। इनके पितामह महाराज नवलसिंह और उनके दोनो पुत्र—राजा बहादुर सिंह तथा राजा अर्जुन सिंह बड़े ही काव्य मर्मज्ञ थे। उनके आश्रित कवियों मे अमनी के बंदीजन शिवनाथ और फतूहाबाद (लखनऊ) के मदन गोपाल शुक्ल विशेष उल्लेखनीय है। शिवनाथ कवि महाराज नवल सिंह की मृत्यु के बाद भी बलरामपुर दरबार की सेवा करते रहे।[1] इधर खोज मे इनकी दो कृतियाँ 'रयसा भैया बहादुर सिंह' और 'अर्जुन प्रकास' उपलब्ध हुई हैं। प्रथम ग्रंथ की रचना सं० १८५३ में युद्ध के अनंतर हुई थी और उस अवसर पर महाराज ने रचयिता को पुरस्कार रूप में पर्याप्त धन एवं भूमि देकर संतुष्ट किया था।[2]

---

१ शिवनाथ कवि ने अपना तथा आश्रयदाता का परिचय इन शब्दों में दिया है —

"है ऐसो बलरामपुर, दाता ज्ञाता लोग।
पूरब दिसि बिजुलेस्वरी, हरि करैं तन सोग॥
नदी राप्ती कोस भर, उत्तर दिसा सोहात।
देखे ते पातक कटै, पुन्य अधिक सरसात॥
सात कोस पटनेस्वरी, राजै दिसा इसान।
अवध पचीसो कोस है, दच्छिन को परमान॥
तवन सहर में भूप हैं, नवल सिंह जनवार।
तिनके द्वै सुत दानिया, कवि लोगन पर प्यार॥
भाषा कीन्ही जानिकर, अर्जुन सिंह के हेत।
बानी संस्कृत में रही, सुच्छ कथा सिर नेत॥
महापात्र सिवनाथ कवि, असनी बसै हमेस।
सभा सिंह को सुत सही, सेवक चरन महेस॥

२ जागा औ जागार सब, दीन भूप को सोइ।
नाथ कवीस्वर कहत हैं, अचल राज यह होइ॥
संवत गुन[3] सर[5] बसु[8] ससी[1], भादवँ चोथि विसेषि।
सुकुल पच्छ सुकवार के, फते लराई लेखि॥

—"रायसा महाराज कुमार बहादुरसिंह" की पुष्पिका से

इस ग्रन्थ में नाजिम मुहम्मद अलीखाँ और बलरामपुर के राजकुमार बहादुर सिंह के बीच होने वाले उस प्रसिद्ध युद्ध का विशद वर्णन किया गया है जिसमें बहादुर सिंह ने शत्रु को बुरी तरह हराकर उसकी तोपें छीन ली थीं।

दिग्विजय सिंह ने बलरामपुर दरबार की परम्परागत काव्यचर्चा को निभाया ही नही वरन् व्यक्तिगत रूप से सक्रिय सहयोग देकर उसे विकास की चरम सीमा तक पहुँचाया। उनकी गुणग्राहकता से आकृष्ट होकर सुदूर प्रदेशा से कवि आने लगे। कुछ ही दिनों मे उनका दरबार अनेक प्रतिभा सम्पन्न कविरत्नों से अलङ्कृत हो गया। उनमें प्रमुख थे—गदाधर शर्मा, सत कवि (रीवाँ—मध्य प्रदेश), रघुनाथ कवि, ललित कवि, रसदेव, राम दास, रामस्वरूप और गोकुल प्रसाद 'बृज'। इनके अतिरिक्त राज्य के पुराने कागजात म ऐसे अनेक कवियों के छद सुरक्षित हे जा समय समय पर महाराज के द्वारा पुरस्कृत होते रहे है। ये वाग्वैदग्ध्य पूर्ण रचनाओं से उ हें सन्तुष्ट कर विदाई लेकर चले जाते थे। इनका वृत्त अब जन श्रुतियों में ही शेष रह गया है। इस वर्ग के कवियों की प्रवृत्ति का चित्रण करते हुए एक स्थान पर दिग्विजय सिंह ने लिखा है —

हारे कवि काविद सबै छोडि लाज के चार।
खड़े रहत प्रतिहार सो धन दातन के द्वार॥
धन दातन के द्वार करै पर्वत सो राई।
राई मेरु समान बरनि तेहि बात बड़ाई॥
बात बडाई त्यागि तुरंग त्रिस्ना असवारे।
ढीले लोभ लगाम जगत में फिरत न हारे॥

ऐसे स्वभाव के कवियों को वे साधारण रीति से पुरस्कृत कर चलता कर देते थे। कि तु विदग्ध कवीश्वरो के लिए तो वे कल्पवृक्ष ही थे। उनका सिद्धान्त था—

गुन सोई सुनि रीझिए, रीझि सोइ कछु देय।
देय सोइ जो पाइकै, स्वामि न दूजो सेय॥

इनमे से कुछ कवियों के सम्ब ध की किंवद तियों का उल्लेख आगे किया जाता है।

बलरामपुर दरबारके विख्यात कवि रीवाँ निवासी सत बदीजन के विषय में जनश्रुति है कि महाराज दिग्विजय सिह की गुण ग्राहकता की ख्याति सुनकर जब वे रीवाँ से पहली बार बलरामपुर आये तो उन्हें ज्ञात हुआ कि महाराज शिकारके सम्ब धमें नैपाल पर्वतश्रेणी के निकटस्थ जगलों में डेरा डाले हुये हैं। राजकर्मचारियों से पता लगाकर वे सीधे बनकटवा गये, जहाँ दिग्विजयसिंह का मुख्य आखेट शिविर था। सयोगवश सत कवि को वहाँ भी महाराज के दर्शन न हुये। नौकरों ने बताया कि थोडी दूरपर शेर का शिकार करनेके लिये उ होने मचान

बँधवाया है और उस समय वहीं गये है। सत कविने उनके आनेकी प्रतीक्षा नहीं की। तत्काल ही एक चौकीदारको साथ ले निर्दिष्ट स्थानपर पहुँच गये। उस समय हँकवा आरभ हो गया था। महाराज मचानपर बैठ चुके थे। सिपाहियोके मना करनेपर भी कविराज उनके सम्मुख जा उपस्थित हुये और उ हें सबोधित करते हुए यह कवित्त पढा—

उतरि दुनी गिरि ते हठ सठ लाग्यो साथ,
हाँक्यो है बिसासी मेरी गैयन जनाली कौ।
टारे टर्‌यौ आजु लों न भूपन अहेरिन के,
जिनके अखेट चोट आयो नहीं खाली कौ॥
बिचरत बन देस आयो चलि आपु ओर,
आपऊ मरम ताकि कीजिए उताली कौ।
दारिद दराज मृगराज के ललाट बीच,
दागौ दिग्विजै सिंह दानिका दुनाली कौ॥

कवित्त समाप्त होने पर महाराजने सत कविको पासके एक अ य मचानपर बैठा दिया। थोडी देरके बाद गरजते हुये शेरोंका गोल सामने आता हुआ दिखाई पडा। दिग्विजय सिंहकी गालियोंने उनमेसे एककी जावन लीला किस प्रकार समाप्तकी, इसका वर्णन प्रत्यक्षदर्शी सत कविके ही शब्दोंमें सुनिए—

गैया छोर नाहर की गरजति आवै गोल,
तरजति भीर है हँकैयन जनाली की।
घोर दग घूरत और तूरत जम्हात अग,
टपकत लार भूमि रसना कराली की॥
देख्यो ति हैं आवत अहेरी दिग्विजै सिंह,
की ही 'सत' अद्भुत लाघव उताली की।
चार घरी सेरन के सिरन निसानन मै,
लागीं चोट तड तड तडपै दुनाली की॥

इस सामयिक एव ओजपूर्ण रचनाको सुनकर महाराज बहुत प्रसन्न हुये। शिकारसे लौटकर उ होंने सत कविको यथोचित पुरस्कार दिया और उ हें स्थायी रूपमे अपना दरबारी कवि बना लिया। इनका 'देवीजीका नखशिख' नामक ग्रथ यहीं लिखा गया था।

दिग्विजयसिंहका यह काव्यप्रेम दूर दूर तक विख्यात हो गया। गुजरातके प्रसिद्ध कवि दलपतराय डाहियाभाई नागर—(गुजराती) के पास उ होंने राजकवि गोकुल कृत 'सुतोपदेश' ग्रथ भेजा। इससे सम्मानित अनुभव करके

दलपतराय ने अपनी 'श्रवणाख्यान' नामक कृति इन्हें समर्पित की। उक्त ग्रंथमें इसकी चर्चा करते हुये उन्होंने लिखा है—

महाराज दिग्विजय जू, मो प्रति पठये ग्रंथ।
तिनमें पेख्या पितर का, प्रत्युपकारक पंथ॥
पिता भक्त यहि पुहुमिपर, परमधर्म धुरधीर।
सुन्यौ दिग्विजय सिंह नृप, विश्वविदित वर बीर॥
यों मै पठया यह ग्रंथ सुभ, रचि निजमति अनुमान मै।
महाराज दिग्विजे सिंह के, शारद संग्रह स्थान मैं॥

दलपतराय सौराष्ट्र (गुजरात) के मध्यमें स्थित झाला जिलेके वढवान (वर्द्धमान) नामक नगरके निवासी थे—

सारठ गुर्जर संधि में, जिल झाला राजान।
जन्मभूमि मेरी जहाँ, बसत शहर बढ्वान॥

दिग्विजय सिंहका साहित्य प्रेम मनोविनोदका साधन मात्र न था। उनका राजनीतिक जीवन भी इससे सराबोर था। उनके राज्यका सारा काम हिन्दीमें होता था। प्रार्थना पत्र तो प्रायः पद्यबद्ध हिन्दीमे ही लिये जाते थे और उनपर महाराजका निर्णय भी छन्दोंमे होता था। याचिकाओंकी एक बही राज्यके पुराने कागजोंमें इन पंक्तियोंके लेखकको प्राप्त हुई है जिसकी आरंभिक पंक्तियोंमें लिखा है—

सिद्धि सदन गनपति बदन, करिवर रदन प्रकास।
विघन सघन बन दलमलै, गनि वरदायक दास॥
अरजी गरजी लोग के, लखि कै श्रीमहराज।
छन्न मे दसखत किए, हेतु जथारथ काज॥

इससे कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं—

(१) अर्जी मुंशी छबिलाल की

पॉच पेड फल खान को, मिलो हुकुम के साथ।
सो रोकत यह साल मों, कारन कौन सो नाथ॥
कहत सिपाही बाग मों, पेड तरे ना जाव।
हुकुम लेव सरकार को, तब याको फल खाव॥

दसखत महाराज बहादुर कै

बाबू अमृत लाल, रखवारे को डॉटिये।
अमल करै छबिलाल, अउर हमेसा खाय फल॥

(२) अर्जी बधूराय भाँट

भूप दिग्विजै सिंह के, सरन रहौं सिरनाय।
द्विरद दीह अरि रकता, तहौं सतावत आय॥
कल्पवृक्ष कलिकाल में, नृप से और न काय।
अन्नदान रुचिराज मे, जैसी मरजी होय॥
करहु कृपा महराज, दूरि होय दुख दीन को।
दीजै हुकुम प्रदाज, विद्या अरु भोजन लहौं॥
पाँच मनुज को खर्च है, और न दूजो आस।
चित चिंता में भ्रमित नित, बुधि नहिं करत प्रकास॥
यक सीधा यक मुद्रिका, हुकुम आपु करि दीन।
कछुक दिवस से बद है, तासों अरजी कीन॥
नृप अनुसासन पाइकै, लिखो पढ़ौ मन लाय।
कवि गोकुल परसाद के, सिष्य जू बधूराय॥

दसखत महाराज बहादुर कै

पाछे होइ पढते रहौ, मन में धीरज राखि।
याही में सब बात है, बुधजन की दिढ साखि॥

(३) अर्जी गुमनामा

एक समै अनुराग चले बनिता सब बाग को कीन तयारी।
चोरि कियौ नहिं आम लियौ नहकै पट खालिकै कीन उघारी॥
इज्जति लेत अनीति करैं कर जोरि कहै सब ग्राम कुमारी।
जौ गुपतार किहौ रखवार तौ धन्य अहै दरबार तुम्हारी॥

दसखत महराज बहादुर कै

है न समै बनितान के जाग जो आम के बागन जाइकै डोलैं।
हैं परकी तिय यार के हेत सनेह ते लाज बिना पट खोलैं॥
इज्जति लाज सो हैं अति हीन मलीन सदा अति बातहिं बोलैं।
हे कुटना! जिहि अर्जि लिखी दरबार को काह जु याहि को तोलैं॥

(४) अर्जी गनेस कवि डौंड़ियाखेर (उन्नाव) कै ग्रथ औ बिदाई पाइबे के हेत

सुभ चित्रकलाधर अष्टजाम। रत्नाकर नीति जु अति ललाम।
प्रति तीन मिलैं मोको नरेस। जस बिमल प्रकासों देस देस॥

दसखत महाराज बहादुर कै

सब ग्रथन जुत मुद्रा जु तीनि । जेहि जाचक लहि मति होय पीन ।
कैलासनाथ सो देहु याहि। मुद सहित आपने घरहि जाहि ॥

इन्हीं आवेदन पत्रों के साथ एक पद्यबद्ध प्रार्थना पत्र लछिराम का भी मिला है। ये अमोढ़ा (जिला बस्ती) के निवासी ब्रह्म भट्ट थे। अयोध्यानरेश मानसिंह 'द्विजदेव' बस्ती के राजा शीतला बख्श सिंह, दरभंगा के महाराज तथा गिद्धौर के राजा से इन्हें काफी प्रतिष्ठा एवं धन मिला था। उनके नाम पर इन्होंने अनेक ग्रंथोंकी रचना की थी। इनकी गणना अपने समय के सिद्धहस्त कवियों में होती थी। 'बही' में उपलब्ध सामग्री से विदित होता है कि बलरामपुर दरबार में इनके किसी अशिष्ट व्यवहार से महाराज दिग्विजय सिंह रुष्ट हो गये थे। ऐसी दशा में समुचित विदाई की कौन कहे, महाराज ने इनसे मिलना भी अस्वीकार कर दिया था—

(५) अर्जी लछिराम की

दीजै वर पाखर सहित पील मतग नरेस ।
पटभूषन जुत पाइकै नाम होइ सब देस ॥

दसखत महाराज बहादुर कै

प्रकृति पीछे एक मुद्रा पाइकै घर जाहु ।
देस आटन करहु आछी भाँति जामे लाहु ॥
पडितन सो काव्य की विधि जानि लीजै सोधि ।
वृथा बकिबो जो निरर्थक ताहि को अवरोधि ॥
है जु विद्या को विनय भूषन महा सुभ वेस ।
ताहि मन वच करम ते धारन करौ अकलेस ॥

फेरि दर्सन के अर्थ विनती लछिराम की

अब सुनि श्री महराज, अरज बेगि लछिराम की ।
करिय बिदा कर साज, अवध जाहुँ आनद जुत ॥
गुरु नृपतिन की रीत छमाकरत आरत बचन ।
गनत न मन अनरीति, पालत फिरि आनंद करि ॥

तापै महाराज को दसखत

अब नहिं दरसन जोग, अवध जाइ सीखौ विनय ।
तजि कठोरता रोग, फिर आवहु तब मिलहिंगे ॥

(६) अर्जी रघुनाथ पडित तेवारी कै हेत जड़ावरि

भानु रूप भूपति को भाव।
पद दीजै अब सीत सताव ॥

दसखत महाराज बहादुर कै

आह्वान अगिनि बस कहवावैं। ताके ढिग हिम कबहुँ न आवै।
पर जाचन ते मिलै जडावर। सोभा हेतु वस्त्र सुदर वर ॥
सुकुल गिरिवर नाथ ते पैहो जडावरि जाहि।
जाइ वापै जॉचिये अब देर कीजै नाहिं ॥

काव्य रचना

महाराज दिग्विजय सिह कवियों के आश्रयदाता होने के साथ स्वय भी कविता करते थे। उनकी लिखी हुई कुछ फुटकर रचनाये 'नीति रत्नाकर' में गोकुल कवि ने सकलित की हैं। उनका पूरा नाम 'दिग्विजय सिह' छ दो म सरलता से नहीं बैठता था अत वे अपनी कृतियो में 'भूपविजै' अथवा 'विजै भूप' छाप रखते थे—

नाम दिग्विजै सिह प्रगट, विजै भूप धरि नाम।
पद कोमलता कवित हित, आरोपित अभिराम ॥

जन श्रुतियों में उनके आशुकवित्व और प्रत्युत्पन्नमतित्व के भी प्रमाण सुरक्षित हैं। कहते हैं कि एक बार महाराज राजसी वेष भूषा में अगरक्षकों के साथ घोड़े पर किसी उत्सव में सम्मिलित होने जा रहे थे। रास्ते में किसी साधु ने उन्हें सुनाकर कहा—

'प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं'

महाराज ने तत्काल ही इसके उत्तर में निम्नाकित अर्द्धाली बनाकर सुनाई—

"जो प्रभुता जानत परछाहीं। प्रभुता पाइ ताहि मद नाहीं ॥

दिग्विजय सिंह की कविताओं का मुख्य विषय नीति है। एक शासक के रूप में उन्होंने इस प्रकार की रचनाओं में अपनी अनुभूतियाँ बड़े मार्मिक शब्दों मे व्यक्त की हैं। इससे उनका तत्कालीन सामन्तीय जीवन का गहरा व्यावहारिक ज्ञान अभिव्यक्त होता है। इनकी काव्य शैली की सबसे बड़ी विशेषता है अवध में प्रचलित लोकोक्तियों और मुहावरों का छदों में सटीक प्रयोग। इसी से इनके द्वारा प्रयुक्त भाषा की प्राजलता एव प्रवाहात्मकता का

अनुमान लगाया जा सकता है। जीवन के विविध पक्षों से सम्बद्ध इनकी कुछ सूक्तियाँ बहुत ही हृदयग्राही हैं। ऐसी रचनाओं मे यद्यपि काव्यात्मकता की अपेक्षा इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता रहती है फिर भी रहीम, गिरिधर और वृंद की तरह वे अनुभव सिक्त एव ज्ञान वर्धक हैं। इस सन्दर्भ के अंत में दिग्विजय सिंह की रचनाओं का एक संक्षिप्त संकलन दे दिया गया है, जिससे पाठक स्वय उनकी प्रतिभा का मूल्यांकन कर सकें।

सभासद एव कृपापात्र

महाराज दिग्विजय सिंह के सभासदों एव परिचितों का विवरण गदाधर के 'दिग्विजयचम्पू', मदनगोपाल शुक्ल के 'अर्जुन विलास' और गोकुल के 'दिग्विजय प्रकास' मे मिलता है। इनके अतिरिक्त महाराज भगवती प्रसाद सिंह के आत्म सचिव स्व० ठा० बलदेवसिंह बी० ए० द्वारा लिखित महाराज दिग्विजय सिंह के जीवन वृत्त से भी इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। सुविधा के लिये ये तीन वर्गों में विभक्त किये जा सकते हैं—

पंडित एव कवि वर्ग—

क—पंडित विश्राम सरवरिया (महाराज के मंत्र गुरु) २—पं० राजेश्वरी दत्त तांत्रिक ३—पं० रामानंद (पं० गदाधर शर्मा, गोकुलके काव्यगुरु,के पुत्र) ४—पं० लक्ष्मीनारायण पौराणिक।

ख—कवि १ गदाधर शर्मा २ मदनगोपाल शुक्ल ३ रामदास ४ गोकुल प्रसाद 'बृज' ५ रतन कवि ६ रामकवि ५ लालूराम पांडे ८ रामस्वरूप ६. पं० देवी प्रसाद (परमहंस दीनदयालगिरि गोसाईंके शिष्य और गोकुलके गुरुभाई)

प्रतिष्ठित नागरिक एव मित्र वर्ग—

१ जेनरल मातिवर सिंह (प्रधान मंत्री नेपाल) २ राणा जगबहादुर (प्रधान मंत्री नैपाल) ३ पांडे रामदत्तराम (गोंडा) ४ राजा उदित नारायण मल्ल (मझौली) ५ राजा हुबदार सिंह (खपराडीह) ६ दीपसिंह (निजामाबाद) ७ सर विलियम स्लीमन (रेजीडेंट—अवध) ८ सर चार्ल्स विंगफील्ड (चीफ़ कमिश्नर बहरायच, अवध) ९ छाँगुर मिश्र (बलरामपुर) १० गुरु बख्श गोसाईं (बलरामपुर)

सभासद एव मुख्य राज्य कर्मचारी—

१ नलसिंह (नायब) २ बेनी माधव पांडे (नायब) ३ जगबहादुर सिंह तथा औतार सिंह गौरहा (नायब) ४ लाला रामशंकर (नायब) ५ किसुन

दत्त सिह (सेनाध्यक्ष) ६ केशरीदत्त सिंह गौरहा ७ जगत पाल सिंह बनवार ८ सुरजू सिंह बिसेन ६ दौलतराम (दीवान) १० मुशी दयाशकर (वकील) ११ जगतमणि त्रिपाठी (मुसाहेब) १२ सिवलाल पाडे (मुसाहेब) १३ मुशी माधव दयाल (मीरमुशी) १४ शिवचरन लाल १५ महादेव सिंह (आत्म सचिव) १६ मिर्जा अलीहसन (अनुवादक) १७ मुशी जवाहिर सिंह (मुसाहेब) १८ देवी प्रसाद (बखशी) १६ बिजुलेश्वर' पाडे २० मुशी प्रियालाल (प्रेस मैनेजर) २१ रामलाल चक्रवर्ता (चिकित्सक) २२ विश्वनाथ (प्रधानाध्यापक) २३ सैयद आकाहसन रिज़वी (मुखरिख तथा बख्शीगीरी अफसर) २४ बा० दुर्गाप्रसाद (इजीनियर) २५ सैयद मेहदी हसन (वीणा शिक्षक) २६ मुशी अब्दुल हकीम (शतरज शिक्षक) २७ जगतसिंह (अखबार नवीस) २८ मुशी दयाशकर काश्मीरी (अंग्रेजी कानून के विशेषज्ञ) २६ बहादुर लाल (राजदूत) ३० दौलत राय (दीवान) ३१ मुशी साहेबराय (अरबी फारसी लेखक) ३२ मेवालाल (मुसाहेब) ३३ दूलम अहिर (सेवक)



महाराज दिग्विजय सिंह की स्फुट रचनाओं का संग्रह

राजा—देस दल कंज सो विकासै कर मंजु फेरि,
चोर बटपार जार जामिनि हीं सो हरै।
भ्रमर सों भ्रम दुख दीन के मिटावै देखि,
छ्वैपी बदकार को अलोक कोक सा भरै।
किरिनि सो ठौर ठौर दूत को पसार कीजै,
भनै 'विजय भूप' मान दान रीत सों भरै।
राजा सो अजीत जग अविचल राजै राज,
भानु कैसी रीति सदा राजनीति जो करै॥

राजनीति—पतित बिना क्यहि तारि हरि, बिनु हरि पतित को तार।
रीझि बिना गुन को गहै, बिनु गुन को रिझवार॥
बिनु गुन को रिझवार, बिना विद्या के बूझै।
बिना बूझि बुधि मंद, बाल विद्या नहि सूझै॥
नहिं सूझै खल खीझि, भनै यह 'विजय महीपति'।
प्रजा छीन नृप बिना, प्रजा बिन दीन प्रजापति॥

मन्त्रिनसों बूझि मन्त्र आपहूँ विचारै मंजु
तामे नेक जानि हानि लाभ हेत राखै सो।
करै न रहम न्याय समै भनै 'विजय भूप'
दान किरवान बलवान सत्य भाखै सो॥
कोटि करि कान सुनिबे को फिर आदि दीन
देस दल मानै काढ़ै बदकार औरै सो।
हाथी हथियार घोड़े भूपन औ भूमि जाड़े
राखै भूप लीन्हो रुचि लाखै अभिलाखै सो॥

आप सम जानै सद सौंपै सो सयानो काम,
सदा सावधान परतीति ताहि राखै जो।
भाषा देस देसन के बूझिबे की राखै बूझि,
भूषन बसन नयौ नित अभिलाखै जो॥
फिरि आवै एक बार बरस समै देश निज,
भनै 'विजय भूप' रीझि देइ मौज लाखै जो।
जोरि के समाज साज बैठे देखै राजकाज,
लच्छन ये स्वच्छ कवि राजन के भाखै जो॥

सभा समुद्र समान, गुन ऐगुन पय पानि है।
भूप हस अनुमान, खीझ रीझ बद नेक लखि॥
राजनीति औषध अमल, दान मान जल धोइ।
हग अजन रजन करै, तौ मद अध न होइ॥

राजनीति राजन को दिन प्रति 'विजयभूप'
चारि घरी राति रहे इतनो बिचारिबो।
छोटे छोटे फूलन को भीने सो फौवार करै,
पातरे जो पौधा पानी पोषि करि पारिबो॥
फलै जो अधिक फल चुनि गुनि लीजै ताहि,
घने दरखत एक ठौर ते उपारिबो।
नै ने परै पायन ते टेक दै दै ऊँचो करै,
ऊँचो बढि गए सो जरूर काटि डारिबो॥

चाकर— चाकर चारि प्रकार के, करि तन मन सों एक।
एक दरमहा बग्न हित, काज देखाय अनेक॥
काज देखाय अनेक, एक जस लाभ करैं तस।
'विजय भूप' भनि नीति, रीति यह एक करै अस॥
करै एक कछु नहीं काहली लेन में आकर।
उत्तम मध्यम अधम चौथ अधमाधम चाकर॥

उत्तम मन्त्री—देस और विदेस ही की खबरि को राखै खोज,
आमद खरच रोज देखै भोर साम को।
भनै 'विजय भूप' राजी राखे रहै देस दल,
डिगै न डिगाए नेकु पाये कोटि काम को॥

याय समै एक दीठि गनी औ गरीब देखि,
पीठि दै अनीति ईठि राखै नेक नाम को।
मन्त्री मतिवंत आदि अंतको बिचारै मंत्र,
आपनो बिगारि जो सँवारै स्वामि काम को॥

मध्यम मन्त्री—आदि अंत हेत हानि लाभ को बिचारि लेत,
देस काल देखि मंजु मंत्र ठहरावै जो।
बात न बिचल भाखै अबिचल राखै चित,
लखि बद नीति भाखै नीति बल भावै जो॥
निरालसी जसी बुद्धि उर मैं उदार बसी,
भनै 'विजय भूप' देस दल को बनावै जो।
सदा सावधान स्वामि काम को बनाय पाछे,
समै पाय पाछे कछु आपनो बनावै जो॥

अधम मन्त्री—कौडी पै कनौडे द्वार दौडे फिरैं कूकुर सों,
खोवैं जो पचास आस पाये पाँच दाम जो।
जासों लघु लाभ देखैं ताहि की न पूछैं बात,
पाये बिन काहू के न करै भलो काम जो॥
भनै 'विजय भूप' नीति रीति की न राखैं ख्याति,
लीबो अनरूप परजा को धनधाम जो।
स्वामी को बिगारि काम आपनो सँवारि धाम,
वोई बदकार मन्त्री होत बदनाम जो॥

अधमाधम मन्त्री—
आमद खर्च न खोजै कभौं नट औ बिट कौतुकी लोग पियारै।
पाहन रेख सो बैर निबाहनो नीर के रेख सी नीति बिचारै॥
'भूप विजय' भनि मूत मिठाई सी कौल सचाई सों मन्त्र बगारै।
स्वामि को धाम बिगारि सबै फिरि आपनो काम तमाम बिगारै॥

सेनापति—निरालसी बसी बुद्धि उर मैं उदार ऐसी,
जग मैं सयान बाहु बीर मै बखान है।
परधन परदार केहूँ न बिचार करै,
भनै 'विजय भूप' शस्त्र विद्या में विधान है॥

कादरै निगदरै जो आदरै सिपाह स्वच्छ,
सेना के सँवारिबे मे दच्छता सयान है।
गनी औ गरीब देखे चाव करै चमूपति,
दाग किरवान सो न छोडै मयदान है॥

वकील—मामिला की चोज हेरि लेत गहि गाढे ऐसे,
सपति ज्यौं गहि राखै बुद्धि जो बखील की।
भनै 'विजय भूप' अग इगित सों जानि लेत,
बातपर ही की बोलै बानी सुभ सील की॥
देस परदेस ही की खबरि की राखै खोज,
आपनो न भेद भाखै काहू सो न ढील की।
राखत रुआब बडा समुझै सिताब बात,
हाजिर जवाब देवै अकिल वकील की॥

कवि— अनुभव बुद्धि नवीन जुक्ति धरि, उत्तम कवि सो होय।
पर आखर को त्यागि अर्थ गहि, कवि मध्यम कहि सोय॥
पद धरि वहै अर्थ नहिं दूजा, कहौ अधम कवि भाव।
पर कवित्त मे नाम धरे निज, अधमाधम कवि गाव॥

कोविद— प्रतिभा मति वितपति परम, शास्त्र सकल अभ्यास।
अर्थ विचारै सत असत, कोविद बुद्धि प्रकास॥

उत्तम पच—बार बार करिबा विचार भनै 'विजयभूप'
बूझि अनबूझिबे की सीमा सावधान सों।
हस अवतस मति नीर छीर को विवेक,
नेक बद जानि लेत बुद्धि अनुमान सों॥
न्याय समै राजा रक करे सनमान सम,
भाषत निदान धर्म बेद के विधान सों।
बात पच्छपात की न रंच प्रतिपाले जोई,
सोई पच पॉच परमेश्वर समान सों॥

मध्यम पच—चाव चापलूसी चोज चुपरी चलावै बात,
मुख देखि कहै रहै दापी देखि राजी सों।
आदरै गनी को औ निरादरै गरीब हूँ को,
बाघ औ दिखाय सॉच लिखै हारि बाजी सों।

भनै 'विजय भूप' करै वादो प्रति पच्छपात,
देखि दबि जात दरबारी कामकाजी सों।
कौड़ी पै कनौड़े न्याय छाड़ै भारो गाड़ै भाय,
रचै परपंच किये पंच होयँ पाजी सों।

लोकनीति—गुनी लोग ह्वै बड़े, ठाड़े पै धनी द्वार पर।
धनी न कहिये ताहि, नाहिं कहि लखो दीन नर॥
नाहिं नीक पिय बहै, कहै जग नई नारि मुख।
नारि सलोनी साथ, स्वामि को सेय परे दु ख॥
दु ख ह्वै सुखद समान है, जा पै थोरे दिन रहै।
पहिचान रूप हित अहित को, 'विजय भूप' कोविद कहै॥
पीजै विष आदर निरादर की अमी त्यागि,
करिबे को आजु तौन काल्हि गत कीजिये।
कीजिए तौ पहिले ही हानि लाभ सोच करि,
करि पछिताइ पाछे कूर मानि लीजिये॥
लीजिए न साथ दास उत्तर जा देनहारो,
भनै 'विजय भूप' दान दारिदी को दीजिये।
दीजिए न अत उर अतर की बात काहू,
गुरु कीजै जानि पानी छानि तब पीजिये॥

थल मानस मैं सतसंगति बीज जमाइयो दै जलरीति महान की।
सुभ साख बढ़ाइयो धर्म ह्व की छिति छाँह बराबरि याय निदान की॥
नवनीति को पात समै सो करै परसून प्रकास विवेक विधान की।
भनि 'भूप विजय' फल नेक लहै परबुद्धि सदा सुख बुद्धि लतान की॥

बे विचारी आलसी न कीजिये रसोइँदार,
दारिदी न पाँति मैं परोसै पनवारे को।
भनै 'विजय भूप' हेम हरम खजाने पास,
राखिये न दास जो रहत डर डारे को॥
देसकाल चाल को सिखाए करै ख्याल ज्वाब,
ऐसे न वकील जावै मामिले किनारे को।
जीते हँसी हारे लाज ताहि सौं बचावै आप,
मुलकी न काम दे अँकोर लेन वारे को॥

चिंता के बढ़त चित घटै बल बुद्धि काम,
काम जो बढ़त उपहास जग ठानि है।
क्रोध के बढ़त ज्ञान बोध का न रहै साध,
लोभ के बढ़त जात मान आनजानि है॥
भनै 'विजय भूप' पाप नै बेस बस नासै,
बाल्त अनीति प्रजा नसि नृप पानि है।
दया धर्म दान कर्म चारि बढ़े च्यारि फल,
रारि रिपु रिनि रोग बाढ़े बड़ी हानि है॥

ऊँचे आसमान के उडन हारे जे विहग,
बाझि जात जाल में समेत निज गोत जो।
गहन गभीर में मतंग माते बाँधे जात,
मारे जात मीन पानी पारावार सोत जो॥
भनै 'विजय भूप' राज समै बन गए राम,
सीय का कलंक लागा महिमा उदोत जो।
हानि लाभ नेक बद कौन के अधीन जग,
होन अन होनहार होनहार होत जो॥

होनी जैसी जाहि की, तैसी मति ह्वै जात।
है कराल गति काल की, को जानै यह बात॥
को जानै यह बात, लाभ अरु हानि अजस जस।
'विजय भूप' भनि दोष और मति देइ रोष बस॥
मति देइ रोष बस दान तोष धरि बिच्चरै ज्ञानी।
अनहोनी नहि होइ होइ जो होवै होनी॥

वह नाहि संपति जो सूम ही के लागै हाथ,
वह नाहि मीत समै परे मुख मोरे ते।
भनै 'विजय भूप' याय बिना राज रहै नाहि,
वह नाहीं दया बिना दीन दुख छोरे ते॥
वह नाहि बुध विद्या पढ़त मै करै तोष,
वह नाहि संत बिना लोभ ताग तोरे ते।
कादर न होय सूर बाँधे हथियार भूरि,
कूर कब होय कवि च्यारि तुक जोरे ते॥

गुर से कपट त्याग सत सँग चारी त्याग,
बड़े सँग बैर त्याग स्वाद त्याग रोग मै।
पञ्च त्यागै पच्छ परपञ्च परबीन त्यागै,
मान त्यागै मगन औ प्रान प्री वियोग मैं ॥
भनै 'विजय भूप' पर स्वारथ में सत्य त्याग,
आरत में कर्म सुभ लोभ त्याग भाग मे।
त्यागिये कुसग लाभ छोह छाया बैरी सग,
चोर सग दाया माया मोह त्याग जोग मैं ॥
साधु मन लोभ व्याधि कवि हठताइ व्याधि,
मित्र मन छोभ व्याधि बैर व्याधि भाई को।
भागिहि अरुचि व्याधि रागिहि सुरुचि व्याधि,
राजहिं अनीति व्याधि दीह दुखदाई को ॥
भनै 'विजय भूप' मञ्जु मत्री को अँकोर व्याधि,
सेवक के व्याधि स्वामि सेवा अरसाई को।
दान कृपिनाइ मैदान कदराई व्याधि,
सकल उपाधि व्याधि व्याह बिरधाई को ॥
जब लाख दिये कछु लेखे नहीं अब लीज लिये किन सोचिए ठाकुर।
अब प्रीति पुरातम तारिए ना मन मोरिए ना मति हजे न आतुर ॥
भनि 'भूप विजय' इती बातन में न बिगार करै जग में चित चातर।
सब आपने हाथ है आपनपौ तजै पाँचाई मीत पचासाई ठाकुर ॥
आगि मैं जरत कल काति कलधौत पावै,
सूर रन लडै लहै जीति जस मूल है।
घिसे मनि सान दुति दीह को प्रकास करै,
हीरा घन चोट सहे कीमति अतूल है ॥
भनै 'विजयभूप' देखौ रूख पतझार होत,
फेरि फूलै फरै उनै परते समूल है।
सिर को कटाइ फूल फूलत हजार दल,
बिना सहे दुख सुख सबै पतिकूल है ॥
आप गुर पडित गुनी, दिज हरिजन हित नात।
सनोमान को को कहै, एक न पूँछै बात ॥
एक न पूँछै बात, बराबरि कौन हमारे।
सूझि परै नहिं बूझि, रहत है ज्या मतवारे ॥

मतवारे सो होहि एक आये एक पाए।
अंध बधिर मति मंद होत मानस मद आए ॥

राजा हरिचंद परहेत बिके डोम घर,
सहे दुख फेरि लहे गति हरि धाम को।
दान दिए बलि बाँधे बामन जू नापे पीठि,
दुर्लभ दरस फेरि पाए द्वार राम को॥
भनै 'विजय भूप' अनुरूप कै त्रिलोकी लोक,
करै जो निकाइ तौ भलाई परिनाम को।
नेकी किए जो पै दुख सहै रहै थोरे दिन,
रहि जैहै सदै जग नेकी नेक नाम को॥

समै साँकरी जाहि सिर, परै आय दुख भीर।
'भूप विजय' भनि भाव यह, सो जानै पर पीर॥
गुन सोइ सुनि रीझिए, रीझि सोई कछु देय।
देब सोई जो पाइकै, स्वामि न दूजो सेय।
बैरीगन मगन निरखि, करि विनोद सुभ साभ॥
तब तन मन धन देन को, काजै लोभ न छोभ॥
सबै दिवस बसि नींद के, रैन भूख दिन मानि।
कहाँ कुसल यहि देस की, जो नरेस यहि बानि॥
गुनह गुनाही लोग जो, गुनी गूढ़ गुन भाखि।
एक निकारै आँखि सो, एक लाख दै राखि॥
सुख सपति परनीन की, ता दिन परिहै जानि॥
जा दिन कायर कूर की, बात सुनै दुख दानि॥
बक्ता बकि कै का करै, श्रोता कान न देइ।
नेह नपुंसक नारि को, बिरल होत तेहि सेइ॥
है नेरे पै दूरि बहु, जहँ दुराव मन कीन।
बसै दूरि सो ढिग अहै, जा मन मन में लीन॥

गोपीविरह—

हरि हार हूँ को न बिहार मैं अंतर चीठिहू का लिखिबो उबठोई।
सँग भोग बिलास बिहार किए सुधि जाग सिधावन आये भलाई॥
भनि 'भूप विजय' हित हेत लिये चित चेत किये इतनो दिन खोई।
सखि साँझ भुलान जो भोरहि आवत ताहि भुलान कहै नहिं कोई॥

कोमल गुलाब दल सेज सोए तूरो देह,
काल कमण्डले दै लि ई कियो गाढ़ो ताप।
घने धारासार तर गिरो । मन्त ताप
ताहि को तपागो चह्यो पाँचऊ अगिनि चाप ॥
भो 'विजय भूप' भाग कुबरी कुरूप संग,
ब्रजबाला जाग जाग सदा स्याम के अ ताप।
थोरा मति दीजे राय काह करि कीजे ऊधौ,
आपनो जो माल खोटो कोन परखैये दाम ॥



आचार्य कवि गोकुलप्रसाद 'बृज'

जन्मतिथि—चैत्र कृष्ण १, सं० १८७७

जन्मस्थान—बलरामपुर (जिला गोंडा—उत्तर प्रदेश)

प्रधान आश्रयदाता—महाराज दिग्विजय सिंह, बलरामपुर

काव्यगुरु—पं० गदाधर शर्मा

परमहंस दीन दयाल गिरि गोसाईं, काशी

देहावसान—वैशाख शुक्ल ६, सं० १९६९

गोकुल कवि का जीवनवृत्त

गोकुल श्रीवास्तव कायस्थ थे।[1] इनका जन्म चैत्र कृष्ण १, सं० १८७७ को[2] बलरामपुर नगर (जिला गोंडा) के बलुहा मुहल्ले में हुआ था। इनके पिता का नाम भाई लाल और पितामह का रंगीलाल था। अपनी कुल परम्परानुसार घर पर हिन्दी और फारसी का साधारण ज्ञान प्राप्त करने के बाद इनकी इच्छा संस्कृत पढने की हुई। कुछ काल तक अभ्यास करके इन्होंने उसमें अच्छी गति प्राप्त कर ली। इनके अतिरिक्त नैपाली, द्रविड, पंजाबी, भोजपुरी आदि भाषायें भी इन्होंने सीखी थीं और उनमें सरलता पूर्वक काव्य रचना कर लेते थे।[3] इन दिनों बलरामपुर के निकट राप्ती नदी के उत्तरी तट से एक मील दूरी

---

१ श्रीवास्तव कायस्थ कुल, गोकुल हरिजन दास।
नृप सेवा करि मति लह्यो, कोविद बुद्धि प्रकाश॥
(अष्टयाम प्रकाश)

२ संवत रिषि मुनि नाग ससि, संवत सोहत स्वच्छ।
नखत रेवती लगन झष, गोकुल जन्म प्रतच्छ॥
(शक्ति प्रभाकर)

३ फारसी—

हुमा हिदायत हसब बार जमशेद सुलेमाँ।
रुस्तम बाशद खिजल शाम सोहराब नरामाँ॥
वार गीर शमशेर बुमैदाँ जग बुमायद।
सर गनीम अफगनद बुपादर खस्म बु आयद॥
'ब्रज' आफताब अकलाब चूँ, जहाँ ताब हर दर पगह।
राजाधिराज दिग्विजै सिंह, कुनद कार बाहर निगह॥
(अष्टयाम प्रकाश पृ० १०४)

पहाड़ी भाषा—

कहा जान छौ अकले माँझी भनछन कूडा जौन।
माथी फाटा मग ठग फालै बड़े सिपैल्ड तौन॥
रैहो रामडे भोली जाउला देउला सीसा पानि।
हम पनी पोइले येक न गोदा केटी केदा मानि॥

पर स्थित समगरा ग्राम में प० गदाधर शर्मा नाम के एक विद्वान् रहते थे। काव्यशास्त्र के अध्ययन अध्यापन में उनकी बड़ी ख्याति थी। गोकुल उनके शिष्य हो गये। गुरुकृपा और अपनी असाधारण प्रतिभा से ये शीघ्र ही काव्यांगों के निष्णात पंडित हो गये।[1] कविता करने का अभ्यास भी साथ साथ चलता

पूरब देस (भोजपुरी) भाषा—

चमकल बाय मोर मथवा पखल धैले,
ओडा एक गाँव के गदेलवा ले आइल।
हरकिखि मोर परदनिया वोकर बड़ो,
पवरल कीन्हें हाय हथवा कँपाइल ॥
कहली मैं फुर काह देखली तिरीवा 'ब्रज'
मैभा औ गोसैयाँ भैया किरिया मैं खाइल।
भोरवा के भैल मैं घैलवा लै गैला बाटा,
बाट पनिघटवा छयलवा भेटाइल ॥

दच्छिन देस भाषा—

कन्नू तुक चिन्बी न हूची पूकालू सोहै।
मोरू पड़ पेचि पेदि वानू जुरगोलु जोहै ॥
गुड्या च यई गोलु गोलुका तोडलू दड्डू मोहै।
भगार मवेडी के भूषन बट्टा अंग बिमोहै ॥

पछाँह देस (पंजाबी) भाषा—

वड्डे की वड्डिआइया सुणी सब्बे ठाँव।
रहला तुढा पगुला देणी अक्खै पाँव ॥
देणी अक्खै पाँव लख्य ने कुलल उधारे।
धन्य जनेगा माय कूड तजि नाम पुकारे ॥
जित्थै तित्थै लक्खिया किन 'बृज' चंगे मनमुखी।
ना लइआने करणिय तुड्डे होणी गुरमुखी ॥

—अष्टयाम प्रकाश पृ० २०–२१

१ सुबुध गदाधर शर्म को, विद्या गदा प्रहार।
नहिं कोइ कवि कोविद भयो, सहनशील सभार।
तासु निकट विद्या पढ़े, भूरि शिष्य मतिमंत।
तिनमें एक गोकुल भयो, रचना में बलवंत ॥

रहा। छ दों में ये अपनी छाप 'ब्रज' रखते थे।[1] काव्य रचना में रुचि देख कर इनके चचा अपने साथ इ हें महाराज दिग्विजयसिंह के दरबार मे ले जाया करते थे। महाराज की गुण ग्राहकता से आकृष्ट होकर दूर दूर से आने वाले कवियों का वहाँ नित्य जमघट लगा रहता था। इस साहित्यिक वातावरण मे गोकुल की काव्य प्रतिभा के विकास का अच्छा अवसर मिला। धीरे धीरे अपनी रचनायें ये महाराज को सुनाने लगे। छोटी आयु मे ही लिखे गये इनके उक्ति वैचित्र्य पूर्ण छ दों को सुन कर दरबार में उपस्थित लोग आश्चर्य चकित हो जाते थे।

परमहंस दीनदयाल गिरि की ख्याति सुन कर ये अध्ययन के लिए काशी गये और उनकी छत्रछाया में रीतिशास्त्र का विधिवत् अनुशीलन किया[2]। काव्य शिक्षा समाप्त होने पर काशी से गोकुल पुन अपनी जन्मभूमि बलराम पुर को लौट आये और राज्य में नौकरी कर ली। इनकी प्रथम नियुक्ति कटरा और पहाड़ापुर के कोतवाल पद पर हुई। सिंहा चदा (जिला गोंडा) के ताल्लुकेदार कृष्णदत्त राम पांडे से इनका परिचय इसी समय हुआ। उनके प्रीत्यर्थ इ होंने 'कृष्णदत्तभूषण' नामक अलकार ग्रथ की रचना की। इस पद पर कुछ ही वर्ष कार्य करने के पश्चात् त्यागपत्र देकर ये तुलसीपुर (गोंडा) के राजा दृगराज

सुगुरु कृपा पायूष पिय, प्रतिदिन करि अभ्यास।
साहित्यागम सिंधु मथि, रतन लह्यो अनयास॥

—दिग्विजयभूषण की भूमिका, पृ० १

प० गदाधर शर्मा महाराज दिग्विजयसिंह की बाल्यावस्था में मुख्य सरक्षक और राज्य के प्रबन्धक रह चुके थे। इनका एक हस्तलिखित ग्र थ 'दिग्विजय चम्पू' प्रस्तुत लेखक के सग्रह में है।

१ श्रीवास्तव कायस्थ कुल, गोकुल नाम प्रतच्छ।
कहुँ कवित में 'ब्रज' धरे, छद बनै जेहि स्वच्छ॥

२ श्री गुरु दीन दयाल गिरि, परमहस अवतस
पाये जा पदप्राप्ति सों, कवित रीति सारस॥

परमहस अवतस जासु जस जग अस राजै।
विलसै विजै विभूति, विरति विज्ञान विराजै॥

राजै विजै विभूति जाहि के दरसन पाये।
काव्य कलानिधि रूप भूप कवि पार को जाये॥

—चित्र कलाधर, पृ० ४–५

सिंह के आश्रय में चले गये। वहाँ इन्हें आकेपुर के इलाके में मालगुजारी वसूल करने का काम मिला। उन दिनों बलरामपुर और तुलसी पुर राज्या के बीच काफी तनातनी चल रही थी। दिगराज सिंह के व्यवहार से भी ये असतुष्ट थे। अत महाराज दिग्विजय सिंह के आमंत्रण पर तुलसी पुर राज्य की नौकरी त्याग कर स० १९०५ से गोकुल बलरामपुर नरेश की सेवा मे लग गये।[1] महाराज ने पहले इन्हें फूलपुर (जिला बस्ती) में भवन निर्माण के निरीक्षक पद पर नियुक्त किया। उस कार्य के समाप्त होने पर ये सीर के अफसर बनाये गये। दिग्विजय सिंह ने इनकी काव्य शक्ति पर मुग्ध होकर थोड़े ही दिनों बाद माल विभाग से स्थानान्तरित कर इन्हें अपने दरबार के कर्मचारी वर्ग में स्थान दे दिया। महाराज का निजी पत्र व्यवहार और तोशक खाना की देख भाल—इनके जिम्मे यही दो कार्य सौंपे गये। इस प्रबन्ध के फलस्वरूप गोकुल को अपनी रुचि के अनुकूल काव्यसाधना में अधिक समय मिलने लगा। इनकी नौकरी के शेष वर्ष इसी पद पर कार्य करते व्यतीत हुए। महाराजने इनकी साहित्यिक सेवाओं से प्रसन्न होकर दो गाँव पुरस्कार में दिये, जो बहुत दिनों तक इनके वंशजों के अधिकार में रहे।

इन दो आश्रयदाताओं के अतिरिक्त गोकुल कवि गोंडा (गोंडा) के राजा अचल सिंह और पयागपुर (बहराइच) के ठाकुर विजयराज सिंह के भी कृपापात्र रहे है। उनके लिये इन्होंने क्रमश 'अचल प्रकाश' और 'महावीर प्रकाश' की रचना की थी। किन्तु ये उनके यहाँ किस समय और कितने दिनों तक रहे, यह ज्ञात नहीं।

गोकुल के पारिवारिक जीवन विषयक जो तथ्य प्रकाश मे आये है उनसे ज्ञात होता है कि इनके पिता का देहावसान पहले ही हो चुका था, किन्तु माता स० १९०५ तक जीवित रहीं। बलरामपुर राज्य के पुराने कागजों में इनका एक आवेदन पत्र और उस पर महाराज दिग्विजय सिंह का पत्रबद्ध आदेश प्राप्त हुआ है, जिसमें माता की मरणासन्न स्थिति मे सेवा के लिये छुट्टी की प्रार्थना की गई है। उसकी प्रतिलिपि नीचे दी जाती है—

"दरखवास्त गोकुल प्रसाद की। माता, उनकी मृत्यु सन्निकट है याते सेवा करै के घर रहिबे के लिये।"

---

1 बुधि विधा दुइ चन्द्रमा, सोहै भादौं मास।
महाराज दिग्विजै सिंह, बोलि पठै निज पास॥

दसखत महराज बहादुर कै—

मातु पिता तीरथन सों, अधिक कहत सब लोग ।
ताते मन बच कर्म ते, इनको सेइब जोग ॥
आपद काल विशेष है, औषधि जतन बनाइ ।
याते तुम घर में रहो, पुत्र धर्म को पाइ ॥

गोकुलके तीन विवाह हुये थे। इनकी प्रथम पत्नी फुलवरिया गोपालपुर (जिला बहरायच) के निवासी मुंशी पहलवान लाल की पुत्री थीं। दूसरा और तीसरा विवाह बलरामपुर के निकटवर्ती शाहडीह गाँव के लाला कबीरदयाल के यहाँ हुआ था। इन पत्नियों से इनके चार पुत्र हुये—लाल साहब, सुंदर लाल, दूधनाथ और प्राणनाथ। दैवयोग से इन चारों में से किसी का भी वंश नहीं चला। किन्तु गोकुल के भ्रातृकुल के लोग अब भी बलरामपुर में बसे हुये हैं।

कविवर गोकुल वाणीके एकांत साधक नहीं थे। वे दरबारी कवि थे और अपने जीवनकाल में इसी रूपमें उन्होंने प्रसिद्धि पाईथी।[2] महाराज दिग्विजय सिंह के दरबारमें प्राय आगन्तुक कवियों के प्रातिभ ज्ञान की परीक्षा के लिए काव्य शास्त्रीय विषयों पर शास्त्रार्थ अथवा समस्या पूर्ति सम्मेलनों की आयोजना हुआ करती थी। गोकुल के जौहर इन्हीं अवसरों पर प्रकट होते थे। इस सम्बंध में प्रचलित जन श्रुतियों में से कुछ नीचे दी जाती हैं।

प्रसिद्ध है कि बलरामपुर दरबार में बाहर से आये हुए किसी कवि ने कविता और वनिता का सादृश्य विधान करते हुये नायिकाभेद पर लिखे गये अपने

---

१ प्रथम पत्नी के देहावसान पर शोकाकुल हो गोकुल कविने यह छंद लिखा था—

अरविंद विलोचन कुंदकली दसनावलि चंदकला मुख भावै ।
मुसकानि सुधा अधरानि मयूष मनोहर बैन सुने बनि आवै ॥
जेहि अंग में सोभ सुगंध सने 'बृज' मेद जवादि सुगंध लगावै ।
तिहि देह पै काठ कठोर दबावत आगि लगावत आह न आवै ॥
(अष्टयाम प्रकाश, पृ० १६६)

२ "राजपूताना और दीगर मुकामात का देशी रियासतों में जहाँ कविताई की कदर है इनका नाम मशहूर है और इनकी तसानीफ़ फैली हुई हैं।" —तारीख़ अखबारी श्रीवास्तव कायस्थ, (ले० रामरतनलाल), पृ० ४०

ग्रंथ की भूमिका के लिये उपस्थित कवियों से छंद रचना का प्रस्ताव किया। गोकुल कवि ने उसी समय यह छंद बनाकर सुनाया—

सब्द देह प्राणि पशु छंद मुख व्यजना सो,
व्यग्य जीव मजुध्वनि वाणी निकसतु है।
लक्षणैद्विविधि अक्ष हाव भाव है कटाक्ष,
औन है विभाव गुण गुणे सरसतु है॥
नायिका विसद वृत्ति रीति कुलकानि बानि,
भूषननि भूषण बसन बिलसतु है।
कविता दसाग बर बनिता को कवि पति,
'ब्रज' पुत्र पुन ही सों दूनो दरसतु है॥

कहा जाता है कि एक बार कोई 'प्रसाद' नाम के कवि महाराज के काव्य प्रेम की चर्चा सुनकर बलरामपुर आये। दरबार लगने पर उन्होंने कुछ स्वरचित छंद सुनाये। महाराज ने प्रसन्न होकर उन्हें दो सौ रुपया और एक सुसज्जित घोडा बिदाई देने की आज्ञा दी। अस्तबल के दारोगा ने कविराज को जो घोड़ा दिया, वह देखने में बड़ा सुन्दर था, चाल भी बहुत अच्छी थी, किंतु उसमें एक बडा भारी दोष यह था कि पानी देखते ही लोटने लगता था। कविजी को इसका पता न चल सका। वे महाराज को आशीर्वाद देकर प्रसन्न मन विदा हुए। बलरामपुर नगर से लगी हुई सुआँव नदी में उस समय घुटनों के ऊपर पानी था। प्रसाद कवि घोड़े पर चढे हुए ही उसे पार करने लगे। पानी मे थोडी दूर चलकर घोडा अपने स्वभावानुसार बैठ गया और तग कसे हुये ही उसमें लोटने लगा। कवि महोदय का सारा कपडा कीचड मे लथपथ हो गया। बडी मुश्किल से उन्होंने घोड़े को पानी के बाहर निकाला। अपने कपडो मे लगा हुआ कीचड धोकर वे उल्टे पाँव दरबार में पहुँचे और महाराज के समक्ष पुरस्कार मे प्राप्त घोड़े की शिकायत करते हुये यह सवैया पढा—

सदा सुन्दर चाल चलै मग मैं कतहूँ ठिठकै बिगरै न अरै।
पर बाजि बिलोकत ही निकसै अरु पौन के गौन ते बेगि लरै॥
दियो भूपति दिग्विजै सिंह जो बाजि 'प्रसाद' सु केतिक लाग डरै।
तेहि औगुन एक कहा कहिये जल देखै जहीं तहीं लोटि परै॥

शिकायत सारे दरबार का गई थी। महाराज के इशारे पर गोकुल कवि ने तत्काल घोड़े की प्रशसा मे निम्नांकित छंद लिख कर उसके पानी म बैठ जाने का दूसरा ही कारण बताया।

कमर कलाइ कान कल्ला छवि छोटि छाइ,
सीना सुम चकले हैं सिगरे बखानी मे ।
बेगि पावै मन आसमान को करै पयान,
सीखे सीघ्रताई हरियान गति जानी में ॥
'गाकुल' तुरग ऐसो कहैं मति मद लोग,
पानी म प्रवेस यहि हेतु अनुमानी मे ।
असुचि सवार को विसुचि करिबे के हेतु,
याते बाजी पैठि गया बैठि गयो पानी मैं ॥

गोकुल की इस हाजिरजवाबी से प्रसाद कवि पानी पानी हो गये । महाराज ने रिसाले से उनकी पसद का एक दूसरा घोडा दिलाकर उ हें सम्मान पूर्वक विदा किया ।

शिकार यात्राओंम भी महाराज दिग्विजय सिह गाकुल को साथ रखते थे । इ हें स्वय शिकार खेलने का शौक न था किन्तु देखनेमें बडी दिलचस्पी लेते थे । महाराज इ हें प्राय अपने समीप वाले हाथी या मचान पर बैठाते थे । नैपाल के जगलों मे दिग्विजयसिह के एक शिकार का प्रत्यक्षदर्शी के रुप में वर्णन करते हुये ये लिखते हैं—

दपटि डहारि ढौकि चौंकि उठे जो मतग,
निकसो प्रचड बाघ गाढे गिरि झाली के ।
घोर घहराइ धाइ आयो है चलाक चड,
आवन समीप हेत किये चल चाली के ॥
त्योंहीं महाराज दिग्विजै सिंह दीठि जोरि,
साधे दीदबान सों सिकार परनाली के ।
घायल घुमडि बाघ भागो अहदक सक,
गाज लौं गँभीर गोली लागी है दुनाली के ॥

दगी दुनाली गाज ज्यों, बाघ लक लगि जाय ।
भागो घायल बिपिन मे, झाली माहि लुकाइ ॥
महाराज हरषाइ, चढि गज पर हेरन चले ।
आगे निरखे जाइ, झाली मे वह सेर है ॥
तीनि बौंरि मोटी त्वचा, एक बिटप ते आइ ।
लपटी दूजे वृक्ष मे, जनु विधि जाल बँधाइ ॥
एक बौरि मुख पर परी, एक गरे मे आइ ।
एक लक में लपटि गै, यहि विधि बाघ लखाइ ॥

लागे लक घाव बाघ झपटि डहारि ढोकि,
चलो गज चौकि फरि हारा पीलवान है।
खसे हैं खवास पाछे होदा में जकरि जार,
गिरे सेर आगे तीनि गज जो प्रमान है॥
उठि बैठे मारे गोली परो बाघ भूमि सिर,
सोनित स्रवत यह कीन्हे उपमान है।
तीरथ अरण्य पुण्य काल है अखेट दिन,
भारती के नीर मानो भूप को नहान है॥
लगो सीस छत स्रवत है, स्रोनित व्यथा प्रवाह।
ऐसे दुख में नहि कढे, भूपति के मुख आह॥
महाराज दिग्विजै सिंह, खेलैं सदै सिकार।
कबहूँ ऐसो नहिं भयो, होनहार बरियार॥
भगे गज चौकि चला गिरे महराज महि,
तीनि गज पर परो बाघ जेहि ठाम है।
पंजा लपकावै नहि पावै कटि मुरा बाधि,
बैरिन के ब्याज सकि बाँधे निज दाम है॥
गोकुल बिलोकि तबै हिम्मत अचल मति,
सोनित स्रवत सिर सिखा वेध छाम है।
सूरताई सैनन ते नैनन ते धीरताई,
बीरताई बैनन ते बिलसै विराम है[1]॥

यह घटना स० १९३७ की है[2]। इस घातक चोट के बाद महाराज का

१—मृगयामयङ्क, पृ० १८

२—गोकुल कविके निम्नांकित छंदसे यह सिद्ध होता है कि वे महाराज दिग्विजयसिंहके साथ हाथियोंके हँकवेमें भी एक दो बार गये थे। विलास हावके उदाहरणार्थ इसमें जो चित्र अंकित किया गया है उससे हाथी फँसानेका सम्पूर्ण प्रक्रियाका सूक्ष्म निरीक्षण व्यंजित होता है।

हेरि हरे हरुवे हँसि आवत मेलै फँदैत फँदाय उथा फदै।
सैनहि साकर मंजु महाउहि बाँधि लियो गति कै मति मदै॥
आवत मोहन भाव भले 'ब्रज' अंकुस लै बस कै छल छदै।
जोबन जाल बगारि बझावत मैन महाउत नैन गयंदै॥
(नीति रत्नाकर पृ० १८)

स्वास्थ्य नहीं सुधरा । दो वर्ष बाद स० १६३९ में उनका परलोकवास हो गया । उनके साथ ही बलरामपुर दरबार से साहित्य चर्चा भी उठ गई । आश्रयदाता के दिवंगत होने पर गोकुल कवि ने राजसेवा से विश्राम ग्रहण कर लिया । किन्तु उनकी लेखनी चलती रही । इसके पश्चात् उन्होंने दो ग्रन्थों की रचना की । उनमें से एक है महारानी धर्म चन्द्रिका, जो मनुस्मृति का पद्यानुवाद है । इसका निर्माण स० १६५४ में महाराज दिग्विजय सिंहकी द्वितीय पत्नी महारानी जयपाल कुवरि की आज्ञा से हुआ था । स० १९६१ में यह ग्रंथ खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर (पटना) से प्रकाशित हुआ था । उनकी दूसरी कृति है—गद्दी प्रकाश, जो महाराज दिग्विजयसिंह के उत्तराधिकारी दत्तकपुत्र महाराज भगवती प्रसाद सिंह की राजगद्दीके अवसर पर, स० १६५७ में लिखा गया था । यह गोकुल की अन्तिम कृति थी । इसके पश्चात् वे पाँच वर्ष और जीवित रहे ।

अपने जीवन के अन्तिम दिन गोकुल ने भगवच्चिंतन और नामजप में बिताये । उनका जो चित्र इस ग्रंथ में दिया गया है वह इसी वार्द्धक्य जर्जर अवस्था का है जिसमें वे माला फेरते दिखाये गये हैं । वैशाख शुक्ल ६, शनिवार स० १६६२ की रात्रि को ढाई बजे, ८५ वर्ष की आयु भोगकर वे परलोक वासी हुये ।

रचनायें

अब तक गोकुल कवि की कुल २२ कृतियों का पता चला है। उनमें से १९ की रचना बलरामपुर दरबार की छत्रछाया में हुई, शेष गोंडा तथा महरायच के तीन अन्य सामन्तों के लिए लिखी गई थीं। इनकी सूची नीचे दी जाती है—

क बलरामपुर दरबार के आश्रय में विरचित ग्रन्थ—

१ अर्जुन विलास (मदन गोपाल कवि कृत) की पद्यबद्ध भूमिका-स० १९१९, २ अष्टयाम प्रकाश-स० १९१९, ३ दूतीदर्पण-स० १९१९, ४ दिग्विजय भूषण-स० १९१९-१९२५, ५ नीतिरत्नाकर (महाराज दिग्विजयसिंह के साथ)-स० १९२१, ६ चित्र कलाधर-स० १९२१, ७ पचदेव पचक-स० १९२४, ८ नीतिमार्त्तंड-स० १९२६, ९ सुतोपदेश-स० १९२८, १० वाम विनोद-स० १९२९, ११ चौबीस अवतार-स० १९२६-१९३२, १२ शोक विनास-स० १९३२, १३ शक्ति प्रभाकर (अद्भुतरामायण)-स० १९३३, १४ सुहृदोपदेश (टिट्टिभि आख्यान) स० १९३५, १५ मृगया मयङ्क-स० १९३७, १६ दिग्विजय प्रकाश-स० १९३९, १७ एकादशी महात्म्य-स० १९३९, १८ महारानीधर्मचन्द्रिका-स० १९५४, १९ गद्दी प्रकाश-स० १९५७।

ख अन्य सामन्तों के लिए निर्मित ग्रथ—

२० कृष्णदत्तभूषण २१ अचल प्रकाश २२ महावीर प्रकाश।

शिवसिंह सेंगर ने इनम से केवल चार ग्रन्थों (दिग्विजय भूषण, अष्टयाम, चित्र कलाधर और दूतीदर्पण) का नाम दिया है। सर जार्ज ग्रियर्सन ने, सभवत इसी आधार पर 'लाला गोकुल परसाद बलिरामपुरी' का परिचय देते हुए उनके द्वारा विरचित ग्रन्थों की सख्या चार ही बताई है, जिनकी नामावली सरोज से अभिन्न है। उक्त दोनों महानुभावों ने गोकुल कवि की अन्य रचनाओं की सभावना व्यक्त की है किन्तु उनकी नामावली नहीं दी है, सभव है इसका कारण उनकी अनुपलब्धि रही हो।

हिन्दी साहित्य के प्रचलित इतिहासों में प्रस्तुत कवि का कोई वृत्तान्त नहीं मिलता। इधर डा० किशोरी लाल गुप्त ने शिवसिंह सरोज में निर्दिष्ट कवियों की जीवनी तथा कृतियों का एक विद्वत्तापूर्ण सर्वेक्षण किया है। उनके अप्रकाशित शोध प्रबन्ध 'सरोज सर्वेक्षण' में दी गई गोकुल कवि की रचनाओं की सूची इस प्रकार है—

१ दिग्विजय भूषण–स० १६१६, २ अष्टयाम–स० १९१६, ३ दूती दर्पण–१९१६ ४ नीतिरत्नाकर–स० १९२१, ५ चित्रकलाधर–स० १९२३, ६ पचरैल पचक–स० १६२४, ७ नीतिमार्त्तंड–स० १६२६, ८ वामविनाद–स० १६२६, ९ सुतापदेश–स० १६३०, १० चौबीस अवतार–स० १६३१ ११ शोकविनास–स० १६३३, १२ शक्तिप्रभाकर–स० १६३६, १३ टिट्टिभि आख्यान–स० १९३७, १४ सुहृदोपदेश–सं० १६३७ १५ मृगयामयङ्क–स० १६३७, १६ दिग्विजय प्रकाश–स० १६३६, १७ महारानी धर्मचद्रिका–स० १६३६ के पश्चात्, १८ एकादशी महात्म्य–स० १६३६–१६ कृष्णदत्तभूषण २० अचल प्रकाश, २१ महावीर प्रकाश।

गोकुल कवि की रचनाओ के सम्ब ध में डा० गुप्त की सूचना के स्रोत नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित खोज विवरण तथा माधुरी (जून १६२८ ई०) में प्रकाशित श्री रामनारायण मिश्र का लेख रहा है[1]। अत कतिपय ग्र थों के रचना काल तथा वर्ण्यविषय सम्बन्धी जो भ्रा तियाँ उक्त स्रोतो, विशेषकर 'माधुरी' वाले लेख में विद्यमान थीं, वे यहाँ भी चली आई। ऐसी भूले तीन वर्गों में बाँटी जा सकती है—ग्रथसख्या, रचना काल और वर्ण्य विषय सम्ब धी। नीचे इनकी क्रम से विवेचना की जाती है।

गुप्तजी ने इनकी रचनाओ की सपूर्ण सख्या, 'अर्जुन विलास' की पद्यबद्ध भूमिका को छोडकर, २१ बताई है। इनमेंसे टिट्टिभि आख्यान और सुहृदोप देश वस्तुत एक ही ग थ है। सुहृदोपदेश के ही अ तर्गत टिट्टिभि आख्यान का पद्यानुवाद दिया गया है। इस प्रकार कुल २० कृतियाँ ही रह जाती हैं। कवि की अन्तिम रचना 'गद्दी प्रकाश' का कहीं उल्लेख नहीं हुआ है।

ग्रथो के रचनाकाल निर्देश मे प्राय १ से लेकर ४ वर्षों तक का अ तर मिलता है। इसका कारण है उनके प्रकाशन काल को निर्माण काल समझ लेने की भ्राति। इसी से निम्नाकित ग्रथों का समय अशुद्ध दिया गया है—

	ग्रथ	निर्दिष्ट सवत	शुद्ध
(१)	चित्र कलाधर	१९२३	१९२१
(२)	सुतोपदेश	१९३०	१६२८

1 अष्टयाम—१६२३।१२६, १६२६।१४३ ए
वाम विनोद—१६०६।६५ बी
चौबीस अवतार—१६०६।६५ ए
दिग्विजय भूषण—१६२६।१४३ बी

(३)	चौबीस अवतार	१६३१	१६२६ १६३२
(४)	शोक विनाश	१६३३	१६३२
(५)	शक्ति प्रभाकर	१६३६	१६३३
(६)	सुहृदोपदेश (टिट्टिभ आख्यान)	१६३७	१६३९

इसी प्रकार महारानी धर्म चन्द्रिका को १६३९ के पश्चात् की रचना कहा गया है। इसकी निश्चित तिथि नहीं दी गई है। वास्तव में इसका रचना काल स० १६५४ है।

जहाँ तक वर्ण्य विषय का सम्बन्ध है डा० गुप्त द्वारा दिये गये सभी विवरण, एक को छोडकर, ठीक है। शक्ति प्रभाकर को अध्यात्म रामायण का अनुवाद कहा गया है किन्तु वह अद्भुत रामायण पर आधारित है।

गोकुल प्रसाद की ये रचनाये स० १६१८ से लेकर स० १६५७ तक अर्थात् चालीस वर्ष के विस्तृत कविता काल में निर्मित हुई है। उनके जीवन के अंतिम पाँच वर्षो मे लिखी गई कोई कृति नहीं मिलती। बहुत सम्भव है इस बीच वृद्धावस्था के कारण उनकी लेखनी और मस्तिष्क काव्य रचना से विरत हो गये हों।

ग्रन्थ परिचय

१. अर्जुन विलास की पद्यबद्ध भूमिका

अर्जुन विलास की रचना महाराज अर्जुन सिंह (महाराज दिग्विजयसिंह के पिता) के आश्रित कवि मदन गोपाल शुक्ल ने स० १८७६ मे की थी, (इसी वर्ष महाराज दिग्विजय सिंह का जन्म हुआ था)। कुछ कारणों से यह ग्रंथ ४० वर्षो तक अप्रकाशित पडा रहा। महाराज दिग्विजय सिंह ने ग्रन्थकर्ता के पुत्र प० नन्दकिशोर शुक्ल से उसकी पाडुलिपि प्राप्त की और गोकुल कवि से स० १६१८ में इसकी पद्यबद्ध भूमिका लिखाकर स० १६२० में प्रकाशित कराया। उक्त ग्रंथ की भूमिका मे इसका स्पष्ट उल्लेख है—

> वसु[८] ससि[१] निधि[९] विधु[१] सबते, विक्रम भूप विलास।
> प्रगट भयो बलिरामपुर, ग्रंथ जु सावन मास॥
> नृप अनुसासन पाइकै, हेतु ग्रंथ परकास।
> कवित रीति गोकुल रच्यो, जा मे सभा विलास॥

'अर्जुन विलास' की यह भूमिका ही गोकुल कवि की प्रथम छन्दबद्ध रचना है।

२. अष्टयाम प्रकाश

यह गोकुल कवि की प्रथम उपलब्ध स्वतन्त्र एवं संपूर्ण कृति है। इसकी रचना रीतिकालीन अष्टयाम शैली पर हुई है। रचयिता के ही शब्दों में इसका प्रतिपाद्य है महाराज दिग्विजय सिंह के अष्ट प्रहर कृत्य का विवरण।

भूप दिग्विजै सिंह बहादुर, गुनगाहक गुनधाम।
आठ जाम बत्तीस घरी में, करत मंजु रुचि काम॥
अष्टजाम परकास ग्रंथ करि, पंथ पुंज अभिराम।
सूचीपत्र निचित्र बात 'बृज', बिरचित ललित ललाम॥
साठि दंड बत्तिस घरी, आठ जाम दिन एक।
भूत दिग्विजै सिंह नित, करतब्य करत अनेक॥
दंड दंड प्रति प्रति घरी, बरनौ नृप मन साज।
करत काम अभिराम जो, करि प्रबंध यक राज॥

इसकी रचना श्रावण शुक्ल ५, बुधवार सं० १६१८ का हुई—

वसु[8] शशि लहि ग्रह[9] कला निधि[1] सम्बत सावन मास।
बुधवासर सित पंचमी, अष्टजाम परकास॥

१८६३ ई० (सं० १९२०) में यह बलरामपुर के जगबहादुरी यन्त्रालय (लीथो प्रेस) से प्रकाशित हुआ।

ग्रंथ के आरम्भ में दिये गये सूचीपत्र के अनुसार इसकी प्रसंग योजना का विवरण निम्नांकित है—

प्रथमजाम—राजन्स बरनन, गंगाष्टक, चौसठि तंत्र ग्रंथ नाम, बावनपीठि बावन भैरों नाम, नवो नाथ नाम, षट्चक्रनाम, दानविधि, घोड़े बरनन, हाथी बरनन, तोप बरनन, फौजबरनन, चारिदेस को भाषा बरनन, धर्मशास्त्र, राजनीति, पुरान के दस लच्छन बरनन, चारि जुग दस अवतार बरनन, चौबिस मत सात इति, सात दीप, नौ षंड, कोस (कोष) नाम, सात पुरी, बानी भेद, श्रोता, नौधा भक्ति, आश्रम दस दिसा के, देव ब्राह्मण के षट्कर्म, छहउ सास्त्र बरनन, जोतिस, वेदांत मोह विवेक, सुभाउ, व्याकर्ण, रोजनामचा के हाल जंगी पलटन आदि दे।

अथ जाम दूसर—गुलकी काम बरनन, तिलसमात, अथ छत्तीस बिंजन बरनन, शसन विचार बरनन।

अथ तीसर जाम—इसस्टटी कचेहरी, फौजदारी।

अथ चौथ जाम—गंजीफा सतरंज, चौपरि, मेवा बरनन, नवोरत्न, नवो

देवता बरनन, सवारी बरनन, घोड़े बरनन, रंग बरनन, घोड़े के चाल, बा ग घाकपटा, तीर कमान, सिकार बरनन।

अथ पचम जाम—उपमान बरनन, फारसी के कवित्त, दस अंग काव्य बरनन, लक्षना, विजना, धुनि रस बरनन, नायिका, चित्रकाव्य, अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका, अनुप्रास, रीति।

अथ छठवाँ जाम—सगीत बरनन, ज्योनार श्लेष मे बरनन।

अथ सात जाम—धाम छवि बरनन।

अथ आठ जाम—भूप सैन बरनन।

कवि का कथन है कि प्रस्तुत ग्रंथ मे उसने केवल अपनी आँखों देखी घटनाओं का वर्णन किया है, सुनी सुनाई और अतिरंजित बातों को इसमे स्थान नहीं दिया गया है—

भूप दिग्विजै सिंह के, अष्ट जाम परकास।
बरनन की है गुन सहित, करि मति मंजु विलास॥
सुनी बात हो एक नहि, नहि कछु झूठ मिलाइ।
समै समै अवलोकि 'बृज', बरने कवि मति पाइ॥
भूप दिग्विजै सिंह की, करि सेवा मन लाइ।
गोकुल यह रचना किये, गुरु गननाथ मनाइ॥

३. दूतीदर्पण

इस ग्रंथ की मूल प्रति अप्राप्य है किंतु दिग्विजय भूषण के निम्नांकित छंद से यह विदित होता है कि गोकुल कवि ने 'दूतीदर्पण' नामक एक रचना लिखी थी। बाद को उसी के कुछ चुने हुए प्रसङ्ग 'दिग्विजय भूषण' में संकलित कर लिए गये—

रस राजा सिंगार रस, प्रजा चाहिये ताहि।
सर्व जानि ताते लिखे, दूती दूत सराहि॥
जग मे कोम छतीस है, तामें भेद अपार।
दूती दरपन म लिखे, सबके मे व्यवहार॥
तामें सो मै काढ़ि कछु, लिखे इहाँ अनुमानि।
रचना रुचिर निहारि करि, छमहु ढिठाइ जानि॥[1]

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 'दूती दर्पण' की रचना 'दिग्विजय भूषण' के पहले हुई थी। दिग्विजय भूषण में उसका जो अंश उद्धृत है उसमें ३६ जाति की दूतियों के संदेश श्लेष एवं मुद्रालंकार में वर्णित हैं।

---

1 दि० भू०—पृ० ४४३।

४. दिग्विजय भूषण

गोकुल कवि की यह अति महत्वपूर्ण कृति है। इसकी मूल प्रति अप्राप्य है। आजकल जो 'दिग्विजयभूषण' मिलता है वह 'रामस्वरूप' द्वारा ब्रजभाषा गद्य मे लिखी गई टीका सहित जगबहादुरी यन्त्रालय (लाथो प्रेस) बलरामपुर से स० १९२५ में प्रकाशित हुआ था।[1] किंतु इसकी रचना उक्त सटीक संस्करण के छः वर्ष पूर्व, स० १९१९ से ही आरंभ हो गई थी।[2] उस समय उनका उद्देश्य केवल अलंकारों के लक्षण एवं उदाहरण मात्र प्रस्तुत करने का था। 'दिग्विजय भूषण' नाम की सार्थकता के लिए इतना ही पर्याप्त था। अतः स० १९१९ तक उन्होंने प्रस्तुत ग्रंथ के चौदह प्रकाशों को लिख डाला। जान पड़ता है टीका आरंभ होने के पश्चात् रीति कालीन परिपाटी के अनुसार उन्हें अपनी इस रचना को सर्वाङ्गपूर्ण बनाने की इच्छा हुई। अतः पूर्वकृति मे क्रमशः नखशिख, षडऋतु, नायिका भेद और कवि प्रौढोक्ति सम्बन्धी प्रकाश जोड़ दिये गये। ग्रन्थ के अंत में दिये गये एक छंद की निम्नांकित पंक्तियों से स्थिति स्पष्ट हो जाती है—

> संवत बरन विवि खंड इंदु पूस पूर
> भयो भट भेरो जोर जुद्ध करि काध्यौ है।
> भूप दिग्विजय सिंह सिंह के समान गाँसि
> गज पै गजब फाँसि डारि गर आव्यो है॥

---

१ खोज विवरण (१९२६–२८) में इसी मुद्रित (लाथो) प्रति का विवरण अंकित है। अन्वेषकों ने इस लाथो में छपी प्रति को भ्रांति वश हस्तलिखित प्रति मानकर विवरण ले लिया और उसके मुद्रण काल (स० १९२५) को ही रचना काल घोषित कर दिया। इसके रचना काल और लिपिकाल की एकता, पृष्ठ संख्या, आकार तथा प्रति पृष्ठ में लिखी पंक्तियों की संख्या का खोज विवरण से साम्य, उक्त धारणा की पुष्टि करता है। (विशेष विवरण के लिये देखिये 'हरिऔध' के जनवरी १९५८ के अंक में 'लाला गोकुलप्रसाद 'बृज' और उनका दिग्विजयभूषण' शीर्षक डा० किशोरीलाल गुप्त का लेख।)

२ खंड इन्दु नव चंद प्रकास। विक्रम संवत सित मधुमास।
ग्रन्थ दिग्विजै भूषन नाम। अलंकार 'बृज' बिरचि ललाम॥

दि० भू०, पृ० ३२

यहाँ स० १९२४ मे दिग्विजय सिह के जीवन की उस महत्त्वपूर्ण घटना की ओर सकेत किया गया है जिसमे बघेलगाड म जगली हाथी फँसाने का विशाल आयोजन किया गया था। इससे यह विदित होता है कि दिग्विजयभूषण ग्रथ के मुद्रण काल तक की घटनायें समाविष्ट है। अत आरभ मे दिये गये स० १९१६ को इसकी रचना का उपक्रम काल मानना ही अधिक युक्ति सगत होगा।

रामस्वरूप ने इस टीकाग्रथ के आरभ मे एक स्वरचित भूमिका दी है। इसमे इन्होने अपना जो परिचय दिया है उससे वे गोकुल कवि के काव्य गुरु गदाधर शर्मा के भतीजे ठहरते हैं। उनकी अद्भुत काव्य प्रतिभा से प्रभावित होकर ही गोकुल कवि ने उनसे 'दिग्विजयभूषण' की टीका करने के लिये अनुरोध किया था। महाराज दिग्विजयसिह की भी यह इच्छा थी कि उक्त ग्रथ के गूढ़ स्थल व्याख्या द्वारा स्पष्ट कर दिये जायँ। ऐसी दशा मे रामस्वरूपने अपनी टीका में सभी प्रकार से काव्यात्मक विशेषताओं के समावेश का प्रयत्न किया। उनका कथन है—

राज्य सभा नित काव्य की, चर्चा होवै बेस।
तहँ मम उक्ति नवीन लखि, कवि यों कियो निदेस॥
भाषा ग्रथन को तिलक, की है भाषा माँहि।
तुम मम विसद प्रबन्ध को, अधिक नृपति चित चाहि॥
सस्कृत सम्मत नाहि लखि, कवि कोविद मुद होय।
काव्य कोश बहु ग्रथ मत, कीजे रचना सोय॥
कवि निदेश अरु भूप रुचि, समुझि महोदय बात।
ताके विसद प्रबध को, करौं तिलक विख्यात॥
सब्द अर्थ ध्वनि व्यग्य रस, अलकार सु अनूप।
गुन अरु रीति विलास मय, की हैं राम सरूप[1]॥

यह ग्रथ १८ प्रकाशों में विभक्त है[2], जिनके नाम हैं—(१) मगलाचरण देश, नगर आदि (२) सृष्टि विधान (३) सूर्य वश (४) चन्द्र वश (५) ... वश, ग्रथ रचना काल, बारह प्रकाश वर्णन (६) एक छद म एक अलकार, अतिम

१ दिग्विजय भूषण की भूमिका

२ प्रतिलिपिकार ने प्रकाशों की गणना म भूल से आठवे प्रकाश के स्थान पर नवाँ प्रकाश लिख दिया है जिससे अत में १८ के स्थान पर १९ प्रकाश हो गये हैं।

चरण म, (७) चारो चरणों मे एक अलकार (८) सकर अलकार, एक छद में दो अलकार (६) अक्रम ससृष्टि—एक छद मे कई अलकार (१०) सक्रम ससृष्ट—एक छद में कई अलकार (११) एक अलकार वर्णन दोहा में परिभाषा समेत (१२) चित्रालकार (१३) अनुप्रास और यमक (१४) वीप्सा श्लेष वक्रोक्ति (१५) नखशिख (१६) षड ऋतु वर्णन (१७) नायक नायिका भेद (१८) प्रौढोक्ति।

इस ग्रथ के १२ प्रकाशों (६ से ६, ११ से १८) में गोकुल ने प्राचीन कवियों की ७६२ रचनायें उदाहृत की हैं। इनका विवरण इस प्रकार है—

क्रम सख्या	प्रकाश का शीर्षक	छन्द सख्या	छद विवरण	विषय
१	६	१३६	कवित्त, सवैया	एक पद म अलकार
२	७	६१	,, ,,	चारो पदो म अलकार
३	८	३५	,, ,,	सकर अलकार
४	६	७५	,, ,,	ससृष्टि ,,
५	११	१३६	दोहा	एक ,,
६	१२	१३	कवित्त, सवैया	चित्र ,,
७	१३	२६	, ,,	अनुप्रास, यमक
८	१४	२	,, ,,	वक्रोक्ति
६	१५	१५८	,, ,,	नखशिख
१०	१६	५७	,, ,,	षड्ऋतु वर्णन
११	१७	६१	,, ,,	नायिका भेद
१२	१८	२६	,, ,,	प्रौढोक्ति

गोकुल कवि ने ग्रथके आरम्भमे दी गई सूचीमें १६२ कवियो के नाम लिखे है। जाँच करनेपर उनकी सख्या १८६ ठहरती है।

'भपण' नाम से यह अलकार का ग्र थ मालूम होता है। अत इसके तद्विषयक महत्त्व विचारकर पर लेना अप्रासगिक न होगा। इसकी रचना रीतिकाल के अतिम चरण मे हुई। तब तक हि दी काव्य शास्त्र पर्याप्त प्रौढ़ता प्राप्त कर चुका था। उसके सभी अगो पर प्रचुर मात्रा में ग्र थ रचना हो चुकी थी जिसके फलस्व रूप जिज्ञासुओ को सस्कृत के ग्र थों का सहारा लिये बिना ही केवल हि दी अलकार साहित्य द्वारा काव्याङ्गों का परिचय प्राप्त हो सकता था। केशव, देव, मतिराम, यशवत

सिंह, भिखारीदास ऐसे आचार्य कवियों की कृतियाँ विशेष ख्याति लाभ कर चुकी थी।

संस्कृत अलंकार शास्त्र ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से दो शैलियों में विभक्त था—प्राचीन और नवीन। प्रथम की परम्परा भामह और द्वितीय की जयदेव के अनुसरण पर चली। गोकुल ने अपनी रचनाओं में उक्त दोनों परम्पराओं का सामंजस्य उपस्थित किया। प्राचीन पद्धतिपर उन्होंने व्यंजना को काव्य की आत्मा और रस को मन माना किंतु अलंकार वर्णन में द्वितीय शैली के आचार्य जयदेव को ही अपना पथप्रदर्शक स्वीकार किया।

अलंकार बरने सुकवि, शब्दा अर्था दोइ।
चंद्रा लोक विलोकियत, ग्रंथ अवर लहि सोइ॥[1]

अथवा

कहे एक सै आठ लिखि चंद्रालोक ललाम।[2]

से उनका मंतव्य स्पष्ट हो जाता है। इतना होने पर भी उन्होंने ऐसे अनेक अलंकारोंका वर्णन 'दिग्विजयभूषण' में किया है जो 'चंद्रालोक' में उपलब्ध नहीं होते, जैसे—रसनोपमा, समस्तवस्तु विषयी रूपक, गम्योत्प्रेक्षा, गर्भोत्प्रेक्षा, अनुमान अन्योक्ति आदि। जयदेव ने 'इत्थंशतमलङ्कारा' कहकर १०० अर्थालंकारोंका वर्णन किया है, इसके बाद रसवत्, प्रेय आदि १५ अलंकारोंका निदर्शन विभिन्न आचार्यों के मत से किया है। शब्दालंकार (अनुप्रास के पाँच भेद मानकर) इसी में गिने गये हैं किंतु 'दिग्विजयभूषण' में शब्दालंकारों का वर्णन पृथक् 'प्रकाश' में हुआ है। 'रसवत्' आदि को स्थान ही नहीं दिया गया है। अनुमान को प्रमाणालंकार न मानकर स्वतंत्र माना है। इस प्रकार इसके अंतर्गत अलंकारों की संख्या शब्दालंकारोंको छोड़कर ११५ है।

काव्यशास्त्र के प्रायः सभी ग्रंथों में लक्षणसाम्य के आधार पर अलंकारों का क्रम निश्चित किया गया है किंतु उनका वैज्ञानिक विश्लेषण आज तक संभव न हो सका। आचार्य भिखारीदास ने इस दिशा में स्तुत्य प्रयत्न किये थे किंतु वे भी पूर्णतया सफल न हो सके। दिग्विजयभूषण के दशम प्रकाश में गोकुल ने इस प्रकार के वर्गीकरण की ओर विशेष ध्यान दिया है। उन्होंने केवल ३८ छंदों में १०० अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। कहीं कहीं छः सात अलंकारों का एक ही छंद में समावेश करते हुये भी उन्होंने उनमें परस्पर

१ दिग्विजय भूषण, पृ०–३६।
२. वही पृ०–२५३।

साकर्य नहीं होने दिया है। यहाँ अलंकारों के प्राचीन क्रम पर जोर न देकर उनके पारस्परिक लक्षण साम्य को ही ध्यान में रखा गया है। इससे उनका आचार्यत्व भलीभाँति प्रतिष्ठित हो जाता है।

ग्यारहवें प्रकाश में ग्रथकार ने रीतिकालीन शैलीपर अलंकारों के लक्षण तथा उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। इसके १८४ छन्दों में १०१ अलंकारों का निर्देश हुआ है। गोकुल का अलंकारों पर इतना अनुराग है कि इस प्रकाश में १८ स्वरचित और १२६ अन्य निर्मित दोहों में विभिन्न अलंकारों के उदाहरण पुन रखे गये हैं। ग्रथ नाम की सार्थकता के विचार से इस 'प्रकाश' का विशेष महत्त्व है।

गोकुल कवि की मौलिक उद्भावना एव स्वतन्त्र कल्पना का परिचय एक पद अलंकार, भिन्नपद अलंकार, क्रम ससृष्टि, अक्रम ससृष्टि, सकर तथा ३६ प्रकार की दूतियों के स्वभाव एव उनकी व्यवसायगत पारिभाषिक शब्दावली के श्लिष्ट प्रयोग द्वारा उद्देश्य कथन में मिलता है। सपूर्ण रीति साहित्य में ऐसे चमत्कार पूर्ण वर्णन शायद ही अन्यत्र ढूढ़ने मे मिल सकें।

५. नीति रत्नाकर

इस ग्रन्थ के मगलाचरण तथा भूमिका में उल्लिखित निम्नाकित छदों से यह विदित होता है कि इसके रचयिता स्वय महाराज दिग्विजयसिंह हैं—

भूप दिग्विजयसिंह अरु, बदि गुरुहि के पाय।
ग्रन्थ नीति रतनाकरै, आदर अर्थ बनाय॥
जुक्ति जथामति आपनी, अरु मत शास्त्र विचारि।
बनो अनबनो जो कछू, लीजै सुकवि सुधारि॥
दूषन हेरें कूर कवि, भूषन सुकवि सँवारि।
अनबूझे खल खीझिहैं, रीझैं बूझि बिचारि॥
नाम दिग्विजय सिंह प्रगट, विजयभूप धरि नाम।
पद कोमलता कवित हित, आरोपित अभिराम॥

इसकी रचना का उद्देश्य है बलरामपुर तथा उनके समीपवर्ती राज्यों के निवासी विद्वानों, कर्मचारियों तथा प्रजावर्ग का पथ प्रदर्शन—

तुलसीपुर बलिरामपुर, भिनगा चरदह माँह।
अरु गिधरैयाँ आदि दै, जिते अमल नरनाह॥
कवि कोविद अमला प्रजा, अरु जे बुद्धि निकेत।
और प्रयोजन नहिं कछू, विरचे तिनके हेत॥

अध्यायो के अंत में दी गद्य पुष्पिका भी इसे महाराज दिग्विजयसिंह की ही रचना सिद्ध करती है—

"इति श्री जनवार वंशावतंस श्री महाराज अर्जुनसिंहात्मज श्री महाराज दिग्विजय सिंह बहादुर विरचिते नीति रत्नाकरे रसवर्णन नाम सप्तदश प्रकाश समाप्तम् शुभमस्तु।"

परन्तु ग्रंथांत में दिये गये निम्नांकित छंद स्थिति का एक दूसरा ही स्वरूप सामने लाते हैं। उनसे यह गोकुल कवि की कृति प्रमाणित होती है। आश्रय दाता की आज्ञा से गोकुल कवि ने विविध लोकोपयोगी विषयों पर काव्य रचना कर नीति रत्नाकर का निर्माण किया। बीच बीच में महाराज दिग्विजय सिंह के बनाये छंद भी यथास्थान रख दिये गये—

महाराज दिग्विजय सिंह, सब विद्या म प्रीति।
देखे ग्रंथ किताब बहु, रीति विलायत नीति॥
धर्म शास्त्र शुभ काव्य के, राजनीति सद्ग्रन्थ।
पढ़े गुने समुझे सुने, महाजनन के पंथ॥
तिनको मत लै मंजु मति, शब्द सुअर्थ बखानि।
गोकुल सों आज्ञा दई, निज सेवक जिय जानि॥
कीजै छंद प्रबंध मे, आखर अर्थ बनाय।
जाते समुझैं लोग सब, नीति चातुरी पाय॥
सो आज्ञा को पाय के, गति मति निज ठहराय।
छंद रीति गोकुल रचे, गुरु गननाथ मनाय॥

इन तथ्यों के आधार पर 'नीतिरत्नाकर' असंदिग्ध रूप से गोकुल की रचना मानी जा सकती है। आश्रयदाता के प्रीत्यर्थ उन्होंने प्रसंगांत में दी गई पुष्पिकाओं में रचयिता के स्थान पर महाराज दिग्विजय सिंह का ही नाम लिख दिया क्योंकि वह उन्हीं की प्रेरणा से लिखा गया था और उसके अंतर्गत उनके छंद भी संकलित थे। यह एक प्रकार से समर्पण की प्राचीन परिपाटी कही जा सकती है।

'नीति रत्नाकर' का निर्माण आश्विन शुक्ल १०, बुधवार सं० १९२० को आरंभ हुआ और फाल्गुन कृष्ण ११, बुधवार, सं० ११२१ को इसकी समाप्ति हुई—

सित दसमी कुवार बुधवासर, नभ दृग ग्रह शशि सम्बत आसर।
ग्रन्थ 'नीति रत्नाकर' की है, कवि कोविद मुनि जन मत ली है॥

सम्वत शशि[1] दृग[2] ग्रह[9] ससी[1], बुध हरिवासर जस।
पक्ष असित फागुन भलो, कीहे पूर्ण नरेस ॥

नाम से यह शुद्ध नीति सम्बन्धी रचना जान पड़ती है किंतु इसके अंतर्गत रस और नायिका भेद भी अंगोपांग सहित वर्णित हैं। सम्पूर्णग्रंथ १६ प्रकाशों में विभक्त है, जिनके नाम है—राजवंश वर्णन, राजवर्णन, नीति वर्णन, विद्या वर्णन, गुणदोष वर्णन, प्रीति वर्णन, दान वर्णन, धन प्रकरण वर्णन, धैर्य वर्णन, कीर्ति वर्णन, लाभ वर्णन, झूँठ वर्णन, मद वर्णन, शब्द वर्णन, नरस्वभाव वर्णन और रस वर्णन।

इसका भी प्रकाशन जगबहादुरी यंत्रालय बलरामपुर से हुआ था।

६. चित्र कलाधर

चित्र कलाधर चित्र काव्य है। इसकी रचना गोकुल कवि ने आश्रयदाता के आदेशानुसार विजयादशमी, सोमवार सं० १६२१ में की थी।

चंद्र[1] उभय[2] निधि[9] कलानिधि, सम्वत आश्विन मास।
शशि वासर दसमी विजय, ता दिन ग्रंथ प्रकास ॥

इसका प्रकाशन जगबहादुरी यंत्रालय बलरामपुर से सं० १६२३ में हुआ।

प्रारंभ में महाराज दिग्विजय सिंह की वंशपरंपरा तथा राज्यश्री का विशद परिचय दिया गया है। उसके पश्चात् ४५ चित्रकाव्यों में आश्रयदाता का ऐश्वर्य अंकित है। इसकी रचना का प्रधान उद्देश्य काव्य प्रेमियों की चमत्कार वृत्ति को तृप्त करना है—

रचना चित्र कवित्त को, बरनत हौं कछु रीति।
मन रोचक सहृदयन के, पाय करे रुचि प्रीति ॥
जो है आदर चित्र को, सोई लच्छन जानि।
चमत्कार अवलोकि कै, मन अनंद को मानि ॥
भूप दिग्विजै सिंह के, प्रभुता पुंज प्रकास।
बरनौ चित्र कवित्त में, कीरति ललित विलास ॥

चित्रकाव्यों की विषय सूची कवि के ही शब्दों में इस प्रकार है—

मध्याक्षर असि सिपर कटारी। धनु मुदगर तिरसूल निचारी ॥
चक्र दोय अंकुश मूसल कहि। चौकि पताका चंद्रोदय लहि ॥
गिरि सुमेरु डमरू है कमलय। बाग अरण्य तडाग जत्र द्वय ॥
छत्र दोय द्रुम नाग मुकुट लहि। हार सितार मृदंग वृक्ष कहि ॥
चोपरि गज है हय गति जानौ। गोमुखिका कपाट पहिचानौ ॥

मनी मति अरु मनि अश्व गति। कामधेनु पद आदि बरन जति ॥
सुभग सर्वतो भद्र बखानो। रचि पैंतालिस चित्र निदानो ॥
यामें भेद अनेकन की है। मति अनुसार सुकवि मत ली है ॥
संपूर्ण ग्रंथ लीथो मे छपे हुए सुंदर काव्यचक्र चित्रों से सुसज्जित है।

७. पंचदेव पंचक

इसकी रचना स० १६१४ में हुई। मूलग्रंथ अप्राप्त होने से इसका विस्तृत परिचय देना संभव नहीं। नाम से स्पष्ट है कि यह पंचदेव (गणेश, शिव, दुर्गा, सूर्य और विष्णु) की स्तुति के रूप में लिखा गया था। बलरामपुर दरबार के आश्रित एक दूसरे कवि दलपतिराय डाह्या भाई नागर गुजराती के श्रवणाख्यान की भूमिका में गोकुल कवि के इस विषय पर कतिपय छंद संकलित हैं। इसका भी रचना काल सं० १६२४ ही है। सम्भव है यहीं से पाँच छंद लेकर एक स्वतंत्र ग्रंथ का निर्माण किया गया हो।

८. नीति मार्तंड

नीति विषय पर लिखी गई गोकुल कवि की यह दूसरी कृति है। इसका निर्माण काल है सं० १६२६। मिश्रबंधु विनोद में उल्लिखित (संख्या २०८६) नीति प्रकाश इससे अभिन्न हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

६. सुतोपदेश

सुतोपदेश की रचना आषाढ़ कृष्ण ६, सं० १६२८ में हुई—

लहि कृष्ण रुद्र अषाढ़ जानो, महो इन्द्री भौन है।
अरु याहि सत करि मानि लीजै, लौं प्रकृति चौ पौन है ॥

इस ग्रंथ का प्रतिपाद्य विषय है—पुत्र के कर्त्तव्य और उसकी जीवन यात्रा में सहायक तत्त्वों का पिता के द्वारा उपदेश। इसके अंतर्गत पितृभक्त पुत्रों—परशुराम, भीष्म, राम और नासिकेत, पितृ विरोधी पुत्रों—कंस, दुर्योधन और रुक्म, के पौराणिक आख्यान, सपूत कपूत लक्षण और पुत्रशिक्षा के विभिन्न अंगों का संक्षेप में वर्णन किया गया है। शैली इतिवृत्तात्मक है।

१० वाम विनोद

यह स्त्री शिक्षा सम्बन्धी ग्रंथ है। इसकी रचना आश्विन शुक्ल १०, सं० १६२६ को हुई—

खंड[९] अंक[२] ग्रह[९] चंद्रमा[१], संवत आश्विन मास।
तिथि दसमी सित शुभ धरी, वाम विनोद प्रकास ॥

वाम विनोद में स्त्रीशिक्षा का महत्त्व और बलरामपुर राज्य म १६ वीं शती के उत्तरार्द्ध से महाराज दिग्विजय सिंह द्वारा की गई उसकी प्रचार व्यवस्था वर्णित है। गोकुल ने देशी शासन मे भारत की दुर्व्यवस्था का वर्णन करते हुये लिखा है—

देख्यौ भारतवासी भूपति। आपुस में विपरीत महा अति ॥
पृथु भूपति की तनया पिरथी। पतिपालक विन भई निरथी ॥
जब सो पूरन नृप गत भयऊ। विक्रम जीत भोज तक रहेऊ ॥
तेहि पाछे अस भयो न कोऊ। विद्या महि पालन में सोऊ ॥
नगर ग्राम बहु लग्यो उजारी। ठौर ठौर बहु जंगल भारी ॥
मग बटपार चोर बहु लागे। सौदागर तिनके भय भागें ॥
पथ चलत मे डाकू लूटे। तीरथ पथ पथिकन का छूटे ॥

युग की इस पतनोन्मुख स्थिति मे शिक्षा का भी ह्रास हुआ। पुरुष वर्ग म तो साक्षर लोग ढूँढने से मिल जाते थे किन्तु स्त्रियों मे उसका सर्वथा अभाव हो गया था—

मनुकुल म जे लखि नर नारी। तीनिउ जुग में पढ़ै बिचारी ॥
धरम करम जाते रहि जाई। नर नारी वह पढ़ै सदाई ॥
जब ते कलिजुग भूपति आयो। पुरुष लोग कछु पढ़त सधायो ॥
तरुनी जन पढ़िबा तजि दीनी। तौ किमि कन्या पढ़ै नवीनी ॥
पढ़ै नहीं कन्या की माता। कौन पढ़ावै उत्तम बाता ॥

ऐसी स्थिति मे स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से महाराज दिग्विजय सिंह ने बलरामपुर नगर तथा राज्य के विभिन्न भागों में कन्या पाठशालाओं की स्थापना की और गोकुल कवि को स्त्री धर्म शिक्षा विषयक एक ग्रन्थ लिखने का आदेश दिया। 'वाम विनोद' का निर्माण इसी परिस्थिति में हुआ—

कुल बनितन के धरम को, पतिव्रत जग व्योहार।
लोक उक्ति रस युक्ति युत, बिरच्यौ ग्रन्थ विचार ॥
नृप शासन रवि अद्रि उर, कीन्हें पुंज प्रकास।
बुद्धि विमल वारिज सदृश, विलसी भ्रमनिसि नास ॥

कन्या के सुधरन के हेतू। विद्या पढ़ैं होय चित चेतू ॥
ताते एक रचत इतिहासा। नीति धरम बहु भाँति प्रकासा ॥

नारिधरम सिसु यह कथन, सम्मत ग्रन्थ अनेक।
पढ़े सुने ते बुद्धि वर, उपजै नीति विवेक ॥

कवि ने प्राचीन भारतीय साहित्य से अनेक पतिप्राणा एवं विदुषी स्त्रियों के उपाख्यान लेकर विषय को शिक्षा प्रद होने के साथ ही रोचक बनाया है। विषय सूची निम्नांकित है—

भूमिका, चारि रीति, विद्यागुण, पतिव्रता वर्णन, अनुसूया सुशीला संवाद, शकुंतला इतिहास, विवाह विधि वर्णन, पंचपुत्र वर्णन, नल दमयंती इतिहास, कौशिकमुनि पतिव्रता संवाद वर्णन, धर्मव्याध इतिहास, सावित्री इतिहास, दुर्मति इतिहास, अज्ञात पतिते व्याह, अवेरनगर नृप के न्याय वर्णन, सुपति इतिहास, ज्ञात पतिते व्याह वर्णन, रीति धर्म वर्णन, गृहचरित्र व्यौहार, कृषि व्यौहार, सेवावृत्ति वर्णन, गुणवृत्ति वर्णन, वेदपुराण नाम, उपपुराण नाम, धर्मशास्त्रकर्ता नाम, विपत्ति निवारण कर्तव्य वर्णन, सूर्य और नृपक याहार के इतिहास, कुठौर सुठौर के लाभ तथा शुभ शिक्षा वर्णन।

११. चौबीस अवतार

यह बृहत्काय ग्रंथ दो खण्डों में विभाजित है—प्रथम खंड में बीस अवतारों—सनकादिक, वाराह, यज्ञपुरुष, हयग्रीव, नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, ऋषभ, पृथु, मीन, नरसिंह, कच्छप, धन्वंतरि, मोहिनी, वामन, मन्वंतर, हंस, हरि, परशुराम और राम, के तथा दूसरे खंड में व्यास, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि के चरित्र पुराणों के आधार पर लिखे गये है। अवतारचरित्र का कोश होने से ग्रंथकर्ताने इसे अवतारार्णव की संज्ञा दी है—

हरि चौबिस अवतार कथा अवतार आरनव।
भारी होवे हेत खंड द्विवि कीन्हें संभव॥
प्रथम खंड में किये बीस सनकादिक गाये।
खंड दूसरे माहि च्यारि अवतार बताये॥
कहि गोकुल कोविद कविन सो, चारि भाँति यहि जानिये।
लहि व्यास कृस्न फिरि बौध करि, कलि ते कलकी मानिये॥

इसकी रचना महाराज दिग्विजय सिंह की इच्छानुसार गोकुल कवि ने ६ वर्षों के कठिन परिश्रम से की थी। विजयादशमी सं० १९२६ से इसका लिखना आरम्भ हुआ और समाप्ति सं० १९३२ के चैत्र मास में पड़ने वाली महावारुणी द्वादशी को हुई—

मास कुवार विजय दसमी वर। शास्त्र[६] उभय ग्रह[९] ससि[१] संवत्सर।
श्रवन नछत्र सुभग गुरुवारा। ता दिन रचना रुचिर विचारा॥

उभय शशु द्रिग[३] ग्रह[१] समी[१], सनिवासर मधुमास।
महावारुनी द्वादसी, सपूरन परकास ॥

चैत्र शुक्ल ६, सं० १९३३ का यह जगबहादुरी यंत्रालय, बलरामपुर से प्रकाशित हुआ। ग्रंथ को शास्त्रसम्मत रखने के लिए महाराज ने राजपंडित राजेश्वरी दत्त को संशोधक नियुक्त किया। आश्रयदाता के अनुरोध से इस पौराणिक काव्य को गोकुल ने यथाशक्ति समस्त काव्य गुणों से अलंकृत करने का प्रयत्न किया—

एक समय यह रुचि नृप की हैं। गोकुल सों आज्ञा इमि दी हैं ॥
भाँति अनेकन छंद बनावहु। आदि जोति हरि के गुन गावहु ॥
वाचक लक्षक व्यंजक शब्दा। वाच्य लक्ष्य व्यंग्यादि अर्थदा।
वृत्ति रीति गुन भाव विभावा। हाव सहित बरनहु अनुभावा ॥
रस रसांग अपरांग बखानहु। रसवत् प्रेय उर्जस्वी ठानहु।
सहित समाहित बरनहु चारी। रसधुनि अरु धुनिभाव विचारी।
भाव शबल भावादय भाषहु। भाव सांति अरुसंधि बखानहु ॥
शब्द अर्थ अलकृत नामा। व्यंग अलंकृत करहु बखाना ॥

इससे यह विदित होता है कि कवि का उद्देश्य अवतार कथाओं का भक्ति पूर्वक वर्णन करना नहीं, काव्यांगों की छटा दिखाकर चमत्कार उत्पन्न करना है। इससे रचना अत्यंत साधारण कोटि की एवं आकर्षण हीन हो गई है।

१२. सोक विनास

सोक विनास शांत रस की रचना है। कहते हैं इसके निर्माण के कुछ ही दिनों पूर्व गोकुल कवि को पुत्रशोक सहना पड़ा था। उनका निम्नांकित छंद इसी घटना की ओर संकेत करता जान पड़ता है—

सब सोकन ते सोक सुत, प्रबल प्रान हर लेत।
पचाली के बसन लौं, बाढत करत अचेत ॥
देही जब लौं देह में, जीवै नर यहि लोक।
पुण्यपराकृत त्यहि उदै, लहै न सुत को सोक ॥
असनि असय पाखान ते, कठिन कठोरक कीय।
पुत्र मरे फाटै नही, सुत सोगी को हीय ॥

इसका निर्माण अगहन द्वितीया, सं० १९३२ को हुआ—

उभय राम ग्रह[१] चंद्रमा[१], संवत अगहन मास।
तिथि दुतिया 'बृज' पूर करि, तादिन सोक विनास ॥

इसके एक वर्ष बाद स० १९३३ में यह ग्रन्थ जगबहादुरी यन्त्रालय से छप कर प्रकाशित हुआ।

इसमें महाभारत, रामायण, गीता तथा भागवत आदि ग्रन्थों से तत्वज्ञान विषयक ऐसे आख्यान सकलित किये गये हैं जिनसे सांसारिक विषयों से विरक्त होकर जीव ईश्वरोन्मुख होता है।

१३. शक्ति प्रभाकर

यह अद्भुत रामायण का ब्रजभाषा में किया गया पद्यानुवाद है। इसकी भी रचना महाराज दिग्विजय सिंह की ही प्रेरणा से हुई—

अद्भुत रामायन कियौ, वाल्मीकि मुनि अच्छ।
अद्भुत चरित विचित्र अति, सिजै जानकी स्वच्छ ॥
कहत भयो नरनाह, वचन सुधारस घोलि वर।
ब्रजभाषा के माह, गोकुल यह भाषा करो ॥

इसकी समाप्ति स० १९३३ के आश्विन महीने में हुई और चैत्र शुक्ल १५, स० १९३६ को जगबहादुरी यन्त्रालय बलरामपुर से यह छप कर प्रकाशित हुआ।

परपरा से अद्भुत रामायण वाल्मीकि विरचित माना जाता रहा है किंतु है यह परवर्ती रचना। इसके कथानक में आदि से लेकर अन्त तक व्याप्त शाक्त प्रभाव के कारण ही इसे 'शक्तिप्रभाकर' अथवा 'जानकीविजय रामायण' की सज्ञा दी गई है।

जग जननी के पद अभिराम, मजुल उतपल छवि सब जाम।
शक्ति प्रभाकर कीरति ग्रन्थ, विजय जानकी स्तुति राद पथ ॥

इसकी भूमिका में सम्पूर्ण राम कथा सक्षेप में दे दी गई है किंतु उसमें भी प्रधानता जानकी चरित की ही है—

प्रथमै राम जन्म हम भाषा। पुनि मुनि श्राप बरनि रुचि राखा ॥
दडक वन ते महातमन के। श्रोनित ली है किये जतन के ॥
नारद श्राप रमा को दीन्हा। कीन्ह पराजै जो कछु कीन्हा ॥
मदोदरी गर्भ से सभव। वैदेही के जन्म कहे भव ॥
रामचन्द्र के विस्व स्वरूपा। भार्गो के दरसन अनरूपा ॥
रिष्यमूक परबत पर गयऊ। बात जात तहँ आवत भयऊ ॥
रूप चतुरभुज राम देखाये। पवन तनय का ज्ञान लखाये ॥
साथ सुकठ मयत्री कीन्हा। बालि मारि नृप पद तेहि दीन्हा ॥

तेहि दीन हरा पद रामचन्द्र समुद्र के तट पर गये।
तब लखन तन के ताप ते बारीस को सोखत भये॥
पुनि मरो मारो रावनहि निज नगर को आया जबै।
अभिषेक समय मुनीस लोगन किये बहु अस्तुति तबै॥
मुसकाइ सीता हेत बरनी सहस मुख रावन कथा।
जहँ सैलमानस सुभग उत्तर बसै रजनीचर जथा॥
रघुनाथ पुहुकर दीप को चलि गए सादर जुत तहाँ।
बिकराल काली रूप सीता किये धारन छबि महा॥
बध किये रावन सहस मुख का गवन निजपुर को किये।
पुरजन सपरिजन मुनिन जन को मेटि श्रम सब सुख दिये॥

१४. सुहृदोपदेश

सुहृदोपदेश 'टिढिभि उपाखयान' का ब्रजभाषा म किया गया छद बद्ध रूपान्तर है। गोकुल कवि ने इसे 'आत्मपुराण' नामक सस्कृत ग्रथ से सकलित बताया है। ग्रथ के अत मे दी गई पुष्पिका मे इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है —

"इति श्री गुरुशिष्य संवाद जतन भाग्य निरुपन टिट्टिभि उपाखयाने आत्मपुराणे सुहृद उपदेश ग्रथ गोकुल कायस्थ विरचिते तृतीयो प्रकाश ।"

इसकी रचना गोकुल ने आश्रय दाता के आदेश से स० १९३५ के भादों महीने में की थी—

महाराज दिग्विजै सिंह, राजन के महराज।
गोकुल को सासन दिये, भाषा भाषन काज॥
ताते बरनन करत हौं, यक टिट्टिभि पाखान।
सोखन हेत समुद्र के, जोरे जतन विधान॥
कीने बरवै छद में, सर[5] गुन[3] ग्रह[9] ससि[1] वार।
भाद्र मास प्रद भद्र सुभ, रचना किये विचार॥

आश्विन कृष्ण १३, स० १९३५ में ग्रथ यह जगबहादुरी यत्रालय बलराम पुर से प्रकाशित हुआ।

इसकी रचना का उद्देश्य है भाग्य तथा उद्योग—तकदीर और तदबीर के आपेक्षिक महत्व का प्रतिपादन। गोकुल कवि का मत है कि जो कार्य बल और धन से साध्य नहीं समझा जाता, वह प्रबल इच्छाशक्ति के द्वारा सरलतापूर्वक पूरा किया जा सकता है—

विक्रम वित ते होत नहि, कठिन काज जग जौ‍ ।
लहै कामना वृत्ति को, जोर जतन करि तौन ॥

संपूर्ण कथा गुरु शिष्य संवाद रूप में कही गई है। शिष्य भाग्यवादी है, और गुरु उपायवादी। दोनों अपने अपने मतका समर्थन प्रबल तर्कों से करते हैं। अंत में गुरु दोनों विचार धाराओं में बीज वृक्ष का सम्बन्ध बताते हुये सामंजस्य स्थापित करते हैं—

सत्य कहत हौं बात यह, दोऊ समता भाव ।
जतन भागि को साथ है, बीज वृक्ष को न्याव ॥

कुछ विद्वानों ने एक ही ग्रंथ में दो नाम देख कर भ्रमवश 'गिद्धिभ उपाख्यान' और 'सुहृदोपदेश' को दो पृथक् ग्रंथ मान लिया है।

१५. मृगया मयंक

आखेट पर लिखी गई गोकुल कवि की यह एक महत्त्व पूर्ण कृति है। हिन्दी के प्राचीन साहित्य में इस विषय पर इनी गिनी रचनाएँ ही मिलती हैं। मंगलाचरण में परब्रह्म के शिकारी रूप की वंदना की गई है जो ग्रंथ के प्रतिपाद्य विषय के अनुकूल ही है—

ऐसो पुरुष पुरान जो, प्रनमित बेद पुरान ।
जाके आदि न अंत है, सबते बिलग समान ॥
विघ्न नाग को करि बिजय, गो सज्जन प्रतिपाल ।
जग अटवी में करि अटन, अस वह खेल सिकार ॥

मृगया मयंक के आरंभ में शिकार के प्रति शास्त्रीय मत, शिकार करने योग्य जीवों का विवरण, शिकार करने के अधिकारी व्यक्ति, शिकारी की परिभाषा, शिकार के लाभ, उसके चौबीसगुणों तथा शिकार के निषिद्ध तत्त्वों का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् महाराज दिग्विजय सिंह द्वारा बनकस्था (नेपाल तराई) में आयोजित शेर के शिकार का विशद वर्णन किया गया है। हिमालय की पर्वत श्रेणी से लगा हुआ यह प्रदेश आखेट के लिए कितना उपयुक्त है, इसका वर्णन गोकुल के ही शब्दों में सुनिये—

गिरिवर समीप अटवी अपार । यक योजन उत्तर है पहार ॥
बानर बराह गैंडा गँभीर । पचानन अरना बाघ भीर ॥
दंती दराज बन सघन स्वच्छ । बहु बरन बिटप बिस्तार लच्छ ॥

इसी शिकार में घायल शेर के दहाड़ने से महाराज दिग्विजय सिंह का हाथी चौंककर भागा, दो पेड़ों के बीच फैली हुई लताओं में फँसकर वे हौदा समेत

प्रथ्वीपर गिर पड़े। सयोग वश महाराज जिस स्थान पर गिरे उससे तीन गज की ही दूरी पर घायल बाघ लताओं में फँसा एक झाडी मे तडप रहा था। दिग्विजय सिंह का गहरी चोट आई। उस समय तो लखनऊ के एक बगाली डाक्टर रामलाल चक्रवर्ता के उपचार से वे अच्छे हो गये किंतु ढलती हुई आयु मे लगे हुए भीषण आघात से उनका शरीर जर्जर हो गया और इस घटना के दो ही वर्ष बाद उनका देहावसान हो गया। मृगया मयंक मे इसका विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

इसका रचना शिकारियो के मनोरजनार्थ आश्विन शुक्ल १०, स० १९३७ हुई—

सवत मुनि गुन ग्रह ससी, आस्विन दसमी सेत।
पूर किया यहि ग्रथ का, भेद सिकारिन हेत॥

ओर मार्गशीर्ष शुक्ल १५, स० १९३७ का, इसका प्रकाशन जगबहादुरी यन्त्रालय बलरामपुर से हुआ।

१६. दिग्विजय प्रकाश

'दिग्विजय प्रकाश' म गोकुल कवि ने आश्रयदाता का सम्पूर्ण जीवन वृत्त तिथिक्रमसे छद बद्ध किया है। इसकी रचना महारानी इन्द्रकुँवरि के आदेश से हुइ। एक वर्ष के निरतर प्रयास से आषाढ पूर्णिमा स० १९४० को यह ग्रथ समाप्त हुआ—

सवत नभ श्रुति नद ससि, सित असाढ ससि पूर।
श्री दिग्विजय प्रकास को, तब कीन्ह परि पूर॥
गनपति गौरी गौरि पति, दिनपति श्रीपति ध्यान।
श्री महारानी कामना, करि पूरन अनुमान॥

इसके अतर्गत महाराज दिग्विजय सिंह की जीवनी क साथ ही नवाबी शासन में अवध की अवस्था, चकलेदारो और नाजिमो के अत्याचार, छोटे छोटे राज्यो म निरतर होने वाले पारस्परिक युद्धो और नवाबी शासन के अतिम दिनो में अंग्रेज रेजीडेण्ट के प्रभाव का बडा ही रोचक एव तथ्यपूर्ण वर्णन मिलता है। एक समकालीन विवरण होने से इसका ऐतिहासिक महत्व निर्विवाद है।

स० १९१४ (१८५७ ई०) के स्वतन्त्रता सग्राम के समय उत्तर भारत की विस्फोट पूर्ण स्थिति का चित्रण प्रत्यक्ष दर्शी कवि ने इन शब्दों में किया है—

कलकत्ता के तीर मुदाम । नगर दमदमा बसा ललाम ॥
तहाँ चमार कहे द्विज बोलि अनरथ की गठरी उन खोलि ॥
लोटा देहु पियं हम नीर । यह सुनि कहा विप्र गभीर ॥
पानी तुमको देहुँ पियाइ । लोटा दीने धर्म नसाइ ॥
कारतूस जो बनो निहारि । गाय सुअर की चरबी डारि ॥
दाँतन ते तुमसे कटवाइ । साहेब लोग करहि अस आइ ॥
तब तुमार कहँ रहे विचार । सुनी तिलगन बात बिकार ॥
वह चमार फिरिगो निज ग्राम । विप्र गये चलि अपने धाम ॥
जब साहेब पलटन के आइ । लाग कवाइद करै तहाँइ ॥
कारतूस कहि काटहु दाँत । सुनत किए तिलगन घात ॥

दो०—सुने तिलगा लोग सब, जो चमार कहि बात ।
तातें काटत नहि तहाँ, कारतूस धरि दाँत ॥

तब साहेब अस कह्यो रिसाय । काटहु नहि गोली का खाय ॥
बात न जानो साहेब सोइ । जो चमार कहि ग्रामहि जाइ ॥
तब पलटन वाले अनुमान । किये मन्त्र मत धर्म प्रधान ॥
साँच चमार कहो वह बात । कीन्ह प्रतीत धर्म अब जात ॥
फिरि साहेब काटन कहि दाँत । सुनते किये तिलगन घात ॥
मारा एक बारही दागि । गोली साहेब के नहि लागि ॥
साहेब गए जबै दुरि दूरि । तबै तिलगन कलह बिसूरि ॥

दो०—लिखे तिलगन हाल यह, सब पलटन के पास ।
धर्म हानि चाहत किया, होउ सहाय सहास ॥

यहि प्रकार लिखि पत्र पठाये । गंगा गोरि के सौंह देवाये
यह हवाल सुनि पलटन लागा । बदलि गए अँगरेज अभागा ॥
जहाँ कहूँ अँगरेजन पावैं । लूटि लेहि मारहि धरि धावैं ॥
बाल वृद्ध नहि करहि विचारा । डारहि मारि बाल बर दारा ॥

इसकी लपट अवध में भी फैली । सारा प्रान्त विद्रोह की अग्नि से धधकने लगा—

सूबे अवध माहि भा सारा । जितनी रही सेन चहुँ ओरा ॥
बदलि गए सब देस सिपाही । साहेब सासन मानत नाही ॥
मेरठ अंबाला दिल्ली मे फिरी फौज तिलगान ।
अँगरेजन के बालक बनिता तिनके बचे न प्रान ॥

आइ लखनऊ बेली गारद गारद करिबे काज ।
जितक लखनऊ माँहि रहे थे इंगिलिस्तान समाज ।।
सो सब बेली गारद माहीं किया घोर घमसान ।
तोप तुपक तलवार लड़ाई की हैं कठिन बखान ।।
बिरजिसकदर तनय बेगम को बादसाह करि ताहि ।
मम्मूँ खाँ नवाब आदिक को करि उजीर रुचि जाहि ।।

इस युद्ध में हिंदू मुसलमान एक होकर अँग्रेजी शासन के विरुद्ध लड़े थे। गोकुल कवि की निम्नांकित पंक्तियाँ इसकी साक्षी हैं—

मिले तिलंगे मुसलमान को कहो दीन की हानि ।
आपुस माहिं कसम को खाए गंग कुरान बखानि ।।
झंडा महा महंमदी लीने देबे को निज प्रान ।
जहाँ मिलै अँग्रेजी चाकर अरु अँग्रेज प्रधान ।।
मारि जीव से लूटि लेहिं धन किया उपद्रव आइ ।
पुर नलिराम माहि चलि आए दगा दीन्ह मचाइ ।।

यह उल्लेखनीय है कि इस युद्ध में महाराज दिग्विजय सिंह ने विद्रोहियों का प्रत्यक्ष विरोध न करते हुये भी अँग्रेजों को शरण दी थी। अतः गोकुल कवि का दृष्टिकोण अपने आश्रयदाता की नीति के अनुकूल ही था। उक्त वर्णन में इसका क्षीण आभास मिलता है।

'दिग्विजय प्रकाश' एक प्रशंसात्मक जीवनी होते हुए भी अनेक उपयोगी तथ्यों तथा तिथियों से सुसज्जित है। गोकुल कवि का दावा है कि इसमें महाराज दिग्विजय सिंह के जीवन का ६३ वर्ष पर्यंत वृत्त केवल प्रत्यक्ष अनुभव तथा विश्वसनीय तथ्यों पर आधारित है। संदिग्ध एवं अनर्गल बातों को इसमें स्थान नहीं दिया गया है—

जनम बरष ते गनि लिखे, बासठि बरष प्रमान ।
लागत तिरसठि बरष के, नृपकर प्रान पयान ।।
बरष बरष के कहि सबै, सुख दुख प्रभुता पाइ ।
लिखत सत्य हम जानि सब, नहिं कछु झूठ मिलाइ ।।

१७. एकादशी महात्म्य

इसकी मूल प्रति उपलब्ध न हो सकी। श्री रामनारायण मिश्र के अनुसार इसका निर्माण काल सं० १६३६ है। संभवतः इसकी रचना महाराज दिग्विजय सिंह के देहावसान के पश्चात् महारानी इन्द्रकुँवरि के लिये हुई थी।

१८. महारानी धर्म चन्द्रिका

यह मनुस्मृति का पद्यानुवाद है। गोकुल कवि ने महाराज दिग्विजयसिंह की छोटी रानी, जयपाल कुँवरि, की इच्छानुसार सं० १९५४ के चैत्र महीने में इसे लिखकर पूरा किया था—

धरम सास्त्र में चित सदा, रहत अमल आचार।
मनुस्मृति सब लोक के, निरने जग व्योहार॥
निज सेवक महराज के, मन अनुगामी जानि।
गोकुल से सासन दियो, धर्म हेतु अनुमानि॥
स्वायंभू मनु जो कियो, धर्म शास्त्र सुचि ग्रंथ॥
जामें चारिहु वेद के, सार अमल सुचि पंथ॥
भाषा छंद प्रबंध में, भाषा कीजे सोइ।
अल्प बुद्धि जो पुरुष हैं, देखि प्रेम जेहि होइ।
बेद बान ग्रह चन्द्रमा, सम्वत मास वसंत।
परिपूरन ता दिन कियो, सुमिरि गुरू पद संत॥

इसका प्रकाशन उक्त रानी साहिबा के निजी व्यय से खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना (बिहार) से सं० १९६१ में हुआ।

१९. गद्दी प्रकाश

गोकुल कवि की यह अंतिम रचना महाराज दिग्विजय सिंह के उत्तराधिकारी (दत्तकपुत्र) महाराज भगवती प्रसाद सिंह के राज्याभिषेक के अवसर पर आषाढ़ कृष्ण ८, सं० १९५७ (१९ जुलाई, सं १९०० में) लिखी गई थी। इसमें मुख्य रूप से उक्त उत्सव की धूमधाम, नाच तमाशा, दरबार, विशाल भोज, दानादि का विस्तार से वर्णन किया गया है। गद्दीनशीनी के पहले महाराज भगवती प्रसाद सिंह की नाबालिगी में बलरामपुर राज्य कई वर्षों तक शासकीय प्रबंध (कोर्ट आफ वार्ड्स) में रहा था। उस समय अंग्रेज प्रबंधकों के अत्याचार पूर्ण शासन से त्रस्त प्रजा ने जिस उत्साह के साथ महाराज के अभिषेक में अपना हार्दिक उल्लास व्यक्त किया था, उसकी झलक गोकुल कवि के इन छंदों में मिलती है—

उत्पल ऐसे फूलि उठे हैं प्रजा के नैन,
बैरी अवनीसन के बल गुन टूटे हैं।
चक्र चंचरीक से अनंद अमलों के वृंद,
वार अध अहित के मद पान फूटे हैं॥

दुरे दुष्ट चोर चड उडगन चद मद,
भानु भूप के प्रकास राजसिरी जूटे है।
व्योम° विधि गह¹ चद्र¹ जोलाद् ग्रह चद्र¹
आजु महाराज राज कोरट से छूटे हैं ॥
छूटे भय भीति ते रियासत के काम काजी,
जनपद जन के सँकोच सोच छूटे हैं।
छूटे हैं वियोग के विषाद ते कलत्र मित्र,
महाराज धाम रहे विवश ते छूटे हैं ॥
छूटे दु ख दारिद सुजन कवि कोविद के,
गोकुल के मन के मलाल मैल छूटे है।
छूटे हैं तमासे तोम अमला जो कोरट के
आज महाराज राज कोरट से छूटे हैं ॥

ग्रथके अत में बलराम पुर राज्य के पुराने कर्मचारियो, ठेकेदारों और प्रजा में वितरित खिलअत तथा पुरस्कार का ब्योरा दिया गया है।

इसका प्रकाशन बलरामपुर के राजकीय यत्रालय (प्राचीन जगबहादुरी लीथो प्रेस) से पौष कृष्ण ५, स० १६५८ को हुआ।

अब तक गोकुल कवि की जिन १६ पुस्तकों का विवरण दिया गया है वे सभी बलरामपुर दरबार की छत्रछाया मे निर्मित हुईं थीं। इनके अतिरिक्त उनकी ऐसी तीन अ य रचनाओं का पता चला है जो दूसरे साम तों के लिए लिखी गईं थीं। वे हैं—कृष्णदत्त भूषण, अचल प्रकाश और महावीर प्रकाश। प्रस्तुत लेखक का ये उपलब्ध न हो सकी। अत नीचे दिये गये उनके सक्षिप्त विवरण से ही सतोष करना चाहिये। इनमें से किसी का भी रचनाकाल ज्ञात नहीं है। मेरा अनुमान है कि उनकी रचना गोकुल कवि ने बलरामपुर दरबार में स्थायी आश्रय ग्रहण करने के पूर्व की थी।

२०. कृष्णदत्त भूषण

यह सिहाचन्दा (गोंडा) के राजा कृष्णदत्तराम पाण्डे के लिए लिखा गया।

२१. अचल प्रकाश

इसकी रचना मेहनौन (गोंडा) के राजा अचल सिंह के नाम पर हुई थी।

२२. महावीर प्रकाश

पयागपुर (बहरायच) के ठाकुर विजयराज सिंह के आश्रय में भी गोकुल कुछ समय तक रहे थे। 'महावीर प्रकाश' की रचना उसी समय हुई।

गोकुल कवि की इस विशाल ग्रंथ सूची से ही उनकी असाधारण काव्य प्रतिभा का अनुमान लगाया जा सकता है। काव्यशास्त्र, नीति दर्शन, जीवनी, आखेट आदि विभिन्न विषयों से साहित्य भंडार को समृद्ध करने के साथ ही अनेक अज्ञात एवं अल्पख्यात कवियों को प्रकाश में लाकर उन्होंने राष्ट्रभाषा की जो सेवा की है वह अद्भुत एवं स्पृहणीय है।

कवि-परिचय

१. अकबर

मध्यकालीन मुसलमान शासकों में हिन्दी साहित्य का सर्वाधिक विकास अकबर के ही राजत्वकाल (स १६१३–१६६२) मे हुआ। नरहरि तथा गग ऐसे कवीश्वरों और तानसेन ऐसे अप्रतिम सगीताचार्य को प्रश्रय देकर उसने राजनीतिक उथल पुथल से निराश्रित दरबारी कवियों की परपरा को ही पुनरु जीवित नहीं किया, प्रकारा तर से तुलसी, सूर और रहीम ऐसी विभूतियों की साहित्यिक प्रतिभा के विकास का भी मार्ग प्रशस्त कर दिया। इतना ही नहीं, ब्रजभाषा में स्वय काव्य रचना कर इस उदार एव दीर्घदर्शी शासक ने हिन्दी भाषा को विशेष गौरव प्रदान किया। हि दी एव हि दू सस्कृति के प्रति अकबर का अगाध प्रेम, उनकी 'रामसीय भाँति' की स्वर्ण मुद्राओंसे व्यक्त होता है,[१] जो मृत्यु के कुछ ही महीने पूर्व स० १६६२ में प्रचारित की गई थी।

'दिग्विजय भूषण' मे इनके तीन शृगारी छद उदाहृत हैं। उनमें से दो में 'साह अकब्बर' की छाप है, एक मे केवल 'अकबर' की। ग्रियर्सन साहब ने 'अकबर राय' छापसे लिखे गये कतिपय छदों का उल्लेख किया है कि तु उ हें तानसेन विरचित बताया है[२]। इधर श्री मयाशकर याज्ञिक ने अकबर बादशाह की स्फुट रचनाओं का एक सकलन 'अकबर सग्रह' नाम से प्रकाशित किया है, जिससे यह सिद्ध हो जाता है कि अकबर की हि दी रचना में बडी रुचि एव गति थी[3]। ऐसी स्थिति मे ग्रियर्सन साहब की यह धारणा कि अकबर की छाप से प्राप्त सभी रचनायें तानसेन विरचित हैं, ठीक नहीं जँचती। इस प्रकार की सभावना केवल उ हीं छ दों के विषय में स्वीकार की जा सकती है जिनमें आश्रय दाता को सम्बोधित करने के प्रसग में 'अकबर' का नाम रखा गया है। उनके रचयिता तानसेन भी हो सकते हैं और अन्य दरबारी कवि भी। शिवसिंह जी

१ विशेष अध्ययन के लिए द्रष्टव्य—'रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय' पृष्ठ ११० (भगवती प्रसाद सिह)।

२ हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृष्ठ ११४।

1 Akbar composed distichs in Brijbhakha and if any Indo Aryan language could be labled as a Badshahi Boli it was certainly Brijbhakha

—Indo Aryan and Hindi, P 180—Dr S K Chatterjee

ने 'सरोज' मे अकबर के जो छन्द सकलित किये है उनका आधार 'दिग्विजय भूषण' ही है।

२. अन्य कवि—प्रथम

३. अन्य कवि—दूसरे

४. अन्य कवि—तीसरे

५. अन्य कवि—चौथे

६. अन्य कवि—पाँचवें

७. अन्य कवि—छठवें

८. अन्य कवि—सातवें

९. अन्य कवि—आठवें

१०. अनीस

हि दी ससार को इस कवि का केवल एक छ द ज्ञात है और उसीके आधार पर इसे जितनी प्रसिद्धि प्राप्त हुई है उतनी पचासों ग्रन्थों से साहित्य भाडार को भरने वाले कवियो को भी नसीब न हो सकी। कहना न होगा कि उस छद (सुनिए विटप हम पुहुप तिहारे) को काव्य रसिकों तक पहुँचाने का मुख्य श्रेय 'दिग्विजय भूषण' को ही है। शिवसिंह जी ने उसे सरोज मे वहीं से लेकर सकलित किया। इसके बाद ही उसका व्यापक प्रचार हुआ।

मिश्रबधुओंने दलपतराय वशीधर के 'अलकार रत्नाकर' में भी अनीस के छ द सग्रहीत बताये हैं। इस ग्रथ की रचना स० १७६८ में हुई अत अनीस निश्चित रूप से इसके पूर्ववर्ती कवि माने जा सकते हैं, कि तु सरोजकार के अनुसार इनका उपस्थिति काल स० १६११ है। ऐसी दशा में यह निश्चय करना कठिन है कि अनीस का आविर्भाव कब हुआ। उपलब्ध तथ्यों के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि १८ वीं शतीके अतिमचरण तक ये पर्याप्त ख्याति लाभ कर चुके थे। अलकार रत्नाकरमे इनके छ दों का सकलन इसी तथ्य का द्योतक है।

११. अनुनैन

शिवसिह जी ने इनका उदयकाल स० १८६६ बताया है और नख शिख पर लिखी गयी इनकी एक रचना की प्रशसा की है। परवर्ती इतिहास लेखकों— ग्रियर्सन तथा मिश्रबधुओं, ने इस सम्बन्ध में सरोजकार का ही अनुसरण किया है। अनुनैन की जीवनी तथा कृतियों पर अ य स्रोतों से कोई प्रकाश नहीं पडता। दिग्विजय भूषण में इनके तीन छ द आये है, जिनमें से दो नखशिख के हैं एक षट्ऋतु वर्णन का।

१२ अभिमन्यु

ये खानखाना अब्दुर्रहीम के आश्रित कवि थे। मिश्रबधुओं ने आश्रयदाता की प्रशसा म लिखे गये इनके कुछ छ दों का उल्लेख किया है। रहीम का देहावसान स० १६८३ मे हुआ। शिवसिहजी ने अभिमन्यु का उपस्थिति काल स० १६८० माना है। अत अभिम यु निर्भ्रा त रूपसे रहीम के समकालीन ठहरते हैं। दिग्विजय भूषण मे इनका एक छ द उदाहृत है। इनकी कोई सम्पूर्ण कृति नहीं मिलती।

१३ अमर

भूषणकार ने 'अमर कवि' के नाम से दो छंद उदाहृत किये हैं। उक्त दोनों कवित्तों में उस इतिहास प्रसिद्ध घटना का चित्रण किया गया है जिसमें जोधपुर के महाराज अमरसिंह ने अपमानजनक व्यवहार से उत्तेजित होकर सरे दरबार सलावतखाँ का वध किया था और शाहजहाँ पर आक्रमण कर दिया था। इन दोनों छंदों में अमरसिंह का नाम आया देखकर गोकुल कवि ने भ्रांतिवश उन्हें ही उनका रचयिता मान लिया। वास्तव में दोनों छंद अमरसिंह के दरबारी कवि रघुनाथराय के हैं। संयोगवश उनमें से एक में रघुनाथराय की छाप भी दी हुई है। अतः अमर कवि अथवा अमरसिंहका नाम भूषणकार ने कवियों की श्रेणी में भूलकर ही रख दिया है। अमर सिंह की ख्याति रघुनाथराय और बनवारी ऐसे सुकवियोंके आश्रयदाता रूप में ही है, कवि रूप में नहीं।

१४. अमरेश

ये गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन शृंगारी कवि थे। शिवसिंह जी ने इनका उदयकाल सं०१६३५ माना है और इनकी कवितायें कालिदास कवि के हजारा में संकलित बताई हैं। इससे भी ये सं० १७५० के पूर्ववर्ती कवि ठहरते हैं। दिग्विजय भूषण में इनके दो छन्द उदाहृत हैं, जिनमें से एक सरोज में संग्रहीत है।

१५. अयोध्या प्रसाद बाजपेयी 'औध'

औध कवि भूषणकार के समकालीन एवं सुपरिचित थे। ये सातनपुरवा, जिला रायबरेली के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका आविर्भाव सं० १८६० में हुआ। इनके पिता पं० नंदकिशोर बाजपेयी पंडिताई तथा लेनदेन की आय से घर का खर्च चलाते थे। औध कवि ने आरम्भमें अपनी जन्मभूमि के निकटस्थ हसनपुरवा नामक गाँव के निवासी गजाधर प्रसाद से व्याकरण, ज्योतिष एवं काव्य शास्त्र का अध्ययन किया और उन्हीं से काव्य रचना भी सीखी। इनके कवि जीवन का अधिकांश राजदरबारों में बीता। इनके आश्रयदाताओं में महाराज दिग्विजय सिंह (बलरामपुर गोंडा), राजा सुदर्शन सिंह (चन्दापुर बहरायच), राजा हरिदत्त सिंह (बौंड़ी बहरायच), राजा मुनीश्वर बख्शसिंह (मल्लापुर-सीतापुर) और पाण्डे कृष्णादत्तराम (गोंडा) विशेष उल्लेखनीय हैं। राजा हरिदत्तसिंह द्वारा प्रदत्त 'बाजपेयी का पुरवा' (जिला बहरायच) में औध कवि के वंशज अब तक बसे हुए हैं। १८५७ की क्रांति के पश्चात्

बौंडी राज्य के साथ ही वाजपेयी जी की माफी भी जब्त हो गई। अत औध कवि अपनी ज मभूमि को लौट आये।

प्रसिद्ध है कि एक बार अपनी ससुराल, कन्नौज, की यात्रा में इनकी भेंट पद्माकर से हुई थी और वे इनकी रचनायें सुनकर बहुत प्रभावित हुए थे। उन्हीं की प्रेरणा से इन्होंने नरकाव्य रचना से विरत होकर भक्ति काव्य लिखना आरभ किया था। अयोध्या के प्रसिद्ध महात्मा प० उमापति, बाबा रघुनाथ दास और महात्मा युगलान यशरण इन पर बडी कृपा रखते थे। बलरामपुर नरेश दिग्विजय सिह ने 'रघुनाथ शिकार' पर इनके छ द महात्मा युगलान य शरण के यहाँ, लक्ष्मण किला (अयोध्या) पर, सुना था। उससे प्रभावित होकर वे इन्हें अपने साथ बलरामपुर ले आये थे और नौ मास तक बडे सम्मान के साथ रखकर विदा किया था।

अपने जीवन का अतिम समय इ होंने अयोध्या में ही बिताया और वहीं कार्तिक शुक्ला २, स० १९४२ में, ८२ वर्ष की आयु में इनका साकेत वास हुआ।

गोकुल कवि से इनकी भेंट बलरामपुर दरबार में हुई थी। उ होंने निम्ना कित कवित्तमें वाजपेयीजी के प्रभावशाली व्यक्तित्व का अच्छा चित्र खींचा है—

वर भाल पै भावै विभूति भली
सुभ चदन चद प्रभा ससि सेखर।
वच्छ पै माल लसै रुद्राच्छ
सुआसन योग के अन्य जुगेस्वर॥
पतिवर्तनि मैं गिरिजा सी तिया
गणनायक पुत्र सों पुत्र सुरेस्वर।
'बृज' ओध प्रसाद को रूप विसाल,
बिना विष व्यालके दूजो महेस्वर॥

इसीलिये समकालीन कवि होते हुये भी इनकी रचनायें दिग्विजय भूषण में सकलित की गई। अब तक इनकी निम्नाकित कृतियाँ खोज में उपलब्ध हो चुकी हैं—अवध सिकार, राग रत्नावली, साहित्य सुधा सागर, राम कवितावली, छ दानन्द, शकर शतक, ब्रजब्रज्या, चित्रकाव्य और रास सर्वस्व।

१६. अहमद

इनका असली नाम ताहिर अहमद था। ये आगरा के निवासी और मुगल बादशाह जहाँगीरके समकालीन थे। 'कोकसार' नामक अपनी एक रचना में आत्म परिचय देते हुये ये लिखते हैं—

सम्वत सोरह सै बरस, अठहत्तरि अधिकाय।
बदि असाढ़ तिथि पचमी, कहि की ही समुझाय॥
चारि चक्र सब बिधि रचे, जैसे समुद गभीर।
छत्र धरे अविचल सदा, राज साहि जहँगीर॥

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँगीर के शासन काल (सं० १६६२–१६८४) में ये विद्यमान थे। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में इन्हें कहीं सूफी और कहीं वैष्णव मतावलम्बी बताया गया है। जो भी हो, इनकी रचनाओं में शृङ्गारिकता का गहरा पुट मिलता है। उनकी नामावली ही इसे स्पष्ट कर देती है—अहमद बारहमासी, कोकसार, रतिविनोद, रसविनोद और सामुद्रिक।

दिग्विजय भूषण में इनके दो कवित्त उद्धृत हैं। साहित्य क्षेत्र में इनकी प्रसिद्धि के मुख्य आधार ऐसे ही कतिपय भावपूर्ण छंद हैं। कुछ नमूने देखिये—

काह करौं बैकुंठ लै, कल्प वृच्छ की छाँह।
अहमद ढाक सुहावनो, जो पीतम गलबाँह॥
मन बिहग तो लौ उड़ै, नेम सघन बन माहिं।
प्रेम बाज की झपट में, जब लगि आवै नाहिं॥
पलटि परत ताकी दसा, जो सनेह रग रात।
और अग मिटि कै सबै, नैना ही ह्वै जात॥
नैना लगे कुठाउँ, बिन देखे नहि चैन चित।
अहमद कैसे जाउँ, गाढ़ी चौकी लाज की॥

१७. आलम

इनका जन्म सनाढ्य ब्राह्मण कुल में हुआ था। उस समय इनका क्या नाम रखा गया था—पता नहीं। काव्य रचना में आरम्भ ही से इनकी रुचि थी। एक दिन इन्होंने अपनी पगड़ी किसी रंगरेज को रंगने के लिये दी। उसकी स्त्री ने रंगने के उद्देश्य से जब पगड़ी पानी में भिगोना आरंभ किया तो खूँट में कागज का एक टुकड़ा बँधा मिला। उसमें लिखा था—

कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन।

उसने तत्काल ही दोहे का उत्तरार्ध इस प्रकार पूरा कर उसी कागज पर लिख दिया—

कटि को कचन काटि बिधि, कुचन मध्य धरि दीन ॥

रँगाई के बाद पडितजी को जब पगडी वापस मिली तो उसके खूँट में बँधे हुए कागज को खोलने पर दोहे की दूसरी पक्ति पढ़कर वे विस्मय विमुग्ध हो गये। पता लगाने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि वह रचना रगरेज की स्त्री 'शेख' की है। पडित जी उस विदग्धा रगरेज़िन को हर कीमत पर अपनाने का प्रयत्न करने लगे। अत में जब वह किसी भाँति अपना धर्म परिवर्तन करने पर राजी न हुई तो पडितजी ने स्वय ही पैतृक सस्कारों को तिलाजलि देकर उससे निकाह कर लिया। आलम नाम उनके इसी यवनी अनुरक्त चोले का पडा। पुराने धर्म के साथ पुराना नाम भी मिट गया। प्रसिद्धि आलम की ही हुई।

कहते हैं शेख से उत्पन्न आलम के जहान नामक एक पुत्र था। आलम के आश्रयदाता ने एक बार शेख को दरबार में बुलाकर मज़ाक में पूछा 'क्या आलम की औरत तुम्हीं हो?' शेख ने तत्काल उत्तर दिया 'हाँ जहाँपनाह! जहान की माँ मैं ही हूँ?' शेख की इस हाजिरजवाबी से सभी आश्चर्यचकित हो गये। इश्क की नई लहर ने व्यक्तित्व को सीमित करने वाले सभी लौकिक बधन तोड़कर उनके हृदय को आलम (विश्व) की विशालता प्रदान कर दी।

आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने ग्रियर्सन तथा मिश्र बन्धुओं के आधार पर इन्हें औरगजेब के दूसरे लडके शाहज़ादा मुअज्ज़म (बहादुर शाह) का आश्रित माना है और इनका कविता काल स० १७४० से स० १७६० तक निश्चित किया है। परन्तु इधर श्री मयाशकर याज्ञिक ने आलम के आविर्भाव सम्बन्धी जो तथ्य उपस्थित किये हैं उनसे ये अकबर के समकालीन ठहरते हैं। इनका कविताकाल इस नई खोज के अनुसार स० १६४० से स० १६८० तक ठहरता है।

अब तक आलम की केवल दो कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं—आलमकेलि और माधवानल काम कदला। इनके अतिरिक्त विभिन्न काव्यसग्रहों में इनकी स्फुट कवितायें पाई जाती हैं। स्वर्गीय मुशी देवीप्रसाद के पास आलम और शेख के ५०० के लगभग छद सग्रहीत थे।

दिग्विजय भूषण में इनके चार छद उदाहृत हैं।

१८. इन्दुकवि

सरोजकार ने इनका उपस्थिति काल सं० १७७८ निश्चित किया है। किस आधार पर ? इसका उल्लेख नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त इनकी जीवनी विषयक कोई तथ्य उपलब्ध नहीं है। गोकुल कवि ने इन्दुकवि के दो कवित्त उदाहृत किये हैं, जिनमें से एक भूषण के प्रसिद्ध छंद 'नगन जडातीं ते वे नगन जडाती हैं' का ही कुछ परिवर्तित रूप है। संयोगवश शिवसिंह जी ने भी इंदुकवि की रचनाशैली के नमूने में यही छंद उद्धृत किया है। इससे दिग्विजय भूषण और 'शिवसिंह सरोज' के इंदु कवि की अभिन्नता असंदिग्ध हो जाती है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इंदु भूषण के परवर्ती हैं। शिवसिंह जी द्वारा पूर्व निर्दिष्ट उदयकाल भी इसकी पुष्टि करता है।

१९. उदयनाथ कविन्द

ये 'हजारा' के रचयिता प्रसिद्ध कवि कालिदास त्रिवेदी के पुत्र थे। असल नाम उदयनाथ था। कविन्द अथवा 'कवीन्द्र' की उपाधि इन्हें अपने गुणग्राही आश्रयदाता अमेठी (जिला सुलतानपुर) के राजा गुरुदत्त सिंह से मिली थी।

कालिदास कवि के सुवन, उदयनाथ सरनाम।
भूप अमेठी के दियो, राखि कविन्द सुनाम॥

इनका जन्म सं० १७३६ में बनपुरा (अन्तर्वेद) में हुआ था। अठारहवीं शती के प्रसिद्ध युद्ध वीर राजाओं की छत्रछाया प्राप्त कर इनकी वाणी जैसी ओजपूर्ण कृतियों की रचना में समर्थ हुई और उससे इन्हें जितनी प्रतिष्ठा मिली उतनी भूषण को छोड़कर अन्य किसी वीरकाव्यप्रणेता को प्राप्त न हो सकी। अमेठी के राजा गुरुदत्त सिंह, असोथर के राजा भगवन्त राय खीची, आमेर (जयपुर) के महाराज गजसिंह और बूंदी नरेश राव बुद्ध सिंह हाड़ाकी प्रशस्ति में लिखी गई इनकी रचनायें हिन्दी वीरकाव्य की अमूल्य निधियाँ हैं। रीतिकालीन कवि होने से शृंगार निरूपण भी इनकी काव्य रचना का प्रमुख विषय रहा। रसचन्द्रोदय (सं० १८०४), विनोदचन्द्रिका और योगलीला इस शैली में लिखी गयी इनकी अन्य कृतियाँ हैं।

गोकुल कवि ने इनके दो छंद उदाहृत किये हैं—एक बूँदी के राजा गजसिंह की प्रशंसा में है और दूसरा नायिका भेद सम्बन्धी। ये दोनों छंद सरोज में उद्धृत हैं किन्तु वहाँ उनमें से एक उदयनाथ बंदीजन बनारसी के नाम लिखा

गया है। ऐसी गलती ग्रन्थकार ने भ्रान्तिवश की है। वस्तुत ये दोनों रचनायें प्रसिद्ध उदयनाथ कविन्द की ही हैं।

२०, ऋषिनाथ

ये असनी (जिला फतेहपुर) के रहने वाले ब्रह्मभट्ट थे। काशिराज बरिबंड (बलवन्त) सिंह के दीवान, रघुबर दयाल के पिता, इनके आश्रयदाता थे। उसी सम्बन्ध से ये कुछ दिन काशिराज के भाई देवकीनन्दन सिंह के भी पास रहे थे। इनके पुत्र ठाकुर, पौत्र धनीराम और प्रपौत्र सेवक, सभी अपने समय मे काशी के प्रतिष्ठित कवि माने जाते थे। इनमें अंतिम, सेवक कवि, भारतेंदु जी के समसामयिक थे।

ऋषिनाथ की एक मात्र प्राप्त रचना 'अलंकारमणिमंजरी' है, जो बसंत पचमी, सोमवार, सं० १८३० को लिखकर पूरी हुई थी। दिग्विजय भूषणमे इनका एक छंद नायिका भेद पर दिया गया है।

२१. कविदत्त

दिग्विजय भूषण मे कविदत्त और दत्तकवि नामक दो कवियों का पृथक् निर्देश करते हुए गोकुल कवि ने उनमे से प्रत्येक की रचनाओं से अलग अलग छन्द उद्धृत किए हैं और इस प्रकार उन्हें दो भिन्न व्यक्ति माना है। कविदत्त के दो और दत्तकवि का एक कवित्त उदाहृत है। किंतु उक्त दोनों कवियों की उद्धृत रचनाओं में छाप 'कविदत्त' की ही है। इससे यह विदित होता है कि वास्तव में उनके रचयिता एक ही है। शिवसिंह जी का भी यही मत है।

कविदत्त अन्तर्वेद मे गंगातट पर स्थित जाजमऊ के निवासी थे। अपना परिचय देते हुए ये लिखते है —

अन्तर्बेद पवित्र महा असनी औ कनौज के बीच बिलास है।
भागीरथी भवतारनि के तट देखत होत सो पातक नास है॥
देव सरूप सबै नरनारी दिनो दिन देखिये पुन्य प्रकास है।
जज्ञ निनानबे कीने जजाति सो जाजमऊ कविदत्त को वास है॥

इनके मुख्य आश्रयदाता चरखारी नरेश खुमानसिंह (शासन काल सं० १८१२-३९) थे। ये कुछ दिन टिकारी (बिहार) के राजकुमार फतेसिंह के यहाँ भी रहे थे। इनकी तीन रचनायें मिलती हैं—लालित्यलता, सज्जनविलास और स्वरोदय।

२२. कविन्द

भूषणकार ने एक ही कवि, उदयनाथ 'कवि द' को उसकी कृतियों में उल्लिखित वास्तविक नाम (उदयनाथ) तथा उप ाम (कवि द) की पृथक् पृथक् छापों के आधार पर, भ्रान्तिवश, दो भिन्न कवि मान लिया है। ये कालिदास त्रिवेदी के पुत्र उदयनाथ ही हैं जि हें अमेठी के राजा गुरुदत्त सिंह ने 'कवि द' अथवा 'कवी द्र' की उपाधि दी थी।

२३. कविराज

ये कपिला (जिला फर्रुखाबाद) निवासी प्रसिद्ध कवि सुखदेव मिश्र हैं, जो कविराज छाप से काव्य रचना करते थे। 'कविराज' की उपाधि इन्हें राजा राजसिंह गौड से प्राप्त हुई थी। इनका जन्म स० १६६० के लगभग हुआ था। काशी के विख्यात विद्वान् कवीन्द्राचार्य सरस्वती इनके काव्य गुरु थे। असोथर के राजा भगव त राय खीची, डोंडिया खेरा (बैसवाडा) के राव मर्दन सिंह, औरंगजेब के मन्त्री फाजिल अली, अमेठी के राजा हिम्मतसिंह आदि अनेक काव्य प्रेमी राजाओं का आश्रय प्राप्त कर इ होंने पर्याप्त यश एवं सम्पत्ति अर्जित किया। इनका अंतिम समय मुरारमऊ (जिला रायबरेली) के राजा देवीसिंह के यहाँ बीता, जिनसे इ हें दौलतपुर नामक गाँव वृत्तिरूप में मिला था। सुखदेव मिश्र के वंशज अब तक यहाँ बसे हैं। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी इसी गाँव के रहनेवाले थे। मिश्र जी की निम्नांकित ६ कृतियाँ मिलती हैं—अध्यात्म प्रकास (स० १७५५), फाजिल अली प्रकास (स० १७३३), नखसिख, मरदान रसार्णव (स० १७३६), शा त प्रकाश (स० १७५५), रसरत्नाकर, पिंगलछ दविचार, पिंगल वृत्तविचार (स० १७२८) और छ द निवाससार। इनके अतिरिक्त दशरथराय और शृङ्गारलता भी इ हीं की रचनायें कही जाती हैं।

इनका काव्यकाल स० १७२० से लेकर स० १७६० तक माना जाता है।

गोकुल कवि ने 'कविराज' तथा 'सुखदेव' को दो भिन्न कवि माना है और उनकी रचनायें पृथक्रूपेण उदाहृत की हैं। भूषणकार की यह भ्रांति उपाधि को नाम मान लेने से हुई है। यही नहीं सुखदेव नामक दो कवियों—सुखदेव मिश्र और सुखदेव दोसर (द्वितीय) की रचनाओंका दो पृथक् नामोंसे उल्लेख करने में भी इसी प्रकार की भूल हुई है। मेरी राय में वे एक ही सुखदेव की लिखी हैं जिनका वृत्त ऊपर वर्णित है। सुखदेव (प्रथम) के दिग्विजय

भूषण में उदाहृत एक छन्द से विदित होता है कि वे किसी अनूपसिंह नामक राजा के भी दरबार में गये थे। वहाँ यथोचित रूप से पुरस्कृत न होने पर उन्होंने यह छन्द लिखा था—

तेरे चलाये चल्यौं घर ते डरप्यो नहिं नार समीर औ धूपै।
पाल्यों मैं तोहि हिये हित कै हठ तेरो सो मांग्यो हहा करि भू पै॥
ऐसे सखा 'सुखदेव' सुलोभ हैं तोर सनेह ते सोरि सरूपै।
मेरी बिदाई के बार फटीक ह्वै जाइ मिल्यो नृप सिंह अनूपै॥

अन्यत्र इसी ग्रन्थ मे 'सुखदेव दोसर' के नाम से उदाहृत एक छन्द में 'अनूप' की दानशीलता की प्रशंसा इन शब्दों में की गई है—

मंदर महिंद गन्धमादन हिमाले मेरु,
जिन्हैं चले जाने ए अचल अनुमाने ते।
भारे कजरारे तैसे दीरघ दँतारे मेघ
मंडल विहंडे जे वै सुंडा दंड ताने ते॥
कीरति विशाल छितिपाल श्री अनूप तेरे
दान जो अमान कापै बनत बखाने ते।
इतै कवि सुख जस आखर कढ़त उतै
पाखर समेत खुलैं पील पीलखाने ते॥

इससे प्रकट होता है कि सुखदेव राजा अनूपसिंह के भी दरबार में कुछ दिन रहे थे, यद्यपि उनके प्रसिद्ध आश्रयदाताओं की सूची में इनका नाम नहीं मिलता। प्रसंग प्राप्त अनूपसिंह सम्भवतः बीकानेर के महाराज अनूपसिंह से अभिन्न हैं। ये अत्यन्त विद्यानुरागी और काव्यरसिक थे। इन्होंने अपार धन व्यय करके सहस्रों हस्तलिखित अलभ्य ग्रन्थों का संकलन अपने राजकीय पुस्तकालयमे किया था और इस प्रकार भारत की दुर्लभ साहित्यिक सम्पत्ति को नष्ट होने से बचाया था। सतसईकार वृन्द कवि इनके समकालीन थे। प्रतीत होता है अनूपसिंह के आश्रय में सुखदेव थोड़े ही दिन रहे, अन्यथा अपने अन्य आश्रयदाताओं की भाँति इनके लिए भी किसी ग्रन्थ की रचना वे अवश्य करते।

२४ कान्ह

'कान्ह' छाप से कविता लिखनेवाले चार कवि हुये हैं—

(१) कन्हैया लाल भट्ट—सं० १७६१ (३) कन्हैया बख्श बैस—सं० १९००
(२) कान्ह कवि—सं० १८५२ (४) कन्हईलाल—सं० १९१४।

इनमे से प्रथम, तृतीय और चतुर्थ का 'का ह' उपनाम अथवा असली नाम का सक्षेप था कि तु दूसरे का वही वास्तविक नाम था। सरोजकार ने इनका उल्लेख का ह कवि प्राचीन के नाम से किया है, और इ हैं नायिकाभेद विषयक एक ग्र थ का रचयिता कहा है। दिग्विजय भूषण के 'का ह' कवि यही है। गोकुल कवि ने इनके ती। छ द उदाहृत किये है जिनग से दो का विषय नायिकाभेद है, एक का वसन्तवर्णन। ये छ द का ह कवि की एकमात्र रचना रसरग नायिका (स० १८०४) से लिये गये है। इस ग्रन्थ के विषय म स्वय कवि का कथन है—

जाकी रचना देखि कै, बाढ़ै प्रेम तरग।
मन में अति सुख पाइकै, कियो कान्ह रसरग॥
समत धृति सत जुग बरष, कान्ह सुकवि परसग।
क्वार सुदा तेरसि ससी, रच्यो ग्रन्थ रसरग॥

ग्र थ के अ त मे कवि ने स्पष्ट रूप से इसका प्रतिपाद्य विषय नायिकाभेद बतलाया है—

"इति श्री कान्ह कवि विरचितायां रसरग नायिकाभेद सपूरण समाप्त।"

ये वृ दावन में रहते थे और स० १८०४ के लगभग विद्यमान थे। शिवसिंह जी ने इनका उदयकाल स० १८५२ दिया है, जो 'रसरग नायिका' के निर्माणकाल को देखते हुए अशुद्ध ठहरता है।

२९ कालिदास

कालिदास त्रिवेदी बनपुरा (जिला कानपुर अतर्वेद) के निवासी थे। रीति काल के पिछले खेवे के प्रसिद्ध कवि उदयनाथ 'कवि द' इ के पुत्र और दूलह पौत्र थे। शिवसिंह जी द्वारा उद्धृत इनके निम्नाकित कवित्त से ज्ञात होता है कि ये औरगजेब के दरबारी कवि थे और आश्रयदाता के साथ गोलकुडा के भीषण युद्ध में उपस्थित थे—

गढ़न गढ़ी से गढ़ि महल मढ़ी से मढ़ि,
बीजापुर ओप्यो दलमलि उजराई म।
कालिदास कोप्यो बीर औलिया अलमगीर,
तीर तरवारि गह्यो पुहमी पराई में॥

बूँद ते निकसि महिमंडल घमंड मची,
लोहू की लहरि हिमगिरि की तराई मैं।
गाडि कै सुझंडा आड कीन्ही पातसाह ताते,
डकरी चमुंडा गोलकुंडा की लराई मे॥

गोलकुण्डा का यह युद्ध सं० १७४५ में हुआ था। इसके पश्चात् किन्हीं कारणों से कालिदास मुगल दरबार छोड़कर 'जबू' (बैमबाडा) के राजा जोगा जीत सिंह के यहाँ चले गये। इनके लिये 'वधू विनोद' की रचना सं० १७४९ मे हुई।

संवत सत्रह सै उनचास। कालिदास किय ग्रंथ विलास।
वृत्तिसिंह नंदन उद्दाम। जोगाजीत नृपति के नाम॥

इसके अतिरिक्त 'राधा माधव मिलन' और 'जंजीरा बंद' नामक इनकी दो अन्य कृतियाँ भी मिली हैं। किंतु साहित्य संसार मे कालिदास की ख्याति का मुख्य आधार उनका 'हजारा' नामक संग्रह ग्रंथ है जिसमे, शिवसिंहजी के अनुसार सं० १४८१ से सं० १७७६ तक के २१२ कवियों के १००० छन्द संकलित हैं। खेद है कि यह अपूर्व संदर्भ ग्रंथ अब तक अप्राप्त है।

२६ काशीराम

काशीराम का जन्म सक्सेना कायस्थ कुलमे हुआ था। ये औरंगजेब के सूबेदार निजामत खाँ के आश्रित कवि थे। सरोजकार ने इनका उदयकाल सं० १७१५ माना है, जो संगत प्रतीत होता है। दिग्विजय भूषण मे उदाहृत इनका निम्नांकित कवित्त निजामत खाँ के ही शौर्य वर्णन विषयक है। इससे ये निस्संदेह औरंगजेब कालीन काशीराम माने जा सकते हैं—

गाढे गढ ढाहत रहत नहिं ठाढे नेकु,
दिग्गज दुरित मद डारत सुखाइ कै।
कराचोली कसि झुकि निकसि निजामति खाँ,
दावत रकाब जब बराजोरी पाइ कै॥
धरनि के चहूँ कोन कासिराम भौन भौन,
भाजौ भाजौ ह्वै होत राना राजा राइ कै।
लंक ते लंकेस के पताल हूँ ते सेस के,
सुमेर ते सुरेस के मिलैं वकील आइ कै॥

खोज मे इनके तीन ग्रथ प्राप्त हुये है—कनक मजरी, परशुराम सवाद और कवित्त कासीराम। इनमे से तीसरा कासीराम की स्फुट रचनाओं का सकलन प्रतीत होता है, जो सभवत उनके मरणोपरान्त किसी काव्यरसिक द्वारा किया गया है।

२७. किशोर

इनका पूरा नाम जुगल किशोर था, 'किशोर' उपनाम। ये कैथल (जिला करनाल पजाब) के निवासी ब्रह्मभट्ट थे। इनके पिता बालकृष्ण और पितामह निहचल राम थे—

जुगल किसोर सु नाम है, बालकृष्ण सो तात।
दादो निहचल राम है, छह बल सुत अवदात॥
कैथल जन्म अस्थान है, दिल्ली है सुखवास।
जाम विविधि प्रकार है, रस को अधिक विलास॥

जुगल किशोर वृत्ति की खोज मे घूमते फिरते दिल्ली आये और वहाँ मुगल बादशाह मुहम्मदशाह (शासन काल सं० १७६६–१८०५) के दरबारी कवि हो गये। शाही दरबार मे इन्हें इतना सम्मान मिला कि कुछ ही दिनों मे ये कवि से राजा बना दिये गये, जिससे ये साथ चार कवियोंके आश्रयदाता बन गये। 'अलकार निधि' में आत्म परिचय देते हुए एक स्थान पर इन्होंने उक्त स्थिति का उल्लेख इन शब्दों में किया है—

ब्रह्मभट्ट हो जाति को, निपट अधीन निदान।
राजा पद मोको दियो, महमद साह सुजान॥
चारि हमारी सभा मैं, कवि कोविद मति चारु।
सदा रहत आनँद बढे, रस को करत विचारु॥
मिश्र रुद्रमनि विप्रवर, औ सुखलाल रसाल।
सतजीव सु गुमान है, सोभित गुनन विसाल॥

किशोर की एकमात्र स्वतंत्र कृति 'अलकारनिधि' है, जिसकी रचना स० १८०५ में हुई। शिवसिह जी ने 'किशोर सग्रह' नामसे प्रसिद्ध इनकी एक अन्य कृति का उल्लेख किया है। 'कवित्त सग्रह' तथा 'फुटकर कवित्त' नामक किशोर के दो और सग्रहग्रन्थ मिले हैं जिनमें कतिपय अन्य रीतिकालीन कवियों के भी छन्द सकलित हैं।

२८. कुलपति

ये आगरा निवासी माथुर चौबे परशुराम मिश्र के पुत्र थे। 'रस रहस्य' में इनका आत्मोल्लेख है—

बसत आगरे नगर में, गुन तपसील विलास।
विप्र मथुरिया मिश्र हैं, हरि चरनन को दास॥
प्रभू मिश्र तिन बस में, परसराम जिन राम।
तिनके सुत कुलपति कियो, रस रहस्य सुखधाम॥

ये महाकवि बिहारी के भानजे थे। इसी सिलसिले से इनका प्रवेश जयपुर दरबार में हुआ। मिर्जा राजा जयसिंहके पुत्र महाराज रामसिंह का आश्रय प्राप्त कर इन्होंने पर्याप्त धन तथा यश अर्जित किया। खोज रिपोर्टों से ज्ञात होता है कि जयपुर नरेश के आश्रय में आने से पूर्व ये विष्णुसिंह नामक किसी सामन्त के यहाँ रहे थे।

कुलपति की सर्वोत्कृष्ट रचना 'रस रहस्य' है। आचार्य मम्मट के 'काव्य प्रकाश' का छायानुवाद होते हुए भी यह एक प्रौढ लक्षणग्रन्थ है जिसमें पद्य के साथ ही, विषय प्रतिपादन में, ब्रजभाषा गद्य का भी प्रयोग हुआ है। इसके अलंकार प्रकरण में रामसिंह की प्रशस्ति रूप में लिखी गई अपनी कुछ स्वतन्त्र रचनायें भी उदाहरण के रूप में इन्होंने दी हैं। जिनसे व्यावहारिक ब्रजभाषा पर इनके असाधारण अधिकार का पता चलता है। इनकी अन्य रचनायें हैं— दुर्गा भक्ति चन्द्रिका, द्रोणपर्व, संग्रामसार, नखशिख और युक्ति तरंगिणी। ये अठारहवीं शताब्दी विक्रमी के मध्यतक विद्यमान थे।

२९. केशव दास

कविवर केशवदास भाषा काव्य के प्रथम आचार्य माने जाते हैं। इनका जन्म सनाढ्य ब्राह्मण वंश में सं० १६१२ में ओरछा राज्य के टेहरी नामक ग्राम में हुआ था। पिता पं० काशीनाथ और पितामह पं० कृष्णदत्त थे। परम्परा से इनके कुल की मातृभाषा संस्कृत थी। हिन्दी कविता के प्रति अपने वंश में सर्वप्रथम अनुराग इन्हीं के हृदय में जगा।

इनके प्रथम आश्रयदाता जोधपुर नरेश मालदेव के पुत्र महाराज चन्द्रसेन (राज्यकाल सं० १६२५–१६४२) थे। 'कविप्रिया' से यह पता चलता है कि कुछ समय तक ये अमरसिंह नामक किसी भूमिपति की भी छत्रछाया में रहे थे। ये अमरसिंह, मेवाड़ के राना अमरसिंह—महाराणा प्रताप के पुत्र एवं उत्तराधिकारी—से अभिन्न माने जाते हैं।

राजस्थान में अपनी जन्मभूमि के राजा मधुकर शाह की गुणग्राहकता की कथायें सुनकर केशवदास ओरछा चले आये और फिर आजन्म वहीं रहे। दिग्विजय भूषण में उदाहृत केशव के निम्नांकित छप्पय से 'मधुकर शाह' से उनके सम्बन्ध का बोध होता है—

चौक चारु कर रूप डारु, घरियार बाँधु घर।
मुक्त मोल कर पदुम खोल, सीचहु निचोल धर॥
हय कुदाउ दे सुरत दाउ, गुन गाउ रक को।
जासु भाव सुर धाम धाउ, धनु लाउ लक को॥
यह कहत मधुकर साहि नृप, रह्यौ सकल दीवान दबि।
तब उत्तर केसवदास दिय, धरी न पाना जानु कवि॥

मधुकर शाह के दिवगत होने पर केशवदास उनके आठ पुत्रों में से क्रमशः तीन—रतन सिंह, वीरसिंह और इन्द्रजीत सिंह, के आश्रय में रहे। इनमें से इन्द्रजीत सिंह से केशवदास को सर्वाधिक सम्मान प्राप्त हुआ। उन्होंने अपने काव्यगुरु के रूप में इनकी पूजा ही नहीं की, राजगुरु की प्रतिष्ठानुकूल जीवन यापन के लिए ३१ गाँवों की वृत्ति भी दी। इसका बखान केशव के ही मुख से सुनिए—

गुरु करि मान्यो इन्द्रजित, तन मन कृपा विचारि।
ग्राम दियो इकतीस तब, ताके पाँय पखारि॥

× × ×

भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत जीवे जुग जुग,
जाके राज केसोदास राज सो करत हैं।

केशव ने आश्रयदाता द्वारा किये गये इन उपकारों का भार सम्राट् अकबर के सम्मुख स्वयं उपस्थित होकर इन्द्रजीत सिंह पर किये गये जुरमाने को माफ करवा कर हलका किया। भाव जगत के प्राणी कविवर केशव का यह सफल दौत्य उनकी व्यवहार कुशलता का परिचायक है।

केशव के मित्र और परिचितों में अकबरी दरबार के प्रसिद्ध सभासद— बीरबल और टोडरमल, मुख्य थे। बीरबल के दान की प्रशंसा कविप्रिया में और टोडरमल के लोभी स्वभाव का उल्लेख 'वीरसिंह देव चरित' में मिलता है। कहा जाता है कि बीरबल की मृत्यु पर केशव ने अकबर को एक दोहा सुनाया था, जो इस प्रकार है—

जाचक सब भूपति भये, रह्यो न कोऊ लेन।
इन्द्रहु की इच्छा भई, गयो बीरबल देन॥

काव्य रचना में 'कठिन काव्य के प्रेत' कहे जानेवाले केशव व्यावहारिक जीवन मे कितने रसिक थे इसका आभास वार्द्धक्य के झरोखों से झाँकते हुये उनके आकुल युवक हृदय के इस उद्गार म मिलता है—

केशव केसन अस करी, जस अरि हूँ न कराहि।
चन्द्र बदनि मृग लोचनी, बाबा कहि कहि जाहि॥

केशवदास जी का देहावसान स० १६७४ मे हुआ। इनकी प्राप्त रचनायें हैं—रतन बावनी (स० १६४५) रसिक प्रिया (स० १६४८), कविप्रिया (स० १६५८), रामचन्द्रिका (स० १६६७), जहाँगीरजसचन्द्रिका (स० १६६६) और नखशिख। इस प्रकार इनका कविता काल स० १६४५ से लेकर स० १६६६ तक ठहरता है।

३०. केहरी

केहरी आचार्य केशवदास के समकालीन और उन्हीं की भाँति ओरछा नरेश के दरबारी कवि थे। महाराज मधुकरशाह के पुत्र रामशाह तथा रतनसिंह इनके प्रधान आश्रयदाता थे। इनका निवास स्थान ओरछा ही था। 'बुदेल वैभव' के अनुसार इनका आविर्भाव स० १६२० मे हुआ था। इस प्रकार आयु म ये केशव दास जी से आठ वर्ष छोटे थे। दिग्विजय भूषण मे इनका एक कवित्त उदाहृत है जो 'सराज' में भी आया है। भेद केवल इतना है कि उक्त कवित्त की जिस पंक्ति मे दिग्विजय भूषणकार ने 'रतन' नामक किसी ऐतिहासिक व्यक्ति का नाम दिया है वहाँ सरोजकार ने 'समर' पाठ रखा है। छंद यह है—

इतै साहिजादे जू बनाये सार मूरचनि,
उतै कोट भीतर दबाये दल ह्वै रह्यो।
'केहरी' सुकवि कहै सूर मारे सै हथान,
तहाँ अवलरनि तमासे आनि वै रह्यो॥
औचक गलीन में गनीम दल गाजि उठो,
तुङ्ग गजराजनि के मद आगे च्वै रह्यो।
रतन सँघारे भट भेदैं रविमंडल को,
मंडल घरीक नट कुण्डल सो ह्वै रह्यो॥

ये 'रतन' महाराज मधुकर शाह के पुत्र रतन सिंह है जो १६ वर्ष की अल्पायु म ही, मुराद के सेनापतित्व मे अकबर द्वारा भेजी गई सेना से ओरछा के किले की रक्षा करते हुए, स० १६४८ में वीरगति को प्राप्त हुए थे। कविवर

केशवदास ने इ हीं के नामपर 'रतन बावनी' की रचना की थी। उपर्युक्त छ द मे इसी घटना का वर्णन प्रत्यक्षदशा केहरी कवि ने किया है। 'साहिजादे' से उनका तात्पर्य राजकुमार रतनसिंह से है और 'कोट' से ओरछा के इतिहास प्रसिद्ध दुर्ग का।

केहरी कवि की कोई स्वतत्र रचना उपलब्ध नहीं है। इनके फुटकर छ द प्राचीन काव्य सग्रहो मे सकलित पाये जाते है।

३१. कृष्ण कवि

इस नाम के तीन कवि हुए है—

(१) कृष्ण कवि—जयपुर के सवाई जयसिंह के आश्रित, स० १६७५ के लगभग वर्त्तमान।

(२) कृष्ण कवि—ओरगजेब के दरबारी कवि, स० १७४० में वर्तमान।

(३) कृष्ण कवि—नीतिकाव्य के रचयिता, स० १८८८ मे वर्तमान।

इनम से प्रथम का परिचय देते हुए शिवसिंह जी ने उन्हें कविवर बिहारी का शिष्य बताया है। दिग्विजय भूषणमे उदाहृत छन्द महाराज जयसिंह के शौर्य वर्णन विषयक है—

कूरम कलश महाराज जयसिंह फैलो,
रावरो सुजस सुरलोक में अपार है।
'कृष्णकवि' ताके कन सुन्दर जलज जानि,
सुरन की सुन्दरीन लीन्हो भरि थार है॥
तिनही के सग को सरस तेरो गुन लैकै,
हार पोहिबे को उन करती विचार है।
मोती को निहारैं कहू रध्र को न लवलेस,
गुन को निहारैं कहू पावती न पार है॥

ये भाडेर (ओरछा राज्य) के निवासी सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनके प्रथम आश्रयदाता आयामल्ल थे। बिहारी का शिष्यत्व ग्रहण करने के पश्चात् इनका प्रवेश उ हीं के माध्यम से जयपुर दरबार में हुआ।

कृष्ण कवि की तीन रचनायें प्राप्त हुई हैं—बिहारी सतसई की टीका (स० १७१९), धर्मसवाद कथा तथा विदुर प्रजागर। इनमें अतिम दो के विषय में निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वे इन्ही कृष्ण कवि की है।

३२. कृष्णलाल

ये काशी के रहने वाले थे। ठाकुर मनियार सिंह ने 'भावार्थ चद्रिका' म, जिसकी रचना स० १८४३ मे हुई थी, उ हें अपना काव्य गुरु बताया है—

चाकर अखडित आरामचन्द्र पडित को,
मुख्य शिष्य कवि कृष्णलालके चरन को।

इनकी जीवन यात्रा के कोइ तथ्य उपलब्ध नहीं है। शिवसिह जी ने इ हैं स० १८१४ के लगभग विद्यमान माना है। दिग्विजय भूषण मे इनके दो छद उदाहृत है, जिनसे ये शृगारी परम्परा के कवि सिद्ध होते हैं।

३३ कृष्ण सिह

बहरायच जिले का भिनगा राज्य परम्परा से साहित्य सेवा के लिए प्रसिद्ध रहा है। यहाँ के बिसेन राजवश में अनेक उच्चकोटि के कवि एव गुणग्राहक राजा हुये हैं। शिवसिंह जी का कहना है कि "जैसा बुन्देलखण्ड और बघेलखड के रईस अपना काल काव्यविनोद मे व्यतीत करते हैं, वैसे ही इस रियासत के भाई बद है।" कृष्णदत्त सिह यहीं के राजा थे। अपने पिता सर्वजीत सिंह के देहावसान के पश्चात् ये भिनगा की गद्दी पर बैठे थे। कवि होने के साथ ही ये कवियों के बड़े ही उदार आश्रय दाता भी थे। इनके दरबारी कवियो में शिवदीन कवि विशेष उल्लेखनीय हैं। इ होने कृष्णदत्त सिह के नाम पर 'कृष्णदत्त भूषण' तथा 'कृष्णदत्तरासा' नामक दो ग्र थ लिखे थे। दिग्विजयभूषण के रचयिता गोकुल कवि भी कुछ दिनों इनके यहाँ रहे थे। क्षत्रिय कालेज बनारस के सस्थापक राजा उदयप्रतापसिंह कृष्णदत्तसिंह के पुत्र थे। इनकी कोई स्वतत्र रचना अब तक नहीं मिली है। शिवसिंह जी के अनुसार ये स० १९०९ मे विद्यमान थे। अत इसीके आस पास इनका कविताकाल निश्चित किया जा सकता है।

३४ कोविद कविन्द

'दिग्विजय भूषण' की कवि सूची में 'कोविद कविन्द' नाम से जिस कवि का उल्लेख हुआ है, उसकी रचना का उदाहरण देते हुए गोकुल कवि ने उसी ग्रथ में 'महाराज प० उमापति' का नाम दिया है। उदाहृत छद में कवि ने अपनी छाप 'कविन्द' विशेषण सहित, 'कोविद' रखी है। अत इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि उक्त छ द १९ वीं शती के प्रसिद्ध रामभक्त और सस्कृत के उद्भट् विद्वान् प० उमापति त्रिपाठी का है।

प० उमापति त्रिपाठी का जन्म देवरिया जिले के पिण्डी नामक गाँव में

आश्विन कृष्ण ६, बुधवार, स० १८५१ को हुआ था। इनके पिता का नाम शंकरपति त्रिपाठी था। आरंभ में घर पर थोड़ी शिक्षा प्राप्त कर ये विद्याध्ययन के लिए काशी गए। वहाँ श्रीकृष्णरामशेष से व्याकरण, श्री भ न तरि भट्ट से मीमांसा और प० भैरवदत्त मिश्र से न्याय का अध्ययन किया। इसके पश्चात् घर लौट आए, विवाह हुआ और कुछ काल तक गृहस्थ जीवन व्यतीत किया। २५ वर्ष की आयु में ये शास्त्रार्थ में दिग्विजय करने के लिए निकले। मध्यप्रदेश, मिथिला, नदिया शान्तिपुर (बंगाल), राजस्थान, काश्मीर तथा नेपाल के प्रसिद्ध राजदरबारों और विद्याकेन्द्रों मे अपने विलक्षण पाडित्य का परिचय देकर इन्होंने सौ विजयपत्र प्राप्त किये और'श्रीमच्छ्रुतकजयप्रवर्तक'की उपाधि धारण की। अन्त में काशी के प० महादेव मिश्र से ब्रह्मविद्या प्राप्त कर ये स० १८८४ मे अयोध्या चले गये और फिर आजन्म क्षेत्र संन्यास लेकर वहीं रहे। अवध के नवाब ने नयाघाट पर स्थित 'हयात बाग' इनके निवास के लिये दिया। वहाँ बलरामपुर के महाराज दिग्विजय सिंह ने इनके रहने के लिए सुन्दर भवन और भिनगा की महारानी ने एक विशाल ठाकुरद्वारा निर्मित कराया। ४६ वर्ष तक अखड अवधवास करनेके पश्चात् त्रिपाठी जी ने स० १९३० में दिव्यलोक की यात्रा की।

प० उमापति जी की ४२ रचनायें मिलती है उनमे केवल पाँच हिन्दी में हैं—हनुमन्त कुण्डलिया, विचित्ररामायण, राम सगीत, रम्यपदावली और रत्नावली दोहावली।

'दिग्विजय भूषण' में इनका एक कवित्त उदाहृत है, जिसमें महाराज दिग विजयसिंह के प्रतिभापूर्ण व्यक्तित्व का वर्णन किया गया है।

३५ खान

इनका केवल एक छन्द 'दिग्विजय भूषण' में दिया गया है, जिसमे किसी 'राना जू' की प्रशस्ति गाई गई है। ये राना कौन थे? इसका कुछ पता नहीं। शिवसिंह जी ने इनकी रचनाशैली के उदाहरणस्वरूप सरोज मे एक छन्द उद्धृत किया है वह दिग्विजय भूषण का ही है। सकलनकर्ताने इनके जीवन अथवा आविर्भाव काल पर कोई प्रकाश नहीं डाला है। दिग्विजय भूषण में रचना सकलित होने से ये स० १९१९ के पूर्ववर्ती कवि ठहरते हैं।

३६. गंग

इनका पूरा नाम गंगा प्रसाद था किन्तु प्रसिद्ध ये 'गंग' नाम से ही हुये। इनका जन्म स० १५९५ में हुआ था। ये इकनौर (जिला इटावा) के निवासी

ब्रह्मभट्ट थे। बदीजनों की प्रशसा म लिखे गए निम्नाकित कवित्त तथा अ य ऐतिहासिक स्रोतों से यह सिद्ध होता है कि गग सम्राट् अकबर के आश्रित कवि थे—

प्रथम विधाता ते प्रगट भये बदीजन,
पुनि पृथु जज्ञ ते प्रकास सरसात है।
मानो सूत सौनकन सुनत पुरान रहे,
जसको बखाने महा सुख बरसात है॥
चद चउहान के केदार गोरी साहिजू के,
गग अकबर के बखाने गुनगात है।
काग कैसो माँस अजनास बन भाँटन को,
लूटि धरै ताको खुरा खोज मिटि जात है॥

अकबरी दरबार के सम्मानित सभासदों—महाराज बीरबल, महाराज मानसिह, टोडरमल और खानखाना अब्दुल रहीम का गग पर विशेष कृपा रहती थी। उनके एक छन्द से विदित होता है कि बीरबल से उनकी मित्रता बाल्यावस्था से ही थी—

आगे सुदामा कृष्ण हैं, गग बीरबल फेर।
ता दिन में लहुलहले, यहि दिननमें बेर॥

जान पडता है मुगल दरबार से प्राप्त उनका यह वैभव स्थायी न रहा। जहाँगीर के शासनारूढ होते ही स्थिति बदली। वे दाने दाने को मुहताज हो गये—

नटवा लौं नटैं न टरैं रहै मोदी सु वादिन म बहु भाव भरैं।
सजि गाजे बजाज अवाज मृदग लो बाँकिये तान गिलौरी लरैं॥
पट धोबी धरैं अरु नाई नरैं सु तमोलिन बोलिन बोल धरैं।
कवि गग के अगन मगनहार दिना दसते नित नृत्य करैं॥

कहा जाता है गग पर आकस्मिक राजकोपका कारण नूरजहाँ के भाई जैन खाँ का उनसे किसी बात पर रुष्ट हो जाना था। गग की निर्भीक प्रकृति और स्पष्टवादिता उस साम ती युग में घातक सिद्ध हुई। इसका मूल्य उ हें आत्म बलिदान से चुकाना पडा। वे हाथी से चिरवा डाले गए। काव्य की भाषा मे वह घटना इस प्रकार वर्णित है—

सब देवन को दरबार जुग्यो तहँ पिंगल छन्द बनाइकै गायो।
जब काहू ते अर्थ कह्यो न गयो तब नारद एक प्रसग चलायो॥

मृतु लोक में है कवि एक गुना कवि गग को नाम सभामें बतायो ।
सुनि चाह भई परमेसर की तब गग को लेन गनेस पठायो ॥

गग की निम्नांकित पंक्ति इसी मर्मस्पर्शी घटना की ओर संकेत करती बताई जाती है—

सगदिल शाह जहाँगीर से उमग आज,
देत है मतग मद सोई गग छाती मे ।

गग कवीश्वर के जीवन का इस प्रकार दुःखद अन्त स० १६८२ के लगभग हुआ ।

दिग्विजय भूषण मे इनके ६ छद उदाहृत हैं । इनमे से तीन छद ऐतिहासिक व्यक्तियों से सम्बध रखते हैं—दो मे बीरबल और रहीम की दानशीलता का बखान है, एक में मिर्जा भावसिंह के किसी पठान साम त से युद्ध का वर्णन है ।

तारापुर प्रबल पठान भूमि भारी भीर,
भीम सम भिरो रन भावसिंह मिरजा ।
भभकि भभकि धाय कुप सो भरत घट,
भारी भारी वीर मारे रन पाय सिरजा ॥
लोहू की नदीन गग हाथी धारा लोथ बहैं,
जोगिनी से जोगिनी पुकारैं पार तिरजा ।
हीरन के हार वर वारतीं बरगना लै,
मुण्डमाल हर गजमोती लै लै गिरजा ॥

ये मिरजा भावसिंह जयपुर के महाराज मानसिंह के पुत्र थे । जहाँगीर ने इन्हें स० १६५६ में आम्बेर का शासक बनाकर 'मिर्जा राजा' की उपाधि दी थी । भावसिंह का यह युद्ध सभवत जालोर के शासक राजनीरों के उत्तराधिकारियों से हुआ था । इनकी मृत्यु स० १६७८ मे हुई । बिहारी के आश्रयदाता मिर्जा राजा जयसिंह इन्हीं के पुत्र एव उत्तराधिकारी थे ।

३७. गगापति

इनके जीवन वृत्त के सम्बन्ध मे कोई सूत्र ।। सुलभ नहीं । शिवसिंह जी ने इनका उदयकाल स० १७४४ माना है । मिश्रबधु विनोद और हिंदुस्तान का आधुनिक भाषा साहित्य (ग्रियर्सनकृत) मे इनके द्वारा विरचित 'विज्ञान विलास' का उल्लेख मिलता है। इसका रचना काल स० १७७५ है । ऐसी दशा में शिवसिंह जी द्वारा निर्दिष्ट स० १७४१ को इनका आविर्भाव काल मानना ही

अधिक युक्तिसगत होगा। सरोज मे इनके नाम से उद्‌धृत छ द दिग्विजयभूषण से ही लिया गया है।

३८. गिरधारी

इस नाम के दो कवियों का पता चला है। एक गिरधारी ब्राह्मण बैसवाडा (उन्नाव रायबरेली) के और दूसरे गिरधारी भाँट मऊरानीपुर के निवासी थे। प्रथम का समय स० १६०४ और द्वितीय का स० १६४० के आस पास माना जाता है। सरोजकार ने दोनों की जो रचनाय उद्धृत की है उनसे प्रथम शृङ्गारी और दूसरे शुद्ध शातरस के कवि जान पडते हैं। दिग्विजयभूषण में उदाहृत छ द नखशिख वर्णन विषयक है। इसके रचयिता प्रथम गिरधारी हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

इन गिरधारी का पूरा नाम गिरधारीलाल त्रिपाठी था। ये सातनपुरवा (जिला रायबरेली) के निवासी थे। अयोध्या प्रसाद वाजपेयी 'औधकवि' भी यहीं के रहने वाले थे, जो गोकुल कवि के परिचितों में थे। सभवत उनके द्वारा ही भूषणकार को गिरधारी की रचनाओं का पता लगा होगा। इनके तीन ग्रथ उपलब्ध हुए हैं—भागवत दसमस्कध भाषा, रहस्यमडल और सुदामाचरित। ये गोकुल के समकालीन थे। अत दोनों की भेंट होना भी असम्भव नहीं।

३९. गुरुदत्त

ये मकर दपुर (जिला फर्रुखाबाद) के निवासी शिवनाथ शुक्ल के पुत्र थे। इनके भाई देवकीन दन भी अच्छे कवि थे। गुरुदत्त ने अपना परिचय देते हुए एक स्थान पर लिखा है—

प्रगट भये शिवनाथ कवि सुकुल वश में हस।
ताको सुत गुरुदत्त कवि, कविता में अवतस॥

इनका बनाया हुआ 'पक्षीविलास' एक प्रौढ ग्रथ है। दिग्विजयभूषण में इसी से तीन छन्द उदाहृत हैं, जो अन्योक्ति की शैली म शुक, गृद्ध और सिंह को सम्बोधित करके कहे गये हैं। ये स० १८६४ में विद्यमान थे।

४०. गुरुदत्तसिंह

गुरुदत्त सिंह अमेठी (जिला सुलतानपुर) के राजा थे। ये भूपति छाप से कविता करते थे—

आठौं दिसा छुनीन सम, करि राखो अवरुध्य ।
नगर अमेठी रामपुर, सोभित ज्यों मनि मध्य ॥
पुन्य फलन से अति फली, नगरी मोद प्रकास ।
भूपति तहँ गुरुदत्त अब, नित प्रति करत निवास ॥

उदयनाथ कवीन्द्र और उनके पुत्र दूलह इनके दरबारी कवि थे। अवध के प्रथम नवाब वज़ीर सादत खाँ बुर्हानउलमुल्क से इनके युद्ध का जो आँखों देखा वर्णन 'कविंद' ने किया है उससे गुरुदत्त सिंह के अद्भुत शौर्य का पता चलता है—

समर अमेठी के सरोष गुरुदत्तसिंह,
सादति की सेना समसेरन सों भानी है ।
भनत 'कविन्द' काली हुलसी असीसन को,
सीसन को ईस की जमाति सरसानी है ॥
तहाँ एक जोगिनी सुभट खोपड़ी लै उड़ी,
सोनित पियति ताकी उपमा बखानी है ।
प्यालो लै चिनी को नीको जोबन तरंग मानो,
रंग हेत पीवति मँजीठ मुगलानी है ॥

अब तक इनकी तीन कृतियाँ प्राप्त हो चुकी हैं—रस रत्न (सं० १७८८), भूपति सतसई (सं० १७९१) और रस दीपक (सं० १७९९)। इस प्रकार इनका काव्यकाल सं० १७८८ से सं० १७९९ तक स्थिर किया जा सकता है।

४१. गुलाल

इनके जीवनवृत्त के सम्बन्ध में हिंदी साहित्य के प्रायः सभी ऐतिहासिक स्रोत मौन हैं। शिवसिंह सरोज से केवल इतना ज्ञात होता है कि ये सं० १८७५ के लगभग विद्यमान थे। इनकी 'शालिहोत्र' नामक एक रचना बताई जाती है। उसके अतिरिक्त षड्ऋतु तथा नायिका भेद पर इनके कुछ फुटकर छन्द मिलते हैं। सरोज में उद्धृत छन्द दिग्विजय भूषण से ही लिया गया है।

४२. गोकुलनाथ

ये काशिराज बरिवंड सिंह (बलवंत सिंह, शासनकाल सं० १८२७ से सं० १८३८ तक) और उदितनारायण सिंह (शासनकाल सं० १८५२–१८९२) के दरबारी कवि थे। इनके पिता रघुनाथ बंदीजन भी अपने समय में काशी के गण्यमान्य कवीश्वर थे। गोकुलनाथ का सर्वाधिक प्रशंसनीय कार्य महाभारत का

भाषानुवाद है, जो 'महाभारत दर्पण' के नाम से विख्यात है। यह ग्र थ इ होंने अपने पुत्र गोपीनाथ और शिष्य मणिदेव की सहायता से ५४ वर्षों के निर तर प्रयत्न से पूरा किया। इसके अतिरिक्त इनकी सात रचनायें और मिली है—चेतचद्रिका, राधाकृष्ण विलास, राधानखशिख, नामरत्नमाला, सीताराम गुणार्णव, कविमुख मडन और गोवि दसुखदविहार। सरोजकार ने इनकी रचनाशैली के उदाहरण मे एक छ द उद्धृत किया है। वह दिग्विजयभूषण का ही है। ऐसी स्थिति मे दोनों की एकता स्वत सिद्ध है।

४३. गोपाल

अनुस धान से गोपाल नामक चार कवियों का पता चला है—

१ गोपाल प्राचीन—ये स० १७१५ के लगभग विद्यमान थे। ये मित्रजीत सिंह नामक किसी राजा के पुत्र कल्याण सिंह के आश्रय में रहते थे।

२ गोपाल ब दीजन बु देलखण्डी—ये श्यामदास बन्दीजनके पुत्र और असोथर (जिला फतेहपुर) के महाराज भगवन्तराय खीची के आश्रित कवि थे। कुछ दिन ये चरखारीनरेश रतन सिंह के भी साथ रहे थे। 'सुकवि' की उपाधि इन्हें इन दूसरे आश्रयदाता ने ही दी थी। इनका उपस्थिति काल स० १८५७-१८६१ तक निश्चित किया जा सकता है। इनकी चार रचनाये मिलती हैं—भगव तराय की विरुदावली, पुरुष स्त्री सवाद, बदभद्र व्याकरण और नखशिख दर्पण।

३ गोपाल कायस्थ बघेलखडी—ये रीवाँ के महाराज विश्वनाथ सिंह (शासनकाल स० १८७०-१८६१) के मत्री थे।

४ गोपाल भाट—इनके पिता का नाम खड्गराय था। ये चैत य सम्प्रदाय के अनुयायी वृ दावनवासी रामबख्श भट्ट के शिष्य थे। पटियाला के महाराज कर्मसिंह के छोटे भाई अजीतसिंह इनके प्रधान आश्रयदाता थे। इन्होंने १२ ग्रन्थ लिखे—दम्पतिकाव्यविलास, दूषण विलास, ध्वनि विलास, भाव विलास, भूषण विलास, मान पचीसी, रससागर, रासपञ्चाध्यायी सटीक, वशीलीला, वर्षोत्सव, वृ दावनधामानुरागावली और वृंदावनमाहात्म्य।

अपेक्षित प्रमाणो के अभाव मे यह निश्चय करना कठिन है कि इनम से किस गोपाल कवि की रचना दिग्विजय भूषण मे उदाहृत है।

४४. गोविन्द

हि दी साहित्य के इतिहास ग्र थों में गोविन्द नामक दो कवियों का उल्लेख हुआ है। एक हैं 'करणाभरण' के रचयिता 'गोवि द कवि' जिनका उदय शिव

सिंह सरोज के अनुसार, सं० १७९१ में हुआ। दूसरे हैं 'गोविंदजी कवि' जो सरोजकार के अनुसार सं० १७५७ में विद्यमान थे। शिवसिंहजी ने इनकी रचनाएँ कालिदास के हजारे में संग्रहीत बताई हैं। सरोज में प्रथम गोविंद के 'करणाभरण' से कुछ दोहे उद्धृत किए गए हैं किन्तु दिग्विजय भूषण में गोविंद कवि के उदाहृत छंद, कवित्त हैं। मेरा अनुमान है कि दिग्विजय भूषण में निर्दिष्ट गोविंद उपर्युक्त दूसरे गोविंदजी कवि हैं।

ये जयपुर निवासी निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव श्री सर्वेश्वर शरणजी के शिष्य थे। आचार्य पं० रामचंद्र शुक्ल ने इनकी ९ कृतियों की नामावली दी है। जो इस प्रकार है—रामायण सूचनिका, रसिकगोविंदानन्दघन, लछिमन चंद्रिका, अष्टदेश भाषा, पिंगल, समय प्रबंध, कलिजुग रासो, रसिक गोविन्द और युगलरसमाधुरी। इनके अतिरिक्त इधर इनकी 'श्रीरामामुखपाटशी' नामक एक और कृति उपलब्ध हुई है। इनका रचनाकाल सं० १८५० से सं० १८९० तक माना जाता है।

४९ ग्वाल

ग्वाल कवि मथुरा निवासी सेवाराम बंदीजन के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १८४८ में हुआ। इनकी गणना रीति काल के सिद्धहस्त कवियों में की जाती है। इनके उपास्यदेव शंकर थे। मथुरा में इनके द्वारा सं० १८७९ में निर्मित शिवमंदिर अब तक वर्तमान है। शैव होते हुए भी युगधारा के अनुकूल इनकी वाणी राधामाधव की विहारलीला के चित्रण में ही मुख्य रूपेण प्रवृत्त रही। इनका कविताकाल सं० १८७९ से लेकर सं० १९१९ तक विस्तृत था। इस प्रकार गोकुल कवि के समय में ये विद्यमान ठहरते हैं।

उत्तर भारत पर अंग्रेजी शासन की स्थापना इनके सामने हुई थी। पावस वर्णन में एक स्थान पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के विजय अभियान का रूपक प्रस्तुत करते हुए ये लिखते हैं—

तरल तिलंगन का तुंग देह तेजदार,
कानन कदंब को कदंब सरसायो है।
सूबेदार मोर घोर दादुर हवलदार,
बग जमादार और तंबूर पिक भायो है।
'ग्वाल' कवि बाढ़ै गरराट घन घट्टन की,
कंपनी को कंपू भला होइ छवि छायो है।
भूपति उमंगी कामदेव जोर जंगी जान,
मुजरा को पावस फिरंगी बनि आयो है।

ग्वाल कवि उत्तरी तथा पश्चिमी भारत में काफी घूमे थे। इससे गुजराती पजाबी और पूर्वी भाषाओं की इ हें पर्याप्त जानकारी हो गई थी। इनमें रचे हुए छद इनके बहुभाषा ज्ञान की पुष्टि करते हैं। कहते हैं इ हीं यात्राओं के सम्बन्ध में ये पजाब केशरी महाराज रणजीत सिंह के भी दरबार में गए थे और वहाँ से इन्हें कुछ स्थायी वृत्ति भी मिली थी।

इनका देहावसान स० १६२८ में हुआ।

ग्वाल कवि विरचित ग्रथो की सख्या पचास से ऊपर बताई जाती है, जिनमें मुख्य है—यमुना लहरी (स० १८७६), रसिकानन्द, हम्मीरहठ (स० १८८१), नखशिख बृजराज श्रीकृष्णजू के (स० १८८४), दूषणदर्पण (स० १८६१), गोपी पच्चीसी, राधा माधव मिलन, राधाष्टक, कविहृदय विनोद, रसरग (स० १६०४), अलकारभ्रमभजन, कवित्त वसत, कविदर्पण, वशीबीसा, ग्वाल पहेली तथा भक्तभावन (स० १६१६)। दिग्विजय भूषण में इनकी उपर्युक्त रचनाओं से पाँच छद उदाहृत हैं।

४६. घनश्याम

घनश्याम शुक्ल अस नी (जिला फतेहपुर) के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका ज म स० १७३७ में और देहावसान स० १८३५ के लगभग हुआ। दिग्विजय भूषण में उदाहृत इनके निम्नाकित छ द से विदित होता है कि ये बाँधवगढ़ (रीवाँ) के बघेल राजा के दरबारी कवि थे—

अटै औनि अम्बर छुटै सुमेर मदर से,
घटै मरजादा बीर बारिधि की बेला के।
कहे 'घनस्याम' घनघोर से घुमडै घन,
मडल उमडै गज रज रवि रेला के॥
धारै बरछान को बिदारै देव ताके तन
मद सों कुठार कढ़े सकर के चेला के।
दब्बे दिगपाल बल फब्बे न सिंघासन के
जा दिन जुनब्बै कढ़ै बाँधवी बघेला के॥

घनश्याम शुक्ल के समय में रीवाँ की गद्दी पर महाराज अनिरुद्ध सिंह (शासन काल स० १७४७–१७५७) तथा महाराज अवधूत सिंह थे। उ हीं की छत्रछाया में घनश्याम के जीवन का अधिकाश व्यतीत हुआ।

शिवसिंह सरोज में इनके संग्रहीत छंदों में से एक काशिराज की प्रशंसा में लिखा गया है, जिससे यह सिद्ध होता है कि कुछ दिनों तक इन्होंने दरबारी कवि के रूप में उनकी भी सेवा की थी।

घनश्याम की कोई संपूर्ण कृति अब तक प्रकाश में नहीं आई है। शिवसिंह जी ने कालिदास के हजारे में इनके कतिपय छंद संकलित बताये हैं। उन्होंने स्वयं भी इनके २०० छन्द संग्रहीत किये थे। जहाँ तक हजारे में प्रस्तुत घनश्याम के छंदों के संग्रहीत होने का प्रश्न है, सरोजकार का मत समीचीन प्रतीत नहीं होता। 'हजारा' का निर्माण काल सं० १७५० है। उस समय घनश्याम शुक्ल केवल १२ वर्ष के रहे होंगे। इतनी कम उम्र में इन्होंने ऐसी कविता कर ली हो जिसकी कीर्ति, यातायात तथा प्रचार प्रसार के सुगम साधनों के अभाव में भी, इतनी शीघ्रता से फैल जाय कि तत्कालीन काव्य संग्रहों में उसे स्थान मिल जाय—युक्ति संगत नहीं जान पड़ता। अतः हजारा के घनश्याम इनसे भिन्न सत्ता रखते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं।

४७. घनसिंह

इनका केवल एक छन्द दिग्विजयभूषण में उदाहृत है जिसका विषय नायिका भेद है। इसके अतिरिक्त इनकी किसी फुटकर रचना अथवा सम्पूर्ण कृति का पता नहीं चलता। इनके जीवन सम्बन्धी तथ्य भी अज्ञात हैं।

४८. घनानंद

आरम्भ में नाम सादृश्य के कारण घनानंद और आनंदघन अभिन्न मान लिए गये थे। दिग्विजयभूषण में इसीलिए घनानंद के कवित्त आनंदघन के नाम से उदाहृत हैं। किंतु इधर की खोजों से यह सिद्ध हो गया है कि ये दोनों महानुभाव प्रायः समकालीन होते हुए भी पृथक् अस्तित्व रखते थे। एक प्रेम योगी वैष्णव भक्त थे दूसरे जैन महात्मा। प्रथम घनानन्द और द्वितीय आनन्दघन के नामसे विख्यात थे। आनंदघन की दो रचनायें हैं—बहत्तरीस्तवावली और चौबीसी। इनका प्रतिपाद्य विषय है जैन तीर्थंकरों एवं महात्माओं की स्तुति। 'घनानंद' अथवा 'घनआनँद' प्रसिद्ध सुजानप्रेमी कृष्ण भक्त हैं। गोकुल कवि के आनन्दघन कवि यही हैं।

घनानन्द का जन्म कायस्थ वंश में सं० १७४६ में हुआ था। ये दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह 'रंगीले' (शासनकाल सं० १७७६ से सं० १८०५ तक) के मीरमुंशी थे। कुछ शाही कृपापात्र और कुछ दरबार की नर्तकी सुजान के

प्रेमी होने के कारण ये दरबारियों की आँखों पर चढ़ गये। वे इन्हें नीचा दिखाने की फिक्र में रहने लगे। एक दिन उन्हें एक अच्छी युक्ति सूझ गई। उन्होंने घनानन्द की अनुपस्थिति में बादशाह से इनकी संगीतपटुता की बड़ी तारीफ की। उनकी प्रेरणासे मुहम्मदशाह ने इनसे गाना सुनाने का अनुरोध किया। घनानन्द ने दरबार के अदब को ध्यान में रखते हुए स्पष्टतया इन्कार तो नहीं किया किन्तु कुछ बहाना करके अपनी असमर्थता प्रकट की। विद्वेषी दरबारियोंने दाँव खाली जाते देख दूसरा पाँसा फेंका। उन्होंने बादशाह से कहा कि आप की आज्ञा ये टाल सकते हैं किन्तु सुजान का अनुरोध नहीं टाल सकेंगे। यदि आपको इनके स्वरमाधुर्य का रस लेना है तो उसी से कहलाइये। निदान सुजान बुलवाई गई उसके कहने पर घनानन्द ने इतनी तन्मयता से गाया कि सभी आनन्द विभोर हो गये। एक बेअदबी इस बार भी अनजाने ही उनसे हो गई। गाते समय उनका मुँह सुजान की ओर था, पीठ बादशाह की ओर। इस अशिष्ट व्यवहार से मुहम्मदशाह रुष्ट हो गये। घनानन्द को नगरसे निकल जाने का हुक्म हुआ। दिल्ली छोड़ते समय उन्होंने सुजान से साथ चलने के लिए कहा किन्तु वह वार विलासिनी दुर्दिन में इनका साथ देने को राज़ी न हुई। उसके इस अप्रत्याशित व्यवहार से घनानन्द का अन्तस्थ सत्त्व द्योतित हो उठा। ये सीधे वृन्दावन गये। वहाँ इन्होंने निम्बार्क सम्प्रदाय के महात्मा वृन्दावनदेव से दीक्षा ले ली। इनका साम्प्रदायिक नाम 'बहुगुनी' रखा गया।

इस घटना के कुछ ही दिनों बाद सं० १८१७ में अहमदशाह अब्दाली का दिल्ली पर आक्रमण हुआ। मुहम्मदशाह के कुछ दरबारियों का निष्कासन के बाद भी घनानन्द का अस्तित्व खटक रहा था। कहते हैं उन्हीं की प्रेरणा से मथुरा पहुँचने पर अब्दाली के सैनिकों ने घनानन्द को ढूँढ निकाला और इनसे 'ज़र' माँगा। इस अकिंचन ब्रजभूमि सेवी ने 'ज़र' के बदले उनके ऊपर तीन मुट्ठी ब्रजरज फेंक दी। इस अपराध में इनके हाथ कलम कर लिए गये। यही घटना इनके प्राणान्त का कारण बनी। घनानन्द जी के अन्तिम शब्द ये—

बहुत दिनान की अवधि आसपास परे,
　　　　खरे अरबरनि भरे हैं उठि जानको।
कहि कहि आवन छबीले मनभावन को,
　　　　गहि गहि राखत ही दै दै सनमान को॥

झूठी बतियानि के पत्यानि तें उदास ह्वै कै,
अब ना घिरत 'घन आनँद' निदान को।
अधर धरे हैं आनि हरिके पयान प्रान,
चाहत चलन ये सँदेसो लै सुजान को॥

घनानन्द जी का सारा भक्त जीवन कृष्णलीला गान मे बीता। उनकी प्रेमानुभूति म विरह का स्वर प्रधान था। अनुरक्त जीवन की प्रेयसी सुजान विरक्त जीवन म उनकी आराध्या बनकर कृष्ण से अभिन्न हो गई। उसे लक्ष्यकर इनकी मर्मभेदी 'प्रेम की पीर' जिस सशक्त भाषा मे अभिव्यक्त हुई है वह ब्रजभाषा काव्य की एक अमूल्य निधि है।

घनानन्दजी की निम्नांकित कृतियाँ प्राप्त हुई हैं—सुजान सागर, विरहलीला, रसकेलिवल्ली और कृपाकन्द। आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने कोकसार का भी इन्हीं की रचना माना है किन्तु वह एक दूसरे 'आनन्द' नामक कवि की कृति है।

४९. घासीराम

ये मल्लावाँ (जिला हरदोई) के निवासी ब्राह्मण थे। इनका जन्म स० १६२३ में हुआ और स० १६८२ तक ये जीवित रहे। शिवसिंह जी ने इनके छन्द कालिदास कवि के हजारे में सकलित बताये हैं, जो इनके आविर्भाव काल को देखते हुए असगत नहीं कहा जा सकता। सरोज मे इनके नाम से उद्धृत एक छन्द थोड़े पाठभेद के साथ दिग्विजयभूषण म भी उदाहृत मिलता है। इनका सम्पूर्ण ग्रन्थ केवल 'पक्षी विलास' है, जिसकी रचना स० १६८० में हुई। नखशिख एव नायिका भेद पर इनके लिखे हुये कतिपय छन्द य। तत्र प्राची। काव्यसग्रहोंमे मिलते हैं।

५०. चन्द कवि

कविवर चन्दबरदाई दिल्लीके अन्तिम हिन्दू शासक, महाराज पृथ्वीराज चौहान के राजकवि, सामन्त और सखा थे। इनका लोकविश्रुत ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी का प्रथम महाकाव्य माना जाता है। ये ब्रह्मभट्ट जाति की जगात नामक शाखा म उत्पन्न हुये थे। आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने इनका समय स० १२२५ से स० १२४९ तक माना है किन्तु 'पृथ्वीराज रासो' की प्राप्त प्रतियों में भाषा का जो रूप मिलता है वह अत्यन्त अव्यवस्थित और अर्वाचीन है।

डा० गौरीशकर हीराच द ओझा ने इसीलिए उसे स० १६०० के आसपास लिखा गया माना है। उसकी सर्वाधिक प्राचीन हस्तलिखित प्रति स० १६४२ की है।

दिग्विजय भूषण में चद कवि के जो छन्द उदाहृत हैं उनकी भाषा डिगल न होकर रीतिकालीन कवियों द्वारा प्रयुक्त पिगल अथवा ब्रजभाषा से पूरी तरह मिलती है। उसमें एक छद पृथ्वीराज को सम्बोधित करके लिखा गया है। इसके आधार पर केवल इतना निश्चित किया जा सकता है कि गोकुल कवि ने जिस चद कवि की रचनायें सकलित की हैं वह प्रसिद्ध चदबरदाई से अभिन्न है। दिग्विजय भूषण के निम्नाकित दोहा से भी इसकी पुष्टि होती है—

सीकबान प्रथुराज को, तानि बास गज चारि।
लगत चोट चौहान की, उडत तीस मन गारि॥
धर पलटयो पल्टी धरा, पलटयो हाथ कमान।
चद कहै पृथुराज सो, दिन पलटे चौहान॥
फेरि न जननी जनमिहै, फेरि न खेंचि कमान।
सात बार तुम चूकियौ, अब न चूकु चोहान॥
बारह बाँस बतास गज, अगुल चारि प्रमान।
यतने पर पतसाह है, मति चूको चोहान॥

५१ चदन

ये नाहिल पुवायाँ (जिला शाहजहाँपुर) के निवासी ब्रह्मभट्ट थे। इनके पिता का नाम धर्मदास और पितामह का फकीरे राम था। इनके दो पुत्र हुए—प्रेम राम और जीवन। 'प्राग्य विलास' मे अपना परिचय देते हुए ये लिखते हैं—

विधि सो विधि छितितल रची, निहलर पुरी पुनीत।
तहा बसे भूपन भये, भीषम उत्तम गीत॥
तासु तनय गुण गण सदन, भये फकीरे राम।
सदा भजन भगवन्त को, करो मनो बच काम॥
धर्मदास तिनके भये, धर्मदास बिन आस।
विश्वभर को भजन जिन, करत धरे निस्वास॥
तिनके सुत चदन भगत, भयो देव दुज दास।
करि बदन दुजको कह्यो, प्राग्य विलास प्रकास॥

चदन कवि के आश्रयदाता केशरीसिंह गौड थे। इनका कविताकाल सं० १८१० से सं० १८६५ तक माना जाता है। ५५ वर्ष के इस विस्तृत काल में इन्होंने ५२ ग्रन्थों की रचना की। उनमें से अब केवल ८ का ही पता चलता है। वे हैं—कृष्णकाव्य (सं० १८१०), केशरी प्रकाश (सं० १८१७), नखशिख राधा जी को (सं० १८२५), प्राग्य विलास (सं० १८२५), काव्याभरण (सं० १८४५), रसकल्लोल (सं० १८४६) तत्त्व संज्ञा और पीतम वीर विलास (सं० १८६५)। शिवसिंह जी सेंगर तथा आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इनके अतिरिक्त चंदन कवि की निम्नलिखित छः अन्य रचनाओं का भी उल्लेख किया है—चंदन सतसई, पथिक बोध, शृंगार सार, नाममाला कोश, तत्त्व संग्रह तथा सीत बसंत। इनमें से चदन सतसई, पथिक बोध, नाममाला कोश, और सीतबसंत को छोड़कर शेष दोनों रचनायें परिवर्तित नामों से उपर्युक्त सूची में पाई जाती है।

५२ चतुर

ये रीतिकालीन शृङ्गारी कवि थे। दिग्विजय भूषण में इनका एक कवित्त आया है, जिसे सरोजकार ने उसी रूप में ले लिया है। इनके सम्बन्ध में विशेष कुछ ज्ञात नहीं।

५३. चतुर विहारी

इस नाम के दो कवि हुए हैं—एक कृष्णभक्त थे दूसरे रीतिकालीन शृङ्गारी परंपरा के। प्रथम चतुर विहारी ब्रज के निवासी थे। इनका उदयकाल शिवसिंह जी ने सं० १६०५ माना है और 'राग कल्पद्रुम' में इनके पद संगृहीत बताये हैं। दूसरे चतुर विहारी का कोई वृत्त ज्ञात नहीं।

इन दोनों में से दिग्विजय भूषण के चतुर विहारी अनुमानतः दूसरे हैं। सरोज में इनके नाम से उद्धृत छंद दिग्विजय भूषण से ही लिया गया है।

५४ चतुर्भुज

गोकुल कवि ने चतुर्भुज का एक नायिका भेद विषयक छंद उदाहृत किया है। सरोजकार ने उसे संग्रहीत कर लिया है, जिससे ये शृंगारी कवि ठहरते हैं। अष्टछापी चतुर्भुज दास और मैथिल चतुर्भुज कवि से ये सर्वथा भिन्न हैं।

रीति कालीन शृंगारी परंपरा में इस नामके दो कवि हुए हैं। और वे दोनों प्रायः समकालीन हैं। प्रथम चतुर्भुज, अयोध्या प्रसाद वाजपेयी 'औधकवि'

के भाई थे। इनकी जन्मभूमि सातनपुरवा (जिला रायबरेली) थी। इनका उपस्थिति काल स० १८६० है। दूसरे चतुर्भुज गौतम गौत्र के मिश्र थे। इनके पिता का नाम रामकृष्ण मिश्र था। इनका आविर्भाव कुलपति मिश्र के वश में हुआ था। ये भरतपुर नरेश महाराज बलवत सिहके दरबारी कवि थे। इनका उदय स० १८९६ के लगभग हुआ।

मेरा अनुमान है कि इन दोनों चतुर्भुज नामाराशी कवियों में से दिग्विजय भूषण में प्रथम की रचना सग्रहीत है। इसका आधार है गोकुल कवि और चतुर्भुजके बड़े भाइ अयोध्या प्रसाद वाजपेयी का घनिष्ठ-परिचय और सौहार्द्र। सभव है औध कवि द्वारा ही गोकुल को चतुर्भुज की रचना उपलब्ध हुई हो।

५८ चितामणि

चितामणि रीतिकाल के प्रमुख आचार्य कवि माने जाते है। वास्तवमे रीतियुग की शृखलाबद्ध परपरा का प्रवर्तन इन्हीं के द्वारा हुआ। ये कानपुर जिले क तिकवाँपुर गाँव के निवासी रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र थे। इनका आविर्भाव स० १६६६ मे हुआ। प्रसिद्ध कवि भूषण, मतिराम और नीलकठ इनके छोटे भाई थे। इ होने ओरगजेब, अकबर शाह (हैदराबाद), रुद्रशाह सोलकी, जैनुद्दीन अहमद तथा मकरन्द शाह भोसला के आश्रय म रहकर अनेक शृगारी ग्रथों की रचना की। काव्यागो पर लिखी गयी इनकी कृतियाँ सर्वाधिक समादृत हुई। अपनी रचनाओ में इ होने कहीं कहीं मणिलाल छाप भी रखी है। अब तक इनके निम्नाकित ग्र थो का पता चला है—कविकुलकल्पतरु, काव्य विवेक, काव्य प्रभाकर, पिगल, छन्द विचार तथा रामायण। दिग्विजय भूषण में नखशिख तथा नायिकाभेद पर इनके छद उदाहृत है।

५९. चैनराय

इस नाम के दो कवि हुये है। प्रथम चैनराय भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास जी के शिष्य थे। ये स० १७६६ के लगभग वर्तमान थे। इनकी 'भक्ति सुमरिनी' नामक एक रचना खोज म मिली है। दूसरे चैनराय जयपुर राज्य के अ तर्गत तुनो नामक गाँव के निवासी ब्रह्मभट्ट थे। ये जोगावत क्षत्रिय चाँदसिंह के आश्रित कवि थे। इनका उपस्थिति काल स० १८८५ है। प्रथम चैनराय भक्त कवि थे और दूसरे शृगारी।

दिग्विजय भूषण मे चैनराय के उदाहृत छ द का विषय नायिका भेद है।

वह दूसरे चैनराय की रचना प्रतीत होती है। सरोजकार ने भी यही छंद उद्धृत किया है किंतु कवि के वृत्त के सम्बन्ध में वे मौन रहे हैं।

५७. जगजीवन

खोज में जगजीवन नाम के तीन कवि मिले हैं। एक जगजीवन आगरा निवासी जैन थे। इन्होंने 'जैनसत्यसार' की टीका लिखी। मिश्रबंधुओं ने इन्हें ही 'हजारे' वाला जगजीवन माना है। किस आधार पर, इसकी विवेचना नहीं की गई है। दूसरे जगजीवन 'हनुमान नाटक' के रचयिता कहे जाते हैं। तीसरे जगजीवन रीतिकालीन शृंगारी कवि थे। शिवसिंहजी ने इन्हीं तीसरे जगजीवन के कुछ शृंगारी छन्द संकलित किये हैं। दिग्विजय भूषण में उदाहृत छन्द नीति विषयक हैं। वे उपर्युक्त जगजीवन नामधारी तीनों कवियों में से तीसरे द्वारा विरचित प्रतीत होते हैं। प्रथम की रचनायें जैन धर्म के साम्प्रदायिक सिद्धान्तों पर है और दूसरे की भक्तिपरक। शृंगारके साथ नीति इस काल के कवियों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय रहा है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना अनुचित न होगा कि निर्गुण संत कवि जगजीवन साहब (कोटवा, जिला बाराबंकी) और राधावल्लभीय जगजीवनदास से प्रसङ्ग प्राप्त जगजीवन का कोई सम्बन्ध नहीं।

५८. जगत सिंह

आचार्य कवि जगत सिंह का जन्म गोंडा के बिसेन राजवंश की भिनगा (बहरायच) वाली शाखा में हुआ था। इनके पिता दिग्विजय सिंह, देवतहा के तालुकेदार थे। यह स्थान बलरामपुर से पाँच मील दक्षिण गोंडा जाने वाली सड़क पर स्थित है। 'भारती कण्ठाभरण' में इन्होंने अपना परिचय इन शब्दों में दिया है—

> दत्तसिंह को बंधु लघु, नाम भवानी सिंह।
> हाटक कस्यप रिपु भये, उदै आय नर सिंह॥
> महायुद्ध कीने अमित, जानत सब संसार।
> बसि लीन्हे भिनगा सकल, भाजे सब जनवार॥
> भरतखंड मंडन भयो, ताको सुत नरिबंड।
> जिन उजीर सों रन रचे, अपने ही भुज दंड॥
> शिवपुरान भाषा कियो, जानत सब संसार।
> सकल शास्त्र को देखियत, सुने पुरान अपार॥

ता सुत भो दिग्विजय सिंह, सकल गुनन को खानि ।
सबै महीपति भूमिके, राखत जाका आनि ।।
जगत सिंह ताको तनै, बन्दि पिता के पाय ।
पिंगल मत भाषा करत छमियो सब कवि राय ।।

इनके काव्यगुरु शिवकवि अरसेला बन्दीजन थे। गुरुके साहचर्य, स्वाध्याय एव प्रातिभज्ञान से विरचित जगत सिंह की अधिकाश रचनायें काव्य शास्त्र सम्बन्धी हैं। प्राचीन आचार्यों—मम्मट, विश्वनाथ, क्षपणक और जयदेव के सिद्धान्तों की आलोचनात्मक व्याख्या मे इनकी वृत्ति विशेष रूप से रमी है। भाषाकाव्य के एतद्विषयक इनके पथप्रदर्शक आचार्य केशवदास थे। उनकी कविप्रिया और रसिकप्रिया पर टीकायें लिखकर जगतसिंह ने अपनी प्रगाढ विद्वत्ता का परिचय दिया है।

इस प्रकार शास्त्रचिंतन में अहर्निश मग्न रहते हुये भी इनकी पैनी दृष्टिसे तत्कालीन सामाजिक जीवन ओझल न रह सका। अवध की नवाबी सभ्यता से प्रभावित किसी क्षत्रिय रईस के वेश विन्यास, चाल ढाल एव स्वभाव का शब्द-चित्र प्रस्तुत करते हुए ये लिखते हैं—

हालि हालि हुलसि हुलसि हँसि हँसि देखै,
बदन बतीसी मीसो दीसी दिन राति है।
जामा पायजामा सब सामा को चलावै कौन,
'जगत' जनानन की सीखी सब बात है।
लोक को न लाज परलोक को करै न काज,
ठाकुर कहाइ कहा चोरी उतपात है।
गनिका ज्यों डोली पर बैठत खटोली पर,
चाल पर चोली पर बोली पर मात है ।।

अबतक इनकी बारह कृतियों का पता चल सका है—रत्नमञ्जरी कोष (स० १८६३), रसमृगाक (स० १८६३), अलकारसाठिदर्पण (स० १८६४), उत्तममजरी, चित्रमीमासा, जगतविलास, नखशिख, भारती कठाभरण (लिपिकाल स० १८६४) जगत प्रकाश (स० १८६५) और नायिकादर्शन (स० १८७७)।

५९ जीवन

इस नाम के दो कवि हुए हैं। एक भक्तिकाव्य के रचयिता जीवन कवि स० १६०८ के आस पास उपस्थित थे, दूसरे जीवन लखनऊ के नवाब मुहम्मद

अली (शासन काल स० १८६४–६६) के आश्रित शृंगारी कवि थे। दिग्विजय भूषण म सभवतः दूसरे जीवन कवि के छद उदाहृत हे।

ये पुवायाँ (जिला शाहजहाँपुर) के निवासी चदन कवि के पुत्र थे। इनका जन्म स० १८०३ म हुआ था। इन्होंने नेरी गरगाँव (जिला सीतापुर) के तालुकेदार बरिवड सिह के आश्रय म रहकर 'बरिवड विनोद' नामक ग्रथ की रचना स० १८७३ मे की थी।

६० जैन मुहम्मद

इनका असली नाम जैनुद्दीन अहमद था। कवियों के आश्रयदाता होने के साथ ही ये स्वय भी अच्छे कवि थे। शिवसिहजी ने इनका उदयकाल स० १७३६ माना है। महाकवि भूषण के बड़े भाई चिंतामणि कुछ दिनों तक इनके आश्रय मे रहे थे। दिग्विजय भूषण के निम्नाकित छद म किसी आश्रित कवि ने इनका शौर्यवर्णन इन शब्दों मे किया है—

खैर खरी सरदार हजार मे जूझ म आपनी फोज ते फूटि कै।
दौरि के जैन महम्मद वार दई सिर मैं तरवारि त्यौ ऊटि कै॥
आधो रह्यो धर घोरे धराक लौ आधो गिरो धरनी पर टूटि कै।
मानहु मान गिरीश ते कै रही गोरि गिरी अरधग ते छूटि कै॥

इनका नायिका भेद विषयक केवल एक छद दिग्विजय भूषण मे सकलित है। थोड़े पाठ भेद के साथ वही सरोज मे भी उद्धृत है। इनकी किसी सपूर्ण कृति का पता नहीं चलता।

६१ जसवंतसिंह

जसवत सिंह नाम के दो कवि हुये हैं—एक मारवाड के प्रसिद्ध महाराज जसवत सिह और दूसरे तिरवा (जिला फर्रुखाबाद) के बघेल राजा जसवत सिंह। दिग्विजय भूषण मे उपर्युक्त दोनों जसवत सिह नामधारी कवियों के छद उदाहृत हैं, किंतु कवि सूची में नाम एक ही जसवत सिंह का आया है। ग्रथ के भीतर दो स्थलों पर 'राजा जसिवत सिंह' का नाम दिया गया है। एक स्थान पर 'भाषा भूषण' से एक दोहा उदाहृत है, वह प्रथम जसवत सिंह की एक विख्यात रचना है। अन्यत्र सभवत बघेल राजा जसवतसिह के शृगार शिरोमणि से लेकर एक कवित्त उद्धृत किया गया है।

प्रथम महाराज जसवतसिह जोधपुर नरेश गजसिंह के पुत्र थे। इनका जन्म स० १६८२ में हुआ था। पिता की मृत्यु के बाद स० १६९५ में ये गद्दी पर

बैठे थे। स० १७११ में शाहजहाँ ने इ हें छ हजारी मनसबदार बनाकर महा राज की उपाधि प्रदान की। शाहजहाँ की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकार युद्ध में औरगजेब के विरोधी होते हुए भी काला तर मे ये उसके विश्वस्त सेना नायक एव सहायक बन गये। शिवाजी के विरुद्ध अभियान में शाइस्ता खाँ के साथ ये दक्षिण भेजे गये। स० १७३५ म मुगल शासन की ओर से अफगानों से युद्ध करते हुये जमुर्रद नदी के किनारे ये वीरगति को प्राप्त हुये।

आचार्य रूप में लिखा गया इनका 'भाषा भूषण' नामक अलकार ग्रथ रीतिकालीन कवियों का प्रधान सबल रहा है। इसके अतिरिक्त इनकी छ अ य रचनायें अ यात्म विषयक हैं। इनके नाम हैं–अपरोक्ष सिद्धान्त, अनुभवप्रकाश, आनदविलास (स० १७२४), सिद्धा त बोध, इच्छा विवेक, सिद्धा त सार और प्रबोध च द्रोदय नाटक।

दूसरे राजा जसवतसिंह तिरवा नरेश हम्मीर सिह के पुत्र थे। ये बड़े ही साहित्य रसिक और सिद्धहस्त कवि थे। इनका निजी पुस्तकालय सस्कृत एव हिन्दी के अलभ्य ग्रथों का बृहद् भाडार था। ग्वाल कवि बहुत दिनों तक उनके आश्रय मे रहे थे। इनकी दो रचनायें मिलती है शालिहोत्र और शृगार शिरो मणि। दिग्विजय भूषण मे उद्धृत छ द 'शृगार शिरोमणि' से लिया गया प्रतीत होता है। इनका उपस्थिति काल स० १८५६ के आस पास माना जाता है।

६२ ठाकुर

अब तक ठाकुर नामधारी तीन कवि ज्ञात हैं। पहले प्राचीन ठाकुर के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये स० १७०० के लगभग वतमान थे। कालिदास के हजारा में जिनके छद सग्रहीत बताये गये हैं, वे यही ठाकुर हैं। दूसरे ठाकुर बदीजन असनी (जिला फतेहपुर) के निवासी थे। इनके पिता ऋषिनाथ, पुत्र धनीराम और पौत्र सेवक, सभी कवि थे। ये काशिराज के भाई बाबू देवकीन दन सिंह के पास रहते थे। इ होंने स० १८६१ में बिहारी सतसई की टीका लिखी थी। तीसरे ठाकुर बुदेलखडी कायस्थ थे। इनके पिता का नाम गुलाब राय था। इनका ज म स० १८२३ में ओरछा में हुआ था और स० १८८० मे ये परलोक वासी हुये। बुदेलखण्ड के तत्कालीन राजाओं में इनकी बडी प्रतिष्ठा थी। जैतपुर के राजा केसरीसिह, बिजावर नरेश और बाँदा के हिम्मत बहादुर गोसाई इनके प्रमुख आश्रयदाता थे। राज्याश्रय मे जीवन यापन करते हुए भी ठाकुर कवि ने अपने आत्मसम्मान में कभी बट्टा नही लगने दिया। हिम्मत बहादुर के

समक्ष पढ़ा गया निम्नांकित छंद उनकी स्वभावगत निर्भीकता का प्रत्यक्ष प्रमाण है—

सेवक सिपाही हम उन रजपूतन के,
　　　　दान किरपान कबहूँ न मन मुरके।
नीत देनवारे है मही मैं महिपालन के,
　　　　होकर त्रिसुद्ध है कहैया बात फुरके॥
ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के,
　　　　जालिम दमाद है अदेनिया ससुर के।
चोजन के चोज रसमोजिन के पातसाह,
　　　　ठाकुर कहावत पै चाकर चतुर के॥

इनके पुत्र दरियाव सिंह 'चातुर' और पौत्र शंकर प्रसाद भी अच्छे कवि थे।

ठाकुर कवि की कोई स्वतंत्र रूप से लिखी गई संपूर्ण रचना नहीं मिलती। लाला भगवानदीन जी ने इनकी कविताओं का एक संग्रह 'ठाकुर ठसक' नाम से निकाला था किंतु उसमें अन्य दो ठाकुर कवियों की भी रचनाएँ मिल गई थी। इनके फुटकर छंद बड़ी संख्या में यत्र तत्र काव्यसंग्रहों मे बिखरे हुये मिलते हैं।

६३ तारा कवि

गोकुल कवि ने इनका एक छन्द दिग्विजय भूषण में दिया है। सरोजकार ने उसे ही उद्धृत किया है। शिवसिंहजी के अनुसार ये सं० १८३६ के आस पास वर्तमान थे। ग्रियर्सन साहब ने इन तारापति की एकता ताराकवि से स्थापित की है। किंतु उनकी इस उपपत्ति के आधारभूत तथ्य इतने सबल नहीं है कि वे निर्भ्रान्त रूप में स्वीकार किये जा सकें।

६४. तारा पति

ये आगरा निवासी अभयराम चतुर्वेदी के पुत्र थे। कविवर बिहारी के भानजे, कुलपति मिश्र, का आविर्भाव इन्हीं के वंश में चौथी पीढ़ी में हुआ था। शिवसिंह जी के अनुसार इनका उपस्थितिकाल सं० १७६० है, किंतु कुलपति के काव्यकाल (सं० १७२४-१७४३) को देखते हुये यह नितांत अशुद्ध ठहरता है। संभवतः १७ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ये विद्यमान थे। इनके काव्यगुरु कोकसार के रचयिता ताहिर अहमद (सं० १६१८-१६७८) थे। सरोजकार ने नखशिख पर लिखे गये इनके एक ग्रन्थ की प्रशंसा की है।

दिग्विजय भूषण में उदाहृत छ द का विषय नखशिख वर्णन ही है। शिवसिंह जी ने उसे ही सकलित किया है। इसमें सरोज तथा भूषण के तारापति एक ही हैं, यह मान लेने में कोइ बाधा उपस्थित नहीं होता।

६९. तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास का ज मस्थान परपरा से बाँदा जिले का राजापुर नामक ग्राम माना जाता रहा है। यद्यपि इस गौरव की प्राप्ति के लिए इधर कुछ विद्वान् सोरों (जिला एटा), हाजीपुर तथा अयोध्या को भी अधिकारी मानने लगे हैं कि तु उनके तर्क इतने दृढ नहीं हे कि एतद्विषयक उपर्युक्त मा यता को निराधार प्रमाणित कर सकें। ज मभूमि की भाँति तुलसी का ज म सवत् भी विवादास्पद है। मानस मयक के रचयिता ब दनपाठक उसे स० १५५४, शिवसिंह सेंगर स० १५८३ तथा प० रामगुलाम द्विवेदी स० १५८९ मानते हे। इस सम्ब ध मे केवल उनकी ज म तिथि 'श्रावण शुक्ला सप्तमी' निर्विवाद है।

तुलसी के निम्नाकित उल्लेखों से इसमे कोई स देह नहीं रह जाता कि उनका आविर्भाव ब्राह्मण कुल मे हुआ था--

"दियो सुकुल जन्म सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को"

"जायो कुल मगन बधायो न बजायो सुनि,

भयो परिताप पाप जननी जनक को।"

किसी समकालीन जीवनी लेखक द्वारा समथित न होते हुए भी उन के पिता के चार नाम प्रचारित हैं--आत्माराम दूबे, परशुराम मिश्र, अम्बादत्त और अनूप। माता हुलसी के नाम की पुष्टि के लिए रहीम का यह दोहा प्रस्तुत किया जाता है--

सुरतिय नरतिय नाग तिय, सब चाहति अस होय।

गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय॥

रामचरित मानस के मगलाचरण में आये हुये निम्नाकित सोरठे से दीक्षा गुरु का नाम 'नरहरि' स्पष्ट है--

बन्दौ गुरु पद कज, कृपा सिन्धु नररूप हरि।

महा मोह तम पुज, जासु बचन रविकर निकर॥

इ हीं महानुभाव से इ होंने सरयू घाघरा सगम पर, गोंडा जिले के सूकर खेत नामक तीर्थ में रामकथा सुनी थी, जिसका उल्लेख रामचरित मानस मे इस प्रकार हुआ है--

सो मैं निज गुरु सन सुनी, कथा सु सूकर खेत।
समुझी नहि तस बालपन, तब अति रहेउँ अचेत॥

गोस्वामी जी की स्त्री में परमासक्ति की कथा लोक प्रसिद्ध है। इनकी जीवन धारा को एक नया मोड़ पत्नी की प्रेमपूर्ण फटकारने दिया था। इधर शोधों सामग्री में उसके 'रत्नावली' नाम की पुष्टि भी कर ली है। अतः तुलसी की जीवनी का यह अंधकारमय पक्ष भी इस नये प्रकाश से आलोकित हो उठा है।

तुलसी का समस्त विरक्त जीवन सत्संग, काव्यरचना और तीर्थाटन में बीता। अयोध्या, चित्रकूट और काशी उनके मुख्य निवास स्थान रहे। अयोध्या में ही सं० १६३१ में 'मानस' की रचना प्रारम्भ हुई, जिसकी समाप्ति काशी में हुई। इसी नगर में असी संगम पर श्रावण कृष्णा तृतीया सं० १६८० को उन्होंने अपनी ऐहिक लीला संवरण की।

गोस्वामी जी की कृतियों में सर्वाधिक प्रचार 'मानस' का हुआ। उत्तरी भारत में, समाज की सभी श्रेणियों में, उसे जितनी स्थायी लोकप्रियता प्राप्त हुई उतनी कदाचित् ही किसी देश में कोई रचना समादृत हुई हो। उसके अतिरिक्त तुलसी की ग्यारह अन्य रचनायें भी न्यूनाधिक मात्रा में शताब्दियों से राम भक्तों तथा सहृदयों के गले का हार रही हैं। वे हैं—राम लला नहछू, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, रामाज्ञा प्रश्न, वैराग्य संदीपनी, श्री कृष्णगीतावली, बरवै रामायण, गीतावली, दोहावली, विनयपत्रिका और कवितावली।

गोकुल कवि ने इनमें से केवल दोहावली के कुछ छंद अलंकारों के उदाहरण स्वरूप, उद्धृत किये हैं।

६६ तोष

इनका असली नाम तोषमणि था। ये शृङ्गवेरपुर (सिंगरौर, जिला इलाहाबाद) के निवासी चतुर्भुज शुक्ल के पुत्र थे। 'सुधानिधि' में अपना परिचय देते हुये इन्होंने लिखा है—

शुक्ल चतुर्भुज को सुत तोष बसै सिंगरौर जहाँ रिषि थानो।
दच्छिन देवनदी निकटै दस कोस प्रयागहि पूरब मानो॥

शिवसिंह जी ने इनका उपस्थिति काल सं० १७०५ बताया है। 'सुधानिधि' की रचना सं० १६९१ में हुई। अतः सरोजकार का उपर्युक्त निर्णय बहुत अंश तक ठीक है।

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने भ्रान्तिवश इन्हें तोषनिधि से अभिन्न मान लिया है।

६७. तोषनिधि

तोषनिधि कपिला (जिला फर्रुखाबाद) के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । इनके पिता का नाम ताराचंद अवस्थी था । मिश्रबंधुओं के अनुसार इनके गिरधरलाल नामक एक पुत्र था । इनके वंशज शिवनंदन अवस्थी कुछ दिनों पूर्व तक कपिला में वर्तमान थे ।

तोषनिधि की निम्नांकित कृतियाँ मिली हैं—व्यंग्य शतक, रतिमंजरी और नखशिख । इनमें रतिमंजरी का रचनाकाल सं० १७६४ दिया गया है अतः इसी के लगभग इनका कविताकाल निश्चित किया जा सकता है ।

६८ दत्त कवि

इसी ग्रंथ के २१ संख्यक 'कविदत्त' का ही भूषणकार ने, संभवतः भ्रमवश 'दत्तकवि' के नाम से उल्लेख किया है । यद्यपि इनके अतिरिक्त मऊरानीपुर के जनगोपाल तथा गुलजार ग्राम के दत्तलाल कवि भी 'दत्त' छाप से कविता करते थे, किंतु दिग्विजयभूषण मे 'दत्त कवि' और 'कविदत्त' के नाम से उदाहृत छंदों मे 'कविदत्त' की ही छाप मिलने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इनके रचयिता एक ही थे । (देखिये कविदत्त का परिचय)

६९ दयादेव

इनकी जीवनी तथा कृतियोंके सम्बंध में कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है । खोज में इनकी रचनाओं का एक संग्रह 'कवित्त दयादेव के' नाम से मिला है । संभव है वह इनके किसी प्रशंसक अथवा वंशज द्वारा किया गया इनकी फुटकर रचनाओं का संकलन हो । इनके आविर्भावकाल पर एक क्षीण प्रकाश सूदन रचित प्रणम्य कवियों की सूची द्वारा पडता है, जिसमें इनका भी नाम सम्मिलित है । इससे इतना स्पष्ट हो जाता है कि ये सं० १८१० के पूर्ववर्ती कवि हैं । सरोज में इनके नाम से एक छंद उद्धृत है, वह दिग्विजयभूषण से ही लिया गया है ।

७०. दयानिधि

इस नाम के तीन कवि हुए हैं । प्रथम दयानिधि डौडिया खेरा (बैसवाडा) के निवासी थे । ये सं० १८११ में विद्यमान थे । दूसरे दयानिधि का आविर्भाव सं० १८९१ के पूर्व हुआ था । तीसरे दयानिधि ब्राह्मण पटना के रहने वाले थे । शिवसिंह जी ने इन तीसरे दयानिधि का एक छंद उद्धृत किया है। वह दिग्विजय

भूपण में भी उदाहृत है। इससे उक्त दोनों कवियो की एकता स्वत सिद्ध है। इसके आधार पर ये स० १९१६ के पूर्व वर्तमा। माने जा सकते हैं।

७१ दयाराम

दयाराम नाम के दो कवि खोज में मिले है। प्रथम दयाराम वल्लभ सप्रदाय के अनुयायी नागर ब्राह्मण थे। इनका निवास स्थान नर्मदा तट पर स्थित चरणाद (चडीग्राम) नामक गाँव था। ये स० १८२४ से लेकर, स० १९०९ तक जीवित रहे। इनकी पाँच रचनाओं का पता चला है—कृष्णनाम चद्रिका, दयाराम सतसई (स० १८७२), श्रीमद्भागवतानुक्रमणिका, अ।य चद्रिका और वस्तुवृ दनाम अथवा अनेकार्थ माला।

दूसरे है प्रयाग निवासी दयाराम त्रिपाठी। इनके पिता का नाम लक्ष्मीराम था। 'सभा' के खोज विवरण में इ हे बदन कवि का पितामह और बेनीराम कवि का गुरु बताया गया है। ये मुगल बादशाह मुहम्मदशाह (शासन काल स० १७७६–१८०५) के समकालीन और चतुरसेन नामक किसी रईस के आश्रित कवि थे। शिवसिह जी ने इ हैं शा तरस परक रचनाओं का सिद्धहस्त कवि कहा है। इनकी दो कृतियाँ मिली हैं—दयाविलास और योगचंद्रिका।

सयाग वश दयाराम नामधारी उपर्युक्त दो ो कवियोंके दा छ द सरोज में सकलित हैं, वे दिग्विजय भूषण में नहीं मिलते। ऐसी दशा में यह निश्चय करना कठिन है कि गोकुल कवि ने किस दयाराम की रचना उदाहृत की है। दिग्विजय भूषण मे दी गई रचना शृगारी है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि वह प्रथम रामभक्त दयाराम की न होकर दूसरे दरबारी कवि दयाराम कृत है।

७२. दिनेश

ये टिकारी (जिला गया—बिहार) के निवासी और अपने समय के विख्यात कवि थे। इनके पुत्र बैजनाथ भी अच्छी कविता करते थे। दिनेश कवि के दो ग्रन्थ खोज मे मिले हैं—रस रहस्य (स० १८८३) और काव्य कदम्ब। ग्रियर्सन साहब ने रस रहस्य का प्रतिपाद्य विषय नखशिख बताया है। शिवसिह जी ने भी इनके नखशिख विषयक ग्र थ की चर्चा की है। दिग्विजय भूषण मे उदाहृत इनके सभी छ द नखशिख पर ही हैं। अत. सरोजकार और ग्रियर्सन द्वारा निर्दिष्ट दिनेश कवि और दिग्विजय भूषण के उस नाम के कवि एक ही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

७३. द्विजदेव

अयोध्या नरेश मानसिंह अपने उपनाम 'द्विजदेव' से ही साहित्य क्षेत्र में अधिक प्रसिद्ध हैं। गोकुल कवि ने इनके उपर्युक्त दोनों नामो का उल्लेख किया है। इससे इनकी पहचान विषयक भ्राति की गुजाइश नहीं रह जाती।

महाराज मानसिंह शाकद्वीपी ब्राह्मण थे। अयोध्या नरेश प्रतापनारायण सिंह 'ददुआ साहब' इनके दौहित्र थे। द्विजदेव जी की रचनाओं का एक सस्करण महारानी अयोध्या ने 'शृगारलतिका' के नामसे प्रकाशित कराया था। इनकी एक अन्य कृति 'शृङ्गार बत्तीसी' खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना (बिहार) से निकली थी। अब ये दोनों ग्रथ दुष्प्राप्य हैं।

द्विजदेव जी रीति मुक्त शृगारी परपरा के अतिम सर्वश्रेष्ठ कवि थे। अपने जीवन काल मे इन्होंने पूर्ववर्ती काव्य प्रेमी सामन्तों द्वारा स्थापित परपरा का सम्यक् निर्वाह किया था। इनके दरबारी कवियों में लछिराम, जगन्नाथ, चडीदत्त, बलदेव, ठाकुर प्रसाद और रामदीन विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके उत्तराधिकारी महाराज प्रताप नारायण सिंह ने भी 'शृगार लतिका' की टीका कर अपनी काव्य मर्मज्ञताका परिचय दिया था। उनके देहावसान के अनन्तर श्री जगन्नाथदास रत्नाकर की भी काव्य प्रतिभा के विकास में अयोध्या दरबार का मुख्य हाथ रहा। इस प्रकार द्विजदेव द्वारा स्थापित ब्रजभाषा काव्य परपरा ने प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप मे हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि मे विशेष योग दिया।

७४. दीनदयाल गिरि

परमहस दीनदयालगिरि गोसाईं का जन्म काशी के गऊ घाट मुहल्ले में वसतपचमी शुक्रवार, स० १८५६ मे हुआ था। इनके पिता पाँच वर्ष की आयु में इन्हें असहाय छोड़कर दिवगत हो गये। उसी मुहल्ले के मठधारी महन्त कुशागिरि ने अपना शिष्य बना कर इनका पालन पोषण किया। गुरु के देहावसान के पश्चात् इनकी जायदाद नीलाम हो गई। अत काशी छोड़कर देहली विनायक के पास मोठली गाँव के मठ में चले गये और फिर आजीवन वहीं रहे। भारतेन्दुजी के पिता बाबू गोपालचन्द्र (गिरिधर दास) इनके घनिष्ठ मित्रों में से थे। परमहस जी का परलोकवास स० १९२२ में हुआ।

बाबा जी काव्य शास्त्र के जैसे मर्मज्ञ थे वैसे ही अद्भुत प्रतिभासम्पन्न कवि भी थे। आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने इनकी भाषाशैली की सरलता तथा पद विन्यास की मनोहरता की मुक्तकठ से प्रशसा की है और इनके 'अन्योक्ति

कल्पद्रुम' को हिंदी साहित्य का अनमोल रत्न माना है। इनके द्वारा विरचित ग्रन्थों की सख्या १२ है—रद्दा ततरगिणी (स० १८७६) अनुराग बाग (स० १८८८) वैराग्य दिनेश (स० १६०६), अयोक्तिकल्पद्रुम (स० १६१२) चित्रकाव्य (उदधिबध), विश्वनाथ नवरत्न, गतलतिका, कारीपश्चरत्न, कुण्डलिया, चकोरपञ्चक, अयाक्तिमाला और दीपक पचक। इनका कविताकाल स० १८७६ से स० १६१२ तक है।

दिग्विजय भूषण के रचयिता गोकुल कवि ने काशी जाकर इन्हीसे काव्यशास्त्र का अध्ययन किया था। ग्रन्थारम्भ में उन्होंने परमहस जी को अपना काव्यगुरु घोषित किया है।

७५. दूलह

दूलह का जन्म ऐसे कुलमे हुआ था, काव्यरचना जिसकी परम्परागत सम्पत्ति थी। इनके पिता उदयनाथ 'कविन्द' और पितामह कविवर कालिदास त्रिवेदी थे। 'कविन्द' जी के साथ ये बहुत दिनों तक अमेठी (जिला सुलतानपुर) के गुणग्राही राजा गुरुदत्तसिंह 'भूपति' के दरबार में रहे। पिता की मृत्यु के बाद भी इनका अमेठी दरबार में काफी सम्मान रहा। इनकी प्रसिद्ध रचना 'कविकुलकठाभरण' यहीं लिखी गई है। गुरुदत्तसिंह के 'रसरत्न' नामक ग्रन्थ मे दूलह की उपर्युक्त कृति का उल्लेख होना यह सिद्ध करता है कि 'कविकुलकठाभरण' दूलह के प्रथम आश्रय दाता गुरुदत्त सिंह के जीवन में ही प्रसिद्ध हो चुका था—

अलकार औरौ चिपे, विविध भांति सरसाइ।
कविकुल कठाभरण में, सबै लिखी ठहराइ॥

इनके दूसरे आश्रयदाता बूँदी के रावराजा बुध सिंह थे। औरगजेब के मरने पर दिल्ली के सिंहासन के लिये उसके पुत्रों में जो उत्तराधिकार युद्ध हुआ उसमे बुध सिंह ने बहादुरशाह का पक्ष लिया था। अन्त में विजयश्री भी उसी के हाथ लगी। उत्तराधिकार प्रश्न के निर्णायक जाजव के युद्ध में राव राजा बुध सिंह के शौर्य का चित्रण दूलह ने इन शब्दों मे किया है—

युद्ध माहि जाजव के बुद्ध कै सक्रुद्ध युद्ध,
आजम के महाबीर काढि डारे मूजा से।
कहै कवि 'दूलह' समुद्र बढे सोणित के,
जोगिनि परेत फिरैं जम्बुक अजूजा से॥

एक ली है सीस खाँय बैस ईस एकन को,
एकन को उपमा निहारा मन ऊजा से।
अधफटे फैलि फैलि करमे विराजैं मानो,
माथे मुगलन के तरासैं खरबूजा से॥

जाजन का यह युद्ध स० १७६४ म हुआ था, अत 'मिश्रब धु विनाद' मे निर्दिष्ट दूलह का ज मकाल स० १७७७ नितान्त अशुद्ध है। यह कवि की प्रौढावस्था में लिखी गई रचना है अत दूलह का ज मकाल स० १७४० के लगभग मानना अधिक युक्तिसगत होगा।

इनकी एक अ य रचना 'दूलह विनोद' है। उसकी भूमिका में दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह (शासनकाल स० १७७६-१८०५) की प्रशस्ति वर्णित है। इससे यह विदित होता है कि इ होने कुछ समय मुगल दरबार म भी बिताया था। दूलह के ये तीसरे आश्रयदाता वही मुहम्मदशाह हैं जिनका दरबार, मीर मुशी के रूप में घनान द ने अलकृत किया था।

अपने जीवनकाल में ही दूलह इतने विख्यात हा गये थे कि उनके सम्ब ध मे यह लोकोक्ति चल पडी थी—

"और बराती सकल कवि दूलह दूलहराय।"

७६ देव

इनका असली नाम देवदत्त था। ये इटावा नगर के निवासी द्योसरिहा का यकुब्ज ब्राह्मण बिहारीलाल के पुत्र थे। इनका ज म स० १७३० मे हुआ था। अपने सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रथम ग्र थ 'भावविलास' की रचना इ होंने १६ वर्ष की आयु में स० १७४६ में की थी। स० १७५९ में ये इटावा छोडकर मैनपुरी चले गये और कुसमडा गाँव में बस गये। वहाँ इनके वशज अब तक विद्यमान हैं।

देव स्वतत्र विचार और अक्खड स्वभाव के कवि थे। दुर्भाग्यवश इन्हें ऐसे गुणग्राही आश्रयदाता न मिले जो कडे मिजाज के बावजूद इनकी असाधारण कवित्वशक्ति की कद्र कर सकते। ऐसी दशा में इ हें निरन्तर एक के बाद दूसरे दरबार का आश्रय लेते हुए जीवन बिताना पडा।

इनके प्रथम आश्रयदाता औरगजेब के पुत्र आजमशाह थे। इन्हें देव ने 'भाव विलास' और 'अष्टयाम' सुनाया। एक छ द मे आजमशाह की रसिकता का चित्रण करते हुये वे लिखते हैं—

पनि साहब आजम साह के साथ छकी बनिता छवि छावति है।
अँगिरानि उठी रति मदिर ते मुसक्याइ जम्हाइ रिझावति है॥
चलि जोरि कै 'देव' मरोरि चहूँ उपमा हिय मैं उमगावति है।
रसरग अनग अथाह भरो सु मनो सुख सिधु थहावति है॥

इसके पश्चात् भवानीदत्त वैश्य के नाम पर 'भवानी विलास' और फफूँद (इटावा) के राजा कुशलसिंह के लिये 'कुशल विलास' की रचना हुई। वहाँ से ये उद्योत सिंह बैस के दरबार मे पहुँचे। 'प्रेम चन्द्रिका' यहीं पूरी हुई। अन्त मे राजा भोगीलाल की छत्र छाया में 'रस विलास' लिखा गया। इनकी मृत्यु स० १८२५ में हुई।

संख्या की दृष्टि से रीतिकालीन कवियों में देव ने सबसे अधिक ग्रन्थ लिखे हैं। आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने इनकी रचनायें ७२ बताई है। इधर डा० नगेन्द्र ने इनकी जीवनी तथा कृतियों पर एक विस्तृत समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इनकी प्राप्त २७ रचनाओं की नामावली इस प्रकार है—भावविलास, अष्टयाम, भवानी विलास, सुजान विनोद, प्रेमतरग, रागरत्नाकर, कुशल विलास, देवचरित्र, प्रेम चन्द्रिका, जातिविलास, रस विलास, काव्य रसायन, सुखसागर तरग, वृक्ष विलास, पावस विलास, ब्रह्म दर्शन पचीसी, तत्व दर्शन पचीसी, आत्मदर्शन पचीसी, जगद्दर्शन पचीसी, रसानद लहरी, प्रेम दीपिका, सुमिल विनोद, राधिका विलास, नीति शतक, नखशिख, प्रेम दर्शन, सुन्दरी सिंदूर, और देवमाया प्रपच नाटक।

७७ देवकीनन्दन

देवकीनदन शुक्ल मकरन्दनगर (जिला फर्रुखाबाद) के निवासी थे। इनके पिता शिवनाथ और भाई गुरुदत्त दोनों अच्छे कवि थे। आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने इनके पिता का नाम सबली शुक्ल बताया है, जो वास्तव में पितामह थे। सर्वप्रथम देवकीनदन उमराव गिरि गोसाई के पुत्र सरफराज गिरि के आश्रय में रहे और उनके लिये 'सरफराज चन्द्रिका' (स० १८४३) की रचना की। इसके अनन्तर ये रूदामऊ (तहसील मल्लावाँ जिला हरदोई) के राजा अवधूत सिंह के दरबारी कवि हो गये। उनके नामपर 'अवधूत भूषण' (स० १८५६) लिखा गया। इनके अतिरिक्त इनकी दो कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं—शृगार चरित्र (स० १८४०) और ससुरारि पचीसी। प्राप्त रचनाओं के कालक्रम को देखते हुए इनका काव्यकाल सं० १८४० से १८५६ तक माना जा सकता है।

७८ देवीदास

इस नाम के दो प्रसिद्ध कवि हुये हैं। एक देवीदास बुदेलखडी और दूसरे देवीदास बदीजन के नाम से जाने जाते हैं। प्रथम देवीदास बुदेलखडा करौली नरेश रतनपाल सिंह के आश्रय में रहते थे। इनकी दो रचनायें मिली हैं— प्रेम रत्नाकर और राजनीति के कवित्त। शिवसिंहजी ने इनके नीति विषयक कवित्तों की प्रशसा की है और स० १७१२ में इन्हें उपस्थित कहा है। इनके वशज अब छतरपुर (मध्यप्रदेश) में रहते हैं।

दूसरे देवीदास बन्दीजन का उदय, सरोज के अनुसार स० १७५० के लगभग हुआ। इनका एक ग्र थ 'सूमसागर' मिला है जिसकी रचना स० १७६४ में हुई। इस दृष्टि से शिवसिंह जी द्वारा उल्लिखित उपर्युक्त सवत् इनका आविर्भाव काल रहा होगा।

शिवसिंह जी ने प्रथम देवीदास की रचनाशैली के उदाहरण स्वरूप जो छ द उद्धृत किये हैं वे दिग्विजयभूषण में ज्यों के त्यों मिल जाते हैं। इतना ही नहीं सरोजकार द्वारा निर्दिष्ट इनकी रचनाओं का प्रतिपाद्य विषय भी भूषण मे दिये गये छ दों से मिल जाता है। इन तथ्यों के आधार पर प्रथम देवीदास से दिग्विजयभूषण के देवीदास की एकता निस्स देह स्थापित की जा सकती है।

७९ धुरधर

इनके सम्बन्ध में कोई सूचना सुलभ नहीं है। गोकुल के पूर्ववर्ती सरदार कवि के 'शृगार सग्रह' में इनके छ द सकलित है। इससे यह निश्चित हो जाता है कि इनका आविर्भाव स० १९०५ के पूर्व हुआ था। मिश्रब धुओं ने इनके द्वारा विरचित 'शब्द प्रकाश' नामक ग्र थका उल्लेख किया है।

८०. नन्दन

इनकी जीवनी तथा कृतियों पर साहित्यिक सूत्रों से कोई महत्वपूर्ण प्रकाश नहीं पडता। शिवसिंह जी ने इन्हें स० १६२५ में विद्यमान बताया है और कालिदास ने हजारा में इनके छन्दों के सकलित होने का उल्लेख किया है। मिश्रब धु और ग्रियर्सन इसकी पुष्टि करते हैं। दिग्विजयभूषण मे सग्रहीत इनके छन्दों की रचना शैली अत्य त प्रौढ एव सरस है।

८१ नबी

हिन्दी साहित्य के इतिहासों से इनके विषय में ज्ञातव्य तथ्यों पर कोई प्रकाश नहीं पडता। शिवसिंह जी ने इनके एक ग्रन्थ 'नखशिख' का

उल्लेख किया है। दिग्विजयभूषण में इनके दो छंद उदाहृत है। एक का विषय नायिका भेद है दूसरे का नखशिख वर्णन। सम्भवत दूसरा छंद इनके नखशिख नामक ग्रंथ से लिया गया है। यही छंद सरोज में भी उदाहृत है। प्रसग प्राप्त नबी 'ज्ञानदीप' नामक प्रेमाख्यानक काव्य के रचयिता, जो पुर वासी शेखनबी (आविर्भावकाल स० १६७६) से सर्वथा भिन्न है।

८२ नरहरि

महापात्र नरहरि बंदीजन अकबरी दरबार के कवि थे। इनका जन्म पखौली गाँव (जिला रायबरेली) में स० १५६२ में हुआ था। आरम्भ मे ये रीवाँ नरेश रामचन्द्र के आश्रय में रहे। इसके पश्चात् पुरी के राजा मुकुंद गजपति के दरबारी कवि हुए। मुगलसम्राट् अकबर से इनका सम्पर्क बाद को स्थापित हुआ और तब से ये आजन्म उन्हीं के आश्रय में साहित्य सेवा करते रहे।

अकबर ने इन्हें महापात्र की उपाधि से सम्मानित किया और फतेहपुर जिले में असनी नामक गाँव वृत्ति के लिए दिया। यहाँ पर इनके वंशज अब तक बसे हुए हैं। मुगल दरबार से नरहरि को कितनी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी, इसकी झलक उनके इस कवित्त में मिलती है—

नाम नरहरि है प्रसंसा सब लोग करैं,
हंस हू से उज्ज्वल सकल जग व्यापे है।
गंगा के तीर ग्राम असनी गोपालपुर,
मंदिर गोपाल जी को करत मंत्र जापे हैं॥
कवि बादसाही मौज पावैं बादसाही ओज,
गावैं बादसाहा जाते अरिगन काँपे हैं।
जब्बर गनीमन के तोरिबे को गब्बर,
हुमायूँ के बब्बर अकब्बर के थापे हैं॥

प्रसिद्ध है कि एक दिन नरहरि ने एक गाय के गले में स्वरचित निम्नांकित छप्पय कागज पर लिखकर लटका दिया और उसे सम्राट् के सम्मुख फरियादी के रूप में प्रस्तुत किया। अकबर ने उसी दिन से अपने साम्राज्य में गोवध बंद करा दिया।

अरिहु दंत तृन धरैं, ताहि नहिं मारि सकत कोइ।
हम संतत तिनु चरहिं, बचन उच्चरहि दीन होइ॥
अमृत पय नित स्रवहिं, बच्छ महिथंभन जावहिं।
हिंदुहिं मधुर न देहिं, कटुक तुरकहि न पियावहिं॥

कह कवि नरहरि अकबर सुनो, बिनवति गउ जोरे करन।
अपराध कोन मोहि मारियत, मुएहु चाम सेवत चरन।।

इ होंने अपने जीवन के अ तिम दिन गोपाल का भजन करते हुए असनी में बिताये। यहीं स० १६६७ म इनका गोलोकवास हुआ। इनकी तीन रचनायें उपलब्ध हुइ हैं---रुक्मिणीमगल, छप्पैनीति और कवित्त सग्रह। गोकुल कवि ने 'छप्पैनीति' के दो छ द उदाहृत किये हैं।

८३ नरोत्तम

ये बु देलखड के निवासी थे। शिवसिंह जी के अनुसार इनका उदय स० १८६६ के आस पास हुआ। सरोज में इनके नाम से उद्धृत छ द दिग्विजय भूषण से ही लिया गया है। सुदामा चरित क रचयिता नरोत्तमदास से भिन्न, ये श्रृ गारी परपरा के कवि थे। इनके फुटकर छ द ही मिलते हैं, कोई स्वतत्र ग्र थ अब तक प्रकाश में नहीं आया है।

८४ नवल

इस नाम के कई कवि हुए है और उनमें से अधिकाश रीतिकालीन है। दिग्विजय भूषण में सग्रहीत नवल कवि की रचना श्रृ गारी है। इससे यह निश्चित करना कठिन है कि वह किस नवल कवि की कृति है।

८५. नागर

भूषणकार ने नागर कवि का छ द उदाहृत करते समय 'नागर कवि नाम नागरीदास राजा कै' लिखकर यह स्पष्ट कर दिया है कि नागर कवि से उनका तात्पर्य प्रसिद्ध कृष्णभक्त कवि नागरीदास से ही है। वल्लभ सप्रदाय में प्रविष्ट होने के पूर्व ये कृष्णगढ़ के राजा थे और महाराज साव तसिंह के नाम से अभिहित किये जाते थे।

इनका ज म कृष्णगढ़ (राजस्थान) की राजधानी रूपनगर में, पौषकृष्ण १२, स० १७५८ में हुआ था। अपने पिता महाराज राजसिंह की मृत्यु के पश्चात् ये गद्दी पर बैठे कि तु इनके भाई बहादुरसिंह ने जोधपुर के महाराज की सहायता से इ हें अपदस्थ कर कृष्णगढ़ पर अधिकार कर लिया। साव तसिंह ने मरहठों के सहयोग से बहादुरसिंह को पराजित कर उक्त राज्य पर अपना स्वत्व पुन स्थापित कर लिया। इस गृहकलह का सावन्तसिंह के सात्विक अ त करण पर ऐसा प्रभाव पडा कि राज्यप्राप्ति के पश्चात् शीघ्र ही आश्विन शुक्ल १०, स० १८१४ को अपने पुत्र सरदारसिंह को राजकाज का सारा भार सौंप कर वे वृन्दावन चले

गये। साथ मे उनकी उपपत्नी बणीठणी जी भी गईं। वृन्दावन के कृष्ण भक्तो ने उनका साम्प्रदायिक नाम 'नागरीदास' सुनकर स्वजन की भाँति अपूर्व स्वागत किया—

सुन व्यवहारिक नाम को, ठाढ़े दूरि उदास।
दोरि मिले भरि नैन सुनि, नाम नागरीदास॥

इसके बाद कृष्णलीला वर्णन करते हुये ये आजन्म धाम सेवन करते रहे। वृन्दावन की पवित्र भूमि मे ही सं० १८२१ में इन्होंने पार्थिव शरीर त्याग कर नित्य लीला में प्रवेश किया।

नागरीदास जी का कविता काल सं० १७८० से सं० १८१९ तक विस्तृत था। इनकी रचनाओं की सख्या ७५ कही जाती है, जिनम ७० 'नागर समुच्चय मे प्राप्य हैं। इनमे प्रमुख हैं—मनोरथमंजरी (सं० १७८०), रसिकरत्नावली (सं० १७८२), बिहार चन्द्रिका (सं० १७८८), निकुंज विलास (सं० १७९४), कलि वैराग्य वल्लरी (सं० १७९५), व्रजसार (सं० १७९९) भक्तिसार (सं० १७९९), गोपीप्रेम प्रकाश (सं० १८००) भक्तिमगदीपिका (सं० १८०२), फाग विहार (सं० १८०८), जुगलभक्तिविनोद (सं० १८०८), वनविनोद (सं० १८०९) और सुजनानन्द (सं० १८१०)।

दिग्विजयभूषण में इनके दो छन्द उदाहृत हैं जिनमे से एक सरोज में भी उद्धृत है।

८६. नाथ

इस नाम के कई कवि हुये हैं। सरोजकार ने नाथ नामराशी चार कवियों का उल्लेख किया है। किन्तु इनमें से जिस नाथ का कवित्त दिग्विजय भूषण से लिया गया है सरोज में उनका न तो उदयकाल दिया गया है और न उनके किसी ग्रन्थ का उल्लेख ही हुआ है। अन्य सूत्रों से भी स्पष्टतया उनके जीवन पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

दिग्विजयभूषण में नाथ के नखशिख विषयक जो छन्द उदाहृत है, वे हरिनाथ ब्राह्मण गुजराती (काशीवासी) के 'अलकार दर्पण' से सरोज में उद्धृत कवित्त से भाषाशैली में मिलते हैं। इनका उपस्थितिकाल सं० १८२६ है, क्योंकि यही उक्त ग्रन्थ का रचनाकाल है। सरोजकार ने इन्हें सं० १८२६ मे वर्तमान बताया है। सम्भवत यही दिग्विजय भूषण के नाथ कवि हैं।

८७ नायक

इनके सम्बन्ध मे कोई सूचना उपलब्ध नहीं हैं। शिवसिंह जी ने दिग्विजय भूषण से ही लेकर इनका एक छन्द सरोज मे उद्धृत किया है। सूदन कवि ने इस नाम के एक कवि का उल्लेख वन्दनीय कवियों की सूची में किया है। यदि ये वही नायक हैं तो निश्चय ही सं० १८१० के पूर्ववर्ती हैं।

खोज रिपोर्टों में नायक कवि तीन ग्रन्थों के रचयिता कहे गये हैं—दत्तात्रय सत्सग, उपदेस सागर तथा सर्वसिद्धान्त श्री राममोक्ष परिचय। सम्भवत वे रामभक्त बालकृष्ण नायक हैं जो 'बालअली' के नाम से विख्यात हैं। दिग्विजयभूषण के शृंगारी 'नायक' से इनका कोई सम्बन्ध नहीं।

८८ नारायण

इस नाम के चार कवि हुये हैं। प्रथम नारायणदास कवि ने 'हितोपदेश भाषा' की रचना की थी। ये स० १६१५ के लगभग विद्यमान थे। दूसरे नारायण राय भट्ट, गोकुल के निवासी कृष्णभक्त थे। इनका समय स० १६२० के आसपास था। नाभादास जी के भक्तमाल में इनका परिचय दिया गया है। तीसरे नारायणराय बन्दीजन काशी के सोनारपुरा मुहल्ले में रहते थे। ये सरदार कवि के शिष्य थे। इन्होंने केशवदास की रसिक प्रिया की टीका स० १६०३ मे की थी। चौथे नारायणदास वैष्णव चित्रकूट में रहते थे। इनकी तीन रचनायें मिलती है—छन्दसार पिंगल, पिंगल मात्रा और महाराज जसवन्तसिंह के भाषाभूषण की टीका। इनका उपस्थित काल स० १८२६ के लगभग था।

इनमें से किस नारायण कवि के छन्द गोकुल कवि ने दिग्विजयभूषण में रखे हैं, यह निश्चय करना कठिन है। मेरा अनुमान है कि वे उपर्युक्त चौथे नारायणदास वैष्णव हैं। दिग्विजय भूषण में उदाहृत इनकी रचना सरोज मे छन्दसार पिंगल से उद्धृत छन्द से बहुत कुछ मिलती जुलती है।

८९ निधि

इनके सम्बन्ध में विशेष कुछ ज्ञात नहीं। सरोजकार ने इन्हें स० १७५१ म वर्तमान बताया है किन्तु ग्रियर्सन ने इनका आविर्भावकाल स० १६५७ माना है। उनके अनुसार गोसाइँ चरित तथा रागकल्पद्रुम में इनका नाम आया है। दिग्विजयभूषण में नखशिख पर इनका एक छन्द उदाहृत है, जिससे ये ग्रियर्सन द्वारा निर्दिष्ट, तुलसी के समकालीन (सम्भवत भक्त कवि) निधि से पृथक् कोई शृंगारी कवि सिद्ध होते हैं।

९०. निपट

गोकुल कवि ने दिग्विजय भूषण की कविसूची मे तो केवल 'निपट' नाम दिया है कितु इनके जो छन्द उदाहृत किये हैं उनमे 'निपट निरञ्जन' छाप दी हुई है। इससे यह असदिग्ध है कि ये प्रसिद्ध भक्त कवि निपटनिरञ्जन ही है।

इनका जन्म बुन्देलखण्ड के अतर्गत चन्देरी नगर मे हुआ था। बाल्यावस्था मे ही पिता का निधन हो जाने से इनके पालन पोषण का भार माता पर पडा। सयोगवश इसी समय इन्हें साधुओंका सत्सङ्ग प्राप्त हो गया। उन्हीं के साथ ये दक्षिण चले गये और औरङ्गाबाद के समीप एकनाथ जी के मन्दिर में रहने लगे। कुछ दिनों बाद वहीं इन्होंने अपनी एक अलग कुटी बना ली। वहाँ से ये देवगिरि गये। इसी बीच युद्धों के सम्बन्ध में औरङ्गजेब दक्षिण गया और स० १७४० के लगभग औरङ्गाबाद नगर बसाया। अकस्मात् उससे निपटनिरञ्जन स्वामी की भेंट हो गई और वह इनकी आध्यात्मिक शक्ति से अत्यत प्रभावित हुआ। आलमगीर को सम्बोधित करके लिखे गये स्वामी जी के निम्नाङ्कित छन्द से उनके पारस्परिक सम्बन्ध की घनिष्ठता अभिव्यक्त होती है—

हम तो फकीर खुद मस्त हैं खुदा पै फिदा,
रहैं जग से जुदा कछु लेना है न देना है।
शाहौं के शाह नही हमें कुछ परवाह,
चेला चाटी की न चाह ताना है न बाना है॥
मन हा नहाना धोना पवन का खाना पाना,
आसमान ओढ़ना औ प्रिथी का बिछौना है।
कहै 'निपटनिरजन' सुनो आलम गीर!
सुन्न हरि महल बीच सोना ही तो सोना है॥

औरगजेब का शासनकाल स० १७१५–१७६४ तक रहा। अत इसी के आस पास इनका कविता काल मानना चाहिये।

स्वामी जी की तीन रचनायें मिली हैं—कवित्त निपट जी के, शातरस वेदात और एक अज्ञातनाम ग्रथ। प्रथम दोनों सम्पूर्ण हैं और तीसरी आदि अन्त पृष्ठ रहित खण्डित। शिवसिंह जीने 'निरञ्जन सग्रह' और 'शातसरसी' नामक इनके दो ग्रन्थों का उल्लेख किया है, जो सम्भवत ऊपर दी हुई सूची के प्रथम और द्वितीय ग्रथों के ही दूसरे नाम हैं।

दिग्विजय भूषण में इनके शान्तरस के दो कवित्त सग्रहीत हैं।

९१. नीलकंठ

ये तिकवाँपुर (जिला कानपुर) निवासी रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र और कविवर भूषण के अनुज थे। सरोजकार ने इनका असली नाम जटाशकर और उपस्थिति काल स० १७३० बताया है। खोज में इनका एक ग्रथ 'अमरेस विलास' मिला है, जो 'अमरु शतक' का पद्यानुवाद है। इसका रचना काल स० १६९८ है। इसके अतिरिक्त इनकी लिखी हुई नायिका भेद विषयक एक खडित रचना भी प्राप्त हुई है।

दिग्विजय भूषण में नीलकठ के तीन छन्द उदाहृत हैं, जिनमें से एक में दलेल खाँ के किसी आक्रमण से पराजित एव त्रस्त शत्रु न धुओं की स्थिति का चित्रण है। यह छन्द भूषण के 'तीन बेर खातीं ते वै तीन बेर खाती हैं' के वज़न पर लिखा गया है—

तन पर भारतीन तन पर भार तीन,
तन पर भार तान तन पर भार हैं।
पूजे देवदार तीन पूजे देवदार तीन,
पूजे देवदार तीन पूजे देवदार हैं॥
'नीलकठ' दारुन दलेल खा तिहारी धाक,
नाँघती न द्वार ते वै नाँघती पहार हैं।
आँधरन कर गहि बहिरन सग रहि,
बार छूटे बार छूटे बार छूटे बार हैं॥

ये दलेल खाँ वास्तव में औरगजेब के रुहेला सेनापति दिलेर खाँ है, जो मराठों के प्रबल शत्रु थे और शिवाजी के विरुद्ध कई बार मुगलवाहिनी के अध्यक्ष बनाकर भेजे गये थे।

९२. नृपशंभु

ये सितारागढ़ के राजा थे। इनका असली नाम शम्भुनाथ सिंह था। शिवसिंह जी ने इन्हें सोलकी क्षत्रिय लिखा है किन्तु वास्तव में ये मराठा थे। मतिराम त्रिपाठी से इनकी बड़ी घनिष्ठता थी। रत्नाकर जी ने इनकी एक 'नखशिख' नामक रचना सम्पादित करके भारतजीवन प्रेस, काशी से प्रकाशित की थी। सरोज मे उद्धृत इनके छन्दों में दो दिग्विजय भूषण मे भी पाये जाते हैं।

९३. नेवाज

इस नाम के तीन कवि हुये हैं—प्रथम नेवाज जुलाहा बिलग्राम (जिला हरदोई) के निवासी थे। दूसरे नेवाज त्रिपाठी की जन्मभूमि अन्तर्वेद था। ये औरङ्गजेब के पुत्र आजमशाह और महाराज छत्रसाल के आश्रित कवि थे। इनकी दो रचनायें—छत्रसाल विरुदावली और शकुन्तला नाटक—मिली हैं। कहते हैं छत्रसाल के दरबार में इनकी नियुक्ति किसी भगवत नामक कवि के स्थान पर हुई थी। उसने क्रुद्ध कर इस नये प्रबन्ध पर निम्नांकित व्यंग्य पूर्ण दोहा महाराज छत्रसाल के पास लिख भेजा था—

भली आजु कलि करत हौ, छत्रसाल महराज।
जहँ भगवत गीता पढ़ी, तहँ कवि पढ़त नेवाज॥

इनका उपस्थितिकाल सं० १७३७ के लगभग था।

तीसरे नेवाज बुन्देलखण्डी असोथर (जिला फ़तेहपुर) के महाराज भगवन्त राय खीची के दरबारी कवि थे।

शिवसिंह सरोज में इनमें से प्रथम नेवाज के नाम से संकलित एक छन्द दिग्विजय भूषण में भी उदाहृत है। अतः गोकुल कवि के 'नेवाज' कवि बिलग्रामी नेवाज ही हैं इसमें सन्देह नहीं। शिवसिंहजी के अनुसार ये सं० १८०४ में उपस्थित थे।

९४ पखाने

गोकुल कवि ने लोकोक्ति अलंकार के उदाहरण में कुछ प्रसिद्ध 'उपाख्यान' अथवा 'पखान' उद्धृत किये हैं। उनके रचयिता का नाम ज्ञात न होने से उन्होंने प्रत्येक छन्द में 'पखानों' शब्द की आवृत्ति देख कर उसे ही भ्रान्तिवश कवि का वास्तविक नाम अथवा छाप मान लिया और दिग्विजय भूषण की कवि सूची में इस 'पखाने' नाम को स्थान दे दिया। वास्तव में दिग्विजयभूषण में 'पखाने' कवि के नाम से दिये गये छन्द जयपुर निवासी राय शिवसहाय दास की रचना 'लोकोक्तिरसकौमुदी' से लिये गये हैं। इस में 'पखानों' (उपाख्यानों–कहावतों) के आधार पर नायिकाभेद का निरूपण किया गया है। इस ग्रन्थ को महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी ने सं० १९४७ में सम्पादित कर के भारत जीवन प्रेस (काशी) से प्रकाशित कराया था। इसकी एक हस्तलिखित प्रति बलरामपुर राज्य पुस्तकालय में है। शिवसिंह जी ने 'पखाने' कवि की रचना शैली के उदाहरण दिग्विजय भूषण से ही लेकर उद्धृत किये हैं। इसीलिये गोकुल कवि की भ्रान्ति सरोज में भी दुहराई गई है।

९५ पजनेस

ये पन्ना (बुंदेलखण्ड) के निवासी थे। अब तक इनकी 'मधुप्रिया' नामक केवल एक रचना उपलब्ध हुई है। सरोज के आधार पर शुक्ल जी ने इनके एक अन्य ग्रंथ 'नखशिख' का भी उल्लेख किया है, किंतु वह 'मधु प्रिया' का एक अंग मात्र है। पजनेस ने फुटकर छंदों के दो संग्रह 'पजनेस पचासा' और 'पजनेस प्रकाश' भारत जीवन प्रेस काशी से प्रकाशित हुए थे। शिवसिंह जी ने इन्हें सं० १८७२ में उपस्थित बताया है। दिग्विजय भूषण में इनके नखशिख तथा संयोग शृङ्गार विषयक छंद उदाहृत हैं।

९६ पद्माकर

पद्माकर रीतिकाल के लोक प्रसिद्ध कवि हैं। ये तैलंग ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १८१० में सागर (मध्यप्रदेश) में हुआ था। इनके पिता पं० मोहनलाल भट्ट भी काव्यरचना करते थे। उनसे इनकी काव्य प्रतिभा के विकास में प्रेरणा मिली। अधिकांश रीति कालीन कवियों की भाँति इन्हें भी अपना कवि जीवन अनेक आश्रय दाताओं के यहाँ घूम घूमकर बिताना पड़ा। उनमें प्रमुख थे—महाराज रघुनाथ राव (नागपुर), महाराज प्रतापसिंह तथा जगतसिंह (जयपुर), नोने अर्जुनसिंह, गोसाईं अनूप गिरि (हिम्मत बहादुर—बाँदा) और दौलतराव सिंधिया (ग्वालियर), दिग्विजय भूषण में दिये हुए इनके निम्नांकित छंद से यह विदित होता है कि भगवंत सिंह नामक किसी राजा के यहाँ भी ये कुछ दिन रहे थे—

दूनी तेज दाहते हैं तिगुनी त्रिसूल हू तैं,
चौगुनी चलाक चक्र पानि चक्र चाला तैं।
कहै 'पदुमाकर' महीप भगिवंत सिंह,
ऐसी समसेर सिर सत्रुन पै घाली तैं॥
पचगुना पवि तैं पचास गुनी पाहन तैं,
प्रगट पचास गुनी प्रलै की प्रनाली तैं।
सौगुनी है सर्प तैं सहस्र गुना सर्पिनी तैं,
लाख गुना लूक त करोरि गुना काली तैं॥

पद्माकर के काव्य संग्रहों में उपर्युक्त छंद की तीसरी पंक्ति में 'भगिवंत सिंह' के स्थान पर 'रघुनाथ राव' पाठ मिलता है। कहा जाता है यह छंद इन्होंने नागपुर के राजा रघुनाथ राव की युद्ध वीरता की प्रशंसा में पढ़ा था। १८ वीं शती के प्रसिद्ध युद्ध वीर, असोथर के राजा भगवतसिंह, का सं० १७९३ में ही

देहा त हो चुका था। पद्माकर का आविर्भाव उसके १७ वर्ष बाद हुआ। अ य किसी 'भगवत सिंह' के आश्रय म इनका रहना प्रमाणित नहीं होता। ऐसी दशा मे 'रघु ाथ राव' का पाठ सगत प्रतीत होता है।

अस्सी वर्ष की आयु भागकर पद्माकर ने, कानपुर में गंगातट पर स० १८६० में शरीर छोडा।

इनके द्वारा विरचित नी ग्र थ मिलते हैं—हिम्मत बहादुर विरुदावली, पद्मा भरण, जगद्विनोद, प्रबोध पचासा, गगा लहरी, राम रसायन, आलीजाह प्रकाश, हितोपदेश (गद्य पद्यात्मक अनुवाद) और ईश्वर पचीसी।

९७. परबत

ये जाति के सुनार थे और ओरछा (बु देलखड) के रहने वाले थे। शिवसिंह जी ने इ हें स० १६२४ से उपस्थित माना है, कि तु 'बुदेल वैभव' के रचयिता ने इ का आविर्भाव काल स० १६८४ और कविताकाल काल स० १७१० निश्चित किया है। दिग्विजय भूषण में नखशिख विषय पर इनका एक छ द उदाहृत है।

९८. परसराम

इस नाम के तीन कवियों का पता चलता है। प्रथम परसराम ब्रजवासी, राधा वल्लभी सम्प्रदाय के भक्त कवि हरिनाम व्यास के शिष्य थे। शिवसिंह जी जी के अनुसार ये स० १६६० में उपस्थित थे। दूसरे परसराम को गार्सां द तासी ने 'ऊषा अनिरुद्ध' चरित्र का रचयिता बताया है। तीसरे परसराम कुलपति मिश्र के पिता थे। ये हरिकृष्ण के पुत्र और तारापति के प्रपौत्र थे। इनकी ज म भूमि आगरा थी। इनका आविर्भाव सत्रहवीं शती के द्वितीय चरण मे हुआ था। इनके फुटकर छ द प्राचीन काव्य सग्रहों मे सकलित पाये जाते हैं, कोई सपूर्ण कृति नहीं मिलती है।

इनमें से प्रथम दो परसराम भक्त कवि हैं, तीसरे शृङ्गारी। दिग्विजय भूषण में परसराम के तीन छ द उदाहृत हैं और वे सभी नखशिख वर्णन से सम्ब ध रखते है। मेरा अनुमान है कि वे तीसरे परसराम के हैं। इनकी कुलपरपरा में अनेक उत्कृष्ट शृङ्गारी कवि हुए हैं।

९९. परसाद

'परसाद' छाप से कविता लिखने वाले दो कवि हुए हैं और सयोगवश उन दोनों का सम्बन्ध उदयपुर दरबार से था। प्रथम परसाद महाराणा कर्ण सिंह के आश्रित थे और स० १६८० में विद्यमान थे।

दूसरे परसाद महाराणा जगतसिंह (शासन काल स० १७११–१८०८) के दरबारी कवि थे। इनका पूरा नाम बेनी प्रसाद था। स० १६६५ में इन्होंने 'शृङ्गार समुद्र' की रचना की थी। इस ग्रंथ की पुष्पिका में ये लिखते हैं—

सत्रह सै पचानवे, सावन सुदि दिन रुद्र।
रसिकन के सुखदेन कों, भो शृंगार समुद्र॥

॥ इति श्री महाराजाधिराज जगतराज विनोदार्थं कवि बेनी प्रसाद कृत शृङ्गार समुद्र नायक बर्नन नाम द्वितीय प्रकास।

दिग्विजय भूषण वाले यही दूसरे परसाद कवि हैं। शिवसिंह जी ने परसाद कवि का उपस्थिति काल स० १६०० माना है और उन्हें उदयपुर के महाराणा का आश्रित बताया है। ग्रियर्सन महोदय ने परसाद को स० १६२३ में वर्तमान कहा है। मेरा अनुमान है कि इन दोनों महानुभावों ने जिन परसाद कवि का निर्देश किया है वे प्रथम परसाद हैं। सरोज और भूषण में इस नाम के कवि के उदाहृत छंद भिन्न भिन्न हैं, इससे भी उक्त धारणा की पुष्टि होती है।

बेनी प्रसाद की एकमात्र रचना 'शृङ्गार समुद्र' ही प्रकाश में आई है।

१०० पुरान

गोकुल कवि ने इनका एक छंद उदाहृत किया है। सरोज में भी वह उसी रूप में उपस्थित है। इनकी जीवनी तथा कृतियों के सम्बंध में कुछ पता नहीं चल सका। दिग्विजय भूषण में उद्धृत कवित्त इन्हें शृङ्गारी परंपरा का कवि सिद्ध करता है।

१०१. पुहकर

हिंदू प्रेमाख्यानक कवियों में पुहकर का स्थान अन्यतम है। इनका 'रस रतन' काव्य सौष्ठव की दृष्टि से एक उत्कृष्ट रचना मानी जाती है। प्रेमाख्यानो में ब्रज की कवित्त सवैया शैली का जितनी सफलतापूर्वक निर्वाह इन्होंने किया, वह अभूतपूर्व था। इनका जन्म मैनपुरी जिले में सोमतीर्थ के पास प्रतापपुर गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम मोहनदास था। ये जाति के कायस्थ थे। इनके छः भाई और थे—सुंदर, राघव, मुरलीधर, शंकर, मकरंदराय और सकतसिंह। ये मुगल सम्राट् जहाँगीर के समकालीन थे। किसी बात पर रुष्ट होकर जहाँगीर ने इन्हें कैद करा लिया। 'रस रतन' की रचना बन्दीगृह में ही स० १६७३ में हुई। जहाँगीर को जब इनकी काव्य प्रतिभा का पता चला तो उसने तत्काल ही इन्हें क्षमाप्रदान कर मुक्त करने का हुक्म दे दिया। इनका 'नखशिख' नामक एक दूसरा ग्रंथ भी खोज में मिला है। शिवसिंह जी ने

इनके नाम का तत्सम रूप 'पुष्कर' ही रखा है 'पुहकर' नहीं। गोकुल कवि ने इनका एक नायिका भेद विषयक छंद उदाहृत किया है।

१०२ पूषी

ये मैनपुरी जिले के निवासी ब्राह्मण थे। शिवसिंह जी के अनुसार इनका उपस्थिति काल सं० १८०३ है। गोकुल कवि ने संयोग शृङ्गार, नायिका भेद और षड्ऋतु वर्णन विषयक इनके चार छंद दिये है।

१०३ प्रताप

प्रताप अथवा प्रताप साहि रीतिकाल के प्रमुख आचार्य कवि हैं। ये रतनसेन बंदीजन के पुत्र थे। इनके प्रधान आश्रयदाता चरखारी (बुंदेलखंड) के महाराज विक्रमसाहि थे। अबतक इनकी जो कृतियाँ मिली है उनकी सूची इस प्रकार है—जयसिंह प्रकास, अलंकार चिंतामणि, व्यंग्यार्थ कौमुदी (सं० १८८२), शृङ्गार मंजरी (सं० १८८९), शृङ्गार शिरोमणि (सं० १८९४), काव्य विनोद (सं० १८९६), रसराजतिलक (सं० १८९६), रत्नचंद्रिका (बिहारी सतसई की टीका—सं० १८९६), जुगल (सीताराम) नखशिख और बलभद्र नखशिख की टीका। इस प्रकार इनका काव्यकाल सं० १८८२ से सं० १८९६ तक माना जा सकता है।

दिग्विजयभूषण में प्रताप कवि के संकलित सभी छंद सीताराम के नखशिख वर्णन विषयक हैं। ये उनके जुगल नखशिख से लिये गये हैं। इससे गोकुल के 'प्रताप' कवि की, प्रसिद्ध प्रतापसाहि (बंदीजन) से, एकता असंदिग्ध ठहरती है।

१०४. प्रधान

ये रीवाँ (बघेलखण्ड) राज्य के मंत्री के घराने के थे और वहाँ के महाराज विश्वनाथसिंह के आश्रित कवि थे। इनका असली नाम रामनाथ था किंतु कविता में ये 'प्रधान' छाप ही रखते थे। इनका जन्म सं० १८५७ में हुआ। सं० १९२५ में ये परलोकवासी हुये। रामकलेवा इनकी एक प्रसिद्ध रचना है। उसके अतिरिक्त इनकी पाँच कृतियाँ और हैं, जिनके नाम हैं—कवित्त राजनीति, चित्रकूट शतक, धनुषयज्ञ, रामहोरी रहस्य और प्रधान नीति।

दिग्विजयभूषण में उदाहृत छन्द 'कवित्त राजनीति' से लिया गया है। ये शृङ्गारी रामभक्ति शाखा के कवि थे।

१०५ प्रबीनराय

प्रबीनराय ओरछा दरबार की नर्तकी थी। केशवदास जी के आश्रयदाता इन्द्रजीतसिंह इसके रूपगुण पर मुग्ध थे और यह भी उनपर इतनी आसक्त थी कि अपना वंशगत स्वभाव छोड़कर एकनिष्ठ भाव से आजीवन उनकी सेवा करती रही। इसकी काव्य प्रतिभा को परिष्कृत करने के उद्देश्य से इन्द्रजीतसिंह ने केशवदास से इसे काव्यशास्त्र की शिक्षा दिलाई जिससे कुछ ही दिनों में यह एक विदग्ध कवयित्री हो गई। केशवदास इसकी प्रशंसा करते हुये लिखते हैं—

रतनाकर लालित सदा, परमानन्दहि लीन।
अमल कमल कमनीय कर, रमा कि राय प्रबीन॥
राय प्रबीन कि सारदा, सुचि रुचि राजत अंग।
बीना पुस्तक धारिनी, राजहंस सुत संग॥

इसके लोक मोहक सौंदर्य की कथा सम्राट् अकबर तक पहुँची। उन्होंने इसे दरबार में बुला भेजा। प्रबीनराय बड़े असमंजस में पड़ी। शाही हुक्म को टालने से उसके आश्रयदाता इन्द्रजीतसिंह राजकोप के शिकार बनते और पालन करने पर उसका सतीत्व खतरे में पड़ता था। अपनी इस संघर्षपूर्ण मनोदशा की अभिव्यक्ति इन्द्रजीतसिंह के समक्ष उपस्थित होकर उसने इन शब्दों में की थी और उनका निर्णय चाहा था—

आई हौं पूछन मंत्र तुम्हैं तुम्ह हो इन साह के मंत्र अगोई।
प्रान तजो न भजौं सुलतानहिं मैं न लजौं लजिहै पुनि वोई॥
स्वारथ हाथ रहै परमारथ बात विचारि कहौ तुम सोई।
जामें रहै प्रभु की प्रभुता अरु मोर पतिव्रत भंग न होई॥

इन्द्रजीतसिंह ने राजाज्ञा की अवहेलना कर उसे दिल्ली जाने से रोक दिया। यह समाचार पाकर अकबर के क्रोध की सीमा न रही। उसने तत्काल ही इन्द्रजीतसिंह पर राजद्रोह का अभियोग लगाकर एक करोड़ रुपया जुर्माना कर दिया और प्रबीनराय को बलपूर्वक दिल्ली लाने का फरमान जारी करा दिया। अब प्रबीनराय का अपने यहाँ रखना इन्द्रजीतसिंह के काबू के बाहर की बात थी। विवश होकर उन्हें उस को दिल्ली भेजना पड़ा।

बादशाह के समक्ष उपस्थित होकर प्रबीनराय ने अपने अद्भुत वाककौशल से उन्हें पानी पानी कर दिया। अपने सतीत्वरक्षा की भिक्षा माँगते हुये उसने निवेदन किया—

बिनती राय प्रबीन की, सुनिये साहि जहान।
जूठ पतौवा द्वै भखै, कौवा ओरौ स्वान॥

'साहि जहान' कोवे ओर खान की श्रेणी मे अपनी गणना कराना कैसे मजूर करता ? उसने प्रवीनराय की चतुरता की सराहना करते हुये उसे सम्मान पूर्वक ओरछा वापस भेज दिया। पीछे केशवदास के प्रयत्न से बीरबल ने एक करोड़ का जुरमाना भी माफ करा दिया।

इसके पश्चात् प्रवीनराय का सारा जीवन इन्द्रजीत सिंह के साथ ओरछा में ही बीता। दिग्विजय भूषण का निम्नांकित छन्द उनके गहरे मधुर सम्बन्ध की सूचना देता है—

> कुरकुट कोट कोट कोठरी निवारि राखौ,
>
> चुन दै चिरैयनि को मूँदि राखौ जलियो।
>
> सारँग में सारँग मिलाऊँ हो 'प्रवीन राय',
>
> सारँग दै सारँग को जोति करो थलियो॥
>
> तारापति तुमसों कहौं कर जोरि जोरि,
>
> भोर मति कीजियो सरोज मुदि कलियो।
>
> मोहि मिल्यो इन्द्रजीत धीरज नरिंद राजा,
>
> एहो! आजु चंद नैकु मंदगति चलियो॥

इनकी कोई स्वतन्त्र रचना नहीं मिलती। कुछ फुटकर छन्द ही यत्र तत्र प्राचीन काव्य संग्रहों में संकलित पाये जाते हैं।

१०६. प्रह्लाद

इस नाम के दो कवि हुये हैं। शिवसिंह जी ने दोनों का पृथक् परिचय दिया है। प्रथम 'पह्लाद कवि' अकबर कालीन थे। इन्होंने सं० १६६१ के आस पास 'बैताल पचीसी' लिखी थी। दूसरे प्रह्लाद बन्दीजन चरखारी के महाराज जगतसिंह के कृपापात्र थे। इनके समय का उल्लेख सरोज में नहीं हुआ है किन्तु ग्रियर्सन ने इन्हें १८१० ई० में वर्तमान माना है। सरोजकार ने इन दोनों में से केवल प्रथम प्रह्लाद कवि का एक कवित्त उद्धृत किया है। वह नायिका भेद पर है। दूसरे प्रह्लाद भी रीतिकालीन थे। ऐसी दशा में यह निश्चय करना कठिन है कि प्रह्लाद नामधारी उक्त दोनों मे से किसके छन्द गोकुल कवि ने दिग्विजय भूषण म संकलित किये हैं।

१०७. प्रेम सखी

प्रेम सखी रसिक सम्प्रदाय के रामभक्त थे। इनका जन्म शृंगवेरपुर (सिंगरौर) के समीप एक ब्राह्मण परिवार में सं० १७९१ के लगभग हुआ था। बाल्यावस्था में ही विरक्त होकर ये चित्रकूट गये और वहाँ महात्मा

रामदास गूदर के शिष्य हो गये। चित्रकूट म कुछ दिनों तक साधना करने के पश्चात् ये मिथिला गये। 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' के अनुसार, वहाँ जानकी जी ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर इ हे 'सखी' रूप मे अपनाया और 'रहस्यकेलि' का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कराया। 'प्रेम सखी' नाम इसी समय पड़ा। इसके पूर्व इनका व्यावहारिक नाम क्या था, इसका पता नहीं। अपनी रचनाओं में इस आत्म मग्न धी नाम को ही इ होंने छापरूप में रखा है। इनके जीवन का अधिकाश 'दिव्य दम्पत्ति' की विहार लीला का वर्णन और ध्यान करते हुये चित्रकूट में बीता।

अपने समय में ये एक पहुँचे हुये भक्त के रूप में ख्यात थे। कहते हैं अवध के नवाब ने महात्मा रामप्रसाद (स० १७०३–१८०८) से इनकी सगीतमर्मज्ञता की प्रशसा सुनकर सवा लाख की भेंट भेजी थी जिसे इ होंने लौटा दिया था।

महात्मा प्रेमसखी की तीन रचनाय प्राप्त हुइ हैं—होली, कवित्तादि प्रब ध और श्री सीताराम नखशिख। ब्रजभाषा में काव्य रचना करने वाले तुलसीके परवर्ती रामभक्तोंम इनकी जैसी प्राजल पद योजना किसी की भी रचना म नहीं मिलती।

दिग्विजयभूषण में शृङ्गारी रामभक्ति विषयक इनके दो छ द उदाहृत हैं।

१०८. बंसीधर

इस नाम के कइ कवियों का उल्लेख खोज विवरणों मे मिलता है। उनमे से तीन विशेष उल्लेखनीय है--प्रथम बसीधर वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी, और सम्भवत स्वय महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे। इनकी एक मात्र रचना 'दानलीला' उपलब्ध हुई है। दूसरे बसीधर मिश्र सडीला (जिला हरदोई) के निवासी थे। ये गोस्वामी तुलसीदासजी के सम कालीन भक्त कवि थे। 'भाषा काव्य सग्रह' के अनुसार इनकी मृत्यु स० १६७२ में हुई। तीसरे बसीधर मेदपाट ब्राह्मण अहमदाबाद के निवासी थे। ये शृङ्गारी कवि थे। दलपति राय श्रीमाल के साथ इ होंने 'अलकार रत्नाकर' नामक टीका महाराज जसवत सिंह के 'भाषा भूषण' पर लिखी थी।

दिग्विजय भूषण में बसीधर के दो कवित्त उदाहृत हैं और दोनों कृष्ण लीला विषयक हैं। एक में द्रौपदी की लाज रक्षा और दूसरे में कृष्ण के मथुरा गमन की घटना वर्णित है। मेरा अनुमान है कि ये पुष्टिमार्गी कृष्ण भक्त प्रथम बसीधर द्वारा विरचित हैं। वल्लभाचार्य जी का समय स० १५३५ से स० १५८७ तक माना जाता है। अत इ हें भी इसीके आसपास विद्यमान समझना चाहिए।

१०९ बलदेव

इस नाम के छ कवियों का उल्लेख साहित्य के विभिन्न इतिहास ग्रथों मे मिलता है—

१ बलदेव प्राचीन—ये स० १७०४ मे उपस्थित थे।

२ बलदेव बघेलखडी—ये विक्रम साहि बघेला के आश्रित थे और स० १८०६ मे वर्तमान थे।

३ बलदेव चरखारी वाले—इनका उदय स० १८६६ के लगभग हुआ।

४ बलदेव हाथरस वाले—ये स० १९०३ के लगभग विद्यमान थे।

५ बलदेव क्षत्रिय—ये अयोध्या नरेश महाराज मानसिह 'द्विजदेव' के काव्यगुरु थे और स० १९११ में उपस्थित थे।

६ बलदेव अवस्थी—ये सीतापुर जिले के दासापुर नामक गॉव के निवासी थे। इनका जन्म स० १८९७ मे हुआ था। इनकी चार रचनाये उपलब्ध हुई हैं—मुक्तमाल, ब्रजराज विहार, प्रताप विनोद और शृङ्गार सुधाकर।

७ बलदेव मिश्र—ये औरगजेब के समकालीन थे। आजमगढ के सस्थापक अजमतखॉ और आजमखॉ—जो पहले गौतम क्षत्रिय थे—के ये पुरोहित थे। 'अजमतिखॉ यशवर्णन' नामक इनकी एक सपूर्ण रचना और कतिपय फुटकर छद मिले है।

हमारे दिग्विजयभूषण के बलदेव कौन हैं यह निर्णय करना कठिन है। मेरा अनुमान है कि वे उपर्युक्त बलदेव नामाराशी कवियों मे से छठव बलदेव अवस्थी है। ये गोकुल कवि के समकालीन थे। एक ही प्रदेश के निवासी एव समकालीन होने से सम्भवत भूषणकार इनसे परिचित भी रहे हों। इनकी रचनाओं की भाषा शैली दिग्विजय भूषण वाले बलदेव से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं।

११० बलभद्र

बलभद्र नामक तीन कवियों का पता चला है। प्रथम बलभद्र कायस्थ बीरसिंह बुदेला (ओरछा) के आश्रित कवि थे। इन्होंने 'अबुल फजल विजय' की रचना की थी। दूसरे बलभद्र मिश्र ओरछा निवासी प० काशीनाथ के पुत्र सनाढ्य ब्राह्मण थे। ये आचार्य केशवदास के बड़े भाई थे और स० १६४२ में विद्यमान थे। इनका नखशिख विषयक ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। तीसरे बलभद्र कायस्थ पन्ना के रहने वाले थे। सरोजकार के अनुसार इनका उदय स० १९०१ में हुआ।

दिग्विजय भूषण में बलभद्र कवि के उदाहृत छन्द नखशिख वर्णन सम्बन्धी है। वे दूसरे बलभद्र विरचित प्रतीत होते हैं। इनकी कुल छः कृतियाँ बताई जाती हैं—बलभद्री व्याकरण, हनुमन्नाटक की टीका, गोवरधन सतसई की टीका, भागवत का अनुवाद, नखशिख, और भाषा काव्यप्रकाश अथवा कवित्त भाषा दूषण विचार। आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने इनका आविर्भाव काल स० १६०० और रचनाकाल स० १६४० के पूर्व माना है।

१११. बिहारी

सतसई के रचयिता कविवर बिहारी लाल माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। इनका जन्म स० १६५२ में ग्वालियर के समीप बसुवा गोविन्दपुर नामक गाँव में हुआ था। कुछ अनिवार्य घरेलू परिस्थितियों से इन्हें बाल्यावस्था पिता के साथ ओरछा (बुन्देलखण्ड) में बितानी पड़ी। इनका विवाह मथुरा में हुआ, तब से ये वहीं रहने लगे। जयपुर के मिर्जा जयसिंह (शासनकाल स० १६७८-१७२४) इनके एकमात्र ज्ञात आश्रयदाता हैं। सतसई की रचना उन्हीं की प्रेरणा से हुई। प्रसिद्ध है कि बिहारी का प्रवेश जिस समय उनके दरबार में हुआ, महाराज अपनी नवविवाहिता छोटी रानी के प्रेमपाश में बद्ध हो राज काज से विमुख हो रहे थे। हितैषी सामन्तों की सलाह से बिहारी ने निम्नांकित दोहा लिखकर जयसिंह के पास अन्तःपुर में पहुँचाया—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सों बिंध्यो, आगे कवन हवाल॥

महाराज के विलासमग्न मानस को इससे एक नई चेतना मिली और वे वासनापूर्ण जीवन से विरत होकर पूर्ववत् शासनकार्य में दत्तचित्त हो गये। यह एक आश्चर्य की बात है कि बिहारी ने अपने उपर्युक्त छन्द से आश्रयदाता को नवचेतना प्रदान करने के पश्चात् उनके प्रीत्यर्थ जिस सतसई की रचना (स० १७०४ में) की उसके अधिकांश दोहे 'अली' को 'कली' के मोहपाश में बद्ध करने में ही प्रेरक हुए। फिर भी भाषावैभव और भाव गाम्भीर्य की दृष्टि से 'सतसई' हिन्दी साहित्य की एक अमूल्य निधि मानी जाती है। बिहारी सतसई को जो प्रतिष्ठा मिली और उसकी जितनी टीकाएँ हुईं, उतनी 'रामचरित मानस' को छोड़कर अन्य किसी काव्य ग्रन्थ की देखने में नहीं आईं। बिहारी का देहावसान स० १७२१ में हुआ।

दिग्विजय भूषण में सतसई के कतिपय दोहे अलंकारों के उदाहरण स्वरूप उद्धृत हैं।

११२. बीठल

बीठल शृङ्गारी कवि हैं। दिग्विजय भूषण में इनका केवल एक छन्द उदाहृत है। सरोजकार ने उसे ही उद्धृत कर दिया है। अन्य सूत्रों से इनके विषय में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती।

११३ बीरबल

महाराज बीरबल अकबरी दरबार के प्रसिद्ध रत्न थे। इनका असली नाम महेशदास था। ये गंगादास ब्रह्मभट्ट के पुत्र थे। इनका जन्म कालपी सरकार के अन्तर्गत तिकवाँपुर नामक गाँव में, (जो अब कानपुर जिले में है) हुआ था। आगे चलकर महाकवि भूषण का आविर्भाव इसी गाँव मे हुआ था। बीरबल ने इसके सन्निकट 'अकबर पुर बीरबल' नामक गाँव बसाया था, जो अब तक वर्तमान है।

अकबर का आश्रय प्राप्त करने के पूर्व ये रीवाँ नरेश रामसिंह और आमेर के राजा भगवानदास के दरबार मे रह चुके थे। राजा भगवानदास ने ही इनका परिचय अकबर से कराया, जिसके फलस्वरूप ये मुगलदरबार में प्रविष्ट हुए। गुणग्राहक अकबर ने इनकी प्रतिभा की कद्र की। इनकी वाग्पटुता और प्रत्युत्पन्नमतित्व से प्रसन्न होकर उसने 'कविराय' की उपाधि के साथ ही नगरकोट (पंजाब) में एक अच्छी जागीर देकर इन्हें सम्मानित किया। अकबर का इनके प्रति अपार स्नेह और राजकार्य में बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर कुछ दरबारी इनसे जलने लगे। उनके षड्यन्त्र से विनोदी बीरबल को, पश्चिमी सीमान्त प्रदेश के पठानों के विरुद्ध शाही सेना का अध्यक्ष बनाकर भेजा गया। इसी संग्राम में काबुल के समीप माघ सुदी १२, शुक्रवार सं० १६४२ को इन्होंने वीरगति प्राप्त की।

बीरबल की मृत्यु का समाचार पाकर अकबर ने अपने हृदय की वेदना व्यक्त करते हुये कहा था—

दीन जानि सब दान, एक दुरायो दुसह दुख।
सो अब हमको दान, कछु नहि राख्यो बीरबर॥
पीथल सूँ मजलिस गई, तानसेन सूँ राग।
हँसबो रमबो बोलबो, गयो बीरबल साथ॥

बीरबल स्वयं कवि तो थे ही कवियों के लिए कल्पवृक्ष भी थे। महाकवि गंग, आचार्य केशवदास और होलराय बन्दीजन ने इनकी दानशीलता की प्रशंसा में

अनेक छन्द लिखे हैं। गग का निम्नांकित छ द इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है—

आवत हुतो शिवसैल ते गिरीश जाँचे,
मिल्यो हुतो मोहि जहाँ सागर सगर को।
कविन की रसना का पालकी मे बैठ्यो देख्यो,
साथ सोहे रावरे प्रताप तेजवर को॥
'गग' हम पूछी तुम को हो कित जैहो तब,
हमसो सँदेसो उते कह्यो बड़े थर को।
जस मेरो नाम मांहि दसो दिसि काम मेरो,
कहियो प्रनाम हा गुलाम बीरवर को॥

'ब्रह्म' छाप से लिखी गई बीरबल की फुटकर रचनायें मिलती हैं। सपूर्ण ग्रथ केवल एक मिला है जिसका नाम है 'सुदामा चरित'।

दिग्विजय भूषण में इनके पाँच छ द उदाहृत हैं, जिनमें एक नीति और शेष नखशिख वर्णन तथा नायिका भेद सम्बन्धी हैं।

११४ बेनी

बेनी नाम के तीन कवि हुए है—बेनी प्राचीन असनी (जिला फतेहपुर) वाले, बेनी बैंती (जिला रायबरेली) वाले और बेनी प्रवीन लखनऊ वाले। दिग्विजय भूषण में सकलित छद शिवसिंहसरोज मे प्रथम बेनी के नाम से उद्धृत है। अत दिग्विजय भूषण के बेनी प्राचीन बेनी ही है, यह असदिग्ध है। ये 'श्रृंगारी बेनी' के नाम से भी प्रसिद्ध है।

बेनी कवि अपना परिचय देते हुए लिखते हैं—

लसत बस उपमन्यु वर, वाजिपेय करि जज्ञ।
सुकृती साधु कुलीन वर, नवरस में सरबज्ञ॥
बेनी कवि को वासु है, असनी वर सुभ थान।
बसैं सनै षट्कुल जहाँ, करैं बेद को गान॥

ये निहचल सिह नामक किसी राजा के आश्रित थे और स० १७०० के लगभग विद्यमान थे।

प्राचीन काव्य सग्रहों म इनकी फुटकर श्रृङ्गारी रचनायें मिलती हैं। सपूर्ण कृतियाँ केवल दो 'रसमय ग्र थ, और 'श्रृङ्गार' उपलब्ध हैं। गोस्वामी तुलसीदास की प्रशसा में लिखा गया "जो पै रामायन तुलसी न गावतो" वाला प्रसिद्ध छ द इ हीं का है।

११५. बोधा

बोधा स्वत त्र शृगारी परम्परा के प्रमुख कवि हैं। इ का पूरा नाम बुद्धिसेन था। ये राजापुर ग्राम (जिला बाँदा) के एक सरयूपारी ब्राह्मण परिवार मे उत्पन्न हुए थे। पन्ना दरबार (बु देल खण्ड) से इनके वश का पुरा ा सम्बन्ध था। बड़े होने पर ये वहीं चले गये और तत्कालीन पन्ना नरेश खेत सिह (शासनकाल स० १८०४–१८१५) के आश्रय में रहने लगे। 'बुद्धिसेन' से बदल कर बोधा नाम यहीं पड़ा।

बोधा प्रकृत्या रसिक थे। दरबार की सुभान नामक एक रूपवती वेश्या से इनका सम्बन्ध हो गया। इसकी खबर महाराज के कानों तक पहुँची। उ होने अप्रस न होकर इ हें छ महीने के लिए राज्य से निकाल दिया। बोधा ने यह निर्वासनकाल सुभा । की स्मृति मे बड़े कष्ट से बिताया। विरही बोधा के नेत्रों से प्रवाहित अश्रुधारा से 'विरहवारीश' की सृष्टि हुई। दण्ड की अवधि समाप्त होने पर ये पन्ना लौट आये और अपनी उपर्युक्त रचना के कुछ छ द महाराज खेत सिह को सुनाया। पन्ना नरेश इनकी कृतियों मे अभिव्यक्त अनुभूति की सत्यता से अत्य त प्रभावित हुये। पुरस्कार में 'सुभा ।' इन्हें दे दी गई। 'विरह वारीश' के अतिरिक्त इनकी एक अ य रचना 'इश्कनामा' का भी पता चला है। प्राचीन काव्य सग्रहों में बोधा के कतिपय फुटकर छ द सकलित मिलते हैं, जो इनकी गहरी रसानुभूति के परिचायक हैं।

११६. व्रजचंद

इनके सम्बन्ध में कोइ सूचना सुलभ नहीं है। दिग्विजय भूषण मे इनका केवल एक छन्द उदाहृत है, सरोजकार ने उसे ही सकलित किया है। इनकी जीवनी पर कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। शिव सिंह जी ने केवल इतना लिखा है कि ये स० १७६० मे उपस्थित थे।

११७. भंजन

इनके सम्ब ध में विशेष कुछ ज्ञात नहीं। शिव सिह सरोज से यह ज्ञात होता है कि ये स० १८३१ में विद्यमान थे। दिग्विजय भूषण मे इनका एक छन्द उदाहृत है जो सरोज मे सकलित भजन कवि के दोनों छ्दों से मिलता जुलता है। इस नाम के किसी अन्य कवि का अब तक कहीं उल्लेख नहीं मिला है। ऐसी स्थिति में 'सरोज' तथा 'भूषण' के भजन नामक कवियों को एक मान लेने में कोई अड़चन नहीं दिखाई देती।

११८ भगवन्त

अबतक के उपलब्ध सूत्रों से इनकी पहचान ठीक ठीक नहीं हो सकी है। ग्रियर्सन महोदय ने असोथर के इतिहास प्रसिद्ध राजा भगवन्त सिंह से इन्हें अभिन्न बताया है। किन्तु उनका यह अनुमान किसी ठोस आधार पर स्थित नहीं दिखाई देता। शिव सिंह जी ने इन्हें भगवन्त सिंह से पृथक् कवि माना है और इसकी रचना शैली के उदाहरण भी अलग से प्रस्तुत किये हैं। दिग्विजय भूषण में इनके दो शृङ्गारी कवित्त उदाहृत हैं। उनमें से एक सरोज मे भी सकलित है। इस प्रकार 'सरोज' तथा 'भूषण' के भगवन्त कवि एक ही व्यक्ति ठहरते हैं। दिग्विजय भूषण म इनकी उदाहृत रचनाओं से यह ज्ञात होता है कि ये शृङ्गारी परम्परा के कवि थे।

११९. भगवन्त सिंह

महाराज भगवन्तसिंह अथवा भगवन्तराय खीची असोथर (जिला फतेहपुर) के निवासी थे। इनका दरबार भूधर, सदानन्द, नाथ, नेवाज शम्भुनाथ मिश्र ऐसे कवीश्वरों से अलकृत था। अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण म इनके अपार शौर्य तथा उदारता का गुणगान तत्कालीन कवियों ने उसी उत्साह और निष्ठा से किया जैसा इसके पूर्व छत्रपति शिवा जी और महाराज छत्रसाल का हुआ था। स० १७६३ मे अवध के प्रथम नवाब वजीर सआदत खाँ बुर्हान उल मुल्क से युद्ध करते हुए, ये वीरगति को प्राप्त हुए थे। नाथ कवि के निम्नांकित छद से तत्कालीन राजनीतिक क्षेत्र में इनका महत्व व्यजित होता है—

दिल्ली के अमीर दिल्लीपति सो कहत बार,
दक्खिन सो दण्ड लै कै सिंहल दबाइहैं।
जगती जलेसर की जोर लै सुमेर हू लौं,
सपति कुबेर के घराने की कढ़ाइहैं॥
कहै कवि 'नाथ' लकापति हू के भौन जाइ,
जमहू सो जग जुरे लोह को चबाइहैं।
आगि में जरैंगे कूदि कूप में परैंगे,
एक भूप भगवत की मुहीम को न जाइहैं॥

भगवन्त सिंह की दो रचनायें मिली हैं—रामायण और हनुमत पचीसी। शिव सिंह जी ने इनके 'रामायण' से जो उद्धरण दिये हैं उससे ज्ञात होता है

कि उसकी रचना कवित्तों में हुई थी। हनुमत पचीसी भी इसी छ द मे लिखी गई थी। दिग्विजय भूषण मे इनके दो छद उदाहृत हैं—एक का विषय शृङ्गार है और दूसरे का नीति। इससे यह पता चलता है कि उपर्युक्त दो भक्ति परक ग्रथो के अतिरिक्त इ होंने फुटकर छद भी लिखे थे—जिनमे से कुछ का अस्तित्व अब प्राचीन काव्य सग्रहों म ही अवशिष्ट है।

१२०. भरमी

इनके जीवन तथा कृतियों के सम्ब ध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। शिवसिंह जी ने इस नाम के कवि का एक नीति विषयक छप्पय सकलित किया है और उसे स० १७०८ में वर्तमान बताया है। ग्रियर्सन महोदय इसे उक्त कवि का आविर्भाव काल और मिश्र धुओ ने रचनाकाल माना है। भरमी नामक कवि के छ द कालिदास के हजारे मे भी सग्रहीत थे। ये स० १७५० के पूर्ववर्ती थे। गोकुल कवि ने भरमी के 'नखशिख' पर चार छन्द उदाहृत किए हैं। हजारा के अधिकाश कवि शृङ्गारी हैं अत. उसके भरमी कवि भी उसी प्रवृत्ति के रहे हों तो कोई आश्चर्य नहीं। मेरे विचार में उपर्युक्त समस्त काव्य सग्रहों में निर्दिष्ट भरमी एक ही हैं और वे निश्चित रूप से रीति कालीन हैं। खेद है कि इनके सम्ब ध मे कोई तथ्य अब तक प्रकाश में न आ सका।

१२१. भिखारीदास

ये प्रतापगढ़ (अवध) के ट्योंगा नामक गाँव के निवासी श्रीवास्तव कायस्थ थे। पिता का नाम कृपालदास था। प्रतापगढ़ के सोमवशी राजा पृथ्वीपाल सिंह के भाई हिंदूपति सिंह इनके आश्रयदाता थे। 'भाषा काव्य सग्रह' के रचयिता महेशदत्त के अनुसार इनका जन्म स० १७४५ और मृत्यु स० १८२५ में हुई। इनका रचनाकाल स० १७८५ से स० १८०७ तक माना जाता है। आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने काव्यागों के विवेचन मे इनके अगाध पाडित्य की सराहना की है और इन्हें रीतिकाल के प्रमुख आचार्य कवियों मे स्थान दिया है। गोकुल कवि ने अलकारों के उदाहरण तथा उनकी व्याख्या प्रस्तुत करने में सर्वाधिक सहायता इन्हीं की रचनाओं से ली है और उस सम्ब ध में इन्हें अपना पथ प्रदर्शक माना है।

दासजी की निम्नाकित कृतियाँ मिली हैं—नाम प्रकाश (स० १७९५), रस साराश (स० १७९९), छन्दार्णव पिगल (स० १७९९), काव्य निर्णय

(स० १८०३), श्रृङ्गार निर्णय (स० १८०७), विष्णुपुराण भाषा, छदप्रकाश शतरज प्रकाशिका और अमर प्रकाश।

१२२ भूधर

भूधर कवि काशी के रहने वाले थे। इनका आविर्भाव सत्रहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में हुआ। सरोजकार ने इनकी रचना शैली के उदाहरण में जो छद सकलित किया है वह दिग्विजय भूषण से ही लिया गया है। कालिदास के हजारे में भी इनके छद सग्रहीत थे। ये असोथर के महाराज भगवत सिंह के आश्रित भूधर कवि से भिन्न हैं।

१२३. भूषण

महाकवि भूषण का जन्म कानपुर जिले के तिकवाँपुर गाँव में स० १६७० में हुआ था। प्रसिद्ध श्रृङ्गारी कवि चितामणि त्रिपाठी इनके अग्रज और मतिराम तथा जटाशकर (नीलकठ) अनुज थे। इनका असली नाम क्या था ? अब तक इसका पता नहीं चल सका है। चित्रकूट के सोलकी राजा रुद्र सिंह ने इनकी असाधारण काव्य प्रतिभा पर मुग्ध होकर इन्हें 'कविभूषण' की उपाधि दी थी। तब से इनका 'भूषण' नाम ही ख्यात हो गया। अनेक राजाओं का आश्रय लेने के पश्चात् अत मे ये छत्रपति शिवाजी महाराज के दरबार मे पहुँचे। उस महापुरुष मे इन्हें राष्ट्रोद्धारक के मूर्तिमान् व्यक्तित्व के दर्शन हुए। अपनी ओजपूर्ण वाणी से ये उन्हीं के प्रशस्तिगान में तल्लीन हो गये। बुदेल केशरी महाराज छत्रसाल ने भी इनका काफी सम्मान किया। कहा जाता है कि एक बार उन्होंने इनकी पालकी में अपना कधा लगा दिया था, जिससे प्रभावित होकर इनके मुँह से "शिवा को बखानौ कै बखानौं छत्रसाल को' निकल पडा था। ऐसे देशभक्त आश्रय दाताओंके पराक्रम वर्णन में भूषण ने वीररस की जो स्रोतस्विनी बहाई राष्ट्रभाषाकी वह आज भी मुख्य सजीवनी शक्ति है। भूषण का परलोकवास स० १७७२ में हुआ।

इनकी तीन कृतियाँ प्रसिद्ध हैं—शिवराज भूषण, शिवा बावनी और छत्र साल दशक। इनके अतिरिक्त, भूषण उल्लास, दूषण उल्लास और भूषण हजारा के भी रचयिता भूषण ही कहे जाते हैं। किंतु ये तीनों सदिग्ध हैं।

दिग्विजय भूषण में उदाहृत छन्द शिवराज भूषण और शिवा बावनी से लिए गये हैं।

१२४. मंडन

इनका पूरा नाम मणि मडन मिश्र था। अपनी रचनाओं में ये 'मडन' छाप रखते थे। ये जैतपुर (बुन्देलखड) के निवासी और वहाँ के राजा मगद सिंह के आश्रित कवि थे। सरोजकार ने इनका उदयकाल स० १७१६ बताया है। परन्तु मिश्रबधु इन्हें गोस्वामी तुलसीदास का समकालीन मानते हैं। रहीम (खानखाना) की प्रशसा में लिखे गए इनके निम्नाकित छद से इस धारणा की पुष्टि होती है—

तेरे गुन खानखाना परत दुनी के कान,
यह तेरे कान गुन अपनो धरत है।
तू तो खग खोलि खोलि खलन पै कर लेत,
लेत यह तो पै कर नेकु ना डरत हैं॥
मडन सुकवि तू चढ़त नवखड पर,
यह भुजदड तेरे चढ़िये रहत हैं।
ओढ़ती अदल खान साहेब तुरुक मान,
तेरी या कमान तेरो तेहु सो करत हैं॥

रहीमका देहावसान स० १६८३ में हुआ, जो शिवसिंह जी द्वारा दिये गए मण्डन के उपस्थिति काल से ३३ वर्ष पहले पडता है। सभव है मगद सिंह के आश्रय में आने से पूर्व इनका सम्पर्क उस युग के प्रसिद्ध काव्य प्रेमी, कवि तथा कवियों के कल्पतरु खानखाना से हुआ हो। दोनों के समय में इतना कम अन्तर है कि कुछ समय तक उनका समकालीन रहना असम्भव नहीं प्रतीत होता।

इनकी आठ कृतियों का पता लगा है—जनक पचीसी, रस रत्नावली, पुरदर माया, जानकी जू को ब्याह, शृङ्गार कवित्त, बारामासी, नयन पचासा और रस विलास।

१२५. मकरंद

इस नाम के दो कवि हुए हैं। प्रथम मकरद को शिवसिंहजी ने स० १८१४ में वर्तमान बताया है और उनकी शृङ्गारी रचनाओं की प्रशसा की है। दूसरे मकरद पुवायाँ (जिला शाहजहाँ पुर) के निवासी बंदीजन थे। इनका पूरा नाम मकरद राय था। ये चदन कवि के वशज थे। इनके रचित दो ग्रन्थ मिले हैं—हसाभरण तथा जगन्नाथ माहात्म्य। इनमें पहली हास्य और दूसरी शातरस की रचना है।

दिग्विजय भूषण में मकरद कवि के नायिका भेद विषयक दो छद उदाहृत हैं। मेरे विचार में उनके रचयिता प्रथम (श्रृङ्गारी) मकरद हैं।

१२६. मतिराम

ये भूषण के छोटे भाई थे। इनका ज म स० १६७४ के आस पास तिकवाँपुर (जिला कानपुर) मे हुआ। इनके मुख्य आश्रयदाता बूँदी के महाराज भावसिंह (शासनकाल स० १७१५–१७४२) थे। उनके लिए इ होंने 'ललित ललाम' की रचना की थी। दिग्विजय भूषण मे उदाहृत निम्नाकित दोहा इसी ग्र थ का है—

> विप्रन के मन्दिरन तजि, और आँच सब ठौर।
> भाव सिंह भुवपाल के, तेजभान कछु और॥

मतिराम की अ य रचनाये हैं—रसराज, लक्षण श्रृ गार और मतिराम सतसई। छ दसार नामक एक ग्रथ इनका विरचित कहा जाता है कि तु वह इ हीं के नामाराशी बनपुरा (जिला कानपुर) निवासी एक दूसरे मतिराम त्रिपाठी की रचना है जो कार्तिक शुक्ल ३, स० १७५८ को लिखी गई थी। ये विश्वनाथ त्रिपाठी के पुत्र थे। छ दसार का उल्लेख कहीं कहीं 'वृत्त कौमुदी' नाम से भी हुआ है।

मतिराम एक लम्बी आयु भोगकर स० १७७३ के आसपास स्वर्गवासी हुए।

१२७ मदन गोपाल

मदन गोपाल शुक्ल फतूहाबाद (जिला लखनऊ) के निवासी थे। ये बलरामपुर के महाराज दिग्विजय सिंह के पिता महाराज अर्जुन सिंह के प्रधान दरबारी कवि थे। आश्रयदाता के नाम पर इ होंने स० १८७६ में 'अर्जुन विलास' की रचना की थी। इसी ग्रथ में अपना वशपरिचय देते हुए ये लिखते हैं—

> कान्यकुब्ज श्री नाभि भो, शुक्ल नाभि भव तुल्य।
> विद्यापति धनपति विदित, भे तिनके नर कुल्य॥
> नाभि बस पुनि बस कर, गगाराम प्रसिद्ध।
> बसे फतूहाबाद मैं, विद्या धन जन रिद्ध॥
> तिनके गृह सुरसहस सुचि, भये सकल सुग्यान।
> छह लौं सतये भे मदन, एक परम अग्यान॥

अर्जुनेस कवि का कृपा, सुकवि भयो करि कावि।
कान्हा अर्जुन भूप ने, बिलसन बहुमत गावि॥

इससे स्पष्ट है कि इनके पिता का नाम पंडित गगाराम शुक्ल था, जो कहीं बाहर से आकर फतूहाबाद मे बस गए थे। उनके सात पुत्र हुये जिनमें मदन गोपाल सबसे छोटे थे।

अर्जुन विलास की रचना के कुछ ही दिनो बाद प० मदनगोपाल बलराम पुर से फतूहाबाद गए और वहीं उनका शरीरान्त हो गया। इसी के आसपास महाराज अर्जुन सिंह भी स्वर्गवासी हुए (स० १८८७)। इसके बाद इनके ज्येष्ठ पुत्र जयनारायण सिंह बलरामपुर की गद्दी पर बैठे। छ वर्ष राज्य करके स० १८९३ में वे भी दिवगत हो गए। उनके पीछे स० १८९४ मे महाराज दिग्विजयसिंह, सिंहासनासीन हुए। वे बड़े ही काव्य प्रेमी थे। पुराने राजकर्मचारियों से 'अर्जुन विलास' की प्रशंसा सुनकर उन्होंने अपने यहाँ उसकी बड़ी खोज कराई, किन्तु कहीं पता न लगा। इसी बीच स० १९१४ (१८५७ ई०) का प्रसिद्ध स्वतन्त्रता संग्राम छिड़ गया। उसकी समाप्ति पर विजयोल्लास व्यक्त करने के उद्देश्य से अंग्रेजी शासन की ओर से लखनऊ में एक बहुत बड़ा दरबार आयोजित हुआ। उसमें महाराज दिग्विजय सिंह भी आमन्त्रित थे। इस सम्बन्ध में वे एक मास तक लखनऊ मे ठहरे रहे। इस बीच उनकी गुणग्राहकता से आकृष्ट कवियों तथा विद्वानों का नित्य जमघट सा लगा रहता था। प० मदन गोपाल के पुत्र प० नन्दकिशोर भी एक दिन उपस्थित हुए। शास्त्रज्ञ होने के साथ वे सुकवि भी थे। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने अपने पिता द्वारा विरचित 'अर्जुन विलास' ग्रंथ की चर्चा की और उसे अपने पास सुरक्षित बताया। महाराज ने उनके घर से 'अर्जुन विलास' मँगा लिया। दरबार समाप्त होने पर प० नन्दकिशोर को भी वे अपने साथ बलरामपुर लेते आये और उन्हें दान मान से सतुष्ट किया। महाराज के प्रयत्न से वह ग्रंथ स०१९१८ में बलरामपुर के जगबहादुरी यन्त्रालय (लीथो प्रेस) से गोकुल कवि की भूमिका सहित प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त उनकी 'वैद्यकरत्न' नामक एक अन्य रचना का भी उल्लेख मिलता है। निश्चय पूर्वक कहा नहीं जा सकता कि वह 'अर्जुन विलास' के उत्तरार्ध में दिये गये वैद्यक विषयक अंश का ही दूसरा नाम है अथवा कोई स्वतंत्र ग्रंथ है। उपलब्ध तथ्यों के आधारपर मदनगोपाल का समय स० १८३० से स० १८९० तक स्थिर किया जा सकता है।

दिग्विजय भूषण में इनका नखशिख वर्णन सम्बन्धी एक छन्द उदाहृत है।

१२८ मधुसूदन

इस नामके दो कवि हुये हैं। एक हैं—'रामाश्वमेध भाषा' के रचयिता मधुसूदन—जो माथुर ब्राह्मण थे। ये इष्टकापुरी (इटावा) के रहने वाले थे और सं०१८३९ में विद्यमान थे। दूसरे मधुसूदन को शिवसिंह जी ने सं० १६८१ में उपस्थित बताया है। इनका जो छन्द सरोज में उद्धृत है, उससे ये शृङ्गारी कवि सिद्ध होते हैं। सरोजकार ने इनके छन्द कालिदास के हजारा में भी संग्रहीत बताये हैं। दिग्विजय भूषण के मधुसूदन शृङ्गारी परम्परा के ही कवि हैं। ऐसी स्थिति में वे सरोजवाले[1] मधुसूदन से अभिन्न हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

१२९. मननिधि

इनके सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य के सभी ऐतिहासिक स्रोत मौन हैं। दिग्विजय भूषण में इनका एक छन्द उदाहृत है। वही सरोज में भी संकलित है।

१३० मनसाराम

ये सुवंशशुक्ल के वंशज और टेढा गाँव (जिला उन्नाव) के निवासी थे। इनकी लिखी कविताओं का एक संग्रह 'मनसा राम के कवित्त' नाम से खोज में मिला है। इसमें कृष्णलीला, नायिका भेद, होली इत्यादि प्रसंगों के छन्द संकलित हैं। दिग्विजय भूषण में इनके दो कवित्त उदाहृत हैं। एक का प्रतिपाद्य है नायिकाभेद और दूसरे का गोपी विरह।

१३१ मनिकंठ

ये नगरा (जिला गाजीपुर) के राजा फकीर सिंह और आजमपुर के रईस निरतन लाल अग्रवाल के आश्रित कवि थे। निरतन लाल का परिचय देते हुए ये लिखते हैं—

> है आजमपुर विदित ग्राम। सुख सपति आनन्द धाम॥
> भूमि तिलक सम अति उदार। वेद विदित बाढ़ै अचार॥
> अगरवार के गोत सुभ, तेहि पुर बसै अनेक।
> गर्ग वंश घर एक है, विदित धर्म को टेक॥

१—डा० किशोरीलाल गुप्त के अनुसार 'सरोज' में मधुसूदन के नाम से उद्धृत छन्द परबत कवि का है। उक्त छन्द में प्रयुक्त 'मधुसूदन' शब्द कृष्ण वाचक है, कवि के नाम से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। (द्रष्टव्य सरोज सर्वेक्षण ६७१।५४६)

धर्म धुरधर सील जुत, भये भवानी साहु।
मुदित जगहि लखि हित सदा, अरि उर उपजत दाहु॥
तिनके सुत तहँ तीनि भे, लहुरे निरतन लाल।
रूप काम सम कामतरु, दाता दीन दयाल॥

खोज रिपोर्ट (१६४४ ई०) मे इन्हें 'मिश्र' लिखा गया है किन्तु 'कवीन्द्र चन्द्रिका' नामक सग्रह मे गोपाल त्रिपाठी और सीतापति त्रिपाठी को मनिकठ का पुत्र बताया गया है। इससे ये त्रिपाठी सिद्ध होते है। कवीन्द्राचार्य सरस्वती (स० १६५७–१७३२) के समकालीन होने से इनका भी समय १७ वीं शती के उत्तरार्ध से लेकर १८ वीं शती के तीसरे दशक तक माना जा सकता है। इनकी एकमात्र उपलब्ध कृति 'बैताल पचीसी' है।

दिग्विजय भूषण मे इनके शृगार विषयक सात छन्द उदाहृत हैं।

१३२ मनीराम

इस नाम के पाँच कवि हुए हैं, किन्तु उनमे नखशिख (जिस विषय का छन्द 'दिग्विजय भूषण' में उदाहृत है) पर काव्य रचना करने वाले दो ही मनीराम मिलते हैं। एक उनियारा के राजा गहासिंह तोमर के आश्रित थे। इन्होंने बलभद्र कवि के 'नखशिख' की गद्यबद्ध टीका की थी। दूसरे मनीराम द्विज ने 'नखशिख' नामक एक स्वतन्त्र काव्य ग्रन्थ लिखा था। मेरा अनुमान है कि दिग्विजय भूषण में इन्हीं दूसरे मनीराम का छन्द सग्रहीत है।

१३३. मन्य

इनकी जीवनी तथा कृतियों के विषय मे कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। दिग्विजय भूषण मे इनके दो छन्द सकलित हैं सरोज में उन्हीं में से एक सकलित कर लिया गया है।

१३४ मबारख

इनका असली नाम मुबारक अली था किन्तु कवि जगत् में इनकी प्रसिद्धि 'मबारख' उपनाम से ही हुई। कहीं कहीं इन्होंने 'मुबारक' छाप भी दी है। ये बिलग्राम (जिला हरदोई) के निवासी थे। इनके विरचित दो ग्रन्थ मिले हैं—'अलक शतक' और 'तिलक शतक'। हिन्दी के अतिरिक्त अरबी, फारसी और सस्कृत में भी इनकी अच्छी गति थी। शिवसिंह जी ने इनका उदयकाल स० १६४० के आस पास माना है।

'दिग्विजय भूषण' में इनके नौ छ द उदाहृत हैं। उनम से एक नीचे दिया जाता है। आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने इसे विदेशी साहित्य से प्रभावित कवियों की अत्युक्तिपूर्ण ऊहात्मक पद्धति के उदाहरण मे प्रस्तुत किया है—

कान्ह के बाँकी चितौनि चुभी झुकि काल्हि की ग्वालिनि झाँकि गवाछन।
देखि अनोखा सी चोखी सी कोर अनोखी परी जित ही तित ताछन॥
मारैई जात निहारे 'ममारख' ये सहजै कजरारे मृगाछन।
काजर देरा न एरी सोहागिनि आँगुरी तेरा कटैगा कटाछन॥

१३५ मल्ल

ये असाथर (जिला फतेहपुर) के राजा भगवन्तराय खीची के दरबारी कवि थे। शिवसिंह जी ने इन्हें स० १८०३ में उपस्थित बताया है। दिग्विजय भूषण मे इनका एक शृङ्गारी सवैया उदाहृत है और सरोज म दो कवित्त–जिनमें से एक में आश्रयदाता का शौर्य वर्णित है दूसरे में उसकी वीरगतिप्राप्ति से कवि समाज में व्याप्त घोर निराशा का चित्र अकित है। अतिम घटना पर मल्ल कवि के ये उद्‌गार कितने मर्मस्पर्शी हैं—

आज महादीनन को सूखिगो दया को सिंधु,
आजु ही गरीबन को सब गथ लूटिगो।
आज द्विजराजन को सकल अकाज भयो,
आज महराजन को धीरज सो छूटि गो॥
'मल्ल' कहै आज सब मगन अनाथ भये,
आज ही अनाथन को करम सो फूटिगो।
भूप भगवन्त सुरलोक को पयान कियो,
आज कवितान को कलम तरु टूटिगो॥

महाराज भगव तराय खीची लखनऊ के प्रथम नवाब वज़ीर सआदत खाँ बुर्हानउलमुल्क से युद्ध करते हुए स० १७९३ में मारे गये थे।

मल्लकवि की कोई सम्पूर्ण कृति नहीं मिली है। कुछ फुटकर छद ही उपलब्ध हुए हैं।

१३६ महाकवि

दिग्विजयभूषण की कवि सूची में 'महाकवि' का उल्लेख हुआ है और सग्रहीत छ द में 'महाकवि' छाप भी पाई जाती है। इससे कम से कम 'महाकवि' उपनाम मानने में कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। श्री कृष्णबिहारी मिश्र

का कहना है कि 'हजारा' के रचयिता कालिदास त्रिवेदी ही 'महाकवि' छाप से कविता करते थे। किन्तु शिवसिंह जी ने महाकवि को, कालिदास त्रिवेदी (बनपुरा निवासी) से, भिन्न व्यक्ति माना है और उन्हें सं० १७८० में वर्तमान बताया है। कालिदास त्रिवेदी का हजारा इसके ३० वर्ष पूर्व ही समाप्त हो चुका था। अन्य किसी सूत्र से इस विषय पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

१३७. महाराज

गोकुल कवि ने इनके दो कवित्त संकलित किये हैं। शिवसिंह जी ने इनकी रचनायें सुन्दरी तिलक में संग्रहीत बताई हैं। सरदार कवि ने श्रृङ्गार संग्रह में भी इनका नाम आया है। अत यह निश्चित है कि इनका आविर्भाव सं० १९०५ के पूर्व हुआ। इस नाम के एक कवि का 'निघण्टु मदनोदय' नामक वैद्यक ग्रंथ खोज में मिला है। इसके अतिरिक्त इनके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं।

१३८ माखन

इस नाम के पाँच कवि हुए हैं—

१—माखन पाठक—इनकी लिखी 'बसन्त मंजरी' नामक रचना मिली है।

२—माखन चाणक—ये रतन पुर (जिला बिलासपुर—मध्यप्रदेश) के राजा राज सिंह (शासन काल सं० १७५६–१७७६) के दरबारी कवि थे। इनके पिता का नाम गोपाल था। इन्होंने श्रीनाथ पिंगल और श्रृङ्गार, कीर्ति, विनोद, पुण्य तथा कर्म आदि शतकों की रचना की थी।

३—माखन—रामभक्त थे। इनकी भक्ति विषयक फुटकर रचनायें मिलती हैं।

४—माखन लाल चौबे—ये 'गणेश कथा' तथा 'सत्यनारायण कथा' के रचयिता हैं।

५—माखन लखेरा—ये पन्ना निवासी थे। शिवसिंह जी ने इनका उदयकाल सं० १९११ बताया है। इनकी एक मात्र कृति 'दान चालीसा' का पता चला है।

दिग्विजय भूषण में माखन के दो छन्द उदाहृत हैं। उनमें से एक सरोज में भी संग्रहीत है। शिव सिंह जी ने इन माखन का उपस्थिति काल सं० १८७० माना है। उपर्युक्त माखन नामधारी पाँच कवियों में सम्भवत प्रथम (माखन पाठक) ही की रचनायें सरोज और भूषण में संकलित हैं।

१३९. मान

हिंदी साहित्य के ऐतिहासिक स्रोतों से मान नामके चार कवियों का पता चलता है। इनमेंसे दो शृंगारी कवि थे और दो भक्त। प्रथम भक्त कवि मानदास राजस्थान के निवासी थे। इनके इष्टदेव राम थे। दूसरे ब्रजवासी मान, कृष्ण भक्त थे। मान नामाराशी तीन शृङ्गारी कवियों में एक चरखारी के मान बुंदेल खण्डी के नाम से प्रसिद्ध है। इनका पूरा नाम खुमान था। ये सं० १८२० के लगभग वर्तमान थे। दूसरे मान की जन्मभूमि बैसवारा (उन्नाव रायबरेली) थी। ये प्रथम (शृङ्गारी) मान के प्रायः समकालीन थे। कपिला निवासी सुखदेव मिश्र इनके काव्य गुरु थे। ये हरिहरपुर (जिला बहरायच) के राजा रूप सिंह के आश्रित कवि थे। इनकी 'कृष्ण कल्लोल' नामक एक रचना मिली है। तीसरे मान कवीश्वर राजस्थान के चारण थे। ये सं० १६६० में वर्तमान थे। इनके आश्रय दाता मेवाडनरेश राजसिंह थे।

दिग्विजय भूषण में मान के वसन्त वर्णन सम्बन्धी दो छन्द उदाहृत हैं। मेरा अनुमान है कि वे 'कृष्णकल्लोल' के रचयिता द्वितीय शृङ्गारी मान कवि के हैं।

१४०. मीरन

इनके जन्म, जाति, माता पिता आदि का वृत्त अन्धकार में है। दिग्विजय भूषण में इनके दो छन्द उदाहृत हैं। शिवसिंह जी ने सरोज में उनमें से एक उद्धृत किया है किंतु कवि परिचय के सम्बन्ध में वे मौन रहे हैं। ग्रियर्सन ने सरदार कवि के शृङ्गार सग्रह में इनके छन्द सकलित बताये हैं और 'नखशिख' नामक एक रचना का उल्लेख किया है। सयोग वश दिग्विजय भूषण में दिये गये इनके दो छन्दों में से एक 'नख शिख' पर ही है। ऐसी स्थिति में ग्रियर्सन और गोकुल कवि के मीरन की एकता असंदिग्ध ठहरती है। इससे इनका आविर्भावकाल भी सं० १६०५ के पूर्व निश्चित किया जा सकता है। नाम से ये मुसलमान कवि प्रतीत होते हैं।

१४१. मुकुन्द

गोकुल कवि ने मुकुन्द नामक कवि की जो रचनायें उदाहृत की हैं वे वीर तथा शृङ्गार रस की हैं। वीर रस का केवल एक कवित्त है जिसमें 'मुकुन्द सिंह' नाम आया है। शिवसिंह ने यही छन्द सरोज में सग्रहीत किया है और इसके रचयिता मुकुन्द सिंह को कोटा का राजा बताया है। ये शाहजहाँ के सहायक

और कवियो के कल्पतरु माने जाते थे। ग्रियर्सन ने शिवसिंह जी का समर्थन करते हुए इन्हें हाडा क्षत्रिय बताया है और अपने मत की पुष्टि टाड के राजस्थान में उल्लिखित तथ्यों से की है। दिग्विजयभूषण में इनका निम्नांकित छंद दिया गया है—

चले चन्द्रबान घनबान औ कुहुक बान,
　　चलत कमान धूम आसमान ह्वै रह्यो।
चली जमडाढ़ैं तरवारैं चली चले सेलु,
　　लोह आँचे जेठ के तरनि मानौ त्यै रह्यो॥
ऐसे मे मुकुन्दसिंह हाथिन चलाइ दल,
　　रिपु क चलाइ पाइ बीर रस ब्वै रह्यो।
हय चले हाथी चले सग छोड़ि साथी चले
　　एते चला चली मैं अचल हाड़ा ह्वै रह्यो॥

यह कवित्त थोड़े पाठ भेद के साथ भूषण के 'छत्रसाल दशक' मे भी आया है। वहाँ पाँचवीं पंक्ति मे 'मुकुन्द' के स्थान पर 'छत्रसाल' पाठ दिया गया है। ये छत्रसाल बूँदी के राजा शत्रुसाल (सिंहासनारोहण काल सं० १६८८) थे। छत्रसाल बुन्देला से इनके पृथक् व्यक्तित्व की पुष्टि भूषण के नीचे लिखे दोहों से होती है—

इक हाड़ा बूँदी धनी, मरद महेवा वाल।
सालत नौरंगजेब को, ये दूनौ छतसाल॥
वै देखो छत्ता पता, यै देखो छतसाल।
वे दिल्ली के ढाल यै, दिल्ली ढाहन वाल॥

शत्रुसाल (बूँदी नरेश) शाहजहाँ के प्रधान सहायकों मे थे। उत्तराधिकार युद्ध में औरंगजेब की सेना अधिक शक्तिशाली देख कर भी इन्होंने अपने स्नेही शाहजहाँ के आदेशानुसार दारा का साथ दिया था। सं० १७१५ में धरमत के (फतेहाबाद) युद्ध में, दारा शिकोह के मैदान से भाग खड़े होने पर भी, अपने इने गिने सैनिकों के साथ ये अविचल रूप से डटे रहे और वहीं वीरगति को प्राप्त हुए। इस अवसर पर इनके साथ कोटा के राव मुकुन्द सिंह हाडा भी उपस्थित थे।[1]

मेरा अनुमान है कि दिग्विजय भूषण में उदाहृत उपर्युक्त कवित्त में मुकुन्दसिंह

---

१ पूर्व आधुनिक राजस्थान (डा० रघुवीर सिंह)—पृ० ११४।

की वीरता का वर्णन उनके किसी आश्रित कवि ने किया है। शिव सिंह जी का उन्हें 'कवि कोविदों का चाहक'[1] मानना इसकी पुष्टि करता है। यह भी असभव नही कि मुकुद सिंह ने स्वय प्रत्यक्षदर्शी के रूप में महाराज शत्रुसाल (हाडा) का शौर्य वर्णन उक्त छद में किया हो। किंतु प्रथम अनुमान ही मेरे विचार में अधिक युक्तिसगत प्रतीत होता है।

दिग्विजय भूषण में आये हुए मुकुन्द कवि के अन्य छदों का विषय शृगार और अलकार निरूपण है। ये सरोज के प्राचीन मुकुद जान पडते हैं, जो शिवसिंहजी की सम्मति में स० १७०५ में विद्यमान थे।[2] इनके कवित्त कालिदास के हजारे में भी सगृहीत है। अबतक इनकी किसी स्वतत्र रचना का पता नहीं चला है। 'ख्याल टिप्पा' नामक प्राचीन काव्य सग्रह मे इनके कुछ छद मिलते हैं।

इधर मुकुद कवि का 'नल चरित्र' नामक प्रेमाख्यान प्रकाश में आया है। कुछ विद्वान् इसे कोटा के राजा मुकुद सिंह की रचना मानते है।[3]

१४२ मुकुन्दलाल

ये काशी निवासी रघुनाथ कवि के काव्यगुरु थे। सरोजकार ने इन्हें रघुनाथ कवीश्वर का गुरुभाई बताया है, जो ठीक नहीं है। रघुनाथ कवि काशिराज बरिवण्ड (बलवत) सिंह (शासनकाल स० १७९७-१८२७) के दरबारी कवि थे। इनके गुरु मुकुन्दलाल का कविताकाल स० १८०० के आसपास रहा होगा। शिवसिंह का इन्हें स० १८०३ मे वर्तमान मानना असगत नहीं जान पडता। इनकी कोई सम्पूर्ण रचना प्रकाश में नहीं आई है। दिग्विजय भूषण में इनका एक नायिका भेद विषयक छद उदाहृत है।

१४३. मुरली

इनका पूरा नाम मुरलीधर मिश्र था। ये आगरा के रहनेवाले भरद्वाज गोत्रीय माथुर ब्राह्मण थे। इनके पूर्वजों का मूल स्थान गगा यमुना के दोआबे मे स्थित गॅभीरो नामक गॉव था। इनके पूर्व पुरुष पडित परमानद मिश्र वहीं रहते थे। उनका अकबर के दरबार में बडा मान था। सम्राट् ने उन्हें 'शताव धानी' की उपाधि दी थी और स्थायी वृत्ति की व्यवस्था कर उन्हें आगरे में

---

१ शिवसिंह सरोज—पृ० ४१८।

२ वही, पृ० ४६८।

३ हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, खड २—पृ० २६-२७।

बसा लिया था। परमानंद के पौत्र पुरुषोत्तम कवि शाहजहाँ के आश्रित थे। इनके वंशज 'दिनमणि' मुहम्मद शाह रँगीले के दरबारी कवि थे। मुरलीधर इन्हीं के पुत्र थे। नादिरशाह के आक्रमण के अवसर पर ये दिल्ली में उपस्थित थे। उस समय का भीषण रक्तपात देखकर इनका मन शृंगारी काव्य से उचट कर रामभक्ति में लीन हो गया। इनकी अंतिम कृति रामचरित्र इसी के अनंतर लिखी गई थी। इसके अतिरिक्त इनके पाँच अन्य ग्रंथ है—शृंगार सार, नखशिख, नलोपाख्यान, पिंगल पीयूष (सं० १८११) और रस समुद्र (सं० १८१६)।

दिग्विजय भूषण में 'नखशिख' से इनका एक छंद उदाहृत है। सरोजकार ने उसे ही संग्रहीत कर लिया है।

१४४ मुरारि

इनके व्यक्तिगत जीवन के सम्बंध में कोई वृत्त ज्ञात नहीं। दिग्विजय भूषण में इनका एक षड्ऋतु वर्णन विषयक छंद उदाहृत है। इससे ये रीतिकालीन कवि जान पड़ते हैं।

१४५ मोतीराम

इस नाम के तीन कवियों का पता खोज विवरणों से चलता है। एक मोतीराम धीरज सिंह नामक किसी राजा के आश्रित कवि थे। इनका 'धीररस सागर' ग्रंथ मिला है। ये सं० १८२७ में वर्तमान थे। दूसरे मोतीराम भरतपुर के राजा बलवंत सिंह के दरबारी कवि थे। इन्हें सं० १८८५ में उपस्थित बताया जाता है। इनकी तीन रचनाओं का पता चला है—कवित्त संकलन, ब्रजेंद्र विनोद और रागाष्टक। इनके अतिरिक्त मोतीराम नाम के एक तीसरे कवि के विषय में शिवसिंहजी ने केवल इतना लिखा है कि वे सं० १७४० में उपस्थित थे। उन्होंने कालिदास के हजारे में भी इनके छंद संकलित बताये हैं। दिग्विजय भूषण में मोतीराम का एक विप्रलंभ शृङ्गार विषयक छंद उदाहृत है, जो सरोज वाले मोतीराम की भाषाशैली से बहुत साम्य रखता है। मेरे विचार में ये दोनों छन्द एक ही कवि के हैं। सरोज के साक्ष्यपर ये सं० १७५० के पूर्ववर्ती माने जा सकते हैं।

१४६ मोतीलाल

इनका वृत्त अज्ञात है। दिग्विजय भूषण में उदाहृत इनका एक छंद सरोज में भी संकलित है। शिवसिंह इनकी जीवनी तथा कृतियों के विषय में मौन

रहे हैं। प्राप्त रचना के आधार पर इन्हें शृंगारी कवि मान लेने में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। ये बाँसी (जिला बस्ती) निवासी मोतीलाल कवि से, जिनका मृत्युकाल प० महेशदत्त शुक्ल ने स० १५६८ माना है और जिन्हें सरोजकार ने स० १५६७ में उपस्थित बताया है, भिन्न अस्तित्व रखते हैं। इन दूसरे मोतीलाल की एकमात्र रचना 'गणेश पुराण भाषा' भक्तिपरक है, किंतु दिग्विजय भूषण के मोतीलाल शुद्ध शृङ्गारी परंपरा के कवि प्रतीत होते हैं। शिवसिंहजी ने इन दोनों कवियों की भिन्नता स्वीकार की है।

१४७ रघुनाथ

इस नाम के तीन कवि हुए हैं—

१ रघुनाथ प्राचीन—ये जहाँगीर के समकालीन और गंग कवि के शिष्य थे। सरोजकार ने इन्हें स० १७१० में उपस्थित बताया है। इनकी एकमात्र रचना 'रघुनाथ विलास' मिली है जो 'भानुदत्त' की 'रसमंजरी' का भाषानुवाद है। खोज विवरणों में इन्हें स० १६६७ में वर्तमान कहा गया है।

२ रघुनाथ—इनकी जन्मभूमि रसूलाबाद थी। मिश्र बंधुओं के अनुसार ये स० १८४० में विद्यमान थे। इनकी केवल एक रचना 'भाषा महिम्न' उपलब्ध है।

३ रघुनाथ बंदीजन—ये काशी के समीपस्थ चौरा नामक गाँव के निवासी और काशिराज बरिवंड सिंह (शासन काल स० १७६७—१८२७) के आश्रित कवि थे। ये काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् और सिद्धहस्त कवि थे। इनके पुत्र गोकुलनाथ और पौत्र गोपीनाथ थे। ये दोनों महानुभाव अपने समय के प्रसिद्ध कवि हुए हैं। रघुनाथ के बनाये चार ग्रन्थ हैं—रसिक मोहन (स० १७९६), जगमोहन, काव्य कलाधर (स०१८०२) और इश्क महोत्सव।

मेरी समझ में दिग्विजय भूषण में तीसरे रघुनाथ (बंदीजन) के छंद उदाहृत हैं। रघुनाथ नामाराशी कवियों में सर्वाधिक प्रचार इन्हीं की रचनाओं का हुआ है।

१४८. रघुराय

रघुराय नाम के दो कवियों का पता चला है—प्रथम रघुराय नागर ब्राह्मण थे और अहमदाबाद के निवासी थे। इनका उपस्थिति काल स० १७५७

के लगभग माना जाता है। इनके विरचित दो ग्रंथ मिले हैं—माधव विलास शतक और सभासार नाटक। दूसरे रघुराय कायस्थ जाति के थे। इनका निवास स्थान ओरछा था। वहाँ के राजा जसवंत सिंह (शासन काल सं० १७३२–१७४१) इनके मुख्य आश्रयदाता था। इनके द्वारा विरचित ग्रन्थों की संख्या तीन है—यमुना शतक, कृष्णमोदिका और सत्यभामा राधा संवाद।

दिग्विजय भूषण में रघुराय कवि का एक शृङ्गारी छन्द उदाहृत है। सरोजकार ने उसे ही संकलित कर लिया है और उसके रचयिता को सं० १८३० में विद्यमान बताया है। इनके अतिरिक्त ओरछा के रघुराय का भी उल्लेख शिवसिंह जी ने किया है और उनके 'यमुना शतक' से एक छन्द भी उद्धृत किया है, किन्तु उन्हें भूषण वाले रघुराय से पृथक् कवि माना है। ग्रियर्सन महोदय ने सरोज में निर्दिष्ट दोनों रघुराय नामक कवियों को अभिन्न बताया है। अपेक्षित तथ्यों के अभाव में यह निर्णय करना कठिन है कि उपर्युक्त दोनों मतों में कौन अधिक विश्वसनीय है।

१४९. रतन

ये श्रीनगर (गढ़वाल) के राजा मेदिनी शाह के पुत्र फतेशाह (शासन काल सं० १७४१–१७७३) के दरबारी कवि थे। शिवसिंह जी ने फतेशाह को बुन्देलखंड का शासक कहा है, जो अशुद्ध है। रतन कवि के निम्नांकित शब्द स्थिति स्पष्ट कर देते हैं—

गढ़वाल नाह फतेसाह रस गाह तोहि,
जग माहि ऐसे जो ज्ञान गुनियतु है।

रतन कवि कहाँ के रहनेवाले थे—यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। शिवसिंह जी ने इन्हें बुंदेलखण्ड का निवासी बताया है। संभव है उनकी यह धारणा उनके आश्रयदाता 'फतेशाह' को बुन्देलखंड का शासक मानने पर आधारित रही हो। रीतिकाल में कवि लोग जीविका के लिये गुणग्राही आश्रयदाताओं की खोज में दूर दूर तक जाया करते थे। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक नहीं कि रतन की जन्मभूमि भी श्रीनगर अथवा गढ़वाल ही रही हो, जो उनके आश्रयदाता फतेसिंह के राज्य के अन्तर्गत था। रतन की दो रचनायें मिली हैं—फतेशाह भूषण और फतेप्रकाश। दिग्विजय भूषण में इनके नखशिख वर्णन विषयक तीन छंद 'फतेशाह भूषण' से उदाहृत हैं।

१५०. रसखानि

इनका वास्तविक नाम क्या था ? यह अब तक अनिश्चित है। सरोजकार के अनुसार 'सैयद इब्राहीम' ही रसखानि के नाम से प्रसिद्ध हुए। किंतु इनकी जीवनी विषयक जो प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध है उससे इनका सैयद होना ही सिद्ध नहीं होता, 'इब्राहीम' की पुष्टि तो दूर रही। जो कुछ हो ख्याति 'रसखानि' नाम की ही हुई, जो संभवतः कवि का उपनाम था।

ये दिल्ली के निवासी पठान थे। कुछ लोग इन्हें शेरशाह का वंशज बताते हैं। शेरशाह के देहावसान के अनन्तर उसके निर्बल उत्तराधिकारियों को पराजित कर हुमायूँ ने सं० १६१२ में दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार कर लिया। आये दिन होनेवाले संघर्षों से 'बादशाहवंशी' रसखान का मन ऊब गया और वे दिल्ली छोड़कर ब्रज चले गये। वहाँ श्रीनाथ जी की शरण में त्यागमय जीवन व्यतीत करने लगे। 'प्रेमवाटिका' की निम्नांकित पंक्तियों में इसका संकेत मिलता है—

देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा बंस की, ठसक छोड़ि रसखान॥
प्रेम निकेतन श्री बनहिं, आइ गोवर्धन धाम।
लह्यौ सरन चित चाहिकै, जुगल सरूप ललाम॥

कुछ समय बाद गोस्वामी विट्ठलनाथ ने दीक्षा देकर इन्हें पुष्टिमार्गी सेवा का उपदेश दिया।

रसखानि का आरम्भिक जीवन बड़ा ही आसक्ति पूर्ण था। वे किस प्रकार इश्क मजाज़ी से इश्क हकीकी की ओर उन्मुख हुये थे, इसके सम्बन्ध में दो जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं।

एक के अनुसार किशोरावस्था में वे किसी बनिये के खूबसूरत लड़के पर आशिक हो गये थे। उनकी आसक्ति इतनी गहरी थी कि उस लड़के को आठों पहर साथ रखते थे और उसकी जूठन खाते थे। एक दिन कुछ वैष्णवोंको उन्होंने यह कहते सुना कि ईश्वर से ऐसा प्रेम करना चाहिये जैसा कि रसखान का उस बनिये के लड़के पर है। यह सुनकर रसखान उनके पास गये और उनके उपास्य के रूपदर्शन की अभिलाषा व्यक्त की। भक्तों के पास श्रीनाथ जी का एक चित्र था, उसे दिखा दिया। उस दिव्यविग्रह का दर्शन करते ही रसखानि का मन बनिये के लड़के से हट गया और वे तत्काल ही मूलविग्रह

के दर्शन के लिये गोवर्धन की ओर चल पड़े। गोस्वामी राधाचरण इस घटना की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं—

दिल्ली नगर निवास बादसा बंस विभाकर।
चित्र देखि मन हरो भरो मनप्रेम सुधाकर॥
श्री गोबर्द्धन आय जबै दरसन नहि पाये।
टेढ़े मेढ़े बचन रचन निर्भय ह्वै गाये॥
तब आप आय सुभ नाम करि, सुश्रूषा महिमान की।
कवि कौन मिताई कहि सकै, श्रीनाथसरय रसखानि की॥

दूसरी किंवदन्ती में वे एक ऐसी सुन्दरी युवती पर आशिक बताये गये हैं जो अत्यन्त रूपगर्विता थी और इनकी सदैव उपेक्षा किया करती थी। एक दिन श्रीमद्भागवत का फारसी अनुवाद पढ़ते हुए इनकी दृष्टि कृष्ण वियोग में व्याकुल गोपियों के विरहवर्णन प्रसंग पर पड़ी। उनके मन में संकल्प उठा कि जिस अलौकिक रूपलावण्य पर लाखों व्रजांगनायें मुग्ध थीं उसी से क्यों न प्रेम किया जाय। इस विचार से रसखानि वृन्दाबन गये और स्वामी विट्ठलनाथ से दीक्षा लेकर श्रीनाथ जी की सेवा में रहने लगे। 'प्रेम वाटिका' के निम्नांकित दोहे में इसी घटना की ओर इंगित किया गया प्रतीत होता है—

तोरि मानिनी ते हियो, फोरि मोहिनी मान।
प्रेम देव का छबिहि लखि, भये मियाँ रसखान॥

रसखानि का भक्त जीवन आराध्य की सेवा और लीला वर्णन में व्यतीत हुआ। कुछ इने गिने कृष्ण भक्तों को छोड़कर जितनी तन्मयता, अनन्यता एवं भाव विभोरता रसखानि की रचनाओं में मिलती है उतनी इस शाखा के किसी अन्य भक्त कवि की रचना में नहीं। इनकी दो कृतियाँ मिली हैं—प्रेम वाटिका (सं १६७१) और सुजान रसखान।

दिग्विजय भूषण में इनके तीन छंद उदाहृत हैं।

१५१ रसलीन

ये बिलग्राम (जिला हरदोई) के निवासी मीर बाकर के पुत्र थे। इनका असली नाम गुलाम नबी था, 'रसलीन' उपनाम था। मीर अब्दुल जलील के अनुसार इनका जन्म मुहर्रम २, ११११ हि० (२० जून, १६९९ ई०) में हुआ था। इन्होंने बिलग्राम के ही रहने वाले मीर तुफैल अहमद से काव्यशास्त्र का अध्ययन किया था। उनके पांडित्य के सम्बन्ध में रसलीन का कहना है—

देस विदेसन के सब पण्डित सेवत ह पद सिष्य कहाई ।
आयो हे ज्ञान सिखावन को सुर को गुरु मानुस रूप बनाई ॥
बालक वृद्ध सुबुद्धि जहाँ लगि बोलत है यह बात बनाई ।
को मत मेल कहै सुभ फेल तुफेल तुफेल मोहम्मद पाई ॥

इनके सपर्क मे रहकर रसलीन हिन्दी, अरबी और फारसी के पारगत विद्वान् हो गये ।

ये दिल्ली सम्राट् के प्रधानमत्री नवाबवजीर सफदरजग के अभिन्न मित्र थे । उनके साथ इनका अधिकाश जीवन दिल्ली मे ही बीता । इन्हीं दिनों दिल्ली के बादशाह और फर्रुखाबाद के नवाब कायम खाँ मे युद्ध छिड गया । १७४६ ई० मे कायम खाँ रुहेलों द्वारा युद्ध में मारे गये । पिता की मृत्यु पर अहमद खाँ ने एक विशाल सेना एकत्र कर शाही सेना का मुकाबला किया । रामचेतौनी (जिला एटा) में दोनों फौजों के बीच घमासान युद्ध हुआ । शाही फौज के अध्यक्ष सफदरजग के साथ रसलीन भी इसमे सम्मिलित हुये थे । इसी युद्ध में १३ सितम्बर १७५० को ये वीरगति को प्राप्त हुये ।

इनके लिखे दो ग्रन्थ मिले हैं—अगदर्पण (स० १७९४) और रसप्रबोध (स० १७९८) । प्रथम मे नखशिख और द्वितीय मे रस का वर्णन किया गया है । इनके अतिरिक्त रसलीन के कुछ फुटकर कवित्त सवैये भी प्राप्त हुये हे । वाग्वैचित्र्य और भावव्यजना म इनके कतिपय छद बिहारी के दोहा से टक्कर लेते हे ।

दिग्विजय भूषणकार ने 'अगदर्पण' से नखशिख वर्णन सम्बन्धी अनेक दोहे उदाहृत किये हैं ।

१५२ रहिमन खानखाना

अब्दुर्रहीम खानखाना सम्राट् अकबर के सरक्षक बैरम खाँ के पुत्र थे । इनका जन्म स० १६१० में हुआ । एक कुशल सेनापति तथा शासक होने के साथ ही ये सिद्ध हस्त कवि भी थे । कवियो के उदार आश्रयदाता के रूप में इनकी सर्वाधिक ख्याति हुई । इनके आश्रित कवियों म आसकरनचारण, मडन, प्रसिद्ध, सत, हरिनाथ, नरहरि, तारा, मुकुन्द, और गग प्रमुख थे । कहते है एक छप्पय पर इन्होने गग कविको छत्तीस लाख रुपया पुरस्कार में दिया था। गोस्वामी तुलसीदास से इनकी भेंट हुई थी अथवा नहीं, इसके प्रमाण अवशिष्ट नहीं रहे, किन्तु एक किंवदन्ती के अनुसार इनकी दानवीरता की प्रसिद्धि से आकृष्ट होकर तुलसी ने एक दीन ब्राह्मण को इनके पास सहायता के लिए दोहे

की पहली कडी लिख कर भेजा था। रहीम ने ब्राह्मण को पूर्णतया सतुष्ट कर उसी के हाथों दोहे की दूसरी कडी पूरी करके लिख भेजा था। पूरा दोहा इस प्रकार है—

सुरपुर नरपुर नाग पुर, यह चाहत सब कोय।
गोद लिये हुलसी फिरैं, तुळसी सो सुत होय॥

जीवन के अतिम दिनो में रहीम को आर्थिक कष्ट से सतप्त होना पडा। जहाँगीर ने कुछ राजनीतिक कारणों से कुपित होकर उनकी जागीर छीन ली। दानशीलता मे सारा धन पहले ही निकल चुका था। इस विपन्न दशा में भी याचकों ने उनका पीछा न छोडा। उन्हें विवश हो कर कहना पडा—

ये रहीम दर दर फिरैं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोडि दो, वै रहीम अब नाहिं॥

कहा जाता है इसी स्थिति में वे घूमते घामते चित्रकूट पहुँचे। वहाँ रीवाँ नरेश रामचन्द्र के पूछने पर उन्होंने अपने भाव इन शब्दो में व्यक्त किये—

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेस।
जा पर बिपदा परति है, सो आवत यहि देस॥

रहीम का पारिवारिक जीवन अत्यत आपत्ति पूर्ण था। पिता की हत्या इनकी बाल्यावस्था में ही हो चुकी थी। छ सन्तानों—तीन पुत्रों और तीन पुत्रियो की असामयिक मृत्यु इनके सामने ही हुई। सं० १६५५ में पत्नी वियोग भी सहना पडा। इन विपत्तियो का सामना इन्होंने बडे धैर्य और दृढता से किया। इनकी रचनाओं में अभिव्यक्त जीवन सम्बन्धी गम्भीर अनुभव इन्हीं परिस्थितियों में परिपक्व हुए थे। सुख दुख मे समान मन स्थिति रहीम के उदार एव लोकोपकारी जीवन की विशेषता थी। इस प्रकार भाग्य के उत्थान पतन में अपनी कवि प्रकृति की एकरसता की रक्षा करते हुए खानखाना ने स० १६८३ में अपनी जीवन यात्रा समाप्त की।

रहीम की निम्नाकित रचनाये खोज में मिली हैं—रहीम सतसई, बरवै नायिका भेद, रास पचाध्यायी, मदनाष्टक, शृङ्गारसोरठा, नगर शोभा, रहीम काव्य और खेट कौतुकम्। इनके कुछ फुटकर कवित्त, सवैया, तथा बरवै, भी प्राप्त हुए हैं—

दिग्विजय भूषण मे अलकारों के उदाहरण स्वरूप इनके कई दोहे उदाहृत हैं।

१५३. राम कवि

इस नाम के चार कवि हुए हैं—प्रथम राम नी कवि, सरोज के अनुसार, स० १६६२ मे वर्तमान थे। ये ओरछा के रहने वाले थे और वहाँ के राजा सुजानसिंह के दरबारी कवि थे। इनका रचनाकाल स० १७२० के आस पास माना जाता है। ये बिहारी सतसई के अनुक्रमकर्ता के रूप में प्रसिद्ध है। दूसरे हैं राम भट्ट। ये फर्रुखाबाद के निवासी नदीजन थे। इनके बरवैनायिका भेद और शृगार सौरभ नामक दो ग्रन्थों का पता चला है। तीसरे राम कवि, सिरमौर के राजा के आश्रित रामबख्श हैं। इन्होंने बीररस सागर अथवा रस सागर नामक ग्रन्थ की रचना की थी। चौथे हैं विप्र रामबख्श। इनकी तीन कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं।

दिग्विजय भूषण म राम कवि के नायिकाभेद तथा षड्ऋतु वर्णन विषयक तीन छद उदाहृत है। कुछ कहा नहीं जा सकता कि वे उपर्युक्त 'राम' छाप से कविता करने वाले चारों कवियों मे, किसके द्वारा विरचित हैं। यह भी असभव नहीं कि 'भूषण' के रामकवि इन चारों से भिन्न कोई दूसरे ही रहे हों।

१५४. रामकृष्ण

इनके जीवन तथा कृतियों के सम्बध में कहीं से कोई प्रकाश नहीं पडता। सरोजकार ने दिग्विजय भूषण से ही लेकर एक कवित्त उद्धृत किया है, जिसमें महाराज दशरथ की हाथियों की शोभा का वर्णन है।

१५५. रामदास

शिवसिंह सरोज तथा खोज विवरणो मे इस नाम के कई कवियों का उल्लेख मिलता है। एक रामदास मालवा निवासी थे। इनकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं—ऊषा अनिरुद्ध कथा, प्रहलाद लीला और भागवतदशमस्कन्ध भाषा। दूसरे रामदास बरसानियाँ, नदिग्राम बरसाने (ब्रजप्रदेश) के रहने वाले थे और स० १८२७ के पूर्व विद्यमान थे। ये गोवर्द्धनलीला और राधा विलास के रचयिता कहे जाते हैं। तीसरे रामदास वल्लभसम्प्रदाय के अनुयायी थे। इन्होंने 'रुक्मिणी ब्याह' की रचना की थी। चौथे रामदास किन्हीं सूरदास के पिता थे। कृष्णभक्ति सम्बधी कतिपय फुटकर पदों के रचयिता के रूप में ये विख्यात है। ये सभी कृष्णभक्त थे।

इनके अतिरिक्त सरोजकार ने इसी नाम के एक रीति कालीन कवि की चर्चा

की है और उ हें स० १८३६ मे वर्तमान बताया है। इससे अधिक इनका कोई वृत्ता त ज्ञात हीं।

दिग्विजय भूषण में उदाहृत छ द शृङ्गारी है। उसके रचयिता अतिम रामदास जान पड़ते है। इनका जो छ द सरोज में उद्धृत है, उसकी भाषा शैली भूषणकार द्वारा उदाहृत छ द से मिलती है।

१८६ रामसखी

दिग्विजय भूषण में रामसखी का केवल एक कवित्त सकलित है। उसमें जनकपुर की विवाह लीला का एक दृश्य अंकित है। उक्त छ द की वर्णन शैली तथा कविनाम की साम्प्रदायिक छाप से रामसखी रामभक्त प्रतीत होते है। मेरा अनुमान है कि यह छद रामसखे का है, जिन्हें दिग्विजय भूषण मे प्रमादवश रामसखी लिख दिया गया है। अब तक साम्प्रदायिक ग्रन्थों अथवा हिन्दी साहित्य के विभिन्न ऐतिहासिक स्रोतों में, 'रामसखी' नामक कोइ कवि मेरे देखने म नहीं आया है। ऐसी स्थिति में जब तक रामसखी का स्वतन्त्र अस्तित्व प्रमाणित नहीं हो जाता और उनकी रचनाओं में प्रस्तुत छ द की स्थिति सिद्ध नहीं हो जाती, तब तक उसे रामसखे की ही रचना मानने में कोई आपत्ति न होनी चाहिए।

रामसखे का आविर्भाव १८ वीं शती के प्रथम चरण में जयपुर राज्य के अ तर्गत एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बाल्यकाल से ही ये रामभजन में तन्मय रहा करते थे। बड़े होने पर घरबार छोड़ कर ये तीर्थयात्रा के लिए निकले। देशाटन करते हुए दक्षिण में माध्वसम्प्रदाय के प्रसिद्ध के द्र उडुपी पहुँचे और वहाँ के तत्कालीन आचार्य वशिष्ठतीर्थ से इन्होंने सख्यभाव की दीक्षा ले ली। उडुपी से ये अयोध्या आये। कुछ दिनों तक वासुदेव घाट पर कुटी बनाकर रसिक भाव से साधना की। अयोध्या से चित्रकूट गए। वहाँ कामद वन में बारह वर्ष पर्यंत अनुष्ठान पूर्वक नाम जप किया। कहा जाता है कि इन्हीं दिनों प्रिय के विरह मे व्याकुल होकर इन्होंने निम्नांकित दोहा कहा था—

अरे सिकारी निरदई, करिया नृपति किसोर।
क्या तरसावत दरस को, रामसखे चितचोर॥

आराध्य ने अपनी झाँकी दिखाकर इन्हें कृतकृत्य किया—

अवधपुरी ते आइके, चित्रकूट की खोर।
रामसखे मन हरि लियो, सुन्दर जुगल किसोर॥

चित्रकूट मे पन्ना नरेश हिंदू पति इनके दर्शन के लिए आये। यहाँ से ये मैहर चले गए। वहाँ के राजा दुर्जन सिह इनके शिष्य हो गए। मैहर म ही इ होने अपनी ऐहिक लीला सवरण की।

रामसखेजी रामभक्ति मे सख्य भावना के प्रमुख आचार्य माने जाते है। अयोध्या और मैहर दोनो स्थानो पर इनकी गद्दियाँ स्थापित है। ये सखी और सखा दोनो भावो से उपास्य की आराधना के समर्थक थे। इनका सिद्धा त था—

सखी सखा द्वै भाव जु राखै। मधुरे चरित राम के भाखै॥

रामसखेजी की दस रचनायें मिली हैं—द्वैत भूषण, पदावली, रूपरसामृत-सि धु, नृत्य राघव मिलन दोहावली, नृत्यराघव मिलन कवितावली, रास्य पद्धति, दानलीला, बानी, मगल शतक और राममाला।

१५७ रामसहाय

रामसहाय चौबेपुर (जिला वाराणसी) के निवासी भवानीदास अस्थाना (कायस्थ) के पुत्र थे। 'वाणी भूषण' में अपना परिचय देते हुए ये लिखते हैं-

बानी भूषन कौ भगत, जस हित राम सहाय।

× × ×

सुवन भवानीदास को, और भवानी दास।
अष्ठाना कायस्थ है, बासी कासी खास॥

ये काशीनरेश उदितनारायण सिह (शासनकाल स० १८५३-६२) के दरबारी कवि थे। इ होंने 'बिहारी सतसई' की भाँति 'राम सतसई' अथवा 'शृङ्गार सतसई' की रचना की, जो सतसई शैली मे लिखी गई कृतियों में 'बिहारी सतसई' को छोड कर, सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है। इनका दूसरा ग्रथ 'वृत्त तरगिणी' है। 'ककहरा रामसहायदास' तथा 'वाणीभूषण' इनकी अ य दो रचनायें हैं। कविता में ये अपनी छाप 'भगत' रखते थे और अपने समय मे इसी नाम से विख्यात भी थे। आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने इनका कविताकाल स० १८६० से स० १८८० तक माना है।

दिग्विजय भूषण मे उदाहृत दोहे 'शृङ्गार सतसई' से लिए गये है।

१५८. रूप कवि

इनका केवल एक छद दिग्विजय भूषण में उदाहृत है। सरोज मे भी वही सकलित है। उक्त छद का विषय है राधिका जी का शोभावर्णन। काव्य

शैली से ये रीतिकालीन कवि प्रतीत होते हैं। इनके सम्बन्ध मे अन्य कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। ग्रियर्सन महोदय ने अकबरकालीन रूपनारायण कवि से इनकी अभिन्नता की सम्भावना व्यक्त की है किन्तु 'सरोज सर्वेक्षण' में इन दोनों कवियों का प्रथक् अस्तित्व प्रतिपादित है।

१५९. रूपनारायण

रूपनारायण मिश्र ओरछा के निवासी थे। 'बुन्देल वैभव' के अनुसार ये ओरछा के राजा मधुकर शाह और उनके पुत्र इन्द्रजीत सिंह तथा वीरसिंहदेव के आश्रित कवि थे। इस प्रकार ये केशवदास के समकालीन ठहरते हैं और एक ही दरबार मे रहने से उनके परिचित भी।

अनेक राज दरबारों की खाक छानते हुए ये ओरछा से दिल्ली पहुँचे और वहाँ बीरबल की छत्रछाया प्राप्त कर निश्चिन्त हो काव्य रचना करने लगे। इनका निम्नांकित छन्द इसी समय लिखा गया था—

पूरब पच्छिम उत्तर दक्खिन सगहि लग फिरथो दिसि चारयो।
काहू महीप के मारे मरयो न रह्यो घर बीच टरयो नहिं टारयो॥
'रूप नरायन' घायल ही चले कोटिक भूप कितो पचि हारयो,
दीन को दावनगीर दरिद्र सुनो बलबीर के बीरहि मारयो॥

बीरबल की मृत्यु स० १६४२ मे हुई, रूपनारायण इसके पूर्व ही उनसे मिले होंगे। इनके फुटकर छन्द प्राचीन काव्यसग्रहों मे पाये जाते हैं। कोई सम्पूर्ण रचना नहीं मिलती।

१६०. लाल कवि

इस नाम के चार कवियों का पता लगा है। एक हैं लाल कवि प्राचीन। इनका पूरा नाम गोरे लाल था। इनका आविर्भाव तैलग ब्राह्मणवंशमें स०१७१५ के लगभग हुआ था। ये महाराज छत्रसाल के पुरोहित थे। कविवर पद्माकर इनके दौहित्र थे। इन्होंने स० १७६४ के लगभग 'छत्रप्रकाश' की रचना की थी। दूसरे लाल कवि 'बिहारी लाल त्रिपाठी' टिकमापुर (जिला कानपुर) के निवासी और महाकवि भूषण के वंशज थे। इनका उपस्थिति काल स० १८८५ के आस पास माना जाता है। तीसरे लाल कवि 'चाणक्य राजनीति' के उलथाकार के रूप मे प्रसिद्ध हैं। इनका समय अज्ञात है। चौथे लाल कवि बनारसी, बन्दीजन थे। ये काशी के महाराज चेत सिंह (शासन काल स० १८२७–३८) तथा महाराज महीप नारायण सिंह (शासनकाल स० १८३८–१८५२) के दरबार में रहते

थे। इनके दो ग्रंथ मिले हैं—'कवित्त महाराजा महीप नारायण तथा अन्य काशीराजो के, और 'रसमूल'। इनमें दूसरा ग्रंथ नायिका भेद का है। इसकी रचना महाराज चेत सिंह के समय में, सं० १८३३ में हुई थी। शिवसिंह जी ने इसी ग्रंथ का उल्लेख 'आनंद रस' नाम से किया है और इनकी एक तीसरी रचना बिहारी सतसई की टीका 'लाल चंद्रिका' बताई है। खोज रिपोर्टों में 'लाल ख्याल' नामक ग्रंथ इन्हीं के नाम पर चढ़ा है।

इन चारों में से दिग्विजय भूषण के लाल कवि कौन हैं? यह निर्णय करना सरल नहीं है। गोकुल कवि द्वारा उदाहृत, लाल कवि के सभी छंदों का विषय नायिका भेद है। उपर्युक्त लाल नामाराशी चारों कवियों मे दो की रचनायें इस विषय पर उपलब्ध हुई हैं—प्राचीन लाल कवि, गोरे लाल का 'विष्णु विलास' और लाल कवि बनारसी का 'रसमूल'। इन दोनों कवियों के जो छंद सरोज में संकलित हैं उनमें प्रथम की शब्दयोजना दिग्विजय भूषण में उदाहृत छंदों से अधिक साम्य रखती है। अतः मेरी सम्मति में गोकुल कवि द्वारा निर्दिष्ट लाल कवि गोरे लाल ही हैं। इनकी निम्नांकित रचनाओं की सूची प्रकाश में आ चुकी है—छत्रप्रशस्ति, छत्रछाया, छत्रकीर्ति, छत्रछंद, छत्रसाल शतक, छत्रदंड, छत्र प्रकाश, राज विनोद और विष्णु विलास।

१६१ लीलाधर

ये जोधपुर के राजा गजसिंह (शासनकाल सं० १६७७–१६९५) के आश्रित कवि थे। मिश्रबन्धुओं के अनुसार इन्होंने नखशिख विषय पर कोई ग्रंथ लिखा था, जो अब तक अनुपलब्ध है। सूदन और भिखारीदास ने इनका नाम अपनी कवि सूचियों में रखा है। दिग्विजय भूषण में इनका उद्धवगोपी संवाद विषयक केवल एक कवित्त उदाहृत है। संभवतः उपर्युक्त 'नखशिख' से भिन्न यह इनकी फुटकर रचना है।

१६२ शंभु

ये असोथर (जिला फतेहपुर) के महाराज भगवतराय खीची के आश्रित कवि थे और सं० १७९० के लगभग उपस्थित थे। इनकी तीन रचनायें मिलती हैं—रसकल्लोल, रस तरंगिणी और अलंकार दीपक। दिग्विजय भूषण में इन्हीं ग्रंथों से अलंकार तथा नायिकाभेद विषयक छंद उदाहृत हैं। देवतहा (गोंडा) के शिव कवि इनके शिष्य थे।

ये सितारागढ़ के राजा शंभुनाथ सिंह 'नृप शंभु' से पृथक् अस्तित्व रखते हैं।

१६३. शशिनाथ

गोकुल कवि ने 'शशिनाथ' और 'सोमनाथ' छाप से कविता करने वाले दो विभिन्न कवियों का उल्लेख 'दिग्विजय भूषण' की कवि सूची मे किया है और उनके छ द पृथक् रूपेण उदाहृत किये हैं। किन्तु खोज करने पर दो भिन्न भिन्न छापो से की गई कवितायें एक ही कवि, सोमनाथ की ठहरती हैं। नवीन कवि ने 'सुधासर' म दो छाप वाले कवियों मे सोमनाथ की भी गणना की है और इनकी दो पृथक् छापों—सोमनाथ और शशिनाथ का उल्लेख किया है।[1] छंदानुरोध से ये बहुधा कवित्तों मे 'सोमनाथ' और सवैयो में 'शशिनाथ' छाप रखते थे। दिग्विजय भूषण में इनके दिये हुये छदों मे भी यह सिद्धा त निभाया गया है। सम्भवत सोम और शशि का एकार्थवाच्यत्व ही छाप भेद का कारण था।

इनका ज म छिरौरावशी माथुर ब्राह्मण वंश में, स० १७६० में हुआ था। इनके पिता का नाम नीलकण्ठ मिश्र और पितामह का नरोत्तम मिश्र था। नरोत्तमजी जयपुर के महाराज रामसिंह के म त्र गुरु थे। सोमनाथ का कवि जीवन अधिकतर भरतपुर दरबार मे बीता। महाराज बदन सिंह के पुत्र सूरजमल और प्रताप सिंह इनके मुख्य आश्रयदाता थे। इनका देहावसान स० १८२० के आसपास हुआ।

सोमनाथ की कृतियो की सूची इस प्रकार है—रस पीयूष निधि (स० १७९४), रामचरित रत्नाकर (स० १७९६), कृष्ण लीला पचाध्यायी (स० १७९६), राम कलाधर, सुजान विलास (स० १८०७), माधव विनोद नाटक (स० १८०९) ध्रुवचरित्र (स० १८१२), ब्रजे द्र विनोद, शशिनाथ विनोद, कमलाधर, प्रेम पचीसी और दशमस्क ध भाषा उत्तरार्ध।

इनका कविताकाल स० १७९४ से स० १८१२ तक था।

---

१ 'ध्रुव चरित' में सोमनाथ ने स्पष्ट रूप से 'शशिनाथ' छाप का प्रयोग किया है। प्रथात में निर्देश है—

माथुर कवि ससिनाथ ने, ध्रुव चरित्र यह कीन।
जाके गुन बर्नन सुने, रीझै हिये प्रवीन॥
सवत ठारह सै बरस, बारह जेठ सुमास।
कृष्ण त्रोदसी वार भृगु, भयौ ग्रन्थ परकास॥
॥ इति श्री माथुर कवि सोमनाथ विरचिते ध्रुव विनोद पचमोल्लास ॥

१६४. शिरोमणि

ये गगा यमुना के बीच मे स्थित गँभीरा नामक गाँव के निवासी थे। यह पुडीरिन इलाके के अ तर्गत था। इनके पिता मोहन मिश्र और पितामह परमा न द मिश्र थे। परमान द मिश्र शास्त्रों के निष्णात विद्वान् थे। उनके पाडित्य पर मुग्ध होकर सम्राट् अकबर ने उन्हें 'शतावधानी' की उपाधि दी थी। ये माथुर तिवारी थे। इ हीं के वशज मुरलीधर कवि थे। इन्होंने परमानन्द को अकबर द्वारा 'मिश्र' की उपाधि दिये जाने का उल्लेख किया है। यही कारण है जिससे 'तिवारी' होते हुए भी परमानन्द और उनके वशज अपने को मिश्र लिखते रहे हैं। शिरोमणि का कहना है—

गगा यमुना बीच इक, पुडारिन का गाँव।
तहाँ मथुरिया बसत हैं, ताहि गँभीरा नॉव॥
माथुर भेद अनेक विधि, एक तिवारी भेद।
परमानन्द तहाँ उपजि, पढ़े पुरानरु बेद॥
ते सत अवधानी किये, समुझि चित्त की चाहि।
अकबर साहि खिताब दै, प्रगट करे जग माहिं॥

इनके पिता मोहन मिश्र, जहाँगीर के आश्रित कवि थे। इन्हींके द्वारा शिरो मणि का मुगल दरबार मे प्रवेश हुआ और वे शाहजादा खुर्रम (शाहजहाँ) के साथ रहने लगे।

साहिजहाँ की चाकरी, जहाँगीर को राज।

आगे चलकर जब शाहजहाँ बादशाह (शासनकाल स० १६८५–१७१५) हुए तब इनको दरबारी कवियों में प्रमुख स्थान मिला। 'दिग्विजय भूषण' म उदा हृत इनका निम्नाङ्कित शृगारी कवित्त इसी समय लिखा गया प्रतीत होता है—

दादुर चातक मोर करो किन सोर सुहावन कै भरु है।
नाह तेहीं सोइ पायो सखी मोहि भाग सोहागहु को बरु है॥
जानि 'सिरोमनि' साहिजहाँ ढिग बैठो महा बिरहा हरु है।
चपला चमको गरजो बरसो घन पास पिया तो कहा डरु है॥

इस प्रकार निरन्तर तीन पीढ़ियों तक शिरोमणि मिश्र और उनके पूर्वज मुगल शासकों की छत्रछाया में साहित्य सेवा करते रहे।

शिरोमणि की केवल एक सम्पूर्ण रचना नाममाला अथवा नाम उर्वशी उप लब्ध हुई है। यह कोश ग्रथ है। इसका निर्माणकाल स० १६८० है। इससे यह विदित होता है कि शिरोमणि कवि कुछ वर्षों तक गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन रहे हैं।

गोकुल ने अलकार और नायिकाभेद विषयक इनके तीन छद उदाहृत किए हैं। इनमे से एक सरोज मे सग्रहीत है।

१६८ शिवकवि

ये देवतहा (जिला गोंडा) के निवासी असेला बदीजन थे। इन्होंने असोथर (जिला फतेहपुर) के शभु कवि (स० १७६० मे वर्तमान) से काव्य शास्त्र का अध्ययन किया था। 'पिंगल छ दोग्रन्थ' नामक इनके ग्र थ मे काव्य गुरु का स्मरण इन शब्दों मे किया गया है—

सकल सिद्धि आवैं निकट, ध्यावत श्री गुरु शभु।
नमो नमो उनयो परै, हिये जुक्ति आरभ॥

शभु असोथर के राजा भगवत राय खीची के दरबारी कवि थे। काव्य शिक्षा समाप्त होनेपर शिव कवि देवतहा लौट आये और वहाँ के साहित्यरसिक तालुकेदार जगतसिंह के काव्य शिक्षक हो गये। कहते हैं जगत सिंह ने इन्हीं से काव्य रचना सीखकर पिंगल के प्रसिद्ध ग्र थ 'भारतीकठाभरण' का निर्माण स० १८६४ में किया था।

जगतसिंह के अतिरिक्त शिव कवि के दो आश्रयदाता और थे—बाँदा के जुल्फकार अली खाँ और ग्वालियर के महाराज दौलतराव सिंधिया। जुल्फकार अली को स० १८५६ में, अपने पिता अली बहादुर की मृत्यु के पश्चात्, बाँदा की नवाबी कुछ दिनो के लिए प्राप्त हुई थी। ये स्वय भी कवि थे। स० १६०३ मे इन्होंने बिहारी के दोहों पर कुण्डलियाँ लगाई थीं। शिव कवि ने इनके आश्रय मे 'पिंगल छ दोग्र थ' की रचना की थी। तीसरे आश्रयदाता दौलतराव सिंधिया की छत्रछाया म इन्होंने 'वाग्विलास' लिखा। इस प्रकार अनेक राजदरबारों का चक्कर लगाते हुए अ त म ये ज मभूमि को चले आये और वहीं इनकी मृत्यु हुई। शिवसिंह जी सेंगर के समय तक इनके वशज 'राम कवि' देवतहा में विद्यमान थे।

अपने कवि जीवन के अनुभव शिवकवि ने एक छ द में बड़े ही मार्मिक शब्दों में व्यक्त किये हैं—

लछमी तिहारी एक कृपा के कटाच्छ बिन,
क्रूर धूरतन के बदन ध्याइबे परे।
झूँठे महिपालन के झूँठे गुन गाइ गाइ,
बानी जगरानी तासो बैरु ठाइबे परे॥

कहै 'सिवकवि' सूम दाता कै बखानियत,
रन ते बिमुख सूर ठहराइबे परे।
काहू के न धधन के निज पेट धधा के,
दोलति मदधन के ढिग जाइबे परे॥

अर्थाभाव से विपन्न रीतिकालीन कवियों की दयनीय स्थिति और तज्जय चाटुकारिता पूर्ण साहित्य के प्रणयन का रहस्य, शिव कवि ऐसे भुक्तभोगी स्पष्ट वक्ता एव स्वच्छ हृदय, साहित्यकारों की बानी से ही खुलता है।

इनका कविता काल स० १८२० से स० १८७० तक माना जा सकता है।

दिग्विजय भूषण में इनके दो छ द दिये गये हैं।

१६६ शिवलाल

शिवलाल नाम के दो कवि हुये हैं। प्रथम शिवलाल दुबे डौंडिया खेरा (बैसवाडा) के निवासी थे। शिवसिंह जी के अनुसार ये स० १८३६ में वर्तमान थे। इनकी निम्नाकित रचनाओं का पता चलता है—नखशिख, षड्ऋतु, नीति सम्ब धी कवित्त और हास्यरस विषयक रचनाये। इनमें प्रथम दो सपूर्ण ग्र थ है और अतिम दो फुटकर छ दो के सग्रह।

दूसरे शिवलाल पाठक प्रसिद्ध 'मानस' तत्ववेत्ता रामभक्त थे। इनकी दो कृतियों 'मानस मयक' और 'अभिप्राय दीपक' की तुलसी साहित्य प्रेमियों में बडी प्रतिष्ठा है।

दिग्विजय भूषण में शिवलाल कवि का अलकार विषयक एक शृगारी छ द उदाहृत है। वह प्रथम शिवलाल दुबे का ही हो सकता है।

१६७ शिवनाथ

इस नाम के तीन कवि हुए है। एक शिवनाथ बु देलखडी स० १७६० के आसपास हुए। ये महाराज छत्रसाल के पुत्र जगतसिंह बुन्देला के दरबारी कवि थे। इन्होंने 'रसरजन' नामक नायिकाभेद ग्रन्थ की रचना की थी। आश्रय दाता की प्रशसा में लिखा गया इनका एक कवित्त सरोज म सकलित है।

दूसरे शिवनाथ मकरदपुर (जिला कानपुर) के निवासी थे। देवकी नदन कवि इनके पुत्र थे। इनका उपस्थिति काल स० १८४० के पूर्व है।

तीसरे शिवनाथ अजबेस कवि के पुत्र थे। इन्होंने रीवॉराज्य की वशावली छन्दबद्ध की थी।

दिग्विजय भूषण मे शिवनाथ कवि का नायिकाभेद सम्ब धी एक छन्द

उदाहृत है। इस विषय पर केवल प्रथम शिवनाथ की रचना 'रसरजन' उपलब्ध हुई है, अत वे ही उक्त छन्द के रचयिता जान पडते हैं।

१६८. शेख

शेख रँगरेजिन मुसलमान जाति की थी। यह रीतिकाल की स्वच्छ द शृङ्गारी धारा के प्रसिद्ध कवि आलम की प्रेयसी थी, जिसकी काव्य प्रतिभा और सौ दर्य पर मोहित होकर आलम ब्राह्मण से मुसलमान हुए थे। इसके जीवन वृत्त का केवल उतना ही अश प्रकाश में आ सका है जितने का सम्ब ध आलम की प्रेमलीला से है। इसका वर्णन उनके परिचय के प्रसग मे हो चुका है।

आलम का समय स० १६४० से स० १६८० तक कहा जाता है अत इसी के लगभग शेख की उपस्थिति मानी जा सकती है। इसकी कोई स्वतत्र रचना उपलब्ध नहीं हुई है, पति के काव्य सग्रह 'आलम केलि' मे ही इसके भी छ द सकलित मिलते है।

गोकुल कवि ने नखशिख और षड्ऋतु वर्णन पर शेख के दो छ द उदाहृत किये हैं।

१६९. शोभा कवि

गोकुल कवि ने दिग्विजय भूषण में इनके दो छ द उदाहृत किये हैं—एक कवित्त है, दूसरा दडक। इन दोनों में 'शोभ' अथवा 'सोभ' छाप है। सकलन कर्ता ने दोनों के रचयिता का नाम 'शोभ कवि' बताया है। मेरे विचार में इनका वास्तविक नाम शोभा कवि था, जिसका उल्लेख शिवसिंह जी ने किया है। इनके नाम से एक छ द और दिया गया है कि तु उसमें शोभनाथ छाप है। शोभनाथ को भूषणकार ने शोभ कवि से भिन्न माना है और उनकी रचनायें पृथक् रूपेण उदाहृत की है। शिवसिह जी ने भी इन दोनों कवियों का स्वत त्र अस्तित्व स्वीकार किया है और सरोज में उनकी रचनाओं के अलग अलग उदाहरण सकलित किये है। कि तु 'सरोज सर्वेक्षण' में डा० किशोरी लाल गुप्त ने इन दोनों कवियों की एकता प्रतिपादित की है और उन्हें प्रसिद्ध कवि सोमनाथ अथवा शशिनाथ से अभिन्न बताया है[1]। गोकुल कवि और शिवसिह की उक्त कवि के सम्बन्ध में भ्रान्ति का कारण उन्होंने लेख अथवा

---

१ सरोज सर्वेक्षण—(डा० किशोरी लाल गुप्त)
—शोभ कवि ८९७। ७३४
—शोभनाथ ८९८। ७८४

पाठ विषयक प्रमाद माना है जिससे सोमनाथ का सोभनाथ लिख अथवा पढ लिया गया है। इसी भाँति लिपिकार के प्रमाद से सोम का सोभ हो जाना भी स्वाभाविक है। डा० गुप्त की इस उपपत्ति को स्वीकार करने म कई अडचनें है। प्रथम यह कि गोकुल कवि और शिवसिंह जी ने कविसूची मे तथा रचना उदाहृत करत हुये, कविनामोल्लेख के अवसर पर स्पष्टतया 'शोभ' 'शोभा' तथा 'शोभनाथ' लिखा है। इससे यह प्रकट होता हे कि जिन स्रोतों से इन महानुभावों ने उक्त कवियों की रचनाये सकलित की हैं उनमें उनके नाम उसी रूप में लिखे हुए थे। इसीलिए उन्होंने इन कवियों को 'सोमनाथ' से भिन्न माना। 'शोभ' अथवा 'शोभनाथ' लिखने की भूल कदाचित् ही किसी साहित्य कार से हुई हो। दूसरे यह कि दिग्विजय भूषण तथा शिवसिह सरोज में इन दानों कवियों के दो छन्द सकलित हैं, उनमें 'शोभ' अथवा 'शोभनाथ' की छाप भेद का कारण छदानुरोध मात्र नहीं है। एक ही प्रकार के छन्द में दोनों छापों का प्रयोग स्वय इसका प्रमाण है कि वे दो विभिन्न कवियों द्वारा विरचित है। तीसरे यह कि सोमनाथ कवि सवैयों के लिए 'शशिनाथ' छाप की सृष्टि पहले ही कर चुके थे। 'नाथ' छाप भी उनकी कुछ कृतियों में मिलती है। अत 'साम' अथवा 'शोभ' की नई सृष्टि किस उद्देश्य से हुई, यह स्पष्ट नहीं होता। चार छापों से कविता करने वाला कोई कवि अब तक प्रकाश में नहीं आया है। ऐसी दशा में जब तक विपक्ष में दृढतर प्रमाण प्रस्तुत नहीं किये जाते शोभा कवि और शोभनाथ को सोमनाथ से भिन्न मानना ही उचित होगा।

शोभा कवि भरतपुर के महाराज नवल सिह के दरबारी कवि थे। इनका एक ग्रथ 'नवल रस चन्द्रोदय'[1] याज्ञिक सग्रहालय में सुरक्षित है। उसमें दिए हुए रचना काल से विदित होता है कि ये स० १८१८ के लगभग वर्तमान थे। शोभनाथ की कोई रचना प्रकाश में नहीं आई है।

१७० शोभनाथ

देखिए शोभा कवि का परिचय।

१७१. श्रीपति

ये कालपी के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। शिवसिंह जी और उनके पूर्ववर्ती 'भाषा काव्य सग्रह' के रचयिता प० महेश दत्त ने जाने किस आधार

१—काव्य शास्त्र का इतिहास (डा० भगीरथ मिश्र)—पृ० ४५

वसु विधि वसु विधु वत्सरहि, श्रावन सुदि गुरुवार।
सरब सुसिद्धि त्रयोदसी, भयो ग्रन्थ अवतार॥

पर इनकी जन्मभूमि पयाग पुर (जिला बहरायच) लिख दिया। श्रीपति के ये शब्द उनकी वासस्थान सम्बन्धी स्थिति स्पष्ट कर देते हैं—

सुकवि कालपी नगर को, द्विज मनि श्रीपति राइ।
जस समस्वाद जहान को, बरनत सुख समुदाय॥

इनकी गणना काव्य शास्त्र के प्रमुख आचार्यों मे की जाती है। इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना 'काव्य सरोज' अथवा 'श्रीपति सरोज' है, जिसमें मम्मट के 'काव्य प्रकाश' का आधार लेकर काव्य शास्त्र के विभिन्न अंगों का विद्वत्ता पूर्ण विवेचन किया गया है। इसकी रचना सं० १७७७ में हुई थी। इनकी अन्य कृतियाँ हैं—अनुप्रास विनोद, काव्य सुधाकर, विक्रम विलास, कवि कल्पद्रुम, सरोज कलिका, रससार और अलंकार गंगा।

गोकुल कवि ने अलंकार, नायिका भेद तथा षड्ऋतु पर लिखे गये इनके कई छंद उदाहृत किये हैं।

१७२. श्रीधर

इस नाम के दो कवि हुए हैं—एक हैं श्रीधर प्राचीन, जिन्हें सरोजकार ने सं० १७८६ मे उपस्थित बताया है। इनकी किसी रचना का पता अब तक नहीं चला है। कुछ फुटकर शृंगारी छंद ही उपलब्ध हैं। दूसरे श्रीधर नाम से कविता करने वाले ओयल (जिला खीरी) के राजा सुब्बा सिंह थे। ये सुवंश शुक्ल के शिष्य थे। इन्होंने 'विद्वन्मोद तरंगिणी' नामक ग्रंथ की रचना की जिसमे नायक नायिका भेद, षड्ऋतु तथा रस निरूपण सम्बन्धी इनकी कविताओं के साथ ४४ प्राचीन कवियों की भी रचनायें संग्रहीत हैं। शिवसिंह के अनुसार ये सं० १८७४ में उपस्थित थे।

दिग्विजयभूषण में श्रीधर का एक कवित्त संकलित है, जो 'अन्य संभोग दुखिता' नायिका के लक्षण रूप में उदाहृत है। 'विद्वन्मोद तरंगिणी' में इस विषय का विशद विवेचन है। मेरा अनुमान है कि इसके रचयिता राजा सुब्बा सिंह उपनाम 'श्रीधर' ही दिग्विजय भूषण के श्रीधर कवि हैं।

१७३. संगम

इनका वास्तविक नाम संगमलाल था। ये टेढ़ाविगहपुर गाँव (जिला उन्नाव) के निवासी सुवंश शुक्ल के वंशधर थे। इनके आश्रय दाता महाराज राजसिंह थे। उनकी तलवार की प्रशंसा में इन्होंने निम्नांकित छन्द लिखा था—

कढ़त भुलानी मुख बैरिन कँपानी जब,
जग थहरानी है भुलानी अरिराज की।
सोनित सों सानी भई अकह कहानी रन,
मानो पगलानी ठकुरानी जमराज की॥
सब जग जानी खाइ अरिन अघानी विष,
पानी सो बुझानी है जिठानी मनो गाज की।
सभय बखानी शम्भुरानी है रिसानी कैधौं,
कैधौं है कृपानी राजसिंह महराज की॥

इन राजसिंह की ठीक ठीक पहचान अभी तक नहीं हो सकी है। सरोज में दिये गये सगम के एक छंद में 'सिंहराज' नाम आया है। उसकी अन्तिम पंक्ति इस प्रकार है—

राज सिरताज सिंहराज महराज सुनो,
ऐसो गजराज कविराज को न दीजियो।

किंतु खोज विवरण में सगम लाल शुक्ल के उक्त कवित्त में 'सिंहराज' के स्थान पर 'राज सिंह' पाठ दिया गया है। ऐसी दशा में उपर्युक्त दोनों प्रसंगों में सगम कवि के द्वारा निर्दिष्ट आश्रयदाता का नाम राजसिंह ही है, सिंहराज नहीं। इसी नाम भ्रम से शिव सिंह जी ने सगम कवि को सिंहराज का दरबारी कवि बताया है। मेरी सम्मति में ये राजसिंह सीतामऊ के राजा थे जिनके पुत्र, डिंगल और पिंगल के सिद्धहस्त कवि, नटनागर थे। ये सं० १८६५ के लगभग विद्यमान थे। सगम लाल सुवंश शुक्ल के वंशज बताये जाते हैं। शिव सिंह जी ने इन्हें सं० १८३४ में वर्तमान माना है। इनका रचनाकाल, सं० १८६१ से सं० १८८४ तक ठहरता है। सरोज के अनुसार, सगम कवि सं० १८४० में वर्तमान थे। सुवंश शुक्ल के समय को देखते हुए यदि सगम का आविर्भाव काल सरोज में दिये गये उपस्थिति काल को ही मान लें तो भी इनके राजसिंह के दरबारी कवि होने में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती।

सगम की दो रचनायें खोज में मिली हैं—कवित्त और श्रीकृष्ण ग्वालिन को झगरा। दिग्विजय भूषण में इनके दो छंद उदाहृत हैं। एक नायिका भेद और दूसरा षड्ऋतु वर्णन से सम्बंध रखता है। ये दोनों ही 'कवित्त'से लिए गये जान पड़ते हैं, क्योंकि उनकी दूसरी रचना का प्रतिपाद्य विषय ही दानलीला है, जिससे भूषण में दिये गये छन्दों का कोई सम्बन्ध नहीं है।

१७४ संतन

इस नाम के दो कवि हुए हैं और सयोगवश दोनों एक ही समय में उपस्थित थे। शिवसिंहजी ने इनका उदयकाल स० १८३४ बताया है। एक सतन बिंदकी (जिला फतहपुर) के निवासी उपम यु गोत्रीय का यकुब्ज दुबे थे। ये अत्यत ही वैभवसम्पन्न एव दानशील प्रकृति के व्यक्ति थे।

दूसरे सतन कवि की ज मभूमि जाजमऊ (जिला कानपुर) थी। ये बनस्थी के पाडे थे। मिश्रब धुओं ने इनका ज मकाल स० १७२८ और कविताकाल स० १७६० के लगभग माना है। इनकी आर्थिक दशा बहुत गिरी हुई थी। प्राय यजमानों के द्वारा प्राप्त दान से ही ये परिवार का भरण पोषण करते थे। बिदकी वाले सतन से अपनी भिन्न स्थिति का चित्रण करते हुए ये एक स्थान पर लिखते हैं—

वै बरु देत लुटाय भिखारिन ये विधि पूरब दान गऊ के।
हूँ अखियाँ चितवैं उत वै इत ये चितवैं अँखियाँ यकऊ के॥
वै उपम यु दुबे जग जाहिर पांडे बनस्थी के ये मधऊ के।
वै कवि सतन हैं बिदुकी हम हैं कवि सतन जाजमऊ के॥

अब तक इनकी एक ही रचना 'अध्यात्म लीला' खोज में प्राप्त हुई है।

इनमें से किस स तन के कवित्त गोकुल कवि ने उदाहृत किये हैं, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। किंतु शिवसिंह जी ने प्रथम सतन के जो छद सरोज में सग्रहीत किये हैं उनकी भाषा शैली की, भूषण मे उदाहृत छदों से, साम्य देखकर मेरी धारणा है कि वे प्रथम सतन के ही हैं। दूसरे सतनकी प्राप्त रचना 'अध्यात्म लीलावती' से गोकुल कवि द्वारा सकलित छदों की विषय विभिन्नता इस सभावना को बल देती है।

१७५. सदानन्द

गोकुल कवि ने अलकार और नायिकाभेद विषयक सदान द के दो कवित्त उदाहृत किये हैं। दोनों एक ही समस्या पर लिखे गये हैं। इ हीं में से एक सरोज मे सकलित है। शिवसिहजी ने इनका एक छ द कालिदास के हजारा में सग्रहीत बताया है और इनका उपस्थिति काल स० १६८० निश्चित किया है। इन साक्ष्यों के आधार पर ये स० १७५० के पूर्ववर्ती कवि ठहरते है।

स० १७५० के पूर्व सदान द नामक दो कवि हुए हैं। प्रथम सदानन्द जौनपुर के निवासी ब्राह्मण थे। इनके पुत्र हरजू मिश्र ने स० १७६६ में

भमरकोश की टीका की थी। ये बिहारी सतसई के आजमशाही अनुक्रमकार के रूप मे भी प्रसिद्ध हैं। दूसरे सदान द ब्रह्मभट्ट थे। इनके पिता का नाम कवि राज था। शिवराज महापात्र इन्हीं के वशज थे। इनका उपस्थिति काल स० १८६६ है।

इनमें से किस सदानन्द के छन्द दिग्विजय भूषण में उदाहृत है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

१७६ सबलश्याम

इनका असली नाम सबलशाह अथवा सबलसिंह था, 'सबल श्याम' उप नाम था। ये अमोढ़ा (जिला बस्ती) के सूर्यवशी राजा दलसिंह के पुत्र थे। दलसिंह अमोढा राज्य के सस्थापक कसनारायण (स० ११६१) की २७ वीं पीढी मे हुए थे। सबलश्याम का जन्म स० १६८८ में अमोढा मे ही हुआ था। 'भागवत भाषा' में ये लिखते हैं—

सवत सोरह सै अट्ठासी, जन्म भयो छिति आइ।
सबलश्याम पूर पुण्य ते, नगर अमोढ़ा में परे देखाइ॥

इनकी दो रचनायें मिली है—षड्ऋतु बरवै और भागवत भाषा। शिवसिंह जी ने भ्रांतिवश षड्ऋतु बरवै और भाषा ऋतु सहार को दो पृथक् ग्रन्थ मान लिया है, जो वास्तव में एक ही रचना के दो नाम है।

इनका एक कवित्त दिग्विजय भूषण में उदाहृत है।

१७७ सरदार

ये ललितपुर (जिला झाँसी) के निवासी हरिजन बदीजन के पुत्र थे। इनके काव्यगुरु चरखारी के प्रसिद्ध कवि प्रताप साहि थे। कुछ दिनों तक कवि वृत्ति से जीविकोपार्जन करने के पश्चात् ये काशी गये और वहाँ महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह के दरबार म रहने लगे। इसके पश्चात् इनका शेष जीवन वहीं बीता। ये काशी के भदैनी मुहल्ले म रहते थे। यहीं स० १६४२ मे इनका देहान्त हुआ।

सरदार कवि दिग्विजय भूषण के रचयिता गोकुल कवि के समकालीन थे। इन्होंने दिग्विजय भूषण की ही भाँति 'शृगार सग्रह' नामक ग्रन्थ बनाया जिसमे १२५ प्राचीन कवियों की रचनाय सग्रहीत है। इनके शिष्य नारायण राय थे, जिन्होंने गुरु के अनेक साहित्यिक कार्यों की पूर्ति मे सहायता की थी।

शृंगारी रचनाओं के साथ रामभक्ति विषयक अनेक ग्रंथों की भी इन्होंने रचना की थी।

सरदार कवि की रचनाओं की तालिका निम्नांकित है—काशिराज प्रकाशिका, सुख विलासिका, साहित्य लहरी की टीका, बिहारी सतसई की टीका, ऋतु वर्णन, शृङ्गार संग्रह (सं० १९०५), व्यंग्य विलास, साहित्य सुधाकर, रामरत्न रत्नाकर रामरस यन्त्र पत्र, मानस रहस्य, तर्क प्रकास, रामकथाकल्पद्रुम, रामलीला प्रकास, साहित्य सरसी, हनुमत भूषण, तुलसी भूषण, मानस भूषण और मुक्तावली।

इनका काव्य काल सं० १९०२ से सं० १९४० तक माना जाता है।

१७८ सूरदास

इधर सूरदास छाप से कविता करने वाले अनेक कवि प्रकाश मे आये है किन्तु दिग्विजय भूषण मे इनका जो छन्द संग्रहीत है वह 'सूरसागर' का एक प्रसिद्ध पद है अतः उसके रचयिता सर्वमान्य कृष्णभक्त सूरदास ही हैं, इसमे कोई सन्देह नहीं।

इनका आविर्भाव वैशाख शुक्ल ५, सं० १५३५ को दिल्ली के निकटस्थ सीही गाँव के सारस्वत ब्राह्मण वंश में हुआ था। सूर के जीवन सम्बन्धी अन्त एवं बहि साक्ष्यों के आधार पर कुछ विद्वानों ने इन्हें भाट, जाट और ढाढ़ी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है किन्तु ये आपत्तियाँ विश्वसनीय नहीं प्रतीत होतीं। विशेषकर ऐसी स्थिति मे जब सूर के प्रायः समकालीन गोस्वामी यदुनाथ और कवि प्राणनाथ उन्हें स्पष्टरूप से सारस्वत वंशी घोषित करते हैं[1]। चौरासी वैष्णवों की वार्ता पर लिखी गई हरि राम जी की 'भावप्रकाश टीका' से विदित होता है कि ये जन्मांध थे। बाल्यावस्था में ही विरक्त हो कर ये घर से निकल पड़े। बहुत दिनों तक इधर उधर भटकने के बाद इन्होंने कृष्ण की जन्मभूमि, मथुरा, वास का निश्चय किया। इसी उद्देश्य से ये घूमते घामते आगरा मथुरा मार्ग में स्थित गऊ घाट पर पहुँचे और वहाँ यमुना नदी के तट पर स्थायी रूप

---

१ ततोऽर्कलपुरे समागताः। तत्राऽऽवासः कृतः।
ततो व्रज समागमने सारस्वत सूरदासोऽनुग्रहीतः।
(वल्लभदिग्विजय गो० यदुनाथ कृत)
श्री वल्लभ प्रभु लाडिले, सीहीं सर जलजात।
सारसुती दुज तरु सुफल, सूर भगत विख्यात॥
(अष्टसखामृत—प्राणनाथ कृत)

से रहने लगे। इसी समय कुछ काल इन्होंने गऊघाट के निकटवर्ती रेणुका क्षेत्र (रुनकता गाँव) में भी निवास किया था। इनके संगीत एवं दैन्यपूर्ण पदों की रचना यहां हुई और महाप्रभु वल्लभाचार्य के दर्शन का सौभाग्य भी इन्हें इसी पुण्य भूमि में उपलब्ध हुआ। वल्लभाचार्य जी ने सं० १५६७ के लगभग विधि पूर्वक पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित कर इन्हें कृष्णलीलागान का आदेश दिया। वल्लभाचार्य जी इन्हें गऊ घाट से अपने साथ गोकुल ले गये और वहाँ कुछ काल व्यतीत कर गोवर्धन की यात्रा की।

वल्लभाचार्य जी की प्रेरणा से सं० १५५६ में पूरन मल खत्री द्वारा गोवर्धन पर श्रीनाथ जी का मंदिर निर्मित हुआ। गुरु आज्ञा से सूरदास जी इसी में कीर्तन सेवा करने लगे। सूरसागर इसी दिव्यभूमि में विरचित नित्य लीला सम्बन्धी पदों का संग्रह है।

गोवर्द्धन आने पर, इन्होंने अपना स्थायी निवास स्थान, परासोली नामक समीपवर्ती गाँव में बना लिया। यहीं पर सं० १६४० में सूरदास जी का गोलोक वास हुआ।

खोज विवरणों में इनके विरचित २५ ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है जिनमें प्रमुख हैं—सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी, सूरसाठी, सूर पचीसी, सेवा फल और सूरदास के विनय के पद। इनमें सूरसागर को छोड़ कर अन्य सभी विवादास्पद हैं।

इनका कविताकाल सं० १५५० से सं० १६४० तक माना जाता है। इन ९० वर्षों की दीर्घ अवधि तक प्रवाहित सूर की भक्ति स्रोतस्विनी ने ही विस्तार एवं गाम्भीर्य में अप्रतिम 'सागर' की सृष्टि की है, जिसकी लहरें सहृदय मात्र को आज भी रस प्लावित करती हैं।

७७९ सिंह कवि

इस नाम के एक कवि का उल्लेख सरोज में हुआ है और उसे सं १८३५ में वर्तमान बताया गया है। ग्रियर्सन महोदय ने इन्हें सिंह नामान्त कोई अन्य कवि माना है। दिग्विजय भूषण में इनका एक और सरोज में दो छन्द संग्रहीत हैं। दोनों में 'सिंह' छाप है। खोज में एक महासिंह नामक कवि मिले हैं जो 'सिंह' उपनाम से कविता करते थे। ये मेड़ता (राजस्थान) के निवासी ब्राह्मण थे। इनकी एक मात्र रचना 'छन्द शृङ्गार' उपलब्ध हुई है जिसका रचनाकाल सं० १८५३ है। सरोज के सिंह कवि और इनका समय एक ही ठहरता है। अतः दोनों अभिन्न हो सकते हैं।

१८० सुखदेव मिश्र

देखिये 'कविराज' कवि का परिचय।

१८१. सुखदेव द्वितीय

ये सुखदेव मिश्र से अभिन्न है।

१८२. सुन्दर

हि दी काव्य की शृङ्गारी परपरा मे 'सु दर' नाम के दो कवि हुए हैं। पहले सु दर, हि दू प्रेमाख्यान 'रस रतन' के रचयिता पुहकर के छोटे भाई थे। ये पजाब निवासी मोहनदास कायस्थ के पुत्र थे। इनके बड़े भाई की रचना 'रस रतन' का निर्माण काल स० १६७३ है। वे मुगल बादशाह जहाँगीर के समकालीन थे। अत इनका कविताकाल सं० १६८० के लगभग माना जा सकता है। इनके फुटकर शृगारी छ द मिलते है।

दूसरे सु दर ग्वालियर के रहने वाले ब्राह्मण थे। ये शाहजहाँ के दरबारी कवि थे। बादशाह ने प्रसन्न होकर इन्हें पहले 'कविराय' और फिर 'महा कविराय' की उपाधि प्रदान की थी। 'सु दर' शृगार में अपना परिचय देते हुये ये लिखते हैं—

नगर आगरो बसत है, जमुना तट सुभ थान।
तहाँ बादसाही करैं, बैठे साह जहान॥
साहजहाँ तिन गुनिन को, दीने अगनित दान।
तिनने सुन्दर सुकवि को, कियो बहुत सनमान॥
नगभूषन गन सब दिये, हय हाथी सिरपान।
प्रथम दियो कविराज पद, बहुरि महाकविराय॥
विप्र ग्वालियर नगर को, बासी है कविराज।
जापै साह दया करै, सदा गरीब नेवाज॥

इन्होंने 'सुन्दर शृगार' की रचना सं० १६८८ में की अत इसी के कुछ आगे पीछे इनका काव्य काल निश्चित किया जा सकता है।

कहते हैं एक बार कविता लिखते समय छ द में इनकी असावधानी से यह वाक्छल पड़ गया "सु दर कोप नहीं सपने" जिसका प्रतिकूल परिणाम "सु दर को पनहीं सपने" के रूप में इ हें उसी रात को भोगना पड़ा था।

शिवसिंह जी ने इन दोनो मे से केवल द्वितीय का सक्षिप्त परिचय और उनकी रचनाओं के उदाहरण दिये हैं, कि तु वे छ द 'भूषण' मे नहीं मिलते। ऐसी स्थिति में यह निश्चय करना कठिन है कि उनम से किस 'सु दर' की रचनायें गोकुल ने उदाहृत की हैं। अधिक सभावना यही है कि वे शाहजहाँ के कृपापात्र महाकविराय सु दर हों और ये छ द उनके 'सुन्दर श्रृगार' नामक ग्र थ से उद्धृत किये गये हों। ये दोनों सु दर दादू दयाल के शिष्य निर्गुण मार्गी सत सु दरदास से सर्वथा भिन्न हैं।

१८३ सुमेर

सुमेर कविका कोई वृत्ता त ज्ञात नहीं। दिग्विजयभूषण में इनके उदाहृत छन्द से भी इस विषयपर कोई प्रकाश नहीं पडता। सूदन कवि ने वदनीय कवियोंमें इनका उल्लेख किया है। इससे केवल इतना निश्चित होता है कि ये स० १८१० के पूर्ववर्ती हैं।

१८४. सूरति

ये आगरा निवासी का यकुब्ज ब्राह्मण थे। अपने सम्ब ध में 'सूरति मिश्र कनौजिया नगर आगरे बास' लिखकर इ होने स्वय इसकी पुष्टि कर दी है। इनका ज म स० १७४० मे हुआ था। पिता का नाम सिहमनि और काव्यगुरु का 'गगेस' था। अपने समय के दरबारी कवियों मे ये अग्रगण्य माने जाते थे। दिल्ली पति मुहम्मद शाह, जोधपुर के दीवान अमरसिह, नसरुल्ला खाँ और बीकानेर के राजा जोरावरसिंह आदि के आश्रय में रहकर काव्य रचना करते हुये इनका जीवन बीता। इनके शिष्यों म जयपुर निवासी राय शिवदास और अली मुहिब खाँ 'पीतम' (खटमल बाईसी के रचयिता) विशेष उल्लेखनीय है। भक्तमाल नामक ग्रथ से विदित होता है कि ये वल्लभसम्प्रदाय के अनुयायी कृष्णभक्त थे।

सूरति मिश्र काव्य शास्त्र के प्रधान आचार्यों मे गिने जाते हैं। 'काव्य सिद्धान्त' मे कवि कर्म के सहायक सभी अगों—रस, गुण, अलकार आदि का बडी कुशलता एव पाडित्य के साथ निरूपण किया गया है। इ होंने निम्नांकित ग्रथ रचे हैं—*अलकार माला* (स० १७६६), *कविप्रिया की टीका*, *रसिक प्रिया की टीका* (स० १७९१), काव्य सिद्धा त, छदसार, राधाजू को नखशिख, प्रबोध च द्रोदय नाटक, भक्तविनोद, रसरत्नमाला, सरस रस, श्रृगारसार, बैतालपचीसी, रासलीला, दानलीला, अमरचद्रिका (स० १७९४) और जोरावर प्रकाश (स० १८००)।

इनका कविताकाल स० १७६६ से स० १८०० तक था।
दिग्विजय भूषण मे इनके अलकार एव नायिका भेद विषयक छद उदाहृत हैं।

१८५. सेनापति

इनका जन्म स० १६४६ के लगभग अनूप शहर मे हुआ था। जाति के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम गगाधर दीक्षित था। हीरामणि दीक्षित से इन्हें काव्य शिक्षा मिली। शिवसिंहजी के अनुसार बहुत काल तक गृहस्थ जीवन व्यतीत कर इन्होंने क्षेत्र सन्यास ले लिया था। इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध और कदाचित् एकमात्र रचना[1] 'कवित्त रत्नाकर' है जिसका निर्माण काल स० १७०६ है। हिंदी के शृङ्गारी साहित्य म ऋतु वर्णन सम्बन्धी इनके छन्दो मे प्रकृति निरीक्षण की जो सूक्ष्मता और काव्य सुषमा मिलती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। कवित्त रत्नाकर म कुछ भक्ति विषयक छन्द भी सग्रहीत हैं जिनसे ये अनन्य रामोपासक सिद्ध होते हैं। उनकी अपनी उक्ति है—

> और न भरोसो जिय परत खरो सो ताहि,
> राम पद पकज को पूरन भरोसो है।

इनके एक छन्द से विदित होता है कि कुछ समय तक ये मुसलमानी दरबार मे भी रहे थे और वहाँ आश्रयदाता से इन्हें पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी[2]। किन्तु वैराग्य उदय होने पर इन्होंने स्वत उस वैभवपूर्ण जीवन से ऊब कर सन्यास ग्रहण कर लिया था। इसी स्थिति में इन्होंने कुछ दिन गगा तट पर स्थित किसी तीर्थ में भी बिताये थे। गगा महिमा विषयक छद इसी अवसर पर लिखे गये थे। अपने जीवन के अन्तिम दिन इन्होंने रामभजन करते हुए वृदावन में व्यतीत किये।

---

१ सेनापति की एक अन्य रचना 'काव्य कल्पद्रुम' बताई जाती है किन्तु कुछ विद्वानों की सम्मति में वह 'कवित्त रत्नाकर' का ही दूसरा नाम है (देखिये—हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृ० १६६)।

२. चिन्ता अनुचित, धरि धीरज उचित,
'सेनापति' है सुचित रघुपति गुन गाइये।
चारि वरदानि तजि पाय कमलेच्छन के
पायक मलेच्छन के काहे को कहाइये॥

दिग्विजय भूषण में 'कवित्त रत्नाकर' म अलकार नायिका भेद, षड्ऋतु वर्णन और रामभक्ति सम्बधी इनके १२ छद उदाहृत है। गोकुल कवि ने इनके श्लेष वर्णन सम्बधी छदों की बडी विद्वत्तापूर्ण टीका प्रस्तुत की है।

१८६. सोमनाथ

ये पूर्व निर्दिष्ट शशिनाथ कवि से अभिन्न है। भूषणकार ने भ्रातिवश भरतपुर के राजा सूरजमल के आश्रित कवि सोमनाथ की,'सोमनाथ' और 'शशिनाथ' दो विभिन्न छापो के आधार पर, दो पृथक कवियो की सत्ता की कल्पना कर ली और ग्रथारभ म दी गई कविसूची म उनका अलग उल्लेख कर दिया। इनके सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए देखिए 'शशिनाथ' कवि का परिचय।

१८७ हरजीवन

इस नाम के दो कवियों का पता चलता है—एक है हरजीवन प्राचीन और दूसरे हरजीवन गुजराती। प्राचीन हरजीवन का कोई वृत्त ज्ञात नहीं। इनके छद राजस्थान मे प्राप्त एक प्राचीन काव्य सग्रह 'ख्यालटिप्पा' में सग्रहीत मिलते हैं। दूसरे हरजीवन पारब दर (काठियावाड) के रहनेवाले थे[1]। गुजराती होते हुये भी इन्होंने परिष्कृत ब्रजभाषा म काव्य रचना की है। इनका उपस्थिति काल, स० १९३८ के आसपास है। शिवसिंह जी सेंगर इनके समकालीन थे।

दिग्विजय भूषण में हरजीवन का केवल एक छद उदाहृत है। सरोज मे भी वही सग्रहीत है। हरजीवन नामाराशी उपर्युक्त दो कवियों म से दूसरे गोकुल कवि के परवर्ती है अत उनकी रचना के 'भूषण' में उद्धृत होने का प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसी स्थिति में दिग्विजय भूषण में उदाहृत छद प्राचीन हरजीवन का ही है, इसमें कोई सदेह नहीं।

१८८. हरदेव

ये नागपुर के पेशवा रघुनाथराव (शासन काल स० १८७३–१८७५) के आश्रित कवि थे। दिग्विजय भूषण मे आश्रयदाता की प्रशस्ति में लिखा गया इनका एक छ द उदाहृत है। सरोजकार ने भी उसी को उद्धृत किया है। खोज में इनका एक ग्र थ मिला है। जिसका नाम है, 'नायिका लक्षण'।

---

१ द्रष्टव्य 'माधुरी' जून १९२७ में 'गुजरात का हिन्दी साहित्य' शीर्षक लेख।

१८९ हरिकवि

इनका असली नाम हरिचरण दास त्रिपाठी था। ये शाडिल्य गोत्र के सरयूपारी ब्राह्मण थे। इनके पुरखे नवापार बढ़ैया के निवासी थे किन्तु इनके पिता रामधन त्रिपाठी उस स्थान को छोड़कर गगासरयू सगम के समीपस्थ सारन जिले (बिहार) के चैनपुर गाँव मे आकर बस गये थे। हरिचरणदास का जन्म इसी गाँव में, स० १७६६ मे हुआ था। इनके काव्य गुरु प्राणनाथ थे, जिनसे इन्होंने यमुना तटपर स्थित तुलसीवन अथवा वृन्दावन म बिहारी सतसई पढ़ा और उसी स्थान पर स० १८३४ में उसकी 'हरि प्रकाश' टीका लिखी। यहाँ से ये राजस्थान गये और वहाँ कृष्णगढ़ के राजा बहादुर सिह के दरबारी कवि हो गये।

दिग्विजय भूषण मे उदाहृत इनके एक छन्द से विदित होता है कि नबी खाँ नामक किसी सामन्त के आश्रय में भी ये कुछ दिन रहे थे। कवि ने आश्रय दाता को अब्दुल वाहिद का पुत्र बताया है—

फैला कालकूट के तचाई तेज बाड़व की,
सेस फूँक धमक प्रचड ताव चढ़ी है।
छाई आसमान तें की भासमान सान पाय,
कलह बुझाय पौन पैनी धार कढ़ी है॥
हरि हर हरि के त्रिशूल चक्र पास बैठि,
बैरिन के बधवे को अच्छ सिच्छ पढ़ी है।
अबदुल वाहिद के नबी खान तेरा तेग,
बज्र के हथोरा काल कारीगर गढ़ी है॥

खोज मे इनकी निम्नाकित कृतियाँ मिली है—चमत्कार चन्द्रिका (स० १८३४) बिहारी सतसई की 'हरि प्रकाश' टीका स० १८३४, मोहन लीला, कवि प्रियाभरण स० १८३५, कर्णाभरण कोश और कवि वल्लभ (सं० १८३६)

१९० हरिकेश

ये सेहुँडा (दतिया राज्य बुन्देल खड) के निवासी ब्राह्मण थे। महाराज छत्रसाल (शासनकाल स० १७२२-१७८८) और उनके दो पुत्रों जगत राज (शासन काल स० १७८८-१८१५) तथा हृदय साहि (शासन काल स० १७८८-१७९६) की छत्रछाया मे इन्होंने अपना कवि जीवन सार्थक किया। उनके शौर्य वर्णन में लिखे गये इनके अनेक छन्दों में महाकवि भूषण की वाणी

के ओज एव लालित्य के दर्शन होते हैं। वीर सा ही शृगार रस पर भी इनका असाधारण अधिकार था।

इनकी दो रचनायें मिली हैं–जगतराजदिग्विजय और ब्रजलीला। दिग्विजय भूषण म ब्रजलीला से ही नखशिख नायिका भेद और षड्ऋतु वर्णन विषयक तीन छद उदाहृत है।

१९१ हरिजन

इनका कोई वृत्त अब तक प्रकाश म नहीं आ सका है। शिवसिंहजी ने इन्हें स० १६६० में वर्तमान कहा है और इनके कवित्त कालिदास के हजारे मे सकलित बताये है। सरोज में इनका केवल एक कवित्त सग्रहीत है जो भूषण से ही लिया गया है। गोकुल कवि ने षड्ऋतु वर्णन और नायिका भेद पर इनके दो कवित्त उदाहृत किये हैं।

१९२. हरिलाल

इस नाम के चार कवि हुए हैं। पहले हरिलाल गोस्वामी, राधावल्लभी सम्प्रदाय के आचार्य श्री रूपलाल गोस्वामी के पुत्र थे। इनका उपस्थितिकाल स० १७३८ के लगभग है। दूसरे हरिलाल व्यास के नामसे प्रसिद्ध हैं। ये भी राधावल्लभी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इनकी दो रचनायें खोज में मिली हैं— सेवक बानी सटीक और रसिक भेदिनी। ये स० १८३७ में विद्यमान थे। तीसरे हरिलाल मिश्र आजमगढ के रहने वाले थे। ये मुगल बादशाह शाह आलम के आश्रय म रहते थे। इनकी एक मात्र उपलब्ध कृति 'रामजी की वशावली' है, जो स० १८५० के आसपास लिखी गई थी। चौथे हरिलाल मथुरा के निवासी ब्राह्मण थे। इनके तीन ग्रन्थ मिले हैं—दशम स्कन्ध, ब्रजविनोद लीला पचाध्यायी और ब्रजविहार लीला।

दिग्विजय भूषण में हरिलाल कवि का एक छन्द उदाहृत है, जिसका प्रतिपाद्य विषय नखशिख है। उपर्युक्त हरिलाल नामाराशी चारो कवियों म से वह किसकी रचना है, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता।

१९३ हितहरिवश

स्वामी हितहरिवश, गौड ब्राह्मण केशवदास के पुत्र थे। इनका जन्म मथुरा के निकट बादग्राम में वैशाख शुक्ल ११, चन्द्रवार स० १५३० को हुआ था। इनकी माता का नाम तारावती था। इनके माता पिता मूलत देवबन्द (जिला सहारनपुर) के निवासी थे। इनके दीक्षागुरु गोपालभट्ट, मध्व सप्रदाय

के अनुयायी थे। कुछ काल तक साधनापूर्ण जीवन व्यतीत करने के पश्चात् इन्होंने स्वय एक नये मत का प्रवर्तन किया, जो राधावल्लभी सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रसिद्ध है कि इस नये भक्ति मार्ग की प्रेरणा हित हरिवंश जी को राधाजी से प्राप्त हुई थी और उन्होंने स्वप्न में इसकी सर्वप्रथम दीक्षा हित हरिवंश जी को स्वय दी थी। सम्प्रदाय का 'राधावल्लभी' नाम और उसकी उपासना पद्धति में राधा जी की प्रधानता का यही रहस्य है। सम्प्रदाय में ये वंशी के अवतार माने जाते हैं। इन्होंने वृन्दावन मे राधावल्लभ जी की मूर्ति स० १८५२ में प्रतिष्ठित की और तब से उसी विग्रह की सेवा करते हुये साम्प्रदायिक सिद्धान्तों का प्रवर्तन एव प्रचार ही अपने जीवन का एक मात्र लक्ष्य बनाया। इनका लीला प्रवेश शरत्पूर्णिमा स० १६०९ को हुआ।

हरिवंश जी विदेहमार्गी गृहस्थ भक्त थे। इनकी दिव्यधाम यात्रा के अनन्तर साम्प्रदायिक परपरा का प्रसार इनके चार पुत्रों—वनचन्द्र, कृष्णचन्द्र, गोपीनाथ और मोहनलाल द्वारा हुआ। इस सम्प्रदाय के प्रमुख भक्त कवि हैं–हरिराम व्यास (स १६२०), ध्रुवदास (स० १६५०–१७४०) और चाचा हित वृन्दावनदास (स० १७६५)।

हित हरिवंश जी की निम्नांकित रचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं—हितचौरासी, यमुनाष्टक और राधा सुधानिधि।

१९४. हिरदेस

ये झाँसी (बुन्देलखंड) के निवासी बन्दीजन थे। शिवसिंह जी ने इन्हें स० १६०१ में उपस्थित बताया है। दिग्विजय भूषण में इनका एक शृङ्गारी छन्द उदाहृत है। सरोज में भी वही उद्धृत किया गया है। इनकी एक रचना 'शृङ्गार नवरस' का पता चला है। उक्त छन्द उसी से लिया गया है।

१९५. हेम

इनके व्यक्तिगत जीवन के विषय में कुछ ज्ञात नहीं। दिग्विजय भूषण में इनके दो छन्द उदाहृत हैं और सरोज में एक। इनसे ये शृङ्गारी परपरा के कवि सिद्ध होते हैं।



दिग्विजय-भूषण

दिग्विजय-भूषण

भूमिका

बरवै—गौरिनन्द पद सुमिरौ, हिय धरि ध्यान।
जाकी कृपा बिलोकनि, पूरति ज्ञान ॥१॥

दोहा—ऐरावति के दक्ष तट, महा बिमल अस्थान।
बसै नगर बलिरामपुर, कोबिद सुकबि महान ॥२॥

चौहट हाट बजार वर, बरन चारि जहँ स्वच्छ।
निज निज बिद्या बिज्ञ सब, धर्म कर्म मे दच्छ ॥३॥

नित्य जहाँ कोबिद सभा, सुकबि विलास उदार।
बितपति[1] प्रतिभा मंजुमय, नव नव युक्ति अपार ॥४॥

महाराज दिग्विजय सिंह, सबको करि सन्मान।
दियो जीविका हेतु बहु, रतन, ग्राम, गज दान ॥५॥

सुबुध गदाधर शर्म्म को, बिद्या गदा प्रहार।
नहि कवउ कबि कोबिद भयो, सहन शील सभार [ससार] ॥६॥

तासु निकट बिद्या पढे, भूरि शिष्य मतिमत।
तिन्ह मे यक 'गोकुल' भयो, रचना मे बलवंत ॥७॥

सुगुरु कृपा पीयूष पिय, प्रति दिन करि अभ्यास।
साहित्यागम सिन्धु मथि, रतन लहे अनयास[2] ॥८॥

मम पितृव्य के निकट जब, पढ़िबे बिद्या रीति।
काव्य कोष उत्कर्ष लखि, भई सुपावन प्रीति ॥९॥

राजसभा नित काव्य की, चर्चा होवै वेश।
तहँ मम युक्ति नवीन लखि, कबि यों कियो निदेश ॥१०॥

भाषा प्रथन को तिलक, कीन्हे भाषा माहिं।
तुम मम बिशद प्रबध को, अधिक नृपति प्रिय चाहि ॥११॥

संस्कृत सम्मत जाहि लखि, कबि कोबिद मुद होय।
काव्य कोष बहु ग्रथ मत, कीजै रचना सोय ॥१२॥

कबि निदेश अरू भूप रुचि, समुझि महोदय बात।
ताके बिशद प्रबन्ध को, करो तिलक बिख्यात ॥१३॥

शब्द, अर्थ, ध्वनि, व्यग्य, रस, अलकार सु अनूप।
गुन अरु रीति बिलासमय, कीन्हे राम स्वरूप ॥१४॥



१—व्युत्पत्ति। २—अनायास।

श्रीगणेशाय नम

॥ अथ दिग्विजय-भूषणं लिख्यते ॥

प्रथमः प्रकाशः

छप्पै—गनपति, गौरि, गिरीश, गिरा, विधि, रमा, रमापति।
राजराज[1], सुरराज, सप्त ऋषि, पावन जलपति॥
राहु, केतु, शनि, भौम, शुक्र, बुध, गुर, रबि, निशिपति।
मच्छ, कोल कहि, कच्छ, सिहनर, बामन, भृगुपति॥
सिय रामचद, बृजचद प्रिय, बौध कलकी अघ हरै।
कहि 'गोकुल' शुभ सव दिन सदै, ए छतीस रच्छा करै॥१॥

दोहा—एक[2] रदन करिवर बदन, लम्बोदर यहि हेत।
गुन अनत लहि बिघुनबन, कर पसारि गहि लेत॥२॥

टीका—गनपति०—गणेश, पार्वती, शिव, सरस्वती, ब्रह्मा, लक्ष्मी, बिस्नु, कुबेर, इन्द्र, सप्तर्षि, बरुण, राहु, केतु, शनेश्चर, मगल, शुक्र, बुध, बृहस्पति, सूर्य, चन्द्रमा, मत्स्य, कच्छप, बाराह, नृसिह, वामन, परशुराम, सीताराम, राधाकृष्ण, बोद्ध और कल्की पाप को हरते सर्वदा शुभ प्रद हैं ये छतीसों देवता रच्छा करें। 'राजराजो धनाधिप' इत्यमर। सप्तर्षि यथा। मरीचि, अरुधती सहित वशिष्ठ, अगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, इति। यह क्रम जिस प्रकार सप्तर्षि मडल है तैसो लिख्यो है। इस आशीर्वादात्मक मगल में कवि का यह तात्पर्य है कि गणेश विघ्न हरैं, पार्वती मगल [देवैं] शिव कल्याण, सरस्वती और ब्रह्मा बुद्धि, लक्ष्मी निवास, बिस्नु भक्ति, कुबेर संपत्ति, इन्द्र राज्य, सप्तर्षि आयुर्बल, वरुण बल, राहु आदि पापग्रह विघ्न परित्याग करि शुभ फल, शुभ ग्रह शुभ फल, सूर्य्य प्रताप, चन्द्रमा सकल जनाह्लाद, दश अवतार रच्छा पूर्वक संसार रक्षकता देवैं। इति॥१॥

१—राजराज = कुबेर।

२—गणेशजी का एक (अनुपम) दाँत, विशाल हाथी का मुँह, लम्बा (विस्तीर्ण—जिसमे सब समा जाय ऐसा) उदर है, ऐसे ही अनन्त गुणो के होने से वे भक्तों के विघ्नरूप वनको कर (सूड) फेलाकर अपने में समेट लेते हैं।

गौरी गणेश वन्दना (श्लेष)

दंडक—पावन[1] सुभग गति सेवत परमहंस,
जात न प्रकाश कहि हारी मति शेष की।
आभा करिवर मुख बिघुन बिमुख करै,
देत शुभ सुख हित आली जन बेश की॥
सोहत बिशाल भाल सेंदुर बिलास स्वच्छ,
केसकै बखानि शोभा घालै तम भेस की।
दूषन दलनहारी भूषन बरनधारी,
प्रनमित पद रज गिरिजा गनेश की॥३॥

टीका—गणेशपक्षे। पावन पद० कहे पवित्र गति पावत है परमहंस, जात न प्रकाश० जात नहीं प्रकाश कहि०, आभा कहे शोभा, गजमुख देखि बिघुन भागि जात, देत सुख० आली कहे भौंर जे मद के हेत बिहरत, जन कहे दास जाकी आकृति जन की भाँति है ताको क्षेम सुख अरु हित कहे पथ्य देत है। 'शुभो हेम शुभ क्षेमे वाच्यवत् क्षेमशालिनीति' मेदिनी। 'हित पथ्ये गते धृते' इति मेदिनी। सोहत बिशाल कहे शोभित है बिशाल कहे प्रथुल भाल ललाट 'विशाला त्विन्द्रवारुण्यामुज्जयिन्या तु यापिति। मृगपक्षिभिदे पुंसि पृथुले त्वभिधेयवदिति' मेदिनी। 'भाल तेजोललाटयोरिति' मेदिनी। तामें सेंदुर अरुन भ्रमतम को मिटाइ देत इति॥

गौरीपक्षे पावन०—पावन कहे दोनों पायमें जो गति है ताको, हंस सेवत हैं। कहे सीखिबो चाहे हैं, जातन० जाके तन के प्रकाश के कहिबे में शेष की मति हारि जाती है। आभा करिवर मुख० शोभा करि कै वर कहे श्रेष्ठ मुख देखि बिघ्नेश बिमुख करै है अथात् हरि करि देय है। शुभ सुख० आली सखी जन कों सुख देत है। सोहत पद० भाल मे सेंदुर सोहत, केश पद० केश जो भार ताकी आभा देखि तम अंधकार भागिजात, उपमान के उत कर्षतासों॥३॥

१—"नानार्थसंश्रय श्लेषो वर्ण्यावर्ण्योभयाश्रित" (कुवलयानन्द)। यहाँ 'पावन' आदि प्रत्येक पद अपने भिन्न भिन्न अर्थों द्वारा स्तूयमान (गिरिजा और गणेश) की पदरज का ही बाधक है। अत प्रकृत श्लेष है। विशेष देखिये अलंकार प्रकरण।

दोहा—राधा राधानाथ पद, सीता सीताराम[1] ।
गौरी गौरीनाथ कों, बन्दौं पूरन काम ॥ ४ ॥

राधाकृष्ण वन्दना (श्लेष)

सवैया किरीट छन्द—

मान[2] सुकेशी के हेरि हरे शिर वारन जीतिलिए अहि कायक ।
पावन जे हरि स्वच्छ महावर काति भरी जुलफैं हैं शुभायक ॥
'गोकुल' वै कहि जात न मंजु धरे नगहार हिए घनभायक ।
आनँद कंद सदै भजिए पद बंदिए राधिका राधिकानायक ॥५॥

टीका—राधिकापक्षे । मान सुकेशी पद०—मान कहै गर्व सुकेशी अपसरा को हरी है, "घृताची मेनकारम्भा उर्वशी च तिलोत्तमा । सुकेशी मञ्जुघोषाद्या कथ्यन्तेऽप्सरसो बुधै ॥" इति अमर टीका । शिरवारन पद० वार अहि सर्पन की कायक कहै देह के रंग को जात, पावन पद० पावन कहै दूनौ पाय मे, जे हरि० पैजनी महावर जावक जुत, काति भरी पद० छवि के भार से जुलफैं उने जाता हैं । शोभा से लसता, गोकुल वै० कवि उक्ति वै अवस्था जाके तन में मंजु रमणीय नहीं कह्यो जाय है, नगहार हिए पद० नग कहै रतन सों जडित हार हिए घनकहै सघन है ।

कृष्णपक्षे । मान सुकेशी०—मान कहै अभिमान, सुकेशी दैत्य केशी के सेना को नाश किए, शिरवारन पद० शिरकहै मस्तक वारन हाथी कुवलयापीड को फारे, 'वारण प्रतिषेधे स्याद्वारणस्तु मतङ्गजे' इति मेदिनी । अहि कहै काली नाग ताको जीति लिये नाथि लाए, पावन जे हरि पद० पावन पवित्र है जे हरि और सुन्दर हैं काति शोभा सों भरी जुलफैं कहे काकपक्ष, गोकुल वै गोकुल मे वै कहि जात नहीं, नग गोवर्धन पर्वत को नख पर धारे हार मुक्ता माल उर पै धारे 'हारो मुक्तावलौ युधीति' मेदिनी । जाहि देखि घन जे बृज बोरिवे को आए हेतु हारि गए ॥ ५ ॥

१—"सीता सीताराम" पद में सीता शब्द की पुनरुक्ति नहीं है । "सीता जिसमें रमण करती है वह" ऐसा अर्थ करके 'सीताराम' पद से कवि का अभिप्राय, राधानाथ और गौरीनाथ की भाँति सीतानायक रामचन्द्र से ही है ।

२—पद्य ५ ६ में प्रत्येक पद, अपने भिन्न भिन्न अर्थों द्वारा राधिका कृष्ण तथा जानकी और जानकी नायक के चरणों का ही बोधक है, अतः यह भी प्रकृत श्लेष है ।

सीताराम बन्दना (श्लेष)

सवैया—न लहै घन कुंतल कांति सो नील बिराजत बीर बिशाल शुभायक।
शुभ सोहै भुजा वर अंगद आदि कहाँ लौ कहौं छबि जे हरि पायक ॥
रिच्छराज सों आनन वोप कला सुगिरीव सलक्षन है सुखदायक।
पद बंदिए जानकी जी के सदाँ अरु मैन समेतहि जानकीनायक ॥६॥

टीका—जानकीपक्षे। न लहै घन पद०—नहीं पावते हैं घन मेघ कुंतल बार के कान्ति स्यामता को, अरु बिराजत पद० बीर कान मे सोहै है, शुभ सोहै० सुंदर सोहत भुजा में। अंगद कहै बिजायट और पाय मे जे हरि, रिच्छ राज पद० रिच्छ नक्षत्र ताके राजा चन्द्रमा ऐसो मुख और सुन्दर ग्री। सहित लक्षन के सर्वांग इति ॥

जानकीनाथपक्षे। नल है पद० नल कुंतल नीलादिक बाँदर बड़े बीर बिराजत अथवा नहीं पावते हैं घन सजल मेघ अरु कुंतल केश कान्ति शोभा स्यामता जाकी इति राम को विशेषण। शुभ सोहै पद० सोहत है अंगद और हनुमान जे पायक दूतपन कियो है। रिच्छराज पद० रिच्छराज जाम्बवान और सुग्रीव सहित लच्छिमन के शोभित हैं रामचन्द्र। इति ॥६॥

गौरीशंकर बन्दना (श्लेष)

सवैया—केसकै[1] आभा बखानि महाद्युति पन्नग की परकाश शुभायक।
राजै बिभूति बिभूषन अंग अभूत प्रभा कहि जातन लायक ॥
भालहै लोचन आनन वोप[2] कलाधर की सुषमा वरदायक।
'गोकुल' तो भजु पारबती पद औ पद पारबतीकर नायक ॥७॥

टीका—गौरीपक्षे केस कै पद०—केस कहै बार तिन की आभा पन्नग की द्युति को प्रकाशत है। राजै बिभूति पद० बिभूति कहै ऐश्वर्य जितने हैं तिनके भूषन अंग में राजत हैं। 'भूतिर्विभूतिरैश्वर्यमणिमादिकमष्टधा' इत्यमर। अष्टधेति यदुक्त तदाह—

अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा।
प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्टभूतय ॥ इति।

जातन० जाके तन लायक है अभूत प्रभा अर्थात् अनुपम प्रभा जाकी उपमा नहीं, भा लहै पद० भा कहै शोभा को लहै है लोचन, आनन चन्द्रमा की सुषमा वर स्वच्छता देवे लायक। शंकर पक्षे—के सकै पद०—के बखानि सकै आभा शोभा महाद्युति बड़ी शोभा, पन्नग को अर्थात् पन्नग के फणों मे

1—यह भी प्रकृत श्लेष है। 2—वोप (ओप) = चमक।

मणि विराजै है तासों प्रकाश के आधिक्य, तास शोभा नहीं कहा जाय है, राजैं बिभूति कहै भस्म ताही को भूषन, भाल है पद०—भाल कहै माथे में लोचन है तीसरो और चन्द्रमा को धारे हैं। इति ॥७॥

दोहा—देश नगर बन बाग गर, सरिता सृष्टि सरूप।
नृप कुल ग्रथ अरभ मे, है कवि नेम अनूप ॥८॥

देश-बरनन

दो०—असन बसन बन बाग गढ, सरिता गुन गन वेश।
धनी बेद बिद्याबिशद, भाषा भूषन वेश ॥९॥
जाहिर जग बिद्या बिबिध, चारिउ बरन उदार।
नगर नाम बलिरामपुर, रजधानी जनवार ॥१०॥
राजै बाग तड़ाग बहु, कलित कला चहुँवोर।
सजल कमल सों कलित कुल, सुमन सुगध झँकोर ॥११॥
गुजत मजु मलिद गन, कल कोकिलके बैन।
समै सुहावन शुभ सदे, मनो मनोभव ऐन[1] ॥१२॥

जथा दंडक—बाग बन बावली तड़ाग बहु आस पास,
गग अयराजती जो रापती बखान है।
चौहट बजार चारु चारिउ बरन राजै,
बिद्या बहु भाँति जहाँ बेद को बिधान है॥
द्वार द्वार देबालय कला कलधौतन की,
जोगी जती गुनीजन कोबिद महान है।
राजै महाराज दिग्विजैसिंह राजधानी,
नाम बलिरामपुर काशी के समान है ॥१३॥

बन-बरनन

दोहा—केहरिनी केहरि करी, हरिनी बहु बन जीव।
तरुबल्लीतर तापसी, तन तप तापस सीव ॥१४॥

जथा श्लेष में॥

सवैया—के[2] सकै पन्नग आभा बरानि बिराजित भालु बिशाल अहै।
स्वच्छ कुरग है अक्ष कला करिहाँऊ जो केहरि कानि लहै॥
पुञ्ज प्रभा तरुनीके सबै परभाभात जोजन मजु रहै।
'गोकुल' कानन को अवलोकि किते कबि कामिनि रूप कहै ॥१५॥

१—ऐन = (अयन) निवास।

२—श्लेष, उपमा, भ्रांति और रूपक (व्यस्त) का परस्पर अङ्गाङ्गीभावेन सांकर्य है।

टीका—व १पक्षे— क सकै पद० के बरनि सकै, पन्नग जो सर्प 'पन्नग औषधीभेदे पन्नगे पवनाशने' इति मेदिनी। और भालू है, कुरग कहै मृगा है, करि हाथी, हौंऊ कहै भेड़िया, केहरि कहै सिंह, तरु कहै वृक्ष, जो बन कहै बन सुंदर है। 'बन नपुसके नीरे निवासालयकानने' इति मेदिनी। नायिकापक्षे —केस के पद० केस कहै बार पन्नग को आभा ऐसी है, इहाँ बाचकलुप्ता, भाल कहै माथ, शोभामान, 'शोभा कान्तिर्द्युतिश्छविरि'त्यमर, अक्ष कहै नैन कुरग के नेत्र के सदृश हैं। इस पद मे वाचकोपमानलुप्ता लङ्कार होवै है। इहाँ कुरग के नेत्र के सदृश सो नेत्र शब्द उपमान को लोप भयो है। और अक्षि नेत्र उपमेय, कुरग नेत्र उपमान, इव वाचक, स्वच्छता धर्म, तामें नेत्र उपमान अरु इव वाचक नही यातें बाचकोपमानलुप्ता, श्लेष को अङ्ग है। करिहौंऊ पद० करिहौंउ कहै कटि, कहरि कहै सिंह की कटि के सदृश कांति शोभा लई है, इहाँ भी उसी भाँति वाचकोपमानलुप्ता होवै है। पुंज प्रभा तरुनी के पद० पुज कहै समूह, प्रभा प्रकाश होवे है। जोबन युवा अवस्था मजु रमणीय रहिके अर्थात् मदन के प्रादुर्भाव से नायिका की कान्ति कामिजन मनोहर होवे है, तरुनी कहै नायिका की है। यद्यपि इस पद मे शोभा पद नही है तथापि धात्वर्थ शक्ति सों शोभार्थ को लाभ होय है। 'भा दीप्तौ' इति धातु। कवि की उक्ति—ऐसे बन को देखि काहू कवि कामिनी नायिका के रूप को कहै है। इति ॥ १५ ॥

बाग—बरनन

दोहा—बलित बिटप बल्ली बिपुल, पुज प्रसून प्रकाश।
भँवर भीर सौरभ सुभग, खग पिक बोल बिलास ॥१६॥

कवित्त

दंडक—रजत[1] रसाल मोर स्वच्छ मौलसिरी सोहै,
सुदर सिंगार हार सोभा को बिलास है।
जात न बखानि कला कुदन की कांति पुज,
सुमन प्रकास पेखे होत अनुराग है।
रंभा आदि तरुनीकी बरनै बड़ाई कौन,
बोल कोकिला को अलि सेवै भरे भाग है।
'गोकुल' कबित्त कीन्हीं ब्रज बनिता को रूप,
कबिता कहत कोऊ राजे भूप बाग है ॥ १७ ॥

1—यह भी श्लेष आदि का सकर है।

टीका—नायिकापक्षे। राजत रसाल पद०—[राजत] कहै सोहत साफ अर्थात् धोय कै तेलादिक लेपन कियो है, तासों अति स्वच्छ और चीकने बार ताको "रसाला रसनादूर्वाविदारीमाजितासु च। रसाल सिह्लके चोले रसालश्चेक्षुचूतयो" ॥ इति मोदनी। मोर नाम जूरा, मोल कहै माथ म ताकी सिरा कहै सोभा सों सोहै अर्थात् बार को जूरा देखने से जेसे घटा देखि मयूर मोहै है वाही भाँति रसिक जन को मोहि जाय है। सिंगार सोरहौं हार आदि आभूषनों सें सुदर उत्तम शोभा भाँति को बिलास है। जातन बखानि पद० [जातन] कहै जाके तन में बखान के योग्य अथवा जात कहै उत्पन्न नव खानि नवीन खानि सों कुदन सोना, ताकी कला कहै आभूषन की रचना, ताकी कान्ति पुज है, जाके कुदन सोना की काति है। जाक पेखे अर्थात् देखन ही से सुमन कहै सुन्दर मन प्रफुल्लित होत और अनुराग [होत है]। रभा आदि पद० जाके आगे रभा आदि अप्सरा ओर तरुना की कोन बडाई है। बृज बनितान के ढिग जिनके बोल कोकिला से हैं ओर अलि कहैं सखा लोग सेइ रही हैं। इति ॥

बागपक्षे राजत पद०—रसाल कहै आम, मार कहै बोर जुत मौलसिरी और सिंगार हार कुदन आदि सुमन प्रकास है। रभा तरुना पद० रभा कहै कदली ओर ब्रक्ष, जिन पै सहित कोकिला के भौंर बोलि रहे हैं ॥ १७ ॥

अथ ताल बरनन

दो०—कलित कमल कुल कोक जल, परिपूरन सब काल।
मजुल बिहरत जीव जल, मीन मनोहर ताल ॥१८॥

(श्लेष)

सवैया–सुदर[1] जोबन बेश बिलासत सारस स्वच्छ प्रकास लहै।
लोयन मीन प्रभा झलकै लखि जात न पानिप मैं उमहै ॥
कोक कला के बिहार हैं मजुल जा परसै तन ताप दहै।
'गोकुल' ताल बिलोकि किते कबि बालको रूप बखानि कहै ॥१९॥

टीका—तालपक्षे। सुदर जोबन पद०—सुदर जीवन कहै जल, सारस कहै कमल जुत प्रकासित है 'सारस सरसीरुहम्' इत्यमर। लोयन पद० कहै शोभा मीन कहै मछरी की प्रभा जल म झलकै है। कोक कला पद० [कोक] कहै चकई चकवा बिचरत हैं। जाके परसे तन ताप मिटि जावै है।

नायिकापक्षे—सुदर जोबन कहै तरुनाई को बिलास, सारस कहै सहित

१—श्लेष और रूपक का अङ्गाङ्गिभाव है।

रस के लोयन मीन पद० लोयन कहे नेत्र, मीन कैसी सोभा दरसावै है, जा तन कहे जाके तन मे पानिप कहे आभा झलकै है। कोककला० कोक कहे कोकशास्त्र की रीति, रति प्रसग मे जिनके परस किए तें काम के ताप मिटि जाय है ॥ १८ ॥

सरिता बरनन

दो०—कमल कलित जलचर ललित, पशु पक्षिन की भीर।
पावन तट तापस बसै, जहँ परि पूरन नीर ॥२०॥

जथा कबित्त

दडक—सुषमा सेवार भले भावत भँवर ऐसे,
भाल है बिसाल मीन अच्छ उमहत[1] है।
शोभित परम मजु जोबन तरग स्वच्छ,
बडे मुख सो मगर सोभा को लहत है।
नीक है निकर नाक कछु आनै छबि छानै,
पानि पाय कमल प्रकास ते रहत है।
'गोकुल' कबित्त किए सरिता स्वरूप राजै,
बनिता बिराजै कोऊ कबिता कहत है ॥२१॥

इति श्री दिग्विजयभूषणे मगलाचरण-देशनगरादिवर्णन नाम
प्रथम प्रकाश ॥ १ ॥

टीका—सरितापक्षे। सुषमा पद०—सुषमा कहे परम शोभा सेवार। भँवर कहे जहाँ जल घूमे है। 'सुषमा परमा शोभा' इत्यमर। मीन मछरी जोबन कहे जल। मगर कहे घरियार। नाक न छुआ प्रकाश करत है। नायिका पक्षे। सुषमा पद०—सुषमा कहे शोभा स वार भले लागत हैं भँवर ऐसे। भा लहे भा कहे आभा को लहत। अक्ष कहे नेन मीन के शोभित परम जोबन तरुनाई। मुख सोम पद० मुख कहे सोम चन्द्रमा ऐसे, गर कहे ग्रीव छबि को लहत है। नीक है नाक पद० नीक है अच्छे हैं, नाक कछु औरई छबि लावे है। पानि पाय कमल पद० पानि कहे हाथ पाय कहे पद कमल कैसी सोभा प्रकाशत हैं ॥ २१ ॥

इति श्री दिग्विजयभूषणे टीकाया मगलाचरण—नगरादिवर्णन
नाम प्रथम प्रकाश ॥ १ ॥

१—उमहना = उमग में आना।

द्वितीयः प्रकाशः

सोरठा—जल थल पवन अकाश, अगिनि अबु कछु नहिं रहो।
महदो[1] रहो अकाश, महाशून्य प्रथमहि रहो ॥१॥

दोहा—महाशून्य तें प्रगट है, मारुत बेग ललाम।
मारुत सों तब अगिनि भो, अगिनि सों जल परिनाम ॥२॥
महा ज्वाल प्रजुलित भई, जल लागो खौलान।
फेन बुन्बुदा प्रगट है, बायु के सग उड़ान ॥३॥
उडे बुदबुदा पौन सों, तासों भयौ अकास।
रहो फेन जल पर जम्यौ, पृथिवी ताको भास ॥४॥
व्यौम बायु मिलि कै प्रगट, शब्द भयो ततकाल।
श्रुति बेद वह बैन है, बिधि मुख प्रकट बिशाल ॥५॥
पाँच तत्त्व गुन तीनि अस, प्रकृति प्रगट पचीस।
जो अकाश प्रथमहि भयो, तासों कहै मुनीस ॥६॥
पाँच तत्त्व सूक्ष्म मनहि, सात्विक अस उदार।
तातें अतहकरन भो, मन बुधि चित अहकार ॥७॥
ताके सात्विक अस तें, अन्तरिक्ष भो सोय।
श्रोत्रेंद्री तासों भई, कहि भविष्य मत जोय ॥८॥
बायू सात्विक अस सों, वाक इद्रि भै स्वच्छ।
अगिनि के सात्विक अस सों, चछु इद्री परतच्छ ॥९॥
जल के सात्विक अस सो, रसइद्री सुखदाइ।
षटरस के जो स्वाद हैं, भेद भिन्न जेहि पाइ ॥१०॥
पृथी तत्त्व सों हाड़, पल, रुधिर, त्वचा करि पौन।
अगिनि तत्त्व चैतन्यता, जलसों बीजहि ठौन ॥११॥
तत्त्व अकाश सों चार भो, मुनि जन कहत बखानि।
देह बिषै सब तत्त्व सों, गुन परकृत पहिचानि ॥१२॥
अन्तरिक्ष मे तेहि समै, प्रगट पुरुष यक आनि।
सोइ गयौ वह तुरतहीं, लाख बरष परमानि ॥१३॥

१—तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाश सम्भूत, आकाशाद्वायु, वायोरग्नि, अग्नेराप, अद्भ्य पृथिवी (तैत्ति० उ०)।

लक्ष जप बीते जबै, शब्द भयो ॐकार ।
श्रवन द्वार होने लग्यो, उठि चेतन्य विचार ॥१४॥
को हम को हम कहँ बस्यो, कौने दई करतार ।
सोऽहं भो तब शब्द यक, निकस्यौ नासा द्वार ॥१५॥

श्लोक—सकारेण बहिर्याति हकारेण पुनर्विशत् ।
हंसो हंसेतिमात्रेण जीवो जपति सर्वदा ॥१॥

दो०—भीतर जात सकार कहि, बाहेर निकरि हकार ।
नाक द्वार होने लग्यो, द्वै अक्षर उच्चार ॥१६॥
तहँ द्वै अक्षर को श्रवन, कीन्हे पुरुष महान ।
भयो उजेर प्रकाश मन, ज्ञान समर्थ सुजान ॥१७॥
अयुत बर्ष यहि भाँति सों, शब्द सुने श्रुतिस्वच्छ ।
जोग भई ईस्वर भयो, बुधि सर्वज्ञ प्रतच्छ ॥१८॥

श्रुतिः—एकोऽहं बहु स्याम इच्छावृत्तिचतुष्टयम्[2] ।

दो०—एको हों बहु होउ मैं, इच्छा वृत्ति सो चारि ।
हँस्यो पुरुष मुख लार बह, प्रगट्यो पुरुष उदार ॥१९॥
बाहु मलन लाग्यो पुरुष, दूजे पुरुष उदार ।
उरू मलत यक और भो, चरन रो चारि उचार ॥२०॥
मुख रा द्विज छत्री भुजन, उरसों बैस प्रतच्छ ।
शूद्र होन भो चरन सों, चारि बरन रचिस्वच्छ ॥२१॥
चाग्यो सों पूरुष कह्यौ, सृष्टि करौ दरसाइ ।
प्रति उत्तर दीन्हे सबै, हम पै क्यों रचि जाइ ॥२२॥
पुरुष क्रोधकरि चितै तब, भए भस्म ततकाल ।
महा सोच पूरुष हिये, श्रम सों भयो बेहाल ॥२३॥
सोच कियो रात बर्ष लगि, बहे लार मुख स्वच्छ ।
महा सुन्दरी लार सों, भई एक परतच्छ ॥२४॥

१—जीवमात्र का प्रत्येक स्वास 'स' उच्चारण से बाहर निकलता है और 'ह' उच्चारण से भीतर जाता है, अतः प्राणी हर समय 'सोऽहं सोऽहं' (अर्थात् स = वह परमात्मा ही, अहं = मैं जीव हूँ, यह) जपता रहता है ।

२—'एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय' यह श्रुति वाक्य है । इसमें-एकत्व, अहत्व, बहुत्व और होना रूप क्रिया, ये चार इच्छा के व्यापार हैं ।

श्लोक—कंठं[1] सुलग्ना पुरुषस्य तत्र
पितुर्मुखे सा कुरुते प्रवेशम् ।
उवाच वाक्य च पितः पितेति
ज्वाला हृदि प्रादुरभून्महीयमी ॥ २ ॥

चौ०—पुरुष देखि कन्या कों जबै । उपजो प्रेम हिये मे तबै ॥
लिये उठाइ कठ मे लायो । मुख फैलाइ बन्दर[2]महँ नायो ॥२५॥

दो०—पिता पिता करने लगी, कन्या उदर मझार ।
महाज्वाल प्रज्वलित भई, पूरुष हिये मँझार ॥२६॥
करि डारो रद[3] पुरुष ने कन्या अँग से स्वच्छ ।
चतुरभुजी बालक भयो, बिस्नु रूप परतच्छ ॥२७॥
वह बालक रोने लग्यौ, नैन से आँसू धार ।
येक बाल औरो भयो, गौर बरन निरधार ॥२८॥
दूनों बालक तेजमय, छन मे भये कुमार ।
प्रथम बाल के नाभिसों, कमल सनाल निकार ॥२९॥
सो सनाल जो कमल है, बारि प्रवाह अथाह ।
ता पकजपै होत भे, ब्रह्मा जग के नाह ॥३०॥
कँह तें आयौ कौन हौ, कौन किए करतार ।
बहुत काल सोंचन कर्यौ, सो यो ब्रह्म उदार ॥३१॥
सोवत मे बिधि उदर मे, पुरुष बिराट प्रतक्ष ।
देखरायौ तब तुरत ही, अपनो रूप अलक्ष ॥३२॥

श्लोक—स[4] एव जातश्च विराट् सुपूरुषः,
कायाभिवृच्छोद (द्धोद्धृ?)-हितः समन्तात् ।

१—अथ—तब पुरुष ने उस सुन्दरी कन्या को गले लगाया किन्तु वह हे पिता ! हे पिता ! कहती हुई (अपने जनक के) मुख मे प्रवेश कर गयी । तदनन्तर उस पुरुष के हृदय में अत्यन्त प्रबल ज्वाला सी धधकने लगी। अर्थात् महती जलन होने लगी ।

२—बद्दर = उदर, ३—रद = के (वमन)

४—उस विराट् पुरुष का शरीर चारो ओर से बढ़ने लगा, नभ (स्वर्लोक) उसके शिर, भुव (अन्तरिक्ष लोक) उसके पैर और पर्वत आदि (भूलोक) उसकी जघाएं हुइ, ये ही तीन लोक कहे जाते हैं ।

नभश्च शीर्षाणि भुवश्च पादः,
गिरयोऽस्य (स्थि?) जघाश्च त्रिलोकसंज्ञाः ॥१॥

छप्पय सीस है अकास जाके पद से पताल तल,
अस्थि से परबत्त गिरि रोम वृक्ष जाके हैं।
मन से नखत चद्र नैन से है मारतड,
वायु है श्रवन से जगत राव ताके है।
जग के प्रपच जेते सचर अचर स्वच्छ,
'गोकुल' प्रतच्छ ब्रह्माड अग वाके है।
अलख निरजन निरामय निरोह प्रभु,
पॉच तत्त्व सृष्टि भये सुख सपदा के हैं ॥३३॥

सोरठा—एक भयो ब्रह्मांड, पॉच तत्त्व के विषय सों।
दूसर जो ब्रह्माड, काया करे बिराट के ॥३४॥

दोहा—आदि शक्ति कन्या हुती, तासों आज्ञा दीन।
कह बिराट तब पुरुष ने, कीजै सृष्टि नवीन ॥३५॥
तब देवी इच्छा करयो, दूत प्रगट यक कीन।
त्रै बालक जल मध्य मे, लै आयो परबीन ॥३६॥
जल महँ हेरे दूत बह, बाल लेष नहि स्वच्छ।
फिरि देवी के पास कहि, मिल्यो न बाल प्रतच्छ ॥३७॥
तब देवी द्रिग दूत के, दीन्हे लार लगाय।
देख्यौ जल के मध्य मे, त्रैबालक बिलगाइ ॥३८॥
सेन कमल पर येक को, येक मडलाकार।
द्वै बालक तामे हुते, बोलो दूत उदार ॥३९॥
दूत जगायौ बालकन्ह, नहि जागे को बाल।
दूत क्रोध जुत बैन कहि, बोलो बचन कराल ॥४०॥
यक को चरन प्रहार करि, दीन्हे तुरत सराप।
बिधि अपूज्य जग होउ तुम, जैसे कीन्हो पाप ॥४१॥
रुद्र जगायौ दूत फिरि, नहि जाग्यौ परतच्छ।
दूत चरन मारन चल्यौ, शिव लरिबे कहँ दच्छ ॥४२॥
दूत क्रोध करि श्राप दिय, लिंग भग जग होइ।
बिष्नु हृदै महँ लात हति, त्राहि त्राहि कहि सोइ ॥४३॥

या बिधि तीनों बाल को, दूत जगायो जाइ।
तब ब्रह्मा रोने लगे, कौन कहाँ हम आइ ॥४४॥
नभ बानी तब होत भइ, तप कीजे उत जोग।
ऊर्द्ध दृष्टि तब बिधि भयो, बहुत काल करि जोग ॥४५॥
हिय अंतर परकाश भै, हरिहर जल लखि स्वच्छ।
ब्रह्म लगायो अंक में, तासों भे परतच्छ ॥४६॥
ब्रह्मा के अंग मेल से, दश बालक उतपत्य।
बिधि उनसे भाषे तबे, कीजे सृष्टि जो सत्य ॥४७॥
दश बालक बोले तबै, हम बिराग मय ज्ञान।
सृष्टि मानसी नहिं चली, तब बिराट अनुमान ॥४८॥
आज्ञा देवी को दई, कीजे सृष्टि उदार।
बिधि हरि हर के पास को, तब चलि गई निहार ॥४९॥

श्लोक—विश्वेश्वरी[1] विश्वकलाऽऽदिपूरुषं,
कामातुरं तत्र समागता च।
समाश्रयात्तस्य पुरश्च शब्द
रति वरं देहि ममाभिकामा ॥ ४ ॥

दो०—पुरुष सों देवी के हिये, प्रगट कीन बहु काम।
बिधि हरि हर सों यह कह्यो, कीजे रति अभिराम ॥५०॥
यह सुनि तीन्यो देव, कीन्हे सोच अपार।
तुम माता तुम ही पिता, तुम जग सिरजन हार ॥५१॥
हम तीन्यो तव पुत्र हैं, जननी तुम मम सोइ।
उचित नहीं तुमको वरे, धर्म पराजय होइ ॥५२॥
अति प्रसन्न है देवि तब, कीन्हे जब हुंकार।
महा अग्नि प्रगटी तबै, तासो ज्वाल अपार ॥५३॥
येक ज्वाल सों सींगि मुख, पूँछि पृष्ठ तब कीन।
दूजे सों छाती करयो, प्रगट ज्वाल तब तीन ॥५४॥
श्रवन, रोम, खुर, आदि, करि गऊ भई तैयार।
अस्तन सों तब पय चरयौ, पीलियो बिस्नु उदार ॥५५॥

१—संसार की स्वामिनी और संसार को रचनेवाली उस देवी को देखकर आदिपुरुष कामातुर होगये और उन्हें इस अवस्थामें पाकर देवीने कहा तुम मेरे साथ यथेच्छ रमण करो।

गायत्री रूपी गऊ, बिस्नु दोह किय पान।
जो अनादि मय बेद है, टिको छिनै अरथान ॥५६॥
फिरि निकसो पय उदर ते, नारौ अण्डा सात।
सप्तव्याहृती होत भो, बढी उनहिं उन जात ॥५७॥
सात कियो आकाश मे, सात कियो पाताल।
सातौं अण्डा सो रच्यो, चौदह लोक बिशाल ॥५८॥
भू भुव स्व जन महर, तप सत लोक प्रतच्छ।
अतल बितल सुतलै कियो, और महातल स्वच्छ ॥५९॥
कियो तलातल रसातल, औरौ कियो पताल।
अण्डा सों चौदह भुवन प्रगट भयो ततकाल ॥६०॥
फिरि देवी सुरभी भयी, कियो अगर्ते ढारि।
काली लछिमी सरस्वती सुन्दर रूप सँवारि ॥६१॥
ब्रह्मा बिस्नु महेश को, दीन्ही तुरत हँकारि।
काम न्याह देवी हिये, तुरत गये तब हारि ॥६२॥
फिरि सुरभी सो प्रगट भये, गोलाकार हताश।
महाज्वाल सो छिति तबै, कपन लगी निराश ॥६३॥
बहि अगिनि सों प्रगट भै, तुरग बेग बलवान।
पौन रूप यक रथ भयौ, शोभा सुभग बखान ॥६४॥
गोलाकार जो बहि है, सो रथ पर असवार।
भ्रमत कुलाले चक्र सम, अडकटाह अपार ॥६५॥
नव टुकडे पृथिवी भई, तासों भो नव खण्ड।
बीच खण्डठित जो रहा, सप्तदीप कहि चण्ड ॥६६॥
यह बिराट अनुसाम्नै, सृष्टि मानसी स्वच्छ।
सृष्टि मैथुनी अब कहौं, सुनि लीनै [जे] परतच्छ ॥६७॥
देखि मानसी सृष्टि को, बिधि हरि हरहिं बिचार।
बिना मैथुनी सृष्टि के, है है नहि ससार ॥६८॥
बिधि गायत्री देवि कों, कीन्हे हिय मे ध्यान।
श्रुति प्रगट्य है यह कहेउ, कीजै जज्ञ महान ॥६९॥
बहि जो गोलाकार सों, काम धेनु परतच्छ।
बिधि हरि हर के पास चलि, बोली बचनहि स्वच्छ ॥७०॥
सोरठा —जो कछु इच्छा होइ, बिधि हरि हर सों यह कह्यो।
जज्ञ सामग्र सोइ सुनत बैन सब प्रगट कियौ ॥७१॥

दोहा—बेद उक्ति ब्रह्मा तबै, जज्ञ कीन्ह अभिराम।
बह्नि सिखा मारुतहि सों, दामिनि भई ललाम ॥७२॥
चमकन लागी दामिनी, वायू भ्रमन बिलास।
अगिनि धूम स मेघ भे, पुस न पुस अकास ॥७३॥
जल लागे बरषन तबै, गर्भ छमा उर आइ।
ताहि स्वास पाला, उपल, त्रिन, बन, औषध गाइ ॥७४॥
पान, फूल, फल, अन्न, धन, पृथी, कीन उतपत्य।
जज्ञ मध्य बिधि के मुखन, बेद अनादि जो सत्य ॥७५॥
परतीची मुख सों भयो, बेद अथर्बन स्वच्छ।
प्राची मुख सो जजुर भो, दक्षिन साम प्रतच्छ ॥७६॥
ऊदीची रिग आमनये[1], बिधि मुख प्रगटे चारि।
जज्ञ पुरुष तब प्रगट भो, पूरन जज्ञ निहारि ॥७७॥
त्रै अंडा कर में लिए, बिधि हरि हर कहँ दीन।
पालन पोषन संहरन, ह्वै है तव गुन तीन ॥७८॥
जज्ञ पुरुष यक बेलि दल, दीन्हे पियो सुजान।
यह कहि कै नै देव सों, ह्वै गो अन्तरध्यान ॥७९॥
बिधि हरि हर तब बेलि को, लिय निचोय करि पान।
तीनि लोक चौदह भुवन, सात दीप अँखियान ॥८०॥
जग रचना सर्बज्ञता, ज्ञान सिरोमनि स्वच्छ।
बिधि हरि हर अनरूप किय, अंडा उदर अदच्छ ॥८१॥
चौरासी लक्ष जोनि जो, उदर हमारे होइ।
दिब्य दृष्टि सों जानि लिय, त्रै अण्डा गुन सोइ ॥८२॥
यह बिचार करते रहे, चेष्टा भयो मनोज।
कुंड भस्म अवरन कियो, अन्तर परदा बोज ॥८३॥
तुल्य भीति[2] के देखि कै, बिधि हरि हर सुख पाय।
अपने अपने नारि सों, रति प्रसंग किय जाय ॥८४॥
जज्ञ कुंड की भस्म जो, उड़ी पवन संग स्वच्छ।
सिमिटि सिमिटि परबत भये, छिति आछादन दच्छ ॥८५॥
काली लक्ष्मी सरस्वती, गर्भ भये ततकाल।
तब ताके उतपत्य भै, महासुभग त्रैबाल ॥८६॥

---

१ आम्नाय = बेद। २ भीति = भित्ति, दीवार।

छन में भये कुमार तब, गगन गिरा तेहि काल।
लछ चौरासी जोनि है, बालक उदर बिशाल ॥८७॥
करो मथन इन को उदर, सुनि त्रे देव ललाम।
इच्छा की ही मथन को, बाल समर कहँ बाम ॥८८॥

श्लोक—रुद्रं[1] करे स्पृश्य महाकरालं
मिमन्थिषन्ती मलिनं तु पूरुषम् ।
दीर्घः कुमारः शिथिलांगरुद्रो
विष्णुं बभाषे चित्तवृत्तिरोधः ।
परोक्षविष्णुः समरे प्रतीतः
क्षमः क्षमः पुत्र पिता तवायम् ॥

दोहा—येक कुमार कोप करि, मथन को कियो बिचार।
युद्ध जुद्ध होने लगेउ, रुद्र पराक्रम हार ॥८९॥
चित रोधन करि रुद्र तब, बिस्नु को कियो पुकार।
कमलापति आयौ तहाँ, बोल्यो बैन उदार ॥९०॥

चौ०–पुत्र तुम्हार पिता ये नीके। इन सों लरे काम सब फीके।
पुत्र पिता सन बैर बराई। हानि होय जग माहँ हँसाई ॥९१॥
यह सुनि किय कुमार रिसि भारी। रमानाथ कहँ मुष्टि प्रहारी।
लपटि गयौ कमलापति काया। करत जुद्ध जलनिधि महँ आया ॥९२॥
रुद्र बिस्नु के रहे कुमारा। तेऊ तहाँ गयौ बरिआरा।
तब बिराट देखो बल भारी। बिधि हरिहर के बल गय हारी ॥९३॥
दै निदेश देवी कहँ तबहीं। मथन करौ तन खल के अबहीं ॥९४॥

दो०—यह सुनि देवी क्रोध करि, नख ते ग्रीवाँ फारि।
बिस्नु कुमार के उदर ते, देव सपक्ष निकारि ॥९५॥
दुसरे अंस से बृहस्पति, तिसरे सों यह कीन।
गरुड हंस खग आदि दै, प्रगट कियौ परबीन ॥९६॥

---

1 महाकराल, मलिनपुरुष रुद्र को हाथ से छूकर मथन करने की इच्छा करने लगी। तब बड़े कुमार रुद्र थक गये और चित्तवृत्तिनिरोधपूर्वक विष्णु को पुकारे। विष्णु ने युद्ध में प्रकट होकर कहा। हे पुत्र! यह तुम्हारे पिता हैं इनसे युद्ध न करो।

बिधि कुमार को अँग मथ्यो, भयौ महाजन स्वच्छ।
महर लोक बासी भयो, निकसे देव प्रतच्छ ॥९७॥
जो सपक्ष सुर प्रथम भो, ताको आज्ञा दीन।
तुम सुरलोकहि जाय कै, पक्ष छुवाय प्रबीन ॥९८॥
पक्ष छुवाये देव अँग, ह्वैगो तन द्वै खण्ड।
इन्द्री जुत सब देव भे, गे सुरलोक अदण्ड ॥९९॥
मथन कियौ कटि को जबै, नाभी उदर गभीर।
कामधेनु उच्चैश्रवा, ऐरावत लै बीर ॥१००॥
कलपबृक्ष बारुनि सुधा, प्रगटे ताके अंग।
सब अंगन के अंस सों, कूर्म सु येक अभंग ॥१०१॥
वाके अङ्ग बिस्तार बहु, जितने छिति बिस्तार।
जल के नीचे जाय कै, लियो छमा को भार ॥१०२॥

सोरठा—हर कुमार को सीस, मथन कियो जगदम्बिका।
निकसे कहैं मुनीस, फण सहस्र को सेस भो ॥१०३॥

दो०—जल अन्तर मे बास किय, तहँ बिराट करि सैन।
फिरि ताको छाती मथ्यौ, हरि हर गन उतपैन ॥१०४॥
उदर शुक्र शनि पेंडु से, दैत्य हलाहल चारु।
कटि से सिंह पिसाच उर, पग से सर्प निकारु ॥१०५॥
कर सों बिसुकर्मा भयो, आँतो सो सफरीन।
मास अहारी रोम सों, रुधिर सों जलचर कीन ॥१०६॥
बिधि हरि हर रोदन कियो, आँसु गिरे जल माहँ।
जलमानुस तासों भये, या बिधि सृष्टि निबाहँ ॥१०७॥
जलचर थलचर गँगनचर, सुर नर नाग जितेक।
सृष्टि किये या बिधि प्रगट, रचना किये अनेक ॥१०८॥

इति श्री दिग्विजयभूषणे सृष्टिक्रमवर्णन नाम
द्वितीय प्रकाश ॥२॥

तृतीयः प्रकाशः

चौ०—तब त्रैदेव कियो अनुमाना। भिन्न भिन्न करि बरन बिधाना।
तब ब्रह्मा मरीच उपजाए। ताके कस्यप सुत सुभ भाए ॥१॥

दो०—कस्यप के सुत होत भे, श्राद्धदेव[1] मनु स्वच्छ।
श्राद्धदेव के दस तनय, ज्ञानी भये प्रतच्छ ॥२॥

चौ०—प्रथम भयो इक्ष्वाकु ललामा। नृग सरजाति दिष्ट अभिरामा।
धृष्ट करूषक पँचए जानो। कहि नरिष्य अरु पृषधर मानो ॥३॥
नभग नाम कबि दश ए कहिए। नृग के वंश भए सो लहिए ॥४॥

अथ नृग को वंश बरनन

चौ०—नृग सुत सुमति नाम अस भयऊ। भूतज्योति ताहि सुत ठयऊ।
तासुत भे प्रतीक बलवाना। ताके बोधवान परमाना ॥५॥

नरिष्यंत को वंश बरनन[3]

चित्रसेन ताके भो नीके। ताके ऋक्ष परमगुन ठीके।
ता सुत भो विद्वान उदारा। ताके कूर्च नने बरियारा ॥६॥
ताके इन्द्रसेन गुन आगर। ताके बीतिहोत्र भे नागर।
सत्यश्रवा ताके सुत भए। उरूश्रवा सो सुत उपजाए ॥७॥
ताके देवदत्त गुन पावन। ताके अग्निवेश्य मन भावन।
तपबल सो भे ब्रह्म रिपीशा। दिष्ट को बस नभग अवनीसा ॥८॥
बैश्य भये करि बैश्य करम को। सुनो बस बिस्तार परम को ॥९॥

१—ततो मनु श्राद्धदेवः सञ्ज्ञायामास भारत।
श्रद्धायां जनयामास दशपुत्रान् स आत्मवान् ॥
इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूषकान्।
नरिष्यन्त पृषध्र च नभग, च कवि विदुः ॥
(भागवत ९।१।१० ११)

२—देखिये भागवत ९।२।१७ १८। ३—वही ९।२।१९ २७।

अथ दिष्टि[1] को वंश बरनन

तासुत भये भलंदन नामा, बत्सप्रीति ताके गुन धामा।
ताके प्रांसु प्रांसुसुत परमिति, ता सुत भो खनित्र बैरीजिति ॥१०॥
ता सुत चाछुष नाम ललामा, ता सुत बीनिरानि गुनधामा।
ताके रम्भ नाम सुत भाए, ता सुत भे खनिनेत्र सुहाए ॥११॥
भए करधम तनै उजागर, ताके बीच्छित भे सुत नागर।
ताके मरुत ताहि सुत दम कहि, दम के सुत राजा बर्धन लहि ॥१२॥
तासुत सुधृति ताहि के नर भे, नर के सुत केवल कहि वर भे।
ताके बधुमान सुत सोहै, ता सुत बेगवान कहि जोहै ॥१३॥
बेगवान के बुध सुत ठाये, बुध के त्रिनबिंदू सुत भाए।
त्रिनबिंदू के सुत त्रै भायो। प्रथम बिशाल नाम उपजायो ॥१४॥
दूजे शून्यबधु अस नामा। तीजे धूम्रकेतु अभिरामा।
भे बिशाल के हेमचन्द कहि। ता सुत भे धूम्राक्ष नाम लहि ॥१५॥
ताके सुत सजम हि उदारा। सजम के कृशाश्व सुबिचारा।
ताके सोमदत्त सुत पावन। ता सुत सुमति नाम मनभावन ॥१६॥
ताके जनमेजय सुत भाए। अवसर जाति बस के ठाये।
प्रथम नाम उत्तानबरहि कहि। दूजे आनर्त भूरिषेण कहि ॥१७॥
आनर्त के रैवत सुत जानो। ताके ककुद्म्भी पहिचानो ॥१८॥

नाभाग[2] को वंश बरनन

ताके भे नाभाग सुत पावन। अबरीष ताके सुत आवन।
अबरीष त्रै सुत उपजाए। नाम बिरूप प्रथम सुत भाए ॥१९॥
दूजे केतुमान अस नामा। तीजे सभु नाम अभिरामा।
भे बिरूप के पृषदश्व नामा। भए रथीतर सुत अभिरामा ॥२०॥

इच्छ्वाकु[3] को वंश

श्राद्धदेव तिय रवितप कीन्हे। सूर्यपुत्र इच्छ्वाकुहि दीन्हे।
तब ते सूर्यवंश कहवाए। तीनि तनै इच्छ्वाकुहि जाए ॥२१॥
दडक, निमि, त्रिकुच्छि अस नामा। सुनहु विकुच्छि वंशअभिरामा।
भेविकुच्छि के त्रैसुत नागर। पुरजयो काकुत्स्थ उजागर ॥२२॥
तीजे इद्रबाह अस नामा। भए अनेना गुन अभिरामा।
ताके पृथु नामा सुत सोहै। ताके बिश्वबधु मनमोहै ॥२३॥

1—देखिये भागवत ९।२।२३ ३१।
2—वही ९।४।१,६ अ० १ २ ३ 3—वही स्क० ९ अ० ६

ताके चन्द्र चन्द्र सम जानो। जुवनाश्वो ताके परिमानो।
ताके सुत सावस्त सुहावन। ताके बृहदश्वो सुत पावन ॥२४॥
ताके कुवलयाश्व कहि भावन। नाम सुनो तिनके सुत पावन ॥२५॥
दो०—भे द्रिढाश्व कपिलाश्व सुत, तीजे भे भद्रास।
हरजसु भे भद्रासु के, ताहि निकुंभ प्रकास ॥२६॥
बरहणाश्व ताके भये, भे कृशाश्व सुत स्वच्छ।
भये सेनजित ताहि के, जौवनाश्व परतच्छ ॥२७॥
मान्धाता ताके भए, ता सुत तीनि उदार।
अम्बरीप पुरुकुत्स भे, कहि मुचकुंद पियार ॥२८॥
अम्बरीप[1] के होत भे, जौवनाश्व सुत सोइ।
ता सुत भे हारीत नृप, परम प्रतापी जोइ ॥२९॥
चौ०—भे अनरण्य ताहि सुत नीके। ता सुत भे हरजस्व बलीके।
ताके अरुन तनै बल भारी। तासु त्रिबंधन भे गुनकारी ॥३०॥
ताके भे तिरशुंक महीपा। भे हरिचंद परम अवनीपा।
ताके रोहितासु हारित कहि। हारित चंपक तनै परम लहि ॥३१॥
चंपक के सुदेव सुत जानो। ताके बिजय भरुक परमानो।
भरुक तनै को बृक है नामा। ता सुत बाहुक छबि गुनधामा ॥३२॥
ताके सगर ख्वार जेहि सागर। ताके असमंजस गुन आगर।
ताके भे दिलीप नृप नीके। भए भगीरथ ता सुत ठीके ॥३३॥
ताके नाभागस्य सुत नागर। ताके दीपनाग बुधि आगर।
ताके अभय ताय सुत भाये। कहो भागवत का मत लाए ॥३४॥
प्रज्झटिका—ऋतुपर्ण भये ताके सुत दास। सौदास ताहि असमक प्रकास।
भे नारि कवच दशरथ रघुबेश। तहि ऐडबिडो बिश्वाह बेश ॥३५॥
खट्वांग भए सुत दीर्घबाहु। रघु भए तासु सुत जगतनाह।
भे रघु के अज अजके दशरथ। भे चारि तनै तिनके समरथ ॥३६॥
भे रामचन्द्र दूजे भरथ्थ। लछिमनै शत्रुहन भे समथ्थ।
सुत लछिमन अंगद चित्रकेत। शत्रुहन तनै सुबाहु नेत ॥३७॥
श्रुतसेन नाम दूजे ललाम। अब बंस कहौं कुसके सुनाम ॥३८॥

कुश के वंश का बरनन

दंडक—कुश के अतिथि ताके निषध भे ताके नभा,
ताके पुंडरीक ताके क्षेमधन्वा जानिए।

१—दखिये भागवत९ म स्कन्ध अध्याय ७ से ११ तक।
२—वही ९म स्कध १२ अ०।

ताके देवानीक ताके अनीह सुत स्वच्छ,
ताके पारियात्र भे बलस्थल प्रमानिए।
ताके बज्रनाभ ताके खगण विधृतिपुत्र,
ताहि के हिरण्यनाभ ताके पुष्य मानिए।
ताके ध्रुवसंधि भे सुदर्शन के अग्निवर्ण,
ताके शीघ्र मरु ताके प्रसुश्रुत ठानिए ॥३९॥
ताके संधि ताहि के अमर्षण के महस्वान,
ताके विश्वासाह ता प्रसेनजित जानिए।
ताके तक्ष ताहि बृहद्बल पुत्र ताहि,
बिरहद्गुन ताके अरु क्रिया मानिये।
ताके वत्सवृद्ध ताके प्रतिव्योम ताके भानु,
ताके भे दिवाकर ताके सहदेव आनिये।
ताके बृहदश्व ताके भानुमान प्रतीकाश्व,
ताके परतीक मेरु देव अनुमानिए ॥४०॥
ताके सुनक्षत्र ताके पुष्पकल अन्तरिक्ष,
ताके सुतपा है ता अमित्रजित आनिए।
ताहि के बृहद्भानु ताके भे बर्हि पुत्र,
क्रितंजये रणजय संजय ताहि मानिए।
ताके सक्य ता सुद्धोद लाङ्गल भे तनै ताहि,
ताके प्रसेनजित क्षुद्रक बखानिए।
रणक भे ताहि तनै ताके भे सुरथ सुत,
ताके भे सुमित्र आगे राज्य न बखानिए ॥४१॥
प्रज्ञ०–लहि रात जुग से त्रेता निराम। अरु द्वापर में जे भए नाम ॥४२॥
दो०—सूर्ज बंस छत्रीन को, इनसे भे बिस्तार।
सूर्ज बंस भ हात भे, चन्द्रबंस निरधार ॥१४३॥

इति श्री दिग्विजयभूषणे सूर्यवंशवंशावलीवर्णन नाम
तृतीय प्रकाश ॥३॥

चतुर्थः प्रकाशः

दोहा— बैवस्वत[1] मनु पुत्र हित, कहि बशिष्ट मुनि पास।
मित्रावरुणहि जज्ञ मुनि, करन लगे सुत आस ॥ १ ॥
मनु की पतिनी यह कह्यो, कन्या जनमै सोइ।
इला नाम तनया भई, मनु लखि बिस्मित जोइ ॥ २ ॥
तब बशिष्ट मुनि बृत्त लहि, कन्या सो सुत कीन्ह।
सुद्युम्न नाम धरि रिषै तब, बहु बिधि आसिष दीन्ह ॥ ३ ॥
भये अयोध्या के नृपति, खेलन गये सिकार।
इलाबृत्त उत्तर दिशा, खड बड़ो बिस्तार ॥ ४ ॥
महादेव के श्राप तें, जातहि भे नृप नारि।
बुध को आसन तहाँ लखि, गये भूप ढिग हारि ॥ ५ ॥
लहि कै बुध भे काम बस, कीन्ही रति सुख ख्याति।
भए पुरूरवा पुत्र तेहि, सोम बंस यहि भाँति ॥ ६ ॥
पुत्र पुरूरवा के भए, षट प्रचंड बलवान।
आयु[2] श्रतायू सुत भए, सत्यायू परमान ॥ ७ ॥

चौ०—जय रय विजय नाम सहजानौ। श्रुतायु के बंस बखानौ ॥ ८ ॥

श्रुतायु को वंश बरनन

चौ०—भे बसुमान तनै बल भारी। श्रुतञ्जया सो तनै बिचारी।
ताके कांचन पुत्र गुनागर। कांचन के नृप होत्र उजागर ॥ ९ ॥
होत्र तनै भे जानु गँभीरा। जानु के पुत्र बलाक सुधीरा।
भे बलाक के सुत अज नामा। अज के कुश भे तनै ललामा ॥ १० ॥
भे कुश के कुशाम्बु सुत गोई। भे कुसाम्बु के गाधि निकोई।
गाधि के बिश्वामित्र उदारा। तप करि भए रिषीश बिचारा ॥ ११ ॥

आयु को वंश

आयू[3] के सुत नहुष बिचारो ❀ नहुष तनै षट भे गुन चारो।
जति जजाति सरजाति औ आजति ❀ बिहति कृत्ति कहि नाम जथामति।
॥ १२ ॥

१—देखिए भागवत नवमस्कन्ध अध्याय १। २—वही अ० १५।
३—वही अ० १८।

सोरठा—जदु तुरनसु कहि नाम, द्रुह्य पूरु अनुपाँच कहि ।
पुरु[1] के सुत गुन धाम, जनमेजय जाको कहै ॥१३॥
चौ०–प्रचिन्वान तेहि सुत को नामा । तासुत भे प्रवीर जग धामा ॥
ताके तनै मनस्य नाम सब । ताके भए त्रिलोकि चारु पद ॥१४॥
तासुत सुद्य परम गुन पावन । तासुत भे बहुगवै सुहावन ॥
ताके भे सजाति महीपा । ताके अहजाति जगदीपा ॥१५॥
ताके भे रौद्राश्व मनोहर । आठ पुत्र ताके सोहैं बर ॥
प्रथम रितेयु नाम हैं जानो । दूजे कहि कुक्छेयु सयानो ॥१६॥
तीजे अस्थडिलेयु बखानौ । अरु कृतेयु जलेयु प्रमानौ ॥
सततेयु अवनेयु बिचारो । धर्म सत्यव्रतयु उदारो ॥१७॥

रितेयु को बंश बरनन

भे रितेयु के रतिभार कहि । रतिभार के सुत तीनौ लहि ॥
प्रथम सुमति प्रतिरध्रुव जानो । प्रतिरथके रावन सुत मानो ॥१८॥
ताके मेधातिथि बलवाना । भरत ताहि ता वितथ बखाना ॥
बितथ[2] के मन्यु ताहि सुत पाँचो । बृहच्छत्र जय नाम हैं जाचौ ॥१९॥
महा बीर्ज नर गर्ग उदारा । नर के भे संस्कृति बरिआरा ॥
रतिदेव गुरु द्वै सुत ताके । गर्ग तनै सिबि नाम है जाके ॥२०॥
सिबि के गर्गि नाम भल जो कहि । महाबीर्य के दुरितक्छय लहि ॥२१॥
दुरितक्छय सुत तीनि अपारा । त्रय्यारुणि कवि नाम उदारा ॥
पुहुकरू अरुणि तासरे जाने । ये ब्राह्मन ह्वै गये सयाने ॥२२॥

बृहच्छत्र को बंश बरनन

दो०—भे अजमीढ द्विमाढ सुत, कहि पुरमीढ सयान ।
भे अजमीढ के बृहदरिपु, ताके बृहधनुजान ॥२३॥
बृहदकाय ताके भए, ताहि जयद्रथ मानि ।
बिशद भए तेहि सेनजित, त्रे सुत ताहि बखानि ॥२४॥
कास्यबत्स रुचिरास्व कहि, दिढधनु तीनो नाम ।
पार भए रुचिरास्व के, ताके द्वै गुन धाम ॥२५॥
चौ०—पृथुसेन अरु नीप बखानो । नीप के ब्रह्मदत्त परमाना ।
ब्रह्मदत्त के बिष्वकसेना । ताके उग्रसेन बलऐना ॥२६॥
ताके भे भल्लार सुहावन । अब कहि सुत द्विमीढकेपावन ॥२७॥

१—देखिये भाग० स्क० ९ अ० २० । २—वही अ० २१ ।

अथ द्विमीढ को वंश बरनन

चौ०—भए जवीनर ता सुत सोई। ताके सुकृतमान सुत जोई।
ता सुत सत्यधृति परमानौ। ताके भे द्रिढनेम बखानौ ॥२८॥
तनै सुपार्स्व ताहि के जानौ। बिद्या बल गुणवतहि मानौ।
ताके सुमति जाहि मति नीकी। सन्नतिमान पुत्र गियजीकी ॥२९॥
सन्नतिमान के नीप रायाने। नीप के उग्रायुध बलवाने।
ताके छेम्य छमा औतारा। ताके पुत्र सुबीर उदारा ॥३०॥
पुत्र रिपुंजय ताके भयऊ। ताके बहुरथ सब गुन ठयऊ ॥३१॥
दो०—दुसरी तिय अजमीढ की, नील भए सुत स्वच्छ।
साति भए सुत नील के, तासु शाति परतच्छ ॥३२॥
ताके पुरजोरक तनै, ताके भे भरम्यास्व।
पाँच पुत्र ताके भए, पच्च देव तेजास्व ॥३३॥
भे मुदगल अरु जवीनर, बृहद बिश्व जेहि नाम।
कहि राजन्य काँपिल्य ए, पाँच परम गुन धाम ॥३४॥
मुद्गल के दिवोदास भे, ताके भे मित्रायु[२]।
ताके च्यवन ग तासु क, भे सुदासा जरा जाय ॥३५॥
चौ०—ताके सुत सहदेव बखानौ। ताके सोमक सोमहि जानौ ॥३६॥
दो०—पुनि अजमीढ के सुत भए, रिक्ष नाम तेहि जानि।
ताके तनै स्वयंण कहि, चारि तनै तहि मानि ॥३७॥
चौ०—परिक्षित सुधनु ज ८, निषधाि कहि। सुधन क गुत सुहोत्र नामलहि।
ताके च्यवन कृती ताहि के। वासु ताक बृहद्रथहि जाहिके ॥३८॥
मत्स्य कुशाम्ब प्रत्यग्र बखाना। चेदिय चारौ तनय प्रमाना।
बृहद्रथ के कुशाग्र सुत भए। ताके रिषभ सत्यहित जाए ॥३९॥
सत्यहिताक के पुष्पवान कहि। ताके जह्नु त्योंहि जरासंध लहि।
ताके सुत सहदेव उदारा। भे सोमापि ताहि सुत प्यारा ॥४०॥
ताके श्रुतश्रवा गुन आगर। जन्म क सुरथ लरन महँ नागर।
ताके भए बिदूरथ नामा। ताके सारभौम परिनामा ॥४१॥
ताके भे जैसेन गभीरा। तासु तनै राधिक मतिधीरा।
ताके अयुतु ताहि के क्रोधन। ताक देवातिथि गुन बोधन ॥४२॥
ताके रिष्य दिलीप ताहि के। भे प्रतीक सुत सुभग जाहिके ॥४३॥

१—देखिये भाग० ९।२१। २—वही० ९।२२

प्रतीक को वंश

प्रज्झटिका—देवापि एक सतनु उदार। बाहलीक तीसरो पुत्र प्यार॥
पटरानी द्वै सतनु उदार। ताहि नाम कहौ करिकै बिचार॥४३॥
एक जोजनगंधा बास पूरि। यक गंगा पावन प्रभा भूरि॥

दो०—चित्र बीज चित्रांग द्वै, सुत सुगंध गुन गाह।
गंगा के भीपम तनै, कीन्हो नही बिवाह॥४५॥
चित्र बीज गंधर्ब हति, छल करि रनमें सोय।
राज राग चित्रांग के, तन तजि सुरगति लोय॥४६॥
राजबस नहिं रहि गयो, भीषम कियो बिचार।
जोजनगंधा सों कह्यो, मनमें सोच अपार॥४७॥
पारासर हम सों रमे, व्यास पुत्र तब कीन।
व्यास चले बन को जबै, मा कहँ यह बर दीन॥४८॥
कोनौ गौसर त्वहि परै, सुमिरे ऐहौ पास।
ध्यान धरो जब व्यास को, प्रगटे आय अवास॥४९॥
चित्र बीज चित्रांग के, रानी जुगल नवीन।
व्यास कह्यो साहि चलै, तन न बसन बिहीन॥५०॥
एक मृत्तिका लगि चली, तासों पांडु उदार।
एक आँखि मूँदे चली, धितराष्ट्र तहि वार॥५१॥
दासी चली निलज्ज ह्वै, तासो बिदुर ललाम।
पांडु कि पटरानी युगल, कुंती माद्री बाम॥५२॥
कुंती के त्रय पुत्र भे, दान कृपान उदार।
नृपति जुधिष्ठिर भीम अरु, अर्ज्जुन बल बरियार॥५३॥
बीर नकुल सहदेव द्वै, भे माद्री के वार।
अर्ज्जुन के अभिमन्यु भे, परिछित ताहि उदार॥५४॥
जनमेजय ताके तनै, जाकी पुन प्रताप।
सर्प जज्ञ बहु बिधि करे, जारे जग के साँप॥५५॥
बाँटि दियो निज सुतन को, देस जिते जगमाह।
जानवार देशहिं गये, भये तहाँ नरनाह॥५६॥
नाम भयो जनवार कुल, क्षत्री परम उदार।
गोत्र नाम वैयाघ्रपद, सोम वंश निरधार॥५७॥
नमच छावनी पास है, पावा गढ गुजरात।
राजा नय सुखदेव तहँ, बल प्रताप अवदात॥५८॥

॥ इति श्रीदिग्विजयभूषणे चन्द्रवंश्यवंशावलीवर्णन नाम
चतुर्थ प्रकाश ॥ ४ ॥

पञ्चमः प्रकाशः

प्रज्झा०–षट शुतनय सुखदेव गँभीर। नाम कहौ ताके मतिधीर ॥ १॥
भे चन्द्रसेन रामसेरशाह। भे भूप ब्रह्म बल पूर बाँह।
अरु कुसनराय बरियार साह। जेहि तेज उदय रवि जगत माह ॥ २ ॥

दो०–गे बरियार महीप बर, दिल्ली पति के पास।
नजरि दिये आदर किये, नाम सु भयो प्रकाश ॥ ३ ॥

चौ०–ताजुद्दीन साह तहँ गोरी। बोल कहो नृप सों बर जोरी।
पैस उत्तर देस न आवै। डाकू चोर प्रजान सतावै ॥ ४ ॥
जाय करो तुम ताकों नासै। दियो राज हम सहित बिलासै।
बादसाह क किए सलामै। पाय खिलैत सैन बलधामै ॥ ५ ॥

दो०—सम्बत बिक्रम भूप के, तेरह से पचीस।
राज अकौना को लहो, बर बरियार महीस ॥ ६ ॥
अँचलदेव ताके भये, महाबीर बलवान।
तेरह से बासठि गये, राज किये परमान ॥ ७ ॥
तेजसाहि ताके भए, तेजवान शुभ साज।
तेरह से द्वै कम असी, सम्बत मे किय राज ॥ ८ ॥
रामसिंह ताके भए, सुन्दर सोभा रूप।
लहि चौदह से बीस मे, भए बड़े बर भूप ॥ ९ ॥
बिस्नुसिंह ताके भये, महाबीर रनधीर।
चौदह सै पैतालिसे, मै किय राज गँभीर ॥१०॥
नृप गगासिंह ताहि के, जस जेहि गगाधार।
चौदह सै यकसठि बरष, मैं किय राज उदार ॥११॥
ताके माधवसिंह भे, दूजे तनै गनेश।
चौदह सै लहि छानबे, सम्बत माह नरेस ॥१२॥
सुत गनेश के प्रगट भे, लछिमिनरायन जानि।
ताको बश बिबेक बिधि, राज अकौना मानि ॥१३॥
दै गनेशसिंह बधु कों, राज अकौना वेस।
हते घुसाइे भूप कों, माधवसिंह नरेस ॥१४॥

बादल बढई नृपति बर, दूजे थंभू भूप।
रन मारे मयदान नृप, कीरति किए अनूप ॥१५॥
बसे रामगढ गौरि मे, माधव सिंह महिपाल।
द्वै सुत ताके प्रगट भे, प्रबल प्रताप बिशाल ॥१६॥
पद्धटिका–कल्यानसिंह अभिराम नाम। बल्यामसाह दूजे ललाम॥
बल्याम साह बलिरामपूर। निज नाम बसायौ बरन पूर॥१७॥
कलियानसाह के प्रान चंद। अरु मुकुंद साह आनंद कंद॥
सैंतीस पाँच दस सै प्रकास। लहि सम्बत मैं किय राज बास॥१८॥
दो०—पंद्रह सै सत्तावनै, सम्बत सुबस बिलास।
प्रानचन्द राजा भए कीरति कलित प्रकास ॥१९॥
तेजसाहि ताके तनै, महाबीर बलवान।
सोरह सै भै सम्बतै, मे किय राज बिधान ॥२०॥
तासु तनय हरिबस सिंह, भूप भये सिर ताज।
सोरह सै सतावनै, मे किय राज समाज ॥२१॥
प०—भे छत्रसिंह ताके उदार, बासतसिंह दूजे बिचार।
सत सत्रह द्वै सम्बत बखानि, भे छत्रसिंह महिपाल जानि ॥२२॥
भे छत्रसिंह के तनय तीन, कहि फतेसिंह इज्जति प्रवीन।
नारायनसिंह तीजे बखानि, परचंड तेज जग अभय दानि ॥२३॥
दो०—सत्रह सै बावन हुतो, सम्बत बिक्रमराज।
भूप नरायनसिंह तब, कीन्ही राज समाज ॥२४॥
पुत्र नरायनसिंह के, रहो न कियौ बिचार।
फतेसिंह के पुत्र कों, सुत सम कियौ पियार ॥२५॥
फतेसिंह के तीनि सुत, जेठे सिंह अनूप।
रूपसिंह दूजे भए, अरु पहाडसिंह भूप ॥२६॥
सुत पहाडसिंह के भए, पाँच परम गुनवान।
ककुलतिसिंह जेठे तनै, कुलमे कमल बखान ॥२७॥
साँवलसिंह जसवतसिंह, रामसिंह रनधीर।
पँचएँ भए दलेलसिंह, बाहुबली बलबीर ॥२८॥
चारि बधु के बश नहि, हरि इच्छा बलवान।
ककुलतिसिंह के नवलसिंह, जेहि रचि दानकृपान ॥२९॥
इज्जतिसिंह के सुत भए, बेचूसिंह उदार।
कुजलसिंह ताके भए, बडे बीर बरिआर ॥३०॥

कुजलसिंह के सुत भए, जासु नाम दलजीत ।
बश नहीं दलजीत के, हरि इच्छा बिपरीत ॥३१॥
भे पहाड़सिंह के तनै, जासु बाहबलसिंह ।
पहिले डोमनसिंह भे, दूजे बेचनसिंह ॥३२॥
बेचनसिंह के सुत भए, बखतबलीसिंह नाम ।
बश न उपजो ताहि के, और कहों परिनाम ॥३३॥
द्वै सुत डोमन सिंह के, गजनसिंह यक नाम ।
दूजे छोटकूसिंह भे, सब गुन के बल धाम ॥३४॥
छोटकूसिंह के तीनि सुत, शिवप्रसादसिंह नाम ।
बृंदासिंह, रबिदत्तसिंह, परम धरम अभिराम ॥३५॥
तनय भया रबिदत्त के, जगतपाल सिंह स्वच्छ ।
असे अजौं जेवनार में, सब गुन जानत अच्छ ॥३६॥
भए नरायनसिंह के, पाछे सुत पृथिपाल ।
सत्रह सै नव द्वै रहो, सम्बत सुभग बिशाल ॥३७॥
पृथीपालसिंह भूप के, बश न उपजो कोय ।
ककुलति के सुत नवलसिंह, करि दावा लिय सोय ॥३८॥
अट्ठारह सै अढतिसै, सुदिन लगन को पाय ।
नवलसिंह नरनाह भे, अरि मुख कारिख लाय ॥३९॥
नवल नवल जस नित किये, नवलसिंह नरनाह ।
दस जोतसी के रहो, बैर बाग बन माह ॥४०॥
कबि कोबिद घर बिप्र को, त्यागि आँच सब ठौर ।
नवलसिंह नरनाह को, तेज भानु कछु और ॥४१॥
नवलसिंह के द्वै तनै, दान कृपान उदार ।
जेठ बहादुरसिंह भे, बाँहबली बरियार ॥४२॥
दूजे अज्र्जुन सिंह नृप, अरजुन सों गुन स्वच्छ ।
दया दान में दान रुचि, जो करिवे मन इच्छ ॥४३॥
जीते अरि करिवर जिते, बाँह बली नरसिंह ।
बिमुख मुखालिफ को करै, नाम बहादुरसिंह ॥४४॥
नाजिम अहमदअली खाँ, किये छोभ करि कोप ।
बली बहादुरसिंह नृप, रन छीने तेहि तोप ॥४५॥
गरि गलानि अहमदअली, नहि बाँधे सिर पाग ।
रन जीतों यक बार नृप, यही लगन मन लाग ॥४६॥

बैरी दल बोहित बड़ो, चहै भूप बल पार।
बली बारि बारिधहि मे, बोरे कैयो बार ॥४७॥
अरजुन नृप कीरति ललित, अरजुन सों करि नित्य।
जाचक जानै करन कर, प्रजा विक्रमादित्य ॥४८॥
अट्ठारह सै चोहतरि, सम्बत बिक्रम भूप।
मंजुल प्रद मंगल घरी, भे अर्ज्जुनसिंह भूप ॥४९॥
अरजुनसिंह के द्वे तनै, जिमि रवि तेज प्रकास।
बैरी लुके उलूक सम, सरसिज मित्र बिलास ॥५०॥
जै नरायनसिंह प्रथम, रुचि नारायन प्रीति।
दान मान दाया मया, करत नीति की रीति ॥५१॥
भूप दिग्विजयसिंह भे, राजन के महराज।
लंदन पति जाको दई, पदवी नड़ी दराज ॥५२॥
रहो अठारह सै असी, सात सम्बतहि बेस।
जयनारायनसिंह भे, प्रजापाल निज देस ॥५३॥
किये बरष षट राज नृप, कीरति करि अभिराम।
तन तजि गे सुरधाम को, गति लहि ललित ललाम ॥५४॥

प्र०—अट्ठारह सै तीरान्नबे। सन बारह सै चौआलीस तबे।
सुभघरी महूरति लगन बेरा। भे भूप दिग्विजैसिंह नरेस ॥५५॥

भुजंग०—पढे फारसी आरबी ग्रंथ रूरे। पढे बेद बेदांत व्याकर्ण पूरे।
पढे काव्य के अङ्ग जेते बखाने। पढ़े न्याय नीके भली नीति जाने ॥५६॥
पढे शस्त्र विद्या तुरंगैसवारी। पढे राग संगीत भेदै बिचारी।
लसे पुंज शोभा भरे अङ्ग जामै। मनो देंह धारी लखो रूप कामै ॥५७॥

चन्द्रकला—जबै तिलंगे निमक हरॉमी, अँगरेजन सों कीन्हे।
चीफ कमिसनर बहिराइच के, आए नृप सुख दीन्हे ॥
नास किए बदमास लोग को, करि लखनऊ प्रकास।
भूप दिग्विजय सिंह बहादुर, बोलि पठाए खास ॥५८॥

टीका—जिस काल निमक हराम तिलगों ने स्वभाव अनुसरे अर्थात् अपने स्वामी अँग्रेजन्ह को स्त्री, बालक वधपूर्वक शेषको निकारि आपु राज्याधिकारी भए तब बहराइच के चीफ कमिश्नर बलरामपुर मे आय महाराजा बहादुर सों अनेक भाँति सुख पाय जंग बहादुर के पास जाय और वहाँ से कुमक लाय फेरि लखनऊ को विजय कियो और महाराज बहादुर को बोलि पठायो ॥५८॥

जथा त्रा—दिये दाहिने दिसि कुरसी को, पहिलो नम्बर नाम।
बाइस भाँति किए खिलति नृप, आदर ललित ललाम॥
असिस्टंट दीवानी आदिक, किये कमिश्नर काम।
करि खिताब महराज बहादुर, लिखे लाट अभिराम॥५९॥

अपने दक्षिण भाग कुर्सी दे लखनऊ मण्डल के सकल भूपों मे प्रथम लम्बर का नाम लिख्यो ओर बडे आदर से बाइस पारचे को खिलत दियो। असिस्टटी दीवानी, फोजदारी कलक्टरी को अख्तियार दे महाराज पदवी युक्त पत्र लिखिकै लाट साहेब बहादुर भेज्यो। बाइस पारचे की खिलत—कलँगी १, शिरपेच १, रत्न जटित मुक्तमाल १, तरवारि विलायती १, ढाल १, घडी १, दूरबीन दर्शक यन्त्र १, बग्गी सहित घोडा ग १, दुशाला १, रुमाल १, पगडी कारचोबी १, गोसवारा १, कमरबन्द १, नीमा जरकशी १, जामा जरकशी १, रुमाल दस्ती कारचोबी १॥ ५९॥

दण्डक—राजै नाग इदु खड चद्र चारु सम्वत जो,
कातिक असित तिथि पूजा दान दीप के।
लहि लखनऊ महाराज दिग्बिजे सिंह,
बेम कै बिलास लाट साहेब समीप के॥
'बृज' अभिराम दरबार आम भूप भीर,
तामे पहिलोई नाम नम्बर महीप के।
बड़ी आबरूह सों खिलैत खूब दै खिताब,
पेशवा नरेश सूबे औध अवनीप के॥६०॥

दो०—को कहि पावे पार कबि, गुन निधि अमित बखान।
मति नौका सी लखिभ्रमै, भूप आप अपमान॥६१॥

॥ इति श्री दिग्विजयभूषणे नृपवशावलीवर्णन
नाम पचम प्रकाश॥ ५॥

टीका राजै पद०—नाग आठ, इदु एक, खण्ड नव, चन्द्र एक सम्वत राजे है। अर्थात् उन्नीस सौ अठार सम्वत रह्यो, 'अकानां वामतो गतिरिति' गणितसूत्रम्। कातिक कृष्ण पक्ष का अमावास्या को लखनऊ मे लाट साहेब बहादुर के निकट प्रतिष्ठा पूर्वक खिलति पाय पहिलो नम्बर ओर लखनऊ के भूपों की पेशवा पदवी पाई॥६०॥

॥ इति श्री दिग्विजयभूषणे टीकायां नृपवशावलीवर्णन
पचमो प्रकाश॥ ५॥

षष्ठः प्रकाशः

चौ०—खंड इंदु नव चंद प्रकास। बिक्रम सम्वत सित मधुमास।
प्रथ दिग्बिजै भूषन नाम। अलंकार 'बृज' बिरचि ललाम ॥१॥

टीका—खंड पद० खंड नव, इंदु एक, नव और चन्द्र एक, अर्थात् उन्नीस सो उन्नीस विक्रमादित्य को संवत रह्यो। मधु चैत मास के शुक्ल पक्ष मे दिग्विजेभूषन अलंकार ग्रंथ बृजोपनामक गोकुल कवि रच्यो ॥१॥

इस दिग्विजयभूषन नामक ग्रन्थ में रूपक करि सब भूषन धरयो है।

अथ ग्रंथ भूमिका

हरिपद—सुभग शब्द सुंदर पट राजै, गुनगन ललित ललाम।
रतन पदारथ रुचि प्रकाश करि, जतन जुक्ति अभिराम ॥
सुबरन रूप अनूप अङ्ग त्यौं, बरनत हैं गुनधाम।
ग्रंथ दिग्बिजै भूषन करि 'बृज', पथ पुंज अभिराम ॥२॥

टीका—सुभगपद० सुन्दर शब्द जाम पट शोभित है। गुन गन पद प्रसाद माधुर्य्य ओज आदि गुन के गन जामे सुजनकार है। पदार्थ कहै पद के अर्थ जामे रत्न लगे हैं। रुचि विवेचक की प्रीति जामें प्रकाश कहै रासि है और जतन जुक्ति से अभिराम कहै सुंदर सुबरन रूप पद सुन्दर वर्ण अक्षरों का रूप अनूप कहै जाग्यता पूर्वक रचना मे संनिवेशित करिजोई जाको अंग कहै प्रकरण को शोभित करै है अर्थात् जिस भाँति सुवर्ण सोना और रूप कहै चान्दी के घटित आभूषण अङ्ग की शोभा को करैं हैं तैसे ही वर्ण मैत्री आदि सुन्दर रचना इस ग्रंथ का अनूपता करै है ॥२॥

अंगभूषन बरनन (अष्टजाम प्रकाश)

दंडक—जागै जोति जेब जामै कंचन के काम जामै,
पेन्है पयजामै फबै फेटे को बिलास है।
पानि पाय पायताबे मोजे पुंज मोल के जो,
साजे मौज ही सो प्रति रोज के लिबास है।
राजै महाराज दिग्बिजै सिंह सिरताज,
जड़ित जतन सो रतन के उजास है।
मानो मारतंड चंड मंडल के आस पास,
मंडित नवग्रह की मंडली प्रकास है ॥३॥

टीका—जागै जोति पद० इहाँ रत्न जटित आभूषन जिनको महाराज बहादुर पन्हे हैं सो वस्तु ताको सूर्य मंडल जो अति तीव्र है ताके आस पास नवग्रह की मंडली को प्रकाश विषय उक्त है याते उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षालंकार, और स्पष्ट है ॥३॥

अथ नवग्रह नवरतन नाम

हरिपद—मानिक रबि शशि मुक्ता दीजे, मूँगा मगल हेत।
बुध पन्ना गुरु पोखराज रुचि, हीरा शुक्रहि देत॥
नीलम शनि को केतु बैदूर्जेक, राहु गोमेदक ठान।
नवग्रह अबल सबल जो चाहै, करै रतन नव दान॥४॥

टीका—मानिकरवि पद० सूर्य के तोषनिमित्त मणि, चन्द्रमा परितोषार्थ मुक्ता कहे मोती, मगल के अर्थ विद्रुम कहे मूगा, पन्ना बुध के प्रसन्नार्थ, बृहस्पति के शान्त्यर्थ पुखराज, शुक्र के शमन के अर्थ हीरा, शनि की रुचि के हेतु नीलमणि कहे लहसुनिया, राहु के प्रमोद के कारण गोमेद, केतु की प्रीत्यर्थ वैदूर्य मणि दीजै। मुहूर्त्तचिंतामणौ—"माणिक्यमुक्ताफलविद्रुमाणि गारुत्मक पुष्पकवज्र नीलम्। गोमेदवैदूर्यकमर्कत स्यू रत्नान्यथो ह्यस्य मुदे सुवर्णम्" इति॥४॥

हरिपद—चाँदी सोना रतन आदिके, बारह भूषन अग।
तैसे शब्द अर्थ करि बारह, अलङ्कार के ढग॥
ग्रथ दिग्बिजैभूषन माहीं, त्यों भूषन परकास।
जैसे नाम चाहिए गुन त्यों, बरनै बुद्धि बिलास॥५॥

जथा बारह भूषन

दो०—शीश भाल श्रुति नासिका, ग्रीवाँ कटि उर बाँह।
मूल पानि अँगुरी चरन, बारह भूषन चाह॥६॥

टीका—चाँदी सोना पद० जैसे चाँदी सोना और रत्न के बारह भूषण अग को भूषित करे हैं तैसोई शब्द अर्थ मिलि बारह अलकार काव्य के भूषन हैं। द्वादस भूषणस्थान यथा—सिर, भाल, श्रवण, नासिका, ग्रीवाँ, कटि, उर, बाहु, पानिमूल और पानि, अगुरी, चरन अगुली ए बारह भूषन के स्थान है, इनसे अधिक नहीं वर्णन कियो है, इसी हेतु दास कवि अपने ग्रंथ मे बारहै अलकार को मुख्य करि वर्णन किया है॥५-६॥

जथा बारह अलंकार (दास कवि काव्य-निरनय)

छप्पै—उपमा पूरन अर्थि लुप्त उपमा रु अनन्वय।
उपमेयउपम प्रतीप और श्रौती उपमाचय॥

१—केवल बारह सख्या की महत्ता के लिये ही यहाँ इन बारह अलंकारों को उपमा-मूलक होने से चुना गया है, क्योंकि अलकारो में उपमा को ही प्राधान्य दिया जाता है और इन अलकारों मे उपमानोपमेयभाव अवश्य रहता है।

पुनि दृष्टांत बखानि जानि अर्थान्तरन्यासहि।
बिकसरो निदरसन तुल्य जोगिता प्रकासकहि॥
गनि लेहु सप्रतिबस्तूपमा, अलकार बारह निदित।
उपमान और उपमेय के, है बिकार समझो सुचित॥७॥

टीका—तन्यथा पूर्णोपमा उपमा आर्थी और शाब्दी, लुप्तोपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा, प्रतीप, दृष्टान्त, अर्थान्तर याम, बिकस्वर, निदर्शना, तुल्ययोगिता और प्रतिवस्तूपमा, ये बारहौ अलकार उपमान और उपमेय के विकार सों होवै हैं और अलकार की मूल उपमा, इसी में सब अन्तर्भूत होवे हैं। इस हेतु कवि ने बारहै अलकार विन्ति कियो॥७॥

बारह प्रकास ग्रंथ के

दो०—प्रथम मगलाचरन कहि, दूजे सृष्टि बिधान।
सूर्यवंस छत्रीन को, तीजे करौ बखान॥८॥
चद्र बंश उत्रीन की, चौथे उतपति स्वच्छ।
पँचएँ नृप बसावरी, बरनौ सुजस प्रतच्छ॥९॥
छठए एकै पदहि के, कहौं अलकृत नाम।
सतएँ चारौ पदन मे, अलकार अभिराम॥१०॥
अठएँ सकर अलकृत, नीर छीर के न्याय।
नवएँ अक्रम ससृष्टिहि, कहौं भेद दरसाय॥११॥
दसएँ ससृष्टिहि परम, क्रम से कहौ बिचारि।
ग्यरहैं चित्रोत्तर कहौ, काव्य ग्रथ निरधारि॥१२॥
बरहैं अनुप्रासहि कहौं, गुरु गनपति शिर नाइ।
जाके सुमिरन के किए, देहैं ग्रथ बनाइ॥१३॥

टीका—प्रथम पद० अवसर प्राप्त ग्रथ के बारह प्रकाश को वर्णन किया जाता है। इसी हेतु ग्रथकर्ता इस प्रस्तुत ग्रथ में बारह प्रकास किया। प्रथम मे मगलाचरन १, दूसरे मे सृष्टि वर्णन २, तीसरे मे सूर्यवंशीय क्षत्रियों को वर्णन ३, चौथे मे सूर्यवंश सों कारण करि चन्द्रवशीय को विभाग ४, पचम मे नृपवंशावली वर्णन ५, छठएँ मे एक पदालकार ६, सातवें मे चारयो पद के अलकार ७, आठवें मे नीर क्षीर न्याय के तुल्य सकर को वर्णन ८, नवयें में अक्रमससृष्टि ९, दसएँ मे क्रमससृष्टि १०, ग्यारहवेंमें चित्रोत्तर ११, बारहवें में अनुप्रास को वर्णन कियो है १२॥८–१३॥

काव्य कोश व्याकरन रद, शास्त्र सकल अभ्यास।
भ्रम तम नाशक भानु सम, जाको ज्ञान प्रकाश ॥१४॥

शास्त्र गदा धरिके भए, सुबुध गदाधर स्वच्छ।
अलंकार के भेद जिन, मोहि बताए अच्छ ॥१५॥

ता पद पावन सुमिरि मति, बोहित[2] हेतु निबेरि।
अलंकार जल आरनव,[3] रतन पदारथ हेरि ॥१६॥

टीका—काव्यपद० काव्य दशाग, कोश चोसठा, व्याकरण दशों, षट् शास्त्र [में] सम्पूर्ण जाको अभ्यास, भ्रम जो है तम ताके नाश करने में जाके ज्ञान को प्रकास सूर्य के प्रकास के तुल्य भयो शास्त्र रूपी गदा धारन करने के हेतु जाको गदाधर ऐसो नाम प्रसिद्ध भयो, जिन्ह मोपर कृपा करि अलंकार को यह विलक्षण भेद बतायो ताके पावन कहे पवित्र पद सुमिरि के मति नौका के द्वारा अलंकार समुद्र मध्य रत्न पदार्थ जो अन्वेषण करों हों ॥१०–१६॥

अलंकार

दोहा—अलंकार बरने सु कवि, शब्दा अर्था दोउ।
चंद्रालोक बिलोकि मत, ग्रंथ अवरन्हहि सोइ ॥१७॥
अनुप्रास अरु चित्र जो, शब्द अलंकृत होइ।
उपमादिक [4]अर्था कहौ, रस उपकारी सोइ ॥१८॥

टीका—अलंकार पद० अलंकार को 'चंद्रालोक' और 'चित्रमीमांसा' आदि के कर्त्ता सुकवि लोग दो भाँति वर्णन कियो एक शब्दालंकार दूसरो अर्थालंकार अनुप्रास जासो शब्दको भूषण होवै है और चित्रबद्ध और प्रश्नोत्तर आदि शब्दालंकार करि वर्णन कियो उपमा आदि अर्थालंकार करि कह्यो ॥१७, १८॥

अलंकार लक्षन

दोहा—शब्द अर्थ जो करत हैं, जह रस को उपकार।
चमतकार आनदता, सुनि रुचि होत अपार ॥१९॥

१—'शास्त्ररूप गदा' शास्त्रों में गदा का आरोप करने से रूपक अलंकार है।
२—बोहित = नौका। ३—आरनव (अर्णव) = समुद्र।
४—अलंकरणमर्थानामर्थालङ्कार इष्यते।
त विना शब्दसौन्दर्यमपि नास्ति मनोहरम् ॥१॥
अर्थालङ्काररहिता विधवेव सरस्वती। —(अग्निपुराण १४४।१–२)

अलकार बरने कबिन, तीनि भेद परमान।
यक केवल, सकर दुतिय, कहि ससृष्टि बिधान॥२०॥

टीका—शब्द अर्थ पद० शब्द और अर्थ के द्वारा रस के उपकारपूर्वक एक चमत्कार विशेष जामें उपजै आनद ओर रुचि कहै प्रीति होवै ताको अलकार कहै हैं॥ तेहि अलकार को कबिन तीन प्रकार बरने। एक केवल, दूसरो संकर, तीसरो ससृष्टि॥१९, २०॥

एक जहाँ केवल कहौ, सकर जामे दोय।
तीनि चारि आदिक जहाँ, तहँ ससृष्टि[1] सुहाय॥२१॥

जैसे पय पावन परम, मिलै न जामे नीर।
अलकार त्यों एक है, करि रचना मतिधीर॥२२॥

नीर छीर सों मिलि रहत, संकर जो पद दोइ।
मति मजुल कबि जानि है, प्रतिभा गति करि सोइ॥२३॥

तिल तदुल सों जहँ लखै, अलकार बहु ज्ञान।
शब्द अर्थ लखि कबित सो, कहि ससृष्टि बिधान॥२४॥

टीका—एक पद० जहाँ एक ही अलकार होवै है ताको केवल, और द्वे जहाँ होय ताको सकर और तीन चारि आदि जहाँ होवै है ताको संसृष्टि करि वर्णन करे है॥ जैसे शुद्ध दुग्ध जामे नीर नही मिल्यो अर्थात् एकै अलकार जहाँ होवै ताको केवल कहै हैं॥ जैसे नीर और छीर मिलि किसी भाँति पृथक नही ह्वै सकै है तैसे दो अलकार मिलने से सकर होय है। ताको जाकी शुद्ध मति सो कवि अपनी प्रतिभा के बल से जानैगो॥ तिल तदुल के सदृश जहाँ तीन अथवा चारि अलकार मिलैं शब्दालकार किंवा अर्थालकार ताको ससृष्टि कहैं हैं॥२१–२४॥

१—ससृष्टि और सकर विषयक ग्रन्थकार का यह मत आलोच्य है। आकर ग्रन्थों में ऐसे पर्याप्त उदाहरण मिलते है जिनमें तीन, चार या इससे भी अधिक अलकारों का साकर्य और केवल दो ही अलकारों मे भी ससृष्टि होता है।

वास्तव में ससृष्टि और सकर मे यही अन्तर है (जैसा कि ग्रन्थकार ने भी आगे वर्णन किया है) कि सकर में दो या अधिक अलकार दूध में पानी की तरह इस प्रकार मिल जाते है कि उनका स्वरूप पृथक् पृथक् नहीं प्रतीत होता, किन्तु ससृष्टि में तिल तण्डुल की भाँति परस्पर मिश्रण होने पर भी उनकी पृथक स्थिति स्पष्ट लक्षित होती है।

अथ एक अलंकृत

दो०—तीनौं पग मे होइ नहिं, एक चरन में होइ।
एक अलंकृत त्यहि कहै, उत्तम रचना सोइ ॥२५॥

टीका—तीनौं पग० अथ उद्देश क्रम प्राप्त केवल अर्थात् एक अलकृत को लक्षण लिखे है। जहाँ तीनि पदन में कोनो अलकार न होय एक चौथाइ पद मे अलकार दरसाय ताको केवल अर्थात् एक अलकृत कहैं हैं ॥२५॥

एक पद में अलंकार बरनन

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज' (उपमा)

दुमिला—'बृज' मायके मे वह नाइनि आइ, कही ठकुराइनि बात भली।
हरि पोरि मे राजै तिहारे भटू, हम देखि लटू छबि छाए रली॥
सुनि बात इती चित चायनसों, मन माह मसोसनि कीन्हे अली।
पहिलेहीं बगारी है बेग बड़ो, फिरि मद गयद लौं चाल चली॥२६॥

पहिले काम गें शीघ्र चली जब लाज आई तब मद, यातें मध्या॥

टीका—बृजमायके पद० उदाहरण ग्रथकर्त्ता को, बृज कवि की उक्ति। नायिका अपन मायके में रही। तहाँ वह नायिनि जो सासुरे की थी, आइके यह भली कहै जो अपने को प्यारी है बात कहती भई। तुम्हारे हरि कहैं प्रीतम पोरि मे राजे हैं उनकी छबि देखि लटू कहे वश्य ह्वै गईं। इतनी बात सुनिके प्रम क आधिक्य सो मन म कसामसी करि पहिले ही काम के उद्दीप। से बडो बेग सो गमन कियो फिरि जब लाज उदय भई ता मदगयद लौं चाल अर्थात् मद मद चला। इहाँ नायिका उपमेय, गयद उपमान, लौं वाचक, मद चाल धर्म वाच्या हैं, यातें पूर्णोपमा अलकार और लाज मदन क साम्यता करि कै मध्या नायिका॥२६॥

१—उपमा(उप = समीप, मा = तोलना,) जहाँ दो पदार्थो की समता दिखायी जाय वहाँ उपमा होती है। इसके चार अंग हैं—उपमेय—जिसका वर्णन अभीष्ट हो अथवा जिसके लिये दूसरे की समता दी जाय, उपमान—उपमेय से जिसकी समता की जाय, धर्म जिस गुण के कारण दोनों में समता दिखाइ जाय और वाचक—वे शब्द जिनके द्वारा उपमा लक्षित हो।

पौरि = द्वार, दरवाजा। भटू = आली, सखी। रली = युक्त। बगारी = फैलाया, बढ़ाया। गयद = हाथी॥२६॥

(असंगति[1])

सुन्दर-पास परोस की बाग बहार बहारन कों 'बृज' धाइ गई।
रोसन रोसनी पुंज प्रसून सुगंधन हीं पो अगाइ गई॥
जानि परो न कछू त्यहि औसर ताप मनोभव नाइ गई।
काटत माली गुलाब की डार बिलोकत बाल सुखाइ गई॥२७॥

टीका—पास परोस पद० निकट हो परोसी की बाग मे विहार करने के हेतु काम की अधिकता से दौरिके गई। जाकी दीप्ति फैल रही है फूलन के सुगंधन सों अघाइ गई। ता छिन कछू न जानि परयो क्योंकि मनोभव काम के ताप सों मतंत ह्वै गई थी। माली गुलाब की डार काटत रह्यो, ताको देखि नायिका सुखाय गई। यहाँ डार को कुँभिलाना चाहिए सो नहीं कुँभिलायो, नायिका सुखाय गई अर्थात् कुँभिलाय गई, यातें असंगति अलंकार। और डार काटने सों नई कली काम फूलि है ता पै चटकाहट ह्वै है, ताको सुनि नायक भोर जानि मेरे निकटसों उठि जैहै तासों प्रौढ़ा रतिप्रीता नायिका ॥२७॥

यथा

दु०—हरि ईठि[2] सों डीठि अरूझै जबै, गुन कानि कुटुम्ब को टूटिहै री।
चल चोज चवाइनि के चित में, गुर गाँठि परे पर फूटि है री॥
'बृज' कैसे कै नेह नयो निबहै, निज नाँह को नातोई छूटिहै री।
मनमाँह कमासनी ऐसी बसी क्यहि भाँति भटू जुग जूटिहै री॥२८॥

टीका—हरि ईठि पद० श्रीकृष्णचंद्र की अँखियान सों जब मेरी दृष्टि अरुझैगी तौ गुनरूपी जो कुटुम्ब है ताकी कुल कानि टूटि जैहै और ये चवाइनै जो इत उत मिथ्र की बातैं अबहीं सो चलाती हैं, तिनके मनमें बड़ी गाँठि परि कै फ़ुटि है अर्थात् मेरी प्रीति को प्रगट करि देहैं। ब्रज कवि की

१—कारण और उसका कार्य जहाँ भिन्न भिन्न स्थानों में हो वहाँ असङ्गति अलंकार होता है, इसके तीन भेद हैं जो क्रमशः उदाहरणों में स्पष्ट किये जा रहे हैं—कारण अन्यत्रके लिये हो और कार्य अन्यत्र हो जाय, यह असंगति का पहला भेद है। जैसे उक्त पद्य में कटी तो डाल, मुरझाया नायिका (कटना रूप कारण तो डाल में हुआ पर मुरझाना रूप कार्य जो डाल में होना चाहिये था वह नायिका में हुआ) ॥२७॥

२—कारण कहीं हो और कार्य कहीं हो जाय। जैसे-यहाँ उलझे तो नेत्र पर टूट गया कुटुम्ब, यह असंगति का दूसरा उदाहरण है।

उक्ति कि किस प्रकार नयो नेह निबहिहै। निज स्वामी को जा नाते है सो भी भृष्टि होइ। मगम ऐसी कलागमी बनो किस भाँति मेरी और ललाजू की जुग जुटि है। इहाँ कृष्णचन्द्र के मिलन के हेतु आये टहराये हैं याते शकाभाव और गुरजन को भय करे है यातें गुरजन सभीता नायिका। इहाँ अपेक्षा नेत्र हेतु और दूगो दुख कार्य विरुद्ध और भिन्न देश, यातें असंगति अलंकार "विरुद्ध[1] भिन्नदेशत्व कार्य्यहेत्वोरसंगतिरि"ति तल्लक्षणम ॥२८॥

मत्तगयद०—केहुँ[2] कहुँ कबहुँ न सुनी सजनी यह बात अनोख निबेरे।
जाहि जरै घर मगल गावत देखन हार जरे कहुँ केरे॥
सो गति आजु बिलोकि अली अति सोच सँकोच हिए बस मेरे।
प्रीतम पारा परोसिनि के परदेश चलें दुख दीरघ तेरे॥२९॥

टीका—केहुँ केहुँ पद० को० कबहू यह अनोखी बात न सुनी, हे सजनी जाको निवारन होवो कठिन है जाका घर जरै सो तो मगल गावे और देखन हारे दुखी होय। सो गति आजु मैं देखती हौं याते मेरे हृदय में बडो सोच होय है कि स्वामी परोसिनि को परदेश जाय है और दीरघ बडा दुख तोकों होय है। स्वामी मेरो नित याके निकट रहत रह्यो आज परदेश को जाय है तो अब मेरो दुख इसको भोगनो परयो इस व्यग्य सैं प्रवत्स्यत्प्रेयसी नायिका और जाको प्रिय परदेश जाय है ताकों दुख होयनो समुचित है, सो नहीं याको होय है यातें असंगति अलंकार ॥२९॥

(ललित[3])

दुमिला—अति स्वच्छ जासी सेमुषी उनकी जिन आदिहुँ अंत बिचारि करै।
बलि जारिबे जोग सुभाव भद्ध परसे कगहि भाँति बखान करै।

१—चन्द्रालोक ५।८३।

हैठि = प्रीति, मित्रता। दीठि = दृष्टि। कानि = मर्यादा। चोज = उक्तियाँ, बातें। चबाइनि = बदनाम करनेवाली। कसमसी = घबराहट ॥२८॥

२—कारण भिन्न हो और उससे कार्य भिन्न ही हो जाय, जैसे इस छन्द में जिसका पति परदेश जा रहा है वह पडोसिन तो प्रसन्न है (क्योंकि पति इसे खंडिता बनाकर उक्त नायिका का उपभोग करता था) किन्तु यह नायिका दुःखी है (क्योंकि उपपति संगम का अवसर न मिलेगा), यह असंगति का तीसरा भेद है ॥२९॥

३—वर्णनीय (प्रस्तुत) वृत्तान्त का वर्णन न करके उसके प्रतिबिम्ब स्वरूप किसी अप्रस्तुत वृत्तान्त का वर्णन करना, ललित अलंकार है। जैसे उक्त

निज खाइ हलाहल त्यागि अमी 'बृज' तापै कह्यो है उपाइ करे।
जब चोरि गए धन धामहि ते तब काम कहा रखवार करे॥३०॥

टीका—अतिस्वच्छ पद० सखी की उक्ति नायिका सों, अति स्वच्छ जाकी सेमुषी कहै बुद्धि है, सो आदि और अन्त विचारिकै अर्थात् परिणाम शोचि कै सकल काम करै है। हे सखि तुम्हारो यह सुभाव जानिवे योग्य है जाके वश ह्वै पीतम कों रुठाय दियो आनसों केहि भाँति यह वृत्तान्त कहूँ। शोच की बात है कि अमी त्यागि गरल खाय तापै कहै कछू उपाय करे, कहा ह्वै सके है। जब घर मे धरी वस्तु को चोर लै गयो तो रखवार जो घर की रच्छा करै है ताको कहा काम है। इहाँ नायिका के निकट नायक आयो और रूठि के चल्यो गयो ताके मनाइवे हेतु सखीको पठाइबो और पश्चात्ताप करिबो, यातें कलहान्तरिता नायिका और प्रस्तुत नायक रूठि के चल्यो गयो ताको प्रतिबिंब चोर की चोरी के अनन्तर रखवार को रक्षकता को वैफल्य देखाइबो, यातें ललित अलंकार। 'प्रस्तुते[1] वर्ण्यवाक्यार्थप्रतिबिंबस्य वर्णनमि'ति तस्य लक्षणम्॥३०॥

(चपलातिशयोक्ति[2])

दुर्मिला—अलि आइ अचानक बोलि कही परदेस पयान बिहान लला।
सुनि सोचन गोरी गरो भरिकै अँखियाँ अँसुआ बहि वेगि चला॥
नहि जानि परो केहि भाव भट्ट वलया कर भे छिगुनी के छला।
बृज' बाल के हाल बिलोकि सबै तहँ पूछि रही अबलै अबला॥३१॥

टीका—अलिआइ पद० सखा की उक्ति सखा सों कि नायिका सों सखा याँ आय बोलि कै कही कि परदेश को जावैगे प्रात उठि लला नायक।

उदाहरण में 'जब नायक ही रूठकर चला गया तो हम जो कर क्या करें' इस वर्णनीय वाक्य को स्पष्ट न कह कर 'जब माल ही चोरी चला गया तो रखवाला रखकर क्या करे' इस प्रतिबिम्ब रूप में कहा गया है।

१—चन्द्रालोक ५।१२७। चन्द्रालोक की कई प्रतियों में "वर्ण्य स्याद्वर्णनवृत्तान्त" ऐसा पाठ है, किन्तु कुवलयानन्दकार अप्पय दीक्षित को "प्रस्तुते वर्ण्यवाक्यार्थ" यही पाठ अभीष्ट है और उन्होंने इसी के आधार पर टीका की है॥३०॥

सेमुषी = बुद्धि। हलाहल = विष। अमी = अमृत॥३०॥

२—कारण के आभासमात्र से जहाँ कार्य का अतिशय वर्णन हो, वहाँ चपलातिशयोक्ति होती है। जैसे इस उदाहरण में 'नायक कल प्रात जानेवाला है' यह सुनते ही नायिका इतनी मोटी हो गयी कि उसके हाथ का कंकण कानी अँगुली के छल्ले की भाँति कसा हुआ लगने लगा॥

भए बात शी शोच रा भारी गरा भरिकै अर्थात् स्वरभग कठ में उदय ह्व, आँखिन सां आँसू बहि चल्यो। सखी ।है कि हे भट्ट नहीं जानि परै है कि किस हेतु वलया कगण ।सुगी कनिष्ठिका को ऊला भयो। बृज कवि की उक्ति, नायिका को यह हाल देखि सकल ब्रज वनिता मडल परस्पर पूँछि रही है यह बडे आश्चर्य की बात कि दरा मे सुख देखि परै है। इहाँ बहिरग सखा आदि के निश्वास के हतु कि याको प्रिय पराम गमन जनित खेद अतिशय देखि परे है इस कारण आँसू भरे है, परतु है यह आनदाश्रु, क्योंकि स्वामी के सगम को सुलभ समुझि सात्विक भाव को उदय भयो है और वलय ककण का छला होयबो बिना सुख के स्थूलता नही होय है। तत्काल में ऐसो होयबो यातें मुदिता नायका को स्थूल होयबो और इसो हेतु ककण को छला होयबो यात चपलातिशयोक्ति अलकार ॥२१॥

(शुद्धापह्नुति[1])

सवैया—बह सीर समीर निशापति शीतल राति बढी रबि तेज घटावे।
हिमि रा सहमे जगजीव जित रुचि मद हुतासन की सरसावे॥
अति सीत सों भीत भई हौ भट्ट कर कंपित देह सँभारि न जाने।
सुख पुज समै यह कौन कहै दुख पुज हिमत हमें नहि भाने॥२२॥

टीका—बह सीर समीर पद० वह सीतल वायु जाके स्पर्श से मनोज्ञ सुख के तुल्य प्रबुद्ध होय है। निशापति चन्द्रमा के किरणों से शीतल रात्रि अपनी रुचि को बढाय रही है। सूर्य के तेज को अभाव, अवशिष्ट दिवा ताप जा रहि गयो है ताको दूरि करै है। हे भट्ट। अति शीतसो भीत भई हौ, हाथ ओर देह काँपे है, नही सँभारि जाय है। याको सुखदायक समै कौन कहै है जामे दुख ही की अधिकता सो हम नही भावै है। इहाँ शीतल वायु और सुधासुयुक्त रात्रि उद्दीपन सों उद्दीपित ह्व सात्विक भाव के प्रादुर्भाव को दुरावै है। यातें खेद भाव और व्यग्य करि नायक को सभोग लक्षित होय है। ताको मिसु करि दुरावै है। यातें गुप्ता नायिका और तारानायक भूषित रात्रि के सुखपुजत्व गुण को दुराय दुख पुजत्व को आरोप। यात शुद्धापह्नुति अलकार। 'शुद्धापह्नुतिरन्यस्यारोपार्थो धर्मनिह्नव'[2] इति तल्लक्षणम् ॥२२॥

१—अपह्नुति = छिपाना। जहाँ वस्तु के वास्तविक धर्म को छिपा कर उसमें अन्य का आरोप किया जाय, वहाँ शुद्धापह्नुति होती है। यहाँ सात्विक भावों की उद्दीपक रात्रि की सुखपुजता का निषेध कर उसमें दुःखपुजत्व का आरोप किया गया है, अत उक्त अलकार है। २—चन्द्रालोक ५।२५।

(पिहित[1])

सवैया—मन मालिनि दीन ह्वै आलि कहैं करि तेह तमालिनि बोलत टेरे।
सरमाय कहैं मुख नायनि जो सतराय कहैं मनिहारिनि हेरे॥
खिसियान खवासिनि बैन कहैं मुख मोरि कहै यह चेरिनि चेरे।
'बृज' भीतर बाहिर की बरनी घर घेरि कहैं बतियाँ निय तेरे॥३३॥

टीका—मनमालिनि पद० सखी की उक्ति नायिका सो कि जब तूँ मालिनि कों बोल्कारे है तब मन मे दीनह्व बालि कहै है, ओर नायिनि सरमाय कहैं लज्जित ह्वै कहै है, सतराय कहै झुलझुलाय मनिहारिनि धारे बाले है और खवासिनि लज्जाना अधोमुख करि बोले है। ओर चेरिनैं कहे जो दासी लाग हैं सों मुख मोरि कहै हैं। बृज कवि की उक्ति भीतर ओर बाहर की स्त्री लोग तेरेई बात की चर्चा करे हैं। इहाँ मालिनि आदि के दीन वचन बोलने से यह व्यग्य सूचित भया कि मेरो कहा काम है। तेरो नायकै ताको गजरा गूँथि देय है। तमालिनि क्रोध करे है कि जब पान की बीरी तेरो नायके ताको खवावै है मेरो कहा काम, आगे मेरोइ दियो महावर ताकों पिय रह्यो अब नायकै देय है याते नायिनी लज्जित होय है, भला नयो चार है कि मनिहारिनि बैठा रहै ओर नायक चूरी पहिरावै यह बिपरीत देखि मनिहारिनि सतराय कहैं सोपालम कहै है, खवासिनि खिसियाय कै कहै कि मेरो काम तो नायक करि लेय है मेरो कहा काम, चेरी मुख मोरि कहै है कि सब दास्यकृत्य नायकै करै है, नायक के सम्पूर्ण काम करने से नायिका को स्वाधीनत्वव्यग्य भयो ताते स्वाधीन पतिका नायिका ओर सखी लोगों के गुप्त वृत्तान्त जानि लेने से पिहितालकार।
'पिहित[2] परवृत्तान्तज्ञातु साकूतचेष्टितम्' ॥३३॥

(व्याघात[3])

जिन अगन मैं अँगराग लग्यौ तिहि अग विभूति लगाए कराला।
हिय हारहूँ को न बिहार मे अन्तर सो 'बृज' देखिबे को परे लाला॥

१—किसी की गुप्त चेष्टाओं को जानकर गुप्त रूप से ही जहाँ भाव प्रकट किये जायँ, वहाँ पिहित अलकार होता है। प्रस्तुत पद्य में नायक के द्वारा ही नायिका का श्रृङ्गार रूप, गुप्त चेष्टा को जानकर मालिन आदि का क्रोध, रीझना, दीन होकर बोलना आदि गुप्त रूपो से प्रकट हो रहा है अत पिहित अलकार है।

२—चन्द्रालोक ५।१५१।

तेह = क्रोध। सतराय = उलाहना देकर। खवासिनि = बाँदियाँ। मोरि = मोड़कर। चेरिनि चेरे = दासी दास॥३३॥

३—व्याघात (वि = विशेष, आघात = टक्कर)—एक क्रिया से दो परस्पर विरोधी कार्यों का होना अथवा दो परस्पर विरोधी क्रियाओं से एक कार्य का

प्रिय जोबन भोग बिहार कहा तिय जोबन मैं जपै जोग की माला।
हरि कूबरी शाला दुशाला दिए ब्रजबाला बिछावन को मृगछाला॥३४॥

टीका -जिन अगन पद० काहू की उक्ति कै गोपी की उद्धवसों। जिन अगन मैं अनेक प्रकार के सुगंधित द्रव्य सो मिश्रित अगराग लग्यो बडे कष्ट की बात ताही अग मैं विभूति लगाइबो और जेहि श्रीकृष्णचन्द्र को अतराल बिहार गरे हार सों अप्रिय अर्थात् नही सहि जाय है ताके देखिबे को अब हमें लाला परयो। हाय हाय प्रिय कहे कात के साथ जोबन भोग कहैं युवावस्था मे कामकेलि कला कोकशास्त्र विहित बाह्य अन्तर भेद करि षोडश प्रकार के आलिंगन चुबन नख रददानादि छाडि, इन फेरि नही आवने वाली नायिका की युवावस्था मे जप करैं, जोग की माला कहैं, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा समाधि, अष्टाग जोग जो स्त्री से नहीं ह्वै सकै हैं। और हरि हमारे स्वामी कृष्णचन्द्र, कूबरी जाको अग कुटिल अथात् त्रिभग ताको तो ओढन और बिछाने के अर्थ शालादुशाला दियो और ब्रज की बालाओं को ओढने और बिछाने को मृगछाला, जो अजोग्य। इहाँ जो कुबरी को चाहिए सो गोपिन को दियो और जो गोपिन्ह को चाहिए सो कुबरी को दियो, यातें व्याघात अलकार स्पष्ट है। 'स्याद्व्याघातोऽन्यथाकारि तथाकारि क्रियेत चेदि'ति' लक्षणम् ॥३४॥

(उत्प्रेक्षा[२])

मत्तगयद—आए मनावन मानै न मानिनि माधव कोटि किए बरजो हैं।
जाम गयो जुग जामिनि को घनस्याम रावेरहि कै रहे सो हैं॥

सिद्ध होना, व्याघात कहलाता है। उक्त पद्य मे एक ही हरि (कृष्ण) के द्वारा सुरूपा युवती गोपियो को योगमाला और मृगछाला देना तथा कुरूपा कूबरी को शाला दुशाला देना रूप परस्पर विरोधी कार्य किये गये हैं अत व्याघात अलकार है।

१—चन्द्रालोक ५।१०१।

अगराग = सुगन्धित द्रव्य का लेप। विभूति = भस्म। कसाला = दु ख। लाला = दुलभ होना ॥३४॥

२—उपमेय में की जानेवाली उपमान की सम्भावना को उत्प्रेक्षा कहते हैं। यह तीन प्रकार की होती है—१—वस्तूत्प्रेक्षा, २—हेतूत्प्रेक्षा, ३—फलोत्प्रेक्षा, वस्तूत्प्रेक्षा मे विषय (वस्तु) का वर्णन करके तब उसपर सम्भावना की जाती है। जैसे उक्त पद्य में नायिका की मुसकान को पहले कहकर तब चन्द्रमा में

सोहैं लला 'बृज' खोलि बिलोचन आनन मन्द कछु बिहँसो है।
मानहुँ इंदु अमंद कला महँ कुन्द कली अवली निकसो है॥२५॥

टीका—आए मनावनपद० मनावै न अथ कृस्नच द्र आए, कोटिन साधन कहे उपाय कियो, मानिनी नायिका नहीं माने है। इमा मे रात्रि क द्व जाम बीति गयो। घनस्यॉम कृस्नच द्र प्रात काल हाबो जानि सोय गए, तब नायिका लालजी के स्नेह के अथ आनन शेष सों मंद कछू बिहँसी है कहैं नयन खोलि सोहैं कहैं स्वाभिमुख कियो, ताकी छबि इस प्रकार भइ कि मनहु चन्द्रमा की अमद देदीप्यमान कला के मध्य कुदकला की अवली कहे पंक्ति निकसित ह्वै रहा है। नायका के दशन की द्युति को चंद्रमा के मध्य कुन्दकली की उत्प्रेक्षा कियो। नायिका को बिहसनि वस्तु उक्त, ताको च द्र म यगत कुन्दकली [सों] तादात्म्य करि उत्प्रेक्षा। उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलकार, मानवतानायिका॥३५॥

जथा

सवैया—बिसरी सुधि अग सँभारिबे कों रति रग महा मनमोह बसै।
अलसातहि गात जम्हात उठी अवलोकि अली हिय में हुलसै॥
'बृज' छूटे लटै को लपेट लटू निरखै मुख यो उपमा दरसै।
सुरभान समेत मनो शशिमडल भानु के मडल मजु लसै॥३६॥

टीका—बिसरी पद० अग सभारिबे की सुधि जाकों बिसरि गई क्योंकि जो रात्रि कों रति रग कियो है अथात् कामवश वाम रतिरण के महामोह में मत्त ह्वै रहा है। अरसानी देह और जँभात उठी जाकी छबि देखि सखीजन अपने हृदय मे हुलास को प्राप्त ह्वै रही हैं। छूटे लटें को रस में लटू ह्वै लपेटि रही और आदरश मे मुख देखती ताको यह उपमा दरसाय है। मानो सुरभानु कहैं राहु, सहित च द्रमडल सूर्य मडल के मध्य शोभित होय है। इहाँ छूटे लट को लपेटिबो और मुख को आदर्श में देखिबो वस्तु उक्त विषय ताकों स्वर्भानु सहित च द्रमडल सूर्यमडल मध्यगत शोभा तादात्म्य करि उत्प्रेक्षा, उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा॥ ३६॥

कुन्दकली की सभावना व्यक्त की गयी है अत वस्तूत्प्रेक्षा है। अलकार ग्रन्थो में वस्तूत्प्रेक्षा दो प्रकार की वर्णित है—उक्तविषया और अनुक्तविषया, जहाँ विषय (वस्तु) का स्पष्ट निर्देश रहता है वह उक्तविषया (जैसे उक्त छन्दमे) और जहाँ विषय का स्पष्टनिर्देश नहीं रहता वहाँ अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा होती है। जाम (याम) = पहर। जामिनि = रात्रि। सोहैं = सामने। अमद = पूर्ण॥३५॥

(असिद्धविषया उत्प्रेक्षा[1])

दुमिला—जानि जबै मनभावन आवन पानिपपुंज प्रभा छलके हैं।
अंग सिंगार सिंगारि सबै सजि सेज सरोजन के दलके हैं॥
कै मुख घूँघट वोट लखै चख चंचल द्वार लगी पलकें हैं।
चन्द्र के मंडल मैं 'बृज' मंजुल मानहुँ खंजन द्वै झलके हैं॥२७॥

टीका—जानि जबै पद० मनभावन नायक को आवन जानि शोभा जाल कों नगारि रही है। अंग न श्रृंगार कहैं भूषनों से भूषित के और कमलों के फूलन सों सेज साज्यो घूँघट मध्य मुख के ताकै ओट कहै आड़ मे चंचल नेत्रों से द्वार निहारि रही है मानो चन्द्रमा के मंडल में द्वै खंजन आछी विधि लरि रहे हैं। इहां मुख और चंचल नेत्र को निवेश नहीं, तासो चन्द्रमंडल के मध्य लड़ते हुए खंजन की झलकबे की शोभा को उत्प्रेक्षा, असिद्ध विषया हेतूत्प्रेक्षा अलंकार और द्वार देश के विलोकनादिक सो प्रियागमन संभावना सूचित होय है यातें वासकसज्जा नायिका॥२७॥

(स्वभावोक्ति[2])

सवैया—कैसी हती जुबती जग वै 'बृज' मान करैं निज बानि बिगारैं।
शील सयानप खोवै खई मुखते सखि रूखोई बात निकारैं॥

१—किसी वस्तु में संभावना करने के लिये जो हेतु नहीं है उसे हेतु मानकर जहाँ उत्प्रेक्षा की गई हो वहाँ हेतूत्प्रेक्षा होती है। यह भी दो प्रकार की है—सिद्धास्पदा और असिद्धास्पदा। जहाँ आस्पद (विषय) सिद्ध होता है वहाँ सिद्धास्पदा और जहाँ असिद्ध होता है वहाँ असिद्धास्पदा हेतूत्प्रेक्षा होती है। उक्त पद्य में मुखमण्डल में स्थित चञ्चल दो नेत्रों में चन्द्र मण्डल में झलकते हुए दो खंजनों की उत्प्रेक्षा की गई है जो प्रसिद्ध नहीं है अतः असिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा है।

हुलसै = प्रसन्न होती है। लटे को लपेट = बालों का जूड़ा बाँध कर। सुरभान = राहु॥२६॥

मनभावन = प्रियतम। पानिपपुंज = शोभा समूह। वोट = ओट। चख = नेत्र॥ २७॥

२—स्वभावोक्ति (स्वभाव + उक्ति) अलंकार वहाँ होता है जहाँ किसी की जाति या क्रिया आदि का स्वाभाविक वर्णन किया गया हो। जैसे उक्त पद्य में चन्दन और उत्तमा नायिका का जातीय स्वभाव कहा गया है कि ये स्वयं नष्ट होने पर भी क्रमशः सुगन्ध और सज्जनता को नहीं छोड़ते।

काहू बुझाइये बूझि बिना अपने जिय तें कछु जो न बिचारै।
कोपि कै काटत क्रूर जऊ तऊ चन्दन मंद सुगंध बगारै ॥३८॥

टीका—कैसी हुती पद० कैसा वै नायिका है जो मान कै कै अपना जानि कहै स्वभाव का बिगारती है। शील स्वभाव और चातुरी साथ कै मुखतें हैसखि कहाइ बातैं निकारै हैं, जो कोइ अपने मनसों नहीं बूझै है तासों कहा बुझाइए। कोप करि क्रूर लोग जद्यपि चंदन कों काट हैं, तऊ चन्दन अपनोई सुभाव अनुसरे है अथात् सुगंध ही का बगारै है। इहाँ यद्यपि नायक सापराध लखि नायिका मान नहीं किया किन्तु सत्कारै कियो, या तें उत्तमा नायिका। चंदन और उत्तमा नायिका का यही स्वभाव है याते स्वभावोक्ति अलंकार। 'स्वभावोक्ति[1] स्वभावस्य जात्यादिस्थस्य वर्णनमि'ति लक्षणात् ॥३८॥

जथा—वेद[2] पुरान पुरातन लोग गए कहि बात अलीक न कोई।
जो 'बृज' देखो बिचारि अजों जस बीज बये फरिहै फर वोई॥
आप भलो तौ भलो जग है यह नीतिनिरूपन मे करि जोई।
खोटो सो खोटो खरो सो खरो निखरैगो कसौटी कसे रंग सोई ॥३९॥

टीका—वेद पुरान पद० नायिका की उक्ति सखा सों कि प्राचीन लोग वेद और पुरानों मे जो बात कहि गए हैं झूठा नहीं है किन्तु साँचा बात कह्या है, तासों अजहू बिचारि कै देखो कि जैसो बीज बोवे तैसो फल खाय है। तैसाई यह नीति भलीविधि विचारिकै मैंन जोइ है अथात् देखी है। जो खोटा सो खोटा, जो खरा सो खरा, कसौटी में कसे सोइ रंग निखरैगो जो स्वाभाविक होयगो। इहाँ हिताहित आचरन सों मध्यमा नायिका औरन कों ऐसोई स्वभाव होय है यातें स्वभावोक्ति अलंकार ॥३९॥

(विशेषोक्ति[3])

जथा—अंग सुभाव मिटैगो कहाँ 'बृज' कोऊ कितेक उपाय करै।
है नहि झूठ बिचारि कहौ सति जानि परै सतसंग परै॥

१—चन्द्रालोक ५।१५९

खइ = क्षीण, मन्द (यह मानिनी के प्रति आक्रोश सूचक प्रयोग है)। क्रूर = क्रूर। बगारैं = फैलाते हैं ॥३८॥

२—यह क्रियागत स्वभावोक्ति है, कसौटी में खोटा धातु रगड़ने से खोटा और खरा रगड़ने से खरा रंग आता है, कसौटी का स्वभाव है कि वह रगड़ना रूप क्रिया से खोटे को खोटा और खरे को खरा सिद्ध कर देती है।

अलीक = मिथ्या। वोई = वही। जोई = प्रत्यक्ष किया है, देखा है ॥३९॥

३—जब कारण रहते हुए भी उसका कार्य न हो तो विशेषोक्ति अलंकार

शीतल नीर समीर सिरे घनसार उसीर के धाम धरै।
फेरि दिवाकर के परसे कर सूर्यमुखी लखि आगि झरै॥३९॥

टीका—अग सुभाव पद० जाको जो। अग स्वभाव होय सो कहाँ मिटि जायगो, नहीं मिटै है कोऊ कितेको उपाय करै। यह बात झूठी नहीं आछी भाँति निर्धारिके मैं कहौं हौं। सत्य तब जानि परै है जब सतसग परै, सीतल नीर जल, शीतल समीर कहैं वायु घनसार कपूर और उसीर के धाम कहैं घर में जऊ धरै तऊ सूर्य के किरण के स्पर्श के निमित्त सूर्यमुखी कहैं सूर्यकात मणि आगि ही को झरैगी, इहाँ शीतल नीर आदि कारण यद्यपि अधिक पुष्ट है तथापि तदनुगुण कार्य्य की उत्पत्ति नहीं भयो किंतु स्वानुगुण को अनुसन्धा याते विशेषोक्ति अलंकार, अगमा नायिका ॥३९॥

(रूपक[1])

रंग भौन को भामिनि भोर गई जहँ चारु चितेरे रचे रुचि नीके।
छबि छाजे सुलाखन ताखन में 'बृज' मोचक दीठि परी तरुनी के॥
पग पानि चले न हलाए हले न कहे कछु बैन सनैन सखी के।
बृजचन्द्र के चित्र विचित्र चितै चख चद्रपखान भे चन्द्रमुखी के॥४०॥

टीका—रंगभौन पद० रंगभौन कहे कान्तागारको प्रभात नायिका गई, जहाँ चारु कहे रमणीय चित्र चित्रकारो के बनाए बिराज रहे हैं। शोभा झलकै है

होता है। जैसे शीतल जल, वायु, कपूर और उशीर में कोई भी उष्ण पदार्थ रखा जाय तो उसकी उष्णता नष्ट हो जाती है किन्तु सूर्यकान्तमणि को इन सभी ठंढे से ठंढे पदार्थों के मध्य रखने पर भी सूर्य की किरणों का स्पर्श होते ही उससे आग बरसने ही लगती है। सभी शीतल कारणों के रहते हुए भी उसमें शीतलता रूप कार्य का अभाव ही दर्शाया है।

सति = सत्य। सिरे = ठंढे। उसीर = खस। कर = किरण ॥३९॥

१—बिना किसी प्रकार का निषेध किये जहाँ उपमेय में उपमान का आरोप किया जाय वहाँ रूपक अलंकार होता है [उपमेय का निषेध कर के उपमान का आरोप करने में अपह्नुति अलंकार होता है यह पहले कह चुके हैं] उक्त पद्य में कृष्ण में चन्द्र का और चन्द्रमुखी (नायिका) के चक्षुओं में चन्द्रकान्त शिला होने का आरोप बिना किसी निषेध के किया गया है।

चितेरे = चित्रकार। सुलाखन = झरोखो। ताखन = ताखो। चन्द्र पखान = चन्द्रकान्त शिला ॥४०॥

[illegible] गई, उन्हीं [illegible] कहै हैं और [illegible] वचन नहीं सुने हैं, [illegible] चन्द्रप्रकाश [illegible] चन्द्रप्रकाश [illegible] रूपक अलंकार स्पष्ट है [illegible] वदन सा रंग भाल को गइ लाज मों ऑंखिया मे ऑंसू झलक्यो यात मध्या नायिका ॥४०॥

(उल्लेख[1])

दंडक—कोऊ कहै बान मनोभव के समान सोहैं,
काऊ कहै मंत्र मोहिबे को बरजोर हैं।
कोऊ कहै बेस है नरेस नेह के दिवान,
कोऊ कहै बृज बनिता के चित चोर हैं।
कोऊ कहै खंजन कुरंग मन रंजन हैं,
कोऊ कहै मंजु पुंज कंज फूले भोर हैं।
जानी हौ चकोर चख 'गोकुल' गोबिंद जू को,
चिते रहे चंद मुख राधा जी के वोर हैं॥४१॥

टीका—कोऊ कहै कि मनोभव काम को बान है। कोऊ कहै नागरी गूजरी के मोहिबे को मोहनी मंत्र है। कोऊ कहै स्नेह के दीवान हैं। कोऊ कहै बृज की बनितान के चित को चोर हैं। कोऊ कहैं खंजन और कुरंग के मनको रंजन कहै राग रचने वाले हैं। कोऊ कहै प्रभात काल के अर्थात् नवीन विकसित कमल हैं। परन्तु मेरे जानि राधा जी के मुख चन्द को चितवै के अर्थ श्री कृष्ण चन्द्र जी को यह अनिर्वचनीय चख चकोर हैं। यहाँ बहुत विवेचक कृष्णचंद्र के

१—एक वस्तु का अनेक व्यक्ति अनेक प्रकार से वर्णन करें अथवा एक ही व्यक्ति एक ही वस्तु का, उसके विभिन्न गुणों के कारण, अनेक रूप में वर्णन करे तो उल्लेख अलंकार होता है। यहाँ कृष्ण के नेत्रो का विभिन्न व्यक्तियों ने अपनी अपनी मति के अनुसार विभिन्न रूपों में वर्णन किया है अत उल्लेख अलंकार है। किन्तु उन सबके कथन का निषेध करके कवि ने अपना पक्ष स्थापित किया है कि ये, ये सब न होकर राधा के मुखचंद्र को निहारने वाले चकोर है। अत शुद्ध उल्लेख न होकर अपह्नुति मिश्रित हो गया है।

नथ को हुत प्रकार करि वर्णन करे हैं, याते शुद्धापह्नुति गर्भक उल्लेख अलंकार स्पष्ट है ॥४१॥

(पिहित)

दंडक—चौगुनो चटक चित चितवनि चारु मुख,
हाव भाव भावे उपजावे रसरासिका।
चंदन सुगंध बुंद छिरक्यो कपोली मंजु,
छबि छहरात भौन भ्राजे दीप मालिका।
आगे ह्वै मिली ह्वै चाह कीन्हा सनमान बलि,
मधुर बचन 'बृज' आनन प्रकासिका।
छपे न छपाए छामोदरी छल बल यह
सेज के समीप आजु राज सुक सारिका ॥४२॥

टीका—नायक की उक्ति नायिका सों, चोगुनी चटक चित और चितवनि वैसे ही रमनीय मुख हाव भाव करि नायक के मनमें मनोज उपजावे है। रस की राशि नायिका। चंदन और सुगंध अतर गुलाब आदि अंगराग छिरक्यो अरु लगायो सम्पूर्ण देह म सोभा सरसाती है। दीप के प्रकास करि दीपमालिका के सदृश गृह ह्वै रह्यो है। नायक को आगम देखि आगे चलि अगुवानी लियो आछी बिधि स मान करि मीठी बातें बोलि मुख सोभा बगारि रह्यो है। नायक कहै है कि हे छामोदरी तेरे छपाए यह छल बल नहीं छपै है, क्योंकि सज्जा के निकट आजु शुक सारिका क्यों धरयो बड़े उल्लास मों पढ़ि रह्यो है। इहाँ सज्जा के निकट शुकसारिका के धरने से नायिका प्रिय को सापराध जानि अपने में क्रोध को गोपन ठानि उत्तम चेष्टा करि रति नहीं चाहै यह व्यंजित होय है। याते मध्या धीरा नायिका और नायिका को छल वृत्तान्त जानि लेने से पिहित अलंकार स्पष्ट है ॥४२॥

१—सब प्रकार की साज सज्जा प्रकट करने पर भी नायक ने नायिका के छल को समझ लिया कि इसकी इच्छा रमण की नहीं है, अतः अपना भाव प्रकट किया—'आज तो शय्या के पास शुक सारिका है' यही पिहित अलंकार है देखिये लक्षण पृ० ४३।

भाव=स्वभावतः निर्मल चित्त में संभोगेच्छाविषयक जो विकार उत्पन्न होते हैं उन्हें 'भाव' कहते हैं। हाव=उन्हीं संभोगेच्छा विषयक भावों को जब भ्रू नेत्रादि की चेष्टाओं द्वारा प्रकट किया जाता है तो वे 'हाव' कहलाते हैं। छामोदरी=कृशोदरी ॥४२॥

(विभावना)

स०—नहि जात बखानि कछू हमपे बलि मंजुल पुंज प्रभा दरसायौ।
यह रीति नई प्रगटी 'बृज' सुन्दर मैं ता निलोकि महासुख पायौ॥
पर के गुन देखि हिए हरषे जग मे विरले विधने उपजायौ।
मति आछी अली अति काछी की है जिन कुंदन बेलि कदंब फुलायो॥४३॥

टीका—नहीं बखानि जाय है हमपै यह रमणीय शोभा समूह तुम दरसायो, यह अपूर्व रीति अति सुन्दर प्रगट किया। याको देखि में तो बहुते सुख को प्राप्त भई। आन को गुन देखि हरषित होय ऐसो थोर ही मनुष्य ब्रह्मा उत्पन्न कियो। हे सखी धन्य याकी बुद्धि है जिसने कुंदन की लता में कदंब विकसायो है। इहाँ कुंदन बलि अकारन तासों कदंब को विकसित होनो कार्य उत्पन्न भयो, यातें चौथी विभावना अलंकार और नायक कों देखि याके सात्विक भाव भयो ताको देख सखी प्रेम लक्षण करै है यातें प्रेम लक्षिता नायिका॥४३॥

(अवज्ञा)

मंजुल मौलसिरी मोगरा मधुमालति की गजरा गुहि राखै।
चंदन पंक लगाइले अंग मयंकमुखी करिकै अभिलाखै॥
जेब जवाहिर के गहने तन मे पहिने इनसें छवि लाखै।
तो अंग लायक एते सबै सुनि बाल की लाल भई लखि आँखै॥४४॥

१—कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति में विभावना अलंकार होता है। इसके ६ प्रकार हैं—

१—बिना कारण के कार्य का हो जाना।

२—अपूर्ण कारण से पूर्ण कार्य हो जाना।

३—कारण का प्रतिबन्धक रहते हुए भी कार्य का हो जाना।

४—जो जिस कार्य का कारण नहीं है उससे उस कार्य का हो जाना।

५—कारण के विरुद्ध कार्य हो जाना।

६—कार्य से ही कारण की उत्पत्ति दर्शाना।

उक्त पद्य में कुंद की लता से कदम्ब का फूल होना चौथी विभावना है। काछी = मुराव, कोइरी, तरकारी बोने वाला॥४३॥

२—(अवज्ञा = तिरस्कार) जहाँ किसी के गुण या दोष को दूसरे द्वारा उसी रूप में न ग्रहण करना दिखाया जाय वहाँ अवज्ञा अलंकार होता है। उक्त उदाहरण में गजरे एवं आभूषणों के द्वारा सौन्दर्यवृद्धि रूप गुण को रूपगर्विता नायिका गुणरूप से नहीं मानती, अतः अवज्ञा अलंकार है।

टीका—नायक की ,कै सखी की उक्ति नायिका सों कि रमनीय मौलसिरी, मोगरा और मधुमालती को गजरा गूँथि के राखे हौं। मदन मक माच्यौं हौ, हे मयकमुखी! ताकों लगाय ले। जवाहिरों के गहने जाको जेब कहं सोभा अगे है ताकों पहिरे यासों लाख भाँति छबि होवैगो तेरे अंग की। ऐ सब तेरे ही अंग के लायक हैं। इत नी बातें सुनत ही नायिका की आँखे लाल ह्वै गईं। इहाँ सखी अथवा नायक ने बचन सें कि इन सों तेरो कछू अधिक सौन्दर्य ह्वै जायगो। यासों अपनी निंदा ठहरावे है कि मेरे अंग से ये अधिक सुन्दर हैं याते रूपगर्विता नायिका और भूषणादि सों नायका को भूषण न भयो किन्तु दोष, यातें अवज्ञा अलंकार "लोभ्या तौ यदि न स्यातामवज्ञालङ्कृतिश्च सा" इति तल्लक्षणम् ॥४४॥

(विभावना षष्ठ)

आवन भोर किए मनभावन पान की पीक लगी पलकें हैं।
केलि कलोल में भासे कपोल मे भोडर के किनका छलके हैं॥
बाल बिलोकि न बोली कछू 'बृज' अंजन लै अँसुआ ढलके हैं।
चन्द के मंडल मीन तें मंजुल धार कढ़ी जमुना जल के हैं॥४५॥

टीका—मनभावन श्री कृष्णचन्द्र जी प्रभात आगमन कियो, जाके पलकों में पवित्र पीक की लीक लग्यो है। कामकेलि के श्रम सें कछू न बोली, अंजन अंजित नेत्र सें आँसू को प्रवाह कढ्यो, ताकी यह शोभा कि चंद्रमंडल गत मीन सों जमुना की धार लसे है। इहाँ कार्य्य मीन, तासों जमुना की धार कारन को प्रगट होनो छठईं विभावना अलंकार स्पष्ट है और अन्यनायिकासुरत चिह्नित नायक को प्रात काल आयबो याते खंडिता नायिका ॥४५॥

जथा—लेहौं बलाइ बताइये बेगि किए गुन जाहिर जो दरसो है।
बात न जात बखानि कछू छहरे छबि पुंज प्रभा परसो है॥
जो जस काज करै कहिए तस 'गोकुल' ऐसोई मेरो मतो है।
देखे तमाल मैं किंसुकजाल फुलाइ दए वह मालिनि को है॥४६॥

टीका—नायिका की उक्ति नायक सों। मै बलाय लेऊँगी बेगि बताइए जो तुम्हारो गुन रह्यो सो प्रगट देखात है। मोपै कछू नहीं कह्यो जाय है जो छबि पुंज रावरी देह में झलकै है। जो जैसा काज करै है ताको तैसोई कहिबो उचित,

१—चन्द्रालोक ५।१२५

भोडर के किनका = अभ्रक के कण [लाल कपोलों पर उत्पन्न स्वेद बिन्दुओं का वर्णन कवि ने अभ्रक के कण रूप में किया है]। कढ़ी = निकली ॥४५॥

यहो मेरो मतो है। अचम्भे की बात है कि तमाल में किंसुक बिक्सायो वह कौन मालिन है। इहाँ तमाल में किंसुक टेसू को बिकसिबो असंभव, अकारन सें कार्य्य को उत्पन होबो यातें चोथा विभावना अलकार स्पष्ट है। और अन्य नायिका संभोग जनित नखक्षत देखि खेद होबा याते खडिता नायिका ॥४६॥

(अर्थान्तरन्यास[1])

मंजुकी—समुद जल खार को कीन्हें कटीली डार सुमना के।
मृगन कों आँखि भल दीने करी उबि हीन नैना के॥
दिए गुन गेह धन नाहीं दिए धन नाहि गुन जाके।
बडेन की बात को बरने कहै को काज विधना के॥४७॥

टीका—काहू दु खाक्रान्त को बचन। ब्रह्मा को कर्त्तव्य अकथ है कि समुद्र का जल खार किया, गुलाब ऐसे फूलन में काँटा। मृग वन मे रहने वाले को भली कटीली आँखें दीया। करी हाथी जा दल का शृङ्गार ताको मृग सदृश नेत्र न दिया। गुनन को आधार अच्छे गुणी जनन कों गुण दियो परन्तु धन न दियो जाकों धन दिया ताकों गुन न दियो। बडेन की बातों का को कहै ऐसेइ उनको कर्त्तव्य है। इहाँ प्रथम विशेष ब्रह्मा के कर्त्तव्य को कह्यो ता पीछे बडेन के कर्त्तव्य सामान्य को वर्णन कियो यातें अर्थान्तरन्यास अलकार स्पष्ट है। "उक्तिरर्थान्तरन्यास[2] स्यात्सामान्यविशेषयो" इति तल्लक्षणम् ॥४७॥

(अनन्वय[3])

त्रिभंगी—नैना रतनारे बृजहि पियारे तन मन वारे परसगी।
जिहि बहु चख चोखे यह छबि पोखे आज अनोखे रँगरगी॥

1—(अर्थान्तर = दूसरे अर्थ का, न्यास = स्थापन) जहाँ किसी विशेष कथन के द्वारा सामान्य का अथवा सामान्य कथन द्वारा विशेष का समर्थन किया जाय वहाँ अर्थान्तरन्यास अलकार होता है। यहाँ विधाता के कर्तव्य रूप विशेष कथन का, सामान्य बड़ों के कथन से समर्थन किया गया है।

२—चन्द्रालोक ५।१२१।

३—जहाँ एक ही वस्तु उपमान और उपमेय दोनो रूपों में वर्णित हो वहाँ अनन्वय अलकार होता है। उदाहरण में 'तुम्हारे रूप के समान तुम्हारा ही रूप है' यह स्पष्ट है।

रतनारे = अरुण। चोखे = स्वच्छ। पोखे = दखे। तिरभंगी (त्रिभङ्गी) = तीन जगह टेढ़ा, एक छन्द का नाम ॥४८॥

प्रिय को अनुरागे सब निसि जागे पलक न लागे बिनु अगी।
तव रूप बराबरि तव रूपै हरि! कवि अनुरूपै तिरभगी ॥४८॥

टीका—नायिका की उक्ति नायक सो। यह तुम्हारे नैन रतनारे प्यारे बृज नागिन का तन मन वारे आा नायिका क प्रसग का रचना करे हैं, जाकी चाले चपल मा बिलोक्या वाहा सा आजु यह अनोखा अपूर्व रग रँग्यो। प्रिया के अनुराग भरे सपूर्ण निसि रात्रि म जाग पलक नही लाग्या है बिना अङ्गा अधाङ्गी मरे म, हे हरि श्री कृष्ण म सदृश तुम्हाराइ रूप ह जाको कबिन त्रिभगी अनुरूपै हैं ॥४८॥

(अतिशयोक्ति)

सवैया—निशि बासर सेइ रहे इनको इन्ह के हम प्रेम को नेम परेखे।
बन बाग तड़ाग घने सुमने सपने न कबो तिनको अवरेखे॥
दुख जाको परे तौ सहै सग मै सुख आजु समे दु ख पाइ अलेखे।
अरबिन्द मे काहू उड़ाइ दई 'बृज' भोर मै भौंर जपा पर देखे ॥४९॥

टीका—नायिका की उक्ति नायक सों व्याजपूर्वक भ्रमर के। दिन राति अथात् अहोरात्रि सेवा करि रहे वाकों इनको पूर्ण भो प्रेम हम आछी बिधि देख्यों। बन उपवन बाग तडाग ह में बहुत फूल बिकस्यो हैं स्वप्न में भी कबहूँ उनके निकट नहीं जाय है। कदाचित वाको दु ख परे तो सग मैं वाकों सहै। आज सुख क समे दुख पायो, अरविंद कमल सों काहू ने उडाय दियो, भोर प्रभात काल जपा पै भ्रमर कों मैंने देख्यो। इहाँ परस्त्रीप्रीतिजनक बचन सों नायिका कों दुख लक्षित होय है और अरविद पद सों नेत्र, भोर पद सों अजन, जपा पद सों ओष्ठ उपमेय लच्छित होय है। अरविंदादि कवल उपमान वाचक शब्द हैं यातें रूपकातिशयोक्ति अलकार स्पष्ट है। 'अतिशयोक्ति[2] रूपक जहाँ केवल ही उपमान' इति। रूपकातिशयोक्तिः[3] स्यान्निगीर्याध्यवसानत' इति तल्लक्षणम्। और नायक ने अन्य नायिका को आलिगन चुबनादि कियो वा समय नेत्र को कज्जल नायक के अधर लग्यो ताकों देखि प्रिया को अन्यापभोगाचिह्नित सापराध जानि खिसण्ण ह्व भ्रमर के अपदेश नायक सो व्यग्य करि वगइनो दयहै यातें खडिता नायिका ॥४९॥

१—जहाँ केवल उपमान हो और उसी के द्वारा उपमेय को अतिशयेन लक्षित कराया जाय, वहाँ रूपकातिशयोक्ति होती है। उक्त पद्य में अरविन्द, भौंर, जपा, इन केवल उपमानों से क्रमश नेत्र, अजन और ओष्ठ इन उपमेयों का सौन्दर्यातिशय लक्षित कराया गया है।

२—भाषाभूषण ४।७०   ३—चन्द्रालोक ५।२५

दोहा—कवित अलंकृत एक पद, ह्यां बरन्यो यह पंथ।
तैसे लखि प्राचीन कवि, रचित अलंकृत ग्रंथ ॥५०॥
है भूषन को ग्रंथ यह, रतन पदारथ ठाट।
गुन कवित्त दाना सुरुचि, लिखे एक से आठ ॥५१॥

टीका—एक पद अलंकार के कवित्त को यह अपूर्व मार्ग मैंने वर्णन कियो इसी प्रकार प्राचीन कवीश्वरों को रचित कवित्त वर्णन करत हों। यह भूषन को ग्रंथ पद और अर्थ यामें रत्न गुण कहे सूत्र कवित्त दाना यामें सुरुचि एक सौ आठ अर्थात् अष्टोत्तर सत की माला होय है इसी हेतु इस अपूर्व ग्रंथ में ग्रंथकर्त्ता अष्टोत्तर शत कविन्ह को राचो कवित्त धर्यो ॥५०, ५१॥

अथ प्राचीन कविन के ग्रंथ के अलंकार एकै पद में

कवि—चंद (उत्प्रेक्षा)

दंडक—मंडन[1] मही के अरि खंडे पृथुराज बीर,
तेरे डर बैरीबधू डाँग डाँग डगे हैं।
देश देश के नरेश सेवत सुरेश जिमि,
काँपत फनेश सुनि बीर रस पगे हैं।
तेरे श्रुति मंडलनि कुंडल बिराजत हैं,
कहै 'कवि चंद' यहि भाँति जेब जगे हैं।
सिंधु के वकील संग मेरु के वकीलहि लै,
मानहु कहत कछु कान आनि लगे हैं ॥५२॥

टीका—कवि की उक्ति, शोभा देने वाले पृथ्वी मंडल के, शत्रु संघारे हे पृथ्वीराज बीर! तेरे भय सों अरिवधू पर्वत के कान्तार में भ्रमे हैं। देश देश के राजे सेवा करि रहे हैं इंद्र सदृश तुमकों। तुम्हारी बीररसोत्कंपता सुनि सेस कंपायमान होवे हैं। तेरे श्रुतिमंडल में कुंडल शोभित होय है ताकी यहि भाँति शोभा जगै है मानों समुद्र को वकील साथ में सुमेरु के वकीलहि लै अपने स्वामी के अभय हेतु कान में लागि कछू सूचन करि रह्यो है। इहाँ कर्णगत

1—फलोत्प्रेक्षा का उदाहरण है। किसी वस्तु की संभावना करने का जो अभिप्राय नहीं है उस अफल को फल मानकर जो संभावना की गई हो उसे फलोत्प्रेक्षा कहते हैं। यह भी दो प्रकार की है-सिद्धास्पदा और असिद्धास्पदा।

डाँग डाँग डगे हैं = बन बन छान डाले हैं। जेब = शोभा। वकील = अधीन राजाओं के केन्द्र में उपस्थित वे प्रतिनिधि, जो वर्तमान राजदूतों के प्रतिरूप होते थे ॥५२॥

कुंडल को समुद्र और सुमेरु के वकील तादात्म्य करि अभय फलार्थ उत्प्रेक्षा सिद्धास्पदा फलोत्प्रेक्षा अलङ्कार स्पष्ट है ॥५२॥

कवि—गंग (उत्प्रेक्षा)

स०—सुन्दरि अंग सिंगार सिंगारति सौति के गर्बहि गंजन को।
'गंग' कहै कर आरसि लै मनमोहन के मन रंजन को॥
लै कर कज्जल अंगुलि लावति नैन लगावति अंजन को।
राजति यों महँदी नख मैं मनो गुंज चुँगावति खंजन को॥५३॥

टीका—यहाँ अंजन सम्भाव्यमान पद ताको नख में लगने के कारण खंजन को गुंज चुँगाइबो तादात्म्य करि उत्प्रेक्षा। उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलङ्कार स्पष्ट है ॥५३॥

कवि—रघुनाथ राय[1] (दीपकावृत्ति[2])

दंडक—काल की सी डाढ़ जमडाढ़ काढ़ै कै बरन,
देखे नर नाहर को रूप नरनाह जू।
लाह के पहार माँझ कोप कै अमर सिंह,
एक एक घाय हनी सिगरे सिपाह जू।
केतक हजारी मारे सँग के सँघाती हारे,
छेक्यो छत्रधारी पै सिधारी हिंद राज जू।
ढाल की पनाह न दिवाल की पनाह एक,
लोन की पनाह बचे आलम पनाह जू॥५४॥

टीका—यहाँ पनाह पनाह पद अनेक को निवेश और अर्थ एक यातें शब्दार्थावृत्ति दीपकालंकार ॥५४॥

१—देखिये भूमिका में अमर कवि (५) का परिचय।

२—उपमेय और उपमान में जहाँ धर्म की एकता होती है अर्थात् दोनों जहाँ अपने गुण के कारण एक से कहे जाते हैं वहाँ दीपक अलंकार होता है। इस दीपक का जहाँ आवृत्ति (दुबारा आना) होती है वहाँ दीपकावृत्ति अलंकार होता है। इसके तीन प्रकार होते हैं—१ केवल पद की आवृत्ति, २ केवल अर्थ की आवृत्ति, ३ पद और अर्थ, दोनों की आवृत्ति। उक्त दण्डक में 'पनाह' पद की आवृत्ति होने से पहला भेद है।

जमडाढ़ = तलवार। नरनाहर = पुरुषसिंह, नरश्रेष्ठ। नरनाह = नृपति। हजारी = एक हजारी, मनसबदार। सघाती = साथी। पनाह = त्राण, बचाव। लोन = नमक। आलमपनाह = विश्वरक्षक, बादशाह (शाहजहाँ) ॥५४॥

कवि—नरोत्तम **(पिहित)**

आए मनमोहन बिताइ रैनि औरही सों,
काहू सौति जन पग जावक लै भाल को।
'सुकवि नरोत्तम' सरोजनैनी शील करि,
बलि बलि आगे उठि मिली है गुपाल को॥
अंचल सों पोंछि वेगि चंचल विशाल नैन,
असन बसन करि दसन रसाल को।
पाछे ह्वै कै कह्यो जाइ अरी सहचरी धाइ,
आरसी के महल बिछौना करो लाल को॥५५॥

टीका—इहाँ नायक को अन्य स्त्री संभोगचिह्नित [illegible] जानि और राति में कलह न करि दीर्घ प्रजागर अनुमानि नायिका ने सखी सों आरसी जटित मन्दिर में पर्यंक बिछावने के हेतु साभिप्राय आज्ञा दियो याते पिहित अलंकार [illegible] है और खंडिता नायिका ॥५५॥

कवि—केहरी **(पूर्णोपमा)**

इतै साहिजाद जू बजाए सार मूरचनि,
उतै कोट भीतर रुवाए दल ह्वै रह्यो।
'केहरी सुकवि' कहै सूर मारे से हथीन,
तहाँ अवतरनि नभासे आनि वै रह्यौ।
औचक गलीन मैं गनीम दल गाजि उठो,
तुंड गजराजनि के मद आग च्वै रह्यौ।
रतन सँधारे भट भेदे रवि मंडल कों,
मंडल घरीक नट कुंडल सो ह्वै रह्यौ॥५६॥

टीका—इहाँ रविमंडल उपमेय, नट कुंडल उपमान, ताको भेदिबो धर्म, सो वाचक, याते पूर्णोपमा अलंकार॥५६॥

कवि—काशीराम **(संबंधातिशयोक्ति)**

कवित्त—गाढे गढ ढाहत रहत नाहि ठाढे नेकु,
दिग्गज दुरित मन डारत सुकाइ कै।

पगजावक = पग का आलता, महावर। बलि बलि = प्रेमपूर्वक, बार बार न्योछावर होकर॥५५॥

साहिजादे = युवराज, सार = युद्ध। मूरचनि = मोरचों में॥५६॥

१—असंबंध में संबंध की कल्पना, सम्बन्धातिशयोक्ति कहलाती है।

करा चोली = लोहे का कड़ा और कवच। दाबत रकाब = घोड़े की रकाब पर पैर रखता है॥५७॥

करा चोली कसि झुकि निकसि निजामति खाँ,
नावत रकाब जन जरा जारी पाइके।
धरनि के चहूँ कोर 'काशीराम' भौन भौन,
भाजौ भाजौ ह्वै होत राना राजा राइके।
लंक ते लंकेस के पताल हूँ ते सेस के,
सुमेरु ते सुरेश के मिलै वकील आइकै ॥५७॥

टीका—इहाँ लंका सों लंकेस रावन, पाताल सों सेस और सुमेरु सों सुरेश इन्द्र के वकील को मिलिबो अजोग मे जोग की कल्पना याते संबधातिशयोक्ति अलंकार स्पष्ट है ॥५७॥

(सामान्यनिबधना[1])

दंडक—काँकर से मुकुता मुकुज जहाँ कुन्दन के,
पन्ना ही की पारि परिजा के चहुँघा करी।
बिहरत सुरमुनि उचरत बेद धुनि,
सुग्य की समेटि राशि बिधिनै तहाँ करी।
बासी ऐसे सर को उदासी भए बिछुरे त,
'काशीराम' तऊ कहूँ ऐसी आसा ना करी।
पर्यो कोऊ काल ताते तक्यो तुच्छ ताल लघु,
लट्यो जो मराल तो चुनैगो कहा काँकरी ॥५८॥

टीका—इहाँ प्रस्तुत मराल की प्रशंसा प्रशंसनीयता करि तत्सदृश प्रस्तुत जो क्षुद्रन सों याचना नहीं करै है ऐसे काहू मानी मे पर्जवसित है याते सामान्य निबंधना अप्रस्तुतप्रशंसालंकार। यामे जो कवि पाँच भेद लिख्यो ताको विवेचन ग्रंथ कर्ता के अलंकार के उदाहरण में लिखैंगे ग्रंथ बिस्तार भय सों यहाँ नहीं लिख्यो ॥५८॥

१—जहाँ अप्रस्तुत (उपमान) के वर्णन से प्रस्तुत (उपमेय) लक्षित कराया जाय वहाँ पर अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार होता है। इसके ५ भेद हैं— १–सामान्यनिबंधना, २–विशेषनिबंधना, ३–कार्यनिबंधना, ४–कारण निबंधना, ५–सारूप्यनिबंधना। सामान्य अप्रस्तुत से जहाँ विशेष प्रस्तुत लक्ष्य हो वह सामान्य निबन्धना है। जैसे उक्त दण्डक में सामान्य मराल के वर्णन से किसी विशिष्ट विद्वान् का वर्णन अभिप्रेत है।

काँकर = कंकड़। पन्ना = मरकत मणि। पारा = प्रतोली, ड्योढ़ी। परीजा = हरापन लिये नीले रंग का एक बहुमूल्य पत्थर। चहुँघा = चारों ओर। लट्यो = पस्त पड़ा हुआ। काँकरी = कंकड़ ॥५८॥

कवि—अमर (उल्लेख)

दंडक—काली अरधंग ले कपाली मुंडमाली च-यो,
देखे लोहू लाली को हुलास भयो प्यासे को।
कोप्यो रोप्यो 'राइ रघुनाथ' जान समुहाय,
राइ उमरायन के पग जिउ साले को।
पातसाहि जहाँ बैठो जग जोरि तहाँ स्वच्छ
साहसी अमर सिंह रोप्यो रन रासे को।
लै लै छरा दारी अपछरा पहिराइबे को,
आसन सों आयो पाकसासन तमासे को ॥५९॥

टीका—यहाँ काली सहित कपाली और अपसरा आदि को अपने अपने मनोरथ लाभ के कारन अनेकन मिलि येक जन को बहुबिधि टहराया यातें प्रथम उल्लेख अलंकार ॥५९॥

कवि—मुकुंद (दीपकावृत्ति)

दंडक—चले चंद्रबान, घनबान औ कुहुकबान,
चलत कमान धूम आसमान छ्वै रह्यो।
चली जमडाढें तरवारें चलीं चले सेल्ह,
लोह ऑज जेठ के तरनि मानो त्वै रह्यो।
ऐसे में मुकुंद सिंह हाथिन चलाइ दल,
रिपु के चलाइ पाइ बीररस बै रह्यो।
हय चले हाथी चले संग छोडि साथी चले,
एते चलाचली में अचल हाड़ा ह्वै रह्यो ॥६०॥

टीका—इहाँ हय चले हाथी चले आदि पद में चले चले यह चलिबो क्रिया की आवृत्ति और अर्थ समान यातें पदार्थावृत्ति दीपकालंकार ॥६०॥

(विषम[1])

जथा—चंड लगी रबि की किरनैं गलवाट की डाढि 'मुकुन्द' तचावै।
सो श्रम मेटिबे कों तजि छाँह गुलेल के बृक्ष तरे चलि आवै ॥

कपाली = शिव। हुलास = प्रसन्नता। समुहाय = सामना करना। छरा = माला। पाकसासन = इन्द्र ॥५९॥

चन्द्रबान = अर्द्धचन्द्राकार बाण। घनबान = जिनके प्रहार से बादल उत्पन्न हो जाते हैं। कुहकबान = जिनके छोड़ने पर कुहरा छा जाता है। सेल्ह = बर्छी ॥६०॥

१—विषम का अर्थ है अयथायोग्य या अननुरूप। यह तीन प्रकार का होता है—(१) अननुरूप वस्तुओं का एक साथ होना, (२) ऐसे ही कारण से

त्यौं फल ऊँचे त टूटि महा, सिर पे परि फूटि कै शब्द सुनावै ।
भाग विना नर सुखन को ध्यावै पै दुखन दई निहि दूनो दिखावै।६१।

टीका—इहाँ भाग्य रहित [खल्वाट] पुरुष अपने श्रम मेटिबे के अर्थ भाग्यवश बेल की छाया का आश्रय किया सो अपने इष्ट के उद्यम सों बिल्वफल पतन जनित शिरोभग रूप अनिष्ट फल का प्राप्त भया, याते तृतीय विषम अलकार स्पष्ट है। "अनिष्टस्याप्यवाप्तिश्च तदिष्टार्थसमुद्यमात् । भक्ष्याशया हि मंजूषा दृष्ट्वाखुस्तेन भक्षितः" ।।इति।।६१।।

कवि—सिरोमनि (उत्प्रेक्षा)

रा०—एक समै हरि सों बिपरीत करै वृषभानु सुता रसछाकी ।
छूटे ललाट 'सिरोमनि' बार निहारै लगी छबि छीन घटाकी ।।
माँग तें छूटत मोतिन के लर यौं उपमा तहँ लागत ताकी ।
दाबै विधुंतुद के बिधु त दरराइ चली मनो धार सुधाकी ।।६२।।

टीका—इहाँ विपरीत रति में नायिका के माँग सों मोतिन की लडी को छूटि कै गिरबो संभाव्यमान पद, तासों विधुंतुद राहु के दशन के हेतु सों चन्द्रमा सों अमृत की धार कढ़ा यह अहेतु को हेतु करि उत्प्रेक्षा असिद्धास्पदा हेतूत्प्रेक्षा अलकार ।।६२।।

(काव्यलिंग[2])

जथा—दादुर चातक मोर करो किन सोर सुहावन कै भरु है ।
नाह तेही मोइ पायौ सखी मुहि भाग सोहागहु को बरु है ।।
जानि 'सिरोमनि' साहिजहाँ ढिग बैठ महा बिरहा हरु है ।
चपला चमको गरजो बरसो घन पास पिया तौ कहा डरु है ।।६३।।

भिन्न कार्य का होना, (३) अच्छे उद्यम का बुरा परिणाम होना । उक्त पद में तीसरा प्रकार है जो टीका में स्पष्ट है ।

१—चन्द्रालोक ५।८९ । खल्वाट = गंजी खोपड़ी वाला व्यक्ति । तचावै = जलाती है । दई = देव, भाग्य ।।६१।।

बार = बाल, केश । विधुंतुद = राहु । दरराइ चली = विदीर्ण होकर बह चली ।।६२।।

२—किसी समर्थनीय अर्थ का समर्थन जहाँ युक्तिपूर्वक किया जाय वहाँ काव्यलिङ्ग अलकार होता है । काव्यलिङ्ग का अर्थ है—काव्य का अभिमत स्वरूप, अधिक टीका में स्पष्ट है ।

मुहि = मुझको । भरु = भारी । बरु = बल ।।६३।।

टीका—इहाँ दादुर चातक मोर घन मेघ और चपला आदि उद्दीपन विभाव नाम कलेश जनित दुख के देन हारे सों उत्पन्न त्रास दूरि करिबे के अर्थ नायक को निकट ठहराय दूरी करन का समर्थन करै है, यातें काव्यलिंग अलंकार स्पष्ट है ॥६३॥

कवित्त—गंग (परिसंख्या)

एक बच्यो सुर राज हथी पुनि ताबल बाड़व औरन होनो।
और सबै बकसे बलबीर बचे रवि के रथ के हय ग्नौनों॥
'गंग' कहै कर उन्नत दारिद रागगन मौज मुनी तनि मोनो।
रहि न भूर लुटाइ दई है रह्यो मुँह सालिगराम के सोनो ॥६४॥

टीका—बीरबर के दान वर्णन में एक इन्द्र को हाथी और सूर्य के सात घोड़े तजि सिवाय जो लौकिक नामधारिक हाथी, घोडे रहे सो सब विधिपूर्वक ब्राह्मणों को दान कर दिया। एक स्थान में वस्तु को निषेध करि दूसरे स्थान में युक्ति सो थापन कियो यातें परिसंख्यालंकार स्पष्ट है ॥६४॥

(अप्रस्तुतप्रशंसा)

जौहरि लोग जवाहिरी जाचक दानो औ सूम की कीरति गावे।
लाल सयान को स्वाल कहा जिमि हाल के देखे हवाल बतावे॥
'गंग' भनै कुल धर्म छपै नहि चाम को टूकरी काम न आवे।
स्याल थरी में खुरी पुंछ कछर सिंहथरी मुक्ता गज पावै ॥६५॥

टीका—इहाँ दानी और सूम के प्रस्ताव में स्यार और सिंह के स्थान में खुरी पुंछ कछर और गजमुक्ता की प्राप्ति वर्णन को काहू महाशय और दुर्जन के वर्णन में पर्यवसान है, यातें अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार स्पष्ट है ॥६५॥

(उल्लेख)

कवित्त—नवल नवाब खानखाना जू तिहारी धाक
भागे देशपती धुनि सुनत निसान की।

---

*—(परिसंख्या = नियमन) एक स्थान में किसी वस्तु का निषेध करके अन्यत्र उसी का स्थापन करना परिसंख्या अलंकार होता है। उक्त छंद में सभी हाथी, घोड़ों और सुवर्ण का बीरबल ने दान कर दिया, कहकर सर्वत्र उनका निषेध होने पर भी इन्द्र का हाथी सूर्य के घोड़े और शालिग्राम शिला में सुवर्ण बच गया, कहकर उनका स्थापन किया गया है, अतः परिसंख्या अलंकार है।

स्वाल = सवाल, प्रश्न। हाल = अवस्था, दशा। हवाल = वृत्तान्त। चाम की टूकरी = चमड़े की टुकड़ी। स्यारथरी = सियार का वास भूमि। सिंहथरी = सिंह का वासगुहा। कछर = मछली के शिरोभाग की हड्डियाँ ॥६५॥

'गंग' कहै तिनहू की रानी रजधानी छोड़ि,
फिरै बिललानी सुधि भूली खान पान की।
कहूँ मिली हाथिन हरिन बाघ बानरन,
उन्हूँ तें रच्छा भई उनही के प्रान की।
सची जानी गवन भवानी जानी केहरिन,
मृगन कलानिधि कपिन जानी जानकी ॥६६॥

नवाब खानखाना के दानवर्णन म भय करि बाकों भागि गईं बैरी बधू जनकों हाथी, हरिण, व्याघ्र और बानर आदि सची, भवानी, चन्द्रमा और जानकी करि अनेक मिलि बहुविध देख्यो यातें उल्लेखालंकार स्पष्ट है ॥६६॥

(पदार्थवृत्ति निदर्शना)

सवैया—सेवि कै चैन करै दिन रैन ज्यौं चाकरी ये न सदा सुखकारी।
ताको न चेत धरे गुन का भए नेकु सो लेस निकारत गारी॥
लेहै कहा हम छाँड़ि महाप्रभु हैं जु महा रिझवार बिहारी।
राज को संग कहै 'कवि गंग' सुसिंघ को संग भुजंग की यारी॥६७॥

टीका—इहाँ राजसंग अथात् राजसेवा को भुजंग की मित्रता और सिंह को संग करि बरन्यो, यातें पदार्थवृत्ति निदर्शना अलंकार ॥६७॥

कवि—बीरबल 'ब्रह्म' (उत्प्रेक्षा)

कवित्त—एक समै हरि धेनु चरावत बेनु बजावत मंजु रसालहिं।
डीठि गई चलि मोहन की बृषभानुसुता उर मोती की मालहिं॥
सो छबि 'ब्रह्म' लपेटि लई कर सो कर लै करकंज सनालहिं।
ईश के सीस कुसुंभ के माल मनो पहिरावत ब्यालिनि ब्यालहिं॥६८॥

१—निदर्शना का अर्थ होता है 'रचना को दिखाना'। जो, सो पद इसके वाचक होते हैं। यह तीन प्रकार की होती है। (१) वाक्यार्थवृत्ति निदर्शना—जहाँ उपमान या उपमेय वाक्यार्थों का उपमेय या उपमान वाक्यार्थ में अभेदेन आरोप होता है। (२) पदार्थवृत्ति निदर्शना—जहाँ दो समान पदार्थों का एक पदार्थ में अभेद से आरोप होता है। (३) क्रियावृत्ति निदर्शना—जहाँ क्रिया से असत् और सत् अर्थ का बोध होता है। उक्त पद में पदार्थवृत्ति निदर्शना है क्योंकि राजा के संगरूप पदार्थ में सिंह या भुजंग के संगरूप पदार्थ का आरोप किया गया है।

रिझवार = रीझनेवाला ॥६७॥

टीका—यहाँ श्रीकृष्णचन्द्र जो राधा की छवि को देख्यो, सम्भाव्यमान पद, तासों इस महानन्द को सीस मस्तक कुच, व्यालिनि रोमाली, हाथ को प्रतिबिम्ब युक्त माता का माल ब्याज करि उत्प्रेक्षा। अनुक्तास्पदा वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार ॥६८॥

एक समै वृषभानुसुता गईं प्रात सम सरिताहि के खोरन।
अगन धोइ अँगोछति अगन बाहर बैठि के केश निचोरन॥
'ब्रह्म' भनै तिनकी उपमा जल के किनका परे बार के छोरन।
मानहुँ चँद को चूसत नाग असीरस चलै चला पूँछि की बोरन॥६९॥

टीका—इहाँ स्नान के अनंतर तट के ऊपर आय राधा के केश निचोरन सों जल का बहिबो तु सम्भाव्यमान पद अहेतु, ताको चंद्र कों अमृत के अर्थ चूसि रहो नाग के पूँछि के मार्ग अमृत रस को प्रवाह बहि चल्यो करि उत्प्रेक्षा। सिद्धास्पदा हेतूत्प्रेक्षा अलंकार ॥७०॥

जथा—केलि समै बिपरीत रची मचि किंकिनि की करिहाँ धुनि ऊपर।
बेंदी जराव की टूटी ललाट सों जाय परी नदनंदन जू पर॥
'ब्रह्म' भनै बन्यो बेनी की छोर बिराजत है द्रिग चंचल भू पर।
पुच्छ पटक्कि मनो अहिराज मरो मनि काज मयंक के ऊपर॥७०॥

टीका—नन्दनन्दन और राधा के बिपरीत [गति] बर्णन में राधा को टीका नन्दनन्दन के ऊपर गिरि पर्‍यो, सो बेनी की छोर युक्त चंचल नैन पर राजै है ताको कवि ऐसो उत्प्रेक्षा करै है कि मानो पूँछि को पटकि अहिराज अपनी मणि के अर्थ चंद्रमा के ऊपर गिरि कै मरि गयो। इहाँ बेंदी वेश और मुख सम्भाव्यमानपद अहेतु ताको अहिराज अपनी मणि के अर्थ पूँछि पटकि चन्द्रमा के ऊपर जाय मर्‍यो यहि भाँति उत्प्रेक्षा। सिद्धास्पदा हेतूत्प्रेक्षा अलंकार स्पष्ट है ॥७०॥

कवि—प्रताप (अतिशयोक्ति)

कबित्त–कोटि उपाय किए हिय सौं रचि बातन सों न सनेह दुरो परै।
सूधे सुभाय बिना बनितान के क्यों करिके मन मान मुरो परै॥

खोरन = स्नान के लिये। किनका = बूँद। पूँछि की बोरन = पूँछ की ओर ॥६९॥

किंकिनि = करधनी। करिहाँ = कटि। जराव की = रत्नजड़ित। अहिराज = नागराज। मयंक = चन्द्रमा ॥७०॥

मुरो परै = मुड़ (लौट) पड़ता है। नेम = नियम। अरविंदन दुरो परै = कमलों से पराग गिर रहा है अर्थात् आँखों से आँसू ढुलक रहे है ॥७१॥

चाखिए ना विष भाषिए साँचु जौ राखिये नेम तौ प्रेम पुरो परै।
आजु प्रभात समै लखी मैं अरविन्दन सों मकरंद ढुरो परै॥७१॥

टीका—इहाँ अरविन्दन सों मकरन्द ढुर्यो पर इस पद में अरविंद पद सों नेत्र और मकरद पद सों आँसू ऐसा उपमान पद को उपादान यातें रूपकातिशयोक्ति अलकार स्पष्ट है। और असाधारण चिह्न देखि मानपूर्वक व्यंग्य करै है यातें मध्या धीरा नायिका॥३४६॥

(भ्रान्ति[1])

सवैया-खेलत खेल नयो जल में बिन काज बृथा कत जाम बितावै।
छोड़ि के साथ सहेलिनिकै रहिकै यह कौन मजादहिं पावै॥
सीख सिखाए न मानति है बरहूँ बस संग सखीन के आवै।
ए री यौ बानि क्यौ तेरी परी नित नीर भरी गगरी ढरकावै॥७२॥

टीका—इहाँ नीर भरी गगरी ढरकावै है, तामें यह व्यंग—नायिका गगरी में अपने नेत्र को प्रतिबिंब देखि मीन के भाँति सों ढरकाय देय है। यातें भ्रांतिमान अलकार और अपनी जुरा अवस्था को नहीं जानै है, यातें अज्ञातयौवना नायिका॥३४७॥

कवि—प्रसाद (विरोधाभास[2])

सवैया-जमुना तट कुंज कदंब तरे मनमोहन साथ लिये सखियाँ।
पट पीत दुकूल सुमाल गरे सिर सोहत मोरन की पँखियाँ॥
'परसाद' हितौनि चितौनि चितै मुहि राखत घायल की रखियाँ।
जबतें अँखियाँन लगी अँखियाँ तबतें कबहूँ न लगै अँखियाँ॥७३॥

टीका—इहाँ आँखि [जब सों] कृष्णचन्द्र की आँखिन सों लगी तबसों आँखें नहीं लागती, यह विरोध, यातें विरोधाभास अलकार॥७३॥

१—अत्यन्त समानता के कारण उपमेय को उपमान समझ लेना भ्रान्ति अलकार कहलाता है। उक्त पद में स्पष्ट भ्रान्ति तो नहीं है किन्तु व्यङ्ग के द्वारा प्रतीत होती है जो टीका में स्पष्ट है।

२—जहाँ विरोध का आभास (प्रतीति) मात्र हो, वस्तुतः विरोध न हो वहाँ विरोधाभास अलकार होता है। जैसे उक्तपद में जबसे कृष्ण की आँख से आँख मिली तब से आँख नहीं लगती, यह शब्दों से तो विरोधसा प्रतीत होता है किन्तु आँख नहीं लगी (नींद नहीं आयी) इस अर्थ से विरोध का परिहार हो जाता है।

जाम = प्रहर। बानि = आदत॥७२॥ दुकूल = रेशमीवस्त्र। हितौनि = प्रेमभरी। चितौनि = चितवन, दृष्टि से। चितै = देखकर। मुहि = मुझको॥७३॥

कवि—राजा जसवंतसिंह (सिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा)

दंडक—केलि करि सोए जोए जोए रसमोए दोये,
कोये लाल सोये की लोनाई रंग चाख्यौ है।
उठि अँगिरात सो जम्हात 'जसवंत सिंह',
रूप लखि भूपर तिहूँपुर को माख्यौ है॥
हेम हिल्कोर चोर आखत अरुन भूमि,
घना रस कलित कपोल अभिलाष्यो है।
मारतंड मंडल सबालबीजुरी सों बाँधि,
मानो चन्द्रमंडल में मैन धरि राख्यो है॥७४॥

टीका—नायिका के कपोल पै मैंदा पर्यो ताको उत्प्रेक्षा। कपोल पै मैंदा परो केस जुत संगात्यमान पद ताका में काम चन्द्रमंडल से सूर्यमंडल को बीजुरी सों बाँधिबो करि उत्प्रेक्षा सिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा अलंकार स्पष्ट है॥७४॥

(संभावना)

आई ब्रह्मलोकतें अचंभ अम्बरूप धरे,
प्रभुता बढायो है भगीरथ के भाल को।
धार की धुकार लोक लोकन पुकार परी,
रही न सँभार सुरपाल को न काल को॥
कहै 'जसवंत' जस गावत उमाके कंत,
खेलन खेलाइ मेल जटन के जाल को॥
गंगा की अलील जौ न हेलतो गिरीस तो,
कमंडल रो जातो महि मंडल पताल को॥७५॥

टीका—इहाँ गंगा की धार जो शिव अपनी जटा पै न रोकतो तो पाताल को चली जाती। जो तो पद करि संभावनालंकार स्पष्ट है॥७५॥

१—वाक्यान्तर की सिद्धि के लिये "यदि ऐसा होता" इत्यादि से जहाँ सम्भावना व्यक्त की जाती हो वहाँ सम्भावना अलंकार होता है। यहाँ कुवलयानन्दकार अप्पय दीक्षित का यह उदाहरण स्मरणीय है—

कस्तूरिका मृगाणामण्डाद्गन्धगुणमखिलमादाय।
यदि पुनरहं विधिः स्यां खलजिह्वायां निवेशयिष्यामि॥

धुकार = शब्द। सुरपाल = इन्द्र। काल = यमराज। उमाके कंत = शिव जी। अलाल = लीला। हेलतो = सँभालते॥७५॥

कवि—श्रीपति (फलोत्प्रेक्षा असिद्धविषया)

सवैया—भोर भए तकिया सों लगी तिया कुंतलपुंज रहे बगराइकै।
पंकज सो कर के तल ऊपर गाल कपोल धरे अलसाइकै॥
आनन पै निलसे रद की छद 'श्रीपति' रूप रहे अति छाइकै।
मानहु राहु सो घायल ह्वै विधु पौढे हैं वारिज सेज बिछाइकै॥७६॥

टीका—नायिका का प्रात कालीन छवि बर्णन। रात्रि काम कलोल करते प्रभात भयो। तकिया पै औच केश निथारि, आरस भरी हाथ पे गोल कपोल नखक्षत बशिष्ट घरि सोय रही है। इहाँ पंकज पानि, तापै नखच्छत बिशिष्ट गोल कपोल सभाव्यमान पद ताको राहु सों घायल ह्वै सरोज सज्जा बिछाय चन्द्रमा का पौढिबो करि उत्प्रेक्षा असिद्धविषया फलोत्प्रेक्षा अलकार स्पष्ट है॥७६॥

(रसनोपमा[1])

दंडक—कैसे रति रानी को सिंधोरा कहि 'श्रीपति जू',
जैसे कलधौत के सरोरुह सँवारे हैं।
कैसे कलधौत के सरोरुह सँवारे कहि,
जैसे रूप नट के बटाऊ छबि धारे हैं।
कैसे रूप नट के बटाऊ छबि धारे प्यारे,
जैसे काम भूपति के उलटे नगारे हैं।
कैसे काम भूपति के उलटे नगारे भारे,
जैसे प्रानप्यारी ऊँचे ऊरज तिहारे हैं॥७७॥

टीका—इहाँ एक को छोडि एक की उपमा यात रसनोपमालकार स्पष्ट है॥७७॥

कुंतलपुंज = केशसमूह। बगराइकै = बिखरे हुए। रद की छद = ओठ, पौढे = सोया है। वारिज सेज = कमल की शय्या॥७६॥

१—रसनोपमा वहाँ होती है जहाँ पूर्व पूर्व उपमा में जो जो उपमेय रहा हो उसे अगली अगली उपमा में उपमान बनाया जाय, जैसे उक्त दण्डक में कलधौतसरोरुह (स्वर्णकमल) जो उपमेय था वह अगली उपमा (रूपनट के बटाऊ) में उपमान हो गया इसी प्रकार यह क्रम चलता रहता है।

रसना करधनी का नाम है ('स्त्रीकट्यां मेखला काञ्ची सप्तकी रसना तथा' —अमर) उसमें लगे हुए घुंघरुओं में परस्पर जैसा पूर्वापर भाव रहता है वैसा ही इस अलंकार में उपमान और उपमेय के लिये है अत इसका रसनोपमा नाम है।

सिंधोरा = सिंदूर रखने का डिब्बा। कलधौत = सुवर्ण। बटाऊ = पथिक। ऊरज = स्तन॥७७॥

(विरोधाभास)

सवैया—जोति को ध्यान धरों जबहीं तब साँवरी मूरति आनि अरूझै।
ऊधौ उपाइ कहा करिए गुरलोगन तें कहो कौन सरूझै।
है कोऊ ऐसो हितू जग 'श्रीपति' जो अपने हिय की गति बूझै।
साँमरे रंग रँगी अँखियाँ सिगरो जग साँमरो साँमरो सूझै ॥७८॥

टीका—इहाँ साँवरे रंग में मेरी आँखि रँगि गई यातें सिगरो जग साँवरो सूझै यह विरोध, यातें विरोधाभास अलंकार स्पष्ट है ॥७८॥

कवि—ठाकुर (हेत्वपह्नुति)

दंडक—घन ए न होहिं घन काहे को करत सोच,
चंचला न होहिं एक चरित नयो है री।
जज्ञ ते उठी है लूक कौन जज्ञ कौने करी,
अग्र हो बतावो कहा कौतुक भयो है री।
'ठाकुर' कहत जाए घर घर कंत बाढ़ो,
आनँद अनंत अंत सोव मे ल्यो है री।
बारिद औ बिरह करो है बिरहिनि होम,
तौन धूम आनि आसमान मे छयो है री ॥७९॥

टीका—इहाँ नायिका के विरह वर्णन में मेघ को धूम ठहराय बारिद और विरह के जज्ञ में विरहिनि होम को धूम छायबो आरोप, याते हेत्वपह्नुति अलंकार स्पष्ट है ॥७९॥

१—देखिये पृष्ठ ६४ टि०। वास्तव में इस पद्य में 'सम्पूर्ण जगत् साँवरो ही दिखाई देता है' इस समर्थनीय अर्थ का समर्थन 'आँखों के साँवरे रंग में रंगने' रूप अर्थ से किया गया है अतः स्पष्ट ही काव्यलिङ्ग और विरोधाभास की संसृष्टि है।

जोति = ज्योति, ब्रह्म। अरूझै = उलझ जाती है। सरूझै = सुलझा दें। अपने हिय की = मेरे हृदय की। साँमरे = श्यामल, साँवरे। सिगरो = सम्पूर्ण ॥७८॥

२—जहाँ वस्तु का कोई कारण देकर निषेध किया जाय वहाँ हेत्वपह्नुति होती है। जैसे उक्त कवित्त में—'यह बादल बादल नहीं है' इस निषेध में 'विरहिणी ने विरहाग्नि में जो आँसुओं का होम किया उससे उठा हुआ धूम है' यह कहकर धूम की उत्पत्ति का कारण दे दिया है।

घन = बादल। घन = अत्यन्त। चंचला = बिजली। लूक = लपट। अग्र हो = शीघ्र ही। सोव = खोज ॥७९॥

(काव्यलिंग)

स०—अब का समुझावति को समुझै बदनामी की बीजन बैचुकी री।
यतनोई विचार कियो मन मैं वहि जाल परे कहो क्यों चुकी री॥
कहि 'ठाकुर' को अब रीति चलै करि प्रीति पतिव्रत ख्वै चुकी री।
अब नेकी बदी जो बदी हुती भाल मों होनी रही सो तो ह्वै चुकी री॥८०॥

टीका—इहाँ नायक की प्रीति को होनी रही सो तो ह्वै चुकी जो भाल भाग्य मे होय है सोइ होय है, भाग्यबश करि समथन कियो यातैं काव्यलिंग अलकार स्पष्ट है॥८०॥

(सामान्य निबंधना)

स०—एक ही सों चित चाहिए ओरलों बीच दगा को परे नहि डाको।
मानिक सों मन मोल लियो पुनि फेरि कहा परखायबो ताको॥
'ठाकुर' काम नहीं सबकों यह लाखन मे परबीन है जाको।
प्रीति करे मे कहा धौं लगै करि कै फिरि ओर निबाहिबो वाको॥८१॥

टीका—इहाँ प्रीति करते कहा है करिकै फिरि वाको निबाहिबो कठिन, यह सामान्य बात प्रस्तुत नायक को आश्रय, याते सामान्य निबंधना अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार स्पष्ट है॥८१॥

(पर्य्यायोक्ति)

ठाढी रहो न भगो न डरो तुम खेलन देहु जु खेल जो ख्यालहिं।
गावन दे री बजावन दे री जु आवन दे री इतैं नदलालहिं॥
'ठाकुर' हौं रगिहौं रँग मै अरु बोढ़िहौं बीर अबीर गुलालहि।
धूँधुरि मै धुँधकी मै धमारि मैं हौं धरिहौं धरिलेहौं गुपालहि॥८२॥

१—पर्यायोक्ति (पर्याय = प्रकारान्तर से, उक्ति = कथन) जहाँ किसी बात को सीधे न कहकर प्रकारान्तर से कहा जाय वहाँ पर्यायोक्ति अलकार होता है। जैसे उक्त पद्य में कृष्ण से मिलकर अपनी अभिलाष पूर्ति करूँगी, इसे सीधे रूप से न कहकर होली के बहाने घुमा फिरा कर कहा गया है।

बीजन वै चुकी = बीजों को बो चुकी। बदीहुती = बँधी थी॥८०॥

ओरलो = अन्त तक। परखायबो = परीक्षा करवाना॥८१॥

ख्यालहि = खेलते हैं। बोढ़ि हौं = डुबा दूँगी, रग दूँगी। धूँधुरि = धुधले में, जब अबीर गुलाल से धुआँ सा छा गया हो। धुँधकी = शोरगुल। धमारि = उछलकूद। हो धरिहौं = मैं धरा (पकड़ा) जाऊँगी। धरि लेहौं गुपालहि = कृष्ण को धर (पकड़) लूँगी॥८२॥

टीका--इहाँ फागु के घूँघरि ब्याज करि कृष्णचन्द्र सों मिलिबो अपनो इष्ट साधन किया, यातें पर्यायोक्त अलंकार ॥८२॥

(लोकोक्ति[1])

चारिहूँ ओर उदै मुख चन्द्र की चाँदनी चारु निहारिले री।
तापै अधीर भयो पिय प्यारो मनाई विचार विचारिले री ॥
कवि 'ठाकुर' चूकि गये जो गोपाल तो तूँ बिगरे को सँभारिले री।
ह्वैहै न रहैं री या समयो बहती नदी हाथ[2] पखारिले री ॥८३॥

टीका--सखी नायिका के मान को उद्दीपन और मिलिबे को अवसर देखाय 'बहती नदी [में] हाथ पखारिबो' लोकोक्ति करिमान छुड़ावै है, यातें लोकोक्ति अलंकार ॥८३॥

(अर्थांतर गर्भित छेकोक्ति[3])

लगी अंतर की करै जाहिर को बिन माहिर का कोउ आनत है।
दुख औ सुख हानि औ लाभ जिता घरकी कोउ बाहिर आनत है ॥
कहि 'ठाकुर' आपनी चातुरी सों सबही सब भाँति बखानत है।
परबीन मिले बिछुरे को बिथा मिलिकै बिछुरे स्वै जानत है ॥८४॥

टीका--इहाँ कलहांतरिता नायिका को पश्चाताप में परवीन को मिलिबो और बिछुरिबो अर्थांतर करि काहू सखी पूछ्यो, काहू ते बियोग जनित दुख देखाय पजजमित करे है, यातें छेकोक्ति अलंकार ॥८४॥

(लोकोक्ति)

सवैया--जानत तीय न आपनै भेद परारे पिया यह बेदन गाई।
जो नर हरि के प्रीति करी गुन लोगनि में कुलकानि गँवाई ॥
'ठाकुर' ते न भये अपने अब कोन सो दोरा लगावत माई।
दूध की माछी उजागर वीर सो हाथ में आँखिन देखत खाई ॥८५॥

१--जहाँ लोक में प्रचलित किसी कहावत के द्वारा कथनीय अर्थ को कहा जाय वहाँ लोकोक्ति होती है। जैसे उक्त पद में नायिका को रति का सुन्दर अवसर दिखाकर, मान छोड़कर प्रियतम से रमण करो ऐसा न कह कर 'बहती गंगा में हाथ धो लो' इस प्रसिद्ध लोकोक्ति द्वारा कहा गया है।

२--हिं० सा० का इतिहास पृ० ४५८ में 'पाँय पखारिले री' पाठ है।
वोर = ओर। बिचारि = अच्छा प्रकार। पखारिले = धो ले ॥८३॥

३ - लोकोक्ति का ही अनुसरण करके जब किसी विशेष अर्थ को व्यक्त किया जाय तब छेकोक्ति कहलाती है अर्थात् अर्थान्तर गर्भित लोकोक्ति को ही छेकोक्ति कहते हैं।
माहिर = प्रवीण। स्वै = वही ॥८४॥

टीका—इहाँ नायक नायिका सों संकेत टानि वा स्थल को न आयो ताछिन विप्रलब्धा नायिका पश्चात्ताप करै है, ताको बचन। इहाँ दध की माछी देखत खाने से नहीं पचे है, वा त है जाय है। तासों दुख मिलै है। यह लोक प्रवाद को अनुकरन करि लोकोक्ति अलंकार ॥८५॥

काहे अरे मन साहस हारत काहे बरे यह देह तजै है।
कै सुख ए दुख आए चले सदा येकसी रीति रही है न रैहै ॥
'ठाकुर' वाको भरोसो कियों रहो जाके बिलास ते हारिन ऐहै।
जाने सँजोग मे दी है नियोग वियोगमे सोक सजोग न दैहै ॥८६॥

टीका—इहाँ योग म बियोग और वियोग मे शोक संयोग को न देयवो यह लाक का कहावत करि लाकाक्ति अलकार ॥८ ॥

कवि—मन्य (लोकोक्ति)

गई साँझ समै की बदी बनिकै बड़ी बेर भई निगा जान लगी।
अति सूध बलाइबे की बतियानहि जानिए कावा बतान लगी ॥
'कवि मन्यजू' जानी दगैलन छैलन छैल की छाती निदान लगी।
अब कौन को कीजै भरोसो भटू निज बारिये खेती ये खानलगी॥८७॥

टीका—इहाँ निज बारियै खेता गा खाने लगी यह लोक रीत कहनावत। यात लोकोक्ति अलकार स्पष्ट है ॥८७॥

जथा—मैं न गई पठई हरि पै निज भागिन दासन तो कहूँ देती।
की हौं भलो जो करे अब स्वारथ जानि परी परकारज हेती ॥
'मन्य जू' येरी बनाई सबै चतुराई करी अब जानि कै जेती।
के गनि बाँधि नफा सजनी पर हाथ बनीज सनेसन खेती ॥८८॥

बेदन = वेदना, दु ख। कुलकानि = कुल की मर्यादा। दूध की माछी देखत खाई = जान बूझकर गलती की ॥८५॥

बदी = प्रतिज्ञाकी हुई। बनि कै = बन ठन कर। दगैलन = धोखेबाज। छैलन = रसिक नायक को। छैल की निदान लगी = अवश्य ही रसिक दूती का स्तनस्पर्श आनन्द दे गया। निज बारिये खेती ये खान लगी = रक्षक ही भक्षक हो गया ॥८७॥

परहाथ बनीज = दूसरे के हाथ से व्यापार। सनेसन = सदेशों से ॥८८॥

टीका—इहाँ अन्य सभोग दु खिता नायिका को वचन किसने नफा पाइ है कि पराये हाथ वनिज और सनेसा लेता करि यह लोक प्रवाद का अनुकरण यातें लोकोक्ति ही अलकार ॥८८॥

कवि—महाकवि (उल्लास[1])

दडक—आमिली के पातन की पातरी बनाइ रचि,
पातरी सो आग धरि वाको जस ठान्यौ है।
देती है असीस हठि माँगै बकसीस वही,
वाकै भई सीस पीर बैनभेद जान्यो है॥
'महा कवि' पहिचानि करिकै विस्वास द्रिढ,
हाइ के उदास उर वाल वेर आन्यो है।
कीन्ह्यौ है प्रगट गुन मान्यो नही नेकु गुन,
कीन्हो है सगुन असगुन करि जान्यो है॥८९॥

टीका—इहाँ आमिली के पातन की पतरी बनाइबो नागिनि को गुन सो नायिका को ऐगुन भया यातें उल्लास अलकार, और आमिली वाको सकेत रह्यो ताही को पात लाय पतरी बनाय वाके आगें धरी, याते नायिका को दुख भया, यातें सॅकेतविघट्टना पहिला अनुशयाना नायिका स्पष्ट है ॥८९॥

(लोकोक्ति)

सवैया—एक ही सेज पै राधिका माधव बाइ लसे सों सुभाइ सलोने।
राख्यौ 'महाकवि' काहू के मध्य गुराइ या कह्यौ यह बात न होने॥
साँवरी होहुँगी साँवरे सग मैं बावरी बात सिखाई है कौने।
सोने को रग कसौटी लगै पै कसौटी को रग लगै नहिं सोने॥९०॥

टीका—राधा कृष्न एक ही सजा पै विराजे हैं वा समै के विलास में राधा को निज सौन्दर्य्य ठहराय कृष्नचन्द्र सों वचन ताको उत्तर—इहाँ सोने को रग कसोटी में लगै है और कसोटी को रग सोने में नहीं लगै है यह लोक रीति दरसाय अपना और राधा जी को अग सग ठहरायो यातें लोकोक्ति अलकार ॥९०॥

कवि—रसखानि (उल्लास)

सवैया—मान की औधि है आधी घरी अरु जो 'रसखानि' डरै हित कै डर।
कीजिये नेह न छोड़िये पा परौं ऐसे कटाक्ष महा हियराहर॥

1—जहाँ किसी एक के गुण या दोष से दूसरे के गुण या दोष का वर्णन किया जाय वहाँ उल्लास अलकार होता है।

बैनभेद = स्वरभेद ॥८९॥

बाल गोपाल को हाल बिलोकु री नेक हुए निन वे घर से फर।
ना कहिवे पर वारे है प्रान कहा अब वारिहै हाँ कहिबे पर॥९१॥

टीका—मानवती नायका को युक्ति सों सखी मान छोडावे है कि लला जब तुम्हारे ना कहिवे पर प्रान वारे है तो जो तू हाँ करिहै तो कहा वारेंगे। यहाँ ना कहिबो दोष सो कृष्णचन्द्र को गुणभयो। यातें उल्लास अलंकार स्पष्ट है॥९१॥

(व्यतिरेक[1])

सवैया—आए कहा कहिके कहिए वृषभानलली त लला द्रिग जोरत।
ता छिनतें अँसुआन के धारन तारति जद्यपि लोक निहोरत॥
बेगि चलो 'रसखानि' बलाइ ल्यो क्यौ अभिमानतें भौह मरोरत।
प्यारे पुरंदर हाहि न प्यारी अनै पल आधक मैं बृज बोरत॥९२॥

टीका—दूती राधिका को विरह निवेदन करै है, कृष्णचन्द्रसों तासो उक्ति। इहाँ प्यारा पुरंदर नहीं होइ जाके मान को गोवर्द्धन नख पर धारन करि मर्दन कियो। अभी एक पल मात्र म विरह जनित अश्रुधारा सों संपूर्ण व्रज को बोर है। यह पुरंदर सो यानी क्रिया विशेष देखाई यात व्यतिरेकालंकार॥९२॥

(प्रतिषेध[2])

जथा—मोर पखा सिर ऊपर बाँधि के गुंज को माल हिये पहिरौंगी।
बोढि पितांबर लै लकुटी बन गोधन गोधन संग फिरौंगी॥
जो रसखानि तजौं कुल कानि तौ तेरे कहे सब स्वाँग राजौंगी।
पै मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी॥९३॥

टीका—अंतरंग सखी सों राधा की उक्ति—तुम्हारे कहिन सों सब कछू करोंगी परंतु मुरलीधर श्री कृष्णचन्द्र की अधरान धरी मुरली मे अपने अधरान पै नहीं धरोंगी। इहाँ मुरली को अधर पै धरन को निषेध करै है यातें प्रतिषेध

१—(व्यतिरेक = उलटा) जहाँ उपमान से उपमेय मे अधिक विशेषता दिखाई जाय वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है।

पा परौं = पैरों पड़ती हूँ। हियराहर = चित्त को चुराने वाले॥९१॥

निहोरत = निहोरा (खुशामद) करते है। पुरंदर = इन्द्र॥९२॥

२—किसी प्रसिद्ध निषेध का विशेष अभिप्राय से जहाँ पुन निषेध किया जाय वहाँ प्रतिषेध अलंकार होता है।

बोढि = ओढ़कर। गोधन = ग्वाले। गोधन = गायों का झुण्ड॥९३॥

अलकार और मुरली को जूँठो ठहराय अपने अधर पै नहा धरै है यात धमसभाता नायिका और प्रिय भूषण को करिबो व्यक्त है यात लीला हाव[1] ॥९३॥

कवि—वसीधर (सदेह)

दडक—दुसासन दुर्जन दुकूल गहो दीनबधु,
दीन ह्वै कै द्रोपदी दुलारी यौ पुकारी है।
छाड़ि पुरुषारथ का गाढे पिय भारथ भा,
भीम महभीम ग्रीव नीचे को निहारी है।
अम्बर जो अम्बर अमर कियो 'वसीधर',
भीषम करन द्रोन सोभा यों बिचारी है।
सारी मध्य नारी है कि नारी मध्य सारी है कि,
सारी है कि नारी है कि नारी है कि सारी है॥९४॥

टीका—इहाँ द्रोपदी के वस्त्राहरण समय म भीष्म द्रोण आदि ने यहि भाँति देख्यो कि सारी मध्य नारी द्रोपदी है कि नारी के मध्य सारी है, कि नारी है कि सारियै है, कि नारी है कि सारी है यह सदेह भयो यात सदेहालकार ॥९४॥

कवि—भूषन (पूर्णोपमा)

दडक—कत्ता के कसक तेरे महाबीर सिवराज,
रूम के चकत्ता लगि सक सरमाति है।
कासमीर काबुल कलिंग कलकत्ता कूट,
कुल्लू करनाटक की हिम्मत हेराति है।
बकुठ बिडाल बक ब्याकुल बलखपीर,
बारहा बिलायत सकल बिल्लाति है।
तेरी धाक धूँधुरि धरा मैं आनि धूम धाम,
अधाधुध आँधी सी धुँधाती दिन राति है॥९५॥

१—अत्यन्त भावावेश में आकर अङ्गों द्वारा, वेष, आभूषण अथवा प्रेम-पूर्ण उक्तियों द्वारा जो प्रियतम का अनुकरण किया जाता है वह 'लीला' नामक हाव कहलाता है।

२—दो पदार्थों को देखकर जहाँ यह तक उठे कि इनमें कौन उपमान है और कौन उपमेय, वहाँ सन्देह अलकार होता है।

महभीम = भीम से बड़े, युधिष्ठिर। अम्बर = आकाश, वस्त्र ॥९४॥

कत्ता = छोटी टेढ़ी तलवार। कूट = पर्वत की चोटी। रूम = रोम (देश) चकत्ता = चगताई, वश का (औरगजेब)। कुल्लू = कुल्लू (पजाब)। धूँधुरि = गर्द के कारण उत्पन्न अँधेरा ॥९५॥

टीका—यहाँ शिवराज महाराज की धाक उपमेय, आँधी उपमान, सी वाचक, धुँधायबो धर्म, चारयौं को उपादान याते पूर्णोपमालंकार ॥९५॥

(विवृतोक्ति[१])

सवैया—केतक देश दिल दल के बल दक्खिन चंगुल चाँपि कै चाख्यौ।
मान गुमान हतो गुजरात को सूरत को रस चूसि कै चाख्यौ॥
पंजन पेलि मलिच्छ दले अब सोई बच्यो जिन दीन ह्वै भाख्यो।
गई सिवा महाराज भली जिन नवरंग मे रंग एक न राख्यो॥९६॥

टीका—प्रजा जन की उक्ति—एक शिवराज महाराज जिन्ह देश देश के राजा के दल को दलि डार्‌यो यह अगुल्या निर्देशकरि कि जिन नवरंगजेब जामें नवरंग तामें एको रंग न राख्यो गुप्तश्लेषको कवि प्रगट कियो यातें विवृतोक्ति अलंकार ॥९६॥

कवि—नंदन (उल्लास गुन-दोस बरनन)

सवैया—अलि आवो न हौं पहिरावन तोहि कहाँ नित पावौं नई चुरियाँ।
तुम हाथ गहे ते ऐसो सिसको सिसकारी सुनाइ कै माधुरियाँ॥
'कवि नंदन' की चढती लहरैं धरी आधक दाबति आँगुरियाँ।
थोरि रहाती बलाइ ल्यौं यौं चकचूर ह्वै जातीं सबै चुरियाँ॥९७॥

टीका—यहाँ सिसकी गुन, सो चूरी करकि जाने के कारन दोष भयो यातें उल्लास अलंकार और नायिका की सुकुमारता व्यंग्य ॥९७॥

कवि—तोष (संबंधातिशयोक्ति)

सवैया—गोपिन के अँसुआन के नीर पनारे बहे बहि कै भए नारे।
नारे रहे सो भईं नदिया नदियाँ नद ह्वै गईं काटि करारे॥
बेगि चलो तो चलो बृज को 'कबि तोष' कहै बृजनाथ हमारे।
सो नद चाहत सिंधु भयो अब सिंधु ते ह्वै हैं हलाहल सारे॥९८॥

१—जहाँ किसी गुप्त रहस्य को कवि अपने कथन द्वारा प्रकट कर देता है वहाँ विवृतोक्ति अलंकार होता है।

पंजा पेलि = पंजों से आक्रमण कर। मलिच्छ = अफजल खाँ। नवरंग = औरंगजेब ॥९६॥

पनारे = घर के जल को बाहर निकालने वाली नालियाँ। नारे = नदी से छोटी जलधारायें। नद = बड़ी नदी। करारे = किनारे। हलाहल = विष ॥९८॥

टीका—गोपिन के विरह को को वर्णन करै है श्री कृष्णचन्द्र सों। इहाँ गोपिन के आँसू बुंद पनारों के द्वारा बहि कर नदी को होबो तिनके अनन्तर नदी सों नद, तासों सिंधु, तासों हलाहल होबो अयोग में योग की कल्पना, यातें सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार और विरह निवेदन दूती ॥९८॥

कवि—दास

दोहे—तुम बिछुरत गोपिन के अँसुवा बृज बहि चले पनारे।
कछु दिन गये पनारे ते वे उमगि चले नदिन नारे॥
वै नारे नद रूप भए हैं कहा जाइ कोइ जोवे।
सुनि यह बात अजोग जोग की है है समुन्द नदो वे ॥९९॥

टीका—इसी प्रकार दास कवि के कवित्त में गोपिन के विरह-जनित अश्रु प्रवाह को क्रम से दूसरो समुद्र होनो। अयोग में योग कल्पना यातें सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार स्पष्ट है ॥९९॥

कवि—मंडन (विषाद[1])

सवैया–अब का करि के घर जैयतु है कहि कासों सुनैयत बीति दई।
मनमोहन 'मंडन' ठीक ठई बिधि जैसी लिलार लिखी सो भई॥
अलि और भई सो भई ही हती पर एक जो बात ए बीति गई।
गति हूँ से गई मति हूँ से गई पति हूँ से गई रति हू से गई ॥१००॥

टीका—यहाँ संकेत स्थल को जाय वहाँ प्रिय को न पाय गति हूँ ते गई और मति हूँ ते गई और पति हूँ तें गई, रति हूँ ते गई यह नायिका बिषाद करै है। इच्छित सों विरुद्ध अर्थ मिलिबे के कारण बिषाद अलंकार ॥१००॥

(सम[2])

दंडक—आँखे देखिबे की हो सरस हिय नावै फेरि,
आप ही मनावै वह मोहन की बानि है।

१—अभीष्ट से विरुद्ध की प्राप्ति जहाँ हो वहाँ विषाद अलंकार होता है (विषाद का अर्थ है खेद, अपने अभिलषित को न पाकर खेद होना स्वाभाविक ही है)।

उमगि चले = उमड़ आये। जोव = देखे। समुन्द = समुद्र। नदो वै = वे ही नद ॥९९॥

सुनैयत = सुनाई जाय। दई = देव, भाग्य से। ठई = ठहराया। लिलार = ललाट। गति = परिणाम। मति = बुद्धि ॥१००॥

२—(सम = योग्य) विषम अलंकार का ठीक उलटा सम अलंकार होता है। इसके तीन प्रकार हैं—१—दो अनुरूप पदार्थों का वर्णन, २—कारण

जब जब गहै झठी बातान छिकाइ लैहै,
तब तब नागरी ते ऐसी हठ ठानि है।
'मडन' लला की कहूँ हाँसीखेल जानती न,
मेरो कहा मानतो न अन्त फिरि मानि है।
आपको झुकावे ताको आपहूँ झुकैए अरु,
झुकिए झुकाए तौ सयानप की हानि है ॥१०१॥

टीका—इहाँ आपुको झुकावै ताको आपुहू झुकेए ओर आन के झुकाये पर झुकने में चातुरी का हानि, यह वूर्ता को अनुरूप वर्णन यातें समालकार ॥१०१॥

कवि—शम्भु (दृष्टान्त[1])

सवैया-नलिनी जलमध्य को आ करै औ उभैको जुराफा त्रावहिको।
बिबिचुबक बीच को लोहा भयो पर दूसरो रूप देखावहि को ॥
'कविशभु' सनेह की रीति यही बिछुरे जलमीन जिआवहि को।
गुनवारी गोपाल सों प्रीति लग्या अरुझी अँखियाँ सुरझावहि को १०२

टीका—इहाँ कमलिनी आदिको जलमध्य नहीं आड हावै है ओर गुनवारा नाम डोरे परे ऐसी कृष्नचन्द्र की आँखों से मेरी अँखियाँ अरुझगई का न सरुझावै है, यह विधि प्रतिबिम्ब करि बरन्या यात दृष्टात अलकार ॥१०२॥

(भ्रांति[2])

कान्हर की नित 'शभु' कथा सुनिके कछु कामिनि कौतुक पागी।
सोवत जागत ही जो रहै मनमो मनमोहन सौं अनुरागी ॥

के अनुरूप कार्य का वर्णन, २—बिना श्रम के ही कार्य का हो जाना। उक्त दडक मे जो अपने को झुकाता है उसे अपने भी झुकाना चाहिये अन्यथा बड़प्पन की हानि है, यह कहने से प्रथम भेद है।

१—जहाँ उपमानोपमेय वाक्यो ओर उनके धर्मा मे बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव हो वहाँ दृष्टान्त अलकार होता है। प्रतिवस्तूपमा में धर्म एक ही होता है कि तु दृष्टान्त मे एक न होकर पूर्वोक्तधर्म के समान होता है। (दृष्ट = देखलिया है, अत = निश्चय जिसका) इससे उपमेय वाक्य का निश्चय उपमान वाक्य द्वारा होता है।

२—जहाँ उपमेय मे अत्यन्त साम्य के कारण उपमान का भ्रम हो जाय वहाँ भ्रान्ति अलकार होता है।

नावै = झुका लत है। बानि = स्वभाव, आदत। छिकाइ लै है = फाँस लेंगे, ठग लेंगे। बावरी = पगली। सयानप = चतुरता, बड़प्पन ॥१०१॥

आड = आश्रय, सहारा, जुराफा = जोग, मेल। उरावहि = तोड़ देता है। बिबि = दो। गुनवारी = गुणवती (नायिका) ॥१०२॥

दाँत को दाग लग्यौ सपने सपने सहँ चौंकत ही उठि भागी।
बारि दिया कर आरसि लै अधरा अधरात को देखन लागी ॥१०३॥

टीका—कृष्णचन्द्र की कथा को नित्य सखीन सों सुनि सोवते जागते मनमोहन सों अनुराग बढ्यो, एक दिन ऐसो अचम्भ भयो कि स्वप्न में लला को दाँत वाके अधर में लग्यो ताही छन चौंकि सेज सों उठिके भाजी, दीप बारि हाथ में आदर्श ले आधी राति में अधरान को देखे लगी, यहाँ स्वप्न में कृष्णचन्द्र के दंतक्षत को भ्रम भयो, याते भ्रांतिमान् अलंकार और स्वप्न में श्रीकृष्णचन्द्र को संगम भयो याते स्वप्नदर्शन ॥१०३॥

कवि—कविंद (वस्तूत्प्रेक्षा)

दंडक—दंपति सुरति विपरीत मैं रमत अति,
कोक की कलान की अमित अरधारे हैं।
भनत 'कविंद' विहँसत बतरात सत
रात अंग अंगन अनंग अंग सारे हैं॥
उचटे ललाट तें समेत बेंदी माँग मोती,
तहाँ केशपासन पै परे उजरारे हैं।
मन्द नछत्रपति छत्रप हुकुम पाइ,
कूदे मानो तमपै कतारे बाँधि तारे हैं ॥१०४॥

टीका—नायिका नायक को विपरीत रति वर्णन में बेंदा समेत माँग में गुँथी मोती की लड़ैं टूटि बिथुरे बारों पै सुथरि रहे हैं, ताकी उत्प्रेक्षा यहाँ केशपाश और मोती आदि संभाव्यमान पद वस्तु उक्त, ताको मुखचन्द्र की आज्ञा पाय, तम पै श्रेणी बाँधि, तारागण को कुदिबो तादात्म्य करि उत्प्रेक्षा, उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा ॥१०४॥

कवि—पूपी (उत्प्रेक्षा)

दंडक—बनिता सहित बनिताके बीच बनमाली,
करत बिलास 'पूपी' रसकै घमंड को।
रीति विपरीति की निसीत मे रची है रुचि,
पंचसर जीति लहि आनंद अखंड को।

कान्हर = श्रीकृष्ण। कौतुकपागी = आश्चर्यमग्न हो गई ॥१०३॥

कोक = चन्द्रमा। अवधारे हैं = निश्चय किये हैं। बतरात = बातचीत करते। सतरात = रूठते, क्रुद्ध होते हैं। उचटे = उखड़ी। उजरारे = प्रकाशमान। नछत्रपति = चन्द्रमा। छत्रप = राजा। तम = अन्धकार ॥१०४॥

बेनी कहूँ उलटि परी है कुच कुंभ पर
लोल है छुवत लाल बदन प्रचंड को।
महा बलवंड रतिराज को वितंड झुकि,
मानौ शुंडादंड सों लपेटे मारतंड को ॥१०५॥

टीका—इहाँ नायिका के विपरीति रति वर्णन मं बेनी उलटि कै कुच कुंभ पै पर्‌यो, ताकों दूर करिवे के अर्थ कृष्णचन्द्र अपने हाथ सो बदन मुख कों सँवारै है ताकी उत्प्रेक्षा। इहाँ बेनी कुच कुंभ और मुख संभाव्यमान पद वस्तु उक्त, तासो काम के मतंग को शुंडादंड सों सूर्य्य को लपेटिबो तादाम्य करि उत्प्रेक्षा उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षालंकार ॥१०५॥

(अप्रस्तुतप्रशंसा)

दंडक—फूल न रसीले जाके फल न रसीले छिति,
छाँह के न सीले पथ पथी दुखदाई है।
बिटप न कामदार निपटि निकाम दार,
बड़े नामदार 'पूपी' अधिक उँचाई है।
सेए श्रम सुवा अन्त पाए फिरि भुवा खेलि,
हारे जिमि जुवा जिय लगन लगाई है।
जग मे जनमि जो पै काहू के न काम आयो,
कहा सठ सेमर के बडे की बड़ाई है ॥१०६॥

टीका—यहाँ सेमर को सेवन कियो सुक तातें कछू फल की प्राप्ति न भई, इस हेतु सेमर के बदले के तिरस्कार सों काहू प्रस्तुत को आश्रय यातें अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार ॥१०६॥

कवि—नेवाज (दृष्टांत)

म०-राधिका जू वृषभानुसुता सुनो माइहि बाप लड़ाइहि लाड़नि।
ताकी दशा सुनि हौं हू 'नेवाज' बिलोकिबे आज गई हुती चाड़नि ॥

बनमाली = श्रीकृष्ण। निसीथ = अर्द्धरात्रि। पचसर = कामदेव। लोल = चचल। बलबंड = बलशाली। वितंड = हाथी। शुंडादंड = सूँड़ ॥१०५॥

छिति छाँह = भूमि पर पड़ी छाया। सीले = तरावटें। विटप = शाखा। कामदार = काम में आने योग्य। निपट = बिलकुल। निकाम = निष्काम, व्यर्थ। दार = लकड़ी। सुवा = सुग्गा, तोता। भुवा = रूई के रेशे ॥१०६॥

मैनि मसूसनि कै मुरझानी नड़ी अँगियाँ मैं गई गड़ि गाड़नि।
पाँसुरी पाँसुरी बेधि गई बुनि नाँगुरी की बरमाँ भई हाड़नि ॥१०७॥

टीका——इहाँ पाँसुरी पाँसुरी बधि जाने के कारण बाँसुरी और बरमा को बिबभाव यातें दृष्टान्तालङ्कार ॥१०७॥

कवि–मनसा **(उत्प्रेक्षा)**

दण्डक—रची विपरीत रीति प्रीति ही सों स्यामास्याम,
लखे रति कामहूँ की जात मगरूरी है।
लक लपटाइ दोऊ लूटत अनद रस
छूटी परसेद तन खेद होत दूरी है।
बेनी या न बाँधी जात खुली पीठि डीठ परी,
'मनसा' अनूठ एक उपमा बिसूरी है।
लोक बसीकरन प्रयोग के अरभ मानौं,
कंचनपटा पै काम चारु चौक पूरी है ॥१०८॥

टीका—इहाँ पनरौं जुत बेनी नायिका की पीठ पै परी संभाव्यमानपद हेतु सिद्धि, ताकों सकल जन वशीकरण के प्रारंभ में सुवर्ण का पटा पै काम कृत रमनीय चोक पूरिबो तादात्म्य करि उत्प्रेक्षा सिद्धास्पदा हेतूत्प्रेक्षा अलंकार स्पष्ट है ॥१०८॥

कवि—चतुर **(पिहित)**

दण्डक—जौ लगि न काऊ पीर लागती अपाने उर,
तौ लगि पराई पीर कैसे पहिचानिहौ।
जानत हौं आजु लों न लाग्यो नेह काहू सन,
जबै नेह लागि है तो हितहूँ न मानिहौ।
'चतुर कबीश' कहै मेरे कहिबे की बात,
नेकु न रहैगी तूँ समुझि हिय ठानिहौ।
जैसो तुम मोहि नीक लागत हौ प्यारे लाल,
वैसे तुमै काऊ नीक लागिहै तो जानिहौ ॥१०९॥

लाड़नि = प्यार की। चाँड़नि = तीव्र इच्छा से। मैनि मसूसनि = काम की एंठन से। गडि गाड़नि = धँस गई है। पाँसुरी पासुरी = पसली पसली को। बरमा = छेद करने का एक औजार। हाड़नि = हड्डियों को ॥१०७॥

मगरूरी = गर्व, घमण्ड। परसेद = प्रस्वेद, पसीना। बेनी = लट। अनूठ = अनुपम। बिसूरी = याद आयी। कंचनपटा = सोने की पाटी ॥१०८॥

टीका—नायिका प्रीतम को अन्य बनिता आसक्त जानि वराहनो देय है इहाँ नायक आन स्त्री सों प्रीति कियो, यह वृत्तांत जान वराहना चेष्टा करै है, यातें पिहित अलंकार ॥१०९॥

कवि—उदयनाथ (उत्प्रेक्षा)

दंडक—कूरम नरिंद गर्जसिंह जू को दल दौरि,
लक लौ अदक चक शक सरसाती है।
'उदय नाथ' बाजी चढि दुंदुभी धुकार भार,
धरा कसमसै गिरपती डिगुराती है।
कमठ के पीठि फँसे सेस के सहस फन,
दिया लौ दबत उपमा न दरसाती है।
फनन के ऊपर निकसि द्वै हजार जीभ,
स्याह स्याह जाती जो बुझाती रहि जाती है ॥११०॥

टीका—फनन के ऊपर द्वै हजार जीभ निकसिबो साम्यमान पद, ताको दीप की बाती के बुझाइबो करि उत्प्रेक्षा वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार ॥११०॥

कवि—अमरेश (स्मृति[1])

दंडक—कसु कुच कंचुकी सों बिरचु बिमल हार,
मालती के फूल ए धरेई कुँभिलाइगे।
गारो गार चंदन सँवारो अंग आभरन,
दीपक उजेर तम छितिपर छाइगे।
बारोधूम अगर अगार धूप बैठी कहा,
'अमरेश' आज तेरे भूल सों सुभाइगे॥
आई साँझ रारस सोहाई सेज साजि साज,
सुनत सुवा के आँसू वाके नैन आइगे ॥१११॥

१—उपमान को देखकर जहाँ तत्सदृश उपमेय का स्मरण हो आता है वहाँ स्मृति अलंकार होता है।

कूरमनरिंद = कूर्मनरेश, कछवाह जाति के राजा। लक = लङ्का। अदक = भयभीत। चक = विपरीत, चक्र। सरसाती है = फैलती है। दुंदुभी धुकार भार = दुंदुभी की भयंकर ध्वनि। धरा = पृथ्वी। कसमसे = घबरा जाता है। डिगुराती है = हिलन लगती है। कमठ = कच्छप। दिया लौं = दिये की तरह ॥११०॥

कंचुकी = चोली। कुँभिलाइगे = मुरझागये। गारो = घिसा है। गार = गाढ़ा। सुवा = सुग्गा ॥१११॥

टीका—कहूँ प्रोषितपतिका नायिका सों सुक की उक्ति कि आभूषन अंगराग दीपप्रकाश शय्या आदि को भूषित करे, तूँ क्यों बैठी है ? इतनी बातें सुनि वाके नेत्रों में आँसु झलकि आयो यातें स्मृतिमान अलंकार। उसी दिन वाको स्वामी विदेश गयो, सुक बिनु जाने नित्य सिंगार के हेतु कहै है ताको सुनि बिरह सों आँसु झलक्यो, यातें प्रोषितपतिका नायिका ॥१११॥

कवि—जैन महम्मद (पर्यायोक्ति)

दंडक—अनरस रस मैं जो जाकी बोर होत कोऊ,
 वाहि सों दुरावे कहा तासों को कठोर है।
हाथ हूँ धरेंगे पुनि अंक हूँ भरेंगे हमें,
 भावे सो करेंगे यामैं तुमैं क्या मरोर है।
'जयन महमद' जो अहै वा निहारी हित,
 वाही बोर रार्‌यो जो चलै न कछु जोर है।
पीठि है तिहारी सो हमारी है हमारे जान,
 रूसिवे तिहारी होत सो हमारी बोर है॥११२॥

टीका—मानवती नायिका सों नायक की उक्ति। इहाँ नायिका मानसों मुरि कै सेजपै लेटी है। ताके सौंहैं करिबे अर्थ नायक पीठि गहै है, तापै नायिका क्रोध करै है तासों नायक को बचन है, पीठि हमारी है, जो मान में हमारी ओर होय है। जो तुम्हारी है तौ अपनी अलग कानिए, यह ब्याज करि अपनो इष्ट साधन अर्थात् मान छोडाय सम्मुख करै है, यातें दूसरो पर्य्यायोक्ति अलंकार॥११२॥

कवि—दूलह (युक्ति[1])

दंडक—सारी की सरोटैं सब सारी मे मिलाइ दई,
 भूषन की जेज जैसी जेब लहियतु है।

अनरस रस = वह अवस्था जिसमें रस पूर्णरूप से प्रतिफलित न हो सके। जैसे—सम्भोग शृङ्गार में नायिका का संयोग हो किन्तु वह रूठ जाय और सम्भोग न हो सके। ऐसे ही अन्य रसों में भी। बोर = ओर। दुरावे = छिपाती है। अंक = गोद। मरोर = अहंकार। रूसिवे = रूठने पर॥११२॥

१—अपने मर्म को छिपाने के लिये किसी क्रिया के द्वारा जहाँ पर दूसरों को वञ्चना की जाय वहाँ युक्ति अलंकार होता है, (युक्ति = उपाय, रहस्य को छिपाने के लिये निकाला हुआ तर्क)।

कहै 'कवि दूलह' छपाए नख छद रद,
नेह देखे सौतिन को उर दहियतु है ॥
बाला चित्रशाला तें निकसि गुर जन आगे,
कीन्ही चतुराई सो देखाई चहियतु है।
सारिका पुकारै हम नाहीं हम नाहीं एजू,
राम राम कहौ नाही नाहीं कहियतु है ॥११३॥

टीका—इहाँ नायिका रात्रि में नायक के साथ काम कलोल अनुभव कियो ताको देखि सारिका गुरजन आगे हम नाहीं, हम नाहीं, जो नायिका प्रीतम सों संभोग के अथ नाहीं करी कहै, ताकों एजू राम राम कहो, और ही सधान कियो याते युक्ति अलकार ॥११३॥

(समस्तविषयी रूपक[1])

सोनजुही की जुही पगिया जु चमेली के गुच्छ रहो झुकि न्यारो।
द्वै दल फूल कदम्ब को कुडल सेवती को झँगा घूम घुमारो।
है तुलसी पटुका घनस्याम गुलाब अनारन बेलि को सारो।
फूलनि आजु बिचित्र बनाइ कै कैसा सिगारो है प्यारी ने प्यारो ॥११४॥

टीका—इहाँ सोनजुही की पाग जामे चमेली के गुच्छे न्यारे झुकि रहे हैं। कदब के कुडल, सेवती को झंगा, गुलाब अनार आदि को पटुका, नायिका

सरोटैं = कपड़े में पड़ी हुई शिकन। जेब = शोभा। नखछद = नखक्षत। रद = दाँत ॥११२॥

१—रूपक का लक्षण दे० टि० पृ० ४८। चन्द्रालोककार ने रूपक के अभेद और ताद्रूप्य ये दो भेद मानकर प्रत्येक को न्यून, अधिक और सम इन तीन रूपों में विभक्त किया है जिनके उदाहरणो का यथास्थान निर्देश प्रकृत ग्रंथ में किया गया है। 'काव्यप्रकाश', 'साहित्यदर्पण' आदि में रूपक के प्रथम दो भेद हैं—१ समस्तवस्तुविषयी, २ एकदेशविवर्ति। आरोप विषयों की भाँति जहाँ सभी आरोप्यमाण भी शब्द से उक्त हो, वहाँ समस्तवस्तु विषयी रूपक होता है और जहाँ कुछ तो शब्द से गृहीत हो, कुछ न हों वहाँ एकदेशविवर्ति रूपक होता है। उक्त पद में प्यारी ने प्यारे को फूलों से कैसा सजा दिया कह कर जुही की पाग आदि सभी उपमानो का आरोप किया गया है अत समस्तवस्तु विषयी रूपक है।

सोनजुही = स्वर्णजूही। पगिया = पाग, पगड़ी। झँगा = ढीला कुरता। घूमघुमारो = घुमावदार, घेरोंवाला। पटुका = चादर। सारो = सम्पूर्ण ॥११४॥

नायक को फूलनि को सब भूषन बनाय सिंगारो। जुही की पाग आदि उपमान का रूपक याते समस्तविषयी रूपक अलकार ॥११४॥

कवि—सुन्दर (सूक्ष्म)

सवैया–एक समै दिन मे वनितान मैं 'सुदर' बैठि है राधिका रानी।
आये तहाँ पिव सैन दई चलि प्यारी चितौनि मे चातुरी ठानी॥
सेत असेत कटाक्ष करे तिन मै तम जोति की भाँतिहि आनी।
जानि गए हरि औधि बताई है नैनन ही मैं निस्मा की निसानी॥११५॥

टीका—यहाँ वनिता मडल गत राधा सों मिलिबे के हेतु कृष्नचन्द्र सकेत कियो। ताकों लाडिलाजू तमदृचक सेत असेत कटाक्ष करि अवधि निरूपन कियो। ताहि लखि लालजू रात्रि म समागम होयगो यह जानि गयो। पराश याभिज्ञ सों साकूत चेष्टा करने के कारन सूक्ष्म अलकार स्पष्ट है और बोधक हाव ॥११५॥

(उत्प्रेक्षा)

दडक—फूलन सों गुही माँग चन्दन चढ़ाए अग,
अग उमगी है मानो गग सर नीर की।
सब तन सोभित है मोतिन के आभूषन,
मोतिन के जोति से मिली है जोति चीर की॥
मुसुकाति आछी भाँति दाँतनि देखात दुति,
तैसिये गुराई करि 'सुदर' सरीर की।
चाँदनी सी बाला मिली चाँदनी मैं ऐसी चली,
मानौ छीर सिंधु मे चली तरग छीर की॥११६॥

टीका—इहाँ अभिसारिका नायिका के अभिसार वर्णन म चाँदनी सी बाला को चलिबो सभाव्यमान पद उक्त, ताको क्षीर समुद्र म गगा की धार करि बर यों याते उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा अलकार ॥११६॥

१—दूसरे के अभिप्राय को समझकर जहाँ सकेत द्वारा अपना भाव प्रगट किया जाय वहाँ सूक्ष्म अलकार होता है।

सेन = सज्ञा, इशारा। चितौनि = चितवन, कटाक्ष। सेत असेत = श्वेत कृष्ण। औधि = अवधि ॥११५॥

उमगि है = उमड़ आई है। सरनीर = तालाब का जल। चीर = वस्त्र। गुराई = गोरापन। सुदर = कवि का नाम। सुदर शरीर = मनोहर देह ॥११६॥

कवि—शिवलाल (विरोधाभास)

सवैया–सब बादिहिं और कहै मुरहा तुम लौ मुरहा जग जाहिरै हौ।
'शिवलालजू' स्याने खरे दरसो सबही में बसो अरु बाहिरै हौ॥
तिहुँ लोकहि पेट में डारि फिरो अरु आपुन लोक में नाहि रै हौ।
वृषभानु किसोरी है भोरी लला तुम चोरी करेहूँ पै साहि रै हौ॥११७॥

टीका—इहाँ मुरहा, सबके अन्तर में बसो हौ ओर बाहिर हो, त्रिलोकी उदर में राखि अपने जग सों बाहिर, राधा भोरी और तुम चोरिहू पै साहि रेहौ यह विरोध बात, यातें विरोधाभास अलंकार॥११७॥

कवि—बोधा (निदर्शना[1])

अति छीन मृणाल के तारहु ते तेहि ऊपर पावँ दै आवनो है।
'कवि बोधा' अनी घनी नेजहु की चढि तापै न चित्त डिगावनो है।
सुई बेध की द्वार सकै न तहाँ परतीति को टाँड़ो लदावनो है।
यह प्रेम को पथ कराल महा तरवारि की धार पै धावनो है॥११८॥

टीका—यहाँ मृणाल आदि को और अति दुर्गम प्रेम पथ वाक्यार्थ को ऐक्यारोप, यातें निदर्शना अलकार॥११८॥

कवि—मतिराम (पूर्णोपमा)

दंडक—साँझ ही सिंगार साजि प्रान प्यारे पास जाति,
बनिता बनक बनी बेलि सी अनद की।
'कवि मतिराम' कल किंकिनि की धुनि सजै,
मद मद चलनि बिराजत गयद की।
केसरि रँग्यो दुकूल हाँसी में झरत फूल,
केसन में छाई छबि फूलन के बृंद की।

बादिहिं = झूठेको। मुरहा = (मूल + हा) जो बालक मूल नक्षत्र में पैदा हुआ हो (नटखट), मुरारि (श्रीकृष्ण)। स्याने = सयाने। साहि रै हौ = साव (ईमानदार) ही रहोगे॥११७॥

१— यह वाक्यार्थवृत्तिनिदर्शना का उदाहरण है, दे० टि० पृ० ६२।

मृणाल = कमल की नाल। अनी = नोक। नेज = बर्छी, भाला। परतीति = प्रतीति, विश्वास। टाँड़ो = बैलगाड़ी (जिसके द्वारा बनजारे व्यापार करते हैं।) ॥११८॥

पीछे पीछे आवति अँध्यारी सी भँवर भीर,
आगे आगे फैलति अँजोरी मुख चंद की ॥११९॥

टीका—इहाँ बनिता आदि पद उपमेय, आनन की बेलि आदि उपमान, बनक आदि साधारन धर्म, सी वाचक, चारों को उपादान, यातें पूर्णोपमा अलंकार स्पष्ट है ॥११९॥

कवि—चिंतामनि (विशेषोक्ति)

दंडक—हाथ मे लकुट लैके मोर को मुकुट माथ,
काँधे पीत पट धरि करे रुचि थावरी।
स्यामता को मद अंग मृगमद अंगराग,
करे डरे नाहिं काहू जो कहैगी बावरी।
'चिंतामनि' गरे गुंजमाल बनमाल करि,
ऐसेही बितावती हैं बासर बिभावरी।
तुम बिनु मिले लाल नवल नवेली बाल,
पावती न कल सो नकल करै रावरी ॥१२०॥

टीका—इहाँ नकल करने सों भी कल नहीं पावै है। नकल करिबो कारन पुष्ट, तासों नहीं कल पाइबो कार्य्य की उत्पत्ति न भई, यातें विशेषोक्ति अलंकार ॥१२०॥

(पर्यायोक्ति)

दंडक—सोने का न रूपे को न जान्यो जात पन्ननि को,
हीरे का न मोती को न काहे को बनायो है।
देव को चढ्यो है की देवारी को मढ्यो है काहू,
गुनी का गढ्यो है बिनु गुन गर आयो है॥
'चिंतामनि' प्रान प्यारे उर सों उतारि लीजै,
नेकु मेरे हाथ दीजै मोहि मन भायो है।
छल की छला सों इंद्रजाल की कला सों तुम,
साँची कहो हाहा हरि हार कहाँ पायो है ॥१२१॥

बनक = शोभा। किंकिनि = करधनी। चलनि = चाल, गति। गयद = हाथी। अँध्यारी सी = कृष्णपक्ष जैसी। अँजोरी सी = शुक्ल पक्ष सी ॥११९॥

मृगमद = कस्तूरी। बिभावरी = रात्रि। कल = चैन ॥१२०॥

रूपैको = चाँदी का। पन्ननि को = मरकत मणियों का। देवारी = दीपावली में। गुनी = कुशल कारीगर। बिनुगुन गर आयो है = बिना तागे के गले में लटका है। छल की छला = भूत की माया। इंद्रजाल = जादू की विद्या ॥१२१॥

टीका—इहाँ नायक के उर म विनु गुन माल देखि परछा सगम ठहराय व्यंग करै है। तामें माँगिबो व्यंग्य का आश्चय कि धिक्कार तुम ऐसे छली को, यातें प्रथम पर्यायोक्त अलङ्कार और खंडिता नायिका ॥१२१॥

कवि—किसोर (उल्लास)

स०—यह सौति सवादिनि जा दिन तें मुख सों मुख लायो हियो रसुरी।
निशिद्यौस रहै न घरी सुधरी सुनि कानन कान्हर की जसुरी॥
यक आप सबेध सबेध करै असु री द्रिग आनि ढरै अँसुरी।
अब तो न 'किसोर' कछू बसु री बसु री ब्रज बैरिनि तू बँसुरी ॥१२२॥

टीका—इहाँ बाँसुरी को बाजिबो गुन, ताकों नायिका अपने कामबिकल होने के कारन दोष करि ठहरावै है, यातें उल्लास अलकार ॥१२२॥

कवि—नीलकंठ (लोकोक्ति)

दंडक—जाके तन जोर आयो सर औ सरापहूँ को,
सो तो सहि सकै कैसे तेज अरितमा को।
कहै 'नीलकंठ' जब पंडव कुबुद्धि भयो,
भावी के भरोसे रिसि राखी उर जमा को॥
पीछे भयो भारथ तौ स्वारथ कहा को भयो,
मिटि गयो पानी जब रानी आयो सभा को।
छत्री तन पाइ तिय ताड़न द्रिगन देखै,
फूटै क्यों न हिया छत्री छिया ऐसी छमा को ॥१२३॥

टीका—इहाँ छत्री की छमा को धिक्कार लोक कहनावत करि लोकोक्ति अलकार ॥१२३॥

कवि—गंगापति (असंगति)

दंडक—इत हरि फेरि पीठि उत करि टेढ़ी डीठि,
तबहीं सों पंचसर बैठ्यो बाँधि करकस।

सवादिनि = स्वाद किया। रसु = रसयुक्त हो गया। निसिद्यौस = रातदिन। कान्हर = श्रीकृष्ण। सबेध = छिद्रयुक्त। असु = प्राण। अँसुरी = आँसू। बसु = बश है। बसु = रहो। बँसुरी = बंसी ॥१२२॥

जोर = बल, दर्प। पंडव = पांडव (युधिष्ठिर)। भारथ = महाभारत। पानी = प्रतिष्ठा, आब, कांति। छिया = छी छी, धिक्कार। छमा = क्षमा ॥१२३॥

टेढ़ी डीठि = तिरछे नैन, कटाक्ष। पंचसर = कामदेव। करकस = कर्कश, कठोर। अतने पै = इतने पर। लोन = नमक। भुरकावत =

छिन छिन छीन भई तिया नित नित नई,
दुख साँझ नई नई कौन धरे धरकस।
'गंगापति' इहै उर उठत अँदेस एक,
पठयो सँदेस हूँ न ऐसे हरि करकस।
अतने पै घाउ करि लोन भुरकावत हौ,
हमकों बिभूति ऊधो कुबिजा को जरकस ॥१२४॥

टीका—इहाँ उद्धव सों गोपी की उक्ति कि हमें बिभूति और कुबरी को जरकसी को पट आभूषन। और जगह करिवे योग्य और ठौर कियो याते तृतीय असंगति अलंकार ॥१२४॥

कवि—चंदन (लेश[1])

सवैया-छिति मंडल कै नभ मंडल मेघ उमडि दशों दिसि धाय रहे।
'कबि चंदन' चारु सों चातक मोर हरेवनि सोर मचाय रहे॥
पिय पावस मे बिछुरे बनितान सों आवनहार सो आइ रहे।
केहि कारन हाय बिहाय हमैं हरि जाइ बिदेश में छाइ रहे॥१२५॥

टीका—इहाँ बरषा रितु की सम्पत्ति और शोभा गुन ताको स्वामी अनागमन कारक चिंता करि दोष ठहरायो, यातें लेशालंकार ॥१२५॥

(प्रस्तुतांकुर[2])

सवैया-हाथ गहे हरि जो हित सों उत सागर लक्षि के आदिददाई।
अम्बुज चक्रहुँ तें अधिकी गुन रावरे को पहुँचै न गदा ई॥
लायक हौ मुख लागत हौ जन के हित मौन गहो न कदाई।
जुद्ध असंख्यन जीति जु पै सो रहे तुम शंख के शंख सदाई॥१२६॥

छीटता है। धरकस = धैर्य। विभूति = भस्म। जरकस = सोने का काम किया हुआ वस्त्र ॥१२४॥

उमडि = उमड़कर। हरेवन = हरेवा (एक पक्षी) ॥१२५॥

लक्षि = लक्ष्मी। आदि ददाइ = बड़े भाइ है। गदा इ = यह गदा (कौमोदकी)। सदाइ = सदा ही। अंबुज = पद्म (कमल) ॥१२६॥

१—जहाँ किसी गुण मे दोष या दोष में गुण की कल्पना की जाय वहाँ लेश अलंकार होता है। उक्त सवैया में वर्षा ऋतु की शोभा रूप गुण से नायक के न आने रूप दोष की कल्पना की गयी है।

२—जहाँ प्रस्तुत (वर्ण्यमान) एक अर्थ से, प्रस्तुत किसी दूसरे अर्थ की प्रतीति होती हो वहाँ प्रस्तुतांकुर अलंकार होता है (प्रस्तुत + अंकुर, जैसे एक

टीका—इहाँ ऐसो सग पाय सख का सत्य हो रहि जायबो, यह प्रस्तुत, तासाँ अच्छे सज्जनां का सगवर्त्ती है अरु वैसइ रह्यो काहू पुरुष को वृत्ता त लक्षित होय है। यात प्रस्तुताकुर अलकार स्पष्ट है ॥१२६॥

(प्रतीप[1])

जथा—बृज ग्वारी गँवारी अनारी सबै यह चातुरता न लुगाइन मै।
बर बारिनि जानि अनारिनि की गुन एको न 'चदन' नाइन मै॥
छवि रग सुरग के बुद लसै इवि इद्रबधू लघुताइन मै।
चित जो चहदी ठगि सी रहँदी महँदी दी महँदी इन पाइन मे॥१२७

टीका—इहाँ महदा को रग पाँव क रग का उपमान, ताको अनादर, यातैं प्रतीप अलकार, अरु सखी नायक को दिया नायिका क पाँव में ठहरावै है, यात लक्षिता नायिका ॥१२७॥

कवि—कुमार (उत्प्रेक्षा)

सवैया-केलि के रग रची रचि दूसरे द्योस मिले नव सग तमी के।
आनन मै श्रम की जल की झलकी कन कातिन भाँति जमी के॥
आरसी मैं प्रतिबिंब भई यो 'कुमार' लखी छबि माथ रमी के।
इदु सों प्रीति करी अरबिंद मनो अरबिद मै बुद अमी के॥१२८

शाखा से दूसरी शाखा का अङ्कुर फूटता है ऐसे ही इसमे एक अर्थ से दूसरा अर्थ भी भासित होता है)। यहाँ यह ज्ञातव्य हे कि इस अलकार को प्राय सब आलङ्कारिको ने स्वतन्त्र अलकार रूप म नहीं माना है।

१—प्रतीप का अर्थ है विपरीत, अर्थात् जहाँ उपमान और उपमेय के वर्णन में वैपरीत्य हो वहाँ प्रतीप अलकार होता हे। इसके पाँच प्रकार होते हैं—१-उपमेय को उपमान बना देना। २-उपमान के द्वारा उपमेय का आदर न होना। ३-उपमेय के द्वारा उपमान का अनादर होना। ४-उपमेय की समता के लिये उपमान को अयोग्य ठहराना। ५-उपमेय ही उपमान का भी कार्य करले और उपमान व्यर्थ हो जाय। प्रस्तुत उदाहरण में उपमेय (पैर का रग) उपमान (मेंहदी के रग) का अनादर करता है अत तीसरा भेद है।

बारिनि = पत्तल दोने लगाने, सेवा करने वाली जाति की स्त्री। नाइन = नाऊ, हजाम का स्त्री। इन्द्रबधू = अप्सराएँ। लघुताइन = न्यूनता। चहदी = चाहता है। ठगिसी रहँदी = ठगीसी रहती है। पाइन में = पैरों में ॥१२७॥

द्योस = दिवस, दिन। तमी = अँधेरी रात। कन = बूँद। जमी = एकत्रित। रमी = सुग्ध। अमी = अमृत ॥१२८॥

टीका—यहाँ नायिका के मुख में प्रत्यक्ष भयो संभाव्यमान पद्म। ताको चन्द्रमा की प्रीति सों वदन में अमी को प्रादुर्भाव होयबो ठहरावै है, यातें उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार ॥१२८॥

(अपह्नुति)

रोष रच्यो तिय दोष निहारई प्यारे करो रसराशि परेखो।
पायन हूँ परि प्यारी मनाइए प्रीति की रीति है वक्र विशेखो॥
नेकु तिहारे निहारे बिना कलपे जिय क्यों कल धीरज लेखो।
नीरजनैनी के नीरभरे किन नीरद से द्रिगनीरज देखो॥१२९॥

टीका—यहाँ नीरज नैन के गुन को दुराय आँसू भरन के हेतु नीरद पै आरोप, यातें हेत्वपह्नुति अलंकार ॥१२९॥

कवि—किशोर (अनुमान[1])

सवैया-फूलन दे इन टेसू कदम्बन आमन बौरन छावन दे री।
री मतिमंद मधुव्रत पुंजन कुंजन सोर मचावन दे री॥
को सहि है सुकुमार 'किशोर' अरी कल कोकिल गावन दे री।
आवत ही बनि है घर कंतहिं बीर बसंतहिं आवन दे री॥१३०॥

टीका—इहाँ टेसू आदि को फूलिबो और भ्रमर आदि को गुंजार करिबो उद्दीपन सों बसंत रितु पाय नायक के आगमन को अनुमान करै है, यातें अनुमान अलंकार ॥१३०॥

कवि—पद्माकर (सार[2])

दंडक—दूनी तेज दाहतें है त्रिगुनी त्रिशूल हू तें,
चौगुनी चलाक चक्रपानि चक्रचाली तें।

परेखो = परीक्षा किया हुआ। वक्र = वक्र, टेढ़ा। विशेखो = विशेष कर। कलपै = तड़पता है ॥१२९॥

१—काव्यगत वैशिष्ट्य द्वारा जहाँ साधन से साध्य का ज्ञान हो वहाँ अनुमान अलंकार होता है। उक्त पद्य में जैसे—टेसू फूलना आदि द्वारा वसन्त ऋतु का आगमन रूप साधन से नायक के आगमन रूप साध्य का अनुमान होता है। "अष्टौ प्रमाणालङ्कारा प्रत्यक्षप्रमुखा क्रमात्" कह कर जयदेव ने चन्द्रालोक में प्रत्यक्षादि सभी प्रमाणों के अलंकार माने हैं किन्तु दर्पणकार प्रभृति ने अनुमान को ही स्वतन्त्र अलंकार माना है।

टेसू = पलाश। मधुव्रत = भौंरे ॥१३०॥

२—सार अलंकार वहाँ होता है जहाँ क्रम से वस्तुओं में उत्तरोत्तर उत्कर्ष वर्णन किया जाय।

कहै 'पदुमाकर' महीप भगिवत सिंह,
　　ऐसो समसेर शिर शत्रुन पै घाली ते।
पचगुनी पवि तें पचीस गुनी पाहन त,
　　प्रगट पचासगुनी प्रलै के प्रनाली ते।
सौ गुनी है सर्प ते सहस्र गुनी सर्पिनी तें,
　　लाख गुनी लूक तें करोरि गुनी काली तें ॥१३१॥

टीका—इहाँ दाह आदि ते दूनी, तिगुनी, चोगुनी यह क्रम करि एक सों एक उत्कष, यात सार अलकार ॥१३१॥

कवि—देव　　　　　　(पिहित)

सवैया–'देव' जु पै चित चाहिजो नाह तौ नेह निबाहिबो देह मरो परै।
　को समुझाइ बुझाइबो राह अभीर लग्यो पग धोखे धरो परै॥
　नीके मैं फीके है आँसू भरो कित ऊँचो उसास गरो क्यों भरो परै।
　रावरो रूप पिया अँखियान भरो सो भरो उबरो सो ढरो परै ॥१३२॥

टीका—इहाँ नायक सापराध प्रात आय नायिका सों छल बाद करि साँचु बनै है, ताकी दशा देखि नायिका के आँसू भर्यो। ताको पूछ्यो कि क्यों तुम्हारे नेत्रों से आँसू आया, वाकों यह कहै है कि आप के रूप कों इन लोभी नेत्रों ने पियो जो भरो सो भर्यो बाकी ढर्यो परै है। पर बृत्तान्त जानि साभि प्राय चेष्टा करै है यातें पिहित अलकार ॥१३२॥

(पिहित)

सवैया–आजु मिल्यो बहुतै दिन भावत भटत भेंट कछू मुखभाखो।
　ए भुजभूषन सों भुज बाँधि भुजा भरिकै अधरा रस चाखो॥
　लीजिये लाल वोढाइ जरी पट कीजिए जो मन को अभिलाखो।
　'देव' हमै तुमै अन्तर पारत हार उतारि उतै धरि राखो ॥१३३॥

दाह = अग्नि। चक्रपाणि = विष्णु। चक्रचाली = चक्र की गति। समसेर = तलवार। घाली = फेंक दी, छोड़ी। पवि = वज्र। पाहन = पत्थर। लूक = लपट, ज्वाला ॥१३१॥

अभीर = अहीर, ग्वाला (कृष्ण)। उसास = नि श्वास। गरो = गला। उबरो = बचा हुआ, शेष ॥१३२॥

वोढाइ = ओढ़ा कर। जरीपट = सोने का काम किया दुशाला आदि। अंतर पारत = बीच में व्यवधान कर रहा है ॥१३३॥

टीका—इहाँ नायक और के सग रहि वाकी[1] ओढना ओढि आया ताकों देखि नायिका भेटिबे के अथ साभिप्राय बचन कहे है याते पिहित अलकार और मध्या धीरा नायिका ॥१३३॥

कवि—जगतसिंह (शुद्धापह्नुति)

दडक—शशि को नमूना करि पहिले बनाय पुनि,
पीछे त असिल को सँवारे मुख चारु है।
दोऊ येक तौर के विरचि के बिचारि दख्यो,
सौ गुनो शशी सों गुन पायो मुख सारु है ॥
राखिबे को जोग दोनो जान्यों न 'जगतसिंह'
इन्यौं पुनरुक्त हूँ ते करत बिचारु है।
चद्रमा के मडल पे मडल न होइ यह,
कलम से कुडल करे ई करतारु है ॥१३४॥

टीका—इहाँ चन्द्रमडल गत परिवेष को रचकीय गुन दुराय, कलम सों कुडलना करिबो आरोप, यातें शुद्धापह्नुति अलकार ॥१३४॥

कवि—शिव कवि (उत्प्रेक्षा)

दडक—झलक सो जोबन की झलकनि अङ्गन मै,
झाँकति झरोखे दुःख सिगरो बिलात है।
कहैं 'शिव कवि' औरो कौतुक अपूरब है,
लखो नदलाल लोनी लखिबे की घात है ॥
अगुरी अरुन मेहँदी सों तामें अजन है,
प्यारी देति द्रिग ऐसे रूप सरसात है।

१—'वाकी ओढ़नी ओढ़ि आयो' यह कथन अनुचित है। कुशल नायक एक नायिका की ओढ़नी ओढ़कर दूसरी के पास भला क्योंकर जायगा। वस्तुत "हार उतारि उतै धरि राखो" पदके कारण यहाँ पिहित अलकार है। रातभर दूसरी नायिका के आलिंगन से उसका मुक्ताहार नायक के वक्ष पर गड़ जाने से हार का चिह्न बना है। उसी से परप्रसङ्ग जताती हुई नायिका साभिप्राय बचन कहती है, अत पिहित अलकार है।

असिल = वास्तविक। एकतौरकै = एक स्थानपर करके। सारु = सार, तत्व। करतारु = ईश्वर, विधाता ॥१३४॥

मानहुँ पगन पोढे गहि के अनारकली,
अली भली भाँति पैठो पकज मै जात है ॥१३५॥

टीका—इहाँ महत्ता मो अरुन अगुरा मे कजल लगाय नैन मैं देखो सभाव्य मान पद, उक्त वस्तु, ताकौ पग सो अनारकली को पाढे पकरि कमल म पैठिबो करि उत्प्रेक्षा, उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलकार ॥१३५॥

कवि—भगवंतसिंह (शुद्धापह्नुति)

दण्डक—बदरा न होहि दल आए मैन भूपति के,
बुँदियाँ न होहि एरी बान झरि लाई है।
दादुर न होहिं ए नकीब बोलै चहूँ ओर,
मोर ए न होहि हाँक सुरनि सुनाई है।
बकुला न होहिं सेत धुजा 'भगिवतसिंह',
चपला न होहि चद्रहास चमकाई है।
बालम बिदेश यातैं बिरहिनि मारिबे कौं,
जुगुनू न होंहि काम जामगी जगाई है ॥१३६॥

टीका—इहाँ ए बादर न होहिं किन्तु कामदेव का दल होयँ। एक को धम दुराय एक में आराप कियो यात शुद्धापह्नुति अलकार ऐसे ही औरौ पदन में जानिए ॥१३७॥

कवि—सूरति (व्यतिरेक)

सवैया—बेपग अधनि है पगदा चलिबो यह नीकनिहूँ को निवार्यौ।
'सूरति' याह बतावत वे यहि प्रेम अथाह के बारिध डार्यौ।
बेबस बास बसावत हैं यह बास छुड़ाय उजारिन पार्यौ।
देखि अरी हरि की बँसुरी इहि कैसे सुबस को बस बिगार्यौ॥१३७

टीका—इहाँ बिनु पाँव को ओर अ ध है चलिबो आदि और नीकनिहू को कहैं पाँव जुक्त और सुलोचन को चलिबो निहारिबो आदि को निवारन करिबो यह उपमान उपमेय का विशेष, यातैं व्यतिरेकालकार ॥१३७॥

सिगरो = सम्पूण। लोनी = सुन्दरी (नायिका)। घात = अवसर। पोढे = पकड़कर। अली = भ्रमर ॥१३५॥

बदरा = बादल। मैनभूपति = कामदेवनृप। दादुर = मेंढक। नकीब = बन्दीजन, भाट, चारण। चन्द्रहास = खड्ग, तलवार। जामगी = बदूक का पलीता, रजक ॥१३६॥

(गर्भोत्प्रेक्षा[1])

दंडक—भूपति है प्रेम लाल डोरे हैं निसान तहाँ,
चंचलता चतुर तुरंग भीर भारी है।
देखिबे अनेक भाँति तहँ असवार रेख
काजर की सोई करी कोर सी सँवारी है।
बरुनी बँदूखन की पाँति सी लई है पिय,
बिरह गनीम मारिबे को पैज धारी है।
'सूरति सुकबि' स्वच्छ स्याम रंग बागे बने,
प्यारी तेरे नैनन मैं नीकी असवारी है ॥१३८॥

टीका—यहाँ प्रेम को राजा करि, लाल डोरे को निशान करि, चंचलता को तुरंग करि, बाँकी बिलोकनि को सवारी करि, काजर की रेख सवारन को मुरिबो, बरुनी बंदूख की पाँति, बिरह को गनीम करि, आदि नायिका के नेत्र में काम की सवारी को रूपक करि उत्प्रेक्षा। गर्भोत्प्रेक्षा रूपक अलंकार याके गर्भ में है यातें गर्भोत्प्रेक्षा अलंकार ॥१३८॥

कवि—मीरन (अपह्नुति)

स०—आए कहूँ अनतै मनमोहन सोहन मूरति मैन मई है।
आरस सों रस सों अनुराग सों रूप सों रीझ सों डीठि ठई है॥
रावरे ओठन अंजन राजत 'मीरन' सो मति तेहतई है।
जानति हौं वह भावती और सों बोलन की मुँह छाप दई है ॥१३९॥

टीका—इहाँ ओठन पै अंजन राजै है ताको और सों न बोलिबे के अर्थ छाप अर्थात् मोहर करि दिया है। अंजन को धर्म दुराय छाप को धर्म

1—यह उत्प्रेक्षा का भेद या स्वतंत्र कोई दूसरा अलंकार नहीं है, अपितु कोई दूसरा अलंकार जब उत्प्रेक्षा को व्यक्त करता है तब गर्भोत्प्रेक्षा कहलाती है। जैसे उक्त दंडक में रूपक में उत्प्रेक्षा व्यक्त हुई है।

निसान = ध्वजा, पताका। असवार = घुड़सवार। रेख = रेखा, पंक्ति। कोरसी = लकीर जमी। बरुनी = नेत्रपलकों के अग्रभाग में उगने वाले बाल (बरौनी)। गनीम = दुश्मन, शत्रु। पैज = प्रतिज्ञा, जिद। बागे = जामे (एक विशेष प्रकार का पहनावा) ॥ १३८॥

मैनमई = काममयी। आरस = आलस्य। ठई = ठहराई। ओठन = ओठों में। तेहतई = क्रोध से संतप्त। भावती = प्रियतमा ॥१३९॥

आरोप, यातें शुद्धापह्नुति अलकार, और अ य नायिका सभोग जनित ओठ गत अजन रेख विलोकि सरोष बचन कहिबे मां प्रोढा खडिता नायिका ॥१३९॥

(विरोधाभास)

दडक—सुमन मे बास जैसे सु मन मे आवै कैसे,
नाहीं कहू होत नहीं हाँ क्यों चहत है।
सुरसरि सूरजा मै सूरसुता सों हैं जैसे,
वेद के बचन बाँचे सोंके निबहत है॥
परिवा के इन्दु की कला जो बसे अम्बर मै,
परि वाको अक्ष परतक्ष न लहत है।
जैसे अनुमान परमान परब्रह्म जैसे,
कामिनी की कटि कबि 'मीरन' कहत है॥१४०॥

टीका—फूल आदि में सुगध है परन्तु प्रत्यक्ष नहीं इसी प्रकार से नायिका के कटि है पर तु अनुमान सों जान्यो जाय है। क्योंकि जो बासैं सुगध है तौ दृष्टि में क्यों नहीं आवै है। तौ सूक्ष्म रूप सो है, नहीं तौ वाको असभव है ऐसे ही कटि है भी और नहीं [भी] है यातें विरोधाभास अलकार ॥१४०॥

कवि—रामकृष्ण (सबंधातिशयोक्ति)

दंडक—राजै मेघ डबर जो अम्बर परसि कर,
तेज चखचौंधे होत बाहन दिनेस के।
सुडनि के सीकर छुटत जब ऊरध को,
बसन दरीचिन के भीजत सुरेस के॥
लक्ष होत सका सुनि घननाद घटा घोप,
चलत चलत फनि गन भुज सेस के।
उड़त मलिद गड मडल ते 'रामकृष्न',
झूमत गयद फिरे कोशल नरेश के॥१४१॥

सुमन में = पुष्प में, सु = सो, वह। सुरसरि = गगा। सूरजा = यमुना। परिवा = प्रतिपदा। परि = पर, किन्तु। अक्ष = बिम्ब, आकृति। परतक्ष = प्रत्यक्ष। परमान = प्रमाण ॥१४०॥

मेघडबर = जलदपटल, बादलो का समूह। अम्बर = आकाश। चखचौंधे = चकाचौंध, तीव्र प्रकाश से आँखो की तिलमिलाहट। दिनेस = सूर्य। सीकर = बूँदें। उरध = ऊर्ध्व, ऊपर ॥१४१॥

टीका—इहाँ श्री रामचन्द्र के हाथिन के वर्णन में आकाश गत मेघ को शुडादड स्पर्श करे है, सूर्य के घोडन के चकाचौंध होवै है, शुडाग्र गत आकाश गगा के सीकर अम्बु कणिकासों देवलोक गत बिमल महल दरीचीस्थित देवाङ्गना को बसन भीजै है, घटाघोषमों लङ्का को शङ्का होती है। लक्षणाकरि लङ्का बासी को जानिए। ओर जाके चलते शेष को फण लचि जाय है यह अजोग जोग वर्णन, यातें सबधातिशयोक्ति अलङ्कार स्पष्ट है ॥१४१॥

कवि—कविराज (संबधातिशयोक्ति)

स०—लाल कियौ परदेश को गौन सुभाये न भौन सखी सुखदाइ।
भोर भए जल लेन गई 'कविराज' मनोभव ताप सताई॥
कूप तडाग नदी जेहि जाइ सो रीति ह्वै जाइ परे परछाँई।
साँझ समै अगरी अति रूप की लै गगरी फिरि रीतिये आई॥१४२॥

टीका—इहाँ प्रोषित पतिका नायिका के बिरह जनित ताप के बर्णन मे जल भरिवे के अर्थ कूप तडागादि को जायबो और वाके परछाँही के परने सें कूपादि के सूखिबे के कारण सम्पूर्ण दिन भ्रमि के फेरि रीतियै गगरी लै घर को आयबो यह अजोग को जोग बर्णन यातें सबधातिशयोक्ति अलङ्कार ॥१४२॥

कवि—सेनापति (दीपकावृत्ति)

दडक—धातु शिला दारु निरधारु प्रतिमा को सार,
सो न करतार है विचार बीच गहरे।
राखि दीठि अन्तर जहाँ न कछु अन्तर है,
जीभ को निरन्तर जपावत हरे हरे।
अजन बिमल 'सेनापति' मन रजन दै,
जपि कै निरजन परम पद लेह रे।
करि न सदेह रे वही है मन देह रे,
कहाँ है बीच देह रे कहा है बीच देहरे॥१४३॥

टीका—इहाँ कहाँ है वह देह देहरे पद की आवृत्ति सों पदावृत्ति दीपकालङ्कार स्पष्ट है ॥१४३॥

मनोभव = कामदेव। रीति ह्वै जाइ = खाली हो जाती है, सूख जाती है। अगरी = खान, निधि ॥१४२॥

निरधारु = आधाररहित, निर्धारण करो, सोचो। दीठि = दृष्टि। निरजन = अकलुष, परमात्मा। देहरे = देवालय के ॥१४३॥

कवि—सुमेर (पर्यायोक्ति)

दडक—नाइन के भेष स्याम पाइन पखार्‍यो जाइ,
ऍडिन महाउर सुरग रग दियो है।
चूनरी चुनावदार चूनि पहिरायो जब,
हार पहिराइबे को हाथ कर लियो है।
घूँघट उघारि पहिरावत 'सुमेर कवि',
कुचन पै हाथ राखि छुयो जब हियो है।
सुदर सलोनी कहै रसना दसन दाबि,
हाय मेरे काज ब्रजराज ऐसो कियो है ॥१४४॥

टीका—इहाँ राधा जी के मिलिबे अर्थ श्रीकृष्नचन्द्र नायिन को भेष करि अग सिंगारि चूरी चूनरी पहिराय घूँघट टारि हार पहिरायबे समय कुच गहिबा व्याज करि इष्ट साध्यो याते स्वेष्ट साध। पर्य्यायोक्त अलकार ॥१४४॥

कवि—देवीदास (दीपकावृत्ति)

दडक—कीरति को मूल एक रैन दिन दीबो दान,
धरम को मूल एक साँच पहिचानबो।
बाढिबे को मूल एक ऊँचो मन राखिबोई,
जानिबे को मूल एक भली भाँति मानिबो।
प्रान मूल भोजन उपाधि मूल हाँसी 'देवी',
दारिद को मूल एक आरस बखानिबो।
हारिबे को मूल एक आतुरी है रन माँझ,
चातुरी को मूल एक बात कहि जानिबो ॥१४५॥

टीका—इहाँ कीरति धर्म मूल धन आदि पद मे मूल पद की आवृत्ति, याते पदार्थावृत्ति दीपक अलकार ॥१४५॥

नाइन = नाऊ की स्त्री। पाइन = पैरों को। पखार्‍यो = धोया। चुनावदार = सिकुड़नवाला। चूनि = चुनकर। रसना = जिह्वा। दसनदाबि = दाँतों तले दबाकर ॥१४४॥

दीबो = देना। बाढ़िबे = बड़प्पन पाना। उपाधि = उपद्रव। आरस = आलस्य। आतुरी = घबराहट ॥१४५॥

(विधि[1])

एरे गुनी पाय गुन चातुरी निपुनताई,
कीजिए न मैला मन काहू जो कछू करी।
पीर न पराए द्वार गए को है यहै भय,
मान अपमान काहू रे करी के जू करी।
कूर एक कवि चल्यौ जात है सभा के बीच,
तो को तो अटोकि 'देवी' काहू जो पटूकरी।
द्वारे गज राज ठाढे कूकरी सभा के मध्य,
कूकरी सो कूकरी औ कूकरी सो कूकरी ॥१४६॥

टीका—इहाँ कूकरी और करी को विधान अनुपयुक्त बाधित है अर्थान्तर को गर्भित करि चारुतातिशय, यातें विधि अलकार। अर्थान्तर कि तूँ गजराज है दल की शोभा करै है और कूकरी सबको देखि भूकने वाला है यह अर्थान्तर सों गर्भित है ॥१४६॥

कवि—कालिदास (सहोक्ति[2])

दडक-सितासित सगम के बीचिन के बीच बीच,
ता मुख मरीचिन की छबि छहराति है।
कहै 'कालिदास' भीजी सारी वाकी पीठि पर,
सबन की दीठि सग लिए लपटाति है।
जाके अग बासी ऐसी केसरि है सोहै स्वच्छ,
जमुना और गगा जाको रग लिये जाति है।

1—विधि अलकार वहाँ होता है जहाँ किसी सिद्ध अर्थ का विशेष अभिप्राय से पुन विधान किया जाय। जैसे उक्त पद में करी और कूकरी का अर्थ क्रमश हाथी और कुतिया यह प्रसिद्ध ही है, किन्तु इन पदों की पुनरुक्ति (करी = हाथी की भाँति श्रेष्ठ और कूकरी = व्यर्थ भूकने वाली) इस विशेष अभिप्राय से की गयी है।

कूर = क्रूर। अटोकि = हटाकर। पटूकरी = चतुर बनाया, सावधान किया। कूकरी = कूँ कूँ करने वाली, कुतिया। करी = हाथी ॥१४६॥

2—(सह + उक्ति) वाक्यों का एक साथ वर्णन जहाँ काव्य में चमत्कार उत्पन्न करता हो वहाँ सहोक्ति अलकार होता है। सह = साथ या तत्समानार्थक शब्द इसके वाचक होते हैं।

कोऊ मृगनैनी एक बेनी मैं अन्हाति सब,
नैनन की सेनी ताकी बेनी में अन्हाति है ॥१४७॥

टीका—इहाँ नायिका की पीठि पर सारी को लपटायबो सबकी दीठि के साथ ही होय है और मृगनेना बेनी म अन्हाय है, नेनन की सनी पक्ति लोगन का राज साथ उसी की बेनी म अन्हाय है याते सहोक्ति अलकार ॥१४७॥

कवि—महाराज (पर्यायोक्ति)

स०-लखि कै अजहूँ अधरातकतें भ्रम मोहि भयो सो न काहू मिटायो।
या सपने को सुभाव कहो तुम ही पिय आपनी बुद्धि को पायो।
नींद को नास भयो तबतें 'महाराज' हियो अति चेटक छायो।
लाल गयौ गिरि मेरे गरे को कहा कहिये सो परोसिनि पायो ॥१४८॥

टीका—इहाँ नायक सों नायिका की उक्ति कि आधी रात्रि को मैंने एक स्वप्न देख्या है। तासों आपुही बताइए कि मेरे गरे सों लाल गिर्यो ताकों परोसिनि पायो याको भेद कहिए। यह आसय लिए है कि हमसों अवधि बदि कै वा परोसिनि के संग बिलम्यो जायके, कहा कई तुमको, यातें पर्यायोक्ति अलकार ॥१४८॥

कवि—हेम (प्रतिवस्तूपमा)

दडक—करि कै अडम्बर अनेक धरि अम्बर को,
गति मति हीन फिरै बानक बनाइ कै।
कहूँ तो अदक्ष टूटै पक्ष दरबारिन को,
फिरत खुसामदी मे घर घर जाइ कै॥

सितासित = श्वेतकृष्ण। बीचिन = तरगों। मरीचिन = किरणों। सारी = साड़ी, सम्पूर्ण। दीठि = दृष्टि। बेनी = त्रिवेणी सगम। सेनी = श्रेणी, पक्ति। बेनी = ल्ट ॥१४७॥

सुभाव = उचित फल, प्रकृति। चेटक = टोना। लाल = रत्न, नायक ॥१४८॥

१—उपमान वाक्य और उपमेय वाक्य का एक ही धर्म जहाँ भिन्न भिन्न शब्दों में कहा जाय वहाँ प्रतिवस्तूपमा अलकार होता है।

[अर्थावृत्ति दीपक में दोनों वाक्य वाला प्रस्तुत ही होते हैं या अप्रस्तुत ही, किन्तु प्रतिवस्तूपमा में प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों हो सकते हैं। इसी प्रकार दृष्टान्त में दोनों वाक्यों में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होता है प्रतिवस्तूपमा में नहीं, यही इनमें अन्तर है।]

'हेम' अरबीले अति गुन गरबीले नर,
काहू के दुआरे नाहि जावें धाइ धाइ के।
गुनिन के गुनगन आपत प्रगट होत,
मृगमद कहा कहै आप मांहि खाइ कै ॥१४९॥

टीका—इहाँ गुनिन के गुनगन को प्रकट होयबो और मृगमद कस्तूरी के सुगंध को प्रादुर्भाव सौंहैं खाएँ नहीं होय है, उपमानोपमेयभाव करि दूनों वाक्यार्थ को प्रकट होयबो यातें प्रतिवस्तूपमा अलंकार ॥१४९॥

(रूपक)

दंडक—अरुन हरोल नभ मंडल मुलुक पर,
चढ्यो अर्क चक्कवै कनार कै करनि कोर।
आवत ही सावँत नछत जोर धाइ धाइ,
घोर घमसान करि काम आए ठौर ठौर ॥
ससि हरि सेत भए सटक्यौ महमि ससि,
आमिल उलूक जाइ दुरे कदरनि ओर।
बूड अरविंद बंदीखाने ते भगाने पेखि,
पायक पुलिंदवै मलिंद मकरंद चोर ॥१५०॥

टीका—अरुन नभमंडल हरोल मुलुक सूर्य्य चक्रवर्ती आदि उपमान को उपमेय नभमंडल सूर्य्य आदि के साथ ताद्रूप करि बर्णन, याते समताद्रूप्य रूपकालंकार ॥१५०॥

कवि—संगम (गूढोक्ति[1])

दंडक—तीर है न बीर कोऊ करै न समीर धीर,
बढ्यो श्रमनीर मेरी तपनि बुझाव रे।

अडम्बर = आटोप, आडम्बर। अम्बर = वस्त्र। बानक = वेश। अदक्ष = अचतुर। अरबीले = भोलेभाले। मृगमद = कस्तूरा ॥१४९॥

हरोल = सिपाहियों का वह दल जो सबके आगे रहता है। अर्क चक्कवै = सूर्य चक्रवर्ती। करनिकोर = किरणों की नोक। सावत = सामंत। नछत = नक्षत्र, तारे। सस हरि = ससिहरि। सेत = श्वेत। सटक्या = भाग गया। आमिल = अधिकारी। कदरनि ओर = गुफाओं की ओर। बंदीखाना = जल। पायक = पैदल सिपाही। पुलिंदयै = एक जंगली जाति। मलिंद = भौंरे। मकरंद = पराग ॥१५०॥

१—गूढोक्ति अलङ्कार वहाँ होता है जहाँ किसी को लक्ष्य करके बात कही जाय और उसके द्वारा किसी दूसरे को रहस्य समझाया जाय।

पंखा है न पास एक आस तेरे आवन को,
सावन की रैनि मोहि मरत जिआव रे ।।
सगम' मैं खोलि राखी खिरकी तिहारे हेतु,
होत हौं अचेत कछु लागै न उपाव रे ।
जाम जात जानै कौन कीजिये उताल गौन,
पौन मीत मेरे भौन मद मद आव रे ।।१५१।।

टीका—इहाँ तटस्थ का त के आगमन उद्देश्य पौन के आगमन के अर्थ निर्जनत्व ओर कामाधिक्य प्रथित करि कामकलाकेलिकल्लोल अनुभव योग्य आकूत विज्ञापन करे है, यातें गूढोक्ति अलकार ।।१५१।।

कवि—रघुनाथ (शुद्धापह्नुति)

दडक—चरखो अलातधनु धूमधार धूरवा है,
बीजुरी हवाई उड़ी दारु दुख खरी की।
जुगुनू चलत टाटा चन्द जाति ताल जरै,
निरझरि चादरि दुसह आगि धरी की।
जहाँ गिरी इद्रबधू देखि 'रघुनाथ' की सों,
फैलि रही पावस तमासे गरकरी की।
सीकरैं न होहि आली नीर की तरगे ए,
अनगै छोड़ि छूटती फुलिगैं फुलझरी की ।।१५२।।

टीका—इहाँ सीकरैं न होहिं कि तु अनग काम तमासेगर की छोडी ऐ फुलझरी की फुलिगै कहैं अग्नि की चिनगारिऐं छूटतीं हैं । सीकर को धर्म दुराय फुलिंग को धम आरोप यातें शुद्धापह्नुति अलकार ।।१५२।।

(छेकापह्नुति')

अग रग सॉवरो सुगधनि सों लपटाने,
पीत पट पेखि न पराग रुचि वर की।

तीर = तट पर । समीर = वायु । श्रमनीर = पसीना । तपनि = सताप, गर्मी । उपाव = उपाय । जाम = प्रहर । उताल गौन = शीघ्रगमन ।।१५१।।

अलातधनु = जलती हुई वस्तु को घुमाने से बना हुआ गोलाकार मडल । धूमधार = धुँवाधार, निरन्तर । धूरवा = मेघखड । टोटा = कारतूस । इद्रवधू = बीरबहूटी, वर्षाऋतु में होनेवाला एक लाल रग का कीड़ा । गरकरी = गला काटना । सीकरैं = जलकण । अनगै = कामदेव । फुलिंगैं = चिनगारियाँ ।।१५२।।

१—जहाँ अपनी कही हुई बात की वास्तविकता को युक्तिपूर्वक दूसरे से

करे मधुपान मन्द मंजुल करत गान,
'रघुनाथ' मिलो जानि गली कुंजघर की।
देखत निकानी छबि मोपै न बखानी जात,
कहत ही बात सो त्यों और बोली डरकी।
भली भई तोहि मिले कमलनयन प्रात,
नाहीं सखी मैं तौ कही बात मधुकर की ॥१५३॥

टीका—यहाँ अंतरंग सखी सों नायिका निज वृत्तान्त कहै है। ताही समै काहू सौति बोलि उठी कि भली भई आजु प्रभात ही कमलनयन श्रीकृष्णचन्द्र तो कों मिले। यह साँची बात दुरायवे अर्थ, मैं तो मधुकर की बात कही है, मधुकर की बात को आरोप किया यातें छेकापह्नुति अलंकार ॥१५३॥

(विवृतोक्ति)

मत्तग०—जो कोउ देइ जो सो काउ लेइ सो है व्यवहार बडे को चलायो।
मै अपने जिय में यह जानि दियो तुमको अपनो मन भायो ॥
रावरे को गुन मोपै कछु 'रघुनाथ' की सौंह न जात है गायो।
भाउ बराबरि कीतौ कहा चलि देखिबे को फिर पाव न पायो।१५४।

टीका—इहाँ नायिका की उक्ति नायक सों, कि मैं आपुकों अपना मन दै बराबरि को भाव कियो, फेरि देखिबे का पाव भी न पाया, यह भाव और पाव श्लेष करि प्रीति और चरण को अर्थ उपस्थित भयो यातें विवृतोक्ति अलंकार ॥१५४॥

कवि—केशवदास (विरोधाभास)

दंडक—परम पुरुष कुपुरुष संग शोभियत,
दिन दानसील पै दुकानहीं सो रति हैं।
सूर कुल सकल सुराह के रहत सुख,
साधु कहै साधु परदार प्रिय अति है ॥
अकर कहावत धनुषधर शोभियत,
परम कृपाल पै कृपान कर पति हैं।

छिपा लिया जाय वहाँ छेकापह्नुति होती है। (छेक = चातुर्य से, अपह्नुति = छिपाना, अमीर खुसरो की 'मुकरियाँ' आदि प्राय इसी के अन्तर्गत आता है।)

कुंजघर = लतागृह। कमलनयन = श्रीकृष्ण। मधुकर = भौंरा ॥१५३॥

मन = चित्त ४० सेर का परिमाण। भाव = अभिप्राय, दर। पाव = पाँव, चरण, सेर का चोथा भाग ॥१५४॥

विद्यमान लोचन है हीन बाम लोचननि,
'नेजौदास' राजा राम अद्भुत गति हैं ॥१५५॥

टीका—इहाँ परम पुरुष आदि कहाय कुपुरुष अर्थात् बानर भालु आदि के सग शोभित हायबो बिरोध यात बिरोधाभास अलकार ॥१५५॥

कवि—गुरदत्त (अन्योक्ति[1])

स०–सुख बालपनौ कै भयो सपनो सुख मातु पिता के न साथ चरो।
जग जोबन हूँ को न स्वाद मिल्यो जुबती उनमाद को बाद हरो ॥
पन तीजे मै तूँ अपन मन मै 'गुरदत्त' कहाँ धौं गरूर धरो।
अब टेकहि टेक तजो शुक जू भ गो राम अजौं पिंजरामे परो ॥१५६॥

टीका—बालपन को सुख तुमको स्वप्न के तुल्य भयो और माता पिता के साथ नहीं चारा चुगो हो, जग म युवावस्था को स्वाद नहीं चाख्यो, जुवती क भोग सों रहित हौ, तीसरे पन म अपने मन म कहा गर्व करो हौ। हे शुक! टेक तजो कि हम सब सुख करैंगे, पिजरा म बद्ध हो राम राम कहो। इहाँ शुक के दुख सहित उक्ति सों ममता कारि कुटुब म निबद्ध काहू प्रकृत पुरुष को आश्रय, यात अन्योक्ति अलकार ॥१५६॥

मगल को पद जानै नहीं तुम जगल बासी बडे खल खाली।
यामें न रग उमग भरे शुक पागे न जू पिंजरान की जाली ॥
पाके अनार के बीजन के रस छाके नहीं यह कौन खुसाली।
खात कहाँ कठ जामुनि को फल कोचकी होत है चोच की लाली।१५७।

टीका—इहाँ पक्क अनार आदि फल छोडि कठ जामुनि के फल के खायबे म प्रवृत्त शुक की निंदा, उत्तम भोग्य पदार्थ त्यागि अति कटु तीक्ष्ण भाकस विषय

सूर कुल = सूर्य वश। परदार = परस्त्री, (परा = उत्कृष्ट, दारा स्त्री) सीता। अकर = कर विहीन। बामलोचननि = सु दर नेत्रो से, स्त्रियों से ॥१५६॥

१—(अन्य + उक्ति) जहाँ अन्यको लक्ष्य करके अन्य के प्रति कहा जाय, वहाँ अन्योक्ति अलकार होता है। जैसे उक्त पद्य में पिजरे में बद्ध शुक को लक्ष्य करके ससारी पुरुष से कहा गया है। पडितराज जगन्नाथ ने 'भामिनी विलास' में अन्योक्त्युल्लास नाम से एक पूरे उल्लास की रचना की है।

चरो = चारा (आहार) ग्रहण की क्रिया। बाद = पीछे। पनतीजे = तीसरी अवस्था में। गरूर = घमण्ड। टेक हि टेक = व्यर्थ की हठ ॥१५६॥

पागे = लीन। खुसाली = प्रसन्नता, समृद्धि। कठजामुनि = कड़वी जामुन। रुचकी = उत्कृष्ट। कोचकी = एक रग जो ललाई लिये भूरा होता है ॥१५७॥

फूल के आस्वाद में निबद्ध काहू प्राकृत पुरुष को आशय, यातें अन्योक्ति अलंकार ॥१५७॥

तुम्ह ताकत हो तिन्हैं दूरही ते जन जे रन मैं तन बेध भयो।
तुम्हैं नेकु संदेह न जीवन जाय को आप सहस्र लों रिद्ध भयो॥
खल हो जु बड़े उल छोड़ो अजो अब कौन मनहू न रिद्ध भयो।
मुरदान के अंग अहार कियो तुम याही ते गिद्ध निषिद्ध भयो॥१५८॥

टीका—इहाँ मुरदान के खायवे में प्रवृत्त गिद्ध की निंदा को अशुचि अपवित्र विषय कुधा य आदि के भोग में आसक्त काहू कुछिभर्गि को आशय, यातें अन्योक्ति अलंकार ॥१५८॥

कवि—नरायन (उदात्त[1])

सवैया—शीतल है खस को बँगला चहुँ पास सिंचाइ नई कदली को।
नीके 'नरायन' होत पँख्या छूटै चादरि को कहू भाँति भली को॥
आनँद सों छिरकावत चंदन केसरि सैन बताय अली को।
फूलनि सेज मैं पौढ़त लै सग नन्दलला वृषभान लली को॥१५९॥

टीका—इहाँ शीतल खस को बंगला, चहूँ ओर कदली के वृक्षन की सिंचाइ जहाँ आछी भाँति पंखा छूटत ह्वै है। चंदन केसरि जुत जलसों छिरकायो वा जगह मसान को सैन बताय फूलन की सेज बिछाय संग मे वृषभान लली श्रीराधा को लै नंदलाल श्रीकृष्णचंद्र जू पौढ़ें हैं। यह समृद्धि को कथन, यातें उदात्तालंकार ॥१५९॥

कवि—रघुराय (अन्योन्य[2])

दंडक—प्यारे हित काज प्यारी प्यारी हित काज प्यारे,
दुहुँनि सिंगारे तन नीके चटमट सों।
जमुना के नीर तीर हँसि हँसि बातें करैं,
मन अटकायो कल कोकिला के रट सों।

१—उदात्त अलंकार वहाँ होता है जहाँ किसी की समृद्धि का वर्णन किया जाय अथवा दूसरे को अंग बना कर किसी का आधिक्य वर्णन किया जाय। उक्त सवैया में भगवान् कृष्ण की समृद्धि का वर्णन होने से उदात्त का पहिला प्रकार है।

२—अन्योन्यालंकार वहाँ होता है जहाँ दो पदार्थ परस्पर एक दूसरे के उपकारक हों।

एते 'रघुराई' घन घटा घहराई आई,
बरसन लाग्यो ना हीं बूँदनि के ठट सों।
जौलों प्यारो प्यारी को उठायो चाहै पीत पट,
तौलों प्यारी प्यारो ढाँपि लियो नील पट सों ॥१६०॥

टीका—इहाँ प्यार श्रीकृष्नचन्द्र के हेतु प्यारी श्री राधा को और प्यारी राधा जी क अर्थ श्रीकृष्नच द्र जी को सिंगार करिबो परस्पर उपकारक, यातें अन्योन्यालकार ॥१६०॥

कवि—शोभनाथ (पर्यायोक्ति)

दडक—जरकसी सारी तामे कारी सटकारी बेनी,
कचन की भूमि सों चुराये चित लेति है।
कचुकी की कसनि कसनि कसकत पुनि,
फॉदा फबै मोतिन के झब्बनि समेत है।
'शोभनाथ' कहै आली अहै निधरक अति,
बानी तेरी उपमा कहति नेति नेति है।
कैसी है अजानी जू पै लालैं दति ऐसी पीठि,
है है ढीठि तरी पीठि तोही पीठि दति है ॥१६१॥

टीका—सखी की उक्ति नायिका सों। कचुकी आदि की कसनि सकल रसिक जन के हृदय में कसकै है और मोतिन की लरैं झब्बनि समेत न्यारे फबै हैं। तेरी शाभा बानी सरस्वती पै नहीं कह्यो जाय है। कैसी तूँ अजानी है लला का ओर पीठि करै है। एरी ढीठि तेरी पीठि तोही को पीठि देय है। इहाँ मान छोडायबे के अर्थ बचन की रचना करि नायक को कार्य्य साधै है, यातें पर्य्यायोक्ति अलकार ॥१६१॥

कवि—मोतीराम (लेश)

दडक—मूल मलयज को समूल जरि जैयो अरु,
गुन गरि जैयो या सुगध सहराई को।
कटि जैयो भूतल तें केतकी कमल कुल,
हूजियो कतल अलि कुल दुखदाई को।

ठट = समूह ॥१६०॥

जरकसी = सोने का काम की हुई। सटकारी = फैलायी, बखेरी। कचुकी = चोली। कसनि = कसावट। कसनि = कितनों को। फाँदा = फन्दा, गाँठ। फबै = शोभित है। झब्बनि = झालरों से। अजानी = अज्ञान, मूढ़। ढीठ = धृष्ट ॥१६१॥

'मोतीराम' सुकबि मनोज मालती के हूज्यो,
पूज्यो जनि आस बिरही जन हँसाई को।
राजबस हसनि को बस निरबस जैयो,
अस मिटि जैयो या कलानिधि कसाई को ॥१६२॥

टीका—इहाँ मलयज आदि को सुग ध गुन ताको निदरिबो ऐगुन, उद्दीपन क कारण नायिका को दोष भयो, यात लेश अलकार। ऐसे ही ओरो पदन मं जानिये ॥१६२॥

कवि—कान्ह (अनुमान)

सवैया—चाँदनी 'कान्ह' मलीन भई गन तारन के पियरान लगे।
चिरिया चहुँ वोर कर चरचा चकई चकवा नियरान लगे॥
सिगरी निसि मैन मरोरनि माँझ सिगार कछू जियरा न लगे।
मनमोहन तोहि परान लगे नथ के मुकता सियरान लगे॥१६३॥

टीका—इहाँ चाँदनी को मलान होयबो आर तारागन की पियराई, पच्छीन को बोलिबो, चकइ चकवान को एकत्र होयबो, और नथ क मुक्ता को शीतल होयबो, प्रभात सूचित करै है यात अनुमान अलकार। सखी नायक क मनायबे अर्थ गई परन्तु वाको मन प्यारी की तरफ न रुजू भयो। और नायिका के पश्चात्ताप भाव के कारण कलहा तरिता नायिका ओर नायक के हृदय का काठिन्य व्यग्य है ॥१६३॥

(उत्प्रेक्षा)

दडक—तैसो घन पावस को उमड़ि घुमड़ि आयौ,
तैसिये अँध्यारी रैनि सूझत न सग को।
प्यारी बनवारी पै सिधारी बनवारी माँझ,
साजै उर बान पचबान के निषग को।
पायतर दब्यौ अहि अहि रह्यो पाय गहि,
कहाँ लौं कहत 'कान्ह' कौतुक उमग को।

मलयज = चन्दन। गरि जैयो = गल जावे। सहराई = मदगति से चलना (बहना)। कतल = वध। अंस = अंश, कला। कलानिधि = चन्द्रमा॥१६२॥
पियरान लगे = फीके पड़ने लगे। चहुँवोर = चारो ओर। नियरान लगे = निकट में आने लगे। सिगरी = सारी। मैन = काम। मरोरनि माँझ = मरोड़ों में, करवट बदलने में। जियरा = मन। परान = प्राण। सियरान लगे = ठंडे पड़ने लगे॥१६३॥

लिये लोह सगर यौं सगर करन छूटो,
जात है मतग मानो नृपति अनग को ॥१६४॥

टीका—इहाँ अहि सर्प को पाय ने तरे दबिवे के कारन नाको दौंतन सों गहिनो आर ताहू पै कामवश नायिका को नायक के निकट सत्वर जायबो सभा व्यमान पन, उक्त बिषय ताको अनग काम नृपति राजा को छुन्यो मतग को लाह को सगर कहे जजीर को सगर सग्राम करिबे क हेतु लै जायबो करि उत्प्रेक्षा, उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलकार और परकाया अभिसारिका नायिका ॥१६४॥

कवि—प्रहलाद (अनुमान)

जथा—छूटि छूटि परै आजु बेंनी भरै भालपै तें,
मुखपै तें मोतिन की लरी लरकति है।
चूरेहूँ की कील डग भरन निकसि जात,
जब तब जूरेहूँ की गाँठि भरकति है।
जानि न परत परदेश पिय 'प्रहलाद',
निकसि उरोजनि ते आँगी अरकति है।
तनी तरकति कर चूरी चरकति मिर,
सारी भरकति आँखि बाँई फरकति है ॥१६५॥

टीका—बदी आदि के छूटिबे सों ओर बाँई आँखि के फरकिबे सों नायक के आगमन के हेतु सगुन अनुमान करै है, याते अनुमानालकार ॥१६५॥

कवि—राम (पर्यायोक्ति)

दडक—स्वेदकन जाली अशुमाली की तपनि आली,
सुधी कहूँ रहे तोहिं बिशम्भर बूझे है।
बेनी जानि साँपिनी सु चोथी है कलापिनी वै,
बापुरी चकोरी को कपोल चन्द सूझे हैं ॥

पावस = वर्षा। बनवारी पै = श्रीकृष्ण के पास। बनवारी = बूँदाबाँदी। सालै = कष्ट देता है। पचबान = कामदेव। निषग = तरकस। अहि = सर्प। लोहसगर = लोहे की साँकल। सगर = युद्ध। मतग = हाथी। अनग = कामदेव ॥१६४॥

लरकति = लटकती। चूरे = बाँह में पहनने का एक आभूषण। जूरे = जूड़े, कट। भरकति = ढीली होती। उरोजनि त = स्तनो से। आँगी = चोली, कचुकी। अरकति = फट जाती। तनी = गाँठ, बन्धन। तरकति = तड़कती है ॥१६५॥

'राम जू सुकवि' मै पठाई तहाँ तूँ न गई,
बद कचुकी के कहूँ झाल में अरूझे हैं।
उन्नत उरोजनि समुझि सभु किसुक सो,
कुन्ननि के कोने इन्हैं काने आज पूजे हैं ॥१६६॥

टीका—दूता सों नायिका की उक्ति कि तेरे तन म सूर्य के ताप सों स्वेद झलक्यो, शुकी बिम्बफल क भ्रम सों तेरा अधर खडित किया। बेनीकों सर्पिनी ठहराय कलापिनी मयूरी चोथ्या अथात चूस्या। चकोरा को तेरे कपोल को चन्द्र भ्राति भइ। और तेरा उन्नत उरोज दखि सभु की भ्राति सों काहू प्रेमी जन किसुक टेस क फूलनि सा पूजा किया और आँगी कहूँ झाल मे अरुझि फटि गई है। तात्पर्य्य यह कि जहाँ तो मैंने तोकों पठाइ तहाँ तेरा यह दशा नहीं भइ, किन्तु कहो अन्यत्र हा भइ है। इहाँ दूता की दशा का वणन करि नायक सों भोग करिबा व्यग्य ताको प्रकार करिबे को आश्रय, यातें प्रथम पर्य्यायोक्ति अलकार और अन्यसभाग दु खिता नायिका ॥१६६॥

दंडक—केसरि कपूर और चदन अगर चूर,
कुकुम गुलाब मद मृगमद गारोंगी।
मौलसिरी बापुरी के मालती क हार भाँति-
भाँति के ललित चीर चुनि चुनि धारोंगी।
हरष हिये को बाँह फरकि जतावति है,
'राम जू' प्रतीति मोहि अगन सँवारोंगी।
अक भरि प्यारे का निशक आजु भेंटत ही,
दै जुग उरोज शिव मैं मनोज मारोंगी ॥१६७॥

टीका—इहाँ केसरि, कपूर, चदन, अगर, कुकुम, गुलाब, मृगमद कस्तूरो, औ मौलशिरी, मालती आदि का हार और ललित बसन चुनि धारन और बाम भुज, बाम नेत्र को फरकिबा अँग सँवारिबो अक भरि निशक उरोज शिव दैके प्यारे को भेटिबो आदि करि मनोज काम का जातिबो समर्थन द्रिढ देखायो, यातें काव्य लिंग अलकार ॥१६७॥

अँसुमाली = सूर्य। तपनि = गर्मी। सुकी = सुग्गी। चोथी = नोच डाला। कलापिनी = मयूरी। बापुरी = बेचारी। झाल = झाडी। सभु = शिव। किंसुक = पलाश। कोने = किनारे पर। का ने = किसने ॥१६६॥

गारोंगी = निचोडूँगी। चीर = वस्त्र। उरोजशिव = स्तनरूपशकर। मनोज = कामदेव ॥१६७॥

कवि—दयानिधि (विरोधाभास)

स०—रूठि रहो हमसों तो हमै नितहीं परि पायन पाय मनाइबो।
बोलो न बोलो हमै नित बोलिबो चाह करो न करो हमैं चाहिबो।
देखो न देखो 'दयानिधि' प्यारी हमैं सुख नैनन को सरसाइबो।
मानो न मानो हमै यह नेम नयो नित नेह को नातो निबाहिबो।१६८।

टीका—जो पै तुम हम पै रूठि हू रहो तऊ हमैं पायन परि मनायबोई है, और हमसों बोलो न बोलो पै हमको बोलिबोई है, यह विरोध। क्योंकि जो कोऊ काहू सों रूठै है ता जासों वह भी रूठै है। इहाँ रूठिबे हू पै मनाइबो विरोध, यातें विरोधाभास अलङ्कार ॥१६८॥

कवि—प्रवीन राय (संभावना)

दण्डक—सकल सुगंध चारु मजन कै घनसार,
ऊजरे अँगोछे आछे अंजन सुधारिहौं।
देहौं न पलक एक लगन पलक परि,
पूरि पूरि अभिलाष तपनि निबारिहौं।
भनत 'प्रवीन राय' मोज या फरकिबे की,
सुनो बाँए नैन यहै बैन प्रति पारिहौं।
जबहीं मिलैगो मोहिं घनस्याम प्रान प्यारो,
दाहिनो द्रिगहि मूँदि तोही ते निहारिहौं ॥१६९॥

टीका—इहाँ जब मोकों घनस्याम प्रान प्यारो मिलैगो तबहीं दाहिनों दग मूँदि, येरी बाम दग तोही सों सकल शृङ्गार साजि मनभावन को निहारिहौं, यह संभावना की बात। जब ऐसो होयगो तब ऐसो करोंगी यातें संभावना लकार ॥१६९॥

(विरोधाभास)

स०—आई हौं पूँछन मंत्र तुम्हैं तुम्ह हो इन साह के मंत्र अगोई।
प्रान तजौं न भजौं सुलतानहि मैं न लजो लजिहै पुनि वोई॥

परि पायन = पैरों पड़कर। नेम = नियम॥१६८॥

मजन = मज्जन, स्नान। घनसार = कपूर। पलक = पल, क्षण। पलक = आँखों की पलक, निमेष। तपनि = संताप, गर्मी। मोज = मौज। बैन = वचन। प्रतिपारिहौं = प्रतिज्ञा करती हूँ॥१६९॥

स्वारथ हाथ रहै परमारथ बात बिचारि कहो तुम मोई।
जामैं रहै प्रभु की प्रभुता अरु मेरा पतिव्रत भग न होई ॥१७०॥

टीका—इहाँ जामैं प्रभु की प्रभुता रहै ओर मेरा पतिव्रत भग न होय, यह बिरोध बात, यातें बिरोधाभास अलंकार ॥१७०॥

कवि—कुलपति (रसनोपमा)

स०-मोहन के अभिलाष सो बैस रु नैस समान सुरूप गनो है।
रूप समान लुनाई बिराजै लुनाई समान सुजानपनो है॥
जैसी सुजानता तैसो बिचारिकै कान्ह कुमार सों नेह मनो है।
नेह समान लहे सुख साज सु राधिका जीवन धन्य गनो है ॥१७१॥

टीका—इहाँ मोहन श्रीकृष्णचन्द्र के अभिलाष के समान वयस और वयस के तुल्य स्वरूप, रूप के समान सौन्दर्य, सौन्दर्य के सदृश चातुर्य्य, आदि क्रमसों वाको उपमान, यह उत्तरोत्तर उपमान को उपमेय होने के कारण रसनोपमा अलंकार स्पष्ट है ॥१७१॥

कवि—(अज्ञात)

दंडक—कैसो री सुधासर में फूल्यौ है कमलनील,
जैसो पंक बदन मयंक ही को हेरो है।
कैसे पंक बदन मयंक ही को हेरो आली,
जैसे अलि कमल में गहत बसेरो है॥
कैसे अलि कमल मैं गहत बसेरो आली,
जैसे मैन मुकुर मैं मोरचा करेरो है।
कैसे मैन मुकुर मैं मोरचा करेरो आली,
जैसो री कपोल वै अमोल तिल तेरो है ॥१७२॥

मंत्र अगोई = प्रधान सलाहकार, मुख्य मंत्री। मैन = कामदेव। वोइ = वही ॥१७०॥

बैस = वयस, अवस्था। लुनाइ = लावण्य, सुन्दरता। सुजानपनो = चतुरता, सयानापन ॥१७१॥

सुधासर = अमृतकुण्ड। पंकबदन = काले चिह्न से अंकित मुख। मयंक = चन्द्रमा। गहत = ग्रहण करता है। बसेरो = स्थान, बास। मैनमुकुर = काम रूप दर्पण। मोरचा = जंग। करेरो = कड़ा। तिल = शरीर के किसी अंग पर पड़ने वाला काला चिह्न ॥१७२॥

टीका—इहाँ सुधासर मे नीलकमल को बिकसिबो उपमेय, ताको पंकजवदन मयंक उपमान आदि, पुन प्रश्न उपमेय को अनेक उपमान करि क्रम सों उत्तर याते रसनोपमा अलंकार ।।१७२।।

(विषम)

सीता पायो दुख अरु पारबती बंझा तन,
नृग नैं नरक पायो बिस्वा गति पाई है।
बेनु भए सुखी हरिचन्द नृप दुखी भए,
बलि को पताल स्वर्ग पूतना पठाई है।।
संकर को बिष बिषधर को दियो है अंग,
पांडव पठाए जहाँ हिम अधिकाई है।
हाल ठकुराइसी मै बोलिबे अचंभौ कहाँ,
ईस्वरै के घरते अपेलि चलि आई है ।।१७३।।

टीका—सीता पायो दु ख यह अयोग्य की घटना क्योंकि कहाँ सीता और कहाँ दुख, पारबती बाँझ तन अननुरूप, यात विषमालंकार ।।१७३।।

कवि—नाथ

(प्रतीप)

दण्डक—तेरो मुख रचि कै निकाई को निकेत राधे,
चारु मुखचंद न रच्यो है और तेरो सो।
छबिन को घेरो सो सुहाग को उजेरो सब,
सौतिन के आँखिन मै पारत अँधेरो सो।
कान्ह की सौं 'कवि नाथ' केतो पचि रह्यो जानी,
उपमा नवीनी सब हरि हारो मेरो सो।
ताकी समताहि री बताऊँ कहि काको जाइ,
चाकर सों चंद अरबिंद लागै चेरो सो ।।१७४।।

टीका—इहाँ सखी राधा के मुख की प्रशंसा करि (रहा) है कि तेरो मुख सौ दर्य्य को निकेत, उपमान नहीं मिलै है। जाको चाकर सो चन्द्रमा और चेरो दास के सदृश कमल लागै है। उपमान को उपमेय करि बरन्यो, प्रथम प्रतीप अलकार।१७४।

बंझा = वन्ध्या, बाँझ। बिस्वा = वेश्या। बिषधर = सर्प। ठकुराइसी = प्रभुता। अपेलि = अन्याय ।।१७३।।

निकाई = सुन्दरता। निकेत = वासस्थान। पचि रह्यो = थक गया। चेरो = दास ।।१७४।।

कवि—लाल (तीसरो विशेष[1])

स०—बाल सों 'लाल' बिदेश कै हेतु हरे हँसिकै बतिया कछु कीनी।
सो सुनि बाल गिरी मुरझाइ धरी हरि धाय गरे गहि लीनी॥
मोहन प्रेमपयोधि भयो जुरि दीठि दुहूँ की गई रस भीनी।
माँगै बिदा को बिदा का करे मिलि दोउ बिना की बिदा करि दीनी।१७५।

टीका—इहाँ नायक परदेश पयान करिबे को अपनी प्यारी के निकट बिदा होयबे को गयो। तहाँ प्रेम समुद्र उमग्यो दोनों की दीठि जुरी ता छिन बिदा को कौन माँगै और को बिदा करे। दोऊ ने वा बिदा करि दिया। बिदा माँगिबे के आरंभ सों अशक्य जो नहीं सम्भावित ह्यो घर ही रहि जायबो सिद्ध भयो, यातें तीसरो भेद विशेष अलंकार॥१७५॥

कवि—गोविंद (विषम)

स०—सागर को जल खारि कियो अरु कंटक पेड़ गुलाब के कीनो।
मित्रन माँह बियोग रच्यो पय पान विषद्धर को पुनि दीनो॥
पंडित लोग दरिद्रित 'गोबिंद' मूढन को धन धाम नवीनो।
शुद्ध सुधा बरसे बिष अंकित या बिधि सों बिधि है बुधि हीनो।१७६।

टीका—इहाँ समुद्र को जल खार, गुलाब में कंटक, मित्र को वियोग, साँप को पय दूध को पान, पंडित हू को दरिद्रता, मूढन को धन धाम आदि अननुरूप को घटना, यातें विषमालंकार॥१७६॥

कवि—पुरान (सूक्ष्म)

दंडक—बाँसुरी के बीच एक भौंर डारि ल्याई सखि,
ढाँपि बट पल्लव सों महा बुद्धि भारी सों।

१—विशेष अलंकार काव्य में तीन स्थलों पर होता है—

(१) जहाँ आधार के बिना आधेय का वर्णन हो।

(२) जहाँ थोड़े से प्रारम्भ से अत्यधिक सिद्धि प्राप्त हो।

(३) जहाँ एक ही वस्तु की सत्ता अनेक स्थानों पर कही जाय।

[यहाँ यह ज्ञातव्य है कि विशेष और विशेषोक्ति दो पृथक् पृथक् अलंकार हैं। विशेष के तीसरे भेद एवं उल्लेख अलंकार में यह अन्तर है कि उल्लेख में एक वस्तु को या तो अनेक व्यक्ति विभिन्नरूप में देखते हैं या उसके विभिन्न गुणों का दूसरा व्यक्ति विभिन्न रूप में वर्णन करता है किन्तु इसमें एक ही वस्तु की विभिन्न स्थानों में स्थिति होती है।]

बाल = बाला (नायिका)। लाल = नायक, कवि। धरी = पकड़ली ॥१७५॥
विषद्धर = सर्प। बिधि = रचना, प्रकार। बिधि = विधाता ॥१७६॥

भनत 'पुरान' यामै आपुहीतें धुनि होत,
कान देकै कह्यौ सुनो राधा सुकुमारी सों ॥
रीझि रीझि बारी ताहि आपही मगन भई,
नभ तन चितै मुख मूँद्यो स्याम सारी सों।
आँचर मैं गाँठि दै बिहँसि उठि चली आली,
प्यारी कही आजु ह्याँहीं रहो न हमारी सों ॥१७७॥

टीका—इहाँ सखी बाँसुरी के मध्य एक भौंर को डारि और बट पल्लव सों दाँपि कै ल्याइ और रीझि कै नभ आकाश की ओर चितै स्याम सारी सों मुख मूँदि आँचर में गाँठि दै बिहँसि चली अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्र ताकों इसी बट वृक्ष के निकट मिलैंगे। यह बटपल्लव सों अर्थ लब्ध भयो, पुष्ट जानो अवश्य मिलैंगे यह आँचर की गाँठि सों अर्थ लब्ध भयो, पराशय जाननेहारी राधा सों साभिप्राय चेष्टा करिबे के कारन सूक्ष्म अलंकार ॥१७७॥

कवि—माखन (स्वभावोक्ति)

स०—हम खेलन पैए न जैए जहाँ मग ताही कढ़ै अँग सोधि सकै।
कबहूँ कर आछे के पाछे सो अच्छ गहैं सो कपोलन कै मिसकै ॥
कहि 'माखन' लाखन खेलती हैं ये हमारीहि हेरि करै हिसकै।
हरि को हैं हमारे ये कौन लगैं परी सासु के गोद मे यों सिसकै।१७८।

टीका—अज्ञात यौवना नायिका की उक्ति माय सों, हम खेलने नहीं पावैं हैं जहाँ जाती हौं वाही मग अंग सों अंग घिस कै कढ़ैं हैं, कबहूँ आँखि मूँदिबे की ब्याज कर सों कपोलन कों छुवै हैं। लाखन खेलती हैं परंतु वह हमारोई हिसिका करै हैं। ये हरि हमारो कौन हैं यह कहि अपनी माय के गोद में परी सिसकि रही है। इहाँ अपनी युवावस्था न जानने के कारण यों पूँछे है, अज्ञात यौवना को ऐसोई स्वभाव होय है, यातें स्वभावोक्ति अलंकार ॥१७८॥

(निंदास्तुति[1])

जथा—वर तो बिन बाप बिना जननी सुनि कानन कोऊ कहा करतो।
करतो लै दिगम्बर कोऊ कहा 'कवि माखन' आँखि नहीं डरतो ॥

बारी = बाला। सौं = सौगन्ध, शपथ ॥१७७॥

आछे = अच्छे। पाछे सो = पीछे से। मिसकै = बहाने से। हेरि = खोज खोजकर। हिसकै = देखादेखी किसी बात की इच्छा करना ॥१७८॥

१—जहाँ निन्दा के बहाने स्तुति या स्तुति के बहाने निन्दा व्यक्त होती हो वहाँ निंदास्तुति अलंकार होता है। इसीको व्याजस्तुति भी कहते हैं।

डरतो गुर गाँठि बिवाह की तारि पै रावरी भाँवरि ना भरतो।
भरतो कियो पै हमहीं हर तो हम ना वरतो तुमैं को वरतो ॥१७९॥
टीका—यहाँ पारवती को वचन शिव सों, जो पै हम तुम्हें न वरती अर्थात् वर करती तो तुम्हैं को वरतो। क्योंकि आप अघोर हो और निष्किंचन, यह निंदा की बात सों सम्पूर्ण स्त्री तुम्हारे योग्य नहीं। साक्षात् ईश्वर सों प्रसाद स्तुति कढ़ै है, याते व्याजस्तुति अलङ्कार ॥१७९॥

कवि—नागरीदास 'नागर' (समाधि[1])

स०—भादव की अँधियारी निसा झुकि बादर मंद फुही बरसावै।
स्याम जू आपनी ऊँची अटा पै छकी रस रीत मलारहिं गावै॥
ता समै नागर के द्रिग दूरि तें आतुर रूप की भीख यों पावै।
पौन मया करि घूँघुट टारै दया करि दामिनि रूप दिखावै॥१८०॥
टीका—यहाँ भादों की अँधियारी रात्रि समय घटा झुकी बरसि रही है, नायिका अपनी अटा पै बैठी रससों छकी मल्हार गावै है। ताको मुख देखिबो भीख स्याम श्री कृष्णचन्द्र यों पाय रह्यो है, पौन मया करि घूँघट खोलि देय है और दामिनी बीजुरी कृपा करि वाको मुख देखाय देय है। कारणान्तर पौन और बीजुरी के सन्निधान सों समाधि अलङ्कार ॥१८०॥

कवि—दास (तुल्ययोगिता सधर्म[2])

सवैया—थाहन पैये गँभीर बड़े हैं सदा ही रहै परिपूरन पानी।
ताके बिलोकि कै श्री जुत 'दासजू' होत उमाहिल मे अनुमानी॥

बर = श्रेष्ठ, दूल्हा। कानन = कानोंसे। गुर = गुरु। भरतो = भर्ता, पति ॥१७९॥

१—कारणान्तर से जहाँ प्रारीप्सित कार्य सरल हो जाय वहाँ समाधि अलङ्कार होता है। उक्त सवैया में श्रीकृष्ण अपनी अटा पर चढ़कर जब रसपोषक मल्हार गाती हुई नायिका को देखने लगे तो वायु ने घूँघट हटा दिया और बिजली ने प्रकाश कर दिया, इस प्रकार नायिकादर्शन दूना कारणान्तरों से विशेष सुलभ हो गया।
नागर = चतुर, श्रीकृष्ण। मया = स्नेह। दामिनि = बिजली ॥१८०॥

२—(तुल्य = समान है, योगिता = अन्वय, जिसमें) इसके तीन प्रकार हैं—
१ प्रस्तुत (वर्ण्य) अथवा अप्रस्तुत (अवर्ण्य) का गुण या क्रिया रूप एक धर्म में अन्वय होना, २ हित और अहित में समान व्यवहार होना, ३ बहुत से पदार्थों के उत्कृष्ट गुणों की एक पदार्थ से समानता होना। इनमें जहाँ धर्म उक्त होता है वहाँ सधर्म, जहाँ अनुक्त होता है वहाँ अधर्म तुल्ययोगिता होता है।

आदि वही मरजाद लिए ही रहै जिनकी महिमा जग जानी।
काहू के क्यौं हूँ घटाए घटै नहि सागर औ गुन आगर प्रानी ॥१८१॥

टीका—इहाँ सागर और गुन आगर प्राणी को मर्यादा अपरित्याग और घटाये न घटिबो धर्मैक्य, यातें तुल्ययोगिता अलङ्कार ॥१८१॥

(निदर्शना)

सवैया—प्रान विहीन के पाँइ पलोट्यो अकेले कै जाइ घने बन रोयो।
आरसी अंध के आगे धर्‌यो बहिरे सों मतो करि ऊतरु जोयो॥
ऊसर में बरस्यौ बहु बारि पखान के ऊपर पंकज बोयो।
'दास'बृथा जिन साहिब सूम की सेवन मैं अपनो दिन खोयो।१८२

टीका—इहाँ सूमस्वामी का सेवा में जो अपना दिन खोया, सो प्रान बिहीन के पाय पलोट्यो, बन में जाय अकेलाइ रोयो, अंध के आगे आरसी दर्पण धर्‌यो, बहिरो सों मतो करि उत्तर जोयो, ऊसर में बहुत जल बरस्यो, पाषान पै कमल रोप्यो। सदृश वाक्यार्थ को एक बृथा रूप धर्म में आरोप, यातें निदर्शनालङ्कार ॥१८२॥

(छेकोक्ति)

पंडित[1] पंडित सों सुखमंडित सायर सायर के सुख मानै।
संतहि संत भनंत भलो गुनवंतनि कों गुनवंत बखानै॥
जा पहँ जा सह हेतु नहीं कहिए सु कहा तेहि की गति जानै।
सूर कों सूर सती को सती अरु 'दास'जती को जती पहिचानै॥१८३॥

टीका—इहाँ पण्डित को गुन पण्डित जानै है यह लोक कहनावत, यातें छेकोक्ति अलङ्कार ॥१८३॥

(अर्थान्तरन्यास)

धूरि चढ़ै नभ पौन प्रसंग तें कीच भई जल संगति पाई।
फूल मिले नृप पै पहुँचै कृमि काठनि संग अनेक बिथाई॥

राकै = पूर्णिमा को (पूर्णचन्द्र से तात्पर्य है)। उमाहिल = उमंगयुक्त। मरजाद = मर्यादा ॥१८१॥

पाँइ पलोट्यो = पाँव दबाये। ऊतरु = उत्तर। जोयो = चाहा। ऊसर = रेगिस्तान। पखान = पाषाण, पत्थर। बोयो = रोपा। सेवन में = सेवाओ में ॥१८२॥

१—वस्तुत: यह भी अर्थान्तर न्यास ही है।

सुखमण्डित = आनन्दयुक्त। सायर = कवि। जती = यती, सन्यासी ॥१८३॥

चंदन संग कुठारु* सुगंध ह्वै नींब प्रसंग लहै करुआई।
'दास जू' देखो सही सब ठौरनि संगति को गुन दोष न जाई॥१८४

टीका—यहाँ पान के संग वृक्ष को आकाश चढ़िबो आदि विशेष अप्रस्तुत और संगति को गुन दोष न जाइ, यह सामान्य प्रस्तुत को न्यास, यातें अर्थान्तरन्यास अलंकार ॥१८४॥

कवि—निपट निरंजन (विकल्प१)

दंडक—भूख लागे प्यास लागे सीत अरु घाम लागे,
मो पै नाहिं मिटै प्रभु मिटै तो मिटाइए।
चाहै देह दीजे चाहै लीजे देह आपनी को,
'निपट निरंजन' जू अनत न डुलाइए।
रावरो भिखारी ह्वै कै कौन पै हौं माँगों भीख,
भीख यह माँगों मो पै भीख न मँगाइए।
साधुन औ सिद्धन को मत औ महंतन को,
जो लौं जीवै जीव तौ लौं जीविका तो चाहिए॥१८५॥

टीका—इहाँ भूख प्यास, सीत घाम, मोकों दुख देय हैं परन्तु मेरो मिटायो नहीं मिटै है। हे प्रभु तेरो मिटायो मिटै तो मिटाइयो, और जीव जो लौं जीवै तो लौं वाकों जीविका चाहिए क्योंकि बिना जीविका के जीबो असंभव, यह तुल्यबल विरोध यातें विकल्पालंकार ॥१८५॥

कवि—जगजीवन (व्यतिरेक)

दंडक-दूनों भलो सुपथ कुपथ पै न ऊनो भलो,
सूनों भलो घर पै न खल साथ करिए।
अनल की लपट झपट भलो नाहर की,
कपटी के कपट सों दूरिहि तें डरिए।

---

* भिखारीदास ग्रन्थावली में 'कुदारु' पाठ है।

बिथाई = व्यथा को। कुठारु = कुरहाड़ी, फरसा। नींबप्रसङ्ग = नीम के साथ। करुआई = कड़वापन ॥१८४॥

१—समान बलवाली दो वस्तुओं का जहाँ विरोध होता हो वहाँ विकल्प अलंकार होता है।

दूनों = दोनों, दुगुना दूरी का। ऊनो = न्यून, निकट। अनल = अग्नि। नाहर = सिंह। सरबस = सर्वस्व ॥१८६॥

यह 'जगजीवन' परम पुरुषारथ है,
पर घर बैठि पुनि रस सों निकरिए।
हार मान लीजै पै न कीजै बात मूरख सों,
सरबस दीजै परबस पै न परिए ॥१८६॥

टीका—इहाँ सुपथ औ कुपथ दूनो भलो पर ऊनता नहीं भली, सुनो घर भलो पै खल मग नहीं भलो। आग की लपट, नाहर सिंह की झपट भली पर कपटी के कपट सों डरिही ते डरिए। ससार म जीवन को परम पुरुषारथ यह है कि पर घर द्रव्यादि दै रस सों निकारिए, हारि को मान लीजै पर मूरख के सग बात न कीजे, सब दीजे पै परबस न हूजिए। यह उपमानोपमेय को विशेष, यातें व्यतिरेकालकार ॥१८६॥

कवि—बेनी (उत्प्रेक्षा)

दडक—राति रति रग में रसीली अरसीली बैठी,
सेज मैं बिलोकि सोहै आदरस धरि कै।
'बेनी कवि' बेनी तें खुले है कच मेचक ते,
पेंच पेंच छाये मुखमडल बगरि कै।
तिन मे अरूझो सीसफूल सो अतूल छबि,
प्यारी सुरझाइ ली है ऐसो कर करिकै।
बाँधे तम बृदन निरखि दिनकर मानो,
प्रात अरबिदन छोड़ाये बधु लरिकै ॥१८७॥

॥ इति श्री दिग्विजयभूषणनामग्रथे एकालकारचरणात-
वर्णन नाम षष्ठ प्रकाश ॥ ६ ॥

टीका—राति रतिरग पगी अरसाली सेज पै बैठी सौहैं आदरस धरि अपने को बिलोकि रही है। बेनी खुली केश मेचक स्याम पेंच पेंच मुख मडल पै बगरि छाय रह्यो है। तिहमे फूल अरुझ्यो ताहि प्यारी कर कमल सों सरुझाय रही है। इहाँ खुली बेनी, तामे अरुझ्यो फूल, मुखमडल छिप्यो सभाव्यमान पद बस्तु उक्त, ताको तमवृन्द सूर्य्य को बाँध्यो ताहि बधु अरविदन्ह लडिकै छोडा इबो करि उत्प्रेक्षा, उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा अलकार ॥१८७॥

इति श्रीदिग्विजयभूषणटीकायां षष्ठ प्रकाश ॥ ६ ॥

अरसीली = आलसभरी। बेनी = लट। कच = केश। मेचक = श्याम वर्ण के। पेंच पेंच = मोड़ मोड़। बगरिकै = बिखरे हुए। अतूल = अनुपम। तमबृदन = अँधकार के झुण्डों को। दिनकर = सूर्य। लरिकै = लड़कर ॥ १८७ ॥

सप्तमः प्रकाशः

अथ चारों चरन में एक अलंकार बरनन

दो०—चारि चरन में एकई अलंकार जो होइ।
यह उत्तम रचना रचै, कवि प्रतिभा जेहि होइ ॥ १ ॥

टीका—चारों चरन में एकइ अलंकार होवे यह उत्तम काव्य है ॥ १ ॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज' (रूपक)

दंडक—संख दहिनावरत बारन अनेक बाजी,
जेवर जवाहिरात कोश मनि सों भरो।
अमी है अमरबात बैद है धन्वंतर सो,
कर कल्पतरु देत सबै दान औसरो।
रंभा सी रमा सी भौंह धनु चंद्रमा सी कांति,
राजश्री प्रकाश बिद्या कामधेनु सो खरो।
'गोकुल' बखानै महाराज दिग्विजय सिंह,
बिना मद माहुर को पारावार दोसरो ॥ २ ॥

१—आकर ग्रन्थों में कविता के एकही चरण या चारों चरणो में अलंकार होने का कोई पृथक् वैशिष्ट्य नहीं माना गया है। प्रकृत ग्रन्थकार ने इसे उत्तम रचना माना है। इसमें कवि की प्रतिभा एवं बहुज्ञता की झलक अवश्य मिलती है किन्तु अर्थान्तरन्यास, संसृष्टि, संकर आदि कई अलंकारों का समावेश नहीं हो सकता, केवल एक अलंकार का माला गुम्फन रहता है।

दहिनावरत = दक्षिणावर्त्त, ऐसा शंख जिसका घुमाव दक्षिण ओर को हो [यह निधि माना जाता है प्राय कम मिलता है]। बारन = हाथी। बाजी = घोड़े। अमरबात = दृढ़प्रतिज्ञता। बैद = वैद्य। औसरो = अवसरों पर। मद = मद्य। माहुर = विष। पारावार = समुद्र ॥ २ ॥

टीका—इहाँ महिपावर्त्त सत आदि होने से महाराज दिग्विजय सिंह बहादुर को मनमाहुर के विना दूसरो समुद्र, अर्थात् समुद्र सों अभेद वर्णन करिबे के कारण, न्यूनाभेद रूपक अलङ्कार ॥ २ ॥

(पूर्णोपमा)

मत्त०—मत्तगयद लौं पायन मैं गति छीन है लंक मृगाधिप सो री।
दीपसिखा सी लसै तन दीपति वोज उरोज हैं श्रीफल सो री।
माधुरी बैन सुधारस लौं मुख की छबि छाजै छपाकर सो री।
रंग बिलोचन बारिज लौं 'बृज' बानि बधू चित चातक सो री॥३॥

टीका—इहाँ बैन उपमेय, माधुरी साधारण धर्म, सुधारस उपमान, लौं वाचक, चारयों का उपादान, यातें पूर्णोपमा अलंकार। ऐसेइ औरो पदन में जानिये और बानिबधू पद में यह व्यंग्य कि बानि कहे स्वभाव चातक सो अर्थात् चातक एक स्वाती ही सों प्रीति राखै है तैसेई नायिका एक नायकै सों प्रीति राखै है और सों नहीं, याते स्वकीया नायिका ॥ ३ ॥

(परिसंख्या)

दंडक—बागन मैं बैर कूट कहिए कसेरन के,
कानन कितव फबै फूटि काँकरीन मैं।
दीपक मैं नेहहानि दंड जोतसी के जानि,
मान बनिता मैं मद अधता करीन मैं।
कोक मैं बियोग सोक सोहै खाट मैं बिलोकि,
रूखता कठोरताई सूखी लाकरीन मैं।
रावरे के राज मैं बिराजे 'बृज' ऐसी नीति,
भीति है दिवार पेच पारै पागरीन मैं ॥४॥

मत्तगयद = मत्त (झूमता) हुआ हाथी, एक छन्द का नाम । लंक = कटि । मृगाधिप = सिंह । दीपति = कान्ति । वोज = आभा, कान्ति । उरोज = स्तन । श्रीफल = बिल्वफल । छपाकर = चन्द्रमा । बानि = स्वभाव, आदत ॥३॥

बैर = बदरीफल, बैरभाव । कूट = कपट, एक धातु जो कासे में मिलाया जाता है । कसेरा = कास आदि के बर्तन बनाने वाला । कितव = धूर्त धतूरा । फबै = शोभित है । फूटि = द्वेष, फूट (ककड़ी) नाम का फल । काँकरीन = ककड़ियों । नेह = स्नेह प्रेम, तेल । दंड = घड़ी (२४ मिनट का प्रमाण), सजा । करीन = हाथियों । कोक = चकवाक । सोक = चारपाई की दो रस्सियों के बीच का छिद्र । लाकरीन = लकड़ियो । भीति = भय, दीवाल । पेच = प्रपंच, मोड़ । पागरीन = पगड़ियों ॥४॥

टीका—नैर बागन ही मैं और कूट कमेर ही मैं, कितव धतूर कानन बनै मैं, फूटि काकरी कहै ककरिका फलै मैं, रन्ध्र हानि नायकै मैं, वियोग काक कहै चकई चकवान मैं, दंड ज्योतिषिन के पचांगै मैं, मान वनिता रागिण मैं, मदांधता हाथीन मैं, शोक खाट कहै पर्यंक मैं, रूक्षता और कठोरताई सूखी लाकरी मैं, है महाराज रावरे के राज मैं ऐसो नीति राज है कि भीत दीवार ही मैं लच्छ होय है, पच पाग ही मैं परै है। एक स्थान मैं वस्तु को निषेध करि एक स्थान मैं नियमन, यातें परिसंख्या अलंकार ॥४॥

(स्मृतिमान्)

दंडक—देखे जगजीवन न भावै जग जीवन है,
लखि जलजात अँखियाँ सों जल जात है।
गति मति कुंद होत फूली कुन्दली पेखि,
सरद सुधाकरै सरद करै गात है।
दर को दरसि 'बृज' दर न परत कल,
कोक लखि का कहै जो कोक अवदात है।
केहरी करी को हेरि के हरी है सुधि बुधि,
सोन को निहार जैसे सोन न कहै बात है ॥५॥

टीका—देखे जग जीवन कहै जगत के जीवन कों जग मैं जीवन नहीं भावै है, वाके देखे सों नायक को स्मरण होय है यातें स्मृतिमान् अलंकार। ऐसेइ चारयो पदन में जानिये ॥५॥

(मुद्रा)

दंडक—चलै ग्वालि यार पास नेह नैपाल करि,
बना रस आज मेर करै औधवार है।
कही हो दिली की बात कान्ह पूर प्रेम कीन्हे,
मग हरि हेरे कर नाटक बहार है।

जगजीवन = जगत को जिलाने वाला, मेघ। जलजात = कमल। कुंद = कुंठित, एकफूल। सरद सुधाकर = शरत्कालीन चन्द्रमा। सरद = ठंढा। दर = घर, निवास स्थान। दरसि = देखकर। दर = थोड़ा भी। कोक = चन्द्रमा। अवदात = दीर्घ। केहरि = सिंह। करी = हाथी। सोन = सुवर्ण ॥५॥

१—जहाँ पद्य में आए हुए किसी पद से किसी विशेष अर्थ की सूचना मिलती हो वहाँ मुद्रा अलंकार होता है। विशेष टीका में स्पष्ट है। नाटको

पटना पहिन चीन्ह चे तिया चबाई 'बृज',
निशि गुजरात क. मन मे बिचार है।
बेश वैश वारे अस नीके नदलाल प्यारे,
मोहबे न हूजे कीजै बेगिहो बिहार है ॥ ६ ॥

टीका—इहाँ दूता नायक के मिलिबे के हेत (अर्थ) नगर के नाम वर्णन में नायिका सों कहै है। ग्वालियार नगर ओर हे ग्वालि यार मित्र ता के पास निकट चलु। नयपाल सहर ओर नेह स्नेह नीति पालिकै, बनारस वाराणसी और रस बनो है। आजमेर नगर और आज मेर (मेल) करै नायक सों। औध अयोध्यापुरी और औधवार दिन कहैं मिलिबे के अथ निश्चित दिन है। इसी भाँति और पदन से जानिए। नगरन को नाम और अपने दूतपन सूच्य अर्थ को रुचना, यात मुद्रा अलकार। ग्वालियर, नयपाल, बनारस, अजमेर, औध, दिली, का हपूर, मगहरि, करनाटक, पटना, चीन्ह, बेतिया, गुजरात, बैसवारा, असनी, महोबा, बिहार इतने पदन मे मुद्रालकार ॥ ६ ॥

(श्लेष[1])

जथा—मैना कछु बोले तोत प्रीति पारावत पेखि,
झगर बगेरी स्यामा बेमरि है जाने मै।
लाल जो हरेवा बडे बाज आए तीतर सो,
सारस बिहाय 'बृज' मुरगहे साने मैं।

के प्रारम्भ में सूत्रधार प्रयुक्त वचनों में प्राय यह अलकार पाया जाता है, क्योंकि वह कुछ विशेष पदों के द्वारा भावी अर्थ को सूचित करता है। जैसे—

उदयनवेन्दुसवर्णावासवदत्ताबलौ बलस्य त्वाम्।
पद्मावतीपूर्णौ वसन्तकम्रौ भुजो पाताम् ॥

(स्वप्नवासवदत्तम्)

इस पद में उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती और वसन्तक का नाम देकर नाटक की घटना की सूचना दे दी गयी है।

दिली = हृदय की। कान्ह = नायक। पूर = पूर्ण। मग = रास्ता। नाटक = दृश्य, खेल। पट = वस्त्र। चीन्ह = चीना, रेशम। तिया = स्त्रियाँ। चबाई = निन्दक। गुजरात = बीत रही है। बेस = अवस्था। मोहबे = अज्ञ ॥

१—इन दोनों (७, ८) पदों में शुद्ध श्लेष नहीं अपितु श्लेषानुप्राणित मुद्रालङ्कार ही है। पूर्व पद में पक्षियों और द्वितीय पद में नक्षत्रों के नामों द्वारा अभिप्रेत अर्थ को सूचित किया गया है।

काक है बटेर मुनि नर बतकहा ऊर,
पिकहिं पियार बानी हारि लहै ठाने मैं।
बरही अगिनि चूनै चिनगी चकोर चख,
तूती मिलै आजु बृजराज चिराखाने मैं ॥ ७ ॥

टीका—इहाँ तूती की बचन गाविका ना, तूती कहै तू प्यारी नायक की, आजु बृजराज श्रीकृष्णचन्द्र सों चिरागखान में मिल, यह मक्रर दिखायो। मैं तोसों कछू नहीं बोले हैं। तेरी प्रीति पारावत कबूतर कैसी लाल, झगरा करि कर, स्यामा राधे के स्वार्थ में जानती हौं। लाल श्रीकृष्णचन्द्र बड हरेवा कहैं चतुर हैं। हारि मान्यो तीतर सो सारस रस बिहार मानें मुर कहै मुखि के गहे। कथा कहै अब तोसों टेरि के, थाको टहो बतकहो मुनि पिक कहि स्यामा पियार कहि प्यारी बानी हारि लह्यो, बरही मयूर पिच्छ अगिन चुनै अर्थात् अग्नि और चूना कैसो लागै है। चिनगी चकोर नत्र चूने है अर्थात् आँखो से चिनगारी उडै है, यासों हे राधे चिरागखान में चिरिया रहै हैं तिनको नाम भी इन वाक्यों में निवेसित कियो गयो है, क्योंकि जिससे बहिरंग सखी और दुर्जन कों आभ्यन्तर की बात कि यह अभिसार करावै है न जानि परै। सूच्यार्थ नायक के निकट प्यारी संघट्टन कों सूचन करै है, यातें मुद्रा अलंकार। इन पदों में मुद्रा यथा। मैना, तोता, पारावत कबूतर, स्यामा, लाल, हरेवा, बाज, तीतर, सारस, मुरग, काक, बटेर, बतक, पिक, हारिल, बरही मयूर, चकोर, तूती इत्यादि ॥ ७ ॥

अश्वनी को घूँघट है रोहिनी रमन मुख,
नैन मृगशिरा सो है हस्त कैसी चाल है।
श्रौन से बिशाखा सुनै कहाँ मैं पुनरबसु,
उबि अस लेखै नासा कीरतिका भाल है।
रेवती रमन बन्धु ताहि अनुराधा चित्र,
पूरवानुराग स्वाती चातक सो ख्याल है।
भाव भरनी है रस मूल आरद्रत्रे 'बृज',
आभा अभिजितनी है बरनो बिशाल है ॥ ८ ॥

टीका—अश्व कहै घोडा लक्षणा करि ताके गात कैसो घूँघट है। रोहिनी रमन चन्द्रमा कैसो मुख, नैन मृग की भाँति, सिरा श्रेष्ठ गाढ़ है, हस्त अर्थात् करिनी कैसी गति है, बिसाखा सखी कानन सों सुनै। मैं पुनर कहै फिर बस छबि के करो हौं। एहि भाँति देखै, नासा कीर शुकटोर के सदृश तो का

नायिका की भा शोभा लहै है। रेवतीरमन बलभद्र को लघु भ्राता श्री कृष्नचन्द्र जा को चित्र म अनुराधा कहि साधि रही है, पूर्व अनुराग सों जैसे स्वाती कों चातक चाहै है वैसे ही लाल जी को प्रेमवश चाहै। भाव भरनी अर्थात् हाव भाव भरा रस की मूल आर (यार) बिहारी जी को दर्सि द्रवै है। आभा शोभा सों सारी ब्रज वनिताऩ का जाते है। जाकी विशाल नैन बडी बडी बरुना पलक है। इहाँ नायिका का वर्णन रूच्याथ, ताको नक्षत्र'ह के नाम से सूचन किया, यातें मुद्रा अलकार। नक्षत्र नाम गत मुद्रा यथा—अश्विनी, रोहिणी, मृगसिरा, हस्त, श्रवण, विशाखा, पुनर्वसु, अश्लेषा, कृत्तिका, रेवती, अनुराधा, चित्रा, पूर्वा तान्यो, स्वाती, भरणी, मूल, आर्द्रा, अभिजित, रतन पदन में जानो। इति ॥८॥

(सदेह)

माधवी–बक पाँति की मोतिन माल लसे तड़पै तड़िता किधौं पीत पटा है।
धनु केधौं पुरदर की अधराधर बाँसुरी जे कुल कीन्ही कटा है॥
'बृज' व्यौम धुँवारे की कारे महा शिर शोभित सुदर बार अटा है।
दुख सों न हमै कछु जानि परै घनस्याम किधो यह स्यामघटा है।९।

टीका—इहाँ श्री कृष्णचन्द्र के बर्णन में नायिका पूर्वानुराग सों वियोग बश प्रलाप करै है। बक पाँति है कि यह मोती की माल शोभित होय है। इन्द्रधनु है केधों अधरान धरी बाँसुरी है, जिसने कुल कानि को कटा करि जीति लियो। आकाश म मेघ है किधौं शिर शोभित बार है किधौं यह स्यामघटा है। सदिग्ध ज्ञान होयवे के कारन सदेहालकार॥ ९॥

किरीट—बारन मुक्त की व्यौम सितारन मगल की 'बृज' माँग मै सेंदुर।
बेसरि बेस की कै कबि की छबि केसरि आड की है सुर के गुर॥
कान के बीर हलै की चलै रथ द्वै द्रिग की मृग जोरे जुरे गुर।
चाँदनी चद्र की चद्रमुखी मुख जानि परै न हमै दुख सो फुर॥१०॥

टीका—विरहासक्त नायक का वचन, यह केश को मुक्ता है कि आकाश के नक्षत्रगण हैं, मगल होय की माँग म सिंदूर, बेसरि है का सुक्र की छबि, केशरि की आड है का सुरगुरु बृहस्पति, कान को बीर हलैहै का चन्द्रमा को

पुरन्दर = इन्द्र। कटा = नाश। धुँआरे = धुधले। अटा = शोभा। स्याम घटा = काला मेघसमूह॥ ९॥

सितारन = तारों। बेसरि = नाक में पहिना हुआ मोती। बेस = सुन्दर। कबि = शुक्र। सुर के गुर = देवो के गुरु, बृहस्पति। बीर = कान का एक आभूषण। फुर = स्फुट, प्रत्यक्ष॥१०॥

रथ है, द्वै दृग नेत्र हैं कि मृग युक्त जुग है, चन्द्रमा की चाँदनी का चन्द्रमुखी का मुख है, तुम सों हमें यथार्थ नहीं जानि परे है। इहाँ सन्देह निवृत्त नहीं है, याते सन्देहालङ्कार ॥ १० ॥

(व्यतिरेक)

माधवी—वह जाहि लगै अँग घालत है यह सालत चित्त जोई लगलावै।
वह घाय अनी की लखाय परै यह घाय घनी हूँ नहीं दरसावै॥
वह जात मिथा उपचार किए यह बेदन को कोउ भेद न पावै।
वहि बानते आनई आन करै यह नैन की बान बिना धनु धावै॥११॥

टीका—वह जाके लागै है अंग ही को घाले यह लागे सों चित्त में सालै है। वह घाय अनी की देखि परै, यह कैसहू नहीं दरसात है। वह उपचारि किए मिटै है, याको कोऊ भेद नहीं पावै है। वह बान धनुष के आश्रय ह्वै चले है, यह बिना धनुष के धावै है। इहाँ साधारन बान सों नेन बान की विशेषता देखायी, यातें व्यतिरेक अलङ्कार ॥ ११ ॥

(समस्तविषयी रूपक)

दण्डक—द्रिग अरबिंद पे मलिंद ऐसो भयो रिंद,
चारु मुख चन्द पे चकोर लौं लुभान्यो है।
दंत मुकुतान पै मराल सो निहाल 'बृज',
बिंब फल बोठ कीर कैसे ललचान्यौ है।
ठोढ़ी गाढ़ पानिप विलोकि भई मीन दीन,
कंचन कलश कुच रंक लौं बिकान्यौ है।
नाभी नद रोम लहरी मैं हेरि हारे हम,
मेरो मन तेरे हीरा हार मैं हिरान्यौ है॥१२॥

टीका—नायक की उक्ति नायिका सों, इहाँ दृग अरविन्द कमल होय। द्रिग उपमेय, अरविंद उपमान सों सम अभेद वर्णन। मुख और चन्द्र को, दशन और मुक्ता को, ओठ और बिंब फल को, ठोढ़ी की गाहराई शोभा और पानिप को, कुच और कंचन कलश को, नाभी और नद को, रोमावली और लहरी को,

---

घालत = घायल करता है। सालत = कष्ट देता है। घाय = घाव। अनी की = सेना की, छुरी। बिथा = व्यथा कष्ट। बेदन = वेदना ॥११॥

मलिंद = भौंरा। रिंद = उद्दण्ड। मराल = हंस। बोठ = ओठ। कीर = सुग्गा। पानिप = शोभा। रंकलौं = दरिद्र की भाँति। नद = बड़ी नदी ॥१२॥

हार और हीरा की पाँती को सम अभेद करि वर्णन, यात सम अभेद रूपक अलंकार। नायक आसक्तता देखाय कै नायिका को अपने अभिमुख कर है ॥ १२ ॥

(धर्मलुप्ता[1]-उपमा)

सवैया—जब आनन तें कढ़ै बान से बेन सुने हित हेत निदान करै।
'बृज' रोकिबे कारन को करतार केवार दुहूँ अधरान करै।
रद बत्तिस के रखवार बली मुख माठ पनाह को टान करै।
चित राखे जबान को ध्यान में नित्त न बात कमान समान करै ॥१३॥

टीका—नायक की उक्ति सहृदय सों, कि जब आनन मुख सों बातें काढै है बान के समान सुने सों हित हेतु विनाश मिट जाय है, तेहि बान के रोकिबे हेतु ब्रह्मा ने अधर को केवार बनाया, दशन बत्तिस को मुख द्वार की रक्षा के अर्थ कियो। इहाँ बात उपमेय, कमान उपमान, समान वाचक, धर्म नहीं, यातें धर्मलुप्ता अलंकार ॥१३॥

(समस्तविषयी रूपक)

दण्डक—जंघ कदली को खंभ त्रिबली गँभीर कुंड,
हिए हार चौकी लौं चउक पूरि धारी है।
कंचन कलश कुच पानिप भरे हैं अंग,
अधर अरुन मुख पल्लव पधारी है।
लाज बलिदान दिये चितवनि मंत्र ठए,
देह दुति दीपक अखण्ड जोति बारी है।
धनी मन हरन अकरषन नेम करि,
सीकरनवारी सो बसीकरनवारी है ॥१४॥

१—उपमान, उपमेय, धर्म और वाचक ये चारो अंग जहाँ हों वहाँ पूर्णोपमा होती है। यदि इनमें कोई भी एक या इससे अधिक अंग का लोप हो तो लुप्तोपमा कही जाती है। यह ८ प्रकार की होती है—१ वाचकलुप्ता, २ धर्मलुप्ता, ३ धर्मवाचकलुप्ता, ४ वाचकोपमेयलुप्ता, ५ उपमानलुप्ता, ६ वाचकोपमानलुप्ता, ७ धर्मोपमानलुप्ता, ८ धर्मोपमानवाचकलुप्ता।

करतार = विधाता, ईश्वर। केवार = द्वार। रद = दाँत। रखवार = रक्षक। जबान = वाणी। कमान = धनुष ॥१३॥

त्रिबली = उदर में पड़ने वाली तीन रेखाएँ। पानिप = दीप्ति, शोभा। चितवनि = दृष्टि, कटाक्ष। अकरषन = आकर्षण। नेम = नियम। सीकरनवारी = सी सी शब्द करने वाली ॥१४॥

टीका—नायिका के लावण्य को वर्णन। नासा जनों कमला को धाम, त्रिवली और गंभीर कुंड को मर्म अमर, हृदय में हार को चाँदनी को चारु पूरिबो, शोभा भरे कुच को और कंचन कलश को, अरुन अधर ओठ और पल्लव को, लाज को परित्याग और बोलनि को, चितवनि और मंत्र टोनिबे को, देह की दुति को प्रकाश अखंड दीप ज्योति जारिबे को, घना नायक के मन के हरिबे अर्थ आकर्षन को नियम करि प्यारी को सामा करिबो, वशीकरनकारी है, इन सब पदन में उपमेय को उपमान के साथ सम अभेद करि वर्णन, यातें समस्त विषयी रूपक, समाभेद अलंकार स्पष्ट है। और नायिका के नायक के मन बस्य करिबे के अर्थ वशीकरन प्रयोग को और वाके लावण्य को रूपक करि वर्णन कियो ॥१४॥

दो०—कबित भरे में होय जो, अलंकार एक रूप।
त्यौं कबित्त प्राचीन के, लिखे बुद्धि अनुरूप ॥१५॥

टीका—कवित्त भरे में एक ही अलंकार प्राचीन कविन लिख्यो, तिन को उदाहरण इस ग्रंथ में कवि लिखे है ॥१५॥

अथ प्राचीन कविन के कवित्त

कवि—देव (समस्तविषयी रूपक)

दंडक—बरुनी बघम्बर मैं गूदरी पलक दोऊ,
कोये राते बसन भिगो हैं भेष रखियाँ।
बूड़ी जल ही में दिन जामिनिहूँ जागै तौ हैं,
धूम शिर छायो बिरहानल बिलखियाँ।
आँसू जो फटिक माल लाल डोर सेल्ही सजि
भई हैं अकेली तजि चेली संग सखियाँ।
दीजिए दरस 'देव' कीजिए सँजोग आजु,
जोगिन ह्वै बैठी हैं वियोगिनि की अँखियाँ ॥१६॥

टीका—दूती नायक सों नायिका को विरह निवेदन करै है, हे लाल जाओ अब शीघ्र दर्शन दीजिये क्योंकि उस वियोगिनी की आँखें तुम्हारे दर्शन के बिना जोगिनी ह्वै बिराजे हैं। बरुनी को बघम्बर ताके गूदरी दोऊ पलक तैं कोये लाले बसन भये तुम्हारे अब राति दिन जल ही में बूड़ी रहैं अर्थात् आँसू

बरुनी = पलकों के आगे के बाल, बरौनी। गूदरी = गुदड़ी। कोये = डोरे, रेखायें। राते = लाल। जामिनी = रात्रि। बिलखियाँ = रुदन, विलाप। फटिक = स्फटिक। सेल्ही = बद्धी। चेली = सेविकायें ॥१६॥

को पचाइ बह्यो जाय है, जोगी लोग जल शयन लेय हैं यह आँखि भी दिनों राति आँसू हा म बूड़ी रहै है, यह व्यंग्य। औ जागै अर्थात् नींद नहीं परे है विरहानल का धूम भाई, शिर म छायो रहै टकटकी लगी है। आँखु की स्फटिक मा॰, लाल डोरे जो नैनन मे मिलसै हैं वाही को सेल्ही कियो, चेली सलोन का सग छोडि अकेला ही रहै है। इहाँ बरुनी को बघबर आदि को धम देखाय निरूपन किया, यात समस्त विषयी रूपक अलंकार ॥ १६ ॥

त्रिबली तरंगिनी निकट नाभी नद तट,
रोमराजी बनघासि सुकुत अन्हात है।
नेह नगरी मैं गुन गेह उर ऊँची पौरि,
'देव' कुच कंचन के कलश लखात हैं।
लोचन दलाल ललचावत बटोहिन को,
हाल चलि देखो लाल मोल न लहात है।
जोबन बजार बैठो जौहिरी मदन सब,
लोगन के हीरा वा के हाथ में बिकात हैं ॥१७॥

टीका—इहाँ त्रिबली आदि को तरंगिनी आदि करि बर्णन, याते समस्त विषयी रूपक अलंकार। दूती नायिका के सौ दर्य को बर्णन करि नायक के मन में रति उपजावै है, यह व्यंग्य ॥ १७ ॥

कवि—रतन (समस्तविषयीरूपक)

दंडक—सुषमा के घर पूरे पानिप के सरवर,
आसन अनूप हर नूप बिसराम के।
चातुरी के चर कला केलिके अपार हाव,
भाव के भँडार पाय इंदीबर दाम के।
रति के रतन जात मोहन के मूल माल,
राजत रसाल हैं बिशाल नैन बाम के।
मीन के महीपति हैं खंजन प्रभा के पति,
मृग के सलामति सलावति हैं काम के ॥१८॥

टीका—इहाँ नायिका को सुषमा शोभा को गृह करि बर्णन कियो, यातें समस्त विषयी रूपक अलंकार, ऐसे ही आगे पदन में जानिए ॥ १८ ॥

तरंगिनी = नदी। बनघासि = पानी में उगने वाली घास। पौरि = द्वार। बटोहिन = यात्रियों को। लहात = लगता है ॥ १७ ॥

सुषमा = अत्यन्त शोभा। पानिप = शोभा। पाय = पैर। रसाल = रसभरे। बाम = स्त्री। सलामति = रक्षक ॥ १८ ॥

कवि—धुरंधर (रूपक)

मदन महीप के बिचच्छन नजरिशान
पीछे लगे आवत छपद कर सोर हैं।
'सुकवि धुरंधर' भनत अरविन्द वन,
चौकी भरै चंपक चमेली चहूँ ओर हैं।
सबही के स्वारथ के सकल सुगाध सिय-
राई सरवस के हरैया बरजोर हैं।
कहाँ के समीर ये लुकञ्जन लगाए चले
जात मलयाचल तें चंदन के चोर हैं ॥ १९ ॥

टीका—इहाँ शीतल मन्द सुगन्ध वायु को अदर्शनाञ्जन लगाये मलयाचल को चोर करि बरनन किया, यातें रूपक अलंकार ॥ १९ ॥

कवि—आनंद घन (रूपक)

सवैया–फैलि परी चर अम्बर पूरि मरीचिन बीचिन संग हिलोरति।
भौंर भरी उफनाति खरी सु उपाव के ताव तरेरनि तोरति॥
क्यों बचिए भजिहूँ 'घन आनँद' बाढि रहे घर पैठ ढँढोरति।
जोन्ह प्रलै के पयोनिधि लौं बढि बोरनि आज बियोगिनि बोरति ॥२०॥

टीका—दूती को बचन, नायक सों नायिका की विरह निवेदन करै है। वियोगिनी को जो है प्रलय को पयोनिधि है सम्पूर्ण व्रज कों बोरै है, इस हेतु हे श्री कृष्णचन्द्र लाल वेगि चलिए। इहाँ जो है को प्रलय कालक समुद्र को वर्णन किया, यातें रूपक अलकार ॥ २० ॥

कवि—प्रेमसखी (रूपक)

सवैया–प्रेम की डोरी मरोरनि नैन की चाल की चारो सुधा सुखकारी।
गूढ अथाह बिदेह पुरी जहँ खेलन को चले ओध बिहारी॥

बिचच्छन = अद्भुत, विचक्षण। छपद = षटपद, भौंरे। सियराइ = ठंढी पड़ गयी, मन्द हो गयी। समीर = वायु। लुकजन = अदृश्याञ्जन। (ऐसा अजन जिसे आँखों में लगाने पर लगानेवाला सबको देखता है पर उसे कोई नहीं देखता) ॥ १९ ॥

अम्बर पूरि = आकाश को पूरा भर कर। बीचिन = तरङ्गो के। हिलोरति = लहराती है। भौंर = जल का आवर्त, भँवर। उफनाति = उबाल सी आती है। उपाव = उपाय, प्रयत्न। ताव = गर्व। तरेरनि = क्रोधपूर्ण दृष्टि से। ढँढोरति = ढूँढ़ती है। जोन्ह = चन्द्रिका। बोरति = डुबाती है ॥२०॥

साज समाज सबै कुल की जल त्यागि सबै प्रभु ऊपर वारी।
वसी भई छवि गामर की जिन मीन सों काढ़ि कै बाहर डारी ॥२१॥

टीका—प्रेम जो संपूर्ण जन में रामचन्द्र की छवि निरखिबे हेतु वर्त्तमान है, ताकी डोरी नेत्र को इधर उधर फेरबो मरोरनि, और चाल गति की चारो, अमृत के तुल्य सुख देन हारी, गूढ़ गुप्त अथाह अगाध जनक की पुरी मिथिला जहाँ खेलिबे के अर्थ अवध विहारी कहैं जो अवध के नर नारी को सुखद प्राप्त भये। साज समाज संपूर्ण अपने कुल को जल अर्थात् कुलकानि ताकों त्यागि सब कोई रामचन्द्र के ऊपर वारिदियो। सामरे गात की छवि वंशी कहै बडिश लोक में प्रसिद्ध मीन के मारिवे की काँटाभई, जिसने कुलकानि जल सों काढ़ि ऊपर डारि दियो अर्थात् सबकी कुल कानि छोड़ाय दियो। इहाँ प्रेम आदि को डोरी प्रभृति करि वर्णन किया, याते समस्तविषयी रूपक अलङ्कार॥ २१॥

कवि—तोषनिधि (प्रतीप)

दंडक—देखे अरुनाई करुनाई लगै कंजन को,
मृगन गुमान तजि लाज गहिबे परी।
'तोषनिधि' कहै अलि छौननहूँ दीनताई,
मीनन अधीन ह्वै के हारि सहिबे परी।
चरचा चकोरन की कोरि डारे कोरन सों,
कविन कवीशता गरीबी गहिबे परी।
आई बीर चंचलाई राधिका के नैनन में,
खासे खँजरीटन खराबी सहिबे परी॥२२॥

टीका—सखी को उक्ति सखी सों। एरी वीर राधा के नेत्र में चंचलाई आवत ही इन सम्पूर्ण उपमानों की व्यथता लखाय परै है। राधा के नेत्र की अरुनाई देखने से कंजन को करुनाई लगै है कि नहि अरुणता के आगे इन बिचारों की कहा लालिमा की शोभा, और मृगन कों अपने नयन की दीर्घता को गर्व तजि लज्जा स्वीकार करिबो परयो, अलिछौनन को दीनताई और मीनन कों आधीन ह्वै हारि सहिबो, चकोरन की चर्चाई नहीं, कविन की कवीशता को

मरोरनि = घुमाने से। वसी = बडिस, मछली मारने का काँटा। अरुनाई = लालिमा। करुनाई = व्याकुलता। अलि छौनन = भौंरो के बच्चे। कोरि डारे = खोद डाली, नष्ट कर दी। कोरन सों = कनखियों से। चंचलाई = चपलता। खंजरीटन = खंजन पक्षियों को ॥२१॥

को अभिमान छोडि गरीबी गहिबे परी अर्थात् वर्णन करिबे को गर्व ध्वस्त ह्वे गयो, खंजरीटन की खराबी अर्थात् सर्वत्र तिरस्कार सहिबे परी। इहाँ उपमेय राधिका के नेत्र के आगे इन सब उपमानों को कैमर्थ्यता देखायो, यातें पंचम प्रतीप अलंकार ॥२२॥

कवि—मुकुंद (सन्देह)

सवैया—पिय दृग्गन केधौं रमा उझकी मुख कुंकुम मंडित राजत है।
निशि ती उर को अनुराग सुहाग छपा बधू को किधौं भ्राजत है॥
किधौं पूरन चंद सु छन्द उदोत 'मुकुंद' सब मन मानत है॥
किधौं प्राची दिशा नव बाल के भाल गुलाल को बिंदु बिराजत है॥२३॥

टीका—चंद्रोदय वर्णन। इहाँ प्राची दिशागत चंद्रमा को कुंकुम भूषित रमाको आनन, छपावधू को अनुराग सुहाग, पूर्ण चंद्रोदय की छबि, प्राची दिशा नायिका नवोढा के भाल में गुलाल को बिन्दु आदि को संदेह करै है, यातें संदेहालंकार ॥२३॥

कवि—सुखदेव मिश्र (रूपक)

दंडक—मीन की बिछुरता कठोरताई कच्छप की,
हिए घाय करिबे को कोल तें उदार है।
बिरह बिदारिबे को बली नरसिंह जू सों,
बामन सो छली बलि दोऊ अनुहार है।
द्विज सों अजीत बलवीर बलदेव ही सों,
राम सों दयाल 'सुखदेव' या बिचार है।
मौनता मैं बौध कामकला मैं कलकी चाल,
प्यारी के उरोज बोज दसौ अवतार है॥२४॥

टीका—नायक की उक्ति नायिका सो। ए प्यारी के उरोज गुरु बिष्णु के दशौं अवतार हैं, अर्थात् विष्णु सकल जग पालन करै हैं तैसाइ ए तोल फल सों भी अति गुरु मेरे मनोभिलाष रूप जगत को पालन करै हैं। बिछुरनि में मीन रूप, कठोरताइ में कच्छप रूप, हृदय घाय करिबे में बाराह रूप, बिरह बिदारण करिबे में नृसिंह रूप, छलिबे में बामन रूप, नहीं पराजित होयबे में

उझकी = उछल आयी। ती उर = स्त्री हृदय। छपा बधू = रात्रि रूप नायिका। भ्राजत है = शोभित होती है। सुछन्द = स्वच्छन्द। उदोत = प्रकाश, उद्योत॥२३॥
बिछुरता = चपलता। घाय = घाव। कोल = बाराह, सूकर। बलि = प्रिय।

परशुराम रूप, बल में बलभद्र रूप, दयालुता में रामचन्द्र रूप, मौनता में बौद्ध रूप, कामकला म कल्की रूप। इहाँ प्यारी के उरोज को विष्नु के दशों अवतार सों अभेद करि वर्णन कियो, यात सम अभेद रूपक अलकार। यद्यपि इहाँ एक के विषय भेद वर्णन करिबे के कारण दूसरा भेद उल्लेख को भी प्रतीत होय है परन्तु 'प्यारी के उरोज बोज दशों अवतार हैं' यह जो रूपक निरूपित पद है ताही को वे पोषक है, यातें उक्त दोष को अवसर नहीं है ॥२४॥

कवि—पूषी (उन्मीलित[1])

दडक—चौंथते चकोर चहूँ वोर जानि चद मुख,
जो न होते अधर दशन दुति दंपा के।
लील जाते बरही बिलोकि बेनी ब्याल गुन,
गुही पै न होती जो कुसुम सर पपा के।
कहै 'कवि पूषी' दृग भौंहैं न धनुष होते,
कीर कैसे छोड़ते अधर बिब झपा के।
दाख कैसे झौंरा झलकत जोति जोबन की,
भौंर चाटि जाते जो न होते रग चपा के ॥२५॥

टीका—नायिका के सौ दर्य्य को बर्णन। नायक अपने सहृदय सों अति लोनी काति भरी रूपवती बनिता को चित्रितहै बर्णन करै है। चकोर गण मुख कों चन्द्रमा ठहराय चौंथते अर्थात् बारबार चूस लेते, यदि अधर दशनन की द्युति सों न दमकतो। और बरही मयूर बेनी ब्याल नागिनी, यदि पपासर के कुसुम सों न गुही होती। इहाँ पपासर के कुसुम को अति स्वच्छता के कारण

अलुहार = समान। द्विज = द्विज, ब्राह्मण। मोनता = चुप्पी, शान्ति ॥२४॥

१—उन्मीलित अलकार वहाँ होता है जहाँ किसी युक्ति द्वारा कहे गये सादृश्य से उत्पन्न भ्रम मिटकर वास्तविकता प्रकट हो जाय, जैसे उक्त पद्य में नायिका के मुख को चन्द्रमा समझ कर चकोर गण चूस जाते, यदि उसके दाँतों की चमक से ओठ न चमके होते—यह कह कर मुख का चन्द्रमा से सादृश्य चकोरों के चूसने रूप युक्ति से कहा गया और दन्तकान्ति द्वारा ओठों की चमक सादृश्य का भ्रम मिटा कर वास्तविकता प्रकट कर देती है।

[वस्तुत यह शुद्ध उन्मीलित का उदाहरण नहीं है प्रत्युत रूपक और सभावना से अनुप्राणित उन्मीलितालकार है]

चौंथते = चूस लेते। चहूँवोर = चारों ओर। दपा = बिजली। बरही =

कह्यो है और सर को स्वच्छगुन है। पूर्वा कवि की उक्ति, यदि दृग भौंहैं धनुष न होते तो कीर शुक अधर जो बिम्बफल के झपा के सदृश ताको कैसे छाडते। दाख के झौरा के सदृश जोबन की जाति झलकै है ताको भौर चाटि जाते यदि चम्पाको रंग न होतो। इहाँ चन्द्रमुख रूपक, अधर दशन दुति को दमकिबो धर्म, अधिक रूपक, और जो ऐसो न होतो तो ऐसो होतो, इस अर्थ सें भूत संभावना अलंकार। और चन्द्रमा सों और चन्द्रमुख सों अधर दशन दुति को दमकिबो धर्म भेद स्फूर्तिकारक है, यातें उन्मीलित अलंकार भी होय है। इसी प्रकार चाम्पा पदन में जानिए ॥२५॥

कवि—कृष्णसिंह (रूपक)

दंडक—कानन समीर सेवैं भृकुटी अपांग अंग,
आसन अजिन मृग अंजन अनाधा के।
अरुन बिभोगी कोर बिशद बिभूति अंग,
त्यागैं नींद विषय निमेष बिषबाधा के॥
'कृष्णसिंह' काम कला त्रिबिध कटाच्छ ध्यान,
धारना समाधि मनमथसिद्धि साधाके।
प्रेमके प्रयोगी सुख संपति सँजोगी अति,
स्याम के वियोगी भए जोगी नैन राधाके ॥२६॥

टीका—इहाँ कृष्ण को वियोग पाय प्रेम के प्रयोग के करनेवाले राधा जी को नयन जोगी को रूप धारन किया है। भृकुटी कानन को सेवै है योगी लोग कानन बन सेवै है, इहाँ राधा जी के नेत्र कानन कों सेवै है अर्थात् कृष्णचन्द्र के देखिबे के कारन कानन सेवै कहै बन की ओर लगे हैं। और समीर कहै बायु को भी योगी लोग पान करै है। अंगन को आसन अजिन चर्म मृग को, अंजन अनाधा कहै नहीं देय है अर्थात् योगी भूषन नहीं करै है। वियोग सों देह स्वेत भयो सोइ बिभूति अंग में, निद्रा नहीं परै है। विषय त्याग काम कलादि को ध्यान धारना समाधि मन्मथ काम की सिद्धि साधना के निमित्त। प्रेम के प्रयोग करनहारे सुख संपति के संयोगी कृष्णचन्द्र के बियोग सों राधा के नेत्र योगी भए। इहाँ राधा के नेत्र और योगी को रूपक यातें समाभेद रूपक अलंकार ॥२६॥

मोर। बेनी = लट। व्यालगुन = सर्प की तरह। झपा = कूदना, उड़कर आना। झौरा = गुच्छा ॥२५॥

कानन = बनों की, कानों की। समीर = वायु। अपाङ्ग = नेत्रकोण।

कवि—हरि (रूपक)

दंडक— कैला कालकूटके तचाई तेज बाड़व की,
सेस फूक धमक प्रचंड ताव चढी है।
आई आसमान ते की आसमान सान पाय,
कल्ह बुझाय पौन पैनी धार कढी है।
'हरि' हर हरि के त्रिशूल चक्र पास बैठि,
बैरिन के बँधिबे को अच्छ सिच्छ पढी है।
अबदुल वाहिद के नवीन खान तेरी तेग,
बज्र के हथौरा काल कारीगर गढी है ॥२७॥

टीका—खड्ग वर्णन। कैसा तरवारि है कि कालकूट हालाहल के कैला और बाडवानल के तेज सों तचाइ गइ है और सेस के फूक के धमकनि सों अति प्रचंड ताव यामें चढा है। *इंद्र महादेव विस्नु के वज्र त्रिशूल चक्र के निकट बैठि बैरिन के मारिबे को शिक्षा आछी भाँति पढा है। हे अबदुल वाहिद के नवाखाँ तुम्हारी तेग बज्र के हथौरा सों काल कारीगर की गढी है। इहाँ खड्गवर्णन में कालकूट को कैला आदि करि बर्णन किया, याते समस्त विषयी रूपक अलंकार ॥२७॥

कवि—आलम (संदेह)

दंडक—कैधौं मोर सोर तजि गए री अनत भागि,
कैधौं उत दादुरन बोलत हैं ए दई।
कैधौं पिक चातक महीप काहू डारे मारि,
कैधौं बकपाँति उत अंतगति ह्वै गई।

अजिन = चर्म। निमेष = पलक गिरना। मनमथसिद्धि = कामदेव की प्राप्ति। साधा = साधना। प्रयोगी = प्रयोग करने वाले ॥२६॥

कैला = कोयला। कालकूट = विष। तचाई = तपाई, गर्म का। ताव = ताप। सान = एक पत्थर जिसमें अस्त्र तीक्ष्ण किये जाते हैं। पौन = पवन, वायु। पैनी = तीक्ष्ण। अच्छसिच्छ = अच्छी शिक्षा। तेग = तलवार ॥२७॥

* टि०—टीका में इन्द्र और वज्र पद व्यर्थ हैं। मूल कविता में आया हुआ 'हरि' पद इन्द्र का वाचक नहीं प्रत्युत कवि का प्रतीक है। वज्र पद मूल में है ही नहीं।

'आलम' कहत मेरे अजहू न आए पीव,
महा विपरीत कैधों और बुद्धि वै ठई।
मदन महीप की दुहाई फिरिबे न रही,
जूझ्यो कहूँ मेघ कैधों बीजुरी सती भई ॥२८॥

टीका—प्रोषितपतिका नायिका की उक्ति। कैधौं पिक कोकिल और चातकन कों काहू राजा ने मारि डार्‍यो, कि बकपंक्ति कहूँ बलाका की गति वहाँ औरइ भाँति की भइ। यदि ए होते तो उद्दीपित करि घर आइबे के लिये प्रेरणा करिबोइ करत, क्योंकि अजहू मेरो प्रियतम न आयो। बड़ी विपरीतता लखाय है। अथवा औरइ बुद्धि तो नहीं ठइ, अर्थात् काहू और नायिका सों बद्धप्रीति अनुरागी तो नहीं भयो, जासों मेरी सुधि बिसारी। अथवा मदन महीप की दुहाइ वहाँ नहीं फिरी। किंवा मेघ काहू सों समर करि जूझ्यो, ताको लै बिजुरी सती तो नहीं भइ। इहाँ विरहव्याकुल नायिका स्वीय प्रीतम के अनागमन कारण की चिंता करि इन सब के उद्दीपकता की हानि ठहरायो, यातें सन्देह अलङ्कार ॥२८॥

कवि—घासीराम

कवित्त—कीधौं बिषधर खाए मोरन की आई मीचु,
कीधौं कीच भूतल में प्रगटी नहीं नई।
कीधौं दबि दादुर रहो है डर ब्यालन के,
कीधौं रो पपीहा पापी पो की टेर ना दई।
'घासीराम' कीधौं बक बाजन की मानि त्रास,
कीधौं बीर पावस में काहू सखि ना ठई।
कीधौं काम स्यामजी के अगनि निकसि गयो,
मेघ कहूँ जूझ्यो कीधौं दामिनी सती भई ॥२९॥

टीका—नायिका प्रोषितपतिका की उक्ति। कैधौं बिषधर सर्प भक्षण करि मोर मरि गए। सर्प भक्षण करि जीव मरि जाय है। किंवा भूतल में कीच न भइ। किंवा दादुर ब्याल के डर सों कहीं दबि रह्यो। पपीहा पापी पी की टेर रटनि नहीं दई। किंवा बक पंक्ति बाजन की त्रास मानि नहीं उडे है। अथवा

अनत = अन्यत्र। ए दइ! = ऐ विधाता!। असगति = मृत्यु। पीव = प्रियतम। ठई = सोची, हो गयी। दुहाइ = घोषणा। जूझ्यो = लड़मरा ॥२८॥

बिषधर = सर्प। मीचु = मृत्यु। कीच = कीचड़। दबि = छिप कर। बाजन = बाजपक्षियों की। पावस = वर्षा ऋतु ॥२९॥

है बीर पावस की सुधि काहू ने नहीं दयाई । किंवा स्यामजी के अगन सों काम हीं निकसि गयो । अथवा काहू सों समर करि मेघ जूझयो ताको लै बीजुरी सती भई । यदि होती तौ अपनी दमकनि सों मेरी सुधि याइ प्रवास सों गृह कों पठावती । इहाँ सन्देहालकार ॥२९॥

कवि—दयाराम (रूपक)

दडक—झूमत मतग मतवारे से घुमड़ि घन,
घूमत नकारे से धुकार धूर से मढे ।
धुरवा झमक उद्‌भट से तमक उटे,
चपला चमक चहूँवोर शस्त्र से कढे ।
ऐसे दल पावस प्रबल साजि 'दयाराम',
आए बिरहिनि पर अत अति ही बढे ।
काम बान बर बासी हान लागी बरषा सी,
करखा सी कहत मयूर गिरि पै चढे ॥३०॥

टीका—उमडि घुमडि घन नभमडल में मतवारे मतग से घूमै हैं । धुकार गरजिबो, धूर से मढे नगारे की ध्वनि होय है । मेघन की इत उत दौड उद्भट सें तमकि उठे है । चपला की चमक चहूँ आर शस्त्र के तुल्य कढ़ी । पावस रितु ऐसो प्रबल दल सजि बिरहिनि के मारिबे के हेतु चढ्यो । मेह की झरि काम के बान के समान होन लगी । मयूरगन गिरि पै चढि सोर करखा सो करन लाग्यो । इहाँ घन को मतवारो मतग करि वर्णन कियों, यातें समाभेद रूपक अलकार ॥३०॥

कवि—लाल (रूपक)

दडक—बादले की बाँधि फेटा पेच पर पेच ऐंठा,
तापै जरतारी तुर्रा बानो यों धरति है ।
भौंहन मरोर धनु बरुनी बनाए बान,
तिरछी चितौनि हू की बरछी करति है ।

नकारे = नगारे । धुकार = जोर की ध्वनि । धूर = धूल,रज । धुरवा = बादल । उद्भट = प्रबल । तमक उटे = चमकने लगे । चपला = बिजली । वोर = ओर, तरफ । कढ़े = निकलती है । करखा सी = युद्ध के समय का सगीत सा ॥३०॥

फेटा = कमरबन्द । पेच = मोड । जरतारी तुर्रा = सोने की कामदार कलगी । बानो = वेश । बरुनी = पलकों के अग्रवर्ती बाल । चितौनि = चितवन, कटाक्ष ।

मंद मुसुकानि महा वोपी किरपान जानि,
हिए रति खेत रन नेकु न डरति है।
झिलिमिलि जामा लाल पहिरे कवच बाल,
दैके कुच आड़ ढाल लाल सों लरति है ॥३१॥

टीका—नायिका को नायक सों संभोग रूप समर वर्णन। बादले की फेटा, जाम पेच पेच में एंठनि, तापै जरतारो तुरा बारों को इस भाँति धारन करे है। भौंहन की मरोर धनुष, ऊनी का बान बनाय और तिरछी चितौनि की बरछी कहर करे है। मंद मुसक्यानि बड़ी सानधरी तरवारि। हृदय में रतिरन खेत में नेकु किंचित् नहीं डरै है। झिलमिली जामा लाल बरन पहिर और कुचढाल को आड़ दै लाल सों लड़ै है। इहाँ बादले की फेटा आदि रूपकापन्न पदन के सन्निवेश ते समस्तविषयी रूपक अलंकार। एसोई चान्यो पदन में ॥३१॥

कवि—सेनापति (उत्प्रेक्षा)

कवित्त—लाल लाल केसे फूलि रहे हैं बिसाल संग,
स्याम रंग भेंटि मानो मसि सों मिलायो है।
तहाँ मधुकाज आइ बैठे मधुकर पुंज,
मलय पवन उपवन बन धायो है।
'सेनापति' माधव महीना में पलास तरु,
देखि देखि भाव कविता के मन भायो है।
आधे अनसुलगि सुलगि रहे आधे मानो,
बिरही दहन काम कैला परचायो है ॥३२॥

टीका—लाल लाल टेसुए कैसे फूलि रहे हैं स्याम ताके संग मानो काहू ने मसि सों मिलायो है। और उसी टेसू पर मधु के अर्थ मधुकर पुंज आय बैठे। और मलयाचल को पवन उपवन में धाय रह्यो है। माधव बैसाख महीना में पलास तरु देखि देखि कविन के मन में यह नयो भाव उपजे है। आधे अन सुलगे और आधे सुलगे कैला कों बिरहीनि के दाहिबे काज, काम परचायो कहै प्रज्वलित किया है। इहाँ टेसू को काम को परचायो आधा सुलगा आधा अनसुलगो कैला के तादात्म्य करि बर्णन, यातें उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार।

वोपी = चमकती हुई। किरपान = कृपाण, तलवार। रतिखेत = रतिक्षेत्र, केलि गृह। जामा = घुटने तक का एक विशेष प्रकार का पहिनने का वस्त्र ॥३१॥

मसि = स्याही। मधुकाज = मधु के लिये। मधुकर = भौंरे। माधव = वैशाख। कैला = कोयला, अंगार। परचायो है = जलाया है ॥३२॥

टेसू आधा लाल होय है और आधा ढेपी की ओर स्याम होय है। अथवा मधुकर के बैठिबे सों आधा स्याम लखाय है, यातें कला आधा सुलगो आधा अनसुलगा करि वर्णन किया है ॥३२॥

कवि—नागर (द्वितीय अप्रस्तुतप्रशंसा[1])

दंडक—गहिबो अकास पुनि लहिबो अथाह थाह,
अति बिकराल ब्याल काल को खिलाइबो।
सेर समसेर धार सहिबो प्रहार बान,
गज मृगराज द्वै हथेरिन लराइबो।
गिरि सों गिरन ज्वालमाल मैं जरन होइ,
कासी मैं करोट देह हिम मे गलाइबो।
पीबो विष विषम कबूल 'कवि नागर' पै,
कठिन कराल एक नेह को निबाहिबो ॥३३॥

टीका—प्रीति के निबाहिबे की कठिनता वर्णन। अकाश को गहिबो, अथाह कहे अगाध को थाह लेबो, अत्यन्त कराल काल के समान ब्याल नाग को खेलाइबो, सेर ब्याघ्र और समसेर खड्ग का प्रहार और धार को सहिबो, गज हाथी और मृगराज सिंह को दाऊ हथेरिन कहे करतल पै पकरि कै लराइबो कहें युद्ध को कराइबो, परवत सों गिरिबो, अग्नि मैं जरिबो, काशी को करोट, हिमि मैं देह गलाइबो, भैरव झाप जो केदारनाथ में प्रसिद्ध है, अति कठिन विष का पान करिबो, अङ्गीकार अथात् ऐ सब सुगम, पै नेह प्रीति को निबाहिबो अति कठिन और कराल है। इहाँ अकाश को गहिबो आदि कठिन अप्रस्तुत है तिनहूँ सों अति कठिन प्रीति के निबाहिबे का आश्रय, यातें अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार ॥३३॥

कवि—देवीदास (समुच्चय[2])

दंडक—कोऊ कहूँ मिलै ताहि जानि सनोमान करै,
हँसि दीठि जोरै पुनि हिय सों देखावे हेत।

१—दे० टि० पृ० ५८। यहाँ आकाश को ग्रहण करना, अथाह की थाह लेना आदि विशेष का वर्णन करके नेह निर्वाह रूप सामान्य को लक्षित किया गया है, अतः यह द्वितीय (विशेषनिबन्धना) अप्रस्तुतप्रशंसा है।

गहिबो = पकड़ना। लहिबो = पाना। सेर = सिंह। समसेर = तलवार। हथेरिन = हथेलियों से, दोनों हाथों से। करोट = करवट (एक प्रसिद्ध स्थान) ॥३३॥

२—समुच्चय का अर्थ है समुदाय। जब एक ही वस्तु में बहुत से भाव

आपनो गरव कहूँ नेकु न जनावै अरु
कोऊ नहीं जानै जैसे गुपत ही दान देत।
कोऊ उपकार करै ताको परकास करै,
धरम नियम पर नित रहैं सावचेत।
आप उपकार करि चुप रहैं 'देवीदास'
एते सब गुन कुलवन्त में देखाई देत ॥३४॥

टीका—कुलीन के स्वभाव का वर्णन। काऊ किसी प्रकार मिलै ताको भली भाँति सन्मान कहै आदर करे, और हँस के दृष्टि प्यार कहै प्रसन्नमुख है बिलोकै। पश्चात् अन्तःकरण को प्रेम देखावै। अपने गर्व को नेकु भाँति सों नेकु किंचित् भी न प्रकाश करै, ऐसो प्रच्छन्न कर जैसो काऊ गुप्त दान देत है। और काऊ अपने साथ उपकार करै ताको प्रकाश करै। धर्म और नियम अर्थात् इंद्रिय दमन में सचेत रहै। काहू के साथ उपकार कार आप चुप ह्वै रहै। ए सब गुन कुलवन्तन में लखाय परे हैं। इहाँ बहुत भाव के पदन को एकत्र निवेश के कारण समुच्चयालंकार ॥३४॥

(अप्रस्तुत प्रशंसा)

दंडक—माथ बन्यो मुह बन्यो मूछ बनी पूँछ बन्यो,
लाधव बन्यो है पुनि बाघ समतूल को।
रँग्यौ चँग्यो अंग बन्यो लौंक बन्यो पंजा बन्यो,
कृत्रिम बन्यो है सब सिंह ही के मूल को।
कूजिबे की बेर मौन गहि बैठो 'देवीदास'
तैसेई सुभाव कूद कांद फल फूल को।
कुंजर के कुंभन बिदारिबे की बेर कैसे,
कूकर पै निबहैगो स्वाँग सारदूल को ॥३५॥

टीका—कैतवाचरण कृतवेषी किसी धूर्त पुरुष का वर्णन। माथ, मुख, पूँछ मोछ आदि सम्पूर्ण अंग व्याघ्र के सदृश बन्यो अर्थात् जन वंचन के लिये अपनो

एकत्र हो जायँ, अथवा एक कार्य के लिए जहाँ एक ही कारण पर्याप्त है वहाँ अनेक कारण एकत्र हो जायँ, तब समुच्चय अलंकार होता है। यहाँ बहुत से भाव एक ही कुलवन्त में एकत्र हुए हैं अतः समुच्चय का प्रथम भेद है।

सावचेत = सावधान, सचेत ॥३४॥

समतूल = बराबर। लौंक = कटि, कमर। कूजिबे = शब्द करते। कुंजर = हाथी। कुंभन = गण्ड स्थलों के। सारदूल = सिंह ॥३५॥

आकृति वैसी ही बनाई, जो कोई देखै सारदूलै कहै। कुञ्जर हस्ती के कुंभ के बिदारिबे समय कूकर सार्दूल को शब्द कहाँ पावैगो। इहाँ कैतव बेष धारण करि सकलजन बचन मैं तत्पर काहू पुरुष को वृत्तान्त स्फुरित होय है यातें अप्रस्तुतप्रशसा अलकार ॥३५॥

कवि—चद (मिथ्याध्यवसित[1])

दडक—महाराज तेरी सब कीरति बखानै कवि,
'चद' यह केवल अकीरति बखाने है।
ऑधरे ने देखि देखि हमको बताइ दई,
बहिरे ने सुनी जैसी हमहूँ पिछाने है।
बन्ध्या के दूध ही के सागर पै ताको गीत,
बॉझसुत गूँगे मिलि गावत यों जाने है।
तामै केते बडे शशश्रृग के धनुष वारे,
रीझि रीझि तिन्हैं मौज दैकै सनोमाने है ॥३६॥

टीका—महाराज पृथ्वीराज की कीर्त्ति को बर्णन। रावरी कीर्ति सब कोई बखानै है परन्तु यह अकीर्त्ति को बखानिबो है आँधरे ने देखि देखि हम को बताई और बहिरे ने जैसी सुनी तैसाई हमहूँ पहिचान्यो। बन्ध्याके दूध के समुद्र के सदृश रावरी अकीर्ति को बन्ध्यापुत्र और गूँगे ने गान कियो, यों मैं जान्यों। तामें कितेक शशश्रृग के धनुषवारे रीझि रीझि मौज सों तिनको सनोमान कियो। इहाँ एक के मिथ्यात्व के ठहरायबे के अर्थ और भी मिथ्या को बर्णन, यातें मिथ्याध्यवसित अलकार और आप की कीर्ति मानो बचन की अगोचर है यह व्यग्य ॥३६॥

कवि—निपटि (प्रथम उल्लेख)

दंडक—हॉसी मैं विषाद बसै विद्या मैं विवाद बसै,
भोग माहिं रोग और सेवा माहिं दीनता।
आदर मैं मान बसै रुचि मैं गलानि बसै,
जोबन मैं जान बसै रूप माहिं हीनता।

१—मिथ्याध्यवसिति का अर्थ है मिथ्या का निश्चय, अर्थात् जहाँ एक मिथ्या कल्पना के समर्थन के लिये दूसरी मिथ्या कही जायँ वहाँ मिथ्याध्यवसिति अलकार होता है।

पिछाने = पहिचाने ॥३६॥

जोग मैं अभोग औ सँजोग मैं बियोग बसै,
पुन्य माहि बंधन औ लोभ मैं अधीनता ।
'निपटि निरंजन' प्रबीन नए बीनि लीन्हे,
हरि जू सों प्रीति सबही सों उदासीनता ।।३७।।

टीका—भगवद्भक्ति को परत्व वर्णन । हाँसी मैं बिषाद होवै है, और बिद्या मैं विबाद, भोग में रोग, सेवा में दीनता, आदर में मान अहंकार, रुचि मैं ग्लानि, आगम मैं गमन, रूप में हीनता, जोग में भोग त्याग, संयोग मैं बियोग, पुण्य में बंधन, लोभ मैं आधीनता, प्रबीनन संपूर्ण मथिकै हरि सों प्रीति को [श्रेष्ठ, अन्य सबसों] उदासीन ठहराया । इहाँ बहुत बस्तु को बहुत प्रकार सों ठहरायो, यातें उल्लेख अलंकार ।।३७।।

कवि—गोकुलनाथ (पूर्णोपमा)

सवैया—बारिज से मुख मीन से नैन सेवारसे बारन की सुखदा सी ।
कंबु से कंठ लसै कुच कोक से भौंर से नाभि भरी भ्रम भासी ।।
'गोकुल'धार सी रोमावली लहरी सी लसी त्रिबली छबि रासी ।
लाल बिहार करौ मुख मैं वह बाल बनी सुख की सरिता सी ।।३८।।

टीका—दूती को बचन नायक सों । हे लाल बिहार करो, वह नायिका सुख की सरिता के समान बनी है । कमल सा मुख, मीन सों नयन, सेवार के तुल्य बार, जाको कंबु शंख के सदृश कंठ शोभित होय है । कुच कोक ऐसे, भ्रवरावली के तुल्य नाभी, जाके बिलोके भ्रम भासित होय है, धारा के सदृश रोमावली, त्रिवली की छबि लहरी सी लहराय है, इहाँ बारिज उपमान, से बाचक, नायिका उपमेय, धर्म को लोप, यातें धर्मलुप्ता अलंकार । कंबु से कंठ लसैं, इहाँ उपमेयलुप्ता । यदि नायिका को उपमेय मानिये तो पूर्णोपमा अलंकार ऐसेइ सब पदन में जानिये ।।३८।।

कवि—तारापति (सन्देह)

दंडक—इंदिरा के मंदिर अमंद दुति किंदुक से,
बंधुर बिनोद भरे जुग धौं बिरद के ।

आवन = आगमन, आना । जान = गमन, जाना । अभोग = भोग का त्याग ।।३७।।

सुखदा = आनन्ददायिनी । कंबु = शंख । कोक = चकवा । त्रिबली = उदरस्थ तीन रेखाएँ ।।३८।।

तारापति ललित लता के स्वच्छ गुच्छ कीधौं,
श्रीफल सुफल भए आनि अनहद के।
कीधौं चक्रवाक आय बैठो ऊँची भूमि पर,
तुव के परन तीरबासी नाभिनद के।
सुभग सरोज से उरोज तेरे वोज भरे,
कीधौं मीर फरस मनोज मसनद के ॥३९॥

टीका—नायिका के कुच को बर्णन, नायक की उक्ति। इन्दिरा लक्ष्मी, ताको मंदिर कमल, ताको किंदुक न्हैं गद है। कमल पद सों सरोज कली अमद द्युति हायबे वाली है, आग तुम प्रभात काल में बिकसैगी, यासों अमन्द द्युति विशेष साथक भयो। अथवा सुदर बिनोद भरे अथात् जाको लखे बिनोद उपजै है, है विरद है, अथवा ललित रमणीय लता क गुच्छ है, अथवा श्रीफल यह स्थल पाय कै अपने को सफल कियो। अथवा उच्चभूमि लखि चक्रवाक युगल आय कै बैठा है। किवा नाभीनद के निकट तुची फल है। सरोज कमल सों भी सुभग रमणीय ए तेरे उरोज ओज गुरु सघन मनोज का मसनद पै मीर फरस धरे हैं। इहाँ संदेहापन्न वाक्य है, याते संदेहालङ्कार ॥३९॥

कवि—मननिधि (प्रतीप)

दंडक—लसत सपानि तीच्छ ढारे खरसान महा,
मनमथ बान को गुमान गरियतु है।
भारे अनिआरे देखु तरल तरारे ए सु—
लक्षनीन तारे मीन हीन भरियतु है।
मृग बन लीन जोति मोतिन की खीन ऐसे,
जलज नवीन जलधाम धुनियतु है।

इन्दिरा = लक्ष्मी। किंदुक = गेंद। बधुर = मनोहर। बिरद = ख्याति, प्रसिद्धि। तारापति = चन्द्रमा। श्रीफल = बिल्वफल। अनहद = असीम, अक्षत। तुब = गोरुलोकी। परन = पर्ण, पत्ते। वोज = प्रताप। मीर फरस = वे बड़े पत्थर आदि, जो फर्श आदि के कोनों पर रक्खे जाते हैं, जिससे वे उड़ न सके। मसनद = बड़ी तकिया ॥३९॥

सपानि = चमकते हुए, पानीदार,। तीच्छ = तीक्ष्ण। खरसान = एक प्रकार की सान जिस पर हथियार तेज किये जाते हैं। अनियारे = नुकीले, तीक्ष्ण। तरल = चचल। तरारे = उछलते हुए से। सुलक्षनीन = सुदर लक्षणों

'मतिनिधि' आजु की अजूबी लखि नैनन मैं,
खूबी खनरीटन की खाम करियतु है ॥४०॥

टीका—नायक की उक्ति। शोभित होय है सहित पानी के तीक्ष्ण द्वारे खरसान जापै खड्गादि तीक्ष्ण किया जाय है। जाको लखि काम के बान को गुमान दूरि होय है। भारे दीर्घ, अनियारे चंचल लक्षणविशिष्ट। जाको लखि मीन हीन होय है, और जाको सुन्दरता देखि ग्लानि सों मृगगण बन सों सिधार्‍यो। मोतिन की जोति क्षीण, और जलज कमल जाको लावण्य प्राप्त होयवे के अर्थ जल में तपस्या करै है। अय प्यारी इन तेरे नैनन की शोभा आजु विलोकि खंजरीटन की उत्कृष्टता खाम करियतु है। यहाँ ए सब उपमानवाचक पद हैं। अपने को निरादरै है याते प्रताप अलंकार ॥४०॥

कवि—राजा गुरदत्त सिंह (रूपक)

दंडक—सीसफूल सूर पास बली को विभूषे भूप,
मंगल सुरंग बिंदु चंदन को मूल है।
टीको सुर गुर मुख चंद्र को बिलोकै शुक्र
लटकन मोती सो न रोके राहु अलकै।
ठोढी अंक स्याम शनि गोरे रंग बुध मानि,
ऐंठत डिठौना केतु सौतिन को तलकै।
उच्चथल परे हैं सकल ग्रह तेरे आली,
यातें बनमाली लोट पोट कोटि ललकै ॥४१॥

टीका—सखी की उक्ति नायिका सों। तेरे शीस को फूल सूर्य, सुरंग बिंदु चंदन को मंगल, और टीका बृहस्पति, मुख चंद्रमा, शुक्र लटकन की मोती, केश राहु, ठोढी में जो स्याम रंग को बिंदु अर्थात् गोदना दिए है शनि है, गोरो रंग बुध, डिठौना केतु, हे सखि संपूर्ण ग्रह तेरे उच्च ह्वे अंग हो में आय टिके, यातें बनमाली कृष्ण तेरे ऊपर कोटि कोटि भाँति लट्टू ह्वे रहे हैं। इहाँ शीसफूल आदि को सूर्य आदि अभेद करि वर्णन याते समाभेद रूपक अलंकार ॥४१॥

से युक्त। खीन = क्षीण। धुरियतु = कष्ट पा रहे हैं। अजूबी = विचित्रता। खूबी = विशेषता। खाम = क्षाम, हीन ॥४०॥

सूर = सूर्य। सुरंग = अच्छी शोभा वाला। सुरगुर = बृहस्पति। लटकन = नासिका का एक आभूषण, बेसर। अलक = केश। ठोढी अंक = ठुड्डी पर का गोदना। डिठौना = मस्तक में लगा काजल बिन्दु (जिससे दूसरों की डीठ = नजर नहीं लगती)। तलकै = दबाता है। ललकै = चाहता है ॥४१॥

(प्रतीप पंचम)

दडक—मीन है कमीने परे पानी मे निहारे हारि,
हारि कै चकोर ताते चुँगत अँगारे है।
भूपति भनत गज कजन के खजन के,
गजन गरब करि डारे कै निकारे हैं।
डोरे रतनारे तारे कारे औ सितारे सेत,
उपमा सितासित तरगनि मे भारे है।
प्यारी तेरे मान हग पानि परसान धारे,
कै बरकसी से वै कमान वारे बारे हैं ॥४२॥

टीका—नायक की उक्ति नायिका सों। मीन कमीने तेरे आँखिन की छबि सों हारि पानी में परे और चकोर हारि कै आगि को अगार चूँगिबो अगीकार किया। और कंज खजन के गर्व को गजन भग करि डारयौं, यातें वै निकरि गए अथात ग्राम ही में लाज वश नहीं आवैं है। लाल डोरे और श्याम तारा कनीनिका और नेत्र परिसर स्वेत, यातें सितासित तरगिनी त्रिवेणी की उपमा लखाय है। हे प्यारी मान के तेरे हग सान धरे कै वर के मान को भग करै हैं। इहाँ नायिका का नेत्र उपमेय ताके आगें उपमान मान आदिक को व्यर्थ हायबो बर्णन करै है यातें पचम प्रतीप अलकार ॥४२॥

कवि—दास (परिणाम विषय रूपक)

सवैया-अनी नेह नरेस की माधौ बने बनी राधे मनोज की फौज खरी।
भटभेरो भयो जमुना तट 'दास जू' सान दुहूँ की ज्यौं सानधरी॥
उरजात चँडोलनि गोल कपोलनि जौ लौ मिलाप सँलाप करी।
तौ लौं वाको हरौल भटाक्षन सों री कटाक्षन की तरवारि परी ॥४३॥

कमीने = तुच्छ। गज = नाशक। गजन = नष्ट। रतनारे = लाल। तारे = आँखों की पुतलियां। सितारे = पुतली का बाहरी भाग। सितासित तरगिनि = त्रिवेणी (जैसे गगा श्वेत, यमुना कृष्ण, सरस्वती लाल ये तीनों मिलकर त्रिवेणी कहलाती है, ऐसे ही तुम्हारी आँखों में लाल डोरे, कृष्ण पुतलियाँ, श्वेत बहिर्भाग होने से त्रिवेणी की उपमा योग्य है यह तात्पर्य है।) पानि = हाथ ॥४२॥

अनी = सेना। माधो = श्रीकृष्ण। मनोज = कामदेव। भटभेरो = मुठभेड़। सान = तड़क भड़क। उरजात = स्तन। चँडोलनि = पालकी। हरौल = सेना का अग्रभाग। भटाक्षन = नेत्ररूप योद्धा ॥४३॥

टीका—प्रेम नृप की सेना श्री कृष्णचन्द्र बन्यो अरु मनोज काम की फौज राधा बनी। जमुना तट दोऊ सेना की चढ़ाई भई साँहैं, उर जात चँडोलनि उरमें प्रगटित जो रतिजनित औत्सुक्य। जोलों मिलाप संलाप गोल कपोलनि सों कियो चाहै, तोलों दोनों के कटाक्षन की तरवारि परी अर्थात् परस्पर रतिसूचक अनुभाव होने लग्यो। यहाँ नेह को नरेश, ताको फौज कृष्ण, मनोज काम की फौज राधा को वर्णन किया, याते समस्त विषयी रूपक अलकार ॥४३॥

कवि—बीरबल (दीपक[1])

सवैया—पूत कपूत कुलच्छनी नारि लराक परोसि लजावन सारो।
भाई बड़ा हित प्रोहित लम्पट चाकर चोर अतीथ धुतारो॥
साहिब सूम अराक तुरंग किसान कठोर दिवान नकारो।
'ब्रह्म' भनै सुनि साह अकब्बर बारहौं बाँधि समुद्र मे डारो॥४४॥

टीका—कपूत पूत और कुलक्षनी नारि स्त्री, लराका परोसी आदि बारहों को बाँधिकै समुद्र म डारि देवो उचित है। इहाँ बाँधिकै समुद्र में डारिबो धर्म सब को एक है याते दीपक अलकार ॥४४॥

कवि—सेनापति (श्लेष[2])

दंडक—नाहीं नाहीं कहैं थोरे माँगे सबदैन कहैं,
मगन को देखि पट देत बार बार हैं।

१—जहाँ वर्ण्य और अवर्ण्य (उपमेय और उपमान) अपने गुण के कारण एक से कहे जायँ अर्थात् दोनों में धर्म की एकता हो वहाँ दीपक अलकार होता है। इस छन्द में यद्यपि उपमानोपमेय भाव नहीं है किन्तु बाँधकर समुद्र में डालना रूप धर्म की एकता होने से दीपक माना गया है।

प्रोहित = पुरोहित। अतीथ = अतिथि। धुतारो = धूर्त। अराक = अड़ियल। नकारो = आज्ञा न मानने वाला ॥४४॥

२—श्लेष शब्द का अर्थ है चिपका हुआ। जहाँ दो या अधिक अर्थ एक में चिपके हुए हों वहाँ श्लेष अलकार होता है। मुख्यत यह दो प्रकार का है—१ अर्थश्लेष, २ शब्दश्लेष। शब्दश्लेष में विभिन्न अर्थों का बोधक एक शब्द होता है, यदि उसे बदल दिया जाय तो श्लेष नहीं रह जाता। किन्तु अर्थश्लेष में शब्द का परिवर्तन करने पर भी श्लेष में कोई अन्तर नहीं

जिन के लखत भली प्रापति की घरी होत,
सदाँ सब जन मन भाए निरधार है।
भोगी ह्वै रहत बिलसत अवनी के मध्य,
कन कन जोरै दान पाठ परिवार है।
'सेनापति' बचन की रचना बिचारि देखो,
दाता ओर सूम दोऊ कीन्हे एक सारहै ॥४५॥

टीका—कवि का उक्ति, दाता और सूम का श्लेष। बिचार करि देखो ब्रह्मा ने दाता ओर सूम का एक ही सार किया अथात् जो गुण दाता में सोई

होता जैसे—

थोरे हूँ ऊँचो चढ़ै, थोरेहि नीच घनेर ॥
ससि बृत्ति दूनों अहै, तुलाकोटि सक फेर ॥

यहाँ "थोरे हूँ" के स्थान में "अल्पहि त" और "थोरेहिं" को 'अल्पहि" ऐसा पर्यायवाची पाठान्तर कर लें तब भी अर्थ में कोई अन्तर नहीं होता। यही अर्थश्लेष है।

शब्दश्लेष के दो रूप है—सभङ्ग और अभङ्ग, जहाँ शब्द को भङ्ग कर के (तोड़कर) अर्थान्तर का बोध हो वहाँ सभङ्गश्लेष ओर जहाँ शब्द ज्यो का त्यों रहता हुआ अर्थान्तर का बोध करता है वहाँ अभङ्गश्लेष होता है। जसे उक्त पद में—"थोरे माँगें सबदैन कहै" (१ सब दैन कहै = सब कुछ देने को कहता है, २ सबदै न कहै = शब्द ही नहीं बोलता) यह सभङ्गश्लेष है। इसी प्रकार "मगन को देखि पट देत बारबार है" (१ पट देत = वस्त्र देता है, २ पट देत = द्वार बन्द कर देता है) यह अभङ्ग श्लेष है।

यह सभङ्गाभङ्गात्मक शब्दश्लेष तीन प्रकार का होता है—वर्ण्य, अवर्ण्य और वर्ण्यावर्ण्य। इसी को प्रकृत, अप्रकृत ओर प्रकृताप्रकृत श्लेष भी कहते हैं। इनके लक्षण ओर उदाहरण इसी ग्रंथ के ११वें प्रकाश मे टीका में स्पष्ट किये गये हैं।

श्लेष के भेदों के विषय में ग्रंथकारो के विभिन्न मत हैं। कुछ आचार्य अर्थश्लेष को नही मानते। किसी ने सभङ्ग का शब्दश्लेष ओर अभङ्ग को अर्थ श्लेष माना है। काव्यप्रकाश और चित्रमीमासा आदि में इसका विशद विवेचन है।

समासोक्ति में भी प्रस्तुत वर्णन से अप्रस्तुत की प्रतीति होती है किन्तु उसमें विशेषण ही समान होते है और श्लेष में विशेष्य श्लिष्ट होता है यही अन्तर है।

सूम में लखाय परे हैं, दातापक्षे—नाहीं नाहीं कहै नाहीं को नाहीं करै है अर्थात् दान में निषेध कबहूँ नहीं करे है। थोरे माँगे सब देन कहै—थोरेहू माँगे पै सब देबो कहै है। मगन को देखि पट देत बार बार है—मगन जाचक को देखि बारबार वस्त्र देय है। जिनके लखत भली प्रापति की घरी सदा—जाके देखे सर्वदा भली प्राप्ति की घरी होय है। सब जन मन भाए निरधार है—सम्पूर्ण जन के मन में भावे है अर्थात् सब काऊ वाकी प्रीति करे हैं। भोगी ह्वै रहत—भोगी अर्थात् भोग विलास करिके पृथ्वी के मध्य बसे है। कनक न जोरै दान—कनक सुवर्णदान करि वे में कछू नहीं ठहरावै है।

सूमपक्षे—जाचक को देखि नाहीं नाहीं कहै है, थोरे हू माँगे पै सबै अर्थात् सुख सों बात ही नहीं निकासे है। मगन को देखि०—जाचक को देखि पट दरवाजा बन्द करि लेय है। जिनके लखत०—जाके सुख देखि परिवे सों कहूँ कछू प्राप्ति नहीं होय है। सब जनमन भाए—सब जनम न अर्थात् संपूर्ण जन्म भरि काहू के मन में नहीं भावै है। भोगी वै रहत०—भोगी सर्प ह्वै मरन के अनंतर जहाँ वह धन गड़ो रहै है वाही जगह पै रहै है विलास करै है, अवनी पृथ्वी के मध्य अर्थात सर्प होत है। यह बात प्रसिद्ध है कि सूम मरिकै उसी धन को रक्षक सर्प होय है। कन कन जोरै—एक एक कन कनिका को जोरतै कहै बटोरते रहै है ॥८५॥

तीनि अर्थ (श्लेष)

दंडक—लछिमनै संग लीन्हे जो बन बिहार करै,
सीता ही मैं रहै ऐसो और अभिराम को।
नव दलै सोभा जाकी बिकसे सुमित्रै लखि,
बिभ्रमरहित नरहित कवि काम को।
अच्छ धाम हारी सदागति जात दूत जाको,
कोसलै बरात बीच ऐसोई सुठाम को।
'सेनापति' कीन्हो है कबित्त तामरस ही को,
राम को कहत कोऊ कहत काऊ बाम को ॥८६॥

टीका—सेनापति कवि तामरस कमल ही को कबित्त किया है परंतु कोऊ कवि राम को कहै हैं और काउ बाम कहे बनिता को कहै हैं। कमल पक्षे—लछिमने संग ली हैं—लक्ष्मणा सारसी को संग लै, बन कहे जल में बिहार करै है। "लक्ष्मणा सारसवधूरि"त्यमरः। सीता ही मैं रहै—सीत ओस अथवा सीत कहे ठंडक ही में रहै है। जब जल नहीं रहै तब कमल भी सूखि जाय है

यह प्रसिद्ध है। ऐसो और अभिराम को—कमल के तुल्य और कौन शोभा पाय सकै है। नवदलै शाभा जाकी—नवीन दल फूल आर पत्र, तामों शाभा जाकी रमनीय है। जिनसे सुमित्रै लखि—मित्र सूर्य को देखि प्रफुल्लित होय है। बिभ्रमरहित—विशेष करि कै भ्रमर मधुरवृ द को हित, अथात् परिमल आस्वाद में लम्पट कबहूँ नहीं, कमल के तुल्य और फूल में मकरन्द पान करिबे की आसा करै है। नरहित—मनुष्यन को सुद देय हैं, काव काम को—कवि लोग अपने काव्यन में प्रस्तुत नृपादि के बर्णन में मुख नेत्र चरण आदि को उपमेय आर सरोज को उपमान करि बर्णन करै हैं। अच्छ कहै स्वच्छ धाम स्थान में रहै है। सदागति जात दूत जाको—सदागति वायु जाको दूत परिमल गुण सर्वत्र जाय बगारै है। कोश लै बसत—कोश जो कमल को मध्य अति रमणीयता को धारण करै है। बाच ऐसोइ सुठाम को—कमल कोश क तुल्य आन कौन उत्तम निवास स्थान है। जाको लक्ष्मी निज गृह बनायो इसी हेतु लक्ष्मी को कमलाख्या नाम प्रसिद्ध भयो और कमल भी इन्दिरामंदिर नाम सें प्रसिद्ध भयो। इति।

रामपक्षे—लछिमनै सग लीन्हे लछिमन सुमित्रानन्दन को संग लै जो राम चन्द्र बन में बिहार कहै बन के जाव और वहाँ क बासी ऋषिमुनि को सनाथ करते बिहरै हैं। सीता ही में०—सीता जनकनन्दिनी हृदय मे विराजै हैं, यासों श्रीरामचन्द्र को पति नायकत्व व्यंजित भयो। ऐसो और अभिराम को—श्री रामचन्द्र के सदृश और कौन त्रिभुवन में सुन्दर है, काकु करि अर्थात् कोऊ नहीं इनकी समता कों प्राप्त ह्वै सकै है। न वदलै शाभा जाकी—जाकी कांति कदापि नहीं बदलै है यथास्थित बनी ही रहै है। बिकसैं सुमित्रै लखि—सुन्दर मित्र सुग्रीवादि अथवा मित्र सूर्य कों लखि बिकसित कहै प्रफुल्लित होय हैं, अथवा सुमित्र लक्ष्मण को जानिये। विभ्रमरहित०—भ्रम सों रहित, नर मनुष्यों के हित प्रीति दाता कविजन को मुख्य प्रयोजन, अथात् जाकी लीला को बर्णन करि अपने सहित भुवन पावन करै हैं। अक्षधामहारी सदागति जात धूत जाको—अक्षयकुमार रावण को पुत्र ताके प्राणहरैया सदागति वायु सों जात कहै उत्पन्न हनुमान जी ऐसा दूत जाको, "मातरिश्वा सदागतिरि"त्यमर। कोशलै बसत बीच—कोशला अयोध्या राजधानी जाकी संसार में ऐसो और कौन स्थान है।

बनिता पक्षे—इहाँ बाम पद सों वेश्या को ग्रहण है क्योंकि बाम कहते हैं टेढे को, अभिप्राय यह है कि वेश्या सब भाँति टेढी है, प्रथम सर्वस्व हरि लेय है कुल धर्म की हानि, जगत म हास्य, कुटिलता दृढ कराने में और भी बहुत से उदाहरण हैं। लछिमनै संग—लाखों के मन को संग लै अथात् हरि कै, जीवन युवावस्था के कामकेलि आदि अनेक भाँति के रति हाव भाव बिहार

करै है। सीता ही में रहै है सोभी अरिजा यहां जानै है। ऐसो और अभिराम को—उस समय सा सी क समान और कान प्रिय लागै है, कवि जन याको बशी करण करि बर्णन कियो है, यथा जगतसिंह—'सीकरन प्यारी को बसीकरन मन्त्र है"। नवदले शोभा जाको—नहाँ नवले शोभा कांति जाकी अर्थात् रसिकन क मन मोहिवे और धन के आकर्षण करि सदा वस्त्र आभूषन आदिसों भूषित किये रहै। बिस्सै सुमित्र लाख—सुमित्र कहै धन दाताको देखि प्रफुल्लित होय है। इहाँ लच्छना करि हृदय कमल को विकसिबो जानिय। विभ्रमरहित—विभ्रम भय सों रहित, जाको काहू को भय नहीं है। नरन को हित अर्थात् जो चतुर है तासों प्रीति करै है अथवा मनुष्य चातुरी सीखिवे क हेतु वासों प्रीति करै है। यथा—"देशाटन पण्डितमित्रता च वाराङ्गना राजसभाप्रवेश। अनेकशास्त्रस्य विलोकनं च चातुर्यमूलानि भवन्ति पञ्च"॥ या सों वेश्या को चातुरी को मूल जानिये। कविराम को—कविजन अनेक भाँति करि वर्णन करै है। त्रिविधनायिका में सामान्या की भी गणना है। अच्छधाम सुन्दर मन्दिर में सजो सँवार धनी के मन को हरै है। सदागति—सम्पूर्ण काल में गति जब चाहै निःसंदेह वाके घर चलो जाय। जात दून जाका—धनी के निकट जाको दूत जाय है। स्वाया परकाया क संघटन में दूती प्रधान है, सामान्या में दूत ही की प्राधान्य है। कोश लै बसत—कोश धन लैकै कामी के निकट शयन करै है। ऐसोई सुठाम को—वेश्या के घर की बराबर और निर्भय स्थान कौन है अर्थात् कौनौ नहीं॥४६॥

कवि—बेनी (श्लेष)

दण्डक—हाव भाव विविध देखावै भली भाँतिन सों,
मिलत न रति दान जागे संग जामिनी।
सुबरन भूषन सँवारे ते बिफल होत,
जाहिर किए ते हँसै नर गजगामिनी।
रहै मान मारे लाज लागत उचारे बात,
मन पछितात न कहत कछू भामिनी।
'बेनी कवि' कहै बड़े पापन ते होत दोऊ,
सूम के सुकबि औ नपुंसक की कामिनी॥४७॥

टीका—बेनी कवि की उक्ति कि सूम के घर सुकवि कहै सुंदर रचनादिक में निपुण काव्यकर्ता और नपुंसक की कामिनी, ए दोऊ बड़े पाप तें होवै हैं। सूम को सुकवि पक्षे—हाव काव्य में दश प्रसिद्ध है, भाव विविध प्रकार के

स्थायी व्यभिचारी सात्विक मिलि एक ऊनपँचास प्रसिद्ध हैं, ताकी भली भाँति रचना करि और रात्रि भर साथ में जागि कै देखावै है, परन्तु रतिदान नहीं मिलै है। रति कहैं प्राति ताहू को दान नहीं मिलै है अथात् दीबो लीबो कहा कहै प्रसन्नहू नहीं होय है जासों कवि अपने श्रम को सफल माने। अथवा रती भरि दान नहीं देय है। सुबरन भूषन—सुन्दर वर्ण अक्षर अथात् वण मैत्री आदि और भूषन अलकार जासें सवारो काव्य जाके निकट बिफल होय है। प्रसिद्ध किए त नर नारी के हँसिबे को कारन होवै है। रहै मान मारे—मान प्रतिष्ठा छोड कै बरतै है। ऐसी बात उघारिबे मा लाज लगै है। मन में पछिताय है पर तु अपनी स्त्री सों भी नहीं कहै है।

नपुसक की कामिनी पक्षे—अनेक भाँति ने हाव भाव देखावै है और राति की राति सग मे लपटाय जागै है, रतिदान अथात् सभोग नहीं पावै है, क्यों कि वाके अग म काम की चेष्टा ही नहीं है वासों कहा करैगो। सुन्दर बरन उबटन मजन आदि सों स्वच्छ करि भूषन जेवर आदि को पहिरै है सो बिफल होय है, क्यों याकी शाभा तबही है जब पर्यंकपै अपने प्रियतम के साथ भोग बिलास करि लपटाय के सोवै। प्रसिद्ध किए त नगर का नर नारा के हँसिबे को कारण होवै है। मान मारे अथात् कबहूँ मान नहीं करै है। करै भी तो कासों करै। बात प्रकट किये ते लाज लगै है, मन मे पछिताय पछिताय रहै है, काहू सों नहीं कहै है। इति ॥ ४७ ॥

कवि—अनीस (प्रस्तुताप्रस्तुत श्लेष)

दडक—सुनिए बिटप प्रभु पुहुप तिहारे हम,
राखिहौ हमे तौ शाभा रावरी बढ़ाइ हैं।
तजिहौ हरषि कै तौ बिलग न शोचै कछु,
जहाँ जहाँ जैहैं तहाँ दूनो जस गाइ हैं।
सुरन चढैंगे नर सिरन चढैंगे पर,
'सुकवि अनीस' हाथ हाथ मे बिकाइ हैं।
देश मे रहैंगे परदेश मे रहैंगे काहू,
भेस मे रहैंगे तऊ रावरो कहाइ हैं ॥४८॥

टीका—अप्रस्तुत पुष्प पक्षे—फूल की उक्ति बृक्ष सों। हे बिटप। मेरे प्रभु याको कान दै भला सुनिये तौ कि हम तिहारे हैं, यदि हमैं राखि हौ तौ रावरी ही शोभा की बृद्धि करैंगे अर्थात् जो देखैगा यही कहैगो कि क्या यह बृक्ष बिकसित है। यह कोऊ न कहैगा कि इस बृक्ष में कैसे फूल बिकसित

है। यदि तजोगे अपने सों अलग करोगे तो कछू बिलग न मानैंगे, जहाँ जहाँ जैहैं तहाँ तहाँ दूनो दूनों तुम्हारो जस गावैंगे। देवतन के ऊपर चढ़ेंगे, अथवा नरन के सीस पै चढ़ेंगे, किंवा हाथ हाथ में बिकायँगे, देश में अथवा परदेश में अथवा काहू भेस में रहैंगे अर्थात् माला आदि ह्वै, तऊ तुम्हारेई कहावैंगे। जो कोऊ देखैगो यही कहैगो कि इस वृक्ष को फूल है।

प्रस्तुत निज प्रभु पक्षे—दास की उक्ति। हे विटप, प्रभु! अर्थात् विटन के पालन करन हारे प्रभु हम तिहारे हैं, यदि राखोगे तो रावरी ही शोभा बढ़ाय हैं। हरषि कै त्याग करोगे तो कछू बिलग न मानेंगे, जहाँ जहाँ जायँगे तहाँ तहाँ दूनो जस गान करैंगे। अर्थात् कहूँ निंदा न करैंगे। देवतन के शिर पै चढ़ैंगे किंवा नर मनुष्य लक्षण करि राजन के सीस पै चढ़ैंगे अर्थात् देवता और राजा लोगन के शिरोमनि होयँगे। अथवा हाथ हाथ में बिकायँगे अर्थात् इत उत भागे फिरेंगे, देश में विदेश में अथवा काहू भेस में रहैंगे, तऊ रावराइ कहावैंगे। इहाँ विटप और पुष्प अप्रस्तुत, और विटप प्रभु और दास प्रस्तुत दोऊ में श्लेष साधारण, याते प्रस्तुताप्रस्तुत अलंकार ॥४८॥

कवि—दास (श्लेष)

दंडक—गजराज राजे बरबाहन की छबि छाजै,
समरथ वेश सहसनि मन मानी है।
आयसु करै हैं आगे लाइ गुरजन गन,
बस मे करत जो सुदेश रजधानी है।
महा महाजन धन लै लै मिलै श्रम बिनु,
पदुमन लेखे 'दास' बास या बसानी है।
दरपन देखे सुबरन रूप भरी बार
बनिता बखानी है कि सेना सुलतानी है ॥४९॥

टीका—दास कवि की उक्ति कि यह बारबनिता वेश्या है कि सुलतानी सेना है। बारबनिता पक्षे—गज राज राजे—कहै गजराज कैसी राजे अर्थात् गजगामिनी है। बाहन की छबि कहै भुजलतानि की शोभा छाजे है। अथवा धनिन को दियो हाथी और घोड़े जाके दरवाजे पै बिराजैं हैं। समरथ वेश सब कहैं समाचार रथ लोक में बहुत प्रसिद्ध है, वेश सुंदरता सहसनि कहैं हजारन के मन में बसी है अर्थात् हजारन मनुष्य जाकी अभिलाषा राखे हैं। अथवा भूषन बसन समर्थन कहै धारन करि हजारन के मन को मोहै है। गुरजन वाकी माता और पिता भाई आदि आगें है बुलावैं हैं। बस मैं करत

ह्य करि लेय हैं जो देश और राजधानी कों। महा महाजन०—बड़े बड़े महाजन साहूकारे और धनी बिना श्रम उद्योग ही सों रत्न हीरा मोती आदि धन ले लै जाको मिलै हैं कहै जाके निकट आवै हैं। पदुम ले धन को नहीं लेरवै है, यह बात देश देश म फैलि रही है कि यह बेश्या ऐसी रति चातुरी है कहै आसन आदि कोकंकला मे प्रवीन है कि असंख्य धन की अभिलाषा नहीं करै है। जाको भाग्य को उदय होय है वाकों मिलै है। सु दर बरन लावण्य ओर रूप कुच कपोलादि और युवावस्था सों भरी काम रस सों माती दर्पण में अपनी प्रतिअगन की सुन्दरता देखि रही है।

सुल्तानी सेना पक्षे। गजराज राजे—गजराज हाथी बर श्रेष्ठ बाहा घोड़े बिराजैं हैं। समरथ बीर ल्गा को बेश सहसनि हजारा के मन म खटकै है अथात् ऐसे ऐसे बीर हैं कि एक एक जोधा हजारन क बध करिबे में समर्थ हैं। आयसु करै हैं—हाँक दै रहे हैं गुरजन गन अपने अपने बरतादन कों आगे लिये, जे देश आर राजधानी अपने आधीन करि लेय हैं। बड़े बड़े महाजन धन लै लै बिना श्रम के मिलैं हैं, पदुम पर्य्यंत धन की इच्छा नहीं राखे हैं अर्थात् कोऊ धन दै के उनसों पनाह चाहै, बिना शरण गये नहीं अभिलाषा करै है। ऐसी कीत्ति देश देश में फैलि रही है। दरप न देखें—काहू राजा को गर्ब नहीं देखि सकै हैं। सुबरन रूप भरी—सोना चाँदी सों पूरित है सेना। इति ॥ ४९ ॥

(अथ तीनि अर्थ)

दण्डक—पानिपके आगर सराहैं सब नागर,
कहत 'दास' कोसतें लख्यौ प्रकास मान मैं।
रज के सँजोग तें अमल होत जप तप,
हरि हितकारी बास जाहिर जहान मैं।
श्री को धाम सहजे करत मन काम थकै,
बरनत बानी जा दलन के बिधान मैं।
एते गुन देखे राम साहिब सुजान मैं की,
बारिज बिहान मैं की कीमति कृपान मैं ॥५०॥

टीका—इहाँ एक कवित्त में रामचन्द्र और प्रभात कालीन कमल और कृपाण खड्ग को अर्थ श्लेष करि निकसै है। दास कवि की उक्ति, एते गुन रामचन्द्र और प्रभात के बिकसित कमल अथवा कृपान खड्ग में देख्यो है।

रामपक्षे—पानिप के—पानिप शोभा के आगर कहैं अग्रगामी अर्थात् सौन्दर्य्य में पहिले श्रीरामचन्द्र ही की गणना होय है। सराहैं श्लाघा करते हैं सम्पूर्ण नागर

नगर के वासी अथवा चतुर जाकी रूप को पहिचान है। दास कवि की उक्ति। कोश भरे तें प्रकाशमान कहे शोभायमान मे अपने नयन मो फेरयो हैं। जाके रज कहे चरन के धूरि मों जप तप अमल कहे निर्मल होय है अर्थात् जाके चरन की रेणु जप, तप, यज्ञ आदिक कों पवित्र करे है तो यादि उन जप तप करन हारे कों पूर्व पुन्य के उदय सों लाभ होय नहीं जानि परे है ताको कहा फल होत है। हरि हितकारी—हरि सुग्रीवादि बानर के हित कहे राज्य के करावन हारे अथवा संपूर्ण जीवन में बानर निषिद्ध जीव है, तिन्हूँ को हितकारी कहे मुक्ति देन हारे। जीव को परम हित मुक्ति ही है। अथवा हरि इंद्र ताको हित कारन अभिप्राय यह कि गौतम के शाप बस सहस्र योनि के बदले सहस्र नेत्र पायो, अथवा इन्द्रादिक देवता को यज्ञ भाग रावण हरि लियो ताको बध करि फेरि यज्ञ भाग के भागी कियो—अथवा हरि सूर्य ताको हितकारी कहे सूर्य वंश मे अवतार धरि संपूर्ण वंश और नगरवासिन को बैकुंठ दियो। वंश को उद्धार मे यह हेतु है कि जो रामचन्द्र सों पहिले भये सूर्य सें लेकर दशरथ पर्यन्त और पीछे अपनी सों लेकर सुमित्र ताईं सब को उद्धार कियो, या सों सूर्य के हितकारी रामचन्द्र भए। बास जाहिर जहान मे—बास स्थान श्री अयोध्या जो जगतभरे में प्रसिद्ध और धन्यवाद है। यथा श्री गोसाईं तुलसी दास "धन्य अवध जेहि राम बखानी"। श्री को धाम—श्री शोभा और संपत्ति ताको स्थान कहे शोभा और संपति श्री राम ही में एकान्त सेवन करे है, अथवा श्री लक्ष्मी के निवास को स्थान है। श्री रामचन्द्र विष्णु को अवतार है। अथवा श्री लक्ष्मी को अवतार श्री जानकी जी तास निवास को स्थान श्री रामचन्द्र हैं, क्योंकि पतिनायक श्री रघुनाथ और स्वकीया श्री जानकी जी को कविन ठहरायो है। सहजे मनोभीष्ट देय है। जैसे विभीषन सुग्रीवादि को राज्य पद असंभव ताको बिना परिश्रम अर्थात् मित्र के अर्थ आपुही बाली और रावण को बध करि। यद्यपि लक्ष्मण जी कहो कि विजय के अनंतर इनको राज्य देबो नीति विरुद्ध, तथापि निर्लोभ है उनहीं को राज्य दिये। थकै बरतन बानी—जाके दलन के कहे रावणादि के मारिबे के बिधान बर्णन करिबे में बानी सरस्वती थकि जाय हैं अथवा जाके दलन कहे सेना के बिधान गणना करिबे में बानी सरस्वती थकि जाय हैं।

बारिज बिहान पक्ष—पानिप के आगर—पानिप शोभा के आगर कहैं शोभायमान पदार्थ मे अग्रगण्य संपूर्ण नागर चतुर जन जाके लावण्य अथवा जेहि प्रभात कालीन कमल कों सराहे तारीफ करे हैं। कोश कमल को मध्य भाग तासों प्रकाशमान देखि परे है। रज के संयोग ते—रज जो है पराग ताके

सयोग तें अमल कहैं स्वच्छ होय है। जप तप और हरि जिष्नु—ताको हितकारी है। बहुत मनन के प्रयोग में कमल को होम होय है और बिष्नु कों अतीव प्रिय यातें हितकारी कह्यो। नाम जाहिर—बास सुगंध संसार में प्रसिद्ध है अथवा बासगृह जल रूप जगत में बिदित है। श्री को धाम—श्री लक्ष्मी ताकों धाम कहैं निवास स्थान है। सहजे करत०—सहज मनको काम की ओर अर्थात् उद्दीपन करै है। काम के पंच बाण मे कमल भी एक बाण है। यथा—"इन्दीवरमशोकं च चूतं च नवमल्लिका। नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायका ।" थकै बरनत—जाके दल कहैं पखुरी ताकी रचना के बर्णन में बानी सरस्वती अथवा कवि को बचन थकि जाय है ॥इति॥

कृपाण पक्षे—पानिप कहै पानी तामें आगर अर्थात् अत्युत्तम जामे पानी दीन गई है। सम्पूर्ण चतुर जन जेहि खड्ग को सराहैं कहै तारीफ करै हैं। कोश लोक में मढ अथवा मियान जामें तरवारि रहै है वाकों कहै है। वाहू में रहिबे पर प्रकाशमान कहैं दर्पयमान है। रज के संयोगतें—रज कहै भस्म ताके संयोग तें अमल होय है, जब खड्ग में मुर्चा लगि जाय है लोग राखी लगाय साफ करै हैं। जपतप हरि हित कारी०—जप और तप किए सें हरि हित कारी बैकुंठ धाम जोगिन कों मिलै है। याकी धार सों जाकों शिर पवित्र भयो अर्थात् रण में सम्मुख जूझि गयो वाको भी वही लोक मिलै है। यथा—

> द्वावेव पुरुषौ लोके सूर्य्यमडलभेदिनौ।
> परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हत ।

श्री को धाम—श्री लक्ष्मी ताको धाम कहैं गृह में निरा श्रम भरि देय हैं। मन काम कहै मनोभीष्ट कों करत है। थकै ब नत बानी जाके दलिवे के बिधान कों बानी सरस्वती जू भी थकि जाय है ॥ ५०॥

कवि—गोविंद

> बतिया मन मोहनी सोहै 'गोविंद'
> भली छबि नेह नवीन सनी।
> अवनी की सबै अँगना मै अहै,
> उजियारी जगामग जोति घनी।
> बर अम्बर मै सुप्रकासित है,
> सुषमा कवि कौन पै जात भनी।
> कमनी नव बाल बनी सजनी,
> किधौ दीप की माल रसाल बनी ॥५१॥

टीका—सखी की उक्ति श्री कृष्णचन्द्र सों संदेहापन्न श्लेष करि नायिका के लावण्य का वर्णन करैहै। कमनीय कहैं रमणीय नवयौवना नायिका है, अथवा दीपक माल है। नायिका पक्षे—हे गोविन्द मनमोहनी बातनि करि मन को मोहै है। भली विधि, आछी भाँति नवीन स्नेह सों पगी है। अवनी को मने- अवनी को कहै संपूर्ण अंग जाको शोभित है, अंगना नायिकागन में जाके अंग की उजियारी घनी जगमगाय है। वर अम्बर में वर कहै श्रेष्ठ वसन में सुन्दर शोभित होय है जाकी सुषमा कहै परमशोभा, कौन कवि पै कह्यो जाय है।

दीपक पक्षे—हे गोविन्द श्रीकृष्ण चन्द्र जू जेहि दीपक में बतिया कहें बाती मनको मोहै है, और भलीभाँति नेह कहे तेल सों पागी है। अवनी पृथ्वी में अंगना में जाकी उजियारी की जोति जगमगाय है। वर अंबर में—वर कहे श्रेष्ठ अम्बर आकाश में सुन्दर प्रकाशित है अथवा वर कहैं श्रेष्ठ अम्बर वस्त्र में प्रकाशित है लोक में फानूस कहे तामें धरयो है। सुषमा कवि—सुषमा परमशोभा कौन कवि पै कह्यो जाय है अर्थात् काहू सों नहीं कहि जाय है॥ ॥

कवि—केशवदास

सवै०—लोग लगे सिगरे अपमारग बात भली बुरी जानि न जाई।
चंचल हाथिनि को सुखदा अचला चित पद्मनि को दुखदाई।
हंस कलानिधि सूर प्रभा हरे खंड सिखंडिन की अधिकाई।
'केशव' पावस मास किधौं अविवेक महीपति की ठकुराई॥८०॥

टीका—केशवदास कीउक्ति कि पावस वर्षा के मास हैं अथवा अविवेकी राजा की ठकुराई है।

पावस मास पक्षे—लोग लगे सिगरे अपमारग—सम्पूर्ण जन राह को छाड़ि अपमारग कहे बिना राह के चले हैं। जथा गोसाईं तुलसीदास— "हरित भूमि तृण संकुल समुझि परै नहीं पंथ।" चारों ओर से हरित तृण छाय लेय है यासों मार्ग नहीं जानि परै है। बात भली बुरी—बात कहै वायु भली बुरी पुरवाई, पछियाँव, दखिनहर उतरौंही नहीं जानि परै है अर्थात् वर्षा में वायु सब बहै है कछु नियम नहीं है। चंचल हस्तिन को—चंचला बीजुरी और हाथिन को सुखदाई है। अचला धरनी चित कहै सब भाँति सों सचेत है। पद्मिनि को दुखदाई—पद्मिनी कमलिनी को दुख देय है। अर्थात् मलिन जल सों सूखि जाय हैं यातें दुखदा कह्यो। हंस कलानिधि—हंस कलानिधि चन्द्रमा और सूर कहे सूर्य्य की प्रभा कांति कों हरे हैं अर्थात् हंस वर्षा में मानसरोवर त्यागि अन्यत्र निर्बाह करै है और चन्द्रमा सूर्य्य मेघ की घटनि सों निरन्तर आच्छादित रहै है। खंड जूथ जूथ शिखंडिन कहै मयूर

गन की अधिकाई होय है। अभिप्राय यह कि स्याम घटा देखि मयूरगन अति आनन्दित ह्वै नाचै है। यथा "लछिमन देखहु मोरगन नाचत बारिद पेखि।"

अबिबेक महीपति की ठकुराई पक्षे—लोग लगे सिगरे अपमारग सम्पूर्ण मनुष्य जाकी अविवेकता देखि निर्भय ह्वै सनातन पथ छोडि कुमार्ग चलै है। बात भली बुरी अर्थात् कोनेउ बात की ठेकाना नहीं जो जैसई चाहै वैसई बकै है। चंचल हस्तिनि—चंचला हस्तिनी कहै स्वैरिणी बनितान को सुखदाई है अर्थात् जाके राज्य में व्यभिचार का कुछ भय नहीं है। अचला चित पद्मिनि०—अचल है चित्त जाको ऐसी जो पद्मिनी पतिव्रता स्त्री हैं ताकों दुखदाई हैं अर्थात् दुष्टन की श्रेणी प्रबल काहू के घर नीकी स्त्री सुनी वाके पातिव्रत्य भंग करिबे की उपाय करै हैं। हंस कलानिधि—हंस परम हंस, कलानिधि तेजस्वी और सूर कहै सावतन की प्रभा दीप्ति कों हरै है अथात् कोऊ नहीं आदरै है। खंड शिखंडिन की शिखंडी०—नपुंसक नटबिट कौतुकिन की अधिकाई है ॥५२॥

कवि—शंभु

सवै०—मैलो कै डारत पीतपटा घर जानन पैए बोलावन धावत।
लाल मलीन ह्वै जात जबै जब बारहिं बार सनेह लगावत।
धाइए औ रहिए 'कवि संभु'ए धोइबो मो पै नहीं बनि आवत।
तूँ कलपावत ए री भटू हम सावरे रंगन हो कल पावत ॥५३॥

टीका—संभु कवि की उक्ति। रजकी दूती श्री कृष्णचंद्र को वृत्तान्त नायिका सों श्लेष करि कहै है कि हे भटू यह धाइबो मो पै नहीं बनि आवै है काहू और सों धाइए। मैलो करि डारै है पीत पट पीतांबर कों। घरताईं जानैंहूँ नहीं पावती हौं, बुलाइबे के लिये फेरि धावै है। ए लाल बस्त्र जो मैं नित्य धोय लावती हौं इसी हेतु मलिन ह्वै जाय है। बार केशनि में सनेह तेल लगाया करै है। यह अनोखी बानि तेरी मोकों नहीं भावै है तू कलपावत कहै कलप करवावै है। धोबी कपड़ा पै कलप देय है। और मैं सांवरे रंग जो तू रोज रोज बसन मलीन करि डारै है, वासो नहीं कल कहै सावकाश पावती हौं।

दूतपन नायक वृतान्त पक्षे। हे भटू तूँ कलपावै है कहै लाल जी को तरसावै है अथवा तूँ कल कहै सावकास श्रीकृष्णचन्द्र सों पावै है। और मैं नहीं कल पावती हौ। जब देखो तब मोकों तेरे मिलाप के लिये घेरे रहै हैं। मैलो करि डारत०—बार बार मेरे घर आय अथवा मोकों अपने घर बुलाय

पीत पट पीताम्बर मैलो करि डारें। हों घर तक जान नहीं पावती हौं धाय कै फेरि बुलावै हैं लाल जू। अब मैं बारहि बार कहै आजु नहीं काहिह प्यारी तो सों मिलैगी, यह कहि स्नेह प्रति उरझावती बिलम्ब लगावती हो तो मलीन ह्वे जाय है कहै अधीरज ह्वे जाय हैं। याम यह व्यंग कि अब बिलम्ब न कर, तेरे बिना लाल बहुत बेहाल हैं ॥ ५३ ॥

कवि—रघुनाथ

सवैया—जीवन बाकी कछू न रह्यो तन भौंर भरे सँग के सब जी हैं।
छीन महा है सरोज बिलोकिए दीन ह्वे पच्छी टरे जित ही हैं।
सूने भए प्रतिकूल सबै थल जे 'रघुनाथ' बिहारन पी हैं।
सीरी करो घनस्याम तची बृज बाम सरोवरी ग्रीषम की है ॥५४॥

टीका—दूती को बचन श्रीकृष्णचन्द्र सों, बृज बाम गोपिन के विरह निवेदन ग्रीष्म ऋतु की सरोवरी को श्लेष करि वर्णन करै है। बृज बाम पक्षे—जीवन बाकी—तन में जीवन कहै जीवन कछू बाकी नहीं रह्यो है। भौंर भरे—भौंर भरे कहै भोर प्रात काल ताई भी संग के सब परिवार आदि जावेंगे। अर्थात् एक हू दिन न जीवेंगे। छीन दूबरी अति ह्वै रही, सरोज कमल देखिए, जैसे सरोज बिना जल के सूखि जाय है ऐसे ही वाकी दशा है, अथवा सरोज कहै रोगयुक्त देखि कै दीन दुखी ह्वे पक्षी कहै पर वाले जित तित टरि गये। अथात् यह दुख नहीं देखि और सहि जाय है, जे प्रतिकूल कहै बैरी रहै वै लोग भी, सूने कहै शोकार्त्त ह्वे रहे हैं। अथवा सूने भये सूनो लखाय परै है और प्रतिकूल कहै जो सुख को देत रहै वह थल अब दुखदाई भए। सीरी करो घन स्याम—हे घनस्याम श्रीकृष्णचन्द्र अपनो दरस दे अब वाको शीतल करो कहै जुड़वावो। घनश्याम सजल मेघ सब जीवन को सुख देय है तुम को भी सब कोई घनश्याम कहै हैं शीघ्र ही चलि आनंदित कीजिये।

ग्रीष्म की सरोवरी पक्षे—जीवन जल वामें कछू बाकी कहै अवशेष नहीं रह्यो। भौंर भ्रमर जो भरे हैं, सँग के हमेसा के साथी क्या जीवैंगे, काहू करि अर्थात् नहीं जीवैंगे। सरोज कमल बहुत ही छीन ह्वे रह्यो है अर्थात् सूखिगयो है। दीन दुखी ह्वे कै पक्षी गन जहाँ तहाँ उड़ि गये। सूने ह्वे गए प्रतिकूल जो वासों कूल जित तित क्षेत्रादि सींचिबे को अर्थ गयो रह्यो अथात् वाके सूखि जावके कारन सब कूल आदि जल के स्थल जो वासों कढ्यो रह्यो सो भी सूखि गयो। जहाँ अपने अपने प्रियतम के साथ बनिता गन बनि बनि बिहार जल क्रीडा करती रहीं। हे घनस्याम सजल जलद यह ग्रीष्म ऋतु की सरोवरी को

फेरि शीतल करो, तुम्हारे बिना याको वैसे ही करिबे को कोऊ समथ नहीं है ॥ ५४ ॥

दंडक—सोहै जुग चरन बरन बृत्त पाटी चारु,
गुनन सों बीनी महा महिमा के ठाट की।
राजति अनूप रंग रंगनि अनेक भरी,
परम नरम पद सद सुख घाट की।
प्यारी लगै भोग कर ताको कहै 'रघुनाथ'
नित चित बसी ही ते नासक उचाट की।
बिधिना की सृष्टि ऐसे बाट की बनी है देखो,
भाँट की कवित्त जैसे खाट आठ काठ की ॥५५॥

टीका—इस कवित्त में ब्रह्मा की सृष्टि, भाट की कवित्त और आठ काठ की खाट कहे पर्यंक को अर्थ श्लेष करि निकरै है। ब्रह्मा की सृष्टि पक्षे—सोहै जुग चरन पद—शोभित होय है चारयो जुग सत्य युग, त्रेता, द्वापर, कलियुग को चारि चरन। अर्थ यह है कि सत्य युग में धर्म के चारयो पाँव अबाधित रहे, फेरि त्रेता आदि में एक एक घटन लगे। त्रेता में एक घट्यो तीन रहै, द्वापर में द्वै घटे द्वै रहै, कलियुग में तीन घटे एक रह्यो। और ताही के अनुसार बरन बृत्त पाटी चारु कहै रमणीय, अर्थात् सत्य युग में सत्य युग के अनुसार चातुवर्ण्य कहै ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को आचरण रह्यो। गुनन सों बीनी ब्रह्मा की सृष्टि रजो गुण, तमो गुण, सत्व गुन सों बीनी है कहे इन्हीं ती यो गुन सों रची गई है। महामहिमा के ठाट की—बड़ी महिमा कहै माहात्म्य जाको है। राजति अनूप रंग—अनेक प्रकार के रंगन अर्थात् गौर, स्याम, सित, पीत, चित्र कपिश आदि सों पूरित अपूर्व शोभा लखाय परै है। परम नरम पद—परम नर्म हास्य को स्थान अर्थात् निंदा स्तुति को आस्पद। सद सुख—समीचीन सुख कहै बिलासादि को घाट है। प्यारी लगै भोग—कर्ता जीवात्मा को भोग करते प्यारी लागै है। निरंतर चित्त में बसी रहै है और उचाट को नाशक है, अर्थात् सांसारिक अनेक भाँति की बस्तु लखि कबहूँ उचाट कहै बिराग हृदय में न होवै।

आठ काठ के खाट पक्षे—जामें जुग कहै चारि चरन लोक में पावा कहै हैं, और पाटी चारु कहै रमनीय शोभित होय है, बरन बृत्त कहै रंग सों युक्त अर्थात् नाना प्रकार के चित्र विचित्र रंग सों रंगी है। गुनन सों बीनी—गुन रज्जु को भी कहै है लोक में रस्सी प्रसिद्ध तासों बीनो, बड़ी नीकी भाँति कहै चौकी आदि काढ़ि कै। राजति अनूप रंग कहै पावा और पाटिन में अपूर्व

रङ्ग लसै है—परम अतीव नरम कहे कोमल, पद पावन को सुख देन हारा। भोगकर्त्ता कहे यहि पर्य्यङ्कपै सोवनहारे को प्यारी लगै है। नित्य ही चित्त में बसी रहै और हृदय सों उचाट को मिटाय देय है अर्थात् पलिकापै पाँव धरत ही आँखिन में निद्रा आय जाय है।

भाट के कवित्त पक्षे—साजै जुग चरन—चारि चरन कहै छन्द के चारि पाद और वर्ण वृत्त की परिपाटी सों साजै। गुनन सों—गुण प्रसाद, माधुर्य, ओज, तिन सों रची कहे जाकी रचनाई ग्रथित है। महा महिमा—प्रस्तुत राजादि के जस को ठाट कहे गणना जामें है। अनेक रंग अर्थात् अलंकारन सों भूषित अपूर्व शोभा को प्रगट है। परम नरम पद०—जामें कोमल पद को सन्निवेश, सुख देन हारो। प्यारो लगै तासु—रघुनाथ कवि की उक्ति, रचना जो काव्य को करनहारो है ताको प्यारो लगै है। अथवा भोग करता विवेचक सहृदय ताको प्यारो लागे है। निरन्तर चित्त में बसी हृदय सों उचाट को दूर करि अलौकिक आह्लाद देत है। इति श्लेष प्रकरणम् ॥ ५५ ॥

कवि—रघुनाथ (वक्रोक्ति अलंकार)

सवैया–पौरि मे आपु खरे हरि हैं नग है न कछू हरिहैं तो हरैं ने।
वे सुनौ कीने कोहै बिनती सुनो है बिन ती निय कौन करैं ने।।
देवे को लाए हैं माल तुम्हैं 'रघुनाथ' लै आए हैं माल लरैं ने।
छाँडिए मान वे पापकरैं कहै पाप करैं कहैं औसि करैं ने ॥५६॥

टीका—अथ वक्रोक्ति प्रकरणम् ॥ दूती की उक्ति मानवती नायिका सों। श्रीकृष्णचन्द्र तेरे मनायवे के अर्थ पौरि में खडे हैं। यह सुनि वामा श्लेष करि वक्रोक्ति करै है कि मेरो कछू नग नहीं, यदि हरिहैं अर्थात् चोरी करेंगे तो हरैं कहे चोरी करें। दूती हू हे प्यारी सुनो बिनती करै हैं अर्थात् अपने अपराध

१—श्लेष अथवा काकु (स्वरभेद) से जहाँ किसी के कहे हुए शब्दों का अर्थ पलट कर उत्तर दिया जाय, वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है। जैसे उक्त पद्य में दूती द्वारा प्रयुक्त हरि, बिनती, माल और पापकरैं, इन व्यर्थक पदों का नायिका ने दूसरा ही अर्थ ग्रहण करके उत्तर दिया है। यह श्लेष द्वारा उक्ति की वक्रता का उदाहरण है।

पौरि = द्वार। हरि है = श्रीकृष्ण हैं। हरि हैं = हर कर ले जायँगे। बिनती = प्रार्थना, बिन ती = बिना स्त्री के। माल = उपहार सुन्दर वस्तु। माल = योद्धा। पा पकरैं = पैर पकड़ते हैं। पाप करैं = पाप करते हैं। औसि = अवश्य ॥५६॥

की छमा करावै हैं, बामा—बिन ती अथात् बिना स्त्री के हैं तो ब्रज में बहुतेरी हैं काहू सो ब्याह करैं जाय। दूती—ताकों माल देबे को लाए हैं, बामा—माल याधा लाए तो बासा जाय कै युद्ध करैं। दूती—तेरे पा पाय परैं मान छोड दे। बामा—यदि पाप करिबे को कई यामें मेरो कहा करैं जाय। इहाँ नायिका के मान छोडायवे को दूती वाक्य कहै, वाही को श्लेष करि नायिका और ही अर्थ करि कहै है यातें बक्रोक्ति अलकार ॥५६॥

सवैया–भावतो तोहि बुलावत है मै न बोलति काहे तौ बोलति हौ सुनि।
बूझो चहै कछु बात के भेद को बात के भेद बईध कहै गुनि॥
ऊतरु दीजिए सूधे बलाइ ल्यों ऊतर है 'रघुनाथ' बसे मुनि।
का कहती हौ जू का कहिबे को है काक कहौ कहि आई है सो सुनि॥५७॥

टीका—दूती को बचन नायिका सों—भावतो प्यारे जू तोकों बुलावै हैं, नायिका—क्या मैं नहीं बोलती? बोलती हौं, तोको नहीं सुनि परै है सुनु। दूती—प्यारा तो सो कछू बात के भेद सुनो चाहै, नायिका—याको भेद मैं नहीं जानती बैद्य जानै है। दूती—मैं बलाइल्यौं सूधे क्यों नही ऊतर देती, नायिका—उत्तर दिशा में ता मुनिगन बसै हैं। दूती—का कहती हौ अर्थात् कहा कहै है, नायिका—का कहिबे को है यदि तू का कहै तो हमहूँ सुनती हौं। काक ही होवैंगे ॥५७॥

सवैया–ऊग्यो[1] जो भानु तौ ऊगन दे अरविंदन मैं अलिहूँ सचुपैहैं।
कुंज गुलाबन के चटकै चकई चकवा मनमोदन मै हैं॥
लेहु भले सुख बासर के रजनी सजनी अधिकी अधिकै हैं।
ए ब्रजचद सबै ब्रज के हितू आज गये फिरि कालि न ऐहैं॥५८॥

टीका—दूती मान छोडायवे के अर्थ नायिका को मनावै। भानु उदय भयो, नायिका—यदि उदयभयो तो ऊगन दे, अरविंद कमल में राति बँधे भ्रमर अब सचुपावैगें अथात् कोश सों निकसि जित तित और फूलन पै गुजरैंगे। दूती—गुलाबन के कुंज चटके कहै प्रभात काल के पवन को स्पर्श पाय बिकसित

भावतो = प्रियतम। बात के = बातों के। बात के = बात रोग के। बईध = वैद्य। ऊतरु = उत्तर, जबाब। ऊतर = उत्तर दिशा ॥५७॥

१—इस पद्य में कोई पद द्वयर्थक नहीं, केवल 'ऊगन दे' आदि पदों को नायिका ऐसे उच्चारण करती है कि जिससे नायक के प्रति उपेक्षा भाव द्वारा उक्ति में वक्रता आ जा जाती है, यह काकु वक्रोक्ति का उदाहरण है।

ऊग्यो = उदय हुआ। सचुपैहैं = प्रसन्न होंगे। कुंज = झाड़ियाँ। चटकै = विकसित हुई। बासर = दिन ॥५८॥

भए, नायिका—यह प्रभात चकई चकवा के मन मोद कों बढावैगो। दूती—यदि प्रभात भयौ तौ बासर दिन का सुख अर्थात् विहार जनित सुख लेय, नायिका—हे सजनी [रजनी] में और अधिक सुख अधिकायगो। अभिप्राय यह कि जैसे हमें विहाय सौति के संग पगे ताही सों विलक्षण सुख पाये हैं। दूती—ए बृजचन्द सबके हितू हैं, नायिका—आज गए तो काल्हि फिरि नहीं आवेंगे। इहाँ दूती के वचन को काकु करि और ही अर्थ करै है यातें वक्रोक्ति अलंकार॥ ५८॥

कवि—लाल (चारौं पद में वक्रोक्ति)

दंडक—बात को बिलोको, कत पवन बिलोकियत,
पीतम निहारो, तुम पीवो अन्धकार को।
आए नँदलाल, हम गाहक बजाजी के न,
देखो बनमाली, तौ ल्यावो गुहि हार को।
बोलै बलबीर, तो बिदारे कंस केसी जाय,
ऐंठी कित जात, कियो ठीक किहि दार को।
ऐसे बहु भाँति बतराय सतराय थकी,
दूतिका न पावै वाके बातनि के पार को॥५९॥

टीका—दूती को वचन मानवती वनितासों। हे प्यारी बात जो प्यारो कह्यो है वाकी तरफ बिलोकै, नायिका—कहूँ पवन भी लखाय परै है बावरी तो नहीं भई है। दूती—पीतम को निहारो कहै उनकी सौंहैं चितवै, नायिका—तम अंधकार को तूँ पीवै मो सों नहीं पान कियो जाय है। दूती—आये नँदलाल श्री कृष्णचन्द्र आये, नायिका—हम बाजार में कछू बजाज के दूकान सों नहीं चाहै हैं, जो कोऊ बजाज सों कछू वस्त्र आदि लियो चाहै वापै जायबो उचित है। दूती—ए जू दलाल को मैं नहीं कहती बनमाली कों कहै हैं, नायिका—यदि बनमाली कहै बन को माली बागवान को कहै तो फूलन को हार गुहि लावै। दूती—बलबीर कहै बलभद्र को भ्राता हैं, नायिका—यदि बलबीर है तो कहूँ कंस और केशी आदि को विदारन करै जायँ, यहाँ कहा काम है। दूती—क्यों ऐंठी जाय है सूधे क्यों नहीं उत्तर देय है, नायिका—ठीक सूधो किहि दार को

बात = वार्ता, वायु। कत = कहाँ। पीतम = प्रियतम (पी + तम) अन्धकार को पीकर। नँदलाल = श्री कृष्ण, (न + दलाल) दलाल नहीं। बन माली = श्रीकृष्ण, बगीचे का पोषक। बलबीर = बलदेव जी, पराक्रमी। कंस केशी = इस नाम के दैत्य। बतराय = बातें कर के। सतराय = क्रोध कर॥५९॥

किये। एहि भाँति दूती बतराय और सतराय कहै तेह भरि थकि गई, परंतु नायिका सों बातन से पार नहीं पावै है। इहाँ दूती के बचन को और ही अर्थ किय यात वक्रोक्ति अलंकार ॥५९॥

कवि—घनश्याम

कवित्त—खोलो जू केवार, तुम को यहि बार, हरि-
नाम है हमार, बसो कानन पहार मैं।
माधौ हों तो भामिनि, तौ कोकिला के माथे भाग,
भोगी हौ छबीली, जाय पैठो जू पतार मै।
नायक हों नागरि, तौ लादो किन टाँडो जाइ,
हौं तौ 'घनस्याम' जाय बरसा जू हार मै।
हौ तो बनमाली जाय सींचो किन बाग बारी,
मोहन हौं प्यारी बसो मन्त्र अबिचार मै ॥६०॥

टीका—राधा जू सों लाल जू के उत्तर प्रत्युत्तर। कहूँ अनत सों आय राति मैं प्यारी के घर जाय श्रीकृष्णचन्द्र कह्यो ए जू केवार खोलो। राधा कह्यो तुम को है? यहि बार के खोलिबे को कहो हो। कृष्णचन्द्र—मेरा नाम हरि है, राधा—यदि तुम हरि हो तो कानन बन और पहार में बसो जाय, यहाँ कौन काम तुम्हारा है। हरि बानर और सिंह को भी कहै हैं। कृष्ण—हे भामिनी माधव हौ मेरो नाम माधव है, राधा—यदि माधव बसंत हो तो कोकिलान का भाग जग्यो। कृष्ण—हे छबीली हम भोगी हैं, राधा—यदि भोगी सर्प हो तो पाताल में निवास करो जाय। कृष्ण—हे नागरि हम नायक हैं, राधा—यदि तुम नायक हो तो बनिज के लिए कहूँ जाय टाँडा लादा करो। कृष्ण—हम घनस्याम हैं, राधा—यदि घनस्याम हैं तो कहीं खेत अथवा ऊसर में जाय क्यों नहीं बरसत हैं। कृष्ण—हम बनमाली है, राधा—तो बाग फुलवारी क्यों नहीं सींचते। कृष्ण—हे प्यारी हम मोहन हैं, राधा—यदि मोहन हो तो मन्त्रन के बिचार में क्यों नहीं बसते यहाँ तुम्हारा कहा काम, हम को कछू प्रयोग पुरश्चरण काहू के वश्य करिबे को नहीं है। इहाँ श्री कृष्णचन्द्र के बचन को और अर्थ करि आन ठहराया यात बक्रोक्ति अलंकार ॥ ६० ॥

केवार = द्वार। हरि = कृष्ण, बानर, सिंह। माधो = श्रीकृष्ण, वसन्त। भोगी = कृष्ण, सर्प। पतार = पाताल। नायक = प्रियतम, स्वामी। टाँडो = बनजारों का झुण्ड। बनमाली = कृष्ण, बगीचे का माली। अबिचार = अभिचार, जादू टोना ॥६०॥

कवि—दास (वक्रोक्ति)

आजु¹ तौ तरुनि कोप कित अवलोकियत,
रितु रीति है है 'दास' किसलै निदान जू।
सुमन न, रीतो यह है है देखे घनस्याम,
कैसी कही बात, मंद शीतल सुजान जू।
सौंहैं करो नैन, हमें आन नहिं आवै करि,
आन के बुझाए, आन बार ही की आन जू।
क्यों है दलगीर, रहि गये कई पीरे पीरे,
एते मान, मान यह जाने बागवान जू ॥६१॥

टीका—नायक मान छोड़ावै है ताका उक्ति नायिका सों। हे तरुनि! आजु कोप कहे क्रोध क्यों लखाय परै है, नायिका—आजु तरुनि वृक्षन कों पकिन कहे पक देखे हैं। यह रितु की रीति है समय पाय किसलय पल्लव फलादि देखिही परै है। कृष्न—सुन्दर मन नहीं है तेरो, नायिका—हे घनस्याम होयगो, जब फल लगै है तो सुमन फूल नहीं रहि जाय है। कृष्न—हे प्यारी कैसी बात कहै है, नायिका—याम तानि ही गुन होय है शीतल, मंद और सुगंध। कृष्न—सौंहैं सामने करो नेत्र को, नायिका—सौंह शपथ के सेवाय और कछू नहीं करि आवे है। आन के बुझाए अर्थात् कोऊ सिखायो है कि ऐसो २ कहि बुझाइयो जाय। सो आन बार कहै और ही बेर की आनि है, आजु तो कछू नहीं है। कृष्न—क्यों है दलगीर काहे को दलन करै है, नायिका—कहूँ वृक्षन में पीरे पीरे दल रहि गयो होयगो। नायक—एते मान ऐसो मान अथवा इतना मान, नायिका—मान लोक में एक वृक्ष होय है, प्रसिद्ध है मान को वृक्ष तो बागवान माली जाने है। इहाँ नायक के वचन को श्लेषकारी और ही अर्थ करि बर्णन, यातें वक्रोक्ति अलंकार ॥ ६१ ॥

१—नागरी प्रचा० सभा द्वारा प्रकाशित 'भिखारीदास ग्रन्थावली' में निम्नपदों में पाठ-भेद है—

कोपकित—कोपजुत (कोंपल युक्त), सुमनन रीतो—सुमन नहीं तो, आनके बुझाये आनबार ही की आनजू—आनन की बूझि आन बीर ही की आनजू।

तरुनि = हे युवती, वृक्षों में। कोपकित = क्रोध क्यों, (को + पकित) फल। सुमन = सुखी चित्त, पुष्प। बात = वार्ता, वायु। सौंहैं = सीधे, शपथ। आन = अन्य। आनबार = अन्य समय। दलगीर = उदास, पत्तों का गिरना। मान = संख्या, प्रमाण। मान = इस नाम का वृक्ष। बागवान = माली ॥६१॥

कवि—श्रीपति (रूपकातिशयोक्ति)

दंडक—एहो बृजराज एक कौतुक बिलोको आज,
भानु के उदोत बृषभानु के महल पर।
बिनु जलधर बिनु पावस गँगन बिनु,
चपला चमक चारु घनसार थल पर।
'श्रीपति' सुजान मन मोहत मुनीशन के,
कनकलता सी देखि ऊँचे से अँचल पर।
तामैं एक कीर चोंच दाबे है नखत जुग,
नाचत फफूल स्याम लोहित कमल पर ॥६२॥

टीका—सखा की उक्ति कृष्णचन्द्र सों अथवा दूती की उक्ति। एहो बृजराज सूर्य्य के उदयकाल बृषभानु के महल पै एक कौतुक आश्चर्य्य लखाय परे है, ताको देखो। जलधर मेघ पावस वर्षाकालीन आकाश के बिना घनसार कपूर के थल पै चपला बीजुरा को चमकिबो देखाय परै है। घनसार थल पै लखाय यामें व्यंग्य है कि बिजुरी श्वेत घटा मैं नहीं देखि परे है और यहाँ घनसार थल पै देखि परै है, आश्चर्य व्यंजित करै है। श्रीपति सुजान—श्रीपति कवि की उक्ति कि मुनीसन के जे जितेन्द्रिय हैं, मन में बिकार कबहूँ नहीं होय है, यह मन को मोहै है, ऊँचे पर्वत पै कनकलता की भाँति देखि परै है। तामें एक शुक चोंच में द्वै नखत दाबे है और स्याम लोहित कमल पै फफूल तिलफूल नाचि रह्यो है। श्री राधा जो पिता के महल के फटिक चबूतरों पै चढ़ि इत उत बिलोकिबे के अर्थ खड़ी रही है। वाही समय दूती अथवा सखी कृष्णचन्द्र को वाको लावण्य देखावै है। इहाँ चपला उपमान, देह लता को कनक लता भी उपमान, कीर नासिका को उपमान, नखत जुग सों मोती को, स्याम लोहित कमल, नेत्र को उपमान। नेत्र में स्यामता [तथा] लोहित्य होय है। तिल फूल नेत्र की पूतरी कहै कनीनिका को उपमान। उपमेय को कथन नहीं, केवल उपमान वाचक शब्द को उपादान, याते रूपकातिशयोक्ति अलकार ॥६२॥

कवि—देव

कवित्त—भूपर कमल जुग ऊपर केदलि खंभ,
ब्रह्म की सी गति मध्य सूक्षम मनींदीबर।

उदोत = उदय। जलधर = मेघ। पावस = वर्षा। चपला = बिजली। घनसार = कपूर। अँचल = पर्वत। कीर = सुग्गा। नखत = नक्षत्र। ॥६२॥

तापै है अनत रूप रूप की तरग तहाँ
श्रीफल जुगल मौलि मल्लित मलींदीवर ।
'देव' तरु बल्ली बिसु डालत सपल्लव,
प्रकास पुज जामे जगमगै जाति बिन्दीवर ।
इन्दिरा के मान्दर मे उन्दित अमन्द इंदु,
आनन चन्दिर इंदु मन्दिर मैं इन्दीवर ॥६३॥

टीका—नायिका का लावण्य देखि काहू की उक्ति । भूपर कमल, कमल सो चरन युग । तापै कदली को स्तभ, यातै दोऊ जघन का ग्रहन । ब्रह्म के तुल्य अलक्ष्य गति मध्य कटि, तापै अनत सर्प, यातै रोमावली । तहाँ रूप की तरगैं, यातै त्रिबली । तदुपरि श्रीफल युगल, यातै कुच युग । तापै भ्रमर यातै कुचाग्र, तहाँ देवतरुवल्ली सहित पल्लव के, यातै करयुक्त भुजलता । जामे बिन्दुन की दुति जगमगात है यातै महदी के बिन्दु । इन्दिरा के मदिर मैं उदय को प्राप्त चद्र मुख, यातै भाल मडल मे मुख को ग्रहण । इन्दुमण्डल मे इन्दीवर है कमल, यातै नेत्र युगल । यहाँ केवल उपमान वाचक शब्द सो समता करि वाही के उपमेय को ग्रहण, यातै रूपकातिशयोक्ति अलकार ॥६३॥

कवि—सबलस्याम (रूपकातिशयोक्ति)

दडक—कहा भयो जानै कौन सुदर 'सबलस्याम',
टूटो गुन धनुष तुनीर तीर झरिगो ।
हालत न चपलता डोलत समीरन के,
बानी कल कोकिल कलित कठ परिगो ।
छोटे छोटे छौना नीके नीके कलहसन के,
तिनके रुदन ते श्रवन मेरो भरिगो ।
नील कज मुद्रित निहारि बारि विद्यमान
भानु, मकरंदहिं मलिंद पान करिगो ॥६४॥

टीका—नायक की उक्ति सहृदय सों अथवा सखी की उक्ति सखी सों सभोग जनित दुख देखि बराइनो देय है । सबलस्याम कवि की उक्ति, कि

केदलि = केला । मध्य = कटि । श्रीफल = बिल्वफल । मौलि = मस्तक । मल्लित मलींदीवर = जिन पर भौंरे बैठे हैं देवतरुवल्ली = कल्पवृक्षलता, अथवा 'देव' कवि वाचक, तरुबल्ली = वृक्ष लता। इंदिरा = लक्ष्मी । इंदीवर = कमल । ६३।

गुन = डोरी, गुण । तुनीर = तूणीर, तरकस । हालत न = हिलता नहीं । समीरन = वायु । छौना = बच्चे । विद्यमानभानु = सूर्य के रहते हुए । मकरद = पराग । मलिंद = भौंरा ॥६४॥

कहा भयो अर्थात् क्या भयो और कौन जानै धनुष सो गुन कहै रोंदा छूटि गयो। तूनीर तरकस सो तीर बाण झरिगो अथात् छूट्या। चपलता नहीं हालै है, यद्यपि समीर वायु डोले है। कोकिल के मधुर कंठ म कल बानी परि गई अर्थात् गल रुद्ध भयो यातें नहीं कहै है। और कलहंसन के छोटे छोटे छौनन के रोदन सों मेरो श्रवन भरि गयो। नील कमल जल मैं मुद्रित भानु सूर्य क विद्यमान होयबे पर भी अथात् सूर्य को लखि विकसिबो उचित सो नहीं भयौं। ताहू पै मलिंद भ्रमर मकरद पान करि गयो। इहाँ नायिका मुग्धा ता को प्रथम संभोग सखी सखी सों कहै है कि हम लोगन को भी खबरि नहीं, नायक आय सुकुमारी सो जो यह काम करि गयो, वाकी दशा कहा कहै मृत्यु तुल्य हो रही है, अथवा सखी सखी सों नायक सों वाको जो संभोग भयो है आश्चय ह्वै कहै है कि वाको नायक वाके वयस की समीक्षा निहारै है, बीच ही दूती नायक सों मिलाय दियो, प्रथम समागम जनित रतिदुःख जो वाको भयो और बेखबर ह्वै घर में परी है, ब्रज भरे में फैलि गयो है, यातें भानु विद्यमान और मलिंद को मकरंद पान कह्यो। इहाँ गुन सों अंजन, धनुष सों नेत्र, तीर सों आँसू, चपलता सों वाको देह, कोकिल बानी सों वाको बोलिबो, कलहंसन के छोटे छोटे छौनन सों छुद्र घंटिका, नील कंज मुद्रित कुच बारि विद्यमान। याको अभिप्राय यह कि द्योसकु में बिकास होयबे वालो विद्यमान भानु नायक, मलिंद सों उपपति, उपमान बाचक शब्द को उपादान, उपमेय बाचक को निगरण लक्षणा करि परिज्ञान, यातें रूपकातिशयोक्ति अलंकार ॥ ६४ ॥

कवि—दीनदयालु गिरि 'परमहंस'

दंडक—'दीन के दयाल' ब्रज बीच अचरज हाल,
कहिए कहाँ लौं नाहीं मोपै कहि आवती।
कहै शुकतुंड तें दवानल के बातझुंड,
सर पर हंसन की श्रेनी न सुहावती।
चंपक की दाम नेह सूखि रही घनस्याम,
कंजन के ठाम भौंर भीर न लखावती।
पंकज के अङ्क मै मयंक सोइ रह्यो दीन,
तहाँ मीन तें कलिंदजा की धार धावती ॥६५॥

शुकतुंड = तोते की चोंच। दवानल = वनाग्नि। बातझुण्ड = बवंडर, आँधी। दाम = माला। ठाम = स्थान, ठौर। लखावती = दीख पड़ती है। मयंक = चन्द्रमा। कलिंदजा = यमुना ॥६५॥

टीका—नायिका की विरह श्रीकृष्णचन्द्र सों दूती निवेदन करे है—हे दीन दयालु कहै दुखियान के ऊपर आपु की दया होय है, यह कौन अपराध कियो जासों या पै आप की अनुकम्पा नहीं होय है, यह व्यंग्य। व्रज में आजु में एक अचरज आश्चर्य देख्यो है, मो पै नहीं कहि आवै है, शुक के चोंच सों दावानल की बायु अर्थात् दावानल सम्बन्धी वातावर्त्त, लोक में आँधी प्रसिद्ध है, कढे है और सरपै हमन की शोभा नहीं सोहाय है। चपकली बिनु नेह जल घनश्याम के सुखि रहीं है। घनस्याम में व्यंग्य मेघ जगत को जीवन अपनी धारन सों अवनी लक्षणा करि पृथ्वी के यावज्जीव वसुधा सहित जुड़वावै हैं। हे वृजराज! घनस्याम तुमको भी कहै हैं संपूर्ण उपद्रव सों बचाय अब क्यों नहीं याकी रक्षा करते। कमल के निकट भौरन की भीर नहीं लखाय परे है। पंकज सरोज के अंक में चन्द्रमा दीन सोई रह्यो है। तहाँ मीनतें कलिंदजा यमुना की धार कढ़ै है। इहाँ शुकतुंड आदि उपमान सों नासिकानि श्वास, मुक्ताहार, देह, नेत्र, कज्जल, पानि तल, तामें कपोल नेत्र सों आँसू आदि को आहार्य्य निश्चय, यातें अतिशयोक्ति रूपकालंकार और कलिंदजा के धार को कढिबो मीन तें कह्यो, मीन कार्य, कलिंदजा की धार कारन, सो यहाँ कार्य्य तें कारन को जन्म यातें विभावना संकर होय है ॥६५॥

कवि—सूरदास

अद्भुत एक अनूपम बाग,
जुगल कमल पर गजवर क्रीडत ता पर सिंह किए अनुराग।
हरि पर सरवर सर पर गिरिवर ता पर फूले कंज पराग,
रुचिर कपोत लसत ता ऊपर ता ऊपर अमृत फल लाग।
फल पर पुहुप पुहुप पर पल्लव ता पर शुक पिक मृगमद काग,
खजन धनुष चन्द्रमा पूरन तापर है एक मनिधर नाग।
अंग अंग प्रति और और छबि ताकी उपमा करत न त्याग,
'सूर' स्याम प्रभु पियो सुधा रस मानहु अधरन को बड़ भाग॥६६॥

टीका—सखी की उक्ति श्री कृष्णचन्द्र सों। हे प्रभु स्याम यह अपूर्व बाग है, द्वै कमल पै गजवर श्रेष्ठ हाथी क्रीडा करि रह्यो है, तापै सिंह अनुराग करै है। हाथी और सिंह सों प्रसिद्ध बैर, सो यहाँ परस्पर अनुराग करै है यह अपूर्वता आयो। हरि सिंह तापै सरोवर, तापै गिरि पर्बत, तापै पराग मकरंद युक्त कमल फूल्यो। ताके ऊपर कपोत लसै है, तापै अमृत फल लग्यो है। तापै पुष्प, तापै पल्लव, तापै शुक, पिक कहै कोकिल, मृगमद कस्तूरी और काक है। तापै खजन धनुष और पूर्ण चन्द्रमा राजै है। तापै एक नाग मणि धारन किए बिराजै है।

जुगल कमल सों चरण युग, गजवर सों गज गति ऊरू आदि। सिंह सों कटि, सरोवर सों नाभी, गिरि सों कुच, कमल सों कुचाग्र, कपोत सों कण्ठ, अमृत फलसों ठोढी, पुष्प और पल्लव सों अधर ओष्ठ, शुकमा नासिका, पिक सों बैन, मृग मद प्रसिद्ध बिंदु (तिलक जो) नायिका लोग देती हैं, काक सों काकपक्ष, खञ्जन सों नेत्र, धनुष सों भ्रूभंग, पूर्ण चन्द्रमा सों मुख मंडल, मणि धर नाग सों अरुण माँग युक्त चोटी, उपमेय वाचक शब्द को ज्ञान, यातें रूपकातिशयोक्ति अलकार और सखी बाग करि रह्यो यामें यह व्यंग्य कि बाग ही को संकेत बतायो। अपूर्व बाग करि वर्णन कियो, यातें यह व्यंजित अवश्य बिलोकिबे योग्य और नायिका का कान्ति वर्णन कियो, भाग्यवश ऐसी कामिनी मिलै है, सो तुम्हारे हेतु बाग में लाई हौं, हे रसिक बिहारी वेगि चलि सुधारस पान करो। इन तुमारे अधरन का बड़ी भाग अर्थात् अबही वाको कोऊ अधरपान नहीं कियो, यह व्यंग्य है ॥ ६६ ॥

कवि—दास **(मुद्रा)**

दंडक—'दास' अब[1] को कहै बनक लोल नैनन की,
सारस खंजन बिनु अंजन हराए री।
इनको तौ हाँसी वाके अंग में अगिनि बासो,
लीला ही जो सारो सुख सिंधु बिसराए री।
परे वे अचेल हरे वे सकल चेत हेत,
अलक भुजंगी डसी लोटन लोटाए री।
भारत अकथ करतूतिन न हारि लही,
या तैं घनस्याम लाल तो ते बाज आए री ॥६७॥

1—'भिखारी दास ग्रंथावली' में उक्त पद्य का पाठ इस प्रकार है—

दास अब को कहै बनक लोन नैनन की
सारस ममोला बिन अजन हराए री।
इनको तो हाँसी वाके अंग में अगिनि बासो
लीलहीं जु सारो सुखसिंधु बिसराए री।
परे ये अचेत हरे वै सकल चित्तचेत
अलक भुजङ्गी डसे लोटन लोटाए री।
भारथ अकर करतूतिन निहारि लहीं
यातें घनश्याम लाल तोतें बाज आएरी ॥

(द्वितीय खंड, पृष्ठ १२०)

टीका—नायिका मान किए है, ताके मनायबे के कारन दूती बार बाको मनावै है। तेरे नैनन की बानिक कहा बर्णन करौं बिन अंजन के अर्थात् नायक सों रूसिकै भूषन नहीं करै है ताहू पै खञ्जन और सारस को हराय दियो है। इनको तो हास है परन्तु बाके रहै नायक के अंग में अग्नि को बास, तेरे बिना वाको सर्वांग जरयो जात है और इसी हेतु तेरी लालन को स्मरण करि सम्पूर्ण सुख सिंधु बिसारि दियो। तेरी अलक भुजङ्गी को डस्यो अचेत ह्वै परे हैं। तेरी अकथ करतूति है। तू हारि नहीं कहै है। याही हेत घनस्याम श्रीकृष्नचन्द्र लाल जी तोते राजी आप अर्थात हारि कै तेरे ही कहे में हैं।

इहाँ काक चकोर, सारस, खञ्जन, हास, अगिनि बागो, लाल की मोना, हरेवा, लोटन, कपोत, तूती, हारिल, लाल, तोत, राज, इतन पक्षन में मुद्रा अर्थात् सूच्यार्थ नायक कृत अपराध क्षमा कराय नायिका को मान छोड़ायबो इहाँ नामन में निवेसित कियो, यातें मुद्रा अलङ्कार व मानवती नायिका ॥८७॥

कवि—देवकीनन्दन (मुद्रा)

दंडक—सोन जुही जानि यह सेवती सुरमखानि,
कहत अजू बातें अनारिनि न लावई।
'देवकीनन्दन' कहै अन्तर न कीजै दाँव,
पैंचहिं भुलाय गुल लालहिं लगावई।
जपा कर नाम तौ सुदरसन पावै नित,
कलह निवारी जात दोसहिं लगावई।
पागि लेरी अखिल बहार है जोबन जाहि,
हिये पिये बास तौ सोहागिन कहावई ॥८८॥

टीका—दूती की उक्ति नायिका सों। सूनो हृदय जानि कै यह तेरी हितू तोको सेवै अर्थात् तेरे बिनु लाल को हृदय शून्य लखाय परै है, यासों मैं तोकों मनावती हौं। रसकी खानि बात मैं कहती हौं। अनारिनि तूँ कछू

बनक = शोभा। परेवे = फाख्ता नामक पक्षी विशेष, वे पड़े हैं। अलक भुजङ्गी = केश रूप सर्पिणी। लोटन = कबूतर की एक जाति विशेष। भारत = महाभारत। अकथ करतूतिन = अवर्णनीय करतूतों की। सोन जुही = (सोन = शून्य। जु = जो। ही = हृदय), स्वर्ण जूही पुष्प विशेष। सेवती (सेव = सेवा कर। ती = तिय, स्त्री), सफेद गुलाब। अजू = आजे। अन्तर न दाँजै = भेद मत समझो। जपा कर = (नाम का जप किया कर), जवा (अड़हुर) का फूल। पागना = अनुरक्त होना ॥८८॥

ध्यान में नहीं लावै है। देवकीन दन कवि की उक्ति कि, अतर कहूँ बीच न दे, दाँव पेच जो प्यारे के साथ करती है, निसारि कै गुलफूलन के सदृश लाल श्री कृष्णचन्द्र को हिय में लगाय ले और जपा करै नाम उनका तो सुन्दर, दरसन नित ही पावैगी। कलह निवारन कियो जाय है। जो गत ह्वै गयो, दोस कहै अपराध वाको भी नहीं लगायो चाहिये। अब प्यारो संपूर्ण बहार प्राप्त है यामें आछी भाँति पागिले और अपने जोबन को निहारु, यह सदा नहीं रहैगो। हिय में पिय को बास है तो सोहागिन कहै सोभाग्यवती तौ कहायले। इहाँ दूत नायिका सों नायक को बृत्तान्त बन को बर्णन करि कहै हैं। बन पक्षे—अरी भटू बहार बन को जो लसै है यामें पागिले कहै अच्छी भाँति बिलोकै, सोनजुही सेवती इत्यादि। इहाँ बनकी लता और फूलन के नाम में दूतपन करै। इहाँ सूच्यार्थ को सूचन, यातें मुद्रा अलंकार। इतने पदन मै मुद्रा है—सोन जुही, सेवती, दाव पेंच, गुल लाल, जपाकरना, सुदरशन, निवासी, पियाबास, सोहागिन, इति ॥६८॥

कवि—केशवदास (परिसंख्या)

सवैया—पातक हानि, पिता सग हारिबो, गर्बके शूलन से डरिए जू।
तालनि को बँधिबो, बध रोग को, नाथ के साथ चिता जरिए जू॥
पत्र फटै ते फटै रिनि, 'केशव' कैसे हु तीरथ मै मरिए जू।
नीकी लगै सदा गारी सगाने की, दड भलो जु गया भरिए जू॥६९॥

टीका—यह कवित्त प्रास्ताविक है काहू की उक्ति। यदि हानि होय तो पातक की हानि होय यही अच्छा है। हारिबो पिता क साथ अच्छा। यदि शूल से डरै तो गर्ब ही के शूल सों डरिबो, बँधिबो ताल ही का, बध रोग ही को, जरिबे में स्वामी के साथ चिता में जरिबोई अच्छो है। पत्र फाटिबे में रिण को पत्र फाटिबो अच्छो है, मरिबो तो तीर्थ ही में मरिबो, गारी ससुरारि ही की, दड को भरिबो तो गया जी को अन्यत्र नहीं। इहाँ एक जगह सें वस्तु का निषेध करि हानि इत्यादि को पातकादि ही में नियमन, यातें परिसंख्या अलकार ॥ ६९ ॥

कवि—नायक

जथा—सूरताई आँधरे मे दृढ़ताई पाहन मै,
नासिका नचानि मध्य मौन रहो हाट में।
धर्म रहो पोथिन बड़ाई रही बृक्षनि,
बँधेज बग पाँतिन मे पानी रह्यौ घाट मै।

यहि कलिकाल ने विहाल कियो सब जग,
'नायक' सुकवि कैसी बनी है कुठाट में।
रज रही पथनि रजाई रही शीत काल,
राई रही राईते रनाई रही भाँट में ॥७०॥

टीका—समय के ह्रास पाय सब वस्तु का ह्रास देखायबे हित निन्द दशा प्राप्त होयके काहू सों कोऊ वर्णन करे है। यह कलिकाल ने सब को बिह्वल करि डार्यो, काहू मे सरस न रह्यो, जैसे कि सूरताई आधरेई में रह्यो, दृढताई पाषाण ही मे, नाचिबो नासिका ही मे, नोन अर्थात् नवनि हाट बाजार मे। धर्म पोथिन में, बड़ाई वृच्छन मे, बधेज बक को पच्छिन हीं मे, पानी घाट ही में, रज पथ मार्ग ही में, रजाई शीतकाल ही में रह्यो, राई राई जो एक प्रकार को अन्न होय है ताही में रह्यो, रनाई भाट ही में रह्यो। इहाँ भी एक जगह में बस्तु को निषेध करि स्थापन, यातें परिसंख्या अलकार ॥ ७० ॥

कवि—रघुनाथ

दंडक—आए जुरि जाचिबे को जाचक जहाँ लौं रहे,
एहो कवि 'रघुनाथ' आजु तीनौ थर मे।
एते मान दान तिन्हैं भूप दशरथ दीन्हे,
देत यौ देखाई कहूँ काऊ सोध घर में।
बसन के नाते बास पास कौशिला के एक,
भूषन के नाते नथ नाक छला कर में।
घोडे हाथी चित्रन के रहे चित्रसारी माँझ,
राम के जनम रहे दाम दफदर में ॥७१॥

टीका—रामचन्द्र के जन्मसमय में महाराज दशरथ को दानबीरत्व बर्णन, कवि की प्रौढोक्ति है। त्रिलोकी के जाचक एकत्र ह्वै जाचिबे के अर्थ महाराज दशरथ के निकट प्राप्त भए। कवि की उक्ति महाराज दशरथ अति आनन्दित ह्वै इतनो दान दियो राजमन्दिर में यही पदार्थ देखिबे को बाकी रहि गयो।

सूरताई = बीरता, अन्धापन। नोन = नम्रता, नमक। बधेज = नियम। राई = स्वामित्व, छोटे बीज वाला एक अन्न। रज = रजोगुण, ऐश्वर्य, धूल ॥७०॥

बसन = वस्त्र। चित्रसारी = चित्रशाला। रहे दाम दफदर में = दफ्तर में ही केवल दाम (रुपयों के आँकड़े) रह गये थे ॥७१॥

बसन के नाते श्री महारानी कौशल्या के अग में वही एक बस्त्र जाको पहिरे रही। प्रसिद्ध है कि सूतिकाघर मेंजब स्त्री प्रसव के निमित्त जाय है तो नीलाम्बर एक पहिरि लेय है और कछू नहीं धारन करै है। और भूषन के नाते एक नथ नाक में रह्यो अवशि सपूर्ण भूषण रुचि सों नेगहारिनिन कों दै दियो। और हाथ म छला रह्यो। यदि सदेह करै कि ट्र का भो क्यों न दै गयो, ताको समाधान यह है कि नथ को सौभाग्य चिह्न जानि न दियो और छला तुच्छ पदार्थ, इस हेतु न दियो। घोडे हाथी चित्र मेंरहि गये और दाम तफदर में रह्यो अ यत्र नहीं रहि गयो। इहाँ भी बस्तु को निषेव करि एकत्र नियमन, यातें परिसख्या अलकार ॥ ७१ ॥

जथा—अति ही कराल कलि काल की व्यवस्था कछू,
ए हो 'कवि रघुनाथ' मो पै जात ना कही।
देखिए बिचार तौ अचार रहो कुभनि मैं,
गुन गरुआई बनिआई हाट मै रही।
तेली के सनेह रहो, नम गेह बेश्यन के,
रहे है कसेरन के गेह साँच को सही।
नदिन मैं पानिप, परन तरिवरन मैं,
बरनी हैं बन केदरी के करनी रही॥७२॥

टीका—प्रास्ताविक उक्ति समय के न्यूनत्व सों सम्पूर्ण पदार्थन की हानि वर्णन करै है। यहि कलिकाल की व्यवस्था अति ही कराल है कछू बरनन नहीं कयो जाय है। बिचार करि देखिए तौ अचार कुम्भन में रह्यो आम्रफल आदि को तैल म धरि राखै है, वाही को अचार कहै है। गुन गरुआई और बनिआई यह बजार ही म रह्यो। स्नेह तेली क रह्यो। नेम वेश्या के घर, साँच की सही कसेरन के घर, पानी नदी मैं, परन तरिवर वृक्षन में, करनी वन मैं बर्णन करिबे को रही। पूर्व कबित्तन समान इहाँ भी परिसख्या अलकार ॥ ७२ ॥

कवि—अज्ञात

दडक—माँगत पपीहा, मुँह मैलो है अरोजन के,
करिहाँई दूबरो, दुखी न कोऊ जानिए।

अचार = सदाचार, आम आदि का आचार। गुन = सद्गुण, सूत (तागा)। गरुआई = महत्त्व, तौल करना। सनेह = प्रेम, तेल। नेम = नियम। साँच = सत्यता, मिट्टी का साँचा। पानिप = शक्ति, मर्यादा, जल। परन = प्रण, पत्ता। बन केदरी = कदली बन। करनी = कर्तव्य, हाथी ॥७२॥

दंड है जतीन के, कुरंगहीं के बन बास,
मोरन की अँखियाँ सु नीके करि मानिए।
नाहीं एक नवल तियान मुख देखियत,
हा हा एक सुरत समै ही अनुमानिए।
पूँछि देखो जाहि ताहि प्रेम पुत्र चाहि चाहि,
एते खानखानाजू को राज पहिचानिए ॥७३॥

टीका—नवाब खानखाना के राज्य की सफलता का वर्णन। एती बात खानखाना जू के राज्य मैं देखियत है। माँगने हारो एक पपीहा मिलै है, मुख म्लानता उरोज ही की, दूबरी दुखी करिहाँइ परी है, दंड जतीन के, बनवास कुरंग मृग गण को, मोर की आँखि की निकाइ, नाहीं कहिबो एक नवोढ़ा नायिका ही के मुख सों कढ़ै है, हाँ हाँ करनी एक सुरत समय ही मैं सुनि परै है। इहाँ एकत्र वस्तु का निषेध करि एक ठौर नियमन, यातै परिसंख्या अलंकार ॥ ७३ ॥

कवि—कुलपति (रूपक)

कवित्त—भट सेवत भूप भयंकर रूप बने तिन ग्राह समान चहै।
कपि पुंज तहाँ रतनावलि सी निशि बासर पास लगेई रहै।
बिष से हथियार लखै अरि भार गहै कर बारन भाजत है।
कवितामृत को जस चंदहू को जग कारन राम नरिंद कहै ॥७४॥

टीका—रामचन्द्र की सेना का वर्णन। श्री रामचन्द्र जू की सेना समुद्र रूप देखि परै है। भट सेवन करै हैं, भूप सुग्रीव और विभीषण आदि ग्राह समान हैं। कपिन का समूह रत्नावली राति दिन निकट बनी रहै है। हथियार शस्त्र अस्त्र बिष के सदृश। कविता अमृत और जस चन्द्रमा। इहाँ रामचन्द्र की सेना को समुद्र करि बर्णन किया, यातै रूपक अलंकार ॥ ७४ ॥

कवि—किशोर (शुद्धापह्नुति)

दंडक—गाजत न घन ए सघन तनतूर बाजैं,
मोर की न कूक ए नमाजनि के हेले हैं।
बक की न पाँति ए लसति माल कोड़िन की,
जल की न बूँधि ए तिभूतिन के रेले हैं।
फूली नहीं साँझ लाल चादरि 'किशोर' कहै,
दौरति न बादर चपल गति चेले हैं।

करिहाँइ = स्त्रियों की कटि ही। दूबरो = दुबली पतली है ॥७३॥
बिस = कमलतन्तु ॥७४॥

सुनु री सलोनी नारि काहे को करति शक,
पावस न झेले ए मलगनि के मेले हैं ।।७५।।

टीका—प्रोषितपतिका नायिका सों सखी की उक्ति । हे सलोनी नारि सुनु, काहे को अपने जी मे संदेह करै है । यह पावस बर्षाकाल नहीं होय, यह तो मलगन की मेला होय, मलग एक प्रकार के मुसलमान फकीर होते हैं । ए घन नहीं गरजे हैं, यह सघन तनतूर बाजै हैं । मोरन की कूक न होय किंतु निमाज पढ़ै हैं । बक की पाँति यह न होय किन्तु यह कोडिन की माल शोभित होय है । यह धूँधि न होय अपनी देह में बिभूति लगाये हैं । यह संध्या समय की अरुनाई नहीं होय किंतु यह लाल चादरि होय । बादर नहीं दौरै हैं किंतु चपल गति उनके चेले दौरै हैं । इहाँ घन आदि को गरजिबो (आदि) धर्म दुराय तनतूर आदि मैं आरोप, यातैं शुद्धापह्नुति अलंकार ।।७५।।

कवि—चतुर **(संदेह)**

दंडक—सरद त्रिजाम कृत तदवत आनन पै,
अंबाबुद कुंदज परागन प्रसिस पोत ।
हीरन खिरदान की सत जुग तच्छ कहैं,
चतुर अनच्छ छबि छाजित किसित होत ।
गँगन घनाबी किन घन घनसार कैधौं,
फैनब पहार अति फटिक छटी है जोत ।
शशि शुक्र भा कृत की सुकृत प्रभाकृत की,
स्रमतामृता कृत प्रसगिल ससी को सोत ।।७६।।

।।इति श्रीदिग्विजयभूषणे चतुर्थपदेपु अलंकारवर्णन नाम सप्तम प्रकाश ।।

टीका—नायिका का मुख में प्रस्वेद भयो, ताको लखि संदेह करै है । शरद काल की त्रिजामा रात्रि में चंद्र सदृश मुख पै अमृतस्रवित भयो है । किं वा कुंदज पराग पसीज्यो है । अथवा हीरन को रज है, स्वच्छ छबि छाजै है । अथवा गगन मेघन में घन को छौंड्यो सीकर है । अथवा घनसार है । किंवा फेन को पहार होय । अथवा शशि चन्द्रमा शुक्र की प्रभा किंवा सुकृत की शोभा किंवा अमृत स्रव अथवा चंद्रमा सों अमृत को सोत बह्यो है । इहाँ संदेहापन्न बाक्य करि वर्णन, यातैं संदेहालंकार ।।७६।।

।। इति श्रीदिग्विजय भूषण टीकायां सप्तम प्रकाश ।।

तनतूर = एक वाद्यविशेष। जक की धूँधि = कुहरा । मलग = एक प्रकार के मुसलमान साधु ।।७५।। खिरदान = टुकड़े, खण्ड ।।७६।।

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज' (संकर अलंकार)

दोहा—पय पानी मिलि जाहि जस, जानै जाननिहार।
सकर भूषन त्यौं लखै, कवि करि हृत विचार ॥ १ ॥
दोइ अलंकृत के मिले, संकर उत्तम होइ।
जोइ पाछिले चरन मैं, मध्यम अनमिल सोइ ॥ २ ॥

टीका—अथालंकाराणा संकरत्व वर्ण्यते। जेहि विधि दूध मे पानी मिलै पर भिन्न नहीं लखाय परै है याही भाँति अलंकारन को संकर अर्थात् एक अलंकार दूसरे अलंकार सों मिलि जायबे सों पुष्ट एक को निश्चय नहीं होय है और चमत्कार को अतिशय होय है, यातें अलंकार संकर कहै है। याको हंस की चाल सों कवि को चाहिये कि अपनी बुद्धि के वैलक्षण्य सों पृथक् कर, जासों भिन्न भिन्न लखाय परै ॥ १—२ ॥

(रूपक-सहोक्ति[2] संकर)

दंडक—बृज बरसाने की बधूटी बनी चंद रूप,
खेलिबे को होरी होरी गावै गोरी गायके।

१—संकर का अर्थ होता है मिश्रण। जब एक ही पद्य में दो या दो से अधिक अलंकारों का मिश्रण होता है तो उन अलंकारो का संकर कहा जाता है। यह तीन प्रकार से होता है—१ अङ्गाङ्गीभाव—जब एक अलंकार प्रधान हो और अन्य अलंकार गौण रूप से उसका पोषण करते हों, २ एकाश्रयानुप्रवेश—एक ही वाचक में दो या अधिक अलंकारों का अनुप्रवेश हो, ३ संदेह संकर—जहाँ कई अलंकारो का संदेह हो अर्थात् रचना में अर्थ भेद से कई अलंकारों के लक्षण घटते हो और निर्णय न हो सके कि वस्तुत कौन सा अलंकार है। देखिये टि० पृ० ३७,

२—सहोक्ति लक्षण दे० टि० पृ० ९७। वस्तुत यह सहोक्ति नहीं प्रत्युत विशेषोक्ति अलंकार है। पिचकारी भर कर रंग खेलने के सारे कारण विद्यमान रहते हुए भी रंग खेलना रूप कार्य नहीं हो पाता, क्योंकि राधा कृष्ण एक दूसरे के स्वरूप पर मुग्ध हो जाते हैं और पिचकारी हाथ की हाथ में ही रह जाती है। रंग खेलने के लिये ब्रज बधूटियों ने श्वेत वस्त्र पहिने हैं, अत 'चंदरूप' कहा है।

अगर अबीर छोरी केसरि गुलाब घोरी,
जोरी लै कुसुभ कुभ ढारै रोरी माथ के।
कुज की गलीन बीच 'गोकुल' मची है फागु,
भयो भटभेरो दोऊ दौरे देखै साथ के।
बोरिबे को अग रग लये पिचकारो सग,
हाथ ही की हाथ रही राधा—राधानाथ के ॥३॥

टीका—प्रथमतो ग्रन्थकर्तुरुदाहरणम्। बरसाने की बधू एक ठौर ह्वै होरी खेलिबे के लिए अगर अबीर केसरि गुलाब घोरि कुम्भन को भरि कृष्ण चन्द्र माँ आय भिरी। राधा और कृष्न परस्पर मोदभरे पिचकारी भरि बोरिबे के अर्थ दोऊ दौरे। वाही समय सात्त्विक भाव भूलि गयो, राधा और कृष्नचन्द्र के हाथ की पिचकारी हाथ ही में रही। इहाँ बरसाने की बधू चन्द्र रूप यामें रूपक। चन्द्रमा सों उनको अभेद बर्णन, यामे रूपक और हाथ ही की हाथ रही यहाँ महोक्ति दूनौं अलकार को सकर ॥ ३ ॥

(लुप्तोपमा-उत्प्रेक्षा सकर)

मदिरा—आए मनावन मानै न मानिनि दीरघ दोष बिमोचन सो।
तेल तमोल अमोल अभूषन छाँड़े सबै 'बृज' सोचन सो ॥
केलि कला सबी सामुहे कै हँसी जोन्ह से बाल सँकोचन सो।
मानहु मान मलिंद से छूटि गिरयौ अरबिंद बिलोचन सो॥४॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों। नायक मनायबे के हेतु आयो पर वाको बड़ो दोष अनुमानि नहीं मानै है। इसी सोच सों तेल, ताम्बूल, अमूल्य भूषण छाड़ि दियो। केलिकला की तसवीर सामने करि जोन्हसी हँसी। मानो अरबिंद बिलोचन नेत्र सों मान रूप मलिंद कहै भ्रमर छूटि गिरयो अर्थात् उड़ि गयो। इहाँ हँसी जोन्ह से—हँसी उपमेय, जोन्ह उपमान, सी बाचक, धर्म नहीं, यातें धर्मलुप्ता। अरबिंद बिलोचन रूपक, मानहु उत्प्रेक्षा बाचक शब्द, मान सभाव्य मान पद, ताकों अरबिंद बिलोचन सों मलिंद को उड़िबो करि बर्णन, यातें उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा सकर ॥ ४ ॥

(उत्प्रेक्षा-विभावना संकर)

दडक—गायन के पाछे पाछे चटक लटक चाल,
आछे कटि पीत पट काछे दोह दौर पर।
माथे पै मुकुट मोरपच्छ के लकुट हाथ,
स्वच्छ गुच्छ मजरी रसाल छबि छोर पर।

'गोकुल' बिलोकि बाल कज्जल कलित आँसु,
गिरे मुख पर ढर ढरके उरोज पर।
मानो कंज कोश ते कढ़ी कलिंद नंदिनी है,
चढ़ी चंद्र मंडल पै मंडित सुमेरु पर ॥५॥

टीका—इहाँ नायिका के नैनन सों आँसू गिरबो सम्भाव्यमान पद, ताको कंज कोश ते जमुना को धार कढ़ि चंद्रमंडल पै चढ़ि सुमेरु पर मंडित होयबो करि बरनन, याते उत्प्रेक्षा अलंकार। और बिन कारन कार्य, ताते कलिंदजा को कढ़िबो कारण को उत्पत्ति, याते विभावना संकर। और कृष्णचंद्र को संकेत को चिह्न रसाल मंजरी समेत लखि आपनो न गई संकेत को, याते पश्चात्ताप करि आरति दरस्यो, याते अनुशयाना[1] नायिका ॥५॥

(पूर्वरूप-श्लेष संकर)

दंडक—पति परदेश ते संदेस को पठाए 'दून',
कीजो न अँदेस सुभ साइति जो आती है।
घरी या पहर दुपहर दिन बीतत पर,
संपति समेत आवें बांच लीजो पाती है।
धावनि जो धाय आय दई जानि नीके पानि,
हिए हरखाय पाय पढ़े रुचि राती है।
गये कुम्भिलाइ सो उठे फुलाइ कंज मुख,
पाती मंजु मित्र कर लाइ लई छाती है ॥ ६ ॥

टीका—इहाँ पहिले नायक को वियोग पाय कंज मुख कुम्भिलाय कहँ सूखि गयो रह्यो, धावनि के हाथ पठायो पाती पाय नायिका को मुख फेरि विकसि उठ्यो, याते पूर्वरूप और मित्र सूर्य और नायक ताको कर किरण और हाथ श्लेष को संकर ॥६॥

१—देखिये नायिका प्रकरण १७वाँ प्रकाश।

२—'पूर्वरूप' का अर्थ है पहिले वाला रूप, अर्थात् जहाँ कोई वस्तु अपने गुण को एक बार छोड़ कर पुनः उसे ग्रहण कर ले वहाँ पूर्वरूप अलंकार होता है। यह अलंकार वहाँ भी होता है जहाँ वस्तु के विकृत या नष्ट होने पर भी उसकी पूर्वावस्था का गुण विद्यमान रहे। जैसे—"दीपक बुझाने पर भी करधनी में जड़े रत्नों से कमरे में प्रकाश होता ही रहा।"

अँदेस = आशंका। साइति = मुहूर्त। धावनि = दूती ॥ ६ ॥

(संबंधातिशयोक्ति-रूपक संकर)

मत्तगयन्द—जो परदेस पयान करो हरि साथहि मैं हूँ पयान करौंगी।
राखे न येक घरी बनि है 'बृज' लोग लुगाई न धीर धरैंगी॥
मेरे सनेह समूह को पाइ हिए बिरहागि जबै पजरैगी।
देह जरै फिरि गेह जरै पुर पौरि जरै बन बाग जरैगी॥ ७॥

टीका—नायिका की उक्ति नायक सों। हे हरि! यदि तुम परदेश को पयान करते हौ तो हमहूँ साथहि पयान करौंगी। एकहू घरी राखे न बनैगो। ए बृज का लुगाई न धीर धरैंगी अर्थात् क्योंकि मेरे बिरहागि की जरिबे के भय से धीर न रहैगो। सनेह नाम तेल, आगि मे परे अधिकात ज्वाल, यात सबको धैर्य न रहैगो और मेरे सनेह समूह को पाय हृदय में जब बिरहाग्नि प्रज्वलित होय है तब क्या है है कि देह जरैगो, फिरि गेह जरैगो, पुर जरैगो और बन बाग जरैगो। इहाँ बिरहाग्नि पद में रूपक और बिरहाग्नि प्रज्वलित होयबे सों देह गेहादि को जरिबो अयोग में योग कल्पन, यात सम्बन्धातिशयोक्ति संकर। और प्रवत्स्यत्प्रेयसी[1] नायिका॥ ७॥

(भ्रांतिमान्-धर्मलुप्ता संकर)

दुमिला—'बृज' अंग सिँगार सिँगारिबे को चुनिल्याई है चूनरी भाँति भली।
तन भूषन भूषित कीजै भटू अस बोलि लटू कहैं प्यारी अली॥
बरसाइति है बर पास चलो बलि पूजिहै तो मन आस रली।
सुनि सक मयंकमुखी के भयो मुख ह्वै गयो पंकज कैसी कली॥ ८॥

टीका—सखी की उक्ति नायिका सों। हे भटू अंग शृंगार सँवारिबे के अर्थ भली भाँति चूनरी चुनिल्याई हौं। यासों अपने तन कों भूषित कै आजु बरसाइति है बर के पास चलो। लटू है जब सखी ऐसो कह्यो कि तुम्हारे मन का अभिलाष पूरन करैगो, सुनते ही मयंकमुखी चंद्रबदनी को मुख भ्रम सों पंकज कमल की कला के समान ह्वै गयो। इहाँ बरसाइति है बर पास चलो, यह सखी को बचन सुनि याकों भ्रम भयो कि यह कहा कहै है कि बर श्रेष्ठ साइति है, बर कहैं प्रियतम के निकट चलो ऐसो भ्रम भया। साधारन अर्थ को परिज्ञान न भयो कि बरसाइति = बटसावित्री व्रत जेष्ठ की अमावस्या को होय है।

1—दे० नायिका प्रकरण १७वाँ प्रकाश।

पजरैगी = प्रज्वलित होगी॥ ७॥

बरसाइति = नायक के पास जाने का मुहूर्त, बटसावित्री। बर = नायक, बट का वृक्ष॥ ८॥

सिगरो बनिता भूषन कै बर कहै बट वृक्ष के निकट जाय वाको पूजन करै है, यातै भ्रांतिमान् अलंकार। और मुख ह्वै गयो पंकज कैसो कलो, इस पद में मुख उपमेय, पंकज को उपमान, सो वाचक, मधुरता गन्धादि धर्म नहीं है, यातै धर्मलुप्ता सकर और चन्द्रमुखी पद सों पूर्ण सुन्दर और आह्लादकत्व धर्मविशिष्ट अर्थ को बोधक, पंकज कली सों विकसित होनहारी व्यंजना होय है, यातै नवोढ़ा नायिका। ८॥

(विषम-श्लेष संकर)

माधवी—यक तो बिनु बारबिलासिनि के तन ताप कलापिनि तापर टेरे।
तड़पै तड़िता बहै पौन प्रचंड उड़ै तृन से मन ही मे न हेरे॥
'बृज' एते सबै दुख दायक हैं सुख दायक नाम सुनै हम तेरे।
जग जीवन जीवन दे जगजीवन क्यों हठि जीवन लेत हौ मेरे॥९॥

टीका—प्रोषित वैशिक[१] नायक की उक्ति। एक तो बिना बारबिलासिनी के वैसे ही तन में ताप, तापै कलापिन कहै मयूरी टेर रहे हैं। बीजुरी तड़पि रही है, प्रचंड पवन बहै है, तृन के समान मेरो मन उड़यो। एते सब दुःख देन हारे हैं, सुख देनहारो नाम एक तेरो ही सुन्यो है। हे जगजीवन सजल जलद जगत भरे को जीवन को जीवन दे क्यों हठि मेरो जीव लेय है। इहाँ जीवन जल और जीवन प्रान दोन श्लेष करि यह अर्थ लब्ध भयो, यातै श्लेषालंकार और जग जीवन है अर्थात् जगत भरे को जीवन दे एक को दुःख दैबो अननुरूप, यातै विषम अलंकार संकर॥९॥

(रूपक-उत्प्रेक्षा संकर)

दुमिला—कुँभिलाइ गयो नव नेह को अंकुर आँच वियोग दिनेश दली।
परदेश तें प्रीतम आयो जबै अवलोकिबे को द्रुत दौरि चली॥
'बृज' बेगि मिली गलबाँह तबै उबको है बिलोचन खोलि अली।
मुकुले निशि फूले रसीले मनो सुषमासर स्याम सरोज कली॥१०॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों। नवीन स्नेह को अंकुर, वियोग दिनेश सूर्य को ताप पाय कुँभिलाइ गयो रह्यो। जब प्रियतम परदेश तें आयो वाके बिलोकिबे के लिये शीघ्र ही दौरि के चली और बेग मिलते ही गलबाँही दिए, वारि भर्यो बिलोचन ऐसो लखाय परै है मानो सुषमा के सर में वियोग निशि पाय मुद्रित भइ रही समागम दिन पाय स्यामसरोज की कली बिकसित

१—वैशिक = वेश्या नायिका का नायक। देखिये नायक प्रकरण।
बारबिलासिनि = वेश्या। कलापिनि = मयूरी। जीवन = आधार, जल, प्राण॥९॥

भई। इहाँ नव नेह को अंकुर और वियोग दिनेश का आँच, सुषमा सर, रूपक अलंकार और परदेश ते आयो प्रियतम को विलोकि पूर्व ही वियोग जनित दुःख सों मुद्रित भयो विलोचन फेरि विकसित भयो संभाव्यमान पद, ताकों रात्रि संपुटित नीलकमल को फेरि दिन में सूर्य किरण विलोकि विकसिबो तादात्म्य करि बर्णन, यातें उत्प्रेक्षा संकर और आगच्छत्पतिका नायिका ॥१०॥

(स्वभावोक्ति-काव्यार्थापत्ति[1] संकर)

सवैया—सखि खेलन के मिसु साजि सबै सुषमा दुति दीह दुरे दरसात।
'ब्रज' लैके चली मनमोहन पै, पग पाछे धरै मग में अड़ि जात॥
तन भूषन भार सँभार नहीं सुकुमारि के लंक उनै उनै जात।
कटि छीन किए मृगराज को दीन कहा गति मंद गयंद की बात॥११॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों, नायिका की सुकुमारता और सौन्दर्य्य का बर्णन करै है। हे सखि खेलिबे का व्याज करि सम्पूर्ण भूषन बसन साजि जाकी दीह दुति दुरे अर्थात् वस्त्रादिक के आड़ हू पै अंग की सुषमा कहै परम शोभा दरसात है। ब्रज की उक्ति-मन को मोहन कृष्णचन्द्र पै लैके चली पर पग पाछे धरै है, मग में अड़ि जाय है। तन देह में भूषन के भार को सँभार नहीं है यासों सुकुमारि नायिका का लंक करिहाँ उनै उनै जाय है। कटि छीन मृगराज सिंह को कियो और मंदगति गयंद को, यह कहा कहिबे की बात है अर्थात् याके मंद गमन के आगे गयंद की चाल को कहा चरचा करिबे लायक है काहूँ भाँति नहीं ह्वै सकै है, लज्जास्पद जान्यो जाय है। इहाँ मृगराज आदि की कटि छीन, गज का मंदगति स्वभावोक्ति और याके मंदगमन के आगे गज की मंदगति की कहा चर्चा कैमुत्य करि अर्थ साधन कियो यातें काव्यार्थापत्ति अलंकार संकर ॥११॥

दोहा—त्यों ह्याँ संकर कविन के, कबितन मैं लखि जोइ।
उदाहरन दृष्टांत हित, लिखत ग्रंथ महँ सोइ॥१२॥

१—स्वभावोक्ति देखिये पृष्ठ ४६ टि०। काव्यार्थापत्ति अलंकार वहाँ होता है जहाँ 'दण्डापूपिक न्याय' या 'कैमुतिक न्याय' हो, दण्डापूपिक न्याय का अर्थ है जैसे कोइ कहे 'चूहा तो डण्डा भी खागया'। जब डण्डा भी खा गया तो उसमें लटकाए हुए अपूपों (पूओं) की बात ही क्या ? उन्हें तो निश्चय ही खा गया होगा। कैमुतिक का अर्थ है—'जब वह हो गया तो यह क्या है' जैसे—'जब नायिका के मुख ने चन्द्र को जीत लिया तो कमल की कौन कहे'।

लंक उनै उनै जात = कमर झुकी झुकी जा रही है ॥११॥

टीका—यांहा इस ग्रन्थ में प्राचीन कविन के अलकार सकर का उदाहरन लिख्यो कि जासों काहू के मन में सदेह न होय इस हेतु दृष्टान्त दियो है ॥१२॥

कवि—देवकीनंदन (काव्यलिंग यथासंख्य[1] सकर)

दडक—बैठी रँगरावटी में हेरति पिया की बाट,
अजहूँ न आए भई निपट अधीर मैं।
'देवकी नन्दन' कहै स्याम घटा घेरि आई,
जानि गति प्रलै की डराती भयभीर मैं ॥
सेज पै सदाशिव की मूरति बनाइ पूजी,
तीनि डर तीनि हूँ की करी तदबीर मैं।
पाखन मे साँवरो सुलाखन मैं अछैवट,
ताखन में लाखन की लिखी तसबीर मैं ॥१३॥

टीका—नायिका की उक्ति सखी सों, रगरावटी कहै नीलमणि के मदिर मैं बैठी प्रियतम की बाट जोय रही हौं अबतक न आए, यातें निपटि अधीर भई, घटा घेरि आई प्रलय अनुमानि बहुत भयभीत भई। सेज पै तो सदाशिव की मूर्ति स्थापित करि पूजन किया और प्रलय में तीन वस्तु अवशिष्ट रहि जाय है तासो उपाय कियो, पाखन मे साँवरो विष्णु और सुलाखन मैं अक्षयवट, ताखन मे लाखन लक्ष्मण अर्थात् सेस जू की तसवीर लिखी। इहाँ काम के जीतिबे अर्थ सदाशिव की मूर्ति बनाय के पूजी, यातें यह व्यजित भयो कि अरे मनोज तोकों अब मैं भस्म हो किये डारती हौं, मोकों बहुत क्लेश दिया इसलिये सदाशिव की मूर्ति पूज्यो। और तीनि डर दैहिक, दैविक, भौतिक कों होय है, तासों बचिबे के अर्थ पाखन मे विष्णु आदि को बनाय कै पूजन किया, यातें यथासंख्य। सो तहाँ काव्यलिंग और यथासंख्य को सकर भयो ॥१३॥

१—यथासख्य शब्द का अर्थ होता है सख्या (क्रम) के अनुसार। जिस क्रम से वस्तुएँ कही गई हों उसी क्रम से उनसे सम्बन्ध रखने वाली वस्तुएँ जहाँ कही जायँ वहाँ यथासख्य अलकार होता है। जैसे इस पद्य में ३ डरों से बचने के लिये क्रम से ३ मूर्तियों का बनाना। काव्यलिंग लक्षण देखिये टि० पृ० ६०।

रँगरावटी = केलिगृह। तदवीर = उपाय। पाख = मकान में लम्बाई की दीवारों की अपेक्षा चौड़ाई की वे ऊँची दीवारें जिन पर बँड़ेर रक्खी जाती है। सुलाख = सलाखें, बल्लियाँ। ताख = आले ॥१३॥

कवि—आनदघन (रूपक-पूर्णोपमा संकर)

सवैया—मग हेरत दीठि हेराइ गई जब तें तुम आवन औधि बदी।
बरसो किनहूँ 'घन आनन्द' प्यारे बढावत हो इत सोच नदी॥
हियरा इन औधि उदग की आँच चुआवत आँसन मैन मदी।
अब औसर पाय मिलोगे सुजान । बहीर लौं बैस तौ जात लदी॥१४॥

टीका—नायिका की उक्ति नायक सों। हे मनमोहन जब से तुम आयबे के अथ अवधि बदी तुम्हारी मग बिलोकते नेत्र हेराय गयो, अर्थात् लोक कहै हैं कि निरखते निरखते आँखि फूटि गई। हे प्यारे तुम कहूँ बरसो, पै सोच नदी को यहाँ बढावत हो। हृदय में अवधि करि नहीं आयो, यातैं वियोग उदेग की आँचन सों आँसू चुवावत हो। अब कहूँ अवसर पाय मिलि रहियोगे, यह बैस बहीर नौका के सदृश तौल दी जाय है। यहाँ सोच को नदी करि बर्णन कियो, यातें रूपक और वयस उपमेय, बहीर उपमान, लौं वाचक, लदिबो धर्म, चारयो को उपादान, यातें पूर्णोपमा अलंकार संकर है और मध्या अधीरा नायिका॥१४॥

कवि—शम्भु (पूर्णोपमा-सामान्य संकर)

सवैया—उत फूलन को बिनिबो ठहराय इकत लै दूती मिलाइ दई।
नँदलाल निहाल भयो अवलोकि कै कुंदनमाल सी बाल नई॥
करत छुटि भाजि दुरी पग द्वै बलि पै न चली कछु चातुरई।
हरि हेरे न पावते भावती 'सभु' कुसुभ के खेत हेराइ गई॥१५॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों। उत संकेत स्थल में फूलन को बिनिबो ठहराय नन्दलाल सों दूती एकान्त में नायिका को मिलाय दियो। देखते ही कृष्णचन्द्र निहाल ह्वै गयो कुन्दन माला के सदृश नई बाल नवल योवना कों हाथ सों पकरते ही द्वै पग भाजि कै दुरि गई। वा समै कृष्णचन्द्र की कछू चतुराई न चली, भावती जो मन में बसी रही ताकों हेरे नहीं पावै है, वह कुसुम के खेत में हेराय गई अर्थात् कुसुम फूल के सदृश जाकी अंग

उदेग = उद्वेग। बहीर = नौका। बैस = वयस, अवस्था॥१४॥

१—समानता के कारण जहाँ दो विशेष पदार्थों में कुछ भी भेद न मालूम पड़े वहाँ सामान्य अलंकार होता है, जैसे उक्त पद्य में नायिका का रंग कुसुमी है अत रंग की समानता से कुसुम के खेत में छिपी वह पहिचानी नहीं जाती।

इकत = एकान्त। दुरी = छिपी। भावती = प्यारी॥१५॥

गोगाइ पृथक् न लखाय परी, याते छिपाय गई कह्यो। इहाँ कुन्दमाल सी कुन्द माल उपमान सी वाचक, धर्म को लोप, नायिका उपमेय, याते धर्मलुप्तोपमा अलङ्कार और कुसुम के रंग हेराय गई इहाँ माहदन कुसुम रंग, तासों नायिका को भेद न लखाय परो, याते सामान्यालङ्कार सङ्कर ॥१५॥

कवि—ठाकुर (विषाद-उत्प्रेक्षा सङ्कर)

सवैया—बरुनीन में नैन झुकै उझकै मनो खंजन प्रेम के जाले परे।
दिन औधि के कैसे गनौं सजनी अँगुरीन के पोरन छाले परे॥
कहि 'ठाकुर' कासों कहा कहिए हमें प्रीति किए की कसाले परे।
जिन लालन चाह करी इतनी तिन्हैं देखिबे को हमें लाले परे॥१६॥

टीका—नायिका पछिताय है कि बरुनीन में आँखें झुकि उझकि रही हैं, मानों खंजन प्रेम के जाल में फँदि गयो है। हे सखी अवधि के दिन कहाँ लौं गनौं, गनत २ अंगुरीन के पोर में छाले परि गए। कासों कहौं प्रीति किए के कसाले कहै दुःख भोगिबो परयो, जे कृष्णचन्द्र लालन इतनी प्रीति करी ताको देखिबो हमें लाले परे। इहाँ मानो खंजन प्रेम के जाले परे उत्प्रेक्षा अलङ्कार और सदा लालन सों प्रेम निबहैगो यह इष्यमाण कहै इच्छित, तासों विरुद्ध कृष्ण चन्द्र को देखिबो लाले परे प्राप्त भयो, याते विषाद अलङ्कार सङ्कर, प्रोषित पतिका नायिका ॥१६॥

कवि—पद्माकर (लुप्तोपमा-अप्रस्तुतप्रशंसा सङ्कर)

सवैया—अब ह्वै है कहा अरविंद सो आनन इंदु के हाय हवाले परे।
'पदुमाकर' भाषे न भाषे बनै जिय ऐसे कछूक कसाले परे॥
एक मीन बिचारो बिंध्यो बनसी पुनि जाल के जाइ दुमाले परे।
मन तो मनमोहन गोहन गो तन लाज मनोज के पाले परे॥१७॥

टीका—नायिका अनर्थ ठहराय पश्चात्ताप करै है। कहा होयगो अरविंद कमल के समान आनन मुख हाय कष्ट में कह्यो जाय है, इन्दु चन्द्रमा के हवाले परे, कमल और चन्द्रमा को बैर याते दुखदाई ठहरायो। पद्माकर कवि की उक्ति, नायिका अपने मन में कहै है कि भाषे और न भाषे नहीं बनि आवै है, जाव ऐसे कछू बीच कसाल कहै दुःख में परयो, एक तो मीन बेचारो दुखी बसी कहै बडिस में बिंध्यो, दूजे जाल में फन्दे पैंरयो। मेरो मन मोहन के गोहन कहै संग ही गयो, फेरि देही लाज और मनोज काम के पाले परयो। इहाँ अरविंद

बरुनीन = बरौनियाँ, नेत्रपलकों के आगे उगे हुए बाल। जाले = जाल में। कसाले = दुःख। लाल = नायक। लाले = अभाव ॥१६॥

सों आनन धर्मलुप्तोपमा, मन को मीन करि बर्णन रूपक और एक मीन विचारो अप्रस्तुतार्थ मन लाज और मनोज के पाले पर्यो प्रस्तुतार्थ को आश्रय, यातें लुप्तोपमा और अप्रस्तुत प्रशंसा को संकर। और भाषे न भाषे बनै—काम क्लेश सों कह्यो चाहै है फेरि लाज सों नहीं कहै है, और मन तो मनमोहन गोहन गो, तन लाज और मनोज के पाले पर्यो, इहाँ भी लाज और मनोज की समानता देखायो, यात मध्या प्रोषितपतिका नायिका ॥१७॥

कवि—श्रीपति (रूपक-उत्प्रेक्षा संकर)

दंडक—लचके ललित लंक मचके उरोज ऊँचे,
हचके हँवेलन नवेली हियरे परे।
नैनन के चाय धरे मृदु मुख स्वास करे,
फिरि फिरि अंक भरे मिलती गरे गरे।
'श्रीपति' सुहात बारिजात से बदन पर,
रूप सरसात झुकि मुकुता लरे लरे।
मेरे जान कातिक की पूनवों मयंक पर,
चहूँघा नखतमाल डोलत हरे हरे॥१८॥

टीका—नायिका के संभोग को बर्णन। ललित सुन्दर और सूक्ष्म लंक करिहाँ लचकि गयो। ऊँचे उरोज मचके हचके हमेल नायिका के हृदय पै पर्यो, नैनन के चाय प्रीति धारन कियो अर्थात् परस्पर सादर बिलोकन करि कहै है। मृदु मुख सों श्वास हफनि कढ़ै है। ताहू पै बार बार अंक भरि भरि गळे लावै है। बारिजात बदन पै मुक्तामाल की लरें सुथरी शोभित होय हैं, मानो कार्त्तिक की पूनों के चन्द्रमा पै नक्षत्रावली हरे हरे डोलै है। इहाँ अरविंदमुख रूपक और मुख पै मुक्ता लरें लहराय हैं सो गम्यमान पद, ताको कार्तिक पूर्णिमा के चन्द्रमा पै नक्षत्रावली को डोलिबो करि बर्णन, यातें उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार संकर और लचके ललित लंक आदि पदन सों प्रौढ़ा को सुरत ॥१८॥

कवि—पजनेस (रूपक-उत्प्रेक्षा संकर)

दंडक—लागी दीठि लगन लजान लागी लोगन को,
लंक लागे लचन लोभान लागे 'पजनेष'।

हँवेल = हमेल, गले में पहनने का एक आभूषण जो छाती तक लटकता है। लरें = लड़ें। बारिजात = कमल। नखतमाल = ताराओं की पंक्ति। चहूँघा = चारों ओर ॥ १८ ॥

चंपक प्रसून दीह द्युति कलिका के गात,
ओरे ओरे रंग अंग अंगनि परति देय।
कसमसे कसे उर उकसे उरोजन पै,
उपटत आँगिन की तुरफ तिरीछे सेय।
अस्ताचल उदया की दूनौं कोर लखि मानो,
दीपति नवीन पथ रविरथ चक्र रेप॥ १९॥

टीका—सखा की उक्ति सखा सों। बाला की लाढ़ि लागने लगी अर्थात नायक को चाह सों देखन लगी। लाजन को देखि लजाने लगी, और लक करिहाँ लचन लाग्यो, नायक देखि कै लोभान लाग्यो। चंपक प्रसून की द्युति वाके गात को होन लगी, और और अंगनि में लावण्य दैगाढ़ देन लाग्यो। कसमस कसे उर में उकसे कहै अंकुरित उरोजन पै आँगी का तुरफनि तिराछी उपटने कहै ऊंचे गेरि परै लगी। मानो अस्ताचल और उदयाचल का दूनो कोर लखि, दीपति नवीन पथ पै रवि सूर्य्य के रथ चक्र की रेखा होय, यहि भाँति लखाय परै है। इहाँ बारिजात से बदन पर रूपक, और नायिका के कुच गोल के मध्य सूक्ष्म रेखा को अवकाश मात्र लखाय परै है सभाव्यमान पर, ताको उदयाचल अस्ताचल के कोर को दाखि सूर्य्य रथ चक्र की रेखा करि वर्णन, याते उत्प्रेक्षा संकर और मुग्धा नायिका ॥१९॥

(लुप्तोपमा-पूर्णोपमा संकर)

दंडक—कवि 'पजनेस' केलि वाछित विभाव नैनी,
कीन्हे हैं डिठोना श्रमसेद मुखवर पै।
दीठि सिचि जात मीची ईंचति न ऐसी खैंची,
खिंचति न तसबीर तसबीरगर पै॥
निमिषि निहारी नेह दीपक सिखा सी चारु,
राजमनि मंदिर दरीची के कँगर पै।

कसमसे = कुलबुलाते हुए। उकसे = उभड़े हुए। आँगी = चोली। तुरफ = एक प्रकार की सिलाई ॥१९॥

डिठोना = काजल का टीका जो किसी की नजर न लगे, इसलिये लगाया जाय। श्रमसेद = पसीना। सिचि जात = बन्द हो जाती है। इंचति न = खुलती नहीं। तसबीरगर = तसवीर खींचनेवाला, चित्रकार। दरीचो = खिड़की। कगर = कोना। रुधती = अरुंधती, एक छोटा तारा जो सप्तर्षि मण्डल में वशिष्ठ के पास दीखता है ॥२०॥

रुधती के नखत लौं लखत न जो लौं तौ लौं,
झखत नगीच मीचु बैठो मैनसर पै ॥ २० ॥

टीका—पजनेस कवि की उक्ति, कलि बाछित विभाव रसोत्पादक अर्थात् कामोत्पादक नेत्र जाको ऐसा जो नायिका, सा श्रमजनित स्वेद पसीनानि की डिठोना मुख मजु पे किया है, जाके निरखिबे के अर्थ दीठि खिचि जात कहै अति कठिनता सा चुभि जाय है और ऐसी डिठोना जुत मुख है कि तमचीरगर पै भी जा को तसवीर नहा खिच्यो जाय है एक पल भरि लौं निहारी नेह स्नेह दीपक की सिखा सी रमणीय राजमणि मन्दिर को दरीचा के कँगर पै बिराजे। अरुधती नखत के सदृश जो टा लखिए तौ लौं चमकि के दे मारी आँखें मैन काम के सर पै बैठी देखि परे है अथात् जाके देखत ही आँखिन में चकाचौंध आइ और काम बश ह्वै अगन की सुधि भूलि गई। इहाँ नेह दीपकशिखा सी चारु—दीपक शिखा उपमान, सी वाचक, चारु साधारन धर्म, उपमेय नायिका है, यातें पूर्णोपमा। चारु धर्म को उपादान न कीजे तो धर्म का लोप, यातें धर्मलुप्ता लुप्तोपमा अलंकार और अरुधती के नखत लौं—अरुधती नखत उपमान, लौं वाचक, नायिका उपमेय, अतिसूक्ष्मता धर्म को उपादान नहीं, यातें धर्मलुप्ता अलंकार संकर है ॥२०॥

(गम्योत्प्रेक्षा-सदेह संकर)

सवैया—स्याम सरूप मै सोहै बुलाक सखी सत मोल सोहाग मै लीजै।
ढीली डगैं मुरि मैन जुड़ा गिरि जघन मै न मसूसनि भीजै ॥
हौं लगि जोया यही 'पजनेस' सयानहूँ लोग यही तजवीजै।
या जमजाम मे सीसा सिकदरी या दुरबीन लै देखिबो कीजै ॥२१॥

टीका—सखी की उक्ति नायिका सों। स्याम स्वरूप नायिका को तामैं बुलाक सोहै है, हे सखि सोहाग में नायक को मोल लीजै। ढीली जघा काम

१—उत्प्रेक्षा लक्षण दे० टि० पृ० ४४। उत्प्रेक्षावाचक शब्द 'मानो' आदि जहाँ पर रहते हैं वहाँ वाच्योत्प्रेक्षा और जहाँ नहीं रहते वहाँ गम्योत्प्रेक्षा कही जाती है, इसी को प्रतीयमाना भी कहते हैं। यहाँ यह विशेष ज्ञातव्य है कि जहाँ वाच्योत्प्रेक्षा के वस्तु हेतु फल भेद से तीन प्रकार हैं, वहाँ गम्योत्प्रेक्षा के हेतु और फल ये दो ही प्रकार हैं। साहित्य दर्पण में इन भेदों का विशेष विवरण है।

मसूसनि = मरोड़, एंठन। जोयो = देखा, विचारा ॥ २१ ॥

सुरि करि और मैन की मसूसनि सों भाजि गई है। मैं हू अब तक जान्यो अर्थात् विचार किया और सयाने लोग यही बात तजवीज करे हैं कि जमसेद के जाम कहे पियाला में सिकन्दर मामा है या दुरबीन लै देखा जानिये। इहाँ मानो आदि पद उत्प्रेक्षा वाचक नहीं है और मैना समान तुर्क उपादान, याते गम्योत्प्रेक्षा अलंकार और तुर्क को जमसेद के पियाला में सिकन्दर समान करि कह्यो, ताहू पै दुरबीन लै देखबो कहि कह्यो, यथार्थ काहू वस्तु को नहीं ठहरायो अर्थात् निश्चय न किया, याते संदेह अलंकार संकर।२१॥

कवि—गिरधारी (काव्यलिंग-रूपक संकर)

दंडक—गति गजराज जहाँ कटि मृगराज राजै,
नेउर के संग में भुजंग कचभार की।
कहैं 'गिरधारी' माँग मोती हैं असुर गुर,
सोहै सुर गुर आड़ केसरि लिलार की॥
आँखें अरबिंद जानि आनन अमंद इंदु,
अंजन जहर सुधा अधर अधार की।
आली क्यों न करै बनमाली सों बिगार जा पै,
बिधि ही बनायो ताहि मूरति बिगार की॥२२॥

टीका—मानवती नायिका सों सखी की उक्ति। जा पै तेरी गति गजराज के समान है और कटि मृगराज सिंह के कटि के सदृश, हाथी और सिंह को स्वाभाविक बैर है। नेउर नासिका, भुजंग सम कच केशपाश है, इनको भी परस्पर विरोध। माँग में मोती गुँथे असुरगुरु शुक्र, केसरि आड़ सुरगुरु बृहस्पति, नेत्र अरबिंद, आनन मुख अमंद पूर्ण इंदु चंद्रमा, अंजन गरल, अधर सुधा अमृत। हे आली सखी बनमाली कृष्णचंद्र सों तू क्यों न बिगार करै, ब्रह्मा ताको जा पै बिगार ही की मूरति बनायो है। इहाँ कृष्णचंद्र से बिगार करिबे को नायिका के आभूषन में परस्पर विरोध को वर्णन करि समर्थन कियो, यातें काव्यलिंग और गति गजराज आदि पद में रूपक, याते काव्यलिंग रूपक अलंकार संकर॥२२॥

(पर्यायोक्त-रूपक संकर)

दंडक—गति गजराज राजै, घूँघट बिराजै बाजि,
सीसा से कपोल, पान बेनी बेस करे हौं।

केसरि लिलार की = मस्तक में स्थित केसर का गोलाकार तिलक। बिगार = विरोध॥ २२॥

कहै 'गिरधारी' हीरा मोती से दशन, वोठ
विद्रुम रो स्वच्छ, दाखे बैन अनुसरे हौ ॥
रेसम से बार, रगदार नारगी से पाँय,
चारु हैं अनार से उरोज उर धरे हौ।
कहत गोपाल कोतवाल बनि गोपिन सैं,
देहौ न जगाति जो पै एते माल भरे हौ ॥२३॥

टीका—कृष्णचन्द्र की उक्ति गोपिन सों। गति गजराज की सी, घूँघट बाजि अश्व, सीसा सों कपोल, पान बेनी, हीरा मोती दशन, ओठ बिद्रुम, दाख बैन को अनुसरै है। रेसम सों बार केश, नारगी सों पाँय, अनार से चारु रमनीय उरोज। गोपाल कृष्णचन्द्र कोतवाल बनि गोपिन सों कहै है कि तुम सब एतनो माल लादे हो तो मेरो जगाति क्या नहीं देवोगी। इहाँ गति गजराज आदि पदन में रूपक और इतना धन लादे हौ तौ मेरो जगाति क्यों नहीं देउगी, यह ब्याज करि अपनो इष्ट साधन कियो, यातें पर्य्यायोक्त संकर अलकार ॥२३॥

कवि—श्रीपति (प्रतीप-दीपकावृत्ति संकर)

दडक—आरि जात अलि की नेवारिन कीआरि जात,
सारि जात सहज बयारि जाके तन की।
'श्रीपति' सुजान जाहि जूथिका बिदारि जात,
महिमा बिगारि जात बारिजात बनकी।
मारि जात मालती गुलाब मद झाँरि जात,
सौरभ उतारि जात केतकी सघन की।
बारि जात अगर तगर धूप हारि जात,
राह पारि जात पारिजात के सुमन की ॥२४॥

टीका—नायिका के सोन्दर्य्य को वर्णन। अलिन भ्रमरन की अवली जो नेवारिन की कियारी में अडी रही है, जाके तन के सहज बयारि को परसि सारि जात अथात् उन्मत्त है इत उत दौरी फिरै है। जाही जुही के परिमल को

सीसा = दर्पण । पान = नागबेल। बेनी = लट। जगाति = जकात, चुगी ॥२३॥

आरि = आली, पक्ति। नेवारिन = बनमल्लिका, जूही सा एक पुष्प। कीआरि = क्यारी। बारि जात = न्यौछावर होता है। अगर = चन्दन विशेष। तगर = धूप विशेष ॥२४॥

बिगारि जाय है, जाके तन को सौरभ प्रभात कालीन कमल की महिमा को बिगारि डारे है। मालती को मारि जात है और गुलाब के मद को झारि डारत है, केतकी के सौरभ को फीका करि देय है, अगर बारि जात है, तगर को धूप हारि जाय है, पारिजात फूलनि को गाह परि जात है अर्थात् कोऊ वा सम नहीं जाय है। इहाँ नेवारी आदि उपमान को अनादर, यातें प्रतीप अलंकार और आरि जात आरि जात पारि जात आदि पदन सों पदावृत्ति दीपक अलंकार संकर ॥ २४ ॥

कवि—सुन्दर (लोकोक्ति-रूपक संकर)

सवैया—मंजन कै अँग रंजन अंजन दै करि खंजन नैन नचावै।
अंबर भूषन वेष बनाइ अनूप जो कंचुकी चोवा चढ़ावै॥
साजि सिंगारन सेज बनाइ कै सुन्दर मंदिर सूनो बतावै।
बूझै नऊ न इतेपर क्रूर तौ और कहा कोउ ढोल बजावै ॥२५॥

टीका—सखी को उक्ति सखी सों। नायिका मंजन करि अंगांग सों अंग को विभूषि खंजन नैन में अंजन दै साकूत बिलोकि चाह दरसावै है। अम्बर भूषन अपूर्व सिंगारि कै कंचुकी पै चोवा अतर गुलाब आदि चढ़ावे है। शृंगार साजि, सेज बनाय सूनो मंदिर संकेत बनावै है। हे सखि वह क्रूर अनभिज्ञ इतने हू पै यदि न बूझे तो कहा कोऊ ढोल बजावै, अर्थात् मिलिबे के अर्थ चेष्टादिक सों अपनो अभिप्राय सूचन करे है। याहू पै क्रूर अनभिज्ञ नायक न जान्यो। इहाँ खंजन नैन पद में रूपक और कहा कोऊ ढोल बजावै यह उक्ति लोकप्रसिद्ध, यातें लोकोक्ति अलंकार ॥२५॥

कवि—कालिदास (उत्प्रेक्षा-रूपक संकर)

दंडक—अंधकार धूम धार सम शिर छूटे बार,
बिथुरि बिराजै रति सेज अंत पर मैं।
'कालिदास' काम रूप स्याम संग सोई बाम,
काम तें कलित तहाँ काम केलि घर मैं।
नवला की नाभी कान्ह जानु दै कुचन गहि,
सोए जोए जड़ित अंगूठी सोहै कर मैं।

मंजन = मज्जन, स्नान। अंबर भूषन = वस्त्राभूषण। चोवा = इत्र आदि सुगंधित द्रव्य ॥२५॥

मेरे जान करो नाग बाम त निकसि फन,
राख्यो मनि मडित सुमेरु के शिखर मैं ॥२६॥

टीका—कवि की उक्ति अथवा सखी की उक्ति सखी सों, सुरता त शयन का वर्णन। अधकार और धूमधार के समान अथात् अति स्याम शिर के बार काम काल म बूडे रत क अ त म बिथुरि बिराजे हैं, काम रूप स्याम श्री कृष्न च द्र क सग कामत कलित कहे कामग्म भरी काम केलि घर विहार स्थान में सोइ रहा है। नवल यौवना की नाभी पै कान्हलाल जू जानू दै और मणि जटित अगूठी बिराजे है जेहि कर म वासों कुचन को गहि सोइ रहे हैं। कवि की उक्ति मेरे जान बाम कहे बिवबटिमी कारो नाग निकसि मणि सों भूषित सुमेरु के शिखर पै फण धरि लसै है। इहाँ अधकार धूमधार करि शिर के केश को बर्णन और काम रूप स्याम अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्र को काम रूप करि कह्यो, यातें रूपक अलकार और बिहारी जू का नवला की नाभी पै जानु दै और मणि जटित अगूठी पहिरे करमों कुच गहि सोइबो सभाव्यमान पद, ताको बाल्मीक कहे बिवबटि सों निकसि मणि मडित सुमेरु के शिखर पै कारो नाग के सोइबो करि बर्णन, यातें उत्प्रेक्षा अलकार सकर॥ २६ ॥

(लुप्तोपमा रूपक सकर)

कीन्ही आजु आसन दुसासन शरासन सो,
गरे भुज पासन सों पकरि छबीली को।
'कालिदास' ललकि लपेटि लीन्हो दामिनि लौं,
स्यामघन जोबन सुबासन जसीली को।
गहि कै कठोर कुच तुबन कनक रगु,
चुबन करत अग अग चटकीली सौं।
मैन मद झूमि झूमि तूल सम तूमि तूमि,
लेत मुख चूमि चूमि नायिका रसीली को ॥२७॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों, नायिका क सभोग को बणन। नायक दु शासन शरासन के तुल्य आसन करि अथात् दृढ आसन करि भुजपाशन

धूमधार = धुए का प्रवाह। बिथुरि = बिखरे हुए। कलित = युक्त। नवका = नवयुवती। बाम = बल्मीक, सर्प का कोटर ॥२६॥

शरासन = धनुष। [नायक के फन्दे में फँसी होने से दु शासन शरासन की उपमा दी है अन्यथा टेढ़े तो सभी धनुष होते हैं।] तूल = रूई। तूमि तूमि = हाथ से मसक मसक कर ॥२७॥

सो गरे में उज्वाली को पकरि कहैं गलबाँही दै ललकि अति प्रेम करि लपेटि लियो, याते घन मद जैसे गामिनी बाजुन को अंकन में निबद्ध करि लेय है। सुबातन कहे मीठी मीठी बातन सों गम्भीरता बिसराय वश्य करि लियो कठोर कुच गहि कै कनक रंग तमरस कहे कमल फल के सदृश, याते प्रौढ़ा नायिका व्यञ्जित भयो। जाके अंग अंग की शोभा झलमलै होत है यार सों आलिंगन करि मैन काम मद सों झूमि झूमि, तूल के तन तूमि तूमि, नायिका रसीली को मुख चूमि चूमि लेत है। इहाँ दुशासन शासन सों—पद में वाचकलुप्ता लुप्तोपमा और शामिल लो हुतो, कठोर कुच तमरस कनक रंग पद में रूपक संकर है ॥ २७ ॥

कवि—मुकुंद (उत्प्रेक्षा लुप्तोपमा संकर)

दंडक—रति बिपरीति मृगनैनी की बिराज बेनी,
कनकलता पै ज्यों भुजंगी लहरत है।
स्वेद कन गिरत कपोल तें 'मुकुंद लाल',
मानो तम देखि इंदु अमी उहरत है।
खुटिला समीप राजै लोल चंचल सम,
कंचन से तन प्यारी त्यों त्यों थहरत है।
नेजेबरदार दोऊ असनि लगाए मानो,
दुहूँ ओर मैन की फतूही फहरत है ॥२८॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों। मृग के नैन कैसे नैन हैं जाके ऐसी जो नायिका, ताको बिपरीत रति बिराजै है। कनक की लता पै भुजंगी के समान बेनी लहराय है। मुकुंद कवि की उक्ति—कपोल तें स्वेदकन अर्थात् श्रम वारि बिन्दु गिरत है, मानो तम कहे राहु को देखि इंदु चंद्रमा अमृत को भय सें उगिलत है। अभिप्राय यह है कि रतिश्रमजनित प्रस्वेद बिंदु अधिक भयो है कपोलन पसीजि द्रवै है। खुटिला करन फूल के समान भूषन बिशेष होय है ताके समीप लोल चंचल दल पत्र के सदृश कंचन कहे कुंदन सो तन प्यारी नायिका त्यों थरथराय है। नेजेबरदार काम के बान दोऊ असन कहे स्कंधमूल पै लगाए, मानो दूनों भाग में मैन को फतूही फहराय है। इहाँ मृगनैनी पद में उपमान लोप, कनक लता पै ज्यों भुजंगी लहरति है इस पद में कनकलता आधार ताको नायिका की देह को ग्रहण भयो। भुजंगी

खुटिला = कान का एक आभूषण। नेजेबरदार = झंडा लेकर चलने वाला। मैन = कामदेव। फतूही = ध्वजा ॥२८॥

उपमान, यों वाचक, लहरायबो धर्म, बेनी उपमेय, चारों को उपादान, यातें पूर्णोपमा अलंकार। नायिका के कपाल तें प्रस्वेद को गिरिबो संभाव्यमान पद, ताकों तम राहु का देखि चंद्रमा सों अमृत को झरिबो करि वर्णन, यातें उत्प्रेक्षा। पुनः कुटिला समीप चंचल नेत्र को फरकिबो संभाव्यमान पद, ताकों मैन काम की फतूही कहै विजय फरहरा करि बर्णन कियो, यातें उत्प्रेक्षा संकर ॥ २८ ॥

कवि—सुखदेव मिश्र (रूपक-उत्प्रेक्षा संकर)

सवैया—साँझ समै अलबेली तिया दियरा करिकै अपने घर आवै।
पौन बहै अतिही सियरो तब अंचल मैं 'सुखदेव' दुरावै॥
देखि उरोज सिरीफल दीपक आपने ही हियते ललचावै।
कीजै कहाँ गहिबे को नहीं कर याही ते मानहु सीस धुनावै ॥२९॥

टीका—साँझ समय अलबेली नायिका दीपक बारि अपने केलिमंदिर को आवै है। वा समै अति ही शीतल पवन बहै है, अंचल के आड में बुझि जायबे के कारन छिपावै है। श्रीफल उरोज कहै कुच को देखि दीपक अपने हृदय में ललचात है अर्थात् अपने मन में पछिताय है कि हाय परमेश्वर हमको कर न दियो, नाहीं तो ऐसो अवसर पाय याको ग्रहण करि अपने मन को अभिलाष पूरो करते। कहा करों गहिबे को कर कहै हाथ नहीं है। याही तें मानो दीपक अपने शीश को धुनावै है अर्थात् सिर धुनि धुनि पछताय है। इहाँ उरोज सिरीफल पद में रूपक और दीपक के शिर को हालिबो स्वतः सिद्ध संभाव्यमान पद, ताकों कुच गहिबो अफल को फलरूप करि वर्णन, याते असिद्धविषया फलोत्प्रेक्षा अलंकार संकर ॥ २९ ॥

कवि—शिरोमनि (रूपक उत्प्रेक्षा संकर)

सवैया—है अति लोचन लज्जित आली के लाली रही लगि ओठन आधो।
भौंहनि भाय सुभाय 'शिरोमनि' कै मकरध्वज है शर साधो॥
होत इहै मुख और दुहूँ लट यों उपमा जो उरोजनि बाँधो।
द्वै घट द्वै विधु सिंधु सुधा भरि चंद कहार लै कामरि काँधो ॥३०॥

सियरो = ठंढा। उरोजसिरीफल = बिल्व फल के समान स्तन। कर = हाथ ॥२९॥

ओठन = ओठों में। आधो = आधी। कामरि = कँवरी। काँधो = कन्धे पर ॥३०॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों। हे सखि लाल के लोचन अति लज्जित हैं। और लाली कहे पीक लाल आधो ओठन पै त्यों लखाय है। भौंह निभाय कहे नचाय शोभायमान होय है, मकरध्वज काम सर सन्धान कियो है, मुख दुनों लट के मध्य और उरोजन की यों उपमा दरसाय है मानो द्वै चन्द्रमा द्वै घर में समुद्र सों सुधा भरि चन्द्रमा कहार अर्थात् जलवाहक कामरी काँधे पर लिये विराजे हैं। अभिप्राय यह है कि नायिका की लट छूटि उरोजन के ऊपर हुई और परी है ताको लखि सखी तन जरि सखी सों हास्य पूर्वक अर्थात् नायक सों भोग सूचक रूप दरसावै। इहाँ चन्द्र कहार परम रूपक और दोऊ कुच को सुधा पूरित घट करि संभावना, याते उत्प्रेक्षा संकर ॥३०॥

कवि—लीलाधर (व्याघात-काव्यलिंग संकर)

दंडक—भूल्यौ गान लेबो और बंसी को बजैबो भूल्यौ,
भूल्यौ कुंज जैबो जहाँ कीन्हो जो सँजोग है।
'लीलाधर' लीलापथ देखत ही लीले लेत,
जमुना भई है जमप्रीति कहाँ रोग है।
तजी हम भूख प्यास नींद को न बिसवास,
कूबरी करै बिलास बात या अजोग है।
आपु है हैं जोगी तब हम जोग लेहैं ऊधो,
होत कान्ह भोगी कहाँ हमैं जोग जोग है॥ ३१॥

टीका—गोपिन की उक्ति ऊधो सों। आश्चर्य की बात है हे ऊधो बिहारी जू गान लेबो और बंसी को बजैबो भूलि गया। वह कुंजहूँ को बिसारि दीनो जामें हम लोगन के साथ संयोग कहे रास कियो। लीलाथल जहाँ श्रीकृष्ण चन्द्र लीला कीन्हीं है, वह स्थान बिलोकत ही लीले लेय है। जमुना जम सों प्रीति ठई क्यों न स्नेह करै वाकी तो भगिनि ही होय। और हम सब भूख प्यास तजि दियो और नींद को कहा बिस्वास, जब भोजनादि करि सुचित होय है तब निद्रा परै है। कहा कहो हमको दुःख और कूबरी बिलास करै, यह अजोग की बात है। तासों हे ऊधो यदि आपहू जोगी ह्वै हैं तब हमहूँ जोगिनि ह्वै है। यदि कान्ह भोगी होत हैं तो तुम उनके सखा हो, साँचो कहो भला तो योग हमैं जोग है कि नहीं है अर्थात् नहीं है। इहाँ आपु ह्वे हैं जोगी तब हम जोग लेहैं ऊधो, इहाँ कार्य्य विरोधिनी क्रिया है, याते व्याघात अलंकार और निज जोगिनी न होयबे के अर्थ कान्ह भोगी है तो हमैं जोग जोग है यह काकु करि अर्थात् नहीं है समर्थन किया, याते काव्यलिंग संकर है ॥३१॥

कवि—कविदत्त (प्रतीप-सामान्य संकर)

सवैया-हीरन के मुकुतान के भूषन अगन लै घनसार लगाए।
सारी सफेद लसे जरतारी की सारद रूप से रूप सोहाए॥
प्रीतम पै चली यों 'कविदत्त' सहाय है चाँदनी याहि छपाए।
चाँदनी को यहि चंदमुखी मुख चाँद के चाँदनी सों सरसाए॥३२॥

टीका—नायिका को अभिसार नायक पै। हीरन और मुकुतान के भूषन अंगन में धारण करि, घनसार कपूर मिश्रित स्वेत चंदन को अंगराग लगाय, स्वेत सारी पहिरि, सारद कहे शरत्कालीन चन्द्रमा के रूप सों रूप शोभित होय है, यहि भाँति अपने को सँवारि सिंगारि प्रियतम पै चली। चाँदनी को सहाय पाय वाही रूप में मिलि गई और चाँदनी याको भी छिपायो। नायिका चन्द्रमुखी के मुख चन्द्र की चाँदनी प्रसिद्ध चन्द्रमा की चाँदनी को सरसायो। अभिप्राय यह कि चन्द्रमुखी मुखगत मरीचिका और प्रसिद्ध चन्द्रगत चन्द्रिका एकत्र ह्वै एक अपूर्व अतिशय प्रकाश प्रगटित किया। इहाँ नायिका को चन्द्रमुखी करि बर्णन। ताको चान्द्रका चन्द्रचन्द्रिका का सरसायो यह उपमानोपमेय वैषम्य अथात् चन्द्र चन्द्रिका उपमान सों चन्द्रमुखी मुखचन्द्रिका उपमेय को उत्कर्षता देखायो, यातें प्रतीप अलंकार। और चन्द्रमुखी नायिका स्वेत शृंगार करि नायक के पास चली चन्द्रमा की चन्द्रिका मैं मिलि गई पृथक् नहीं ह्वै सकै, यातें सामान्यालंकार संकर और शुक्लाभिसारिका नायिका॥३२॥

कवि—नेवाज (स्वभावोक्ति रूपक संकर)

सवैया-पीठि दै पौढ़ि दुराय कपोल को मानै न कोटि पिया उत पोटत।
बाँहन बीच हिए कुच दोऊ गहे रसना मन ही मन सोचत॥
सोवत जानि 'नेवाज' पिया कर सों कर दै निज वोर करोटत।
नीवी विमोचत चौंकि परी मृगछौन सी बाल बिछौना पलोटत॥३३॥

टीका—नायक की ओर पीठि दै कपोल को दुराय पौढ़ि रही है। कोटि-कोटि भाँति नायक अपने अभिमुख कियो चाहै, नहीं होय है। और बाँहन के

जरतारी = सोने का काम की हुई॥ ३२॥

पौढ़ि = सोई है। दुराय = छिपाकर। पोटत = फुसलाते हैं। बाँहन = बाँहों को। वोर = ओर। करोटत = करवट बदलवाता है।

१—'बिछौना पलोटत' इस पद का टीकाकार ने जो अर्थ किया है उसकी अपेक्षा 'बिछौने को पलोट कर = अपनी ओर मोड़कर, अपने को ढकने की चेष्टा करती है।' यह अर्थ स्वभावोक्ति के अधिक अनुकूल पड़ता है॥ ३३॥

बीच हिए अर्थात् जाके भुज के बीच कुच की दुगाय भी हो मन में खींचे रहे है। नाते मानो चालि हो तो सो होत है अवनी और ... और नाना की ज्वाल लग्यो। जहाँ समय नायिका चौंकत है, मृगछौना के समान बिछौना पे लोटि रहे हैं अर्थात ... विस्तार रहा है। इहाँ मृगछौना को ... और ... के समान की है, ... नहीं होय है, यातें ... अलंकार ... नायिका ॥३३॥

कवि—दास **(उत्प्रेक्षा-रूपक संकर)**

धूमरितें धूरि मानो रुपटी विभूति भूरि,
मोति माल मानहुँ लगाए गंग गलसी।
निर्मल बघनहा विराजे उर दास[1] मानो,
बाल बिधु राख्यो जोरि द्वै कै भाल थल सों।
नीलमनि गूँदे मनिवारे आभरन कारे,
डौंरू कर धारे जोरि द्वैक उत पल्लों।
ताके कमला के पति गेह जसुदा के फिरे,
आके गिरिजा के ईस मानो हलाहल सों॥ ३४॥

टीका—श्री कृष्णचन्द्र की बालावस्था को वर्णन। धूमरितधूरि अर्थात् धूरि में लोटे हैं मानो बिभूति अंग में लगाये हैं और मोतिन की माल बाहरे मानो गंगा जी विराजती हैं। बघनहा पहिरे बाल बिधु चन्द्रमा के समान विराजे हैं। नीलमनि गूँदे हैं मानो मनि वारे आभरन कारे कहे सर्पगन हैं। द्वैक उत्पल कमल जोरि के डमरू बनाय राख्यो है। कमला लक्ष्मी के पति साक्षात विष्णु बाल रूप धरि जसुदा के घर में विहरे हैं, मानो गिरिजा पार्वती के स्वामी शम्भु विराजे हैं। इहाँ विभूति आदि करि धूरि आनि लगाये हैं महादेव करि संभावना, यातें उत्प्रेक्षालंकार और नीलमनि गूँदे मनि वारे आभरन कारे इस पद में रूपक, संकर है ॥३४॥

कवि—देव **(संदेह-भ्रम संकर)**

दंडक—सूझत न गात बीति आई अधरात अरु,
सोए सब गुरजन आनिकै बगर के।

१—नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'भिखारीदास ग्रन्थावली' में इस पद्य के भी निम्न पदों का पाठ भिन्न है—बघनहा–बघनहा। नीलमनि गूँदे–नीलकुसुम गूँद। आभरन–अभरन।

बघनहा = बाघ के नख का बना हुआ एक आभूषण। मनिवारे = सर्प ॥ ३४ ॥

छपिकै छबीली अभिसार को केवार खोले,
खुलते सुगंध चहुँ चंदन अगर के ॥
'देव' कहै कुंजन ते भौंर पुंज गुंजि आए,
पूछि पूछि पाछे परे पाहरू डगर के।
देवता, की दामिनी, मसाल है, का जोति जाल,
झगरो मचत जागे सगरो नगर के ॥३५॥

टीका—ऐसी अँधियारी निशा कि जाम गात भी नहीं सूझि परै है। आधी राति बीति गई, छबीली इत उत निरखि गुरजन को सोवत जानि और छपि के अभिसार के अर्थ केवार खोलि कै चली। खुलते ही वाके अंग को और चन्दन अगर को सुगंध चहूँ ओर फैलि गयो। यह अपूर्व परिमल पाय भौंर कुंज ते निकसि वाके पीछे पीछे गुंजार करि रहे हैं। और भ्रमर की झनकार सुनि पाहरू डगर के उठे, यहि भाँति परस्पर कहि रहे हैं कि यह देवता चली जाय है कि दामिनी है, किंवा मसाल होय अथवा जोति को जाल एक ठौर ह्वै गयो है यह झगरो मचते ही सब नर नारी नगर के जागे। इहाँ भ्रमर जान्यो कि कोनो लता को सुगन्ध वायु के साथ इहाँ आवत है, इस हेतु मधुकर पुंज गुंजरते चले, यातें भ्रांतिमान् अलङ्कार और देवता की दामिनी आदि करि संदिग्ध अनुमान। सब पाहरू परस्पर मिलि झगरो कियो यथार्थ न ठहरायो, यातें संदेहालङ्कार संकर, अभिसारिका नायिका ॥३५॥

कवि—आलम (रूपक-उत्प्रेक्षा संकर)

दण्डक—हिए हूक हूल सोहै ओधि हूँ न आए हरि,
हेरि मग हारी ताते भई तन छीनी है।
'आलम' सुकवि थकी बिषम बयारि लागी,
मानि मन सकल सकेलि बिथा दीनी है।
उससि उसासन सों पाँसुरी उकसि आई,
बीच बीच कहूँ असुवान भरि लीनी है।

गुरजन = गुरुजन। बगर के = प्रासाद के, घर के। छपिकै = छिपकर। पाहरू = पहरेदार। डगर = मार्ग। सगरो = सभी लोग ॥३५॥

हूक = कोकिल के शब्द आदि कामोत्तेजक ध्वनि को सुनकर या ऐसे किसी पदार्थ को देखकर हृदय में उठनेवाली टीस। हूक = शूल। बिषम बयारि = शीतल, मन्द, सुगन्ध, त्रिविध हवा। उससि = पसीने से तर होने से।

विरह के बीज वर सलिल में सींचि हग,
तन भूमि मानो काम काछी कैसी कीनी है ॥३६॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों। नायिका के हृदय में कोकिल की कूक शूल के समान लगी है, याही याते कै नाहू में हाय न जाये। हरि हार कहै विलोकि विलोकि कै हारि गई, नील अगार भई। विषम बयारि कहैं त्रिविध समीर लागत है, यातें भरि गई। सम्पूर्ण सेज कहै ताकी की भूमि अतिशय व्यथा मानो है। उसासन सों उसासन पाँसुरी जाकी उकसि आई। बीच बीच में कहूँ आँसू ... में आँसू भरि आनो तासों यहि भाँति लखाय परे है कि काम काछी ने प्रकाश तन भूमि में विरह के बीज बोय और सलिल सों सींचि के हरा किया है। यहाँ विरह को बीज करि आँसू सलिल सों हरा करि वर्णन, याते रूपक अलंकार और काम को काछी करि सम्भावना याते उत्प्रेक्षा अलंकार संकर ॥३६॥

कवि—हरजीवन (रूपक विभावना संकर)

सवैया—'हरजीवन' नेह भरो न रहै घर जी मनमोहन के गरजी।
गरजी सुनिकै उनकी मुरली ततकाल हिए में लग्यो सर जी॥
सरजीवन देहन ऐसो परी सु मनो मन प्रान गये बर जी।
बर जीभ गई लटराय तऊ मुख तें निकसे हर जी हर जी॥३७॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों, नायिका की प्रेमासक्तता वर्णन करै है। हरजीवन कवि की उक्ति। नेह भरी नायिका प्रेम वश घर में नहीं रहै है—जीव मन मोहन कहे मन के मोहि लेन हारे श्री कृष्णचन्द्र के गरजी भये। उनकी मुरली गरजी सुनि कै कहे मरे अर्थ वह अति व्याकुल और उत्सुक है इस हेतु ततकाल हृदय में शर ह्वै लगा। देह में इस भाँति सरजीवन कहे विशल्य करणी औषध ह्वै रही मनो मन और प्रान धरि कहे बँधि रह गए। जीभ बरि कहे दाबि कै लटराय गई, तऊ मुख ते हर जी हर जी कहयो। इहाँ मुरली को शर करि वर्णन कियो, याते रूपक अलंकार। और सरजीवन देहन ऐसी भई इहाँ सरजीवन व्यथा हरन हारी और जीवन देन हारी तासों व्यथा को प्राप्ति और जीवन में बाधा यह विरुद्ध कार्य की उत्पत्ति, याते विभावना अलंकार संकर है ॥३७॥

उसासन सों = दीर्घ निःश्वासों से। पासुरी उकसि आई = पसलियाँ उभड़ आईं। काम काछी = कामदेव रूप कोइरी (तरकारी बोने वाला) ॥३६॥

जी = मन। गरजी = इच्छुक। सरजीवन = घाव को भरने वाली सजीवनी। लटराय = लड़खड़ा ॥३७॥

कवि—घनस्याम (लेश-रूपक संकर)

सवैया—बँसुरी बन बाजत है जबहीं तबहीं छबि जात हिए पँसुरी।
पसु री न चरै तृन तास कहूँ 'घनस्याम' रहै रसना रसुरी॥
रसु रीति तजे घर की घरनी बरुनी सर से बरसै अँसुरी।
अँसु री ब्रज बाल बिहाल भई मनमोहन सो न कछू बसु री॥ ३८॥

टीका—सखी परस्पर श्रीकृष्णचन्द्र के बंशी के दुःख दायित्व को बर्णन करै है। बन में मोहन की बँसुरी जबही बजे है ताही छन हृदय में गड़ि जाय है और औरही रंग ह्वै जाय है। पँसुरीन में पीड़ा होने लगै है। पशु भी जो रस को नहीं जानै है सरस ह्वै देह की सुधि बिसारि सूखे घास त्यागि तृन को नहीं चरै है। घनस्याम श्रीकृष्णचन्द्र रसना को रस ह्वै रहते हैं अर्थात् उनहीं को नाम रट्यो करै हैं। घर की स्त्री रस रीति अपने पति के साथ भोगादि सुख छाड़ि बरुनी सर सों आँसू बरसावै है। ऐसी ब्रजबाल बिहाल भई, हे सखि मनमोहन सों कछू बश नहीं चलै है, कहा कीजिये। इहाँ बरुनी सरसों बरसै अँसुरी—में बरुनी को सर करि बर्णन कियो, यातें रूपक अलंकार और बंशी को बाजिबो और सबके कानन में सुख देबो गुण सों गोपिन को दुःख देबो है दोष भयो, यातें लेश अलंकार है॥३८॥

कवि—शोभनाथ (लोकोक्ति रूपक संकर)

सास कै त्रास उसास भरो मन ही मन माँझ मसोसनि मारिबो।
घेरे रहै घर बाहिर लौं ननदी कितहूँ न कितौ पचिहारिबो॥
'नाथ' सुजान वे बेपरवाह पहार हमै निज पौरि बिहारिबो।
फेरि बनै केहि छन्द सखी नँद नंदन को मुखचंद निहारिबो॥३९॥

टीका—नायिका की उक्ति सखा सों। हे सखि सासु के त्रास कहैं भय सों ऊर्ध साँस भरा करौं, कोनउ प्रकार को सुख नहीं पावती हौं, मन ही मन भीतर मसूसनि को मारिबो पर्यो। ननदा ऐसी हठीली, घर बाहिर लौं घेरे रहता हैं। कितहूँ न कितौ पचिहारता हौं। मेरे नाथ सुजान बेपरवाह मेरी दशा कों नहीं देखै हैं। अपने पौरि ताईं को बिहार करिबो हमैं पहार है। फेरि हे आली नन्दनन्दन के मुखचन्द को निहारिबो हमें कैसे बने। इहाँ नन्दनदन को

पँसुरी = फैलती, आ जाती है। तृनतास = घासपात। रसनारसु = जिह्वा का स्वाद। बरुनीसर = आँख। अँसुरी = आँसू। अँसु = ऐसी॥ ३८॥

उसास = निःश्वास। मसोसनि = आन्तरिक व्यथाओं से। पचिहारिबो = परेशान होना। पौरि बिहारिबो = द्वार तक घूमना। छन्द = प्रकार॥ ३९॥

मुखचंद इस पद में रूपक अलंकार और सास कै नाम आदि लोक कहावत प्रसिद्ध। अभिप्राय यह कि यदि नायिका स्वच्छंद भी होय, तऊ सखा से अपनी पराधीनताइए कहता है यह लोक प्रसिद्ध, यातें लोकोक्ति अलंकार ॥३९॥

कवि—शोभ (भ्रम रूपक संकर)

कवित्त—आली बनमाली पै अभिसारी प्यारी राधे आज,
सघन तमाली झुकी झिलमिली जाती है।
अंग ही के सहज सुगंधनि अनंद भइ,
भोरे जे अलिंदन की रंग रली जाती है।
ठौर ठौर मोरान को सोर दरसात 'शोभ',
भोरे बेनी ब्याल के नजरि छली जाती है।
चाहि चाहि चंदमुखी चाँदनी चहूघा चली,
चंचल चकोरान की चुगें चली जाती है ॥४०॥

टीका—सखी को उक्ति सखी सों। हे आली बनमाली श्री कृष्णचंद्र पै प्यारी राधा अभिसार के अर्थ चली। सघन तमाली झुकि कै झिलमिली जाती है कहै तमालन की अवली में मिली जाय है। अंग के सहज परिमल सों आनंद मई है, तासों पास मलिंद भ्रमरन को भोर पाछे गुंजार करती है। और ठौर ठौर मोरन को सोर मचि रह्यो है। भ्रम सों बेनी को ब्याल जानिकै उनकी नजरि छली जाय है। अभिप्राय यह है कि मोरगन बेनी को ब्याल जानि पीछे पीछे गहिबे के अर्थ चले जाँय हैं। चन्द्रमुखी नायिका के मुखचंद की चाँदनी को चाहि चाहि चकोरगन चंचल ह्वै चारयो अलंग से दौरि कै चगुल चलाय रहे हैं। इहाँ बेनी को ब्याल करि बर्णन और चन्द्रमुखी पद में रूपक अलंकार और मोरन को बेनी देखि ब्याल कहै सर्प को भ्रम भयो, चकोरन को मुख देखि चन्द्रमा को भ्रम भयो, यातें भ्रांतिमान् अलंकार संकर, अभिसारिका नायिका ॥४०॥

कवि—नंदन (रूपक-विभावना संकर)

कबित्त—नई भई बेदन निबेदन की गई भई,
जई भई जोग की सँजोग स्वपने भए।

सघन तमाली = घनी तमाल की झाड़ियों में। अलिंद = भौंरे। भोरे = भोले भाले ॥ ४० ॥

तन भए तूल औ अतन भयो ज्वाला मूल,
सोम भयो शूल सो तपन तपने भए।
गोकुल के चंद 'कवि नंदन' उदास भए,
जै बन बिलास निखिलास जपने भए।
लीन भए लोचन अधीन भए रोम रोम,
दीन भए प्रान पै न कान्ह अपने भए॥ ४१॥

टीका—नायिका प्रीति करि पछिताय है, ताकी उक्ति। यह बेदन कहै पीड़ा नइ भइ है। निवेदन कासों करों, करिबे के योग्य नहीं। जोग की जड़ अर्थात् निरद होयबे के कारन अब सब पदार्थ तुच्छ हा देखि परत है। सजोग नायक को, स्वप्न भयो। तन कहै देह तूल भय, अतन काम ज्वालामूल अग्नि को रूप भयो अथात् ऐसो दुखदाइ भयो और तन का जरायबेवारो कि अग्नि याही सों उत्पन्न भयो है। सोम चन्द्रमा शूल और तपन सूर्य ताप करन हारो भयो। गोकुल के चन्द्र श्री कृष्णचन्द्र उदास कहै दीन भए और वह बन को बिलास जामें अनेक प्रकार को सुख अनुभव कियो, राति दिन जपने कहै चरचा ही करिबे को रहे। लोचन कहै नेत्र बिलोकते बिलोकते लीन कहैं पलकें परि गईं। रोम रोम अधीन भए। प्रान दीन कहै दुखी भए। पै कान्ह तऊ अपने नहीं भए। इहाँ तन भए तूल आदि में रूपक अलंकार और जाके कारन इतनो दुख उठायो उचित है कि फेरि ऐसो बियोग जनित दुख न भोगिबो परै, यह प्रतिबंधक के रहिबे हू पर कान्ह अपने नहीं भए, कार्य्य की उत्पत्ति भई, यातें बिभावना संकर और यदि पूर्वोक्त सम्पूर्ण दुख को कारन अधिक मानिए, ताहू पै कार्य्य की उत्पत्ति, तौ बिशेषोक्ति सकर, परंतु इसमें और उसमें कछु थोरा ही सूक्ष्म भेद है नहीं तो एक ही है॥४१॥

कवि—सदानंद (रूपक दीपकावृत्ति संकर)

दंडक—झनक मनक जोती नासिक बनक मोती,
'सदानंद' को ती तिय तेरी तीर तोरदार।
रतन के कानन तरौना इंदु आनन पै,
खुली हैं अलक मोती मालनि मरोरदार।
उन्मद उरोजन पै कैसी लसी उरबसी,
तैसी कसी कंचुकी कसुंभी रंग बोरदार।

बेदन = बेदना, पीड़ा। नइ = समाप्ति। जई = अंकुर। तूल = रूई। अतन = कामदेव। ती = स्त्री, नायिका॥ ४१॥

छोरदार अंचल की ओट दुरि दोरदार,
करत कजाकी कजरारे नैन कोरदार ॥ ४२ ॥

टीका—सौन्दर्य वर्णन। नाक अंग की ज्योति झनक मनक कहे झल झलाय रहा है। नासिका में सुथरी मोती पहिरे है मानो नग की तिय करोरी तरी तार तोरदार अर्थात् तेरे निकट औरन की सुन्दरता को तोरि डारै है। अभिप्राय यह है कि तेरी लोनाई देखि और राधिका की लावण्य पेखि मन में बिचारैं है कि यह तो मेरे कन्हैया ही के जोग्य है। इस हेतु औरन की सुन्दरता तें आगे बाढ़ि डारे हैं। रूप ज्योति तरंगनी आनन में माँहि। चन्द्र बदन पै खुली अलकें झलकै हैं और सोना की माला मरोरदार शोभित होय है। उरबसी उतंग उरोजन पै कहा उपमा शोभा पाय सके है। तमाई कुसुम रंग में रंगी कञ्चुकी कैसी शोभा देय है। छोरदार कहे किनारी रंगयो अंचल की ओट दुरि बड़े दीरघ और कोरदार तेरे नैन कैसी कजाकी करैं हैं अर्थात् जाकी ओर चितवैं हैं वह लोट पोट ह्वै घायल गिर जाय है। जासों तूँ सहजै ही वश्य कर लेय है। इहाँ छोरदार कोरदार आदि पद के नियम तें दीपकावृत्ति अलंकार, इन्दु आनन पद में रूपक अलंकार संकर है॥४२॥

कवि—भूधर (रूपक-लुप्तोपमा संकर)

जोबन उजारी प्यारी बैठी रंगरावटी में,
मुख की मरीचों सों दरीचों बीच झलकै।
'भूधर' सुकवि साँहैं भौंहैं मन मोहैं खरी,
खंजन सी आँखें मनरंजन सी पलकैं।
सीस फूल बेना बेनी बीर और बंदनी की,
चंदन की चरचा की चारु छबि छलकै।
कोर वारी चूनरी चकोर वारी चितवनि,
मोर वारी बेसरि मरोरवारी अलकैं॥ ४३ ॥

टीका—कवि प्रौढ़ोक्ति अथवा काहू उपपति की उक्ति सहृदय सों। जाके जोबन की उजारी कहे प्रकास झलाझल होय है। ऐसी नायिका बनि ठनि

तरौना = ताटंक, करणफूल। मरोरदार = घुँघराली। उरबसी = स्वर्णमाला। दोरदार = भ्रमणशील। कजाकी = लूटमार॥ ४२ ॥

रंगरावटी = केलि गृह। मरीची = किरण। दरीची = खिड़की। बेना = उशीर। बेनी = चोटी। बीर = कान का एक आभूषण। बंदनी = रोली। मोर = मौड़॥ ४३ ॥

रगरावटी में बैठी है। जाके मुखचन्द्र की मरीची कहैं किरणें दरीची के बीच झलक हैं। शोभित भौंहैं रसिकन के मन को मोहैं। आछी खजन सी आँखें मनरजन कहै मन के रंग देनहारी जाकी पलकैं हैं। सीस के ऊपर फूल, बेना बेंदा और बेनी ओर वदना की सिंदूर माँग में बिराजे है। चदन की चरचा कहै अगराग लगाये जाकी चारु कहे रमणीय छवि छलकै बाहर प्रसिद्ध देखि पर है। कोरदारी कहै किनारा गोटा पट्टादार चूनरी ओढे है। चकोर कैसी चितवनि, मोरवारी कहै मोर पख लगी बेसरि ओर मरोरवारी जाकी अलकैं शोभा दय हैं। इहाँ जोवन उजारो, खजन सी आँखैं, इनमें धर्मलुप्ता लुप्तोपमा अलकार और शीश फूल बेना बेनी पद में रूपक अलकार सकर है ॥४३॥

कवि—कासीराम (लुप्तोपमा-सदेह सकर)

नागरि गई ही घाट गागरि भरन काज,
हाटक सो तन ताको कैसी नीकी खरी है।
तब तुम एक पल ताकि रहे 'कासीराम',
ता घरी तें वह तो घरीसी करि घरी है।
हाथ पाँव टारति न अँचरा सँभारति न,
आँखिन उघारति न यौं अचेत परी है।
ए हो बनवारी जू तिहारी चितवनि माँझ,
बिष है कि सुरा है कि जन्त्र है कि जरी है ॥ ४४ ॥

टीका—सखी की उक्ति श्री कृष्णचन्द्र सों, नायिका की दशा बर्णन करै है। नागरी कहै अति चतुरी मेरी सखी गागरि भरिबे के अर्थ घाट पै गई [हु] ती, जाकी हाटक कहैं सोना ऐसा देह तुमहूँ जानते हो कि वह कैसी खरी कहै सुन्दरी है। तब तुम वाकों एक पल लौं टकटकी लाय ताकि रहे, वाही घरी सों वह घरी सी कहै घरी भरन हारो सो, घर में वाकी घरी है रही है। हाथ पाँव नहीं टारती, अँचरा को नहीं सँभारती, आँखिन को नहीं उघारती, यों अचेत ह्वै परी है। एहो बनवारी जू तुम्हारी चितवनि के मध्य बिष है, किंवा सुरा कहै मदिरा है, किंवा कोनो जन्त्र है, अथवा कौनो जरी कहै बूटी औषधि है, जो तुम वाकों यहि भाँति करि दियो है। इहाँ हाटक सों तन, इस पद में हाटक उपमान, तन उपमेय, सों बाचक है, धर्म को लोप है, यातें धर्मलुप्ता लुप्तोपमा अलकार ओर तुम्हारी चितवनि में बिष है कि, सुरा है कि, जन्त्र है कि, जरी है यह सदिग्ध बचन, यातें सन्देहालकार सकर ॥४४॥

घरी = समय। घरीसी = घड़ियाँ गिनने वाली सी। घरी है = घर में पड़ी है। जरी = जड़ी बूटी ॥४४॥

कवि—सूरति (संदेह-उल्लास संकर)

दंडक—कैधौं यह केश बेश रस के नरेश वाके,
दे्श की सँदेश भूमि सोभा रस भीनी है।
कैधौं यह मदन को पाटी मंत्र पढ़िबे को,
'सूरति' सुकवि बनी हाटक नवीनो है।
जोबन के मंदिर की भाँति द्वै सुढार कैधौं,
राज रतिराज रुचि सों बनाय कीनी है।
येरी मेरी तेरी यह पीठि नेकु दीठि परी,
देखत ही ईठि सबही को पीठि दीनी है ॥४५॥

टीका—नायक की उक्ति नायिका सों। अहो प्यारी कैधौं यह तेरी चोटी केश बेश जो कि इस श्रृंगार के नरेश राजा हैं ताके देश की सदेशभूमि है। अर्थात् जो कोई याकौं देखे है तब रसनिमग्न ह्वै यह अनुमान करै है कि यदि यहाँ ऐसी शोभा धारन करती है तो या पै विलास करनहारे केश के लावण्य कौं कहा कहैं, यातें सदेशभूमि कह्यो। शोभारस सों भीनी है अथवा मदन की मंत्र पढ़िबे की पाटी है। सूरति कवि की उक्ति—हाटक कहैं सोनो नवीन की बनी है कहैं कुंदन रंग है। कैधौं जोबन रूपी जुरा अवस्था सुढार चिकनौंही दीवार है। अथ राज रुचि सों रतिराज नारी भाँति बनाई गई है। एरी प्यारी मेरी दीठि जब सों तेरी पाटि पै परी है तब सों और रमनीन की ओर पीठ ही देय है। अब काहू और सुन्दरीन कौं नहीं निहारै है, ताके आगे सिगरी बनितान की सुंदरता फीकी देखाय परै है। यहाँ कैधौं पद प्रकासित केश की शोभा की भूमि आदि संदिग्ध वर्णन कियो, निश्चय नहीं ठहरायो, यातें संदेहालङ्कार और वाकी पीठि देखि दीठि की फेरि औरन कों न देखिबो दोष भयो, यातें उल्लास अलङ्कार संकर और अपनी वश्यता नायिका को देखावै यह व्यंग्य है ॥४५॥

कवि—कृष्न (भ्रम-संबंधातिशयोक्ति संकर)

दंडक—कूरम कलश महाराज जयसिंह फैलो,
रावरो सुजस सुरलोक में अपार है।
'कृष्न कवि' ताके कन सुंदर जलज जानि,
सुरन की सुंदरीन लीन्हो भरि थार है।

पाटी = तख्ती । सुढार = सुडौल, सुन्दर । राज = स्थपित, बढ़ई । रतिराज = कामदेव । ईठि = इष्ट, प्रिय ॥ ४५ ॥

तिनहीं के संग को सरस तेरो गुन लैके,
हार पोहिबे को उन करती बिचार हैं।
मोती जो निहारे कहूँ रध्र को न लवलेश,
गुन को निहारे कहूँ पावती न पार हैं ॥ ४६ ॥

टीका—कूरम जात विशेष महाराज जैसिंह को सुजस बरनन है। कृष्ण कवि कहै है—जलज कहै मोती जानि सुर कहै देवन की स्त्री थार में भरि लई, भ्रम भासित भया, यात भ्रातिमान् अलकार। तिन ही के संग तिहारे जो सरस गुन हैं सो लै कै हार पोहिबे को बिचार करती हैं। गुन सूत, गुन विद्यादिक एक शब्द का द्वै अर्थ, यातें श्लेष अलकार। मोती जो निहारती है तौ रध्र कहै छिद्र को लवलेश नहीं अरु गुन को जो निहारती हैं पार नहीं पावती हैं, अजोग जोग कथन तें सम्बधातिशयोक्ति अलकार ॥४६॥

कवि—गंग (रूपक लुप्तोपमा-उल्लेख संकर)

दडक—तारापुर प्रबल पठान भूमि भारी भीर,
भीम सम भिरो रन भावसिंह मिरजा।
भभकि भभकि घाय कूप सो भरत घट,
भारी भारी बीर मारे रन पाय खिरजा।
लोहू की नदीन 'गग' हाथी धारा लोथ बहै,
जोगिनी से जोगिनी पुकारै पार तिरजा।
हीरन के हार बर वारती वरगना लै,
मुडमाल हर गजमोती लै लै गिरिजा ॥ ४७ ॥

॥ इति श्री दिग्विजयभूषणनामकग्रथे सकरालकारवर्णन नाम अष्टम प्रकाश ॥ ९ ॥

टीका—तारापुर नगर के पठान ने प्रबल भीमसम भिरो। पठान उपमेय, भीम उपमान, रूपक। भभकि घाव कूप सा भरत घट, यातें घाय उपमेय, भरत धर्म, सा वाचक, घट उपमान वाचक पूर्णोपमा अलकार। हीरन के हार वारती वरँगना लै। अरु मुडमाल हर अरु गजमोती की माल लैकै पारवती। एक को बहुत लोग बहुत जानै, तहाँ दूसरो उल्लेखालकार ॥४७॥

इति श्री दिग्विजयभूषणनामक ग्रथे टीकाया संकर
अलकार वर्णन नाम अष्टम प्रकाश ॥८॥

कूरम कलश = कछवाह वंश में श्रेष्ठ। पोहिबे = गूँथने के लिये। गुन = तागा, डोरा। भभकि = उबल कर ॥ ४६ ॥

नवमः प्रकाशः

॥ अथ अक्रम अलंकार संसृष्टि[1] वरनन ॥

दोहा—आन अलंकृत प्रथम लगि प्रथम अलंकृत अंत।
ताहि अक्रम संसृष्टि कहि, जे कवि मो सतिमत ॥ १ ॥

टीका—अथाक्रमसंसृष्टि अलंकारवर्णनम्। जाम क्रम न लखात है अर्थात् कहूँ और अलंकार होय और अन्यत्र और ही होय, आदि अंत को विचार न होइ ताहि अक्रम संसृष्टि कहे हैं ॥१॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

(रूपक-विशेषोक्ति-भेदकातिशयोक्ति-यथासंख्य)

दंडक—साधन अगाधन की बरषा बरसिहारी,
जरनि जुड़ानि न खिसानी कछु बात है।
केती अनाकानी ठानी जानी जान पनी तरी,
सीमदान मान लीन्हें नऊँ अठिलात है।
नैनन तें औरे 'बृज' बैनन तें औरे रंग,
अंगन प्रसंगन तें औरे दरसात है।
खाए खबरात, एक पाए थबरात, एक
आए थबरात, तो मैं तीनों अवदात है ॥ २ ॥

टीका—दूती को वचन नायिका सों। मान करि नायिका रूठि बैठी ताके मनायबे अर्थ दूती बुझावती है। साधन अगाधन कहै मनायबे की अनेक

१—संसृष्टि अलंकार में भी संकर की भाँति दो या अधिक अलंकारों का मिश्रण ही होता है अन्तर केवल इतना ही है कि संकर में वे विभिन्न अलंकार परस्पर सापेक्ष होते हैं जैसा पृ० ३७ की टिप्पणी में दिखाया गया है, किन्तु संसृष्टि में एक का दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। सब निरपेक्ष रहकर पृथक् पृथक् पदों में स्वतन्त्र रूप से प्रदर्शन करते हैं। संसृष्टि ३ प्रकार की होती है—१-केवल शब्दालंकार। २-केवल अर्थालंकार। ३-शब्दार्थालंकार।

जरनि = जलन, ताप। जुड़ानी = शान्त हुई। खिसानी = समझ में आयी, वश चला। पनी = प्रतिज्ञा। ऍंठिलात = गर्व करती है। अवदात = चमकते, दीखते ॥ २ ॥

उपाय करि हारी, मनायबे की झरि नाँधि दई, ताहू पै तेरो मन न पघिल्यो। और तेरी जरनि न जुडानी, न मेरी बात ताको सिसानी कहै तेरे मन मैं न बैठ्यो। कता अना कानी तैं ठानी। मोको जानि पन्यो कि यह तेरे जान ही म परी, पै तू अठिलाय है। तेरे नैनन त कछू और ही, बचनन तें कछू और हो, रग अग के प्रसगन ते अग अग म कछू और देखाय परै है। एक मद के खाये बौराय हैं। एक कनन धन, ताके पाय बौराय है और एक आए कहै जोबन के आए बोराय है। अग में तेरे तान्यों ल्साय परै है कहै—जोबन, धन, मद, यह तीन्यों तामें देखाय परै है। साधन कारण, [तें] जरनि कार्य न भयो, तातें विशेषोक्ति अलकार, और नेनन तें औरै, 'बृज' बैनन तें औरै पदमें कि मान के पूर्व तेरे नेन नेन कछू और ही ढग के रहे अब कछू और ही प्रकार के लखात हैं। नेन टेढे, नैन व्यग्य युत, अग अग मान व्यजक दरसाय है, या त भेदकातिशयोक्ति अलकार और जोबन धन मद न मादकता को निषेध करि यामें नियमन अर्थात् उ मादकता या ही म रह्यो अन्यत्र कथन मात्र रह्यो, यातें परिसख्या अलकार। अथवा नैन अरुन ते मद पाये, बैन ते कुटिलता बन पाये, अग ते जोबन आगम, तातें यथासख्य अलकार ॥ २ ॥

(पूर्णोपमा-असंबंधातिशयोक्ति-रूपक-विभावना)

सुदर—जाइ न जात नगीच भट्ट पट बोट किए तन ताप चढै।
तल फुलेल न भावत भूपन देह दशा दुति दीप बढै॥
देखे बिना 'बृज' चदकला चख चारु चकोर लौं मोह मढै।
कोकिल कठन स 'बृज' मजुल चातिक के कल बोल कढै ॥ ३ ॥

टीका—सखी को उक्ति सखी सों, नायिका की बिरह दशा वर्णन करै है। वाको निकट नहीं जायो जाय है। हे भट्ट पट कहै बस्त्र के ओट हूँ किए पै देह म ताप चढि आवै है। जो कोई सखी तेल फुलेल देय हैं वाको नहीं भावै है। भूषन की रुचि नहीं करै है। देह दशा की शोभा दीप के समान बढै है। बृजचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र के देखे बिना नेत्रन को चकोर के समान मोह सों मढै है। वाके कोकिल कठ सों चातक को कल बोल कढै है अथात् पीव कहाँ, पीव कहाँ यह राति दिन रट्यो करै है। इहाँ चकोर उपमान, चख उपमेय, चन्द्रकला देखे बिना मोह को मढिबो साधारन धर्म, लौं वाचक, यातें पूर्णोपमा अलकार। और नगीच नहीं जायो जाय है, पट ओट किये हू पै तन ताप चढै है, अजोग को जोग कल्पन, यातें असंबधातिशयोक्ति अलकार। और देह दशा दुति दीप पद ते और बृज चन्द्रकला पद में रूपक अलकार, और कोकिल

कठ सो चातक को कलबोलनि कढ़िबो अकारण तें कार्य्य को जन्म, यातें चौथी बिभावना अलकार, प्रोषित पतिका नायिका ॥३॥

(रूपक-पूर्णोपमा-विभावना-पर्याय)

वसुवाधर मालती छद—

'बृन्द' बैरी बसत लगालगी मैं तरु फूलि हैं फूल हुतास अँगारन।
अति मद सुगध समीर बहे तिन सें उड़ि है मन कास हजारन॥
बन बौरन बौरी ह्वै जाऊगी मैं बनि है न कछू उपचार बिचारन।
पहिले निज प्रानहि अत करौ तब आवै बसत पलास के डारन॥४॥

टीका—नायिका अपने मन मे पछिताय है। बेग कहै दुखदाई बसंत के लगालगी में पलाश बृक्षन में अगार फूल फूलि हैं। और शीतल मद सुगध समीर चलि है तासों तृण के समान मन हजारन कोस उड़ि जै है। बन बौरन कहैं जब रसाल बन में बौर है जाहीं तब मै बौरी ह्वै जाऊगी, तब कछू उपचार न बनि परि है। यासों पहिले ही अपने प्रान को अत करौंगी, तब बसत पलाश के डारन मे अगार फूल दिखावैगो। फूल हुतास कहै आग के अँगार फूल हैं, यातें समस्तविषया रूपक अलकार। तिन मे उड़ि है मन, तिन उपमान, मन उपमेय, से बाचक, उड़िबो धर्म, यातें पूर्णोपमा अलकार। बन बौरन बौरी बन कहै बृक्षन को फूले देखि दुख हू है, यातें बिभावना। नायिका कहै बन के बौरे बौरी कहै बावरी हो हु जाऊगी। उपचार कहै जतन करिबो न बनि है क्योंकि निज पात तो घर ही है, यातें पर्याय॥ ४॥

(परिकर-रूपक-उल्लास-असगति-पर्याय)

सुदर—निज सौति समान सी है बनसी अधरा रस लै प्रिय लालन को।
छलछिद्र भरी हिय सुन्य रही 'बृन्द' बात क्यो जानै कसालन को॥
फल फूलत बस बिनास करै जनि आस करै हित पालन को।
उपजी कुल कटक नालन मैं तन बेधि गयो ब्रज बालन को॥५॥

टीका—निज कहै आपनी सौति के सदृश यह बसी है बसी अधर में लालन के। लाल के अधर के रस को पान जैसे सौति करती है तैसे यह बासुरी पान करता है, यातें समस्तविषयी रूपक। छल छिद्र कहै जेहि बसी मे बहुत छिद्र हैं और हृदय को शून्य है कहै खाली है। तो यह कसालो कहै व्यथा

लगालगी = मेलजोल। हुतास = अग्नि। बौरन = बौर (मजरी) आते ही। बौरी = पागल ॥ ४॥

बस = बाँस, कुल। हितपालन = मित्र सरक्षण ॥ ५॥

ओरन को कर्या जाति है, यह आसय लिये है, यातें परिकर अलकार। फल फूलत नस—कहै फूले और फरे ते बाँस को नाश होत है। फूल फल गुन, बिनाश रुग को दोष, यातें उल्लास अलकार। उपजी कुच कटक—उपजी कहै जमी है कटक कहै गोदन मे तन कहै देह बेधत कहै छेदत है। बृज बाल्न कहै गोपिन के, कारण कार्य भिन्नदेशत्व तें असंगति अलकार ॥५॥

(श्लेष-उल्लास-पर्यायोक्ति)

माधवी–तम नासत भौन प्रकास भए गुन एक अनेकन दोष निहारै।
'बृज' कोमल बात चले बिलखे चित मित्र बिलास के द्रोही बिचारै॥
नित स्वच्छ सनेह को नास करे अलि यातें सखी सिख मेरी बिचारै।
मनि मजु धरे अलि मंदिर मे रजनी मे जनी जनि दीपक बारै॥ ६॥

टीका—तम कहै अधकार को नाशत है यह एक गुन है। अनेक दोष दर्शो–दीपक मे अनेक दोष लगाय निज कारज साधा चाहता है, यातें पर्यायोक्ति। दीपक प्रकाश गुन मित्र बिछोह ते दोष भया, यातें उल्लास अलकार। बृज कोमल बात०—कोमल कहै मन्द मंद बात कहै बयारि चले बिलखाय कहै उदास होत है। मित्र बिलास के द्रोहा०—मित्र नाम सूर्य ताके द्रोहा कहै बिरोधी है। ये दीपक क्यों प्रात काल भये मद होत है, और मित्र नाम हित ताके बिलास कहै सुख, तेकर द्रोही है कि प्रात काल दुति मद देखि नायक उठि जात तब नायिका को दुःख प्राप्त होत है याते द्रोहा है। मित्र पद श्लेष, तातें श्लेषालकार। मनि को प्रकाश दिन राति मद न ह्वै यातें मंदिर मे धरे। नायक को भोर न जाने सनेह के नाशक सनेह नाम तेल सनेह नाम प्रीति रति के नाशक, अतिप्रौढा रतिप्रीता ॥ ॥

(लुप्तोपमा रूपक-पर्यायोक्ति)

माधवी–गति मद गयद मृगाधिप लक उरोज सरोजकली छबि धारै।
मुख चद सिरोरुह राहु रहे भृकुटी धनु बान कटाक्ष निहारै॥
'बृज' नैन कुरग है अजन भृग लसे तन चपक बास बगारै।
बिलखाई कहाँ कछु दोसन तौ अरि येते जहाँ कहु क्यौ न बिगारै॥७॥

टीका—गति कहै चाल मद हरे हरे, गयद कहै हाथी, मृगाधिप कहै सिंह, लक कहै कटि, उरोज सरोज कहै कमल कला है, यातें रूपक लुप्तोपमा।

बलिमदिर = प्रिय भवन, केलिनिवास। जनी = स्त्री। जनि = मत (निषेध वाचक) ॥ ६ ॥

सिरोरुह = केश। येते = इतने ॥ ७ ॥

अरु नायिका अंग मैं अनमिल सब विरोधी के बरनन कियो, रचना की बातन सों कोऊ न क्यों बिलखती तेरे अंग में तो सब विरोधी, तो क्यों न शृंगार करावे देहि, यातें पर्यायोक्ति। यह नायिका कलहान्तरिता रूठ करि पाछे पछिताय है, ताहि युक्ति करि सखी समझावे है ॥७॥

(लोकोक्ति-पर्यायोक्ति-रूपक-लुप्तोपमा)

सवैया–फिरि मान करै नहिं साध रहै रतिनाथ मेरो पतिआइले री।
यक बार पत्यो हूँ तो पाछिले पाहिले छल छै उपायले री॥
जग आपनो जाँघ उघारे हँसी सरमा 'बृज' लाज अन्हाइ लेरी।
त्रिय बेनी निहारी त्रिबेनी सी है ताहि की सुभ सौंह कराइ लेरी॥८॥

टीका— फिरि कहै हौं फिरि आपनो मान करिबे की तेरे साध कहै अभिलाष नहीं है अर्थात् नायक जो अपराध करतो तो मैं मान करती, यातें यह सूचित भयो कि अब नायक दोष न करे है। यक बार०—यक बार कहै एक बेर पत्यान कहै पतिआन कहै कोमल है बात। यह कहनावति लोक में, तातें लोकोक्ति अलंकार। आपनो जाँघ उघारे हँसी, अर्थ यह की अपने पति को हिनाई कहे तें आपुनाई हँसी है। सरमा बृज लाज रूपक अलंकार। त्रियबेनी को जूरा सो त्रिबेनी सो है, धर्मलुप्तोपमा अलंकार। त्रिबेनी तीर्थादिक, ताकी सौंह कहै शपथ खवाइ ले, यह रचना की बात सों पर्यायोक्ति अलंकार। मानमोचन नाम उपाय ॥८॥

(रूपक-पूर्णोपमा गम्योत्प्रेक्षा)

सवैया–जैसे लगे मुख चूमै लला कहै तोमुख मंजुल कंजहि जैसे।
कैसे कहौं ललिता सम आनन तो अति सुंदरता छवि तैसे॥
तैसे भए सुनि लाल त्रिलोचन बाल की भौंहैं चढ़ी धनु ऐसे।
ऐसे भरे 'बृज' आँसुन बुंद मलिंद लसे अरबिंद में जैसे॥९॥

टीका—जैसे कहै जब ही मुख चूमन लगे लला तब कहै तोमुख कंज जैसे, यातें रूपक। कैसे कहौं ललिता सम तेरे मुख को, यह सुनि के बाल की भौंहें धनुष ऐसी चढ़ी। भौंह उपमेय, धनु उपमान, चढ़न धर्म, ऐसे वाचक, यातें पूर्णोपमा, ऐसे कहै यहि भाँति आँसुन के बुंद अंजन जुत भरे जैसे मलिंद अरबिंद में लसे हैं, जैसे पद लाजे तो सिद्धविषया वस्तूत्प्रेक्षालंकार और जैसे

साध = अभिलाषा। पतिआना = विश्वास करना। पहिले छल = पुराने अपराध। उपाय ले = भूल जाओ। बेनी = जूरा ॥ ८ ॥

मलिंद = भौंरे ॥ ९ ॥

पन्नात में लीजे तो वाचक लोप तें गम्योत्प्रेक्षा। नायिका को मध्यमान मध्यम मान निज पति न मुख तें पर बनिता को नाम कढे ह्यामुख चूमने के समै स लाज्ता को नाम कह्यो की तरे मुख ममता उनको मुख नहीं इति ॥९॥

(रूपक लुप्तोपमा-पूर्णोपमा-श्लेष काव्यार्थापत्ति)

दंडक—आनन अमन्द इंदु खोलो घेर घूघट सा,
जेहै कुँभिलाइ सौति मुख जलजात है।
लोचन कटाक्ष बान भौंह की कमान तानि,
मारो मृगनैनो जाई हेरै हरि गात है।
स्याम को सनेह और बाम को जराइ देहौ,
दीपक सिखा सी देह दीपति मो ख्याल है।
जो पै ब्रज नाथ 'बृन' हाथ जोरि डारैं माथ,
तो पै राधा जीतिबे की कौन बड़ी बात है॥१०॥

टीका—मुख इन्दु रूपक। जेहै कुँभिलाइ सौति मुख जलजात कुँभिलाय धर्म, मुख उपमेय, जलजात कमल उपमान, वाचक बिना वाचक लुप्तोपमा। लोचन कटाक्ष बान०—अलकार याहू मे लुप्तोपमा है। स्याम को सनेह०—सनेह नाम तेल, सनेह नाम प्रीति यातें श्लेष। दीपकशिखा सी देह दीपति है मेरी और बाम को सनेह जराय देहौं, दीपक उपमान, देह उपमेय, दीपति धर्म, सी वाचक यातें पूर्णोपमालकार। जो पै बृजनाथ०—जो पै कहै जब बृजनाथ कहै श्रीकृष्न हाथ जोरि कै माथ नावत हैं मेरे पायन को तो राधा जीतिबे की कौन बडी बात है। कैमुत्यर्थ तें काव्यार्थापत्ति। याते नायिका रूप गर्विता इति॥१०॥

(विभावना परिकर[1]-निरुक्ति[2]-श्लेष)

दंडक—नाम धरो सुधाधर सुधा बसुधा मैं बिधि,
बिष सो बिषम जो ह जाहि ते झरा करै।

१—(परिकरोति=प्रकृतार्थमुपकरोति इति परिकर, सोऽस्मिन्नलकारे स) प्रकृत अर्थ का पोषक साभिप्राय शब्द जहाँ विशेषण रूप में प्रयुक्त हो अर्थात् जो भी विशेषण दिया जाय वह किसी विशेष अभिप्राय से युक्त हो वहाँ परिकर अलकार होता है, जैसे उक्त पद में "कालिमा कलक ०।के कुल में कुटिल श्याम बराकरै" इसमें प्रत्येक विशेषण विशेष अभिप्राय से कहा गया है, अत परिकर अलकार है।

२—निरुक्ति अलकार वहाँ होता है जहाँ किसी शब्द के प्रसिद्ध यौगिक अर्थ को छोड़ कर कारणवशात् उसमें दूसरे चमत्कारिक अर्थ की कल्पना की

कालिमा कलंक ताके कुल में कुटिल स्याम,
　　छोड़ि प्रिय बाम क्यों न कुबरी बरा करै।
एरे मतिमंद चंद ऐगुन अनेक तोमैं,
　　जो मैं वृषभानजा विचारि बगरा करै।
धोखा किए गौतम सों श्राप दियो रोषा करि,
　　गौतम न दोषाकर दोषा त करा करै॥११॥

टीका—सुधाधर नाम ब्रह्मा सुधा कहै मिथ्या धरो है, क्योंकि जो मैं जो ह बिष से विषम झरै है, बिरुद्ध कार्य्य उतपति तें पचम बिभावनालंकार। कालिमा कलंक ताही कुल मैं कुटिल स्याम अर्थात् ऐसे कलंकी कहै गोपी कुल में कुटिल कहै कपटी त्रिभंगी स्याम, सो क्यों न कुबरी नाम कहै कूबर वारी बाम कहै टेढ़ी नारी सों प्रीति करै। यह सब पद आसे गुन अथ है, परिकर अलंकार। ऐ मतिमंद चंद तोमें बहु ऐगुन, ते इत कहै मेरि निशि बिचारि के प्रकाश करै क्योंकि मैं वृषभानजा हौं। मेरे सौंमुहे तेरी दुति मिटि जैहै, क्योंकी वृषभान वृषराशि में भान कहै सूर्य्य, ताकी मैं जाई हौं और दूसरा अर्थ वृषभान राधा के पिता को नाम। यातें श्लेषालंकार। धोखा किए०—धोखा कहै विश्वासघात, गौतम ते किये ताही श्राप ते यह गति भई। सो हे दोषाकर दोषइ कहै दोषन को करो करै। दोषाकर कहै दोष के आकर कहै खनि, क्यों न दोष को करै, यातें निरुक्ति अर्थ कल्पना ते प्रोषितपतिका उग्रता दशा है॥ इति॥११॥

दोहा—त्यों अक्रम ससृष्टि लहि, कवि लोगन के ग्रंथ।
　　लिखे कबित निज ताहि हित, काव्य अलंकृत पंथ॥१२॥

कवि—नृपशंभु (अक्रम ससृष्टि रूपक सुमिरन-लुप्तोपमा)

सवैया-बालम के बिछुरे ब्रज व्याकुल ता बिरहा है महा दुख दानि तें।
　　चौपरि आनि रची 'नृपसंभु' सहेलिनि साहि बनी सुख दानि तें॥

जाय, जैसे—दोषा = रात्रि का आकर, यह प्रसिद्ध अर्थ है किन्तु इसे न मान कर दोषों = दुर्गुणों का आकर = खजाना, यह अर्थ प्रसङ्गवशात् कर लिया, अत निरुक्ति अलंकार है।

सुधा = व्यर्थ। विषम = कठिन, बुरी। जो ह = चाँदनी। बाम = स्त्री, टेढ़ी। ऐगुन = अवगुण। वृषभान = ग्रीष्म का सूर्य, राधा के पिता। बगरा करै = फैलती है॥११॥

१—जहाँ उपमान को देखकर तत्सदृश उपमेय का स्मरण हो आवे वहाँ स्मरण अलंकार होता है।

ते जुग फूटै न मेरी भटू यह काहू कह्यो सखिया सखियान तै।
पकज पानि ते पाँसे गिरे अँसुवा गिरे खजन सो अँखियान तै ॥१३॥

टीका—बालम कहे प्रीतम के वियोग ते बृजतिय व्याकुल कहे दु खित चोपरि खेलन लगी। ताहि समै एक सखी बोलि उठी। तै जुग फूटै न०—तेरी गोट की जुग न फूटै, यह सुनि एक गोपी के पकजपानि ते पाँसे गिरे अर्थात् यह की नायिका को पति बिदेश को गयो है। यह स्मरन भयो की मेरो जुग फूटि गयो, याते सुमिरन अलकार। पकज पानि रूप, अँसुवा गिरे खजन सों अखियाँन ते, खजन उपमान, सो वाचक, नन उपमेय, धर्मलुप्तोपमा ॥१३॥

कवि—प्रेमसखी (विशेषोक्ति रूपक-अनुज्ञा)

सवैया-हौ करि हारी उपाय घनी सजनी यह प्रेम फँदो नहि टूटै।
बाढ़त जात विथा अधिकी निशि बासर को बिरहानल घूटै॥
मोहि लखाव लला मुख चद तू 'प्रेमसखी' इतनो जस लूटै।
लालन देखत जो मरि जाउँ तो मै बलि जाउँ महा दुख छूटै ॥१४॥

टीका—नायिका की उक्ति सखी सों, अपनी अवस्था जो नायक के बिरह से व्यथा आदि करि देह दौर्बल्य, इसी हेतु अगशैथिल्य और कार्य भूषण बस्त्रादि को पहिरिबो, अगरागादि लगायबो, तल फुलेल आदि में अनुत्साह और अतीव बिरह व्याकुल ह्वै अतरग सखी सों एक बार नायक के देखिवे की प्राथना करै है। हे सजनी मैं बहुत उपाय करि हारी, यह प्रेम फद नहीं छूटै है। उपाय कारनबाहुल्य हू पै प्रेम फद कार्य को टूटिबो न भयो, यातें विशेषोक्ति अलकार। राति दिन अधिकी व्यथा बढ़ती जाय है। बिरहानल घूटे लेय है, बिरहानल रूपक। मोहि लला श्रीकृष्णच द्र के मुख को दिखावै। मुखचद पद मे रूपक। हे सखि इतना जस लूटै यदि लालन के देखते मैं मरि जाऊँ, क्योंकि यह असह्य महा दु ख तो छूटि जायगो। मरिबो दोष ताकी प्राथना, यात अनुज्ञा अलकार ॥१४॥

चौपरि = चौसर नाम का खेल, जो चार रग की गोटियों से बिसात पर खेला जाता है। ताहि = शाह, बड़ी गोटी। जुगफूटै = जोड़ा टूटना ॥१३॥

१—अनुज्ञा अलकार वहाँ होता है जहाँ किसी विशेषता के कारण दोष को भी गुण मानकर उसकी आकाक्षा की जाय, जैसे उक्त पद में दु ख छूटना रूप विशेषता के कारण नायिका मरना रूप दोष को गुण मानकर उसकी इच्छा करती है।

घनी = बहुत। प्रेमफँदो = प्रेमपाश। घूटे = निगल जाता है। लखाव = दिखाओ। बलि जाऊँ = कृतकृत्य हो जाऊँ ॥ १४ ॥

(पूर्णोपमा-लुप्ता-रूपक)

दंडक-'रामसखी' राम रूप देखिबे को मोरति हौं,
बूझा तू बलाइ कहा जुबती सयानी सौं।
मिथिला सहर में कहर परि गयो भई,
घायल घनेरी कहूँ झूठ न सुजानी सौं।
बेधी परी नारी केती गलिन अटारिन में,
तारे नैन बान मार भुव धनु तानी सौं।
बैठी घर मंद हासी फाँसी गरे डारि डारि,
कीन्हीं कतलानी कती जुल्फ कृपानी सौं ॥ १५ ॥

टीका—तारे नैन बान मारे तारे कहे तारन नैन बान लुप्तोपमा, वाचक लोप। भुव धनु तानी सौं भुव भौंह उपमेय, धनु उपमान, तानिव धर्म, सौं वाचक, याते पूर्णोपमा। हाँसी फाँसी रूपक। जुल्फै कृपानी कहे कृपान, धर्मलुप्ता। ऊढा नायिका ॥१५॥

कवि—नृपसंभु (लुप्तोपमा-उत्प्रेक्षा-सामान्य-पूर्णोपमा)

दंडक-आजु जलकेलि मैं बिलोकि वृषभानुसुता,
सोभा अंग अंगन की कासमीर पीसी सी।
दाँतन की मुर मुसक्यात चमकत मना,
हीरन कनिन की लगाइ राख्यो मीसी सी।
'संभुराज' धार धार धारसी लगत मंजु,
जमुना के तीर मिली नदी नद दीसी सी।
स्याम की सखी सी स्याम उर में बसी सी स्वच्छ,
जाके मुख सी सी ढरकति सुधा सीसी सी ॥ १६ ॥

टीका—आजु जल बिहार में वृषभानु की सुता के अंगन की प्रभा कैसी देखी है कि जैसे कासमीर कहे केसरि पीसी है। अंग उपमेय, केसरि रंग

कहर = आफत, विपत्ति। घनेरी = अनेकों, बहुत सी। बेधी परी = घायल पड़ी हैं। कतलानी = कत्ल हुई। जुल्फ = सिर के लंबे बाल, जो पीछे की ओर लटकते हैं। कृपानी = छुरी, खुकड़ी ॥ १५ ॥

कासमीर = काश्मीर देश में उत्पन्न केसर। मुर = मुड़कर, मुड़। मीसी = दाँतों को रंगने के लिये बना एक रंग विशेष। दीसी = दिखाई दी। स्याम = काला, अंधकार, श्रीकृष्ण। सी सी = संभोगकाल में नायिका द्वारा प्रयुक्त एक विशेष प्रकार की ध्वनि। सुधा सीसी = अमृत की बोतल ॥ १६ ॥

उपमान धर्म नहीं, यातें धर्मलुप्तोपमा है। दाँतन की मुसक्याहट की चमक मानो हीरन की कनिन की मीसी होइ, वस्तूत्प्रेक्षा सिद्धविषया। संभु राज धार पद०—संभुराज कहै संभु राजा कवि की उक्ति है। धार जो मित्र ताके रस की धार सी लगत है। जमुना के तीर कहै तट पर मिली है जैसे नदी नद में मिलै। स्याम की ससी पद०—स्याम कहै अंधकार की ससी सो कहै चंद्रमा ऐसी है। स्याम कहै कृष्ण के उर में बसी है। जाके मुख सी सी कहै सीत्कार जो रति समै में स्त्रियों के मुखन ते कढ़त, सो सुधा कहै अमृत की सीसी ऐसी ढरकति है। सीसी उपमेय, ढरकन धर्म, सीसी कै सुधा उपमान, यातें पूर्णोपमा ॥१६॥

कवि—दयानिधि (लुप्तोपमा रूपक-सुभावोक्ति-पूर्णोपमा)

दंडक-कुंद की कली सी दंत पंक्ति कौमुदी सी दीसी,
बिच बिच मीसी रेख अली सी ठरकि जात।
बीरी त्यौं रची सी बिरची सी तिरीछी सी लखै,
रीसी अँखियान सफरी सी वै फरकि जात।
रस की नदी सी थाह 'दयानिधि' कौन दीसी,
चक्रित अरी सी रति डरी सी सरकि जात।
प्यौफंद फँसी सी ऐसी होत जो कसीसी ताकी,
सी सी करिबे मैं सुधा सीसी सी ढरकि जात ॥ १७ ॥

टीका—कुंद के कली ऐसी दंत की पंक्ति, यातें धर्मलुप्तोपमा। मीसी की रेख अली कहै भौंर सी। मीसी उपमेय रेख, अली उपमान, धर्म लोपन है, यातें धर्मलुप्तोपमा जानो। तिरीछी सी पद०—नायक को देखि तिरछी कहै बंक आँखि, रिसिभरी सफरी कहै मछरी ऐसी फरकि उठै है। यह मुग्धा नायिका नवोढ़ा को प्रथम समागम में होत है, यातें सुभावोक्ति अलंकार। रस की नदी सी रूपक, रस की नदी है थाह कौन दीसी थाह समुद्र को कौन देखा है। चक्रित अरी कहै अड़ी है डरी है रति सों, पिय के फंद में फँसी है, मुख ते सी सी कहत है, सो सुधासीसी है। चारिउ गात तें पूर्णोपमा ॥१७॥

कवि—पुहकर (लुप्तोपमा-विभावना-संदेह)

दंडक—काल की सी कामिनी है दामिनी दमकि रही,
भामिनी भुवंग कैसी जामिनी न खेल की।

कौमुदी सी = चन्द्रिका सी। दीसी = दिखाई दी। बीरी = पान का बीड़ा। चक्रित = कुण्डलित, गोलाकार। अरीसी = अड़ी हुई सी, निश्चल। प्यौफंद = प्रियतम के बाहुपाश में। कसी सी = बँधी हुई सी ॥ १७ ॥

कुंज कुंज कोकिला की कूक कुंजरान बिन,
कसकनी कसकैं कसक जैसी सेल की।
डार डार बिहग पुकारैं 'पुष्कर कवि',
मार नों सी और किलकार रेकी गेल की।
कीधौं व्याल ज्वाल कीधौं व्याल की पुकार घोर,
धाराधर घोर कीधौं घोर ताते तेल की ॥ १८ ॥

टीका—काल की सी कामिनी है यह जो दामिनि दमकती है, फेरि यह कैसी है भामिनी कहे सौंपिनि है, याते लुप्तोपमा धर्म वाचक और। कुंज कुंज कोकिला की कूक, कुंज राज बिन सेल्ह जैसे कसकत है, बिरुद्ध कार्य उत्पत्ति तें पंचम विभावना। डार डार बिहग कहे पच्छी पुकार के रहे हैं, सो मार बाजा लड़ाई में बाजत हैं और किलकार करी कहे मजारन की बोली, याहू में विभावना। कीधौं व्याल ज्वाल०—कीधौं कहे कि यह व्याल कहे साँप की ज्वाला होइ, की व्याल कहे नाग या हाथी के पुकार कहे घोर सुर होय, या पदन तें संदेहालंकार ॥१८॥

कवि—ममारख (उपमा-रूपक-श्लेष-उत्प्रेक्षा)

सवैया–झूलत पाट की डोरी गहे पटुली पर बैठक त्यों उकरूँ की।
पावन दै दुमची मचकै लचकै कटि केहरि गोल ररू की ॥
सीखिबे को बिपरीत 'ममारख' पावस मैं चटसाल सुरू की।
खोटी परै उछलै तिय चोटी चमोटी लगै मनो काम गुरू की ॥१९॥

टीका—झूलत पाट की डोरी पकरि कै झूला की, तैसे बिपरीत रति मैं पटुली कहे जाँघ पर उकरूँ बैठि कै बिहार करती हैं स्त्री लोग, यातें उपमान, उपमेय, धर्म, त्यौं वाचक तें उपमालंकार। पटुली कहे पीढ़ा तिपाई आदिक पाठशाला में जहाँ लड़के पढ़ते हैं तापै बैठि कै उकरूँ, यातें अर्थ श्लेष तें श्लेषालंकार। पावन दै पद०—पावन कहे दोऊ पाय से मिचकी कहे हरे हरे डोला इबो कटि को, सो तीनिउ अर्थ मैं व्यंजित है झूला झूलत मैं, बिपरीत रति मैं, लड़िकन के बिद्या पढ़ते मैं। कटि केहरि उपमान उपमेय तें रूपक अलंकार। सीखिबे को कहे अभ्यास करिबे। बिपरीत पावस रितु मैं चटसाल कहे पाठशाला सुरू कहे आरंभ, खोटी पर कहे नायिका की जो बेनी बिपरीत रति मैं पीठ मैं

भुवग = सर्प। खेल = क्रीड़ा, विहार। सेल = बरछी। सार = युद्ध। भार = अनी, काँटा, नोक। ऐल = कोलाहल, हल्ला। धराधर = मेघ ॥ १८ ॥

पटुली = पिंडली, पीढ़ा। उकरू = घुटने के बल बैठना। दुमची = कड़ी, नायक पैरों में अपने पैर फँसाने से बनी हुई शृंखला। चमोटी = छड़ी ॥ १९ ॥

लागतां है ना, कवि कहै है की यह काम गुरु की चमोटी है। क्यों की नायिका निपगात बिना पत्न म सोटी कहै चूकि जाती, यात काम अपने छडी मों मारै है, यात उत्प्रेक्षा वस्तूत्प्रेक्षा सिद्धविषया ॥१९॥

(पर्यायोक्ति-रूपक लुप्तोपमा)

सवैया—कोन्ज से पानि कपोल धरे बर बारि लौं बारि भरे हिय हारे।
चित्र बिचित्र भई सी भई है नई भृकुटी गई नींद निवारे॥
रावरी लागी है दीठि 'ममारख' तात कहै हम बात पुकारे।
जागि है जी है तो जी है सबै बिष पीहै सबे न तो नद के ध्यारे ॥२०॥

टीका—कोल उपमान, पानि उपमेय, स वाचक, एक धर्म बिना धम लुप्ता। चित्र सों बिचित्र है, नींद नहीं अथात् पलक नहीं चलावै है, यातें उपमा। चित्र उपमान, नेत्र उपमेय, लौ वाचक, पलक नहीं लगावै है जडता धम चित्र में, यातें पूर्ण भयो। रावरी दीठि कहै टोना लागि है। जो जागि है कहै मूछा ते चेत य है है तो सब लोग जी है नहीं तो सबै घर क लोग नद के ध्यारे पर बिष खाइ मरि है। अथ यह तुम चलो तो जी हैं, यह रचना की बात कहि अपनो कार्य्य कियो चाहै, तातें पर्यायोक्ति ॥२०॥

(उपमेय-धर्मलुप्ता-पर्यायोक्ति)

सवैया—बसी बजावत आनि कढो या गली मैं छली कछू जादू सो डारे।
नेकु चितै तिरछी करि भौंह चले गयो मोहन मूठी सो मारे॥
वाही घरी की डरी वह सेज पै नेकु न आवत प्रान सँभारे।
जी है तो जी है न जी है सखी न तो पी है सबै बिप नद के ध्वारे॥२१

टीका—जादू सो डारै जादू उपमान, सो वाचक, उपमेय धमलुप्ता। तिरछी करि भौंह भौंह उपमेय, मूठ उपमान, सी वाचक, यातें धमलुप्ता। वाही घरी ते वह सेज पै परी है। जाहै वह तो सब लोग जीहै नहीं तौ न द के ध्वारे सबै बिष खाय मरि है, यह रचना की बात कहि मिलायो चाहै है, यातें पर्यायोक्ति ॥२१॥

(स्वभावोक्ति-धर्मलुप्ता-पूर्णोपमा)

सवैया—सुहिला रति मदिर मैं पहिलो ही मिलायो चहै अबलै अबलै।
अरुझाइ भजै बिरुझाइ भजै सुरझाइ भजै जल जोक सलै॥

कौंल = कमल। पानि = हाथ। चित्र विचित्र भई सी = (नींद न आने और पलक न लगने से) चित्र में लिखी हुई सी। रावरी = आपकी। ध्वारे = धोरे, समीप ॥२०॥

सुख माह लगी जक नाहीं या नाह 'समारख' छाँह छुए उछलै।
तिय कोंलदलै पग सों मसलै छिति सो निकलै मचलै न चलै ॥२२॥

टीका—प्रथम समागम नवोढा को सुरतारंभ बरनन है। सुरझाइ अरु झाइ को भागै है उछराइ ऐसो, यातें पूर्णोपमा। सुखमाह लगी जक नाहीं नाहीं यह नवोढा को स्वभाव है, यातें सुभावोक्ति। तिय कोंल दलै—तिय के कोंल के पखुरी सो पग, यातें लुप्तोपमा धर्म बिना भयो ॥२२॥

कवि—सुखदेव दोमरे (प्रतीप-संबंधातिशयोक्ति-महोक्ति-परिवृत्ति)

दंडक—मंदर महिंद्र गंधमादन हिमालै मेरु,
जिन्हें चलै जाने ए अचल अनुमाने त।
भारे कजरारे तैसे दीरघ दँतारे मेघ,
मंडल बिहंडे जे वे सुंडादंड ताने त।
कीरति बिसाल छितिपाल श्री अनूप तेरे,
दान जो अमान कापै जात बखाने न।
इतै कवि मुख जस आखर खुलत उतै,
पाखर समेत पील खुलै पीलखाने ते ॥२३॥

टीका—गंधमादन हिमालय आदि अचल याही ते भये कि जो गज राना कविन को दान दिया है उनकी चाल देखि लज्जित भए, यातें प्रताप। अथवा

सुहिला = सुंदर, नायक। अबलै अनलै = सखी नायिका को। जक = रट, हठ, धुन। कोंल दलै = कमल दल को ॥२२॥

१—परिवृत्ति का अर्थ है विनिमय अर्थात् अदला बदली। चमत्कार की दृष्टि से जहाँ न्यून वस्तु देकर बदले में बहुत अधिक लिया जाय अथवा बहुत अधिक देकर बदले में न्यून मिले वहाँ परिवृत्ति अलंकार होता है। वस्तुतः यहाँ 'इतै कवि ' पद में सहोक्ति अलंकार ही स्पष्ट है, परिवृत्ति नहीं, परिवृत्ति का स्पष्ट उदाहरण दास कवि का यह पद है—

"तिय कंचन सो तनु तेरो उन्हें मिलि कै भयो सौतुख को सपनो।
उनको नगनील सो गात है तैयहि तौ बस 'दास' कहा कपनो॥
इन बातनि तेरो गयो न कछू उनहीं बहकायो भली अपनो।
गिज हीरो अमोल दयो, औ लयो यह दूपल को तुअ प्रेमपनो॥

कजरारे = काले। दीरघ दँतारे = लम्बे लम्बे दाँतोंवाले। बिहंडे = विदीर्ण कर देते हैं। सुंडादंड = हाथी की सूँड़। अमान = अपरिमित। जस आखर = यश के अक्षर। पाखर = हौदा, अम्बारी। पील = हाथी। पीलखाना = हस्तिशाला ॥२३॥

उत्प्रेक्षा पहाड़न को स्वभाव अचल होना बर्नन अहेतु ताको हेतु, यातें हेतूत्प्रेक्षा। कजरारे०—नाग कहे बड़े हैं ऐसे जो मेघ के मण्डल को बिहँडे कहे बिहारे हैं, अजोग जोग तें सम्बन्धातिशयोक्ति। कारनि बिसाल०—श्री राजा अनूप सिंह के दान को कौन बखानि सकैगा जो इते कवि के मुख ते जस के अच्छर निकसे हैं तेते उतते माथहा पापर कहे होदा आदिक समेत पील कहे हाथी पीलखाने ते खुले कहे देत है, याते महोक्ति अलंकार ॥ २१ ॥

कवि—हरदेव (प्रतीप लुप्तोपमा-सम्बन्धातिशयोक्ति)

दंडक—उड़ि उड़ि जात घनसार घन शोभासार,
हेरि हार हसन सी कर तै अतारे सी।
कहि 'हरदेव' हिमगिरि सी गिरा सी गंग
कैसी सरसाती है रती के तोर तारै सी।
कीरते तिहारी रघुनाथराव महा दानि,
पुंडरीक श्रेनी सुभ्र सहज लतारै सी।
छीरद को छ्वै रही छटा सी छिति छोर पर,
चारों वोर नैरही कलानिधि कतारै सी ॥२२॥

टीका—घनसार और हसन की शोभा जाकी कीरति उड़ि जाती है कहे दुरि जाती, यातें प्रतीप। कहि हरदेव—हिमगिरि उपमान, सी वाचक ते धर्मलुप्ता। कीरतै तिहारी—हे राजा रघुनाथ सिंह तिहारी कीरति छीरद कहे मेघमंडल को छुं रही है, अजोग जोग कल्पना ते सम्बन्धातिशयोक्ति ॥२२॥

कवि—कासीराम (लुप्तोपमा-रूपक उत्प्रेक्षा)

दंडक—कमल से आनन कुरंग नैनी पिक बैन,
कान्ह पास कानन को चली री उमहिरी।
आय बाय अंचल उड़ाय दियो ताही छन,
वाकी छतिया मे मेरी दीठि गई लहिरी।
रंगदार अँगिया के ऊपर सघन छोटी,
केसरि की टिपुकी सी आछी गई गहिरी।
मदन के डर अरबर करि 'कासीराम',
मानो हर हहरि हजार मेखी पहिरी ॥२३॥

घनसार = कपूर। अतारैसी = इत्र की भाँति। तोर तारैसी = कारचोबी के काम की तरह। कतारै = कतार, बेल ॥२२॥

उमहिरी = उमंगयुक्त हुई। बाय = वायु। दीठिगई लहिरी = दृष्टि पड़ गयी। टिपुकी = बिंदु। अरबर करि = घबराकर। मेखी = एक प्रकार का कवच ॥२३॥

टीका—कमल उपमान, मुख उपमेय, से वाचक, यातें धर्मलुप्ता। कुरंग नैन समरूपक। रंगार— उराजन पै आँगया रायु लाग तें उड़ी, ताकी उत्प्रेक्षा कवि करत है। मदन कहै काम के डर तें मानो हर कहै शिव सेयो वक्तव्यादि, इर को भय मानिबो अहेतु ताको हेतु मानो, यातें असिद्धास्पदा॥२३॥

कवि—निधिमल्ल (प्रतीप-उत्प्रेक्षा-लुप्तोपमा)

सवैया—तब चंचल चाल हुती पग में अब लाज मरै गज गौनन सों।
अंग अनंग के रंग रँगे मानो कीन्हे हैं सुन्दर सौनन सों॥
कहि 'मल्ल' तजे तुतरी बतिया अब बैन कढ़ै मुख टौनन सों।
तब आँखि हुती अब नैन भये कजरारे महा मृग छौनन सों॥२४॥

टीका—सखी की उक्ति नायिका सों। तब तेरे पग में चंचल चाल रही अब गज अपनी गति को बिलोकि लाजन मरै है। नायिका की चाल उपमेय, तासों उपमान की व्यर्थता, यातें प्रतीप अलंकार। अंग काम के रंग सों रँग्यो अर्थात् विलक्षण शोभा लखाय परै है, मानो सोनन सों सुढार रच्यो गयो है, अनंग रंग सों रँगिबो उक्त, ताको सोन सों रचिबो करि बर्णन, यातें उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा। तब तोतरी बात कहती रही अब टोना ऐसा कढ़ै है। नैन उपमेय, टोना उपमान, सों वाचक, धर्म को लोप, यातें लुप्तोपमा अलंकार। और तब आँखि हुती अब कजरारे मृग छौन के नेत्र के समान नैन भए, इहाँ आँख सिद्ध ताही को शोभातिशय करि नेत्र करि बर्णन, यातें बिधि अलंकार और अज्ञातयौवना नायिका॥२४॥

कवि—गंग (लुप्तोपमा-प्रतीप-पूर्णोपमा)

दंडक—मृग कैसे दृग, मृगमद को तिलक भाल,
अधर ललो है, मुख लाखन लहतु है।
सोने को करनफूल श्रवनन सोभियत,
चीकन चिबुक, कुच उठन चहतु है॥
कहै 'कवि गंग' तू तौ प्यारी प्राननाथ जू की,
तेरियै निकाई रति रती न लहतु है।
कली और फूल औ त्रिकूल मूल मध्य जाके,
कमल से चारों फूल फूलोई रहतु है॥२५॥

गौनन = गतियों (चालों) से। सोनन = सुवर्णों। टौनन = जादू॥२४॥
मृगमद = कस्तूरी। ललो है = रंगा है। निकाई = सुन्दरता। रति = कामदेव की स्त्री। रती = थोड़ा भी। त्रिकूल = तिकोना॥२५॥

टीका—सखी की उक्ति नायिका सों। मृग कहैं हरिण के नेत्र के समान लगे दृग है, मृग को नेत्र उपमान, नायिका को द्रिग उपमेय, यामें यहाँ मृग शब्द को उपादान नेत्र को लोप, यातें उपमानलुप्ता लुप्तोपमा अलंकार। माथे में मृगमद कस्तूरी को तिलक, अधर ओठ, लला है, ताम्बूलादिक सों, मुख को लाखन रसिक विलोकि रहे हैं। सुवर्ण निर्मित करनफूल कान में शोभित, चीकना चिबुक टोढ़ा, कुच उठ्यो चहत हैं। तूँ प्रानप्यारे की प्यारी। अभिप्राय यह कि प्राण सबको प्यारे होय है तू तो प्रानहू सों प्यारी है। तेरी लुनाई देखि रति काम की प्यारी स्त्री कहै थारो शोभा नहीं लहै है। उपमान को अनादर यातें प्रतीप अलंकार। कली और फूल ओर तीनि फूल को मूलमध्य वाके कमल से चारों फूल सदा फूलोई रहत है। चारों फूल नेत्र द्वै, कुच द्वै। इहाँ नेत्रादि को फूल निश्चय करि उपमेय ठहरायो, कमल उपमान, सें वाचक, फूलिबो साधारण धर्म को उपादान, यातें पूर्णोपमा अलंकार। मुग्धा नायिका ॥ २५ ॥

कवि—कुमार (उल्लास-लुप्तोपमा-पूर्णोपमा)

सवैया-कुंज दुरयो पिय खोजत ताहि गए जुग से जुग जाम तमी के।
जागी सँजीवनि औषधी सी जिय ताप मिलाप भए बिन पी के॥
बाढयो 'कुमार' पयोनिधि पूर सों पूरत हा बिरहानल ती के।
चंद उदै लखि लोचन च्वै चले चंदपखान से चंदमुखी के ॥२६॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों, नायिका की दशा वर्णन करै है। नायक कुंज में छिप्यो ताके खोजिबे में जामिनी रात्रि को जाम जुग समान बीत्यो। जाम उपमेय, जुग उपमान, सों वाचक, धर्म को लोप, यातें धर्मलुप्ता लुप्तोपमा अलंकार। जिय में संजीवन ओषधी सी बिना भेट प्रान प्यारे के ताप जग्यो, ताप उपमेय, संजीवन औषधी उपमान, सी वाचक, जागिबो धर्म, यातें पूर्णोपमा अलंकार। बिरहानल पयोनिधि समुद्र के पूर के समान बढ्यो। बिरहानल उपमेय, पयोनिधि उपमान, सो वाचक, बाढ़िबो धर्म, यातें पूर्णोपमा अलंकार। वाही समय चंद्रमा को प्रकाश लखि चंद्रमुखी के दोनों लोचन चंद्रपखान चंद्रकांतमणि के सदृश चले अर्थात् आँसू बहने लगे। चंद्रमा को प्रकाश गुण, तासों नायिका को ताप रूप दोष भयो, यातें उल्लास अलंकार ओर विप्रलब्धा नायिका ॥ २६ ॥

दुरयो = छिपा है। जुग = युग (सतयुगादि)। जुगजाम = दो प्रहर। तमी = रात्रि। चंदपखान = चन्द्रकान्तमणि ॥२६॥

कवि—पजनेस (उपमा-रूपक उत्प्रेक्षा)

तन तम तामस रसाद्रि पद तोयद सी,
नीलज जटान पद जटि प्रजटी सी है।
'पजन' प्रकन्दप दीपक सिखा सी चारु,
हाटक फटिक वोप चटक फुटी सी है।
कच कुचदुबिच विचित्र कृत बक्र बेष,
छुटी लट पाटी घट नट नबटी सी है।
बिरह असुभ्र पक्ष ती तन प्रदोष पाय,
पन्नगी पिनाकी पद पूजि पलटी सी है ॥२७॥

टीका—तम कहे तिमिर ह्वाय की तामस ह्वाय कहे क्रोध, यातें सन्देहा लकार। पजन प्रकद०—दीपक सिखा सी यातें पूर्णोपमा। कच कुच दुबिच कच कहे बार, कुच कहे स्तन तेहि बीच लट परी है, ताको उत्प्रेक्षा संभावित भया है। बिरह असुभ्र पक्ष—बिरह कहे वियोग असुभ्र कहे अँध्यार पक्ष, प्रदोष कहे सायकाल में मानो पन्नगी पिनाकी कहे महादेव को पूजन करि पलटी कहे फिरी है ॥ २७ ॥

(रूपक-प्रतीप-पूर्णोपमा)

छहरै छबीली छटा छूटि छिति मंडल मैं,
उमगि उज्यारी महा ओज उजबक सी।
'कवि पजनेस' कंज मंजुल मुखी के मुख,
उपमाधिकात कल कुन्दन तबक सी।
फैली दीप दीप दीप दीपति दिपति जाकी,
दीपमालिका की रही दीपनि दबक सी।
रहतो न ताव लखि मुख महताब आप,
निकसी सिताब महताब के भभक सी ॥२८॥

टीका—छबीली नायिका की छबि छितिमंडल में छहरि रहा है। कवि पजनेस०—कंज मंजुलमुखी के मुख कंज उपमान, मुख उपमेय, यातें समस्तक। उपमाधिकात कहे उपमा अधिक है। कुंदन कहे सोना ऐन, यातें लुप्तोपमा।

ओज = । उजबक सी = उजड्ड सी। कुन्दनतबक = सुवर्ण की पत्री। दीप दीप = द्वीप द्वीप में। दीपति = दीप्ति (प्रकाश)। दिपति = प्रकाशित हो रही है। दबक सी = दबी हुई सी। ताव = ताप। महताब = चन्द्रमा। सिताब = झटपट, शीघ्र। भभकसी = चमक जेसी ॥२८॥

फैली दीप दीप फैलि रही सातौ दीपु में जाकी दीपति, अजोग कथा से सम्ब धातिशयोक्ति । दीपमालिका की दीपति दबकि रही अथ लजित, याते प्रतीप । रहे ता न ताव०–मुह उपमेय, महताब कहे चन्द्रमा उपमान, भभक सी कहे प्रकाशता धम, सी वाचक, याते पूर्णोपमा ॥ २८ ॥

कवि—बेनी (उत्प्रेक्षा-पूर्णोपमा लुप्तोपमा)

दंडक—रति बिपरीति मे लसत अलबेली लखि,
कुन्दन की बेली सी सिमिटि के सिकुरि जात ।
'बेनी कवि' कहै बिहँसति बतराति बाल,
छटा लौं छहरि घनघटा तन जुरि जात ।
मोतिन की लरैं अलकावली तरल ऐसी,
उघरे जुरत मुख चंद इमि दुरि जात ।
मानौ ससि पीछे डारि आगे पाँति तारन की,
तम की जमाति त उभरि लरि मुरि जात ॥२९॥

टीका—कुंदन का बेली सी–कुन्दन उपमान, नायिका उपमेय, सी वाचक, सिमिटि जाइबो धम, यातें पूर्णोपमा । बेनी कवि०–छटालौं छहरि छटा कहै बिजुली लौं छहरि, याते लुप्तोपमा । छहरिबो धम, यातें पूर्णोपमा । मोतिन की लरैं मुख पर परी ताकी उत्प्रेक्षा, मानो ससि कहै चन्द्रमा को पीछे डारि आगे तारन कहै नक्षत्रन की पाँति तम कहै अँध्यार नें लरि कै मुरि जात कहै भागि जात हात ॥२९॥

कवि—पद्माकर (प्रतीप-सबंधातिशयोक्ति-पूर्णोपमा)

दंडक—साजि बृजचंद पै चली है मुख चंद जाको,
चंद चाँदनी की दुति मंद से करत जात ।
कहै 'पद्माकर' त्यौं सहज सुगंधि ही से,
पुंज बन कुंजन मे कंज से भरत जात ॥
धरत जहाई जहाँ पग है सुप्यारी तहाँ
मंजुल मजीठि ही के माठ से ढरत जात ।
हीरन ते हरो सेत सारी के किनारिन तें,
बारन तें मुकुता हजारन झरत जात ॥३०॥

बतराति = बातचीत करती है । छटा = बिजली । छहरि = चमक कर । दुरिजात = छिप जाता है । उभरि = आगे बढ़कर । लरि = लड़कर । मुरि जात = मुड़ जाती है ॥२९॥

मजीठि = मेंहदी । माठ = मिट्टी का बना बहुत बड़ा पात्र (कुण्डा) ॥३०॥

टीका—जाके मुख चंद के देखत चंद्र चाँदनी को मंद करत, यातें प्रतीप। कहै पदमा०—सहज सुगन्ध कहै बिना अंगराग के तन ताकी सुवास बन में, कुंजन में, कंजन में भरि जात, यातें संबंधातिशयोक्ति, अथवा तन की सुगंधता कंज में भरि गयो, उपमेय को धर्म उपमान में आरोप ते निदर्शना। धरत जहाँइ० पग जहाँ धरती है तहाँ मजीठि के माठ से ढरत। पग को रंग उपमेय, मजीठि उपमान, ढरब धर्म, से वाचक, तें पूर्णोपमा। अभिसारिका नायिका ॥३०॥

कवि—नवी (अनुमान-लुप्तोपमा-लेश)

दंडक—कोकनद कली देखो कली की रली विशेषी,
राची एक संग ह्वै कै प्राची अरुनाति है।
तारे मनिहारे इंदु आभा उजिआरे अलि,
खोलि देखु तारे तारे काहे अरसाति है।
'नवी कवि' उरगलता सी मुख ठहरानी,
पियरानी पिय रानी काहे पियराति है।
हारी हौं मनाइ इत उत मग हेरि हारे,
तू तौ इतराति इत राति बीती जाति है ॥३१॥

टीका—कौंल कली संपुट ह्वै रही सो प्राची अरुनाति कहै पूरब दिशा में लाली होन लागी, ताहि देखि राची कहै राती होन लगी फूलन के हेतु। तारे मनि कहै दुति हारे कहै त्यागे। चंद्रमा प्रकाश को अथ, प्रात काल होन चहै है। या अनुमान ते अनुमानालंकार। नवी कवि, उरगलतासी उरग कहै नाग लता कहै बेलि अर्थ नागबेल कहै पान ऐसे पियराई मुख में, यातें पूर्णोपमा, नायिका मानिनी ॥३१॥

कवि—घनस्याम (प्रतीप-संबंधातिशयोक्ति-लुप्तोपमा)

दंडक—अटै औनि अंबर छुटै सुमेर मंदर से,
घटै मरजादा बीर बारिधि के बेला के।
कहै 'घनस्याम' घनघोर सो घुमड़ घन
मंडल उमड़े गज रवि रज रेला के।

कोकनद = लाल कमल, रली = क्रीड़ा, आदि। प्राची अरुनाति है = पूर्व दिशा में लालिमा (अरुणोदय की) छा रहा है। मनि हारे = रत्नों को छोड़े हुए से। तारे = आँख का पुतली। अरसाति है = आलस्य करती है। उरगलता = नागबल्ली (पान की बेल)। पियरानी = पीली पड़ी हुई। पिय रानी = प्रियतम की प्यारी। इतराति = घमंड करती है। इत = उधर ॥३१॥

धारै बरछान को बिदारै देवता को तन,
मद सी कुठार बढ़ै संकर के चेला के।
दब्बै दिगपाल बल फब्बै न गिरीसन के,
जा दिन जुनव्वे कढ़ै बाँधवी बघेला के ॥३२॥

टीका—ओनि कहै पृथ्वी, अंबर कहै आकाश लौं, सुमेर पर्वत ऐसे लुप्तोपमा। अथ ऐसे ऊँचे हैं कि उन के आगे सुमेर के मरजादा कहै सीमा घटै है, यात प्रताप। धारै बरछान को० बरछान को धारि देवतन को तन बिदारै कहै बेधै है, अजोग जोग कथन तें संबधातिशयोक्ति। मद सी कुठार० संकर कहै महादेव, चेला कहै परसराम, कुठार कहै फरसा, मद कहै धार, कुठित है जात है। जा दिन बाँधवी बघेला की जुनव्वे कहै तरवारि कढती है, याहू तें प्रताप भयो ॥३२॥

कवि—भूषण (रूपक-निदर्शना संबधातिशयोक्ति)

दण्डक—कोकनद नैनन ते कज्जल कलित छूट्यो,
आँसुन के धार तें कलिंदी सरसाती है।
मोतिन की लरैं गरैं छूटि परैं गंग छबि,
सेंदुर सुरंग सरस्वती दरसाती है।
'भूषन' भनत महाराज शिवराज बीर
रावरे सुजस ए उकति ठहराती है।
जहाँ जहाँ भागती है बैरी बधू तेरे त्रास,
तहाँ तहाँ मग मैं त्रिबेनी होति जाती है ॥३३॥

टीका—कोकनद कमल नैन सम रूपक, आँसुन के धारि तें कलिंदी उपमेय को धर्म उपमान में आरोप तें निदर्शना। मोती की लरैं गर ते छूटि परत हैं भागत के समै में राह में, सो गंगा की छबि है, सेंदुर भाल ते गिरे है सो सरस्वती के है, यह तीनि रंग जुत त्रिबेनी मग में है जाती है। हे सिवराज भूप तिहारे बैरिन की बनिता जब भागती है। अजोग जोग कथन सम्ब धाति शयोक्ति, समस्त विषयी रूपक है ॥३३॥

बारिध = समुद्र। कुठार = परशु। संकर के चेला = शिवजी के शिष्य, परशुराम। दब्बै = दब जाता है। फब्बै न = नहीं चलती। जुन०वै = तलवार। कढ़ै = निकलती है ॥३२॥

कलिंदी = कालिंदी, यमुना ॥३३॥

कवि—सोभ (उदात्त-लुप्तोपमा-प्रतीप)

दंडक—देखिये पियारे कान्ह सरद सुधारे सुधा
धाम उजियारे चोका चामीकर दरसे।
चोभे चाँदी चमकै चँदोए गुही मोतिन की,
झलकनि झालर जुन्हाई जोति परसे।
हीरा सी हँसनि हीरा हार की लसनि साथि,
सारी रही सनि 'कवि सोभ' छवि सरसे।
कोटि कोटि कला मुख चंद ते सरस प्यारी,
बादिला फरस रूप झलाझल बरसे ॥३४॥

टीका—चोका चामीकर चाप चाँदी के, मोतिन की झालरैं, यह बहु ऐश्वर्य के बरनन ते उदात्त। झलक जुन्हाई जोति लुप्तोपमा, हीरा सी हसनि धर्म लुप्ता, कोटि कला मुख को चंद्रमा ते सरस उपमान के निरादर ते प्रतीप ॥३४॥

कवि—नाथ (लुप्तोपमा-रूपक-प्रतीप संदेह)

दंडक—मदन तुका सी किधौं राजे कुंद कामी कानि,
कंज कलिका सी कुच जोरी हूँ निकासी है।
गासी भरी हाँसी मुख भासी मोह फाँसी मद,
जोवन उजासी नेह दिए की सिखा सी है।
जाकी रति दासी रस रासी है रमा सी को,
कहै तिलोतमा सी रूप रसनि प्रकासी है।
काम की कला सी चपला सी 'कवि नाथ' किधौं
चंप लतिका सी चारु चंद्रचंद्रिका सी है ॥३५॥

टीका—नायिका के सौन्दर्य्य को बर्णन, मदन काम को तुका के सदृश, तुका गोल फेंकि कै मारिबे को एक बान के तुल्य होय है। कुच उपमेय, मदन-

---

सुधाधाम = चूना पुते हुए प्रासाद। चामीकर = सुवर्ण। चोभै = स्तम्भे। चँदोए = मंडप, सिंहासन आदि में शोभा के लिये लगाया गया झालरदार आच्छादन वस्त्र। लसनि = शोभा। सनि = लीन। बादिला फरस = सोने चाँदी का काम किया हुआ बिछाने का वस्त्र ॥३४॥

तुका = तुक्का (एक प्रकार का समीप में प्रहार कर सकने वाला क्षेप्यास्त्र, लोकोक्ति प्रसिद्ध है—'भिड़ गया तो तीर नहीं तो तुक्का') गासी = बरछा की नोक। मुखभा सी = मुख की कान्ति। जोवन उजासी = यौवन की दमक। तिलोत्तमा = स्वर्ग की एक अप्सरा ॥३५॥

लुप्त उपमान, सी वाचक, धर्म को लोप, यातें धर्म लुप्ता। किधौं शोभित होय है, कुंदकलिका सी लुप्तोपमा, कंज कमल कलिका सी कुच जोरी कहै दोनों कुच शोभित होय है। मुखशोभा फाँसी करि वर्णन, यातें रूपक। जाकी रति दासी, उपमान को तिरस्कार, यातें प्रतीप। किधौं संदेहापन्न पदनिवेश यथार्थ ठहरायो, यातें संदेहालंकार ॥३५॥

कवि—देव (उल्लास-लुप्तोपमा-रूपकादि)

दंडक—केलि के बगीचे को अकेली अकुलाइ आई,
नागरि नवेली बेली देखति हहरि परी।
कुंज के अवास तहाँ गुंजरत भौंर पुंज,
शीतल समीर सीरे नीर की नहरि परी।
'देव' तेहि काल गूँधि लाई माल मालिनि यौं,
देखत बिरह बिष ब्याल की लहरि परी।
छोह भरी छरी सी छबीली छिति माहँ फूल,
छरी सी छुवत फुलछरी सी छहरि परी ॥३६॥

टीका—अकुलाइ को आई जहाँ कुंज भवन कहै केलि थल, तहाँ नीर कहै पानी भरी नहरि देखि परी तो लखिहि देह हहरी कहै काँपी। संकेतनाश ते अनुशयाना। देव तेहि काल०—ताहि समै मालिनी माल लाई, गुन तें दोष भयो तातें उल्लास। माला फूलन के उद्दीपन बिरह बिष ब्याल समरूपक। छोह भरी०— फूलछरी सी धर्मलुप्ता ॥३६॥

कवि—गंग (रूपक श्लेष-परिवृत्ति)

'गंग कवि' जौहरी रतन गुन पारिख के,
जस मुकुताहल चहूँघा दरसाई है।
चाहि है जे नृप करनाभरन करिबे को,
तिनही के आगे बेम कीमति सुनाई है।
देहैं करि मौज सोई लेहैं हम हरबर,
तोछन उआदो खत टीपन लिखाई है।
आदर जमा में कैसे हानि होन पावै जग,
बेचि है तहाई जहाँ नफा कछु पाई है ॥३७॥

हहरि परी = काँप गई। सीरे = ठंढे। छोह = क्षोभ, दुःख। छिरी सी = ठगी हुई सी। फूलछरा = फुलझरी ॥३६॥

रतनगुन = (१) रत्नों के गुण (२) गुणरूपरत्न। जस मुकुता हल = (१) जैसे मोती का फल (दाना), (२) यशरूप मुक्ताफल। चहूँघा = चारों ओर।

टीका—कवि जोहरी ते रूपक। चाह है जे तूर०—करनाभरन कहे कान को भूषन, दूजो अर्थ जे कान भरन करि अर्थ सुनि, यातें श्लेष ध्वनि ताथ तें श्लेषालंकार। जस रूपी मुक्ता दे के मोल आदर लैबो, तातें परिवृत्ति अलंकार ॥३७॥

कवि—सोमनाथ (लुप्तोपमा-उत्प्रेक्षा रूपक-वृत्त्यनुप्रास)

कवित्त—सोन सो सरीर ता पै आसमानी रंग चीर,
और ओप कीनी रविरतन तरौना द्वै।
'सोमनाथ' कहै इन्दिरा सी जगमगै बाल,
गाढे कुच ठाढे मनो ईसजुग मौना ह्वै।
कारी घुँघरारी मन्द पवन झकोर लागे,
फरहरै अलक कपालनि के कौना द्वै।
सो छबि अमंद मनो पान सुधाबुंद करि,
इंदु पर खेलत फनिंदनि के छौना द्वै ॥३८॥

टीका—उपमान, उपमेय, वाचक तें धर्म लुप्त, रविरतन रूपक। सोम नाथ कहै०—इन्दिरा सी जगमगै, इन्दिरा उपमान, नायिका उपमेय, सी वाचक, जगमग धर्म ते पूर्णोपमा। कारी घुँघरारी०—पवन के झकोरतें हाले है, कपाल पै लट संभाव्यमान पद ते उत्प्रेक्षा। मानो सुधाबुंद इंदु पर पान करि फनिंद के बालक खेलै है। सिद्धविषया वस्तूत्प्रेक्षा ॥३८॥

कवि—पदमाकर (उदात्त-पूर्णोपमा रूपक-युक्ति)

दंडक—बंजुल निकुंजन मैं मंजुल महल मध्य,
मोतिन की झालरैं किनारिन मैं कुरुविंदु।
आइगो तहाँई 'पदमाकर' पियारे कान्ह,
आइ जुरी चौंचंद चवाइनि के वृंद वृंद।

करनाभरन करिबे को = (१) कान का आभूषण बनाने को, (२) कानों से सुनने को। हरबर = शीघ्र। उआदो = वादा, इकरार। खतदीपन = लिखत, दस्तावेज ॥३७॥

१—वृत्त्यनुप्रास लक्षण देखिये आगे अनुप्रास प्रकरण की टिप्पणी।

चीर = वस्त्र। ओप = शोभा, कान्ति। रविरतन = माणिक्य। तरौना = कान का एक आभूषण। इन्दिरा = लक्ष्मी। ईस जुग मौना ह्वै = चुपचाप खड़े दो शिवलिंग। फनिंदनि के छौना = सर्प के बच्चे ॥३८॥

बैठी फिरि पूतरी अनूतरी फिरग कैसी,
पीठि दै प्रबीनी द्रिग द्रिगन भरे अनंद।
आछे अवलोकि रही आदरस मंदिर मैं,
इंदीवर सुंदर गोविंद के मुखारबिंद ॥३९॥

टीका—मोतिन को झालरै किनारनि में कुरुविंद कहै मानिक मूँगानि पर सपत्ति, चरित्र ते उदात्त। बैठा फिरि पूतरी० कहै दृष्टि फेरि बैठी अनूतरी कहै नहीं ताकती है पाछे को, जैसे सतरंज के खेल में पियादा पाछे को नहीं चलता है, यातें पूर्णोपमा। पियादा उपमान, पूतरी उपमेय, अनूतर धर्म, कैसी वाचक। आछे अवलोकि० आदरस कहै ऐना के मंदिर मे गोविंद कहै कृष्ण के मुखारबिंद अवलोकि कहै देखि रही प्रतिबिंब को, याते क्रियाविदग्धा नायिका। मुखारबिंद कहै मुख अरबिंद ते रूपक ॥३९॥

(रूपक-अप्रस्तुतप्रशंसा-लोकोक्ति)

सवैया–गुन गाँहक सों बिनती अतनी हक नाहक नाहिं ठगावनो है।
यह प्रेम बजार की चाँदनी चोक मै नैन दलाल अँकावनो है।
गुन ठाकुर जोति जवाहिर है परबीनन सो परखावनो है।
अब देखु बिचारि सँभारि के माल जमा पर दाम लगावनो है ॥४०॥

टीका—यह प्रेम बजार समस्तविषयी रूपक, गुनी लोग के गुन प्रस्तुत बरनन ते प्रस्तुत प्रशंसा, अथवा जवाहिर रूपी गुनी को परखावने ते अन्योक्ति और जमा पर दाम लगावनो है लोकोक्ति। यह अर्थ की जस गुन होय वैसे दाम लगाइबे कहै वैसई सनमान करिबो चाही। जमा पर दाम लगाइबो यह लोकबोली लोकोक्ति, इति ॥४०॥

कवि—अनुनैन (प्रतीप-रूपक-पूर्णोपमा)

सवैया–दुति देखत दंतन की हिय हारत हीरन के गन दाड़िम हैं।
बसुधा बिच चारु कुधा की मिठाई सुधाधर सो धर सालिम हैं॥

बंजुल निकुंज = बैंत की झाड़ी। कुरुबिंदु = रत्नों का जड़ाव। चोचद = निन्दा, अपवाद की चर्चा। चवाइनि = निंदक स्त्रियाँ। बैठी फिरि = मुँह फेर कर बैठ गई। पूतरी = पुतली (क्रियाशून्य सी)। अनूतरी = कुछ उत्तर न देती हुई अर्थात् पीछे को न मुड़ने वाली। फिरंगी = प्यादा। आदरस मन्दिर = दर्पणों से युक्त प्रासाद ॥३९॥

अँकावनो = अन्दाजा लगाना ॥४०॥

'अलुनैन' बनी भृकुटी कुटिलै कल मैन के चाप सो आलिम हैं।
जग जाहिर जोर चलाइ सकै अँखियाँ जमराज सों जालिम हैं ॥४१॥

टीका—दुति रतन दाग हार दाडिम लज्जित ते प्रताप। मुधाधर सो अधर लुप्तोपमा अथवा रूपक। भृकुटी कुटिल मैन के चाप से, भृकुटी उपमेय, कुटिलता धर्म, मैन के चाप उपमान, सो वाचक ते पूर्णोपमा अलंकार ॥४१॥

कवि—पजनेश (उदात्त लुप्तोपमा-उत्प्रेक्षा)

सवैया—बिल्लौर की बारादरी निर्मि चाति जम्मुरद की कुरसी जर्जे जोन।
गनै पहिली पति नीरपति सों 'पजनेश' कहै सो बड़ो है प्रवीन॥
प्रसेद के बुन्द ढिठौना फिरी लट लागि रही मनो लोयन लीन।
मनो रतनाकर में रतिनाथ चुनी कर बंशी बँझावत मीन॥४२॥

टीका—बिल्लौर की बारादरी, जम्मुरद की कुरसी, बहु सम्पत्ति के बरनन ते उदात्त। गनै पाहलो०—कहै पति सो पहिली प्रात जाकी दीपति, पजनेस कहै बड़ो प्रवीन पान की प्रीत में दीपति सो, यातें धर्मउपमेयलुप्ता। स्वेद को बुन्द ढिठौना कहै जो बुन्द कजल को स्त्री भाल में लगावत सो लट में लागि कै लोयन कहै नेत्र तक लीन कहै ठिग परे संभाव्यमान पद तें उत्प्रेक्षा। मानो रतनाकर में रतिनाथ मीन बझावत बंसी कहै कांटा डारि कै ॥४२॥

कवि—सुंदर (रूपक लुप्तोपमा-पूर्णोपमा)

सवैया—बार सिवार है ओठ सुधा सी सुधाकर सो मुख आछे उजेरो।
नैननि हाथनि पायनि जाके लसे रंग कंजन के बहुतेरो॥
'सुंदर' सो हिय माँझ निरंतर ऐसे ही प्यारो को पीय बसेरो।
जानत हौं अपुनोई अभाग इतै पर ताप तपै तन मेरो॥४३॥

टीका—बार कहै केश सिवार है, यातें रूपक। ओठ सुधा सी, मुख सोम सो उजेरो, सुधा उपमान, ओठ उपमेय, सी वाचक, लुप्तधर्म। मुख उपमेय, चन्द्र उपमान, उजेर धर्म, सो वाचक तें पूर्णोपमा। यह सब वस्तु शीतल नायक के अंग में, सो मेरे हिय में बसत, तापर ताप मेरे तन में तपै, कारन ते कार्य

सालिम = पूर्ण। आलिम = समर्थ, विद्वान् ॥४१॥

बिल्लौर = स्फटिक। बारादरी = हवादार बैठका। जमुरंद = पन्ना। प्रसेद = प्रस्वेद, पसीना। लोयन = लोचन। रतनाकर = समुद्र। बंशी = मछली को फँसाने का साधन। बझावत = फाँस रहा है ॥४२॥

सिवार = सेवार, जल की काई ॥४३॥

न भया, तातें विशेषोक्ति। नायिका प्रोषितपतिका, चिंता संचारी अथवा गुन कथन ॥४३॥

कवि—तोष (उल्लास पर्य्यायोक्ति दीपकावृत्ति)

दंडक—ऊख उखरत दुखरत अभुआनी बाल,
चित अनुमानो हाथ होन हित हानि है।
कहैं कवि 'तोष' बनितान आनि पानि गही,
मुरि मुसक्याय पान दीन्हो गहि पानि है।
ऊख अरहरि सन बन ऐसो राखि है जो,
ताहि हम राखि है सकल सुखदानि है।
भानि है जो कोऊ ताहि हेरि हेरि भानिहौं री,
हुकुम भवानी को न मानि है सो जानि है ॥४४॥

टीका—ऊख के उखरते दुख रत कहै दुख में रत भई। ऊख उखरब दोष ते दोष, तातें उल्लास। ऊख उखरि गए सकृत मिटो, तातें अनुशयाना नायिका। कहै कवि तोष० पानि गहि बनिता को अभुआन लगी पानि में पान दीन्हे। पानि पानि आवृत्ति, अथ शब्द को एकै, तातें दीपकावृत्ति। अभुआनी और भवानी को यह हुकुम को ऊख आदि कोइ काटै न। निजकार्य्य साधन करिबे की जुक्ति किया, तातें पर्य्यायोक्ति अर्थात् क्रिया व्यंजित मिसुकरि साधन तें जानो इति ॥४४॥

कवि—दास (रूपक-प्रतीप लुप्तोपमा-पूर्णोपमा)

† 'दास' मुख चंद्र कैसी चंद्रिका बिमल चारु,
चंद्रमा की चंद्रिका लगत जामै मैली सी।
कनी की कपूर धूरि बोढनी सी फहराति
बात बास आवत कपूर धूर फैली सी।
बिज्जुसी चमकि महताब सी दमकि उठै,
उमगति हिय के हरष की उजेली सी।

अभुआनी = भूत बाधा से पीड़ित सी। अरहरि = अरहर (जिसकी दाल बनती है)। भानि है = काटेगी ॥४४॥

† 'भिखारीदास ग्रंथावली' में इस पद्य से निम्न पाठभेद है—
कनी की—बनी की। बोढ़नी—ओढ़नी। बातबास—बातबस। कपूर धूर—कपूर धूरि। हेमबरना—हेमबरनी। रावरे—साँवरे।

हाँसी हंसबरनी की फाँसी सी लगति ही मैं,
रावरे द्रिगन आगे फूलत चमेली सी ॥४५॥

टीका—मुखचंद्र मुख उपमेय, चंद्र उपमान तें रूपक। चंद्रमा की चाँदनी मैली कहै में तीन लागत। उपमान को निरादर तें प्रतीप। बिजुली चमकि बिजुली उपमान, सी वाचक, चमक धर्म तें पूर्णोपमा। फूलत चमेली सी०—चमेली उपमान, फूलत धर्म सी वाचक तें लुप्तोपमा बिना उपमेय के ॥४५॥

(रूपक-संदेह-श्लेष)

चारु मुखचंद्र को चढ़ायो विधि किंसुक की,
सुक नयो बिंबाधर लालच उमंग है।
नेह उपजावन अतूल तिल फूल कीधौं
पानिप सरोवरी को उरमी उतंग है।
'दास' मनमथ साहि कंचन सुराही मुख,
बसजुत पाक की कि पाक मुख रंग है।
एकही मैं तीनौं पुर ईश को है अंस कीधौं,
नाक नवला की सुरधाम सुरसंग है ॥४६॥

टीका—चारु कहे रमनीय, मुखचंद्र पद मुख उपमेय, चंद्र उपमान, तातें रूपक। अरु को किंसुक होय, को सुक कहे सुवा होइ। बिंबाधर कहैं बिंबफल सो अधर, ताहि हेतु सुवा आयो है, यातें संदेहालंकार। नेह उपजावन नेह कहे तेल अरु प्रीति द्वै अर्थ के प्रसंग तें श्लेष अलंकार और दास मनमथ पद में सब संदेह अलंकार की गति है ॥४६॥

(पूर्णोपमा-लुप्तोपमा-अनन्वय-उपमानोपमेय-प्रतीप तीनों-चौथे दृष्टांत-तुल्ययोगिता-निदर्शना)

दंडक—घन से सघन स्याम केश बेश भामिनी के,
ब्यालिनि सी बेनी भाल ऐसो एक भाल ही।

कपूर धूरि = कपूर की तरह धवल (सफेद)। चाँदनी = ओढ़नी, चादर। महताब = चन्द्रमा ॥४५॥

किंसुक = पलास। सुक = सुग्गा, तोता। बिंबाधर = बिंबफल के सदृश ओष्ठ। अतूल = अनुपम। पानिपसरोवरी = पानी की छोटी तलैया, शोभा का समूह। उरमी = लहर, तरंग। बसजुतपाक = बाँस का बना हुआ ढकना। पाक = वस्त्र। सुरसंग = स्वर सहित ॥४६॥

भृकुटी कमान दोऊ दुहँन को उपमान,
नैन से कमल नासा कीरमद घाल ही।
गरब कपोलनि मुकुर समता के सीप,
श्रोन आगे ओठ आगे बिंब एक हाल ही।
मोतिन की सुपमा निरादरियत दसनि में,
'दास' हास बीजुरी को दरयौ एक चाल ही ॥४७॥

टीका—नैन में पूर्णोपमा, बेना में लुप्तोपमा, भृकुटि में उपमानोपमेय, नासिका कपोल में तीनों प्रतीप, श्रवन ओठ में चौथा प्रतीप, दृष्टांत तुल्य योगिता दाँत में, हास में निदरशना इति ॥४७॥

(रूपक-अपन्हुति-उत्प्रेक्षा-संदेह-भ्रांति-सुमिरन)

दंडक—ती को मुख इंदु है तु स्वेदन सुधा को बुंद,
मोतीजुत नाक मानो लीन्हे सुक चारो है।
ठोढी रूप कूप है की गाड़ोई अनूप है की,
अभिराम मुख छवि धाम को पनारो है।
ग्रीवाँ छबि सीवाँ मैं ललित लाल माल लखि,
अखत चकोर जानै अमल अँगारो है।
देखत उरोज सुधि आवत है साधुन को,
ऐसई अँचल शिव साहिब हमारो है ॥४८॥

टीका—तीको मुख इंदु है०—मुख उपमान, इंदु उपमेय, ते रूपक। स्वेद सुधाबुंद धर्म लीजै तौ लुप्तोपमा। मोतीजुत नाक मानो शुक कहै सुवा चारो लिये है, यातें उत्प्रेक्षा वस्तूत्प्रेक्षा। ठोढ़ी पै संदेह, ग्रीवाँ भ्राँति, उरोजन पै सुमिरन अलंकार ॥४८॥

कवि—बलभद्र (रूपक लुप्तोपमा-संदेह)

दंडक—तन तरिवर की उभय शाखा 'बलिभद्र',
सुंदर सुढार अति गोल सम तूल हैं।
साँचे करि ढारे बिधि दामिनि सी कैधौं दोऊ,
दमकति दुति नहि दुरति दुकूल हैं।
सुख के सरोवर के पेखे हैं मृणाल कीधौं,
फूलकर अग्र कीधौं नद कैसे कूल हैं।

कीरमद घालही = तोते के घमंड को चूर कर देती है ॥४७॥

स्वेदन = पसीना। चारो = चारा, आहार। ग्रीवाँ = गरदन। छवि सीवाँ = सौन्दर्य की सीमा ॥४८॥

काम ही कुँदेरे भाए सुढ़र कनक दंड,
कैधौं भोरी भामिनी के गाढ़ भुजमूल हैं ॥४९॥

टीका—तन तरिवर की उभय शाखा, तन उपमेय, तरिवर उपमान ते रूपक। दामिनी सी कैधौं कहै बिजुरी कैसा केश कहै चमकत, यह धर्म ते लुप्तोपमा अथवा उपमेय लाजे तो पूर्णोपमा। सुभ्र के सगोर्स पढ़त सदेहालंकार ॥४९॥

(उत्प्रेक्षा-लुप्तोपमा सदेह)

दंडक—फूले मधु माधवी के पुहुप सरन सोहैं,
'बलिभद्र' पंच शाखा मानो देवतरु की।
केसरिकली सी कलधौत की फली सी फब,
फली नव भाति कुज लता काम सर की।
कोमल कमल अग्र दश चक्र चिह्न राजै,
नीवी दसों दिसन की शोभा सुनर की।
तेरे तन बसत तनक तनधर तत,
कीधौं कर पल्लव किशोरी तेरे कर की ॥५०॥

टीका—यह अँगुरी बरनन है फूले मधु माधवी० ताका उत्प्रेक्षा। मानो पाँच शाखा देवतरु का है, पाँचों अगुरी है। केशरि कली सी, केसर उपमान, सी वाचक, याते धर्म उपमेय लुप्ता। कोमल कमल अग्र केवल उपमान ते अतिशयोक्ति रूपक। तेरे तन बसत० या पद में सदेहालंकार ॥५०॥

(रूपक-लुप्तोपमा-उत्प्रेक्षा)

पाटल नयन कोकनद कैसे दल दोऊ,
'बलिभद्र' वासर उनींदी दुखे बाल मैं।
सोभा के सरोबर मैं बाड़व की आभा कीधौं
देवधुनी भारती मिली है पुन्य काल मैं।
काम कैवर्त्त बेठा नासिका उडुप आइ,
खेलत सिकार तरुनी के मुख ताल में।

सुढार = अच्छी प्रकार ढले हुए से। परे = देखे हुए। कुँदेरे = बढ़ई, छीलने ढाढने वाला ॥४९॥

मधुमाधवी = वासन्ती लता। पुहुप = पुष्प। सरन = तालाबों में। देवतरु = कल्पवृक्ष। तनधर = देहधारी। तत = तत्व (पृथ्वी आदि पाँच तत्व) ॥५०॥

लोचन सितासित में लोहित लकीर मानो,
फँदे जुग मीन लाल रेसम के जाल मैं ॥५१॥

टीका—नेत्र के डोरे को बरनन है। पाटल नैन कोकनद कैसे। नैन उपमेय, कोकनद उपमान, कैसे वाचक ते धर्म उपमेय लुप्तोपमा। सोभा के सरोवर मे०—यह होइ यातें संदेहालंकार। काम उपमान, कैवर्त्त उपमेय, यातें रूपक। लोचन सितासित०—कहे लोचन कारे और उजारेमें जो लोहित लकीर है सो मानो लाल रेशम के जाल में नैन मीन बाझे हैं, यातें वस्तूत्प्रेक्षा सिद्ध विषया ॥५१॥

(लुप्तोपमा-रूपक-संदेहादि)

दंडक—विष की लता सी विनु प्रान दुहिता सी आसी-
बिष अल्पा सी भामिनी को यहि भाँति है।
कुच चकडोरन की डोरा मखतूल हू की,
जानि अमी घटन चढ़ी पपील पाँति है।
जठर अगिनि आभा नारी नाभि कूप की की,
चतुर चितवनि की कदनि अहराति है।
अलप उदर पर तरी रोमराजी कीधौं,
बानी के बिपची की उतारि धरी तार है ॥५२॥

टीका—यह रोमराजीवर्नन है। विष की लता सी० विष उपमान, सी वाचक ते धर्म उपमेय लुप्ता। कुच चकडोरन की०—कुच उपमेय, चकडोर उपमान ते रूपक। जठर अगिनि पद मे संदेहालंकार। अलप उदर पर—यह रोमराजी बानी विपची की उतारि धरी तार है, बानी कहे भारती विपची कहे बीना के तार है, या हू में संदेह है ॥५२॥

पाटल = लाल। कोकनद = रक्तकमल। यामर = दिन में। उनादी = रात्रि में जगने से अल्साया हुई। बाड़व = जल की अग्नि। देवधुनी = गंगा। भारती = सरस्वती (नदी)। कैवर्त = धीवर, केवट। उड़प = छोटी नैया ॥५१॥

आसीविष = सर्प। अल्पासी = छोटी सी। कुचचकडोरन की = स्तन रूप चक्रवाकों को झुलाने वाली। मखतूल = काले रेशम की बनी, अत्यन्त कोमल। अमीघटन = अमृत के घड़ों में। पपील पाँति = चींटियों की पंक्ति। चितवनि = कटाक्ष, दृष्टि। कदनि = मारना। अहराति = डोलती है। बानी = सरस्वती। विपची = वीणा ॥५२॥

कवि—प्रताप (प्रतीप-रूपक-उत्प्रेक्षा-संदेह)

दंडक—डोरे रतनारे बीच कारे और सारे सेत,
जिनके निहारत कुरंग गन भूले हैं।
आनन अमंद ऐसो मानो विधुमंडल में,
सारदी के खंजन सुभाय अनुकूले हैं।
जनकसुता के मुख चंद के चकोर कीधौं,
बरने न जात छवि उपमा अतूले हैं।
राजे रामलोचन मनोज अति बोज भरे,
सोभा के सरोवर सरोज जुग फूले हैं ॥५३॥

टीका—यह नेत्र बरनन है। लाल स्याम सेत डोरे मृग देखि भूले हैं कहै लज्जित, यातें प्रतीप। आनन अमंद पर मानो विधु कहे चंद्रमा के मंडल में खंजन होय, यातें वस्तूत्प्रेक्षा अनुक्तविषया। जनकसुता के मुख चंद के चकोर कीधौं, यातें संदेहालंकार। राजे रामलोचन शोभा के सरोवर, शोभा उपमान, उपमेय तें रूपक ॥५३॥

(रूपक-प्रतीप-संदेह)

दंडक—झूलन के झूला भरे पानिप थला हैं काम-
तुला के पला हैं अमला हैं पंचसर के।
दुति के निवासक प्रकाशक प्रकाश के हैं,
विधु रवि नाशक सुरस विधि हर के।
कहै 'परताप' जोति आकर प्रभा के छिति,
छवि के छपाकर दिवाकर उभर के।
आदरस तोल विधु मंडल के डोल कीधौं,
अधिक अमोल ए कपोल रघुवर के ॥५४॥

टीका—यह कपोल बरनन है। काम कहै मनोज, तुला कहै तराजू, पला कहै पलरा होइ, यातें रूपक। दुति के निवासक पद तें प्रतीप, आदरस कहै ऐना होइ कि विधु मंडल कहै चंद्रमा को मंडल होय यातें संदेह ॥५४॥

डोरे = रेखाय, सूत। रतनारे = लाल। सेत = श्वेत। सारदी = शरत्काल। बोज = ओज। सरोज जुग = युगलकमल ॥५३॥

पानिप थला = शोभा के स्थान। अमला = कर्मचारी। पंचसर = कामदेव। छपाकर = चन्द्रमा। उभर = तेज। आदरस तोल = दर्पण तुल्य ॥५४॥

कवि—फनिंद (दीपकावृत्ति-उपमादि)

दंडक—काहू की न मूठी के अनूठी सोहैं खात,
दीठि ईठि कौन के अदीठि सो पिरात हैं।
बात में न शाख बोलें कौन ऐसे नीकी शाख,
साखामृग कैसे चल भए फहरात हैं।
भनत 'फनिंद' उभरे न कहूँ चितवत,
परदा रहित परदारहित गात हैं।
जैसे सटकारे कारे बार बार बाँधे नेही,
जानि जब छोरे तऊ कारे कुटिलात हैं ॥५५॥

टीका—यह धीरा नायिका को उक्ति है। काहू की न मूठी के कहे काहू के ए बसि नहीं, अनूठ अरु झूठ कसमखात हैं, दीठि ईठि कहे मित्र कौन के। बातन में शाख बोलै कौन ऐसे शाख, यातें दीपकावृत्ति, शब्द अर्थ एकत्वतें। शाखा मृग कैसे चल शाखामृग कहे बाँनर तासों चंचल, धम से वाचक तें उपमालंकार। परदारहित परदारहित परदार कहे पराई स्त्री, ताके हित और परदा रहित परदा कहे लाज या ओट ते रहित, यातें दीपकावृत्ति तीसरी शब्द अर्थ भिन्न तें। जैसे सटकारे०—जैसे बाँधे जात हैं जब छोरे जात तब कुटिलता कहे टेढे ह्वै जात हैं, तैसे ए जब दीठि के पीठि होत ही कोटिन कुटिलाई करते हैं, छोरब गुन ते ऐगुनता कुटिलाई, यातें उल्लास अलंकार ॥५५॥

कवि—दत्त (लुप्तोपमा उल्लेख-तुल्ययोगिता)

दंडक—चोप करि बिरची बिरंचि रूपरासि कैसी,
कोक की कला सी चारु चातुरी की शाला सी।
चंद्रमा सी चाँदनी, सो लोचन चकोर ही को,
सुधा सखी जन ही को, सौतिन को हाला सी।

मूठी के = मुट्ठी के, बश के। सोहैं = सौगंध, कसम। दीठि = दृष्टि पड़ने पर। ईठि = मित्र। अदीठि = अदृष्ट, ओझल हुए। पिरात हैं = दुःख देते हैं। शाख = सत्यता। शाख = डाली (अन्य नायिका से अभिप्राय है)। साखामृग = बन्दर। फहरात हैं = घूमते हैं। उभरे = सामने प्रकट हुए। कहूँ = कभी। चितवत = देखते हैं। परदा रहित = लज्जाहीन। परदारहित = परस्त्री पोषक। सटकारे = (१) झटकारे हुए (केश) (२) शठ कारे मलिन। नेहीजानि = स्नेह युक्त जान कर (नायक), तेल लगे जानकर (केश) ॥५५॥

कहाँ मंजुघोषा उरबसी न सुकेसी 'दत्त',
जाकी छबि आगे वारियत, मैन बाला सी।
चंपक की माला सी लगै हिय बरषकाला,
शिशिर दुशाला होत ग्रीषम मैं पाला सी ॥५६॥

टीका—नायिका को सामान्य रूपात्मकता बरनन। कोक की कला सी चन्द्रमा सी, चन्द्रमा उपमान, सो आनन ते लुप्तोपमा। लोचन चकोर उपमान उपमेय तें रूपक। कहाँ मंजुघोषा उरबसी आदि न गुन समूह, तातें नूतन आगिन और मोतिन की हाला कहै जिन ऐसो लागत और सब्दा चन सो सुधा तातें उल्लेखालंकार। अरु एक वस्तु और उपमान के न नत ते मालोपमा॥५६॥

कवि—आनंदघन (रूपक-विशेषोक्ति स्वभावोक्ति)

सवैया—सुनि बेनु को मादक नाद महा उनमाद सवाद उड्यौ न घिरै।
निसिद्यौस घुमेरनि भौंर पर्‌यौ अभिलाष महोदधि हेरि हिरै॥
'घन आनद' भीजत सोचनि सूखन थाकति गोरि सँभारि गिरै।
तन तो यह लाज घिर्‌यौ घर मैं बन मैं मनमोहन संग फिरै ॥५७॥

टीका—बेनु के नाद पर प्रेम बरनन है। घुमेरनि और अभिलाष महोदधि रूपक अलंकार। घन आनद भीजत सोचनि कहै सोच सो सूखत कारन ते कारज सूखन न भयो, तातें विशेषोक्ति अथवा भीजबते सूखब भयो तातें बिरोधाभास। तन॰—तन तो लाज के घर में है, मन मोहन के संग बन में फिरै है। मध्या नायिका के स्वभाव ऐसोई होवै है, यातें स्वभावोक्ति अलंकार है ॥५७॥

(दीपकावृत्ति-व्याघातादि)

सवैया—मन मेरो घनेरो अनेरो भयो अब कौन के आगे पुकार करौं।
सुखकंद अहो बृजचंद सुनौ जिय आवत है तुमही सो लरौं॥
अनमोह भए जू न मोह न मोहन या निधि सोक पराही भरौं।
'घन आनद' ह्वै दुख ताप तचावत क्यों करि नाँवहि नाँव धरौं ॥५८॥

चोप = तीव्र इच्छा, चाह। बिरंचि = विधाता। कोक की कला = काम की कला। सुधा = अमृत। हाला = विष। मंजुघोषा–उरबसी–सुकेशी = स्वर्ग की अप्सराएँ। बरषकाला = वर्षा काल में। पाला = हिम ॥५६॥

बेनु = बंसी। निसिद्यौस = रातदिन। घुमेरनि = चक्करों से। भौंर पर्‌यौ = भँवर (जलावर्त) पड़े हैं। हेरि हिरे = खोजत थक गये हैं। थाकति = थकती है ॥५७॥

घनेरो = अत्यन्त। अनेरो = अन्धकारयुक्त, निराश। सुखकंद = सुख के मूल। घन आनद = कवि का नाम, आनन्दप्रद बादल। तचावत = जलाते हो ॥५८॥

टीका—यह प्रेमाधिक्य वरनन है। मोहन मोहन शब्द अर्थ भिन्न ते दीपकावृत्ति अलंकार। घन आनन्द हू घन कहै मेघ आनंद हू के ताप कहै उगाल उपजावत है, याते व्याघात और कार्य ते कारन विरुद्ध। सोक निधि रूपक ॥५८॥

(रूपक लुप्तोपमा-श्लेष)

सवैया—रूप सुदेश को राज करो करि छत्र गुमानहि शीश धरे जू।
सुंदर सॉवर हो दिन दूल्ह चाय चहूँ दिशि चौंर ढरे जू॥
नीके लसो बर सो 'घन आनद' चातिक लोचन प्यास मरे जू।
रॉचत है तुम्हैं जाचत है बृज जीवन रावरी आस करे जू॥५९॥

टीका—यह प्रेमानुराग वरनन है। रूप के देश को राज करो, यातें रूपक। गुमान के छत्र शीश धरे याहू मे रूपक। सुन्दर सॉवरे०—दूल्ह चाय चहूंदिशि० नीके सरोवर सो बरसो—बर कहै दूल्ह ऐसे, चौंर ढारो घन ते एस वाचक उपमेय के लोप ते उपमेय लुप्ता। घन आनद कहै आनंद के मेघ हो चातक लोचन प्यास मरे यह आश्चर्य ते रसवत्। रॉचत हौ कहै रुचत है। तातें तुम्हैं जाचत हौं, बृज के लोग को जीवन कहै जीव तिहारे आस, अथवा घन आनद कहै बरसन हारे मेघ हो जीवन के जल तिहारे आस है। एक शब्द में दुइ अर्थ व्यंजित ते श्लेष अलंकार इति ॥५९॥

कवि—देव (लुप्तोपमा-रूपक अभेद-पूर्णोपमा)

सवैया—चपक पात से गात मरारि करोरिक भाइ सुभाइ सवैयतु।
मोमिसि भेटि भटू भरि अंक मयंक ही आनन वोठ अँचैयतु॥
'देव' कहूं जितु बात चले नव नील सरोज से नैन जँचैयतु।
ता रससिंधु गई बुधि बूड़ि न वोहित धीरज कैसे बचैयतु॥६०॥

टीका—यह ऊढा नायिका की विरह दशा है। चंपा उपमान, गात उपमेय, से वाचक तें लुप्ता। मोमिसि०—कहै मोही को जानि मयंक ही आनन कहे मयंक चन्द्रमा कैसो जाको आनन, ताको वोठ को अचैयतु कहै पान करतो

छत्र गुमानहि = गर्वरूप छत्र को। चाय = सोने से मढ़े हुए। चौंर ढरे = चँवर डुल रहे हैं। बर सो = (१) वर दूल्हा-जैसे (नीके लसो से अन्वय है), (२) पानी बरसाओ (घन से अन्वय है)। रॉचत = अनुरक्त। जाचत = याचना करते हैं। रावरी = आपकी ॥५९॥

सवैयतु = बढ़ाते हैं। वोठ = ओठ। जँचैयतु = प्रतीत होते हैं। वोहित = नाव ॥६०॥

है। चन्द मुख ते रूपक अभेद। मयकहि—कहै जाने मुख चद्र म है। नव नाल सराज म नैन० नीलता धम, कमल उपमान, नेत्र उपमेय, से वाचक ते पूर्णोपमा। ता रस निधु में पूर्णोपमा ॥ ०॥

(लुप्तोपमा-पूर्णोपमा-प्रतीपादि)

दडक—फटिक सिलान सो सुधारा सुधा मन्दिर,
उदधि दधि का सी अधिकाई उमगी अमद।
बाहेर त भीतर लौं भीतिन देखाई देत,
दूध कैसे फेन फैला आँगन फरसबन्द।
तारा सी तरुनि तामें ठाढी झिलमिलि होत,
मोतिन की जोति मिल्यो मल्लिका को मकरन्द।
आरसी सी अबर में आभा सी उज्यारी लगै,
प्यारी राधिका को प्रतिबिंब सो लगत चन्द ॥६१॥

टीका—यह राधा जी के अग की गोराई बरनन है। सुधा कहे बनाए हैं मदिर, उदधि दधि उदधि कहे समुद्र गाय कहै तहा कैसे आभा अधिक है इ धाम की। तारा सी तरुनि लुप्तोपमा धम बिना धमलुप्ता। आरसी सी अबर मे आभा, याते पूर्णोपमा। आरसी उपमान, सी वाचक, आभा धम, अग उपमेय। राधिका के प्रतिबिंब सो चन्द लागत है, याते उपमान के निरादर ते प्रतीप ॥ ६१॥

(लुप्तोपमा-रूपक-उत्प्रेक्षा)

सवैया—हेलिनि पेखिबे के मिसु सुदरि कठि के भौन मे पेठि पठाई।
बाल वधू बिधु सो मुख चूमि लला उठ सी उतिया मे लगाई ॥
राजत लोल कपोलनि में झलकै जल दीपति दीप की झाई।
आरसी मे प्रतिबिंबित है मनो 'देव' दिवाकर देत देखाई ॥६२॥

टीका—बाल वधू०—बिधु सो मुख० बिधु चद्रमा उपमान, सो वाचक, मुख उपमेय, धम नहा याते धम लुप्ता। राजत पद०—जल दीपति दीप की रूपक, आरसी मे प्रतिबिंबित यह उत्प्रेक्षा ॥६२॥

(लोकोक्ति-दीपकावृत्ति-परिवृत्ति)

दडक—हाथी दे निशक काहू अकुश को नाद कीन्हो,
सो पहचानो साचो प्रिय प्यारे बिठुरावती।

सुधामन्दिर = अमृतप्रासाद, चूना पुते महल। उदधि दधिका = दधिसमुद्र। भीतिन = दीवालो में। फरसबन्द = बिछाने का वस्त्र ॥६१॥

हेलिनि = सखियो ने। पेखिबे के मिसु = दपन के बहाने। पेठि = ठेल कर ॥६२॥

आजु की मिलाप की अवधि करी सौंहैं नहीं,
होति एहो साँहैं भौंहैं सतरावती।
कहा करो लाज आज मदन गोपालजू सो,
मदन बलाइ 'देव' मदन दुरावती।
कंचन सो तन दैकै मानिक सो मन लैकै,
चंद सो बदन चंदमुखी क्यों चुरावती ॥६३॥

टीका—हाथी दै निसक० 'हाथी निशंक दे डारै अंकुश देने में सोच' यह लोक कहनावति ते लोकोक्ति। आजुकी मिलाप की आज मिलिवे को सौंहैं कहै शपथ खायो, अब भौंहैं सौंहैं कहै सम्मुख नहीं करती। सौंहैं साँहैं पद अर्थ और है शब्द एक अर्थ और ते दीपकावृत्ति। कंचन सो पद०—कंचन कहै सोना ऐसो तन दे कै मानिक कहै मनि ऐसो मन लाजै, कछु दैकै कछु लैबो परिवृत्ति अलंकार। चंद सो बदन चंद उपमान, सो वाचक, बदन उपमेय, धर्म बिना धर्म लुप्ता ॥६३॥

(रूपक-अर्थान्तरन्यास-विकस्वर)

दंडक—आगे धरि अधर पयोधर सधर जानु,
जोरावर सघन जवन लरे लचि कै।
बार बार देत जैतवारन को बकसीस,
बारन को बाँधे जे पछारी दुरे बचिकै।
उरनि दुकूल दै उरोजनि को फूल माल,
ओठनि खवाए पान पाए धाए बचिकै।
'देव' कहै आजु यहि जीतो है अनंग रिपु,
पीके संग संगर से रति रंग रचि कै ॥६४॥

टीका—यह नायिका को सुरत बरनन है। आगे धरि अधर पयोधर सधर जान जेसे आगे सिपाही हरवल फोज कर लडते हैं। तैसे अधर ओठादिक रूपक। बार बार०—बार बार कहै [फिरि] फिरि जैतवार कहै जीतन हारे को बक्सीस कहै इनाम देते हैं। जेतवार सामान्य नामते अर्थान्तरन्यास है। बारन को बाँधे जे०—रति समै में बार छूटि जात सुरत के पीछे जो बाँधत है तैसे जे लडाई में कादर होते हैं पाछे छपाइ रहत ते बाँधे जात हैं,

बाद = विवाद झगड़ा। सो पखानो सोचो = वह कहावत याद आयी। सतरावती = सिकोड़ती है या चढ़ाती है। मदन दुरावती = काम को छिपाती है ॥६३॥

इहाँ समान्य है। उरनि को दुकूल, उराजनि को फूल माल, ओठनि को पान पाक यह विशेष रागबरनन तें विकस्वर ॥ ८॥

(स्वभावोक्ति-प्रतीप-उपमा)

सवैया—देखिरी दर्पन दोरि इते रचि आनन मेरो सिंगारे है एहरि।
कंचन हूँ रुचि रंग रुचे नहि मोतिन री लरी मोतन नेहरि॥
'देव' रहे नदि सी उबि छाती का कोन मरी मनिमाल हिए धरि।
भाल मृगम्मद बिंदु बनाइकै इंदु सो माहि गुविंद गए करि॥६५॥

टीका—नायिका को उक्ति सखी सों—हे सखि दर्पन दोरि और गोरि गोरि आय रुचि कहै श्रृंगार कार मेरो आनन सिंगारि कहै अनाभिल करि गए, कंचन मानाहू की रुचि और मोतिन की लर मेरे तन की ज्ञान का समानता नहीं पावै हैं। उपमान का तूलना त प्रतीप अलंकार। काऊ कोटि उपाय करि मनिमाल मेरे हिय पै धरि छाती की शोभा मिटाया चहै। छाती की उबि दबिसी रहे है छाती की छवि उपमेय, दवि उपमान, सी वाचक, दबबो धर्म के उपादान त पूर्णोपमा। मेरे भाल में मृगबिंदु बनाय कै गोविंद मोको इन्दु करि गए अर्थात् कलंक रहित मेरो आनन चंद ताको सकलंक करि गए, यह गर्व प्रकाशक व्यंग्य, यातें रूपगर्विता नायिका और याको स्वभाव ऐसो विकल्प को होय है, यात स्वभावोक्ति अलंकार और इंदु सो मोहि गुविंद गए करि, ए में उपमा अलंकार होय है ॥६५॥

कवि—सेनापति (रूपक-व्यतिरेक-प्रतीपादि)

दंडक—देखे तेरे मुख चंद देखो न सुहाइ अरु,
चंद के अछत जाको मन तरसत है।
ऐसे तेरे मुख सों कहत सब कवि एसे,
देख्यौ मुख चन्द के समान दरसत है।
वै तै समुझै न कछु 'सेनापति' मेरे जान,
चंद तें मुखारबिंद तेरो सरसत है।
हँसि हँसि मीठो मीठी बात कहि कहि ऐसें,
तिरछे कटाच्छ कब चंद बरसत है॥६६॥

टीका—चंद मुख उपमान उपमेय ते रूपक। तेरे मुख देखत चंद का देखिबो सुहात नाहीं, उपमान निरादर त प्रतीप। चंद तें मुखारबिंद ते रूपक।

सरि = सदृश। मृगम्मद = कस्तूरी॥ ५॥
अछत = रहते हुए। सरसत है = रस को बढ़ाता है, आनन्द देता है॥६६॥

हँसि हँसि मीठी बात कहै औ तिरछी कटाक्ष से ऐसो चंद मैं कहाँ है, यह व्यतिरेक, वस्तुव्यतिरेकालङ्कार ॥६६॥

(श्लेष-लुप्तोपमा-अपह्नुति)

दंडक—तेरे उर लागिबे को लाल तरसत महा,
रूप गुन बाँध्यो तू न ताको उमहति है।
यह सुनि ससिमुखी ऊतर को देइ जौ लौं,
आइ परी सासु बात कैसे निबहति है।
रूखी जो कहति तौ तौ प्रीति न रहति जो
सनेह की कहै तो सासु डाँटति दहति है।
'सेनापति' याते चतुराई सो कहत बलि
हार करो ताहि जाहि लाल तू कहति है ॥६७॥

टीका—यह दूती को बचन है। तेरे उर लागिबे को लाल कहै कृष्न तरसत है, तेरे रूप गुन में बँधे हैं, रूपगुन समस्तविषयी रूपक। यह सुनि ससिमुखी उपमान, धर्मबाचक लुप्तालङ्कार। ससिमुखी कहै वही नायिका, उत्तर जौलौं देन चाहै तौलौं कहै तब हीं सासु आइगरी है। तौ प्रतच्छ उत्तर देवे कैसे बनै, तौ जुक्ति करि कहै। जाको तू लाल कहै मनि गन कहती है ताहि हार करौगी, इहाँ दूती को प्रति उत्तर में लाल कहै कृष्न, ताहि हार के समान राखौगी, धर्म अन्य थल आरोप तें अपह्नुति, दुइ अर्थ शब्द एक ते श्लेष अलंकार ॥६७॥

(रूपक श्लेषादि-अनन्वय)

दंडक—पेये भली घरी तन सुख सब गुन भरी,
नूतन अनूप मिही रूप की निकाई है।
आछी चुनिआई कैयो पेचन सो पाई प्यारी,
ज्यों ज्यों मन भाई त्यौं त्यौं मूड़हि चढाई है।
पाय गजगति बरदार है सरस अति,
आपै उपमान 'सेनापति' बनि आई है।
प्रीति सो बँधै बनाइ राखै छबि थिरकाइ,
काम कैसी पाग विधि कामिनी बनाई है ॥६८॥

उमहति = चाहती है। ऊतरु = उत्तर। निबहति है = निभती है। बलि = सखि। लाल = रत्न, कृष्ण ॥६७॥

गुन = सद्‌गुण, सूत। निकाई = सुदरता। पेचन सों = प्रयत्नों से, फन्दों से। मूड़हि = सिर में। गजगति = हाथी की चाल, गज (३६ इंच लम्बा नापने का साधन) की गति ॥६८॥

टीका—सब गुन भरा कहे गुन गुन नारी भरी हो, नूतन कहे नवीन, मिही कहे पतील, रूप की निकाइ कहे शोभाभार है, यह पगरी पच्छे। अब नायिका पच्छ—सब गुन भरी कहे सब गुन जो विद्यादि सो भरी, मिही कहे सुक्ष्मांगी। एक शब्द के दुइ अर्थ ते श्लेष अलंकार। पाय गज गति०—पगड़ी पच्छ—गज गति कहे नाप जुत है। नायिका पच्छ—गज कहे हाथी, गति कहे चाल, पाय कहे पग, याते रूपक। आपे उपमान, याते अन्य उपमा अलंकार ॥६८॥

(रूपक-श्लेष-अप्रस्तुतप्रशंसा)

दंडक—पीतम तिहारे अनगन हैं अमोल धन,

मेरो तन जातरूप तातें निदरत हौ।

'सेनापति' पाइ पर बिनती किए हूँ तुम्हें,

दूनो न अदर नीके नेहा को धरत हो।

बाट मैं मिलाइ तोरि तोलो यह बिधि प्यार,

कीन्हो है सुभाव आप नापर अरत हौ।

पीछे डारि अधमन हम दीनो दूनो मन,

तुम्हैं, तुम नाहिं इत पाउ न धरत हौ ॥६९॥

टीका—हे प्रीतम तिहारे अगन अनमोल धन है प्रस्तुत, तामें अप्रस्तुत को अर्थ कहत है कि तुम्हारे बहुत सी नायिका हैं, यामें दोउन नायक, याते अप्रस्तुतप्रशंसा। जो तुम्हारे अगन धन हैं तो मेरे तन जातरूप कहे सोना को निदरे चाहे, सोना मन तें रूपक। बाट में मिलाय—बाट कहे बटखरा जासों सोना तोलो जाय है, यह सोना पक्ष अर्थ। बाट कहे राह में, मिलाइ, एक शब्द के दुइ अर्थ, याते श्लेष। पीछे डारि०—पीछे कहे तिहारे पीछे अधमन कहे आधो मन कहे तनिक जो अन्य नायिका है सो लगाये है, अरु हम दोरी दूनो मन है। दुहुमन अर्थ तोल के है अथवा दूनो मन कहे दुइ मन तन मन दोनों हों, तुम पाउ न धरत हौ कहे पाउ पग नाहीं यहि बार धरत हौ। अथवा पाव भरि को, कहे है कि तुम पावो भरि सनेह नाहीं करते हौ, याते विवृतोक्ति अर्थ है ॥६९॥

(रूपक लुप्तोपमा-श्लेष)

दंडक—बदन सरोरुह के संग ही जनम जाको,

अंजन नयन खंज सोभा परसत है।

अनगन = असङ्ख्य। धन = संपत्ति, प्रेयसी। जातरूप = सुवर्ण। निदरत हौ = उपेक्षा करते हो। बाट = बटखरा (तोलने का), रास्ता। अरत हौ = अड़ते हो। अधमन = दुष्टों (अन्य नायिकाओं) को, आधामन। पाउ न धरत हौ = पाँव भी नहीं रखते हो, पाव (सेर का चौथा भाग) भी नहीं रखते हो॥६९॥

महा रूखो मुनिहूँ को मन चिकनाइ जात,
'सेनापति' जाहि जब नेकु दरसत है।
रूपहि बढावै सब रसिकन भावै मीठो-
नेह उपजावै पै न आप निरसत है।
आली वनमाली मन फूल मैं बसायो तेरे,
तिल है कपोल सो अमोल बिलसत है ॥७०॥

टीका—तिल वरनन। बदन सरोरुह रूपक, नैन खजन सों लुप्तोपमा। महारूखो०—मुनि कै मन रूखो ताहि देखि चिकनात है। मीठो नेह उपजावै०—मीठ कहै मधु, प्रीति उपजावै है अथवा मीठा तेल तिल से बनत, एक शब्द ते द्वै अर्थ, ताते श्लेष ॥७०॥

कवि—तोप (रूपक दीपकावृत्ति-उत्प्रेक्षा)

सवैया-बैठी हुती पलने पर बाल खुले अँचरा नहि जानत सोऊ।
कोक उरोज पै कचुकी लाल विलोकि कै लाल बिलोचन सोऊ॥
सो छवि छाक छक्यौ 'कवि तोप' कहै उपमा यह सुंदर सोऊ।
मानो मढ़ी मुलतानी बनात सो शाह मनोज के गुम्मज दोऊ॥७१॥

टीका—कोक उरोज पै० रूपक अलकार। कचुकी लाल बिलोकि कै लाल, लाल लाल शब्द का अर्थ है, याते दीपकावृत्ति। कचुकी लाल को उत्प्रेक्षा, मानो मुलतानी बनात से, यातें साह काम के गुमज मढो है ॥७१॥

कवि—घनश्याम (लुप्तोपमा निषादादि)

दडक—औसर को पाइ धरे चौसर सो नीलम को,
हार औ सिंगार चारु चोरा की गली गई।
घाँघरो घुमोरो घन कारो घनो घूमै तैसी,
अँगिया अनूप ओप सुषमा मली गई।
आई घनस्याम मे मिलन घनस्याम ही सों,
गए 'घनस्याम' दूनों दुख सों दली गई।
केलि के निकेत को न होत अवलोक शोक,
मीनकेतु धूमकेतु धूमै मै चली गई ॥७२॥

अँचरा = आँचल। छाक छक्यो = नशे में मस्त। मुलतानी बनात = बहुमूल्य वस्त्र। गुम्मज = गोल छत ॥७१॥

चौसर = चार लड़ों वाला। ओप = शोभा। घनश्याम मे = बादलों के अँधेरे में। घनश्याम = कृष्ण। दूनों = बादल और कृष्ण दोनों। मीनकेतु (= काम) धूमकेतु (= अग्नि) = कामाग्नि ॥७२॥

टीका—यह नायिका विप्रलब्धा । घाँघरा घुमारवार कहे कारे घन कैसा घुमड है, याते उपमा । आई घनश्याम मे कहे जब अंधार रहा तब आई, घनश्याम कहे कृष्ण ते मिलन, घनश्याम घनश्याम शब्द एक, अर्थ द्वै, याते यमकावृत्ति । कवि के निकट०—के ते कहे बिहार के मंदिर में नायक को नाहीं देखा तो मानकेतु कहे काम, ताको धूमकेतु कहे आग के धूम में चली जरती बरती चली गई । कामअ नते रूपक । मुख हेत गई दुख पायो, चित चाह ते उलटो भयो, याते विषम होत ॥७२॥

कवि—दूलह (विषम-रूपक-लुप्तोपमा-दीपकावृत्ति)

छंद—उरज उरज धसे बसे उरगह लसे,
बिनु गुन माल गरे धरे छबि छाये हो ।
नैन 'कवि दूलह' सुरात कोकनद भाने,
देखे सुने सुख को समूह सरसाए हो ।
जावक सो भाल लाल पलक में पीक लीक,
प्यारे ब्रजचंद सुचि सूर से सुहाए हो ।
होत है अनीत यहि कोन मीत बसी आजु,
कौन परबसी घर बसी करि आए हो ॥७३॥

टीका—नायिका की उक्ति नायक सों । उरज कुच तुम्हारे उरमें धँसे एसो लखाय परे है । जाके जेह के उर में लसे कहे भूषन किया अभिप्राय यह कि अति प्रेम सों दृढ कुच गहि हृदय में लगायो, ताको छाप इस काल हू में भी मिथ्या न लखात परे है । इहाँ कोमल हृदय में कठोर कुच को दाग ग्रहण करिबो अनुरूप को घटना, याते विषम अलंकार, अरु कठोर हृदय व्यंग्य । बिनु गुन माल अर्थात् मुक्तामाल आलिंगन सों गडि गयो, याते बिनु गुन माल कह्यो, रूपक अलंकार । रात्रि जागरन वश नैन लाल, प्रभात कोकनद को दुख बढायबो व्यंग्य । ब्रजचंद रूपक, कलंक वै साम्य व्यंग्य । सूर से सुहाए हो—सूर उपमान, से वाचक, सुहाइबो धर्म, उपमेय प्रत्यक्षत्व को लोप, याते उपमा अलंकार । आश्चर्य देखात परे है कौन घरवारी के घर, बसी करि आए हो । घरबसी पदावृत्तिदीपकालंकार, यह खंडिता नायिका ॥७३॥

बिनु गुनमाल = बिना सूत की माला । सुराते = अधिक लाल । जावक = पैर का महावर । पीक लीक = पान के पीक की रेखा । अनीत = आश्चर्य । कौन = किधर । घरबसी = घरवाली, गृहिणी ॥७३॥

कवि—दीनदयाल गिरि "परमहंस"

(यथासंख्य-रूपक-चपलातिशयोक्ति-लुप्तोपमा)

दंडक—कूजन न पावै पिक मोर बन बागन मैं,
ठौर ठौर गोपीगन कागन को आदरै।
पथी मधुबन के नृपन के समान व्रज,
मूँदरी करन की बिभूषन बनी गरै।
रावरी उपासी भई बावरी कला सी स्याम,
दच्छिउन निदरि बाम बाम को बिनै करै।
आचरज भारी अब सुनिए बिहारी एक,
बेद की रिचाहू ❀ जोतसी के पाय पै परै ॥७४॥

टीका—ऊधो को बचन कृष्नचद्र सों। हे स्याम रावरी उपासी गोपीगन बावरी सी भई, पिक मोर बन बाग में कूजन नहीं पावै है। पिक बन में और मोर बाग में, पिक मोर बन बाग में यथासंख्य अलकार। और ठौर ठौर कागन को आदर करै है, सगुन सूचन हेतु। मधुबन के पथिक जो कोऊ कार्य्यबश वा मग कढै है नृप के समान आदर करै है, पथिक को नृप करि बर्णा, याते रूपक अलकार। ऐसी छीन भई कि अँगुरी की मूँदरी गरे को बिभूषन की योग्यता अर्थात् गरे में पहिरै है, और दक्षिण नेत्र भुज निदरि बाम को आदरै है, यहाँ भी शुभ सूचक अभिप्रायगभित दोष की प्रार्थना, याते अनुज्ञा अलकार। और हे बिहारी श्री कृष्नचद्र एक यह भारी आश्चर्य सुनिए कि बेद की रिचा है तुम्हारे आगमन हेतु जोतसी के पायन परै है, कलासी पद में लुप्तोपमा अलकार। गोपिन को बिरह निवेदन है ॥७४॥

मूदरी = अँगूठी। करन की = हाथों की। रावरी उपासी = आपकी सेविकाएँ। दच्छिन = दक्षिण दिशा, योग्य। निदरि = तिरस्कार करके। बाम = स्त्री। बाम = उत्तर दिशा, उलटा, विपरीत। बिनै = विनय ॥७४॥

❀ पुराणों में भगवान् श्रीकृष्ण को वेदपुरुष और गोपियों को उनकी ऋचाएँ कहा है, अर्थात् वेद कृष्ण रूप में और ऋचाएँ गोपी रूप में अवतीर्ण हुई थीं (गर्ग संहिता में इसका सविस्तर वर्णन है)। इसीलिये उद्धव कहते हैं जो गोपियाँ स्वयं वेद की ऋचा रूप हैं वे आपके आगमन को पूछने ज्योतिषियों के पास जाती हैं।

कवि—महाराज मानसिंह (रूपक-लुप्तोपमा-श्लेष)

सवैया–प्रथमै बिकसे नव बरी बसंत कै आतन ते मुरझाई हुती।
'द्विज देव जू' ताहू पै दूद सबे बिरहानल ज्वाल जराई हुती॥
यह साँवरे रावरे नेह सो अगन प्यारी न जो सरसाई हुती।
तोपै दीप सिखा सी नई दुलही अवलोकिबे की न बुझाई हुती॥७५॥

टीका—बिकस नव बेतु क सदृश है, आतन कहे बयार से भरो। द्विज देव० बिरहानल ज्वाल ते जरा है, यातें रूपक बिरह आश्रित। यह साँवरे०—हे साँवरे रावरे नेह सों प्यारी सरसाई है, यह नेह पद दुइ अर्थ को व्यंजक श्लेषालंकार। तो पै दीपसिखा सी०—दीप सिखा उपमान, सी वाचक, एक उपमेय बिना उपमेय लुप्ता॥७५॥

(भ्रम-लुप्तोपमा-स्तुतिनिंदा)

सवैया–ए नहिं वाके उरोज लसै कत श्रीफल के फल झूमि झपेटत।
त्यौं 'द्विज देव जू' नाहक ही मुख भौरे घने अरविंद घुरेटत॥
सो तडिता सी मिलैगी तुम्हैं किन लाजन आपनो स्वाँग समेटत।
स्याम प्रबीन कहाइ कहा तुम फूलछरीन भुजान सों भेटत॥७६॥

टीका—यह नायिका के उरोज नहीं हैं श्रीफल के फल हैं, अर्थ यह की नायिका सों नायक को बियोग है, श्रीफल को देखि उरोज बूझा, यातें भ्रांतिमान् अलंकार। सो तडिता सी मिलैगी तुम्हैं०—सो कहै वह नायिका तडिता कहे बिजुली है तुम्हैं मिलैगी, अर्थ काकु करि तुमै न मिलैगी। तडिता उपमान, सी वाचक, उपमेय धर्म को लोप ते उपमेयधर्म लुप्ता। स्याम प्रबीन०—हे स्याम प्रबीन कहै चतुर कहाइ फूलकी छरी भुजा सों भेटत, अर्थ यह को प्रबीन बरनन ते स्तुति निंदा यह करती है कि तुम बडे मूर्ख हो तुम्हैं देह नायिका की ओर फूल की छरी नहीं जानि परे है, यातें स्तुतिनिंदा अलंकार है॥७६॥

(लुप्तोपमा-रूपक दीपकावृत्ति-संभावना)

सवैया–चाहि है चित्त चकोर दवा श्रुति आपनो दाप परोसिनै लै है।
ए दिग अंबुज से अकुलाइ कला बिषबंधु की हाइ अँचै है॥
ऐसी कसामसी मै 'द्विज देव' अली अलि के गन गाइ सुनै है।
ह्वै है सो कौन दशा नन की जो पै भौन बसंत लों कंत न ऐ है॥७७॥

कत = क्योंकर। श्रीफल = बिल्वफल। घुरेटत = समझत हैं। फूलछरीन = फुलझड़ियों को॥७६॥

दवा = अंगार। बिषबंधु = चन्द्रमा। अँचैहै = पी जायँगे॥७७॥

टीका—चित्त चकोर पद ते रूपक अलकार । ए दिग अबुजसे—दिग उप मेय, अबुज उपमान, से नाचक ते धम बिना धर्मलुप्तालकार । ऐसी कमामसी पद०—अली अलि पद ते दीपकावृत्ति । है है सो कौन दशा । है है कौन दशा तन की जौ पै बसंत लौं कत न ऐहैं । जौलौं तौलौं वाक्य तें संभावनालकार । प्रोषितपतिका नायिका ॥७७॥

(रूपक-श्लेष-उत्प्रेक्षा)

दडक—बहि हारे शीतल सुगधित समीर धीर,
कहि हारे कोकिला सँदेशो पचबान के ।
साधन अगाधन बिसानी न कछूक जापै,
कौन गनै भेद पग सीसदान मान के ।
'दिज देव' को सौं कछु मित्र के बिछोह काल,
देखि सकुचाने द्रिग अबुज अयान के ।
भाजोई भभरि सो तौ मान मधुकर आली,
आज ब्याज कज्जल कलित असुवान के ॥७८॥

टीका—शीतल समार, कोकिला बोलि हारे और साधन अगाधन कहे बहु कियो पै कछु न बिसानी कहे कार्य न साध्यो, यातें बिशेषोक्ति । दिज देव की सौ कहे कसम करि कहत हो । मित्र के बिछोह समै सकुचाने द्रिग अबुज, यातें यह अर्थ व्यजित भयो कि मित्र नाम सूर्य्य क अस्त भये कमल सकुचाय है, तैसे मित्र कहे नायक को बिछोह भयो तो नायिका के नेत्र सकुचाने कमल रूपी, यातें मित्र के दुइ अर्थ ते श्लेष, द्रिग अम्बुज ते रूपक । भाजोई भभरि०—कहे भागो हो भभरि कै मान मधुकर, ए आली जो यह कजल जुत कहे सने आँसू नायिका की आँखिन ते गिरे हैं सो मधुकर कहे भौंर होइ, कज्जल कलित आँसु संभाव्यमान पद, याते वस्तूत्प्रेक्षा सिद्धविषया, नायिका कलहा तरिता ॥७८॥

कवि—ग्वाल (रूपक-उदात्त-उत्प्रेक्षा)

दडक—काठी कामतरु तैसे सीधी है सलाक सम,
चाँडी बिश्वकरमै खरादि खुस खासा है ।

बहि = बहकर । पचबान = कामदेव । साधन अगाधन = अन त प्रयत्नों से । बिसानी न कछू = कुछ फल न मिला । सौं = शपथ । मित्र = सूर्य, प्रियतम । अयान = बाला । भाजोई = भागा यह । भभरि = डरकर, घबराकर । ब्याज = बहाने ॥७८॥

चामीकर तारन के जाल करि रग तापै,
चिंतामनि जड़ित जड़ावन को वासा है।
'ग्वाल कवि' नद के लड़ाइते कुँवर जू की,
लकुट लडैती ताकी ताक्यौ मै तमासा है।
मानौ श्री सनेह को समर एक चोपदार,
ता के पानि मजुळ मैं अदभुत आसा है ॥७९॥

टीका—यह कृष्न जी का लकुटी का वरनन है। काठा कहे काठ यह काम तरु, तैसे सीधे साझ कैसे है जेम सलाक, यात रूपक। चामीकर०—चामीकर कहैं चाँदी सोनादिक, चितामनि रतनादिक ऐश्वर्य वर्नन ते उदात्तालकार। मानो०—श्री कहै लक्ष्मी, सनेह कहै प्रीत, समर कहै कामसर चोपदार, ताके पानि कहै हाथ, ताम आसा है यह लकुटा कृष्न के हाथ से जा है, सभाव्यमान पद ते वस्तूत्प्रेक्षा सिद्धविषया अलकार ॥७९॥

(रूपक लुप्तोपमा)

दडक—मोहन बदूकची सुमेर की वदूक बाँधि,
कीन्ही देवतान की सुगज गजखाने मैं।
मारतड तनया सी गोली अनतोली भरि,
वृन्दाबन बिदित वरून सरसाने मैं।
'ग्वाल कवि' मथुरा चमकदार पथरी दै,
गोकुल अनूप कल तुरत दबाने मै।
साज प्रागराज सो दराज ही अवाज होत,
छूटत ही लागै जाय पातक निशाने मै ॥८०॥

टीका—मोहन कहै श्रीकृष्न, बदूकची कहै बदूक को चलावन हारे, सुमेर की बदूक, देवता को गज, यातें रूपक समस्त विषयी। मारतड तनयासी कहै जमुना, सी वाचक, गोली उपमेय, धर्म लुप्त। ग्वाल कवि०—मथुरा चमकदार पथरी, गोकुल अनूप कल कहै कर है, पातक निशान है। पातकनिशाना तद्रूप सम ॥८०॥

काठी = काष्ठ, लकडी। कामतरु = कल्पवृक्ष। चाँडी खासा है = विश्वकर्मा ने जिसे प्रसन्नता से खराद कर कौशल से गढ़ा है। चामीकर = सुवर्ण। चिंतामणि = एक रत्न विशेष, जो सब मनोरथ पूर्ण करता है। जड़ावन = रत्नो। लड़ाइते = प्यारे। लड़ैती = प्यारी। चोपदार = सिपाही। आसा = बल्लम ॥७९॥

सुगज = सुदर गज, बारूद भरनेका डडा। मारतड तनया = यमुना ॥८०॥

(दीपकावृत्ति रूपक असंबंधातिशयोक्ति)

दण्डक—रेवती रमन कीन्हो बसन बिचित्र बेस,
राधिका रवन कीन्हो बपुष रसाल है।
चंद्र मै प्रसिद्ध रूप सोहै रस भूप सम,
लीन्हे चंद्रधर तमोगुन जो कराल है।
'ग्वाल कवि' कमला किए है कर कंजनील,
नीलमनि भूपन बनाए जग जाल है।
मारतंड तनया तिहारो स्याम रंग काम,
रह्यौ मंडि लोकन मे मंडन बिशाल है ॥८१॥

टीका—रेवती रमा कहै बलिभद्र बसन कीन, राधिका रमन बपुष कहै देह कीन। रमन रमन पद, कीन कीन पद, शब्द अर्थ एकई है, तातें दीपकावृत्ति अलंकार। चंद्रमा में कलंक, चंद्रधर महादेव मै तमोगुन, कमला कहै लक्ष्मी के कर मैं नील कमल इत्यादि पदन मैं है जमुना तिहारो रंग मंडित है, एक वस्तु को अनेक ठोर बरनन, तातें विशेषालंकार। सोहै रस भूप सम—सोहै सोभित है, रसभूप कहै शृंगार रस सम, यातें रूपकालंकार है ॥८१॥

(पूर्णोपमा-रूपक-अक्रमातिशयोक्ति)

गोरी गरबीली जाकी गति है गयंद मंद,
गरे मुकुताहल के गजरा मराला वह।
कज्जल कलित दृग ललित लुनाई भरे,
श्रीफल उरोजन पै मृगमद आला वह।
'ग्वाल कवि' रविजा तिहारे नीर न्हाइ आई,
धाई लेन देवन की अवली बिशाला वह।
सीप दीप मृग ए पहुँचि पहिलेई गए,
पाछे स्यामरूप है सिधारी नव बाला वह ॥८२॥

टीका—गोरी गरबीली कहै सुंदरी ऐसी है कि जाकी गति गयंद सी मंद है, यातें पूर्णोपमा। श्रीफल उरोजन पै०—यह रूपक अलंकार। सीपदीप०—मृग पहिलेई पहुँचि गये पीछे स्याम रूपह्वै के वह बाला कहै सुन्दरी सिधारी, यातें अक्रमातिशयोक्ति ॥८२॥

राधिका रवन = श्रीकृष्ण। रसभूप = रसराज, शृङ्गार। चन्द्रधर = शिव जी। नीलमनि = नीलम। मंडि = व्याप्त। मंडन = अलंकरण ॥८१॥

मुकुताहल = मुक्ताफल। लुनाई = लावण्य ॥८२॥

कवि—अयोध्या प्रसाद वाजपेयी (प्रतीप-दीपकावृत्ति रूपक)

दंडक—उड़िगे चकोर मोर खन सिलीमुख जोर,
जंगल गे उरग तुरग मृग द्विपनाह।
झष मारि मन हारि कज कारि बूडे बारि,
ऊपर परीन की परीन की परीन आह।
'औध' अकबाल यो बहाल हरि हाल लाल,
सौति साल वाल चाल राह राह आह आह।
लखत सखत नखत ए तखत भाव,
बखत बलद प्यारी तेरे नैन पातशाह ॥८३॥

टीका—चकोर खंजन आदि लज्जित, ताते प्रतीप। झषमारि०—झष कहैं मीन, कज बूडे बारि। परीन की परीन को०—दीपकावृत्ति अलंकार परीन परीन पद ते व्यंजित है। प्यारी तेरे नैन पातशाह, याते रूपक ॥८३॥

(पूर्णोपमा लुप्तोपमा-दीपकावृत्ति रूपक)

सवैया—तन स्याम घटा सी छटा सी दुकूल प्रकाशत 'औध' बिराजत ही।
बिन देखे छमा सी छमासी पला उपहाँसी की नासी न लाजत ही।
मृदु हाँसी की फाँसी मे फाँसी फिरै सुषमा सी उदासी न साजत ही।
बिषवासी ये गाँसी सिखा सी हिए लगै बसी बिशासी के बाजत ही॥८४॥

टीका—तन स्याम घटा सी है, तन उपमेय, घटा उपमान, सी वाचक, धर्म नहीं है याते धर्म लुप्ता। छटा सी०—छटासी दुकूल छटा कहै बिजुली प्रकाशत कहै चमकत है, चमक धर्म ते पूर्णोपमालंकार। बिन देखे पद०—छमासी छमा सी पद ते दीपकावृत्ति। मृदुहाँसी०—कहै मंद हाँसी की फाँसी मे फँसी कहै बझी फिरै है, याते रूपक। विषवासी०—बिषवासी कहै माहुर जामैं बसो है, ऐसी बसी बोलती कि उर मे लागत ही कहै सुनते ही दुःख उपजै है ॥८४॥

सिलीमुख = भ्रमर। द्विपनाह = गजराज। झष = मीन। कजकारि = कमलों को काढ़कर। परीनकी आह = अत्यन्त सुन्दरी परियाँ भी आह भरने लगीं। अकबाल = प्रताप, सौभाग्य। साल = दुःख। बलद = ऊँचा, श्रेष्ठ ॥८३॥

छमा = दुबली। छमासी = छ मास का समय। पला = एक पल। बिषवासी = विषभरी। गाँसी = बर्छा। उपहाँसी = उपहास, निन्दा। बिशासी = विश्वासघाती ॥८४॥

कवि—सरदार (रूपक-दीपकावृत्ति-उल्लास-अलंकार)

दडक—खेलै लगे खेल री खुशाल खोटे खजरीट,
राजहस बस ते प्रसश परसै लगे।
गुजि गुजि मालतीन पै मलिंद बृद बृन्द,
कज मकरद बारे बुद बरसै लगे।
'कवि सरदार' काश कुसुम कसाईं कूर,
शरद ससाई के दरस दरसै लगे।
वोज मन मजुल मनोज बरसै री बैरी,
सर सर सरन सरोज सरसै लगे ॥८५॥

॥ इति श्री दिग्विजयभूणनामक ग्रथे गोकुलकायस्थविरचिते
अक्रमससृष्टिवर्णन नाम नवम प्रकाश ॥९॥

टीका—यह अनुशयाना नायिका की उक्ति है। खेलै कहै फिरै लगे, खुशाल कहै खुसी है कै, खोटे खजरीट कहै खञ्जन, राजहस कहै मराल, जिहरै लगे अर्थ की बरषा बिगत देखि सरद रितु जानि माद भई बिहरै है। कवि सरदार पद०—सरदार कवि की उक्ति है कि काश कुसुम काश फूलते देखि सँकेत अभाव भयो है, जब काश में फूल फूलत है तब पुरजन काटि डारत है, याते नायिका को दुःख दरसायो। रितु के गुन ते दोष, ताते उल्लास अलकार भयो। काश कुसुम कसाईं कूर पद तें रूपक अलकार। सर सर पद०—सर सर कहै ताल ताल में सरोज कहै कमल सरसै लगे कहै अधिकान लगे। सर सर पद शब्द अर्थ एकई है, ताते दीपकावृत्ति ॥८५॥

इति श्रीदिग्विजयभूषणनामग्र थे गोकुलकायस्थविरचिते टीकायाम्
अक्रमसंसृष्टिवर्णन नाम नवम प्रकाश ॥९॥



खुशाल = प्रसन्न हुए। खजरीट = खजरीट पक्षी। मलिंद = भौंरे। शरद ससाई = शारदीय चाँदनी ॥८५॥

दशमः प्रकाशः

(क्रम से संसृष्टि)

दोहा—तिल तंदुल से जहँ प्रगट, अलंकार बहु रूप।
क्रम सों एक कवित्त मे, उत्तम रीति अनूप ॥ १ ॥

टीका—तिल तंदुल०—कहै तिल अरु चाउर जेहि भाँति मिले पर देखि परै है तैसे बहुत अलंकार एक मैं मिले भिन्न देखि परै है, ताहि संसृष्टि अलंकार कहै हैं। क्रम सों कहैं आदि अंत अलंकार को निर्वाह होइ, जैसे पूरन उपमा, ताके पाछे लुप्तोपमा ताके पाछे जो अलंकार होइ सो निरखै, ताहि क्रम संसृष्टि कहिये। तासों अलंकार गनना कहै संख्या उचित है ॥ १ ॥

(अलंकार गणना)

दोहा—पूरन उपमा लुप्त कहि, अनन्वयालंकार।
फिरि उपमानोपमेय है, पाँच प्रतीप विचार ॥ २ ॥
षट् रूपक परिनाम यक, द्वै उल्लेख निचारि।
सुमिरन भ्रांति संदेह त्रै, छईउ अपह्नुति धारि ॥ ३ ॥

टीका—पूर्णोपमा एक, लुप्तोपमा आठ, उपमानोपमेय एक, प्रतीप पाँच। रूपक भेद षट्, परिनाम एक, उल्लेख दुइ, सुमिरन भ्रम संदेह तीनि, अपह्नुति भेद षट् ॥२–३॥

शुद्धापह्नुति हेतु कहि, परजस्ता को ठानि।
भ्राता–छेका–कैतवापह्नुति षटौ बखानि ॥ ४ ॥

टीका—शुद्धापह्नुति, हेत्वपह्नुति, पर्यस्तापह्नुति, भ्राता छेका कैतवापह्नुति ॥ ४ ॥

उत्प्रेक्षा षट भेद है, बस्तु हेतु फल होइ।
रूपकाति सापह्नवा, भेदकाति कहि सोइ ॥ ५ ॥
संबधातिसयोक्ति कहि, असंबध सै उक्ति।
अक्रमाति चपलाति है, अत्यंतातिसयोक्ति ॥ ६ ॥

टीका—उत्प्रेक्षा षट्—बस्तु, हेतु, फल, उक्त, अनुक्त, सिद्ध, असिद्ध। अति-

शयोक्ति आठ—रूपकातिशयोक्ति, सापह्नवति०, भेदकाति०, सबधाति० असबधाति०, अक्रमाति०, चपलाति०, अत्यतातिशयोक्ति ॥५-६॥

तुल्यजोगिता तीनि है, दीपक एकै भाँति।
तीनि दीपकावृत्ति है, पदहि अर्थ त्रैजाति ॥७॥
प्रतिबस्तूपम एक है, दृष्टांतौ कहि एक।
तीनि प्रकार निदर्शना, यक बितरेक बिबेक ॥८॥

टीका—तुल्य जोगिता तीनि, दीपक एक, दीपकावृत्ति तीन, प्रतिवस्तूपमा एक दृष्टात एक, निदरशना तीनि, व्यतिरेक एक ॥ ७,८ ॥

एक सहोक्ति, बिनोक्ति द्वै, समासोक्ति है एक।
परिकर, परिकरअकुरौ, त्रै श्लेष बिबेक ॥९॥
अप्रस्तुतप्रसस यक, प्रस्तुतअकुर एक।
पर्यायोक्ति व्याजोक्ति द्वै, त्रै निषेध धरि टेक ॥१०॥

टीका—सहोक्ति एक, बिनोक्ति द्वै, समासोक्ति एक, परिकर एक, परिकर अकुर एक, श्लेष तीन, अप्रस्तुप्रशसा येक, प्रस्तुतअकुर एक, पर्यायोक्त, व्याजोक्ति द्वै, निषेध तीनि ॥९,१०॥

एक बिरोधाभास है, षट बिभावना जानि।
बिशेषोक्ति है एक ही, एक असभव ठानि ॥११॥
बिषम असगति सम त्रिबिध, एक बिचित्र प्रवीन।
अधिक दोय यक अल्प है, एक अन्यौना कीन ॥१२॥

टीका—बिरोधाभास एक, बिभावना षट्, बिशेषोक्ति एक, असंभव एक, विषम तीनि, असंगति तीनि, चित्र एक, अधिक दोइ, अल्प एक, अन्योन्या एक ॥११,१२॥

त्रै बिशेष व्याघात द्वै, कारनमाला येक।
एक यकावलि जानिए, मालादीपक एक ॥१३॥
जथासख्य यक, सार यक, परजाया द्वै रूप।
परिबृत्त यक, परिसख्य यक, एक बिकल्प अनूप ॥१४॥

टीका—विशेष त्रै, व्याघात द्वै, कारणमाला, एकावलि, माला दीपक, यथा संख्य, सार एक एक, परजाय द्वै, परिबृत्ति, परिसख्या, विकल्प एक ॥१३-१४॥

दोइ समुच्चै बरनिए, कारकदीपक येक।
यक समाधि, प्रतिनीक यक, काव्यार्थापति एक ॥१५॥

काव्यलिंग यक बिधि कही, यक अर्थान्तर न्यास ।
यक बिकसर प्रौढोक्ति यक, संभावन यक भास ॥१६॥

टीका—दोइ समुच्चं, कारकदीपक, समाधि, प्रत्यनीक, काव्यार्थापत्ति एक काव्यलिंग, बिधि, अर्थान्तरन्यास, बिकसर, प्रौढोक्ति, संभावना एक एक ॥१५,१६॥

मिथ्याध्यवसित एकई, एक ललित को जानि ।
तीनि प्रहर्षन कहत कबि, एक बिषाद बखानि ॥१७॥
चारि भाँति उल्लास है, येक अवग्या होय ।
येक अनुग्या लेस द्वै, मुद्रा एकहि सोय ॥१८॥

टीका—मिथ्याध्यवसित, ललित एक, प्रहर्षण तीनि, बिषाद एक, उल्लास चारि, अनुग्या एक, अवज्ञा एक, लेस द्वै, मुद्रा एक ॥१७,१८॥

रत्नावलि, तद्गुन सु यक, पूर्वरूप द्वै भाँति ।
येक अतद्गुन अनुगुनो, मीलित एकहि जाति ॥१९॥
सामान्या, उन्मीलितौ, औरो येक बिशेष ।
गूढोत्तर, चित्रोत्तरौ, सूक्षम, पिहित परेष ॥२०॥

टीका—रत्नावलि, तदगुन एक, पूर्व रूप द्वै, एक अतद् गुन, अनुगुन, मीलित एक, सामान्य, मीलित, विशेष, गूढोत्तर, चित्रोतर, सूक्षम, पिहित एक एक ॥१९,२०॥

व्याजोक्तिक, गूढोक्ति कहि, बिबृतोक्ति, यक जुक्ति ।
लोक उक्ति, छेकोक्ति यक, बक्रोक्तिक द्वै, उक्ति ॥२१॥
स्वभावोक्ति, भाविक कही, है उदात्त द्वै सोइ ।
यक अत्युक्ति, निरुक्ति यक, प्रतिषेध, बिधि दोइ ॥२२॥

टीका—व्याजोक्ति, गूढोक्ति, बिबृतोक्ति, जुक्ति, लोक उक्ति, छेकोक्ति एक, वक्रोक्ति द्वै, स्वभावोक्ति, भाविक एक, उदात्त द्वै, अत्युक्ति, निरुक्ति, प्रतिषेध एक, बिधि द्वै ॥२१,२२॥

हेतु अलंकृत दोय बिधि, कबि कुल पावन जानि ।
कहै एक सै आठ लिखि, चंद्रालोक बखानि ॥२३॥

टीका—हेतु दोइ, एते आदि दै एक सै आठ अलंकार हैं ॥२३॥

रस राजा सिंगार रस, उचित विभूषन ताहि।
रच्यौ अलङ्कृत जे सकल, रस सिंगार के माँहि ॥२४॥

टीका—तिनको राजा शृंगार रस, ताको भूषन अवश्य उचित, यातें भूषन स्थानीय अलंकार द्वै विधि कबिन बनायो ॥२४॥

(भाषा-भूषन)

दोहा—बाचक धर्मरु बर्ननिय, जहँ चौथो उपमान।
यक बिनु द्वै बिनु तीनि बिनु, उपमा[१] लुप्त बखान ॥२५॥

टीका—उपमान, उपमेय, बाचक, धर्म, इनके मध्य एक अथवा द्वै अथवा तीनि न होयबे के कारन आठ भेद लुप्तोपमा के होत हैं ॥२५॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

(अथ पूर्णोपमा, वाचकलुप्ता, धर्मलुप्ता, धर्मवाचक-लुप्ता, उपमेयलुप्ता, बाचकोपमेयलुप्ता, उपमानलुप्ता, वाचकोप-मानलुप्ता, धर्मोपमानलुप्ता, धर्मोपमानवाचकलुप्ता)

दंडक—मंद मंद गति के गयंद की सी मंजु पुंज,
काकली रसीली बैन कढ़ै मुख जाके हैं।
जाँघ केदली सी लखि कीन्हे हैं बखान 'बृज',
मृगपति लंक अंक बंक भौंह ताके हैं।
अधर अरुण सोहैं वोप हैं उरोज ऐसे,
नारि मृगनैनी हाव भाव सुषमा के हैं।
रंभा है निबाहैं नेह दीपति बिलास देह,
छबि ते प्रकाशैं गेह रूप बनिता के हैं ॥२६॥

टीका—मंद धर्म, गति उपमेय, गज उपमान, सी बाचक, याते पूरन उपमा। काकली उपमान, रसील धर्म, बैन उपमेय, बाचक[१] लोप। जाँघ उपमेय, केदली उपमान, सी बाचक, यातें धर्म[२] लोप। मृगपति उपमान, लंक उपमेय, धर्मबाचक[३] लोप। बंक धर्म, भौंह उपमेय, उपमानबाचक[४] लोप। अरुण धर्म,

---

१—भाषाभूषण में १-'है' २-'लुप्तोपमा प्रमान' यह पाठान्तर है।

गयंद = हाथी। काकली = मधुर ध्वनि। केदली = केला। लंक = कमर। बंक = बक्र, टेढ़ी। वोप = ओप, आभा। दीपति = दीप्ति, कांति ॥२६॥

अधर उपमेय, सो वाचक, उपमान लोप। उरोज उपमेय, सो वाचक, धर्म उपमान लोप। हेमलतिका सी उपमेयधर्म लोप। रभा उपमान, नह निबाहे धर्म, सी वाचक, यातें उपमेय लुप्त। और रभा मी निबाहे नेह व्यंग्य। रभादि नेमा गनिका इन्द्र की, यातें गनिका नेमा ॥२॥

(अनन्वय-उपमेयोपमा-पाँचो प्रतीप)

दडक—उपमा न आन तो सों तुही उपमान नैन,
कन के बखान कज लोचन से रति की।
बने हैं कपोल से अमोल आदरस गोऊ,
सुने कल बोल लज बीना बानी मति की।
गरब करति कहा मुख की छबीली बलि,
देखे छपाकर छबि छाजे आभा अति की।
नैन के निरीछन स मद भए मैन बान,
मद गति आगे न प्रभा गयन्द गति की ॥२७॥

टीका—उपमा न तोसों उपमान तुही याते अनन्वय। जहाँ उपमेय उपमान ह्वै जाइ नेन कज सें और कज नेन स, पर्याय से उपमानोपमा, यातें उपमेयोपमा।

दोहा—उपमा लागै परसपर, सों उपमानुपमे[2] ॥

कपोल सें आदरस बने, यातें प्रतीप प्रथम, जब उपमेय सों उपमान कीजै। कल बोल सुने बीना लजे, उपमान जहाँ समता लायक नाहि चोथो प्रतीप। गरब कहा करती अपने मुख का छिपा कर का देखो उपमेय को आदर जहाँ

१—अनन्वय—लक्षण देखिये टि० पृ० ५३। उपमेयोपमा अलकार वहाँ होता है, जहाँ उपमान और उपमेय दोनों को क्रमश उपमेय और उपमान बनाया जाय। जैसे उक्त पद में 'कज नैन सदृश हैं और नैन कज सदृश हैं' इस प्रकार कज और नेन दोनों क्रम से उपमान और उपमेय बन जाते हैं।

यहाँ यह विशेष द्रष्टव्य है कि अनन्वय में एक ही पदार्थ उपमान और उपमेय दोनो होता है। इसमें दो भिन्न भिन्न पदार्थ परस्पर उपमानोपमेय होते हैं जो तीसरे किसी पदार्थ से उसके सादृश्य का व्यवच्छेद कराते हैं यही भेद है। प्रतीप, देखिये टिप्पणी पृष्ठ ८८।

कज = कमल। आदरस = दर्पण। कलबोल = सूक्ष्म मधुर ध्वनि। बानी = सरस्वती। छपाकर = चन्द्रमा। निरीछन = निरीक्षण, देखना। मैन = कामदेव ॥२७॥

२—भाषा भूषण ४।४७।

उपमान सें न होय दूसरो प्रतीप। "दोहा—उपमा से उपमेय को, आदर जहं न होय ॥" नैन के निहारे तेरे मैन बान मंद, अन आदर उपमेय ते उपमान को तीसरो प्रतीप। तेरे गति आगे गयद चाल की कुछ शोभा नाहीं उपमान उपमेय आगे व्यर्थ होय तहाँ। "दोहा—व्यर्थ होय उपमेय से जहाँ देखि उपमान" पञ्चम प्रतीप ॥२७॥

(रूपक षट)

कवित्त–आनन अमंद इंदु इंदु ते अधिक सदा,
आभा अभिराम रातौदिन यक ठान के।
उपजे न सिंधु ते हैं विद्रुम अधर लाल,
हीरा है दसनजोन्ह मंद मुसकान के।
तीक्षन नयन एई ईक्षन हैं मैन बान,
अधिक करत बिन मारत कमान के।
आली है मराली पय सभव न मानसर,
चाहत न मुकतान बानि पहिचान के ॥२८॥

टीका—आनन इंदु इंदु ते अधिक, तातें अधिक तद्रूप। अधर विद्रुम पै समुद्र से नहीं, यातें न्यूनतद्रूप। हीरा है दशन समतद्रूप। जोन्ह मुसकान सम अभेद रूपक। नैन, ए हैं मैन बान बिना कमान यातें, अधिक अभेद रूपक। यह मराली मानसर की नहीं यातें निउन अभेद रूपक।

दोहा—है रूपक द्वै भाँति को, मिलि तद्रूप अभेद।
अधिक निउन सम दुहुन में, तीनि तीनि करि भेद ॥

और मुकता नहीं चाहै याते स्वकीया व्यंग्य है ॥२८॥

(परिणाम दोनो उल्लेख-स्मरण-भ्रम-संदेह)

दंडक—नैन अरबिंद सों बिलोकती हो जाको जब,
पति जानै प्रीति मैं अनीति सौति जानै री।

१—भाषा भूषण ४।४९। २—भाषा भूषण ४।५३।

अमंद = पूर्ण प्रकाशमान। दसन जोन्ह = दन्तकान्ति। ईक्षन = दृष्टि। कमान = तीर। मराली = हंसी। मानसर = मानससरोवर। मुकुतान = मोतियों को। बानि = स्वभाव, आदत ॥२८॥

३—परिणाम का अर्थ है परिवर्तन। जब स्वयं किसी कार्य को करने में असमर्थ हुआ उपमान, उपमेय रूप में परिणत होकर कार्य करे तो परिणाम

गोरि की गुराई गिरा गुन भारती की छवि,
बानि कुलकानि 'वृन्द' कानिद बखानैरी।
ऐरी मेरो सीख लेरी छोड़ि मान चलै तरी,
वैतो लखि सुधाधर सुधि तरी आनैरी।
मुख मंजु कंज जानि घेरिहैं मलिन्द वृन्द,
चंद्रमा की चंद्रमुखी चके चकरानैरी ॥२९॥

टीका—नैन अरबिंद सें दखात है, नैन कंज ह देखन क्रिया त परिनाम करै, क्रिया उपमान हे वणनाय परिनाम। पात प्रीतमै जाने, सौति अनाति जाने, सो उल्लेख, जो एक को बहु समुझ बहु राति। गोर आदि बहुत गुन बहुविधि बरनै एक को, सो दूसर उल्लेख। वैतो चन्द्रमा को लखि तेरी सुधि करत, तात मान छाडि चले, सुमिरन। आर चलत म मुख कंज जानि घेरहै भ्रम। और चद्रमा को चद्रमुखी चकरा चाक है, यात सदेह। नायिका मानिनी। "सुमिरनै भ्रम सदेह, यह लक्षन नाम प्रकाश" ॥२९॥

(शुद्धा-हेतु-पर्यस्ता-भ्रांति-छेका-कैतवापह्नुति)

कवित्त—लाली दिग होय नाहिं सौत भाल लाल बिंदु,
तीछन छपाकर न रैनि रबि आगि है।
होइ न सुधाधर सुधाधर है सौतिमुख,
जाहि लखि स्याम छोड़ि धाम अनुरागि है।
चढो तन ताप ज्वर होइ न मनोज दाप,
बेध करै हिय तीर न समीर लागि है।
शीतल सलिल मिसु हीतल जरावै हाइ,
बिष बरसावै मेघ कहो कहाँ भागि है ॥३०॥

अलंकार होता है। जैसे 'नैन अरबिंद सों विलोकती' पद में उपमान अरविन्द स्वय विलोकन में समर्थ नहीं, अत उपमेय नैन में परिणत हो गया और नैन अरविंद सो कहा। देखिये टि०—उल्लेख पृ० ४९, स्मरण पृ० ८०, भ्रम-पृ० ६४, सदेह पृ० ७३। १—भा० भू० ४।६०।

गुराइ = गोरापन। कुलकानि = वंश मर्यादा। सुधाधर = चन्द्रमा। मलिदवृंद = भ्रमर समूह। चके = शंका करेंगे ॥२९॥

दिग = दिशाओ में। छपाकर = चन्द्रमा। रैनि = रात्रि में। सुधाधर = अमृतयुक्त, चन्द्रमा। मनोजदाप = कामाग्नि का संताप। समीर = वायु। मिसु = बहाने ॥३०॥

टीका—यह नायिका बियोगिनी चंद्रोदय की लाली देखि कहै है कि यह दिशा की लाली नहीं,यह सोति के भाल को बिंदु लाल है, धर्म ललाइ आरोप तें शुद्ध अपह्नुति । "धर्म दुरै आरोप तें शुद्धापह्नुति जानि ॥" ताछन उपाकर०—रैनि में रवि नहीं होय है, तब सखी कहो क्या है ? आगि बतायो, अर्थात् समुद्र से उठी बड़वानल की ज्वाल दखि परै है । हेतु तोछन आगि में ठहरायो चन्द्रमा को छपायो, याते हेतु अपह्नुति । 'वस्तु दुरावै युक्ति सों हेतु अपह्नुति होइ ॥" होइ न०—यह सुधाधर न होइ, सुधाधर सौति मुख, जो पान करि स्याम हमे छोड़ै, सुधाधरपनो सोति मुख में ठहरायो, यात पर्यस्तापह्नुति । "परजस्त जु गुन और के और विषे आरोप ॥" चढ़ो तन०—तन तापज्वर, सखी कहो न मदनदाप है, यात भ्रांति अपह्नुति । "भ्रांतैं अपह्नुति बचन सों भ्रम जब पर को जाय ॥" बेध करै०—बेध किये हीं कों, सखी तीर कहो, नायिका कहो न समीर लागे है, यातें छेकापह्नुति । "छेकापह्नुति जुक्ति करि पर सों बात दुराय ॥" शीतल जल मिसु मेरे हिय कों जरावै, तो मेघ बिष बरसावै । जहाँ साँची बात को छिपावनो तहाँ कैतवापह्नुति । "कैतापह्नुति एक मिसु करि बरनन कवि आन" इति ॥३०॥

(छइउ-उत्प्रेक्षा)

दंडक—मंद मंद चलै मानो जोबन के भार ही तें,
समता न गति याते हंस छोड़े मानसर ।

१—भा० भू० ४।६२ । २—भा० भू० ४।६३ । ३—भा० भू० ४।६४ । पर्यस्त का अर्थ है प्रक्षिप्त अर्थात् फैंका हुआ । जहाँ एक वस्तु का धर्म दूसरे पर फैंका जाता है अर्थात् आरोप किया जाता है, वहाँ पर्यस्तापह्नुति होती है । इसमें धर्मवाला शब्द प्राय दो बार प्रयुक्त होता है, जैसे 'सुधाधर' पद उक्त पद में दो बार आया है ।

४—भा० भू० ४।६५ । उपमेय में होनेवाली उपमान की भ्रांति का जहाँ उक्ति से निवारण किया जाय, वहाँ भ्रान्तापह्नुति होती है । जैसे उक्त पद में काम जन्य दाह में जो साधारण ज्वर की भ्रान्ति हो गई थी उसका निवारण किया गया है ।

५—कैतव का अर्थ है छल या बहाना । जहाँ एक के बहाने से अन्य का वर्णन किया जाय अर्थात् वास्तविकता को छिपाया जाय, वहाँ कैतवापह्नुति होती है । जैसे उक्त पद्य में "मेघ जल नहीं विष बरसा रहे हैं ।" कह कर जलवर्षण की वास्तविकता छिपाकर उसमें विषवर्षण का आरोप किया है, और हृदय के जलने से उसे पुष्ट किया है ।

लंक छीन करिबे को बिधि कै नितंब पीन,
देह सम होन सोन तप कै अनल जर।
हरी सारी परी है उरोज पर न्हात नारि,
दबे मानो कलिका सरोज पुरईन तर।
खेलै सरसी मे 'बृज' कर तें पसारे मुख,
धोवत कलंक कंज मानहु मयंक कर॥३१॥

टीका—मद गति चलै मानो जोबन के भार ते। जोबन के भार ते मन्द चलनो अहेतु, ताहि हेतु मान, याते हेतूत्प्रेक्षा। जोबन को भार सिद्ध है, तातें सिद्धास्पदा हेतूत्प्रेक्षा। अरु समता गति हंस न पाए, यातें पावस में मानस त्यागे, गलानि आई, यह अहेतु। वै तो स्वभाव ही पावस में त्यागते हैं, याते दूसरा हेतु, गतिसमता चाह सो असिद्ध, याते असिद्धास्पदा हेतूत्प्रेक्षा। "जहँ अहेतु को हेतुहि मान। हेतूत्प्रेक्षा द्विविध बखाने॥" लंक छीन करिबो, यातें नितम्ब को बढाय बिधि यह फल पाइबे को। "जहाँ अफल कों फलकरि मानै। फल उत्प्रेक्षा द्विविध बखाने॥" कटि छीन नितंब पीन स्वत सिद्ध है, यातें सिद्धास्पदा फलोत्प्रेक्षा। और देह समता होन सोन तप करै है। समता होन फल सो नहीं, सोन तो सदै जरत है। समता होन चाह असिद्ध, यातें असिद्धास्पदा फलोत्प्रेक्षा। और हरी सारी उरोज पर परी है। हरी सारी सिद्ध बस्तु। पुरइनि के पात तर कली दबी है, यह आस्पद संभावना करिबे को बस्तु है, यातें उक्तविषया बस्तूप्रेक्षा। धोवत०—कंज मयंक के कलंक मुख को कर सों धोवत, बस्तु संभावना और कंज चंद्रमा को कलंक धोइबो असिद्ध, यातें असिद्ध विषया बस्तूप्रेक्षा। भाषाभूषन—

दोहा—उत्प्रेक्षा संभावना बस्तु हेतु फल लेषि।
बस्तु द्विविध उक्तास्पदा अनुक्तास्पदा पेषि॥

उत्प्रेक्षा तीनि—हेतूत्प्रेक्षा, फलोत्प्रेक्षा, बस्तूप्रेक्षा। सिद्धास्पदा, असिद्धास्पदा, हेतूत्प्रेक्षा। सिद्धास्पदा असिद्धास्पदा, फलोत्प्रेक्षा। सिद्धविषया, असिद्ध विषया बस्तूप्रेक्षा। जाहि विषय संभावना को जसो आस्पद संभावना संभाव्यमान पद। इति॥३१॥

मानसर = मानस सरोवर। लंक = कमर। सोन = सुवर्ण। तपके = तपस्या करता है संताप सहता है। अनल जर = अग्नि में जलकर। सरोज पुरइनि तर = कमल बेलि के नीचे। सरसी = अल्प सरोवर। मयंककर = चन्द्रमा का॥३१॥

(संबधाति०, भेदकाति०, सापह्नवा रूपकाति०, असबंधाति०, अत्यताति०, अक्रमातिशयोक्ति)

दडक—सोनबेली साजि चली स्याम के मिलन हेत,
अग को सुगध भरो बाग बन जान तें।
औरई बिलास हाँस औरै छबि आस पास,
सुधा भरे मुख सुधा इदु मे बखानतें।
गात रूप देखे सनोमान कब जातरूप,
चद ह्वै दुचद पहिले ही जीति ठानतें।
पाछे कुज सून पाए साथै दु ख दून पाए,
छिगुनी के छला 'बृज' बिछलै भुजान तें ॥३२॥

टीका—सोनबेली साजि चली, सोनबेली केवल उपमान तें रूपकातिशयोक्ति। अग के सुगन्ध बागबन मे भरे यह अजोग ताको जोग ठहरायो। "सबधातिशयोक्ति, जहँ दई अजोगहि जोग॥" औरै बिलास हास भेदकातिशयोक्ति। "अतिशयोक्ति भेदक जहे औरे बरनो जात॥" मुख में सुधा इदु में मिथ्या कहत है, इहाँ सुधा कहै बचन, वर्णनीय नायिका में सुधापनो छपाय सुधा कह्यो, याते सापह्नवा रूपकातिशयोक्ति, जो बचन सुधा जुत कहते तो रूपक होतो। "होइ, छपायो कछु बहै सापह्नव ठहराइ॥" दाय होय छपायो कछु छपा को अर्थ वर्णनीय बस्तु में कोई गुण राखे और गात को देखे सोनो को सनोमाने यह अजोग, यातें असम्बधातिशयोक्ति। "अतिशयोक्ति दूजो वहै जोग अजोग बखान॥" अरु चद दुचद भयो, दुख देबे को पहिले ही ठान, याते अत्यतातिसयोक्ति। "अत्यतातिशयोक्ति जो पूरब पर क्रम नाहिं॥" पाछे कुज सून पाये ताके साथ ही दु ख पायो, सून देखिबो कारन, दु ख कारज साथ ही भयो। "अतिशयोक्ति अक्रम जहाँ कारन कारज सग॥" औ छिगुनी

सोनबेली = स्वर्ण लता, (सो + नवेली) वह चतुर नायिका। सुधा = अमृत। मुधा = व्यर्थ, मिथ्या। जातरूप = सुवर्ण। दुचद = दुगुना। छिगुनी = कनिष्ठिका, कानी अगुली। छला = छल्ला, अँगूठी। बिछलै = गिर जाता है ॥३२॥

१—दे० टि० पृ० ५४। २—भा० भू० ४।७१, दे० टि० पृ० ५७।
३—भा० भू० ४।७२। ४—भा० भू० ४।७१।
५—भा० भू० ४।७४। ६—भा० भू० ४।७७।
७—भा० भू० ४।७५।

के छला बाँह में ढीले होन लागे ऐसी कृशता भइ, यात चपलातिशयोक्ति। "चपलोत्युक्ति जो हेतु हो ज्ञान होत तहि काज॥" विप्रलब्धा नायका ॥३२॥

(तुल्ययोगिता तीनों)

दडक—चलिबो सुनत मग झलका परत पग,
राउरे की बात साथ काँपे गात वाके हैं।
चंपक चमेली मंजु मालती कठोर तासों,
कोमल अमल देह 'बृज' बनिता के हैं।
कुंती दमयंती सकुंतला रमा रति आन,
गौरि की गुराई गिरा गुन समता के हैं।
सौति के गुमान पति मान परपति प्रीति,
करती पराजै ऐसो राजे बनिता के हैं॥३३॥

टीका—इहाँ नायका को अंग सुकुमारता और चंपकादि कठोरता रूप गुन, ताको वर्ण्य अवर्ण्य तें तुल्ययोगिता।

"तुल्य जोगिता तानि विध, लक्षन नाम प्रमान।
होइ बरनन को आबरनि, एके धर्म समान॥
कोक कुंभ नहि लहत सखि सोभा उरज उतंग॥"

वर्ण्य अहै। अवर्ण्य–जहाँ क्रिया रूप धर्म एक होय तहाँ प्रथम, गोरिगिरादि गुन सम उत्कृष्ट सों कहे, यातें दूसरी, गुन सों जहँ उत्कृष्ट सों सम करि कहत अनूप पतिमान आदि पर पति प्रीति पराजै यह पराजे एक वृत्ति, तातें तीसरी। तुल्ययोगिता, शत्रु मित्र पै वृत्ति सम होत है और प्रकार वृत्ति को अर्थ व्यवहार यह मध्यम दूता। पहिले कहै तुम्हारो नाम सुन सात्विक वाके होत, फेरि कहै परपति प्रीत पराजे करती है, कछु नीक कछु परुष ते जानो॥३३॥

(दीपक-दीपकावृत्ति)

सवैया–दीप दशा बनिता कच मैं 'बृज' लागे सनेह सबै दुखदा के।
कारी घटा बर सोहै अली बरसो हैं मिलै छवि देखु छटा के॥

१—भा० भू० ४१७६।

झलका = छाले, फफोले। गुराई = गोरापन। गुमान = गर्व। मान = अहंकार, रूठ जाना। पराजै = पराजय, हार। राजै = चरित्र, रहस्य॥३३॥

दीपदशा = दीपक की बत्ती। कच = केश। सनेह = प्रेम, तेल। बर सोहै = सुन्दर शोभित है। बरसो है = बरस रही है। दीह = दीर्घ।

दादुर दीह पुकार करै रव झींगुर के झनकार बिथा के।
काम रो माती मयूरी महा मुदमाते मयूर कलाप कला के ॥३४॥

टीका—दीपक बाती मे ओ वनिता के बार म नेह लागे, सुत दीप आदि अवर्ण्य वनिता वर्ण्य एक धर्म, ताते दीपक। "दीपक बर्ण्य अवर्ण्य को एकै धर्म समान।" बरसों है बरसों है प्रथम प्रकार, झनकार दूसरी, माती माते तीसरी दीपकावृत्ति।

"आवृतिदीपक तीनि विधि पद की आवृति होय।
पुनि है आवृति अर्थ की दूजो कहिये सोइ॥
पद अरु अर्थ दुहून की आवृति तीजी होइ।"

मानिनी नायिका रितु देखाय मान छोडावती है इति ॥३४॥

(प्रतिवस्तूपमा-दृष्टात-तीनो निदर्शना)

दडक—मेघ जल भरे भ्राजै रस भरे राजै स्याम,
काठ तें कठोर क्रूर मन महा घोर सों।
मीठे तो उदार बैन सोन मैं सुगध जैसे,
खजन की चपलाई धरैं नैन जोर सों।
'सूर' सों नसित तम बोध यह कीन्हे 'बृज',
जगत बिरोधी नास करै दीह दौर सों।
निज फल बृद्धि हित कुमुद प्रकाश कीजै,
कहि दीजै ऐसी बात नन्द के किसोर सों ॥३५॥

टीका—यह नायिका मानिनी, सखी मनावन आई, सो प्रति उत्तर देय है। जल भरे भ्राजै मेघ रस भरे स्याम राजै, सो मेघ जहाँ तहाँ बरसत तैसे स्याम जहाँ तहाँ रस बरसत, यातें धृष्ट नायक, राजै भ्राजे पद तैं प्रतिवस्तूपमा।

'प्रतिवस्तूपमा वाक्य द्वै, उपमेयरु उपमान,
तिन के धर्म जु एक ही, जुदे जुदे पद मान।
सोहत भानु प्रतीप करि, लहै चाप करि सूर॥"

भानु उपमान, सूर उपमेय, सोहत लसत एक धर्म। ओर काठ स कठोर क्रूर मन

रव = शब्द। बिथा = व्यथा। मुद = मोद, प्रसन्नता। मयूर कलाप = मोरो के झुण्ड ॥३४॥

भ्राजे = शोभित होते है। राजै = शोभित होते हैं। क्रूर = क्रर। सोन = सोना। चपलाई = चचलता। सूर = सूर्य। नसित = नाश होता है। दीह दौर = लम्बा प्रयाण, दीर्घ दौड़ ॥३५॥

घोर बिम्ब प्रतिबिम्ब तें दृष्टांत। "जहाँ बिंब प्रतिबिंब सो दुहूँ वाक्य दृष्टान्त।" और मीठे तेरे बचन उदार, जैसे सोन से सुगन्ध, उपमान वाक्य उपमेय वाक्य जो सो करि एक ठहरावै, सो प्रथम निदर्शना।

"जहँ उपमेय सुवाक्य में, उपमा वाक्य सु जोग।
जो सो करि सु निदरसना, कहत सबै कवि लोग।।"

और खञ्जन की चपलाई नैन में धरै है, पर नारी देखिबे को उपमान को धर्म उपमेय में राखे, तातें दूसरी निदरसना।

"राखे जहँ उपमेय में उपमा वाक्य सो आनि।
उपमा में उपमेय को धर्म धरै सु बखानि।।"

और रबि सों तम नाश होत, जगत बिरोधी को समुझावै है कि, जगत बिरोधी अर्थ जग को दुख देन हारे का मेरे ही समान नाश होवै है। वैसे ही नाश होत, वैसे ही जो मेरी दुख देन हारी है उनको नास ह्वै है। सत असत के कहनावति सों तीसरी निदरसना। "जहाँ असत को करि क्रिया वाही को उपदेश।" जहाँ क्रिया करि असत को समुझावै सत भले कों समुझावै और निज फल वृद्धि अपने हित कमल को देना, यह सत निदरसना। यह नदकिशोर सों कहि दीजै।।३०।।

(व्यतिरेक[1]-सहोक्ति-विनोक्ति-समासोक्ति-परिकर-परिकरांकुर)

दंडक—पंकज सो नैन मंजु तिरछे कटाक्ष देखे,
साथे छोडे नेह परगेह जैसो स्याम जो।

१—दे० टि० व्यतिरेक—पृ० ७२, सहोक्ति—पृ० ९७।

विनोक्ति—(विना + उक्ति) किसी से रहित होने का वर्णन। यह दो प्रकार की होती है। वर्ण्य (उपमेय) जहाँ किसी वस्तु के बिना हीन (अशोभन) हो वहाँ विनोक्ति अलंकार होता है। जैसे उक्त पद में नैन बिना अंजन के शोभा नहीं देते। यही प्रस्तुत (वर्ण्य) जहाँ किसी वस्तु से हीन होने पर अधिक शोभा प्राप्त करता हो वहाँ भी विनोक्ति अलंकार होता है। जैसे तुम्हारा मुख कलङ्कहीन होने से चन्द्रमा से अधिक शोभावान् है।

समासोक्ति—समासोक्ति का अर्थ है संक्षेप में उक्ति। यह अलंकार वहाँ होता है जहाँ कवि ने अपना जो अभीष्ट वर्णन किया है उससे ऐसे किसी वर्णन का आभास हो जाय जिसका उसमें कोई प्रसंग नहीं है। जैसे उक्त पद में कवि ने चन्द्रमा को देखकर कुमुदिनी के भी प्रसन्न होने का वर्णन किया है किन्तु इससे अप्रस्तुत प्रसङ्ग नायक को देखकर नायिका के प्रसन्न होने का

मुख तो मयंक बिकलंक अति सोभा सोहै,
नैन बिना अंजन न आभा अभिराम जो।
देखि कलाधर कुमुदिनि हूँ मुन्दित भई,
चलै चंद्रमुखी ताप नासै परिनाम जो।
मिलै 'ब्रज' राज छांडि मन के दराज आज,
सूधे कहे मानिहै न नाम तेरो बाम जो ॥३६॥

टीका—नायिका मानिनी, सखी मनावै है कि कंज से मंजु नैन हैं, क्यौं की जामैं कटाक्ष। उपमान तें उपमेय मैं अधिक गुन, तातें व्यतिरेक। 'व्यतिरेक[1] जु उपमान तें उपमे अधिकी देखि।" और तिरछे कटाक्ष तेरे देखत के साथ ही पर नारी नेह गेह छांडैं, यातैं सहोक्ति, जो साथ ही दूनो को बरनै। "सो [2]सहोक्ति जो साथ ही बरन दुहुन बनाइ।" और मुख बेकलंक अधिक शोभा देत। प्रस्तुत मुख कलंक बिना छीन यातैं, प्रथम बिनोक्ति। और नैन बिना कज्जल नहीं शोभित, क्यौं मान है। प्रस्तुत नेत्र अंजन बिनु हीन, यातैं दूसरी बिनोक्ति।

दोहा—"है बिनोक्ति[3] द्वै भाँति की, प्रस्तुत कछु बिन छीन।
जो शोभा अधिकी लहै, प्रस्तुत कछु यक हीन॥"

आभास होता है। केवल चन्द्रमा का पुल्लिङ्ग और कुमुदिनी का स्त्रीलिंग होना ही इस आभास का हेतु है।

[यहाँ यह ज्ञातव्य है कि कुमुदिनी सूर्य को देखकर ही विकसित होती है चन्द्रमा को देखकर नहीं, ऐसी कविसमयप्रसिद्धि है—(देखिये नैषध—"अहेलिना किं नलिनी विधत्ते सुधाकरेणाऽपि सुधाकरेण।") अतः अप्रस्तुत प्रसङ्ग का भान होना स्वाभाविक है।]

परिकर—दे० टि० पृ० २०८। परिकरांकुर—जिस प्रकार विशेषण साभिप्राय होने से परिकर अलंकार होता है उसी प्रकार विशेष्य यदि साभिप्राय हो तो परिकरांकुर अलंकार होता है। जैसे उक्त पद्य में बाम (स्त्री) यह विशेष्य अभिप्रायपूर्ण है। तू सीधा कहना क्यों मानेगी? तेरा तो नाम ही बाम (वक्र या कुटिल) है।

नेह = प्रेम। मयंक = चन्द्रमा। बेकलंक = निष्कलंक। अभिराम = मनोहर। कलाधर = चन्द्रमा। कुमुदिनी = कमलिनी। ब्रज = कवि का नाम। ब्रजराज = श्रीकृष्ण। दराज = छिद्र, दरार। बाम = बामा (स्त्री), कुटिल ॥३६॥

१—भा० भू० ४।९०। २—भा०भू० ४।९१। ३—भा०भू० ४।९२।

और कलाधर को देखि कुमुदिनि मुदित भइ यातें समासोक्ति। "समासोक्ति[1] अप्रस्तुतै फुरै सुप्रस्तुत माझ।" जहाँ कोई प्रस्तुत के प्रसंग को बरनन करतें अप्रस्तुत को प्रसंग फुरै। इहाँ कुमुदिनि स्त्रीलिंग शब्द तें और कलानिधि पुलिंग शब्द तें अप्रस्तुत नायिका नायक जान्यौ, कि यहि समै में स्त्री अपनो पति देखि मुदित भई। तू कैसी है चन्द्रमुखी चलै ताप नासै, चन्द्रमुखी ताप नासिबा विशेषण तें परिकर है। "है परिकर[2] आशय लिए जहाँ विशेषण होय।" मुधे कहे न मानि है, नाम तेरो बाम है, यह अभिप्राय लिये शब्द कहै कि ना मानैगी। बाम टेढा को भी कहै हैं, यातें परिकरांकुर अलंकार। "साभिप्राय[3] विशेष्य जहाँ परिकर अंकुर नाम।" ॥३६॥

(श्लेष वर्ण्य-अवर्ण्य-वर्ण्यावर्ण्य)

सवैया—कर मंजु द्वै पाये दबाये चलै गज सोहै भले छवि मासो निहारी।
'बृज' चोटी है चारु लसै रंग कुन्दन तोरति है बहुतै अधिकारी॥
लखिहौ अस जोबन दूखि है सुर्दार काम कै रूप को वारनि वारी।
कतरो बंद बाँधि ले आइ लला चित चाहत जाति वहै यक नारी॥३७॥

टीका—यह लोहारिन दूती कृष्णजी सों बनदूखि बरणन नायिका के मिलन को कहै है। बनदूखि पक्षे अर्थ—कर मंजु द्वै पाये दबाये चलै कर जाको बा दूखि चलती है मंजु रमनीय है। दो पाये पै दबाने सों चलता है। गज सोहै भले जाम गज सोहत है आछी भाँति। छवि मासो निहार—छवि जाको मासी निहारने से दरसि परै है। बृज चोटी है चारु जाकी चोटी अति उत्तम है। लसै रंग कुंदन शोभित रंग कुंदन मे। तोरति बहुत अधिकारी—तोरति है बहुतै

1—भा० भू० ४।९३। 2—भा० भू० ४।९४। 3—भा० भू० ४।९५।

कर = हाथ (नायिका के), घोड़ा (बन्दूक का)। द्वैपाये = दोनों पैर (ना०), दोनों ओर से (ब०)। दबाये = दुबककर (ना०), दबाने से (ब०)। गज = हाथी, बारूद भरने की छड़। मासो = मासा, (मा + सा) लक्ष्मी की तरह। चोटा = लट, शिखर। कुंदन = सुवर्ण। तोरति है = तोड़ती है, तुमसे प्रेम करती है (तो + रति है)। अस जोबन दूखि = ऐसे यौवन को दुःखी, ऐसी जो बन्दूक (जो + बनदूखि)। काम के वारी = जिसमें रूप (चाँदी) का काम होने से शोभायुक्त है, कामदेव की शोभा जिस पर न्योछावर है। कतरो = कितने हो। बधबाँधि = प्रयत्न सहकर, जोड़ो को जुड़ाकर। यक नारी = अद्वितीय रूपवती स्त्री, एकनालवाली (बन्दूक) ॥३७॥

अर्थात् अधिक लखि हो। अस जो बनदूखि है, सु दरि काम के रूप की दीप तिवारी-देखागे ऐसी जा बनदूखि कैसी है सुदरि बहुत शोभायमान है जामे काम रूपे को है कहै दीप्तिमान् है। कतरो पद०-कतरि कै कितकी जद बाँधि कै लै आई हौं, लला कृष्नचद्र चित में चाहते हो जो वहै एक नारी जाको एकनाली कहे है॥ नायिका पक्षे। कर हाथ मजु रमनीय हैं। दो पाये दबाए चलै-दूनौ पाँव को दबाये चलती है अर्थात् परकीया है। गजसो है कुजर सें है चाल, भले उत्तम, छवि मा सो निहारो अर्थात् लक्ष्मी के सदृश शोभा है जाकी। बृज चाटी है चारु जाकी चोटी कहै बेनी चारु रम्य है। लसै शोभित है रग कुदन सोना के सदृश। तारति है बहुतै अधिकारी—तुम्हारे में रति कहै प्रीत तो बहुत ही अधिक है। लखि हो देखागे। ऐसी जारन दूषन करागे, सुदरि काम की अथात् काम की स्त्री रति का रूप की दीपति वारी जाकी रूप की सोभा पै वारतो हैं। कतरो बद बाधि लै आई लला कितेको जद कहै उपाइ बाधि कै ल्याइ हौं। हे लला कृष्णचद्र चित चाहत जो वहै यक नारी चित सें चाहते हा जौन वहै जो तुमारे मनमें बहुत दिनों स खटकि रही है, एक नारी—एक कहै सब सें अधिक सुन्दरी नारी नायिका। इति। इहाँ लोहारिनि की के बनदूखि बर्णन और नायिका के मिलन हेतु दूतपन बर्न्याबर्न्य तें श्लेषालकार। "श्लेष[1] अलकृत अर्थ बहु जहाँ सब्द में होत।" सो तीनि प्रकार एक बर्न्य, दूजो अबर्न्य, तीजो बर्न्याबर्न्य। यहि कवित्तमा ती यो श्लेष को उदाहरन करि धर्यो है, यथा—कर मजु द्वै पाये दबाये चलै यहि पद में कर हाथ और कर है जामो बनदूखि चलती है। दो पाये दबाये चलै दोनो पाव दबाये अर्थात् इत उत निहारती नायिका चलै है और दो पाये पै दबाने से चलती है बनदूखि, सो इहाँ नायिका बर्न्य औ बनदूखि के कर और पाये को बर्नन सा अब य दूनौ पदमें श्लेष, तात बर्न्याब र्य श्लेष। छवि मासों निहारा छवि मासे के निहारने से जो बनदूखि में होता है, जाकी सामना देखि निशाने पै चलाई जाती है और छवि सु दरता मा लक्ष्मी क सदृश जाकी निहारी जाती है। इहाँ बनदूखि और नायिका में तुल्य श्लेष, ताते ब र्य श्लेष। ब्रज चोटी है चारु लसै रग कुन्दन—चाटी कहै बेनी, और चोटा जा बनदूखि म होती है। इहाँ चोटी पद दूना स्थान में तुल्य, परन्तु प्रधान नायिका का बणन है किन्तु एक देश को बर्नन, तातै अबर्न्य श्लेष। लसै रग कुन्दन-शोभित है रग कुदन में अर्थात् बनदूखि के आधार काष्ठ में और सोहै है रग पानिप कुदन तप्त सोना के सदृश। उसी प्रकार दोनों पद अबर्न्य, तात अब र्य श्लेष। तारति है बहुतै

1—भा० भू० ४।९७।

अधिकारी–तोडती है बहुत ही अधिक और तुम्हारे में रति कहै प्रीति बहुत ही अधिकी करे है नायिका, यातं न यं श्लेष। इसी प्रकार औरो पदन में जानो। यथा और उदाहरन—

"होय न पूरन नेह बिनु, मुख दुति दीप उदोत ॥"

नेह नाम तेल को और प्रीति को, उदोत मुख को प्रकाश और दीप को प्रकाश, मुख बर्न्य दीप अब यं, ताको श्लेष।

पीन पयोधर अंग छबि, नग धारे अभिराम।
रहै सुकेसी मान को, बृन्दा बन हित स्याम ॥"

पयोधर कुच पयोधर मेघ, नग गोवर्द्धन नग हीरा आदि, अभिराम सुन्दर, सुकेशी दैत्य सुकेसी अप्सरा बृंदावन हित बृंदा गोपसमूह ताको अवन पालन, सो है हित जाको श्री राधिका जी को। बृन्दावन हित स्याम—श्री कृस्न किंवा स्यामा काहू सो पद्धतो है, जैसे बाला को बाल कहै है। स्यामा सोरह बरस की। "श्यामा षोडशहायनीतिकथिते"ति कामशास्त्रम्। इहाँ दोऊ बर्न्य।

"अति अकुलाइ शिलीमुखन, बन में रहत सदाय।
तिन कमलन की रहत छबि, तेरे नयन सुभाय ॥

शिलीमुख बान, शिलीमुख भ्रमर। बन जल को भी नाम है, इहाँ हरिन और भ्रमर अब यं श्लेष। "स्यात्कुरङ्गोऽपि कमल" इत्यमर। सो कमल अरु हरिन भी, हरिन बधिक के बान सों अकुलाइ करि के बन में रहै है, अरु कमल भ्रमर निकरि अकुलाय करिकै जल में बसे है, तिन कमलन की छबि तेरे नयन हरे हैं। इहाँ कमल अरु भ्रमर उपमान अरु शिलीमुख बान अरु भ्रमर यह दोऊ उपमा है, यह सब नैन के है। अब यं को श्लेष है, याते यह उपमान को श्लेष है। और सब ग्रन्थकार सभंग अभंग श्लेष लिखत हैं, सो छबि मासो निहारो, यहाँ सभंग श्लेष है कर मंजु द्व पाए दबाए चलै औ ब्रज चोटी है चारु लसै रंग कुंदन इस पद में अभंग श्लेष है। और अन्य ग्रंथकार अर्थालंकार में अभंग श्लेष को लिख्यो सभंग को नहीं। परंतु अबर्न्य श्लेष में सभंग भी होय है। ताको यह अभिप्राय है कि कवितात्पर्य बर्ननीय हो में है अबर्न्य में नहीं, तासों अबर्न्य में सभंग श्लेष होने सं भी कवितात्पर्य अरु ग्रन्थ विरुद्ध नहीं होवै है इति ॥३७॥

१—भा० भू० ४।९७।

(अप्रस्तुतप्रशंसा-प्रस्तुताङ्कुर-पर्यायोक्ति-व्याजस्तुति)

दंडक—देखो सखि चाहत चतुर सेवै स्वाती एक,
पाहरू प्रभू का चोरि कहा भल ताके हैं।
त्यागि भौंर मालती को सेए गंधफलनी को,
जाहि रंग देखि कंज फूले मिलि ताके हैं।
ल्याई परतीति हेत पट नट नागर की,
हमै न भरोसो बात लपट लला के हैं।
ऐसो क्यों न करै काज कान्ह कूर बश साज,
मेरे काज पाए परि ताहि सम ताके हैं ॥३८॥

टीका—यह अन्यसंभोग दुखिता का बचन है। देखा चातक एकै स्वाती को सेवत, यह उत्तम पुरुष को आशय। और पाहरू प्रभु को धन चुरावै यह नीच पर। अर्थात् इहाँ नायिका दूती को नायक के बलाइबे के अर्थ पठाई, उहाँ आपुही संभोग करि के आई, तासों नायिका की उक्ति, सो पाहरू को धन चुराइबो अप्रस्तुत अर्थ से दूती को नीच कर्म करिबो प्रस्तुत, ताको आश्रय, याते अप्रस्तुतप्रशंसा।

"अलंकार द्वै भाँति के अप्रस्तुत प्रशंस।
यक बरनन प्रस्तुत बिना दूजे प्रस्तुत अंस ॥"

एक तो जहाँ प्रस्तुत को बरनन होय, और पर कहै ओर पर लागै, सो पांचो तरह ग्रन्थ बढ़ने हेतु नहिं कहे। तेई भँवर गँवार मालती त्यागि गंधफलनी पर बैठे। सांधि कहै हरि को, हम को छाँडि दासी सों प्रसंग, गौण प्रसंग मैं प्रधान प्रसंग निकरै, भँवर गंधफलनी को जाबो प्रस्तुत है दूसरो प्रधान प्रस्तुत या तिया की रति न तातें प्रस्तुताङ्कुर। "प्रस्तुत अंकुर है किए प्रस्तुत में प्रस्ताइ।" मेरी प्रतीत को पट लाई या रचना की बात कहा, पट बदलि गयो है याते पर्य्यायोक्ति। जहाँ रचना की बात होय जाकी दृष्टि सें कंज बिकसै है अर्थात् सूर्य्य की, ताको मित्र भी कहै है, सो यहाँ व्यंग्य से अर्थ भयो कि हमारे मित्र से भोग करि आई है, तातें दूसरो पर्य्यायोक्ति। ऐसे कान्ह क्यों न करै कूर बश

पाहरू = पहरेदार। सेए = सेवित करता है। गंधफलनी = चंपा की कली। नटनागर = चतुर नायक। लपट = धूर्त, झूठा। कान्ह = कृष्ण। कूर = क्रूर। साज = सजा, शोभा ॥३८॥

१—भा० भू० ४।९८। २—भा० भू० ४।१००।

तो होवै, यहाँ कृष्न की निंदा ते चंद्रमा की निंदा को ज्ञान भयो। मेरे हेतु दुख सहे तोहि सम को,यह स्तुति मे निंदा बाहा की,यात ब्याजस्तुति ब्याजसी स्तुति।

दोहा—"ब्याज निंद निंदाहि सो, निंदा करै जो ठान।
निंदा स्तुति सों होत जहँ, स्तुति निंदा को ज्ञान।।"

एक निंदा, स्तुति से जहाँ निंदा को ज्ञान होय इति।।३८।।

(तीनौं निषेधाभास औ विरोधाभास)

सवैया—हौं नहि चाव चबाइ करौं अँग तेरे सनै कहूँ दूत है आगे।
पूजा चहै शशिशेखर को अथवा है उरोज नखेछद लागे।।
को बरजै हमें काहू परी रुचि तेरी जितै तितही अनुरागे।
आँखि सों आँखि लगी जब सों तब सों अँखियाँ सखि तेरी न लागे।।३९।।

टीका—यह नायिका लक्षिता, सखी व्यंग्य करि कहै है। हौं नहीं चबाइ करती हौं, यह निषेध बचन तें निषेधाभास प्रथम। पूजा महादेव की चहो पै कछु काम नहीं, उरोज में नख तौ हई है, कछु कहिवे फेरि देइ तौ दूसर निषेधाभास। को बरजै जहाँ तेरी रुचि होय तहाँ जावै यह विधि बचन अथात् कहीं न जावै, यह तीसरो निषेधाभास।

दोहा—तीनि भाँति आक्षेप है, एक निषेधाभासु।
पहिले कहिये आपु कछु, बहुरि फेरिए तासु।
दुरे निषेध जु बिधि बचन लखन तीनों लेखि।।

निषेध जो मना करिबो ताको आभास नाम झलक होय पहिले आप कहै फेरि बिचारि कै निषेध करै ताम नाहीं करिवो निकर। दूसर बिधि बचन ताको बरजिबो। तीसर आँखि सों आँखि लगी तब सें आँखि नहीं लगै यह बिरोध, ताते बिरोधाभास। "भासे जहाँ बिरोध है, वहै बिरोधाभास।" बिरोध भासै बिचारे बिरोध न होय।।३९।।

१—आक्षेप—आक्षेप का अर्थ है दोष लगाना या निषेध करना यह तीन प्रकार का होता है—१ निषेधाभास—जहाँ किसी बात का निषेध करके फिर उसका स्थापन किया जाय अथात् जो वस्तुत निषेध न होकर निषेध सा प्रतीत हो, वह निषेधाभास होता है। २ उक्ताक्षेप—स्वयं किसी बात को कहकर फिर दूसरी उत्कृष्ट बात द्वारा उसका निषेध करना। ३ व्यक्ताक्षेप—जो विधिवचन कहा गया है उसी से निषेध छिपा हो। उक्त पद्य में इनके उदाहरणों को टीका में स्पष्ट कर दिया गया है। विरोधाभास—दे०टि०पृ० ६४।

चावचबाई = चुगल खोरी, मुखदेखी प्रशंसा। शशिशेखर = शंकर। उरोज = स्तन। नखेछद = नखक्षत। बरजे = रोकता है ॥३९॥

(षटौ विभावना)[1]

दंडक—केसरि लगाए बिना परी पियराई अंग,
हीरे करे पार फूल बान बेधे मार के।
बरी जरी जात लागे मलयज पंक अंक,
कोकिला के कंठ ही सों चातक पुकार के।
रावरे के नेह बिनु देह दुति छीन 'ब्रज',
करै अति ताप तन शीतकर झार के।
आवै छैल चलो छपी प्रीति रही आछी भाँति,
पाछे नैन मीन कढ़ै धार पारावार के ॥४०॥

टीका—यह नायिका नायक के मान से दुखी, ताकों सखी मनावन आई। जथा केसरि बिना लगाये पियराई अंग में, यह बिना कारन कारज भयो, यातें प्रथम बिभावना होइ। "होति छैभाति[2] बिभावना कारन बिन ही काज।" फूल बान हिय पार करे हेतु अपूरन है, तातें पार होयबो कारज भयो, यातें दूसरी। "हेतु अपूरन ते जहाँ कारज पूरन होय।" चंदन पंक लगाए बरी जात यह तीसरी। "प्रतिबंधक के होत हू कारज पूरन मानि।" प्रतिबंधक जतन किए तऊ वह कार्य्य होय तहाँ जानो। कोकिल के कंठ से चातक पुकारो पी कहाँ, अकारन ते कारज चौथी। "जबै अकारन वस्तुतें कारज परगट होत॥" शीतकर तन ताप करै है, यह बिरोध बात है, यातें पाँचवीं। "काहू कारन ते जबै कारज होय बिरुद्ध।" कौनो बिरुद्ध कारन ते जब कारज होय। नैन मीन से पारावार की धारा कढ़ि है। नदी सें मीन होब कारज, कारज सों मीन सों पारावार धार कढ़ि है, जहाँ कारज तें कारन उपजे यातें छठवीं। "पुनि कछु कारज तें जबै उपजै कारन रूप" ॥४०॥

(विशेषोक्ति-असंभव और तीनों असंगति)[3]

दंडक—निज नैना के नेह तजे कुल कानि बानि,
नीर भरे रहे तऊ प्यास बुझै या के न।

---

१ विभावना—देखिये टिप्पणी पृष्ठ ५१। २—भा० भू० ४।१०९।

पियराई = पीलापन। हीरे = हृदय को। मार = कामदेव। मलयजपंक = चन्दन। शीतकर = चन्द्रमा। छपी = छिपी हुई। पारावार = समुद्र ॥४०॥

३—विशेषोक्ति—दे० टि० पृष्ठ ४७। असंभव—जहाँ किसी ऐसे कार्य के होने की असंभावना का वर्णन हो, जो हो चुका है, वहाँ असंभव अलंकार होता है। जैसे उक्त पद्य में 'नीच जाति की, असुन्दरी कूबरी और उसके वश में श्रीकृष्ण' यह असम्भव सा प्रतीत होता है। असंगति—दे० टि० पृष्ठ ३९।

अक्र बक कूबरी अधम जाति दासी नारि,
सुन्दर सुजान स्याम होइ बस ता के न।
कीन्हो दावानल पान देखि दह जरे मेरो,
भोग ठौर जोग पढै याते छैउ या के न।
ऊधो सुनो सूधी बात मोह मेटिबे को आए,
मोह उपजाए हाय ऐसो छोह का के न ॥४१॥

टीका—यह प्रोषित पतिका नायिका ऊधा सों आपनो व्यथा कहती है। निज नैन के बश कुलकानि छांडे, सो जल भरा तऊ इनकी प्यास नहीं बुझे है। हेतु द्रिढ रहै रूप पै कारज न होइ, तहाँ बिशेषोक्ति। "बिशेषोक्ति जहँ हेतु सों कारज उपजे नाहिं।" कूबरी अधम ताके बश स्याम सुन्दर यह असम्भव, तातें असम्भव। "कहे, असम्भव होइ जो बिन सभावन काज।" कार्य की सिद्धि होइ सभावन बिना, जब दवानल पान किये देखि देह मेरा जरा। दावा कारन, कृष्न को देह जरिबो चाहिए नायिका को देहँ जन्यो यह काय, तातें प्रथम असंगति, और भाग ठौर जाग यह अवरठौर कार्य, तासों दूसरी असंगति। मोह मिटावन आये सो तो मोह उपजाये, और कार्य आरंभ करि और किये, यातें तीसरी।

दोहा—"तीन असंगति कार्य अरु, कारन न्यारे ठाम,
और ठौर ही कीजिए, और ठौर के काम।
और काज आरंभिए और काजे दारँ॥ इति ॥४१॥

(तीनों विषम-तीनों सम-अनुमान)

दंडक—मंजु कै उपाय सुख हेतु को बसी निकुंज,
पाए सुख पुंज छैल छली घनस्याम जो।
बूड़ी स्याम रंग मैं भयो है अंग पीरो मेरो,
कोमल जो तन आगि लाए लखो काम जो।
बसै कूबरी के संग लायक त्रिभंगी अंग,
नीच है गँवार हो सुनी गोपाल नाम जो।

कुलकानि = कुल मर्यादा। बानि = स्वभाव, आदत। अक बक कूबरी = टेढ़ी मेढ़ी कूबरवाली। दावानलपान = बन अग्नि को पीना। छोह = क्षोभ ॥४१॥
१–भा० भू० ४।११५। २–भा० भू० ४।११ । ३–भा० भू० ४।११७,११८।
मंजु = मनोहर, सुन्दर। बूड़ा = डूबी। त्रिभङ्गी = तीन जगह टेढ़ा। सुधाधर = चन्द्रमा। बाम = वक्र, स्त्री ॥४२॥

आनन सुधाधर ते कह्यो मीठी बातें बोलि,
आए क्यों न आली आई दिग लाली बाम जो ॥४२॥

टीका—यह उत्कंठिता [नायिका] जब दुख पाये तब बातैं दोष की कहन लागी है। आछे उपाय करि सुख पाइबे निकुंज बसी तो दुख पाये, यातें तीसरो विषम। और स्याम के रंग बूड़ी अरु देह पायरी, कारन को रंग और कार्य्य को और, यातें दूसरो विषम। अति कोमल मेरे तन, तामें आगि लगायो यह अनमिल संग त प्रथम।

दोहा—"विषम अलंकृत तीनि विधि, अन मिलते को संग,
कारन को रंग और कछु, कारज औरै रंग।
और भलो उद्यम किए, होय बुरो फल आइ॥"

और बसे कुबरी के संग, सो लायक है। क्योंकि कृष्ण भी त्रिभंग हैं, यह जथा जोग, तातें प्रथम सम। और नीच गँवार गोपाल नाम से जान्यो गो नाम गऊ ताको चरवाह नीच, यह कार्य से कारन को ज्ञान दूसरो सम। मीठी बातैं बोलि कह्यो तुम चलो संकेत को हौं हूँ आऊँगो, आनन सुधाधरते कह्यो मीठी बोलि आनन सुधा धरते सुधा है अधर मो जेहि आनन के वासो मीठी बात बोलिबो, यत्न बिनु सुधाधर चंद्रमा को कहै है, सो मुख को उपमान श्लेष करि होवै है, यातें तीसरो सम। आवे क्यों न आली दिशान में लाली आई, जो बाम कहै कुटिल है अर्थात् दुख देन हारी है यासों भोर जाने, तातें अनुमान। दोहा—"अलंकार सम तीनि विधि जथाजोग को संग। कारज ही में पाइए कारन ही को संग॥ श्रमबिनु कारज सिद्ध जो उद्यम करते होइ" ॥४२॥

(विचित्र[2]-अधिक-अल्प-अन्योन्य)

दंडक—निशि को बिताय घर आए देखि भई दीन,
छिगुनी को छला करै भुज मे निवास है।

---

१ भा० भू० ४।१२३ २४।

२—विचित्र—विचित्र का अर्थ है विलक्षण, जहाँ किसी फल की इच्छा की गयी हो, और उसे प्राप्त करने के लिये जो उपाय है उसके विपरीत उपाय किया जाय, वहाँ विचित्र अलंकार होता है। जैसे उक्त पद में "प्रवीण लोग ऊपर चढ़ने के लिये नीचे झुकते हैं" नीचे झुकना विपरीत सा लगता है, किन्तु बिना झुके ऊपर नहीं चढ़ा जा सकता या बिना नम्रता के बड़प्पन नहीं प्राप्त होता, यही विचित्र अलंकार है।

अधिक—जहाँ पृथुक आधार से आधेय की अधिकता दिखाई जाय अथवा

नैंवत बड़ाई हेतु बड़े जे प्रवीन 'बृज'
मान तजे मान हित मानिनी विलास है।
उमगा अनंद तेरे हिय न असाय प्यारी,
बरने न जात गुन बानी सों प्रकास है।
दामिनि सों घन माहिं घन हो सों दामिनि है,
मेरो मन तो में तेरो मन मेरे पास है ॥४३॥

टीका—यह शठ नायक मोटी बात बनाय कहै है, राति को बिताय अनत आयो, नायिका देखि दुखी भई, सोच सों छिगुनी को छल्ला भुज में निवास किया। छिगुनी को छल्ला आधेय, तासों भुज आधार को सूक्ष्म करि वर्णन, यातें अल्पालंकार। "अल्प[1] अल्प आधेय तें सूक्ष्म होइ अधार।" बड़ाई हेतु बड़े नमित रहत, मान तजे मानिनि मान हेतु अथ सनामान हेतु, "इच्छौ फल विपरीत की, कीजे जतन विचित्र। नैंवत उच्चता लहन को, जे हैं पुरुष पवित्र" ॥ नमित उत्तम को उच्चता की चाह। ऐसो आनंद उमगो तेरे हिये नहीं समाय है। आधार हिय, आनंद आधेय सो अधिक, तातें अधिकालंकार। और तेरे गुन बानी सों नहीं बरनि जात, आधार गुन बानी आधेय, सो अधिक आधार, तातें दूजो। दोहा—"अधिकाई[3] आधार तें जब आधेय को होइ। जो आधार आधेय सों अधिक अधिक है सोइ ॥" रहनेवाला आधेय, जामें रहै सो आधार। आधार पात्र, आधेय घृत, जामें धरै सो पात्र आधार। औ घन सें शोभित दामिनी और दामिनी सों घन, यहाँ परस्पर उपकार। "जहाँ परसपर उपकरैं अन्योन्यालंकार" इति ॥४२॥

(तीनों विशेष-दूनौ व्याघात)

सवैया–सुधि आय बसी प्रिय की जबहीं तब सों हियरो गो हेराय हमारो।
वह आनन कानन आँखिन मैं निज प्यारी सबै थल माँह बिहारो।

पृथुक आधेय की अपेक्षा आधार को अधिक दर्शाया जाय, वहाँ अधिक अलंकार होता है। विशेष टीका में स्पष्ट है।

अल्प—जहाँ पहिले आधेय ही अल्प (छोटे से छोटा) हो और फिर आधार को उससे भी अल्प (छोटे) रूप में वर्णन किया जाय। जैसे उक्त पद में आधेय छिगुनी का छल्ला स्वयं एक लघु पदार्थ है, विरह के कारण वह भी भुजा में लटकने लगा कहकर उसकी आधारभूत भुजा को और भी दुबली करके वर्णन किया है, अतः अल्प अलंकार है।

छिगुनी = कानी अंगुली। छल्ला = छल्ला, अंगूठी। नैंवत = झुकते हैं ॥४३॥

१—भा० भू० ४।१२९। २—भा० भू० ४।१२६। ३—भा० भू० ४।१२७।

रति रभा रमा 'बृज' देखे सही तन जीवत भामिनि भौन निहारो।
अवलोकत जो सुख देत हुतो अब देखिबे सो दुख देत बिचारो।।४४।।

टीका—यह प्रोषित नायक अपनी दशा विरह की कहै है, जब से सुधि बसी हिय म तब सें हिय मेरा हेराय गयो। जहाँ बिना आधार आधेय रहै सो प्रथम बिशेष। जथा ललितलला मतिराम,—"चलो लाल वाकी दशा, लखो कही नहिं जाय। हिये रही सुधि रावरी, हियरो गयो हेराय॥" और वह आँखि कान मुख में बसी एक बस्तु अनेक ठोर बरने, ताते दूसरो विशेष, और रभा रमा रति हम देखि चुके जो जीवत प्यारी कों देखें बड़ी बस्तु की सिद्धि, ताते तीसरो विशेष। दोहा "तीन प्रकार विशेष है, अनाधार आधेय। बडी वस्तु की सिद्धि को कछु अरभ जो देय॥ बस्तु एक को कीजिए, बरनन ठौर अनेक॥" इति। और जिन देखे सुख मिलत रह्यो ताहि देखे दुख, इहाँ और कार्य्य करिबे की बस्तु और काय्य, तातें व्याघात "सो व्याघात जु और सो होवै कारज और। बहुरि बिरोधी ते जबै, काज त्याइए ठौर"॥ बहुरि बिरोधी याको अर्थ यह आछी तरह जो क्रिया बरननीय होय सो पराये को इष्ट कार्य ताको विरोधी होय तहाँ दूसरो, इति॥४४॥

(कारणमाला एकावली-सार-मालादीपक)

दडक—कहा कहौं कान दोस जिन उपजाए रोस,
रोस ही सौं मान मान भए हित हानि है।

१—कारणमाला—जिस रचना में कारण, माला की तरह गुँथे हुए होते हैं अर्थात् जो पहिले कार्य था वह दूसरे में कारण और जो दूसरे में कार्य था वह तीसरे में कारण हो जाता है, इस प्रकार कारणों की एक श्रृङ्खला सी बन जाती है, वहाँ कारणमाला अलकार होता है। उदाहरण टीका में स्पष्ट है। इसे गुम्फ अलकार भी कहते हैं जिसका अर्थ है गुँथा हुआ।

एकावली—जहाँ उत्तर उत्तर पद को ग्रहण करके पूर्व पूर्व पद को छोड़ दिया जाता है वहाँ एकावली अलकार होता है। जैसे उक्त पद में 'तन, मन के वश में है, मन मति के बश में है' यहाँ पहिले पूर्वपद तन को ग्रहण किया, दूसरी बार उत्तर पद मन को ग्रहण कर तन का छोड़ दिया। ऐसे ही आगे भी क्रम रहता है। यही एकावली (एक लड़वाली माला) है। इसमें पूर्व और उत्तर पद में कारण कार्य भाव नहीं होता, अत कारणमाला से यह भिन्न अलकार है। सार—देखिये टिप्पणी पृष्ठ ८९।

मालादीपक—जहाँ दीपक और एकावली अलकार मिल जाते हैं वहाँ

'बृज' तन मन बश मन मति के है बस,
सोइ मति मेरी याते कुमति की ठानि है।
मधु सो मधुर अमी अमी सो मधुर नैन,
तिन्हैं तजि हाय बात विषम बखानि है।
लोन मिलै नीर नीर मिलै जैसे छीर,
तैसे मिलौ उन्हैं बार फेरि जानै तेरी आनि है ॥४५॥

टीका—यह नायिका कलहान्तरिता अपनी पछितानि बखाने है कहाँ कहाँ कान्ह आदि। कान कारन, रोष कारज, फिरि रोष कारन, मान कारज, फिरि मान कारन, हित हानि कारज, यह कारन कारज की परंपरा तें कारनमाला, "कारन काज परंपरा कारनमाला होत"। और तन मन के है बस, मन मति के, ग्रहीत मुक्त सें एकावली, "ग्रहित मुक्त सों होत है एकावलि तहँ मानि।" मधु सों मधुर सुधा, तासों नैन, एक से एक अधिक, तातें सार अलङ्कृति, "एक-एक तें अधिक जहँ अलङ्कार है सार"। लोन मिलै नीर, नीर मिलै छीर, लोन ग्रहित नीर मुक्त नीर ग्रहित छीर, यह एकावली। मिलिबो एक पद एक ही क्रिया को वर्ण्य अवर्ण्य में अन्वय, तातें मालादीपक, जान ॥४५॥

(यथासंख्य-दोनो पर्याय-परिवृत्ति)

दंडक—वाम दृग हायनि औ स्याम सो सलोनी लाल,
अनरीति रीति प्रेम प्रीति अनुसारी है।

मालादीपक कहलाता है। जहाँ वर्ण्य और अवर्ण्य से धर्म की एकता हो वहाँ दीपक होता है, उक्त पद में "लोन मिले नीर, नीर मिले छीर" मिलना रूप धर्म की एकता है अतः दीपक हुआ और पहिले लोन और नीर को ग्रहण किया फिर नीर छीर में नीर को लेकर लोन को छोड़ दिया अतः एकावली, इस प्रकार दोनों मिलकर मालादीपक बना।

कान = कान्हा, श्री कृष्ण। अमी = अमृत। लोन = लवण। छीर = क्षीर, दूध। आनि = शपथ ॥४५॥

१—यथासङ्ख्य दे० टि० पृ० १७९। पर्याय—पर्याय का अर्थ है क्रम से, जब अनेक वस्तुओं का क्रम से एक वस्तु में आश्रय ग्रहण कराया जाय अथवा एक वस्तु क्रम से अनेक वस्तुओं में आश्रय ग्रहण करे तो पर्याय अलंकार होता है। जैसे उक्त पद में चञ्चलता और मन्दता दो भिन्न वस्तुओं का क्रम से एक नेत्र में आश्रय प्रथम पर्याय है। मुखद्युति दिन में कमल में और रात्रि में चन्द्रमा में समाई, एक मुखद्युति ने कमल और चन्द्र इन दो भिन्न वस्तुओं में आश्रय लिया, यह दूसरा पर्याय है। परिवृत्ति दे० टि० पृ० २१५।

आगे तो बिलोचन चपल चितवनि हुती,
अब भये मद कहौ कौन हेत धारी है।
कलित कमल तजि आनन की आभा आजु,
चद्र मै समानी नेरे नेह सों निहारी है।
कौन लीन्हे तेरे मन दी है करि मौन धन,
'गोकुल' बिराजी रोमराजी सो बिचारी है ॥४६॥

टीका—यह नायिका लक्षिता, कृष्नको देखि सात्विक भाव भयो, तासों लक्षित करै है। बाम दु खदायनि जा टेढी तेरो दु ख मानै और स्याम सों अन राति, राति रीति क्रम से यथासख्य। "यथासख्य[1] बरनन बिषै बस्तु अनुक्रम संग"। क्रम तें अन्वय चचल नत्र मद भा जडता भई, क्रम सें अनेक को एक आश्रय, यातें पय्याय अलकार। तिय मुख द्युति दिन मे कमल में रात्रि में चद्र मे, कमल चद्रमा एक आश्रय, तात दूसर पय्याय। दोहा "द्वै[2] परजाय अनेक को, क्रम सों आश्रय एक। फिरि क्रम तें जब एक ही, आश्रय धरे अनेक" ॥ और कौन तेरो मन लै कै मौनता दा है, परिवृत्ति अलकार। "परिवृत्ति पलट' कीजिए, कछु लैकै कछु देइ" ॥ इति ४६ ॥

(परिसख्या[3]-विकल्प-समुच्चय दोनों)

दडक—नेह को न हानि तन मन मे तिहारे प्यारे,
गेह मे निहारे दीप बारे दरसात है।
राखौ हित और सोकी है है बश वाके आय,
मान को मनाय लीबो इहाँ बड़ी बात हैं।
'गोकुल' बिलोकि बाल रावरे को हाल सुने,
खीझै फिरि रीझै माखै मोहि सतरात है।
जोबन मगन धन मद उपजाए जात,
आए बौरात एक पाए बौरात है ॥४७॥

१—भा० भू० ४।१४० । २—भा० भू० ४।१४१ ।

बाम = वक्र, टेढ़ी, स्त्री। सलोनी = सुन्दर। अनरीति = कुरीति, बुरी प्रथा। चितवनि = दृष्टि, कटाक्ष। कलित = सुन्दर। नेरे = घने ॥४६॥

३—दे० टि०—परिसङ्ख्या पृ० ६१, विकल्प पृ० ११५, समुच्चय पृ० ११६।

नेह = स्नेह, तेल, प्रेम। निहारे = देखने पर। माखै = रुष्ट होती है। सतरात = धमकाती है। बौरात = पागल हो जाता है ॥४७॥

यह नायिका के नायक से कछु अनमिलाप सो सखी शिक्षा कहै है। नेह की हानि रावरे के नहीं है दोष में होइगो, याते परिसंख्या। "परिसंख्या यक थल बर्जि, दूजे थल ठहराय ॥" रावरो हित और सों को जाके बश रहि है जो बश होय तो और सों हित न होइ जो है। जथा मतिराम—'मान किया जब पीय सों, अति हिय रोस बढ़ाय। राखि है हित कै और सों, कै बश ह्वै हो आय ॥" याते विकल्पालङ्कार। "सम बल को जु विरोध जहँ, तहाँ विकल्प सु थाप। भूपति काहिहु नवाइहो अरि को शिर को चाप ॥" अरि को शिर नवायबो अरु चाप नवायबो सम बल है। और तुम्हारी बात सुन रीझ रीझ सतराय बहुत भाव तें प्रथम समुच्चय। और जोबन कहै पहिले मैं मद उपजावो घन कहै मैं उपजावो। "दोय समुच्चय भाव बहु, कहुँ एक उपजत संग। बहुत काज चाह्यो करौ, है अनेक यक संग ॥" बहुत को किंवा एक को बहुत भाव एक ही संग में उपजे, जहाँ रचना करै तहाँ प्रथम और यह अर्थ अनेक एक को कार्य करो चाहै मैं ही पहिले करौं तहाँ दूसरो समुच्चय ॥ ८७ ॥

(कारकदीपक-समाधि-प्रत्यनीक-काव्यार्थापत्ति)

दंडक—चकी सी जकी सी ठोक ठगी सो तै बोलै बोल,
पूँछत क्यों रूसी परै कहा सतरात है।
लाख अभिलाषि किए हरि के हवाल हेतु,
तौलै अलि आइ गई दखै सुखमात है।
आज मुख आभा हेरि हारि हिए मानि इंदु,
देत अरबिंद दुख तातै कुँभिलात है।

१—भा० भू० ४।१४४।

२—कारक दीपक—जहाँ एक कारक (पदार्थ या व्यक्ति) में बहुत सी क्रियाओं का क्रम से होना वर्णन किया गया हो वहाँ कारक दीपक अलंकार होता है। जैसे उक्त पद में एक ही नायिका चकी सी, जकी सी, ठगी सी होकर बोलती है आदि। समाधि—समाधि का अर्थ ही है समाधान या समर्थन। जैसे उक्त पद में हरि का हाल जानने की इच्छा हो ही रही थी, सखी के आ जाने से वह कार्य सुगम हो गया। दे० टि० पृ० ११३।

प्रत्यनीक—(प्रति + अनीक = सेना) जैसे कोई राजा को न जीत सके तो उसकी सेना आदि पर आक्रमण करता है, ऐसे ही प्रबल उपमेयादि की समानता न करके जहाँ अन्य पर बल प्रयोग दिखाया जाय वहाँ प्रत्यनीक अलंकार होता है। जैसे उक्त पद में नायिका की मुख आभा को न जीत सकता हुआ चन्द्र तत्सदृश कमलों को दुःख दे रहा है ऐसा वर्णन किया गया है।

जो पै 'बृज' चद्र चद्रमुखी तुम कीन्हे वश,
मेरे ताप मेटिबे की कौन बड़ी बात है ॥४८॥

टीका—यह अ य सभोग दु खिता के बचन व्यग्य से। जथा चकी जकी ठगी आदि एक भाव साथ, ताते कारक दीपक। "कारकदीपक[1] एक मैं क्रम त क्रिया अनेक।" अभिलाष किए की हरि को हाल मिलै तोलौ तूँ आई, यह कारज और हेतु मिलि सुगम भयो समाधि। "सो[2] समाधि कारज सुगम, और हेतु मिलि होत।" आजु तेरे मुख की आभा देखि इदु हारि कै कज को दु ख देत अथात् कज मुख को उपमान, इप हेतु अरि पच्छ जानि दबाये, यातें प्रत्य नीक। "दुख दे अरि कै पक्ष को, प्रत्यनीक यहि भाय॥" बलवान् शत्रु, तासों जोर न चलै शत्रु के पक्षी को दुख देनो, और जा बृज चद्र को बश किये तो मेरो ताप ताका मेटिबो कोन बात है, यातें का॰यार्थापत्ति। "का॰याथापति यौ कियो, तिनकी यह कहि जात।" यह कियो तो यह कितनी बात है इति ॥४८॥

(काव्यलिंग[3]-अर्थान्तरन्यास-विकस्वर-प्रौढोक्ति)

दडक—बीतिगो करार प्रीति पाल्यो न गँवार मीत,
गाइ चरवाह को रसिक मैं बखानते।

चकीसी = आश्चर्य युक्त सी। जकीसी = सकपकाइ हुई सी। बोल = बचन। हवाल = हाल, वृत्तान्त। सुखसात = सुखी होता है। कुँभिलात = मुरझा जाती है ॥४८॥

१—भा भू ४।१४८। 'भाव अनेक' पाठान्तर। २—भा भू ४।१४९।

३—दे॰ टि॰—काव्यलिंग पृ॰ ६०७, अर्थान्तरन्यास पृ॰ ५३, विकस्वर—किसी विशेष बात का समर्थन सामान्य से किया जाय और उस सामान्य का समर्थन किसी दूसरे विशेष से कर दिया जाय तो विकस्वर अलकार होता है। उदाहरण टीका में स्पष्ट है।

प्रौढोक्ति—(प्रौढ + उक्ति, = उत्कृष्ट कथन) जहाँ किसी वस्तु की उत्कृष्टता के लिये, उत्कर्ष के अहेतु में हेतु की कल्पना कर ली जाती है वहाँ प्रौढोक्ति अलकार होता है जैसे उक्त पद्य में हलधर (बलदेव) जी का भाई होना श्रीकृष्ण के त्रिभगी (तीन जगह टेढ़ा) होने में कारण नहीं है किन्तु हल के त्रिकोण होने से उसे कारण मान लिया गया है, अतः प्रौढोक्ति है।

[यहाँ यह ज्ञातव्य है कि—भगवान् श्रीकृष्ण जब बंशी बजाते हैं तब उनका एक पैर दूसरे पैर के ऊपर और कमर एव गदन एक ओर को झुकी हुई रहती है, इसी मुद्रा को "त्रिभगी" (तीन जगह टेढ़ी) कहा गया है।]

बारुनी प्रसंग गंग पानी कौन करे पान,
नीच संग जात चित चातुरी सयान ते।
किए क्रूर काम काहू जात न सुभाव जानि,
साँप सुधा पियें निरविष किन मानते।
हलधर मधु जाहि ताहि सो त्रिभंग भये,
बाम अंग कूबरी बरी है बड़ी सानते ॥४९॥

टीका—यह नायिका उत्कंठिता कृष्ण करार करि जहाँ आए, विरह ते कामपीर को कहत है। यति गा आदि० गंग के चरनादि मूल, रसिकन सों बात क्यों जात। समर्थनीय जो अर्थ ताको समर्थन पुष्ट करना, तासों काव्यलिंग। "काव्यलिंग[1] जहँ जुक्ति सों अर्थ समर्थन होय॥" बारुनी आदि० बारुनी विशेष और नीच सामान्य, सो विशेष तें सामान्य दृढ़ होत अर्थान्तरन्यास। "विशेष तें[2] सामान्य दृढ़ तहँ अर्थान्तरन्यासु। रघुबर के बर गिरि तरे बड़े करें न कहा सु॥" क्रूर काम है विशेष, जाति सुभाव सामान्य, साँप विशेष, याते विकस्वर। "विकस्वर[3] होत विशेष जहँ, फिर सामान्य विशेष॥" हरि गिरि धार्‌यो सत पुरुष भार सहे ज्यों शेष॥" और हलधर मधु हल त्रिकान ताही सों त्रिभंगी भये, यह उत्कर्ष को कारन ही होय ताको कारन करि बरन, याते प्रौढ़ोक्ति। "प्रौढ़ उक्ति[4] उत्कर्ष को, करै अहेतुहि हेत, जमुना तीर तमाल सों, तेरे बार असेत॥ अहेतु को हेतु जहाँ बरने इति॥४९॥

(तीनों प्रहर्षन[5])

सवैया—लाखन भाँति किए अभिलाष हिए सिधि साधन मंत्र दिढावै।
आइ कै माय रिसाय कही घर नंद के जामन जाइ लै आवै॥

बारुनी = मदिरा। क्रूर = क्रूर। हलधर = हल को धारण करने वाला, बलदेव। त्रिभंग = तीन जगह टेढ़ा। बाम अंग = वक्र, टेढ़े अंग वाली। बरी है = स्वीकार की है। सान = शान, गर्व ॥४९॥

१—भा० भू० ४।१५२। २—भा० भू० ४।१५३।

३—भा० भू० ४।१५४ ४—भा० भू० ४।१५५।

५—प्रहर्षण—(प्र = प्रकृष्ट (अत्यधिक) + हर्षण = प्रसन्न होना) यह तीन प्रकार का होता है—१ बिना प्रयत्न किए अभिलषित फल की प्राप्ति होना। २ जितने फल की इच्छा थी उससे अधिक की प्राप्ति हो जाना। ३ जिसके लिये प्रयत्न किया जा रहा था उसका स्वयं उपस्थित हो जाना। उदाहरण टीका में स्पष्ट हैं।

आइबे को जहाँ सोधै सखी घर ताहि गई 'बृज' ऐसो बतावै।
सूखहि पानि के भूख ही ते तहिं आनि काऊ लै पियूख पिआवै॥५०॥

टीका—यह नायिका मुदिता कृष्न के देखिबे को मन मन बिचारै, तबै साथ कही नद घर से जामन लावै। जतन बिनु कारज, तातें प्रथम प्रहषन। और जहाँ जाव को सोधती रही तहाँ गई, यातें दूसरो। पानी जो पियासो होय ताही कोई अमी प्यावै, यह वाछित ते अधिक फल, तातें तीसरो प्रहर्षन। जथा दोहा—"तीनि प्रहषन[1] जतन बिनु, वांछित फल जो होय। वाछितहूँ ते अधिक फल, श्रम बिनु लहियत सोय॥ सोधत जाके जतन को, बस्तु चढ़ै कर सोय। जाको चित चाहत हुती, आई दूती सोइ॥" चाहत सो आप दूती बनि आई, इति॥ ५०॥

(मिथ्याध्यवसित-ललित-संभावना-विषाद)

सवैया—भूत मिठाई अकाश को फूल सचाई तिहारी है त्यौं ही अली।
ए सुख सोवन नींद सखी 'बृज' सेज अँगार बिछाय रली॥
मो पै न जात बखानि कछू गुन गावतो सेस जो हो तो थली।
चाहत सग सहेली कियो हम पायो तुमैं सुभ सौति भली॥५१॥

टीका—यह नायिका अन्य संभोग दुखिता को बचन, जथा तेरी सचाई भूत की मिठाइ, आकाश को फूल। एक झूठ के लिए दूसरो झूठ जहाँ होय, तातें मिथ्याध्यवसित। दोहा—"मिथ्याध्यवसित[2] झूठ हित, कहै झूठ यह रीति। कर में पारद जो रहै करै नवोढ़ा प्रीति।" यह सुख सोइबो अगार के सेज पै है, जो नायक सों रति करि आई है ताही को प्रतिबिंब कहति, यातें ललित "ललित कहो कछु चाहिए, ताही को प्रतिबिंब।" जवन बात कहिबो होय ताको कछु बचन कह्यो चाहिए, ताहि छाडि वाही बात को प्रतिबिंब कोई और बचन सों कहिए। मतिराम जथा —"मेरी सीख सिरै न सखि, मो सन उठै रिसाय। सोयो चाहै नींद भरि, सेज अगार बिछाय॥" और तेरो गुन मो पै नहीं कह्यो जाय है, शेष गावतो जो तो थली म होतो, सभावना। "है यौं जै यौं होय

सिधि साधन = सिद्धि की साधना। जामन = दही आदि वह खट्टा पदार्थ जो दूध को जमाने के लिये उसमें डाला जाता है। सोधै = खोज रही थी। सूखहि = सूख रहा है। पियूख = अमृत॥५०॥

१—भा० भू० ४।१५९ १६०।

२—भा० भू० ४।१५७। ३—भा० भू० ४।१५८।

अँगार = जलते हुए कोयले। रली = सोई॥५१॥

तौ, संभावना[1] विचार। बरना हो तो मेष जो, तो गुन लहतो पार।।" ऐसे जहाँ तर्क करै जो शेष होतो तो पार पावतो। और सेज को सहेली चाहती नाहि सौति पाइ, चित चाहत उलटो, तातें विषाद। दोहा—"सो विषाद[2] चित चाहतो उलटो जो कछु होय" ।।५१।।

(चारों उल्लास-दो अवज्ञा-एक अनुज्ञा)

दंडक-एक ससि सारदी को स्रवै सुधा सिंधु मोद,
एक सोम मेटै ज्वाल माहि शिव भाल सो।
एक सीतकर विरहिनी तन ताप कर,
एक चौथिचंद देखे पाप लै कराल सो।
एक सुधाधर कर परसे न फूलै कंज,
एक निसापति सोक कोक को विशाल सो।
एक द्वैज इंदुकला बंदन के जोग लाल,
या मैं कौन इंदु 'बूझ' कहौ नंदलाल सों ।।५२।।

टीका—यह नायिका धीरा, व्यंग्य वचन कृष्ण से पूछे है कछु चिह्न देखि। जथा एक ससि सरद के सुधा को बरसावै, जाते सिंधु को मोद होय है। सुधा गुन, सिंधु को मोद गुन, यह गुन तें गुन भयो, तातें प्रथम उल्लास। एक ज्वाल मेटि शिव के भाल ऐसो ह्वै है। शिव के ज्वाल दोष सो चंद्रमा को गुन भयो, शिव के भाल पर बैठे दोष ते गुन, यातें दूसरा उल्लास। एक निशिकर बिरही तापकर। शीत गुन, बिरही को ताप दोष, गुन तें दोष तीसरो उल्लास। एक चौथि चंद्र दोष, ताहि देखि दोष लागै। दोष ते दोष, यातें चौथो उल्लास। एक सुधाधर कंज को परसे न फूले, सुधा गुन, कमल को न लाग्यो, यातें अवज्ञा प्रथम। एक निसिपति कोक को शोकित करै, सो दोष चंद्रमा को नहीं लाग्यो, जब अमावस को चन्द्र नहीं रहत तऊ कोक सोकित रहै, यहि दूसरी अवज्ञा। एक द्वैज इन्दु कला करि छीन ताको जग बन्दन करत है। यह दोष को गुन, यातें अनुज्ञा। अथ उल्लास दोहा—"गुन ऐगुन[3] जब और ते, और धरै उल्लास। न्हाय संत पावन करैं गंग धरै यह आस।" जहाँ एक के गुन तें और को गुन, एक के दोष ते और को गुन, और के गुन ते और को दोष, और के दोष ते और को दोष। अवज्ञा दोहा—"होत अवज्ञा[4] अवर के, लगै न गुन अरु दोष।"

१—भा० भू० ४।१५६। २—भा० भू० ४।१६२।
सारदी = शरत्पौर्णिमा। स्रवै = बरसाता है। सीतकर = चन्द्रमा। कर परसे = किरणों से स्पर्श करने पर। निसापति = चन्द्रमा। द्वैज = द्वितीया की।५२।
३—भा० भू० ४।१६३। ४—भा० भू० ४।१६४।

काहू के गुन तें काहू को गुन न होय। अनज्ञा दोहा—"होत अनुज्ञा जो चहै, दोषहि को गुन मानि। होत विपति जामें सदा हिये बसत हरि आनि॥" इति॥५२॥

(दूनौ लेश-मुद्रा-रत्नावली तदगुन)

दंडक—बिरचे विरंचि हाय अंग मै सुगंध यह,
भोर ही के भौंर दौरि दलत कराल है।
कलाधर छीन कला ताहि न ग्रसत राहु,
श्रौन से बिशाखा सुनै मेरो ए हवाल है।
मोतिन की माल हिए सोन के मिसाल होत,
हीरा नग लागे हाथ होत परबाल है।
बानी पर बानी रमा रूप पर ठानै खीझि,
गिरिजा गुराई पर बिलखै विशाल है॥५३॥

टीका—यह नायिका रूप गर्विता के वचन, यूनता करि गर्व जनावता है। बिरचि यह सुगंध गुन दिए, जा भार भोर ही से अंग मेरे दलत, गुन से दोष ते प्रथम लेश, और देखा चन्द्रमा जब कला छीन रहै तब तक राहु नहीं, ग्रसै दोष, कला छीन राहु न ग्रसै तासों दूसरो लेश। दोहा— 'गुन[3] को दोष क

१—भा० भू० ४।१६५।

२—लेश, मुद्रा—दे० दि० पृ० ८७, ११९। रत्नावली—वर्णन किये जाते हुए किसी प्रसङ्ग में जहाँ अन्य नाम भी प्रकट हो जायँ वहाँ रत्नावली अलंकार होता है। मुद्रा अलंकार में सूच्य अर्थ का सूचन करने के लिये जान बूझकर ऐसे शब्द रक्खे जाते हैं जिनसे प्रस्तुत अर्थ के साथ ही भावी घटना की भी सूचना मिलती है किन्तु रत्नावली से प्रस्तुत वर्णन में ही अनायास ऐसे शब्द आ जाते हैं। यही दोनों में अन्तर है।

तदगुण—तद्‌गुण का अर्थ है दूसरे का गुण अर्थात् जहाँ कोई वस्तु अपना गुण छोड़कर समीपवर्ती वस्तु का गुण ग्रहण करे वहाँ तद्‌गुण अलंकार होता है। जैसे मोतीमाल हृदय का स्पर्श करते ही सुवर्ण हो गई उसने अपना श्वेत गुण छोड़कर देह का पीतगुण ग्रहण किया आदि।

दलत = कष्ट देते हैं। श्रौन = श्रवण नक्षत्र, कान। बिशाखा = नक्षत्र, सखी का नाम। हवाल = हाल, वृत्तान्त। सोन = सुवर्ण। मिसाल = उदाहरण। परबाल = प्रवाल, मूँगा। बानी = बोलना, वचन। बानी = सरस्वती। गुराई = गोरापन॥५३॥ ३—भा० भू० ४।१६६।

दोष को गुन मानै तहँ लेश। सुक यह मधुरी बानि ते बंधन लहे बिशेष" ॥ श्रोन से बिसाखा सुनै। श्रवन नछत्र, बिसाखा नछत्र। श्रवन कान, बिसाखा गोपी। प्रस्तुत पद से नछत्र को अर्थ और होत, ताते मुद्रा। दोहा—"मुद्रा प्रस्तुत पदनिपै और निकरै नाम। ताहि मनावन को कहे भामिनि दोहा स्याम॥" इहाँ प्रस्तुत नायक बरनन में दोहा को अर्थ हो हो। और बानी पर बानी, रमा रूप पर, क्रमते प्रस्तुत अर्थ में सरस्वती लछमी पारबती के नाम निकसे, याते रत्नावली। "रत्नावली प्रस्तुत अरथ क्रमतें बरने नाम। शमक चतुरमुख लच्छिपति सकल ज्ञान के धाम" ॥ यह प्रस्तुत राजा के बरनन में ब्रह्मा विष्णु महेश कह्यो। अर्थान्तर दोहा—"रबि तरे तेजाह करत, साम शाल का देत" ॥ मोती माल ही में परसे लाल होत, हीरा हाथ छुये मूँगा होत, आपनो गुन ताज संगति गुन लिय, ताते तद्गुन बरनन। दोहा—"तद्गुन[२] तजि गुन और के संगति को गुन लेय" ॥ इति ॥ ५३ ॥

(दोष पूर्वरूप[३] अतदगुन-अनुगुन)

दंडक—सेत है बुलाक मोती हँसत मुसक्यान मद,
रही जो ललाई चढ़ी बाठ अभिराम के।
दीप को बुझाय चली आली बनमाली पास,
भूपन प्रकास फेरा फेरि बृज[१] धाम के।
काँकरी कठोर मग धरति है बाय पग,
गड़त न नेकु फूल पाँखुरी अराम के।
लाल अनुराग ही के माल पर बाल ही के,
अधिक है लाल नीके ललित ललाम के ॥५४॥

१—भा० भू० ४।१६८। २—भा० भू० ४।१६९
३—पूर्वरूप—दे० टि० पृ० १७५।

अतद्गुण—तद्गुण का विपरीत अतद्गुण होता है अर्थात् गुणी के संग रहकर भी दूसरा उसका गुण ग्रहण न करे तो अतद्गुण अलंकार होगा। जैसे उक्त पद में नायिका, नायक मिलन के लिये इतनी व्याकुल रही कि कंकड़ों में पैर पड़ने पर भी उनका गड़ना उसे प्रतीत नहीं होता था। कंकड़ों का संग होने पर भी गड़ना रूप गुण पैरों ने ग्रहण नहीं किया अतः अतद्गुण है।

अनुगुण—जहाँ किसी दूसरी वस्तु के संग से प्रकृत वस्तु का गुण अधिक बढ़ जाय वहाँ अनुगुण अलंकार होता है। जैसे उक्त पद में लाल (श्रीकृष्ण) के अनुराग से नायिका की मूँग की माला (जो स्वतः लाल थी) और अधिक लाल हो गयी। (अनुगुण = पूर्व गुण का सहायक।)

टीका—यह नायिका गोढा अभिसारिका। सेत है बुलाक, मोती जो अधर के ललाई से लाल रही पूर्व का रूप पाए, याते पूर्वरूप प्रथम। दीप को बुझाइ चला फेरि भूषन को प्रकाश फैलो, याते दूसरा पूर्वरूप। दोहा—"पूर्व रूप ले सग गुन, तजि फिरि निज गुन लेत। दूजो गुन जो ना मिटो किया मिटन के हेत॥ शेष स्याम है सिव गरे, जस त उज्जल होत। दीप बढाये हू करै, रसना मनिन उदोत॥" काकरा कठोर मग की पाय म गडिबो नहीं जानि परत, क्यों कामातुर सें। प्रोत्ता। संग के गुन गडब नहीं लगो, याते अतद्‌गुन। "सु अतद्गुन गुन ना गहै सगी को जिहि गाहि। पिय अनुरागी ना भये बसि रागी मन माहिं॥" मन को रग नहीं लाग्यो जो रगीन मै रहत सों रगीन होत। *लाल के अनुराग से मूँगा की माल अधिक लाल भये। संगति से पूरव गुन सर* साने, याते अनुगुन इति॥ ५४॥

(मीलित-सामान्य उनमीलित-विशेषक)

दडक—नेकु न लखाइ सोन भूषन सलोनी अग,
छुए पैर जानि मृदु करकस कर से।

बुलाक = नासिका का आभूषण। ललाई = कालिमा। वोठ = ओठ, अधर। बनमाली = श्रीकृष्ण। काँकरी = ककड़। गड़त न = चुभती नहीं। पाँखरी = पँखुड़ियाँ॥५४॥

१—भा० भू० ४।१७०-७१। २—भा० भू० ४।१७२। 'सोइ अतद्‌गुन सगतें जब गुन लागत नाहिं'—पाठा तर।

१—मीलित—यह अलकार वहाँ होता है जहाँ दो मिली हुई वस्तुओं की समानता के कारण कुछ भेद ही न मालूम पड़े, जैसे उक्त पद में काचन वर्णा नायिका के अग में स्वर्णाभरण पहिचाने ही नही जाते।

सामान्य—जहाँ सादृश्य के कारण दो पृथक् वस्तुओं में भेद लक्षित न हो वहाँ सामान्य अलकार होता है। जैसे उक्तपद में नायिका को खोजने के लिये दीप जलाया किन्तु दीपशिखा और नायिका की देहदीप्ति का भेद नही ज्ञात हुआ। [यहाँ यह ज्ञातव्य है कि मीलित अलकार में उत्कृष्ट गुण से निकृष्ट गुण का तिरोधान होता है और सामान्य में दोनों की गुणसमानता होने से भेद का अग्रह। यही दोनों में अन्तर है।] उन्मीलित—दे० टि० पृ० १३०।

विशेषक—दो वस्तुओं में सादृश्य के कारण उत्पन्न हुआ भ्रम जहाँ किसी तीसरी विशेष वस्तु से दूर हो जाय वहाँ विशेषक अलकार होता है। जैसे

खेल के बहाने केलि मंदिर मे आने 'बृज'
गहते छबीली छूटि छपी छैल उर से।
आरसी अवास मे दुराइ द्वार बैठी जाइ,
देह प्रतिबिंब के न भेद फुर नर से।
हेरिबे को वारि जोत मिली दीप सिखा ज्योति,
मंद होन प्रात प्यारे गात जानि परसे ॥५५॥

टीका—यह नायिका नवोढा को सुरतारंभ। सोन भूषन सलोने अंग में नहीं जानि परत है। कोन भूषन कोन अंग है, यातें मीलित। दोहा—"मीलित जो सादृश्य तें भेद न जबै लखाय। अरुन बरन तिय चरन मे जावक लख्यो न जाय॥" कोमल कठोर, कर ते छुये जानि परत को यह अंग है, यह भूषन, यातें उनमीलित। दोहा—"उनमीलित सादृश्य तें भेद फुरै तब मानि। कीरति आगे तुहिन गिरि छुये परत है जानि॥" जाऊ भिन्न जाति होय कोइ तरह सों मिलि गये होहिं कोइ तरह भेद होय, तिय के देह की जाति औ दीप सिखा को भेद फुर नाहीं जान्यो, यातें सामान्य। 'सामान्य[3] जु सादृश्य ते, जानि परै न विशेष। नाहिं फुरत श्रुति कमल अरु, तियलोचन अनिमेष॥" श्रुति कान के कमल और लोचन के भेद फुर नहीं। और प्रात होत दीप के द्युति मन्द देखि देह को जानि प्यारे पकरे, यातें विशेषालंकार। "इहै विशेषै विशेष है, फुरै जु समता माँझ। तिय मुख अरु पंकज लखे, ससि दरसन तें साँझ॥"॥५५॥

(गूढ़ोत्तर-सूक्ष्म-पिहित व्याजोक्ति)

सवैया—मनमोहन गाइ चरावै वहाँ सुख दायक है बन कुंज थली।
हरि हेरि हरे हिए आरसी लाइ दिखाइ तबै मुसुकाइ चली॥

उक्त पद में "प्रात काल होने पर दीप की द्युति मन्द पड़ने लगी तब नायिका की देह पहिचान में आयी" यहाँ प्रात काल ने दोनों की विशेषता को स्पष्ट किया अतः विशेषक है। [यहाँ यह स्मरणीय है कि विशेष, विशेषक और विशेषोक्ति ये तीनों पृथक् अलंकार हैं। इनमें अन्तर लक्षणों से स्पष्ट हो जाता है।]

नेकु = थोड़ा भी। सोन भूषन = सोने के आभूषण। करकस = कठोर। छपी = छिपी। छैल उर = चतुर नायक की छाती से। आरसी अवास = दर्पण लगे हुए महल ॥५५॥ १—भा० भू० ४।१७४।

२—भा० भू० ४।१७६। ३—भा० भू० ४।१७५। ४—भा० भू० ४।१७७।

५—गूढ़ोत्तर—किसी प्रश्न का जो उत्तर दिया गया है, उसमें यदि कोई गुप्त रहस्य छिपा हो तो वहाँ गूढ़ोत्तर अलंकार होता है। जैसे उक्त पद में

लखि केसरि के रग सों लिखि कै कर द्वैज के इदु देखाइ चली।
मुख चद्र को जानि चकोर चले चल चगुल चोंच चलाइ दली ॥५६॥

टीका—मन मोहन पूछे तब ग्वालि कहो, वा कुज को भलो है। वहाँ चलो गाइ चराबो सुख लायक ते बिहार करिबो ठौर है, याते गूढोत्तर। दोहा—"गूढोत्तर[1] कछु भावते, उत्तर दीन्हे होत। उन वेतस तरु मैं पथिक उतरन लायक सोत"॥ पथिक उत्तरा का घाट पूछे, तासो कामिनि का उत्तर। वहाँ निजन वा बिहार करि है। और आरसो हिय लगाय, हरि को देखाइ चली, यह क्रिया तें सूक्ष्म। दोहा—"सूछम पर आसे लखे, करे क्रिया कछु आय। मे देखी वह सोसमनि केसन लई छपाय॥" और सखी केसरि के रग कर पर द्वैज चद लिखो जो नखक्षत नायिका के वोठन मे देखो। छपी बात को प्रगट, ताते पिहित। दोहा—"पिहितै छपी पर बात को, प्रगट जो कहै जताइ। प्रातहि आये सेज हरि हँसि हँसि दाबति पाइ"॥ यथान्तरे दोहा—"रमी तिया विपरीति रति, सखि लखि गई सयान। कुकुम सो कर कज पै, हँसि कै लिखो कृपान"॥ तरवारि कर मैं पुरुष राखत है सो तू आज तरवारि के काम किये, और यह मुख चन्द्र चकोर जानि चोच चलाये आकार को दुराये, यातें व्याजोक्ति। "व्याजोक्ति[3] कछु और बिधि, कहै दुरै आकार, सखि सुक कीन्हें कर्म ए, मानिक जानि अनार"॥ और पहिले पद में बचनबिदग्धा* दूसरे में क्रियाबिदग्धा, तीसरे में लक्षिता, चौथे पद में गुप्ता नायिका है॥ ५६॥

(गूढोक्ति-विवृतोक्ति-जुक्ति-लोकोक्ति-छेकोक्ति)

दडक—कालिह अली जाउँगी मैं ब्रज बरसाने हाट,
बाट जनि रोको सुनै बातै राधारौन है।
सैन करि कहै बैन गोरस जो चाहौ लेन,
गाइ को भजाइ लावो वतै कुज भौन है।

श्रीकृष्ण के पूछने पर ग्वालिनि गाय चराने का जो स्थान बताती है उसमें एकान्त बिहार की क्षमता रूप रहस्य गूढ है, अत गूढोत्तर अलकार है।

सूक्ष्म, पिहित—दे० टि० पृष्ठ ८३ और ४३।

व्याजोक्ति—अपने आकार को छिपाने के लिये जहाँ हेतु बदल दिया जाय वहाँ व्याजोक्ति होती है (व्याज = बहाने की + उक्ति = कथन)

कुजथली = लतागृह। द्वैज = द्वितीया का। चल = चचल। चगुल = पजा। दली = क्षत विक्षत कर दी ॥५६॥

१—भा० भू० ४।१७८। २—भा० भू० ४।१८१। ३—भा० भू० ४।१८२।

* इन भेदों के लक्षण आगे नायिका प्रकरण में देखिये।

इतना कहत कर काँपि उठे कामिनी के,
कहौ बिलखाइ कप बाय किए गौन है।
चोर होइ साई जानै चोरन की चाल जोई,
'कर न तो डर कौन' कहै 'बृज' कौन है ॥५७॥

टीका—यह नायिका पहिलो पद में बचन चातुरी और दूसरे में गुप्त, ताके बचन। कालिह मैं बरसाने को जाऊँगी, अली सों कहै, पै बाट कान्ह न रोके, यह पर उपदेश तें गूढ़ोक्ति। "दोहा—"गूढ़ उक्ति मिसि और के, कीजे पर उपदेश। कालिह सखा हौं जाउँगी पूजन देव महेश" ॥ और सैन करि बैन कहै की जो गोरस को लैन चाहत हो तो गाइ उतै कुंज भौन को गइ लै आवो। श्लेष छिपो पर कहत है गोरस दही दूध, गो इन्द्री रस याते विवृतोक्ति, दोहा—"श्लेष छपो परगट किया, विवृतोक्ति है ऐन। पूजन देव महेश कों कहति दिखाए सैन" ॥ यहाँ कुच कै वार सैन करि कहै, और यतने में कप भयो ताहि कहौ कप बयारि को छिपाइ, याते युक्ति। "यहै युक्ति[1] कीन्हे क्रिया, कम छिपायो जाइ। पाय चलत आँसू चले, पाछति नैन लजाइ" ॥ ममगोप्य बात छपाइवे के लिये क्रिया कोई करै, पराये को ठगै और तब सखी कहो चार को बात चारै जानत, यातें लोक उक्ति। "लोक उक्ति[2] कछु बचन सों, लाजे लोक प्रवाद। नैन मूँदि षटमास लौं सहिए बिरह विषाद॥" यह लोक को कहनी की कर न तौ डर को है, चोर चोर को बात जाने। यह अर्थ भयो को जे पर पुरुष सें रमत होइ सो यह जाने, यात छेकोक्ति। "लोक उक्ति[3] कछु अर्थ सों छेक उक्ति है जानि। सखा भुजग के चरन को, भुजग होय सो जानि ॥" साँप के पाँव को साँप जानै, दूसरे भुजग नाम कामी को भी, कामी हो सो जाने इति ॥५७॥

(वक्रोक्ति-उदात्त-सुभावोक्ति-भाविक)[4]

दडक—बडे हौ रसिक लाल कहै को गवार ग्वालि,
हौं कहौ गोपाल अस कीजै अनचाही सो।

बृज = कवि का उपनाम। हाट = बाजार। सैन = सज्ञा, इशारा। गोरस = दही, दूध। कुजभौन = लतागृह। बिलखाइ = रोकर। कपवाय = वायुजन्य रोग जिसमे अग कापते है ॥५७॥

१—भा० भू० ४।१८५। "नैन जँभाय" पाठान्तर है।

२—भा० भू० ४।१८६। ३–भा० भू० ४।१८७। "जो गायन को फेरिहैं, ताहि धनजय मानि।" पाठान्तर है।

४—वक्रोक्ति, उदात्त, स्वभावोक्ति—दे० टि० क्रमश पृ० १५७,१०३,४६।

रूप की दिवार जातरूप के केवार जहाँ,
मनि को प्रकाश रो अवास देखे ताही सों।
तामै चौंकि चलै चितै चारों ओर दौरि दार,
कर धरि देखे उर धकधकी वाही सों।
फेरि छुऐ पावो ग़ाँही छैउ चलि छुवौ छाँही,
आवौ कहै नाहीं नाह पेखि परछाहीं सों ॥५८॥

टीका—यह नायिका नवोढा की सुरतांत, ताको सखी उपालभ करि नायक सों कहै है। बडे हो रसिक लाल, या सुनि दूसरी सखी व्यग्य सुरफेरि कही कहै—को गँवार कहत, सुर फिरे सों यह अथ भया कहत ही है, याते बक्रोक्ति। "बक्रउक्ति[1] स्वरश्लेष सों, अर्थ फिरै तब होइ। रसिक अपूरब हो पिया, बुरो कहत नहि कोइ ॥" जहाँ कोई स्वर के फेर सों किं वा श्लेष सों और ही अर्थ करि तहाँ कहिए। पिय अपूरब रसिक है याको कोई बुरो नाहीं कहत, नायिका स्वर सों फेरि कहत ही है। और चाँदी की दिवार, सोन के केवार, मनि के प्रकास, तामैं ताहि को देखो है। चारों दौरि चौकि चलै, यह नवोढा को सुभाव है, याते सुभावोक्ति। "सुभावोक्ति[2] तहँ जानिये बरनै जाति सुभाय। हँसि हँसि देखति फिर हँसति मुँह मोरति सतराय"। जहाँ जाति गुन क्रिया को बरनन होइ, भाषा मैं याको जाति अलकार कहत। उदात्त दोहा—"है उदात्त सम्पति चरित, श्लाघ्य चरित अति अग। संगर सिब अर्जुन कियो, जाके सिष अभग ॥" जहाँ अति सपत्ति चरित को बरनन, किंवा श्लाघ्य जो स्तुति करिबे लायक, ताकी क्रिया जहाँ और को अग होय तो उदात्त। पहर के बरनन मैं श्लाघ्य जो सिब अर्जुन जुद्ध किए हैं। "रतननि के थभानि प्रति, प्रतिबिंबित दशशीस। निश्चय रावन है इहै, नीदि जु लखो कपीश ॥" और अब फेरि वाहीं छुवै यै है, यह भविष्य। सो चलो छाँह तौ छुइ लेहु, यह वर्तमान, याते भाविक। और जो तुमारे केलि समै नाहीं मुखते कढत रहो सो भूत, सो

भाविक—जहाँ भूतकाल या भविष्यत्काल की (बीती हुई या होनेवाली) घटनाओं का प्रत्यक्ष (वर्तमानवत्) वर्णन किया जाय, वहाँ भाविक अलकार होता है। विशेष टीका में स्पष्ट है।

रूपकी = चाँदी की, स्वरूप की। जातरूप = सुवर्ण। केवार = द्वार, दरवाजे। अवास = गृह। दार = नायिका। नाह = नाथ। परछाहीं = छाया ॥५८॥

१—भा० भू० ४।१६८। २—भा० भू० ४।१६९।

नाहीं अबौ देखि परछाँही कहत यह वतमान, ताते भाविक। "भाविक[1] भूत भविष्य जो, परतछ कहत बनाय। वृन्दावन में आजु यह लीला देखी जाय॥" भूत जो होनहार अथ सो प्रतक्ष कहैं और जो आगे होनहार है सो प्रतक्ष कही जाय इति ॥५७॥

(अत्युक्ति निरुक्ति-प्रतिषेध-विधि-हेतु)

दंडक—राधानाथ राधा नैन नीर के निहार नद,
हरि हारे हद को न पाए वारपारे को।
दोषाकर बस स्याम क्यों न करे कूर बाम,
लिखी नाहीं पाती काती ज्यों माहि मारे का।
दीन के दयाल सोई दीन पै दयाल होइ,
'गोकुल' बखानै यह गाथ बूढ़वारे को।
कहो जोग बातैं बतराते कढी आह अंग,
पीर पियराई चढ़ी राई लोन वारे को ॥५९॥

इति श्री दिग्विजयभूषणे अलंकारसंसृष्टिक्रमवर्णन नाम
दशम प्रकाश ॥११॥

टीका—यह ऊधो व्रज ते हाल कृष्न सो कहत। हे राधानाथ राधा के नैन नीर के नद के हद हेरि पाए, सो न मिलो, यह अद्भुत बात सो अत्युक्ति। दोहा—"अदभुत[3] झूठी बात जह, बरने अतिशय रूप, जाचक तेरे दान ते भए कल्प तरु भूप॥" जहाँ अद्भुत झूठी बात करि बरन, उदारता सूरता

१—भा० भू० ४।१९० ।

२—अत्युक्ति—जहाँ किसी के शौर्य औदार्यादि का अद्भुत और अतथ्य वर्णन किया गया हो वहां अत्युक्ति अलंकार होता है। उदाहरण टीका में स्पष्ट है। [यहाँ यह ज्ञातव्य है कि चन्द्रालोककार आदि ने अत्युक्ति को पृथक् अलंकार माना है किन्तु वास्तव में सम्बन्धातिशयोक्ति से अनुप्राणित उदात्त अलंकार ही अत्युक्ति है।] दे० टि०—निरुक्ति पृ० २०८, प्रतिषेध पृ० ७२, विधि पृ० ९७ हेतु—यह दो प्रकार का होता है। १ जब कारण और कार्य का एक साथ वर्णन हो। २ जब कारण—कार्य एक ही में रहे। उदाहरण टीका में स्पष्ट है।

हद = सीमा। दोषाकर = चन्द्रमा। पाती = पत्रिका, चिट्ठी। काती = छुरी, कैंची। गाथ = गाथा, कहानी। बूढ़वारे को = बुड्ढा को। जोगबातें = योग की बातें। बतराते = बातचीत करते हुए। पियराइ = पीलापन ॥५९॥

३—भा० भू० ४।१९२ ।

मैं। जथा मतिराम दोहा—"बारि बिलोचन बारि को, बारिध बढ़ै अपार। बारै जवन बियोग की बड़वानल की झार" ॥ और दोषाकर ब्रज स्याम, कूर कुबरी नाम क्यों न करे, दोषाकर अथ दोष को खान, तो ऐसी बाम क्यों न करे, यातें निरुक्ति। दोहा—"सो निरुक्ति[1] जब जुक्ति सों अर्थ कल्पना आन। ऊधो कुबिजा बस भये निरगुन वहै निदान ॥" जोग सो शब्द को अर्थ करि यह जानिए निगुन ब्रह्म जामे सत, रज, तम ए तीन गुन नहीं। यहाँ निर्गुन जो अज्ञान, जाको रूप शील को पारिख नही। कूबरी सों कौन गुन जानि वश भये। और दीनदयाल साईं जो दीन पै दयाल होइ अर्थ फेरि साधन ते बिधि अलंकार। "अलंकार बिधि[2] सिद्ध जो, अर्थ साधिये फेरि। कोकिल है कोकिल जबै रितु मै कहिये टेरि ॥" इहाँ कोकिल तो सिद्ध है, ताको फेरि साध्यौ। इहाँ कूबरी को कोकिल मधुर ध्वनि नकता की नहीं। यह अर्थ स्याम पाती नाहीं लिखे काती मारिबे को पाती के अर्थ को निषेध, ताते प्रतिषेध। "सो प्रतिषेध[3] निषेध जो, अर्थ निषेधो जाय। मोहन कर मुरली नहीं, यह कछु बड़ी बलाइ ॥" जहाँ एक वस्तु प्रसिद्ध ही निषेधा है, सब जानत, ताको निषेध प्रसिद्ध करिकै और अर्थ भाषै। और जोग की बातैं कही। जोग बात कारन, आह वढ़ो सुख ते कारज। और पियराई अंग चली—पीर कारन, पियराई कारज, एकता को प्राप्त भयो हेतु अलंकार। दोहा—"हेतु अलंकृत दोइ है, कारन कारज संग। कारन कारज ए जब, लहै एक ही अंग ॥" कारन को कारज के लिये बरनें क्रिया जहाँ कारन कारज एकता को प्राप्त होय। यथा दोहा—"उदित भयो शशि मानिनी मान मिटायो जानि। मेरे रिधि समिद्धि ए तेरी क्रिया बखानि ॥" उदय चद्र कारन, मान छूटो काज, रिद्धि समिद्धि को कारन, क्रिया रिद्धि समृद्धि काज, तो एकता। मतिराम—"दरपन मे निज छबि लखै, नैननि मोद उमंग। तिय मुख पिय बसि करनसो, चढ़ो गरब को रंग ॥" निज छबि देखबो कारन, मोद उमग कार्य, पिय बस करनो कारन, मुख मे गरब को रंग बढ़िबो कार्य एकता सो इति ॥ ५९ ॥

इति श्री दिग्विजयभूषणे टीकायाम् अलङ्कारससृष्टिक्रम बर्णन नाम दशम प्रकाश ॥१०॥

१—भा० भू० ४।१९३। २—भा० भू० ४।१९५।
३—भा० भू० ४।१९४। ४—भा० भू० ४।१९६।
५—भा० भू० ४।१९७।



एकादशः प्रकाशः

दो०—अब दोहन में रचत हौं, अलंकार एक रूप।
दिगविजय बरन सुधारि पढ़ि, सुनहु कबिन के भूप ॥१॥
ग्रंथ नाम धरि दिगविजय भूषन रूप बिशाल।
भूषन हैं बहु भाँति के, बड़ा ताहि में माल ॥२॥

टीका—अलंकार सत्प्रवर्णनापरि दोहन मो अलंकार वर्णन करत है। इस हेतु कविजन मों विनय प्रार्थना कर है और ग्रन्थ का दिग्विजय भूषण नाम धरया, सो भूषण अनेक प्रकार के हैं, कोनों बड़ा कोना छोटा, तामें माला सबसों श्रेष्ठ है ॥१, २॥

सो माला द्वै भाँति के, मनमाला मनिमाल।
मनिमाला गर मैं रहै, अरु सुमिरे हरि हाल ॥३॥
तामे दाने एक से आठ, भाति अभिराम।
अहैं काहू यहि ग्रंथ मे, समुझि कहौ परिनाम ॥४॥
अलंकार यहि ग्रंथ मै, यक से आठ ललाम।
सो सब दोहन में लिखे, भूप दिग्विजय नाम ॥५॥
पूरन उपमा आदि मैं, हेतु अलंकृत अंत।
क्रम सों बरनन करत हौं, नृपति नाम मतिवंत ॥६॥

टीका—सो माला द्वे प्रकार को—एक मनमाल, दूसरो मणिमाल। मणिमाल कंठ मे शोभित होवै है अरु वासों हरि का नाम लिया जाय है। तामें एक सौ आठ दाने होय है। इसी हेतु इस प्रस्तुत ग्रन्थ मे एक सौ आठ अलंकार माला गत दाने के स्थान में नियुक्त किया है। पूर्णोपमा से लै हेतु अलंकार पर्यंत क्रम पूर्वक महाराज बहादुर दिग्विजय सिंह के नाम मे अलंकार निकरैगा ॥३–६॥

(पूर्णोपमा)

चौपाई–वाचक धर्म जहाँ उपमान। लहि उपमेय चारि यक ठान ॥७॥

दो०—कवि कोविद कुल कमल बन, प्रफुलित निरखि विलास।
भूप दिग्विजे सिंह को, रवि लौं तेज प्रकास ॥८॥

टीका—लक्षण–जहाँ उपमान, उपमेय, वाचक शब्द लौं सों जिमि यथा जैसा तुल्य सदृश सम इत्यादि और साधारण धर्म, चारयों का उपादान होय तहाँ

उपमालकार जानिये। उदाहरण-कवि काविद०—इहाँ तेज उपमेय, रवि उपमान, लौ वाचक, कवि कोविद कुल कमल बन को बिकसिबो साधारण धम को उपादान, यातें पूर्णोपमा अलकार ॥७-८॥

(लुप्तोपमा)

चौपाई-वाचक धर्म उपमानोपमेय। यक द्वे त्रे बिनु लुप्तमसेय ॥९॥

दो०—भूप दिग्विजय सिंह की, कीरति चद बिचारि।
सो रित कायर कोकनद, मोद चकोर निहारि ॥१०॥

टीका—लक्षण-उपमेयादि चारों के मध्य एक वा द्वै अथवा तीन्यों के उपादान न रहिबे के कारण आठ प्रकार की लुप्तोपमा होय है। १—वाचक लुप्ता, २—धमलुप्ता, ३—धमवाचकलुप्ता, ४—उपमेयलुप्ता, ५—उपमानलुप्ता, ६—वाचकोपमान लुप्ता, ७—धमोपमानलुप्ता, ८—धमोपमानवाचक लुप्ता। उदा०—कीरतिचद पद में धम वाचक को लोप, कायरकोकनद पद में वाचक को लोप, मोद चकोर निहारि पद में वाचक उपमेय को लोप जानिये ॥९,१०॥

(उपमानोपमेय)

चौपाई-उपमा लगै परसपर रेखे। उपमानो उपमेय अलेखे ॥११॥

दो०—भूप दिग्विजै सिंह को, पुज प्रताप बखानि।
तज तरनि सों मानिए, तरणि तेज सों जानि ॥१२॥

टीका—लक्षण-जहाँ परस्पर उपमानोपमेयभाव होय अथात् एक बार वह उपमान ओर दूसरो उपमेय, एक बार दूसरा उपमान वह उपमेय, तहाँ उपमेयोपमा अलकार जानिये। उदाहरण-तेज तरणि सों तरणि तेज सो पय्यास करि उपमानोपमेयभाव, यात उपमेयोपमा अलकार ॥ ११,१२ ॥

(अनन्वय)

चौ०—उपमेई उपमान बखानौ। ताहि अनन्वय कविमति ठानौ ॥१३॥

दो०—परम धरम दाया बिनय, दान कृपान बखानि।
भूप दिग्विजय सिंह सम, भूप दिग्विजय मानि ॥१४॥

टीका—ल०—जहाँ एकै को उपमान उपमेय करि वणन कीजिये तहाँ अनन्वय अलकार जानिये। उदा०—भूप दिग्विजय क तुल्य भूप दिग्विजय ही, तात्पय्य कि उपमान नहीं देखाय परै है, यात अनन्वय अलकार ॥ १३,१४ ॥

कोकनद = लाल कमल ॥१०॥ तरनि = सूर्य ॥१२॥

(प्रतीप प्रथम)

चौ०—उपमा कहँ उपमेय करै जहँ। प्रथम कहत परतीप लोग तहँ॥१५॥
दो०—भूप दिग्विजय पानि ने, फेरे मुग्दर चण्ड।
ता भुज दण्डन सों लसत, दन्ती शुण्डादण्ड॥१६॥

टीका—ल०—जहाँ उपमान को उपमेय करि वर्णन कीजे तहाँ प्रथम प्रतीप। उदा०—भूप दिग्विजय जा भुज सों अति गुरु मुद्गर फेर है वा भुज सम दन्ती कहे हस्ती को शुण्डादण्ड लग्वियतु है। इहाँ शुण्डादण्ड उपमान को उपमेय करि वर्णन कियो, याते प्रथम प्रतीप अलंकार॥ १५, १६॥

(दूसरो प्रतीप)

दो०—उपमे को उपमान तें, आदर जबै न होइ॥१७॥
अरि तिय कहि निज तेज लखि, जनि गुमान अवरेखि।
भूप दिग्विजय सिंह को, तेज तरणि उत देखि॥१८॥

टीका—ल०—जहाँ उपमेय को उपमान करि वर्णन करिबेहू पै उपमेय को अनादर लक्षित होय, तहाँ दूसरो प्रतीप। उदा०—तेरो शत्रु अपने तेज लखि जनि गुमान करै, तमाइ भूपदिग्विजयसिंह को तेज तरनि को लखै। इहाँ तेज उपमेय, तेज तरणि उपमान को उपमेय पायबे हू पै अपनो अनादर ठहरावे है, याते दूसरो प्रतीप अलंकार॥ १७, १८॥

(तीसरो प्रतीप)

चौ०—अन आदर उपमेय ते पावै। उपमानै प्रतीप त्रय गावै॥१९॥
दो०—भूप दिग्विजय सिंह के, बाजी वेग बिशाल।
मन्द लगै गति पौन की, जबहि चलै रवहाल॥२०॥

टीका-ल०-जहाँ उपमेय को उपमेय लाभ होयवे हू पै उपमान को अनादर होय, तहाँ तीसरो प्रतीप अलंकार। उदा०-भूप दिग्विजय के बाजी के आगे पवन की गति मंद लगै है। उपमान पवन, बाजी उपमेय को उपमेय पायबे पर अपनो अपमान सूचित किया कि मेरो बराबर बाजी कहाँ चलैगो, यातें तीसरो प्रतीप अलंकार॥१९, २०॥

(चौथा प्रतीप)

चौ०—उपमे ते उपमानहि देखो। सम लायक नहिं चौथ बिसेखो॥२१॥

पानि = हाथ। भुजदण्ड = बाहु, भुजायें। दन्ती शुण्डादण्ड = हाथी को सूंड॥१६॥
अवरेखि = कर या मानें॥१७॥ बाजी = घोड़े। रवहाल = ध्वनिवत्॥१९॥

दो०—भूप दिग्विजय सिंह के, पील पुञ्ज समताहि ।
लखि कारे रंग मेघ से, कहे कौन बिधि जाहि ॥२२॥

टीका—ल०–जहाँ उपमेय के साथ उपमान की उपमा की असिद्धि ठहरै, तहाँ चोथो प्रतीप। उदा०—भूप दिग्विजय के गजन को लखि स्याम मेघ के समान यह कैसे कह्यो जाय है। इहाँ गज उपमेय के साथ उपमान स्याम घन की समता की अनिष्पत्ति, याते चोथा प्रतीप ॥ २१, २२ ॥

(पाँचवाँ प्रतीप)

चौ०—बृथा होइ उपमान जहाँ लहि। पचवाँ सो प्रतीप कविता कहि ॥२३॥

दो०—भूप दिग्विजय सिंह की, कीर्ति को करै बखान ।
कीरति आगे चद्र कर, मद कहै मतिमान ॥२४॥

टीका—ल०–जहाँ उपमेय के आगे उपमान व्यर्थ ठहराया जाय, तहाँ पाँचवाँ प्रतीप अलंकार। उदा०—भूप दिग्विजय सिंह की कीर्ति को को बखानि सकै। कीर्ति के आगे चन्द्रमा के किरण को बुधजन मंद ठहरावै हैं। कीर्ति उपमेय के समक्ष उपमान चन्द्रकिरण की व्यर्थता देखायो, याते पंचम प्रतीप अलंकार ॥ २३, २४ ॥

(षट् रूपक)

चौ०—रूपक द्वै बिधि कवि कुल भाषे। करि तद्रूप अभेदहि राखे।
अधिक न्यून सम भेद तीनि करि। मिलि अभेद तद्रूप छइउ धरि ॥२५

टीका—ल०–तद्रूप और अभेद करि रूपक द्वै प्रकार को, अधिक न्यून सम वर्णन सों प्रत्येक अर्थात् तद्रूप और अभेद दोऊ तीनि प्रकार, याते षट् भेद रूपक को जानिए ॥ २५ ॥

(तद्रूप अधिक रूपक)

दो०—वा रबितै हैं छबि अधिक, द्योसनिसा यक रूप ।
भानु समान प्रताप अति, उदे दिग्विजय भूप ॥२६॥

टीका—उदा०–प्रसिद्ध सूर्य्य सो दिग्विजय भूप के प्रतापतपन को दिनौराति उदित रहिबे के कारन अधिक तद्रूप अलंकार ॥२६॥

(समतद्रूप)

भूप दिग्विजयसिंह के, गज गिरि सदृश बिचारि ।
मंजु नीर मद झरत है, झरना पुंज निहारि ॥२७॥

पील पुंज=हाथियों का झुंड ॥२२॥

टीका—उदा०—भूप दिग्विजय के गज को पर्वत करि बरनन कियो। मदधारा और झरना झरिवे कारण समानता स्थाय सम तद्रूप अलंकार ॥२७॥

(न्यूनतद्रूप)

दो०—कवि कोविद कुल कमल को, दुख न देत हरि भोर।
भूप दिग्विजय सिंह को, सुयस चन्द चहुँ ओर ॥२८॥

टीका—उदा०—कवि कोविद कुल कमल को जहाँ दुख न्यून है। भूपति के यश चन्द्र को न्यून ठहरायो, याते न्यून तद्रूप अलंकार ॥ २८ ॥

(अभेद सम रूपक)

दो०—मंजु पुंज छबि छाजई, रंग परम अवरेखि।
भूप दिग्विजय सिंह को, कर है कंज विसेखि ॥२९॥

टीका—उदा०—भूपति के कर को कमल के समान सो दर्शै और सुगंध युक्त होयवे के कारण समाभेद रूपक अलंकार ॥ २९ ॥

(अधिक अभेद रूपक)

दो०—नीतिमान दिग्विजय नृप, न्याय सिंधु सरसाइ।
निशि दिन कीरति चन्द्रमा, बिनु अकलंक लखाइ ॥३०॥

टीका—उदा०—भूप को ज्ञान चन्द्रमा को निशिदिन प्रकाशमान रहिबे के कारन अधिक अभेद रूपकालंकार ॥ ३० ॥

(न्यून अभेद रूपक)

दो०—रतनाकर दिग्विजय नृप, नीति नीर अधिकात।
बिनु मद माहुर के लखे, औरै कहि अवदात ॥३१॥

टीका—उदा०—नृप दिग्विजय को नीति समुद्र को बिना मद माहुर के न्यून अभेद रूपक अलंकार ॥ ३१ ॥

(उल्लेख द्विविध)

चौ०—एकहि बहुत अनेकहि जानै। बहुन अनेकन भाँति बखानै ॥३२॥

दो०—प्रथम-भूप दिग्विजय को कहैं, अरि उलूक आदित्य।
जाचक जाने करन कलि, प्रजा बिक्रमादित्य ॥३३॥

टीका—लक्षण—जहाँ एक को बहु मिलि बहु प्रकार वर्णन करै अथवा एक ही को विषय भेद ते बहु विधि में वर्णन कीजिये, तहाँ द्वे प्रकार को उल्लेख

द्योसनिसा = दिनरात ॥२६॥ कंज = कमल ॥२९॥
मद माहुर = मद्य और विष। अवदात = प्रकाशमान ॥३१॥

जानिए। उग्नाहरन–भूपदिग्विजय को अरिउलूक आदित्य करि जान्यो, याचक वर्ण, प्रजा विक्रमादित्य जानै है। एक भूप को अरिउलूक आदि आदित्यादि करि जान्यो, यातें प्रथम उल्लेख अलंकार ॥ ३२, ३३ ॥

द्वितीय—जस मै शशि रबि तेज मैं, गुन मै गुननिधि जानि।
भूप दिगविजय सिंह को, यहि सम कही बखानि ॥३४॥

टीका-एक भूप दिग्विजय सिंह को यश मे शशि सम, तेज मे रवि सम, गुग में गुगनिधि सम, विषय भेद करि बर्णन कियो, यातें दूसरो उल्लेख ॥३४॥

(परिणाम)

चौ०—करै क्रिया उपमान होइ करि। बरननीय परिनाम नाम धरि ॥३५

दो० -भूप दिग्विजय नित करै, न्याय प्रगट प्रछन्न।
कर पकजनर त लिखत, पय पानी करि भिन्न ॥३६॥

टीका—लक्ष०—जहाँ उपमान उपमेय ह्वै क्रिया करै, तहाँ परिणाम अलकार। उदाहरन–भूपति प्रकट गुप्त याय करि कर कमल सों नीर छीर भिन्न करि लिखै है। कमल उपमान, उपमेय कर ह्वै क्रिया लिखबे मे कार्य्य कारी भयो, यात परिणामालकार ॥ ३५, ३६ ॥

(स्मृति)

चौ०—लखि अबर्न्य सुधि बर्न्य कि आवै। अलकार सुमिरन कवि गावै।

दो०—अरि नगरीन के नारि नर, जेठ तरनि को देखि।
समुझत नृप दिग्विजै के, भुज प्रताप बिशेषि ॥३८॥

टीका—लक्ष०—जहाँ वर्णनीय के तुल्य को बिलोकि सुधि आवै, तहाँ स्मृतिमान् अलकार। उदा०—अरि नगरी जेठ क महीने के सूर्य्य को देखि अरि नगर के बासी समुझत कहै सुधि करत हैं कि भूप को प्रताप ऐसो है ॥३७, ३८॥

(भ्रम)

चौ०—सदृश रूप लखि अनियत ज्ञान। भ्रम उपजै भ्रम कहै सयान ३९

दो०—भूप दिग्विजै सिंह की, कढत जबै करबाल।
अरि सैना तड़िता कहैं, तड़पै तेज कराल ॥४०॥

टीका—लक्ष०—सदृशरूप अवलोकि के अनियत ज्ञान होय तहाँ भ्रान्ति अलकार। उदा०—करवाल तरवारि चमकती देखि अरि की सैन तडिता कहै बिजुली होय ॥३९, ४०॥

प्रछन्न = गुप्त रूप से ॥३६॥ जेठतरनि = ज्येष्ठमास का सूर्य ॥३८॥
कढ़त = निकलती है। करवाल = तलवार। तड़िता = बिजली ॥४०॥

(संदेह)

चौ०—नियत ज्ञान जहँ होत नहा है। अलंकार संदेह तहीं है ॥४१॥

दो०—किधौं वृषाग्नित तेज यह दुष्टन के हिए ताप।
किधों दिगविजय भूप के, राजै पुन प्रताप ॥४२॥

टीका—लक्ष०—जहाँ नियत ज्ञान एक वस्तु पर न होय तहाँ संदेहालंकार। उदा०—वृषादित्य कहै वृष के सूर्य होय कै भूप को प्रताप ॥४१, ४२॥

(शुद्धापह्नुति)

चौ०—धर्म दुरै आरोपहि त जहँ। शुद्धापह्नुति कवि बरनै तहँ ॥४३॥

दो०—भूप दिगविजय सिंह के, यश कवि करै प्रकाश।
कीर्त्तिकौमुदी होइ नहि, यह त्रिदिवदारा हाँस ॥४४॥

टीका—लक्ष०—जहाँ आरोप ते धर्म छपि जाय वहाँ अपह्नुति अलंकार। उदा०—यह कीरति को कौमुदी कहै चंद्रिका न होय दिव कहै आकाश में देवदारा कहै देवतन की स्त्रियों की हाँस होय ॥४३, ४४॥

(हेतु-अपन्हुति)

चौ०—वस्तु दुरावै जुक्ति बात करि। हेतु अपह्नुति कवित माहं धरि ।४५।

दो०—नीति चंद तीछन लखे, नहि रवि रैन में होइ।
तेज दिग्विजै भूप को, दुष्ट लोग कहि सोइ ॥४६॥

टीका—ल०—जहाँ वस्तु जुक्ति से छपावै तहाँ हेतु अपह्नुति। उदा०—नीति के चंद ताक्षन कहै प्रचण्ड, अरि लोग अवलोकि कह्यो, पर शत्रु सुन रवि कह्यो, नाहीं रैनि रवि कहाँ उदै होय, है यह भूप को तेज है ॥४५, ४६॥

(छेकापह्नुति)

चौ०—करै कल्पना भय से मिथ्यै। छेकापह्नुति कहि समरथ्यै ॥४७॥

दो०—भूपदिग्विजै दल अचल, दुष्ट कँपै सुनि कान।
पूँछे काहू सों कहै कंप बयारि सयान ॥४८॥

टीका—ल०—जहाँ कल्पना भय कहै डर सों होय। तहाँ छेकापह्नुति।

वृषादित = वृषराशि का (ज्येष्ठ का) सूर्य ॥४२॥

दुरै = छिपता है ॥४३॥ दिविदारा हाँस = देवाङ्गनाओं की हँसी ॥४४॥

समरथ्यै = समर्थ कविगणों ने ॥४७॥

उ०-दल अदल सुनि दुष्ट काँपै, कोउ पूछो तासों कहै यह कप बयारि कहै राग है ।।४७, ४८।।

(भ्रातापह्नुति)

चौ०—औरन भय मेटै कहि साँच। भ्रातापह्नुति ऊदहि बाँच ।।४९।।
दो०—दाह करत अति आगि नहि, यह तप तेज दिनेस।
बदकारी नर यह कहै, लखि दिग्विजय नरेस ।।५०।।

टीका—ल०-वचन रचना से ओरन के भय मिटै कहै भ्रम मिटै तहाँ भ्रातापह्नुति। उ०-दाह कहै जलन करत अगिन होय, नहीं भूप के तेज होय सूर्य ।।४९, ५०।।

(कैतवापह्नुति)

चौ०—कैतवपह्नुति मिसि करि आनै। बरनै कैतवपह्नुति ठानै ।।५१।।
दो०—तुरंग चढ़े दिग्विजै नृप, यह न कहो लखि प्रात।
रबि राजत है रथहि पर, बाजी मिसि महि जात ।।५२।।

टीका—लक्षन—मिस कहै बहाना करि जहाँ अ य को बरने तहाँ कैतवापह्नुति। उ०—तुरग कहै घोड़ा पर सवार प्रात समै देखि यह न कहो कि भूप होय, यह रबि कहै सूर्य होय घोड़ा के मिसि पृथ्वी पर जात है ।।५१, ५२।।

(पर्यस्तापह्नुति)

चौ०—औरहि के गुन औरहि माँही। आरोपित परजस्त लखाहीं ।।५३।।
दो०—भूप दिग्विजै सिंह को, करन कहो यह होय।
कल्पवृक्ष की डार है, झरत दान फल सोइ ।।५४।।

टीका०—लक्ष०-और के गुण और में होय तहाँ परजस्तापह्नुति। उ०-भूप के यह करन कहो दान देत मै, कल्प की डार कहै साखा है, दान फल को झरते है ।।५३, ५४।।

(उत्प्रेक्षा)

चौ०—उत्प्रेक्षा सभावना कारए। बरतु हेतु फल त्रैबिधि धरिए।
सिद्धअसिद्ध विषय दुई भाँती। दुइ तै तीनि गुने षट् जाती ।।५५।।

टीका—लक्ष०-उत्प्रेक्षा तीन बस्तु, हेतु, फल। बस्तु में दो भेद उक्तास्पद, अनुक्तास्पद। हेतु म दो भेद सिद्धविषय, असिद्ध विषय। फल में दो भेद असिद्ध विषय, सिद्धविषय। जाकी सम्भावना की, जैसा सम्भाव्यमान, जाहि विषय

बदकारी = कुकर्मी ।।५०।। मिसि = बहाने ।।५२।।

सम्भावना कीजे सो आस्पद, जहाँ क्रिया आगे मानो किधौं निश्चे, लौं इत्यादि इत्यादि वाचक आवै सो अनुक्तास्पद ॥ ५॥

(वस्तु उत्प्रेक्षा)

दो०—भूप दिग्विजै सिंह सिर, मुकुट रतन नवकांति।
रवि मंडल मंडित किए, मनहु नवग्रह पाँति ॥५६॥

टीका—उदा०-मुकुट के रतन। नव मानो नवग्रह की पाँति होय रहत सँभाव्यमान वस्तु, ताते वस्तूत्प्रेक्षा ॥ ६॥

(हेतूत्प्रेक्षा)

दो०—भूप दिग्विजय सिंह को, कीरति कांति निहारि।
मंद प्रभा यात भए, दिन मैं चंद विचारि ॥५७॥

टीका—उ०-कीरति निहारि दिन मे चंद मंद भय। चंद्रमा तो स्वतः ही सदा ही दिन मे मलिन रहत, अहेतु को हेतु मा यो, तातें हेतूत्प्रेक्षा सिद्धि ॥५७॥

(फलोत्प्रेक्षा)

दो०—भूप दिग्विजै सिंह को, कीति कला सम होन।
भयो न मान हानि ससि, सोच स्यामता तान ॥५८॥

टीका—कीर्त्ति कला सम होन शशि चंद्रमा के ग्लानि आयो। स्याम कहे कारे भये। सम होन फलोत्प्रेक्षा, तातें फलोत्प्रेक्षा ॥ ५८॥

(रूपकातिशयोक्ति)

चौ०—केवल जहँ लखिए उपमान। तासौं उपमेयहि को ग्यान ॥५९॥
दो०—कढ़ै सोन के विवर ते, बक्र साँपिनी स्याम।
भूप दिग्विजय शत्रु को, शिर काटे परिनाम ॥६०॥

टीका—लक्ष०-जहाँ केवल उपमान तहाँ रूपकाति०। उदा०-कढ़े सोन० सोन के विवर कहै मियान उपमेय, बक्र रूप कहै टेढ़ साँपिन कहै तरवारि उपमेय, ताते अतिशयोक्ति रूपक ॥५९, ६०॥

(संबंधातिशयोक्ति)

चौ०—देइ अजोगहि जोग जहाँई। सबंधातिशयोक्ति तहाँई ॥६१॥
दो०—भूप दिग्विजय सिंह के, द्विरद अनंत निहारि।
सुंड सीकरन नीर को, नीरद पियहि पियारि ॥६२॥

सोन के विवर = सुवर्ण के छिद्र। वक्र = टेढ़ा। सोने की मियान से निकलती हुई तलवार का, विवर से निकलती हुई सर्पिणी रूप में वर्णन किया गया है ॥६०॥

टीका—लक्ष०—जहाँ अयाग को याग में कथन होय तहाँ संबधाति सयोक्ति । उ०—द्विग्द कहै हाथी, सुण्ड के सीकरन कहै बूँद को, नीरद कहै मेघ पियै है । अयाग यह याग में कथन ॥६१, ६२॥

(असंबंधातिशयोक्ति)

चौ०—जोग अजोग बखानै जहँ कबि । असबधि सै उक्ति तहाँ फबि ॥६३॥

दो०—भूप दिग्विजै सिंह के, करि मै दान बखानि ।
नृपति करन सम होइ नहिं, करन भए जो दानि ॥६४॥

टीका—ल०—योग अयोग जहाँ बखानै तहाँ असंबधाति० । उदा०—भूप के करन कहै कर सम जो करन नृप पूर्व हो गए, न है है ॥६३, ६४॥

(अक्रमातिशयोक्ति)

चौ०—कारन कारज संग जहाँ लहि । अक्रमातिसै उक्ति तहाँ कहि॥६५॥

दो०—भूप दिग्विजयसिंह जब, लहत सिकार प्रसग ।
बान सरासन मेर शिर, लागत एकहि संग ॥६६॥

टीका—ल०—जहाँ हेतु कार्य्य साथ ही होय तहाँ अक्रमातिशयोक्ति अलकार । उदा०—भूपति जबही आखेट को व्यवहार अर्थात् शिकार खेलिबे जाय हैं तब बाण धनुष में लागत ही व्याघ्र के शिर छिन्न ह्वै के भूमि में गिरि परै है । इहाँ धनुष बाण सयोग हेतु काल व्याघ्र शिरश्छेद कार्य को साथ ही वर्णन कियो, यातें अक्रमातिशयोक्ति अलङ्कार ॥६५, ६६॥

(चपलातिशयोक्ति)

चौ०—कारज हेतु प्रसग ज्ञान जहँ । चपल शयोक्ति बखान करै तहँ ॥६७॥

दो०—बैरी बनिता श्रवन सुनि, भूप दिग्विजय नाम ।
जेहरि ढीली जघ चढि, छला चढी भुज बाम ॥६८॥

टीका—ल०—जहाँ हेतु कहँ कारण के प्रसग सों कार्य्य की उत्पत्ति होय तहाँ चपलातिशयोक्ति अलकार । उदा०—यहाँ भूपति के नाम श्रवण मात्र

सुड सीकरन नीर को = सूड़ से निकलती जलबिन्दुओं को । नीरद = बादल । पियारि = प्रेम से ॥६२॥ करन = हाथों के ॥६४॥ लहत = जाते हैं । शरासन = धनुष ॥६६॥ जेहरि = नूपुर, पाजेब । छला = छल्ला, चूड़ी ॥६८॥

ही सों शत्रुवनितान की जेहरि लक चढा और चूरी भुज पे चढा। नामश्रवण हेतु प्रसंग, तातें जेहरि और चुरी का ढील ह्व लक भुज चढिबो कार्य्य की उत्पत्ति यातें चपलातिशयोक्ति अलकार ॥ ७, ६८॥

(अत्यतातिशयोक्ति)

चौ०—पूरब पर क्रम है जहँ नाहीं। अत्यतातिशयोक्ति लखाहीं ॥६९॥
दो०—भूप दिग्विजय सिंह के, द्वार दीन जो जाइ।
सनोमान पीछे लहै, पहिले विपति नसाइ ॥७०॥

टीका—ल०—जहाँ पौर्वापर्य्य व्यतिक्रम होय अथात् पूर्व का पछारी होय वा पाछे को पहिले होय सो अत्यतातिशयोक्ति अलकार। उदा०—इहाँ दीन की दीनता कहै विपति को नाश पहिले बर्णन, पश्चात् सन्मान कहै दान देबो कह्यो, याते अत्यन्तातिशयोक्ति अलकार ॥६९, ७०॥

(भेदकातिशयोक्ति)

चौ०—औरै और भेद गुन बरनै। भेदकातिशयोक्ति अचरनै ॥७१॥
भूप दिगविजय सिंह सों कपट करत जो आइ।
औरै औरै अग रग, औरै वह है जाइ ॥७२॥

टीका—ल०—जहाँ प्रसिद्ध बर्णनीय सों प्रस्तुत बर्णनीय को और ही कछू भेद बर्णन होय तहाँ भेदकातिशयोक्ति अलकार। उदा०—इहाँ भूपतिसों कपट करिबे वारे को प्रसिद्ध अग रग को ततकाल और ही ह्वैजायबो बर्णन, यातें भेदकातिशयोक्ति अलकार ॥७१, ७२॥

(तुल्यजोगिता)

चौ०—बर्न्य अबर्न्यहि एकधर्म धरि। तुल्यजोगिता प्रथम नामकरि ॥७३॥
दो०—भूपदिगविजय सिंह के, न्याय भानु को देखि।
पावत पुज प्रकाश को, पकज सुकबि बिसेषि ॥७४॥

टीका—ल०—जहाँ वर्ण्य कहै प्रस्तुत, अवर्ण्य कहै अप्रस्तुत को गुण क्रिया रूप एक धर्म में अन्वय होय तहाँ तुल्ययोगिता अलकार। उदा०—इहाँ भूपति के न्याय भानु को देखि पकज कमल सुकवि के विकाश को कह्यो। पकज अप्रस्तुत सुकवि प्रस्तुत को विकाश रूप एक क्रिया में अन्वय, याते तुल्ययोगिता अलकार ॥७३, ७४॥

(दूसर तुल्यजोगिता)

चौ०— गुन सों जहँ उतकृष्ट बराबरि। तुल्य जोगिता दूसर को धरि॥७५॥

सनोमान = सम्मान, आदर ॥७०॥

दो०—शिबि दधीच हरिचद बलि, करन भोज की रीति।
भूप दिग्विजय सिंह राखै, करत बराबरि नीति ॥७६॥

टीका—ल०-जहाँ उत्कृष्ट गुण करि वर्ण्यावर्ण्य की समानता देखावै तहाँ दूसरा तुल्ययोगिता। उदा०-इहाँ भूपति को समानता शिबि दधीच आदि की रीति के साथ वर्णन किया, यातें दूसरी तुल्ययोगिता अलङ्कार ॥७५, ७६॥

(तीसर तुल्यजोगिता)

चौ०—शत्रु मित्र पै वृत्ति जहाँ सम। तुल्यजोगिता के तीसर क्रम ॥७७॥

दो०—हित अनहित का करत है, मान दिग्विजय भूप।
ज्यौं जवास दै चातकहि, बारिद बारि अनूप ॥७८॥

टीका—ल०-जहाँ हित अहित में वृत्ति तुल्यता बर्णन कीजिए वहाँ तीसरी तुल्ययोगिता। उदा०-इहाँ हित अनहित को मान करिबा अथात् हित को मान कहैं प्रतिष्ठा और अहित को मान कहैं लक्ष्मी नहीं रखै है, इस हेतु वृत्तितौल्य, यातें तीसरी तुल्ययोगिता अलङ्कार ॥७७, ७८॥

(दीपक)

चौ०—वर्ण्य अवर्ण्य हि एकइ धर्म। दीपक ताहि कहैं कवि पर्म ॥७९॥

दो०—भूप दिग्विजय सिंह की, देखे राज समाज।
बुद्धिमान ते छबि महा, शुभ सुरते सुर राज ॥८०॥

टीका—ल०-जहाँ वर्णनीय अरु अवर्ण्य के धर्म येकई होइ तहाँ दीपक अलङ्कार। उदा०—भूप को राज समाज कहै सभा बुद्धिमान ते शोभित तैसे सुर कहैं देवतन सें सुरराज ॥७९, ८०॥

(दीपकावृत्ति)

चौ०—पद की आवृत्ति पहिलो कहिए। धरि अर्थहि सों दूजो लहिए।
पदहि अर्थ सो तीजे कहिए। त्रिबिधि दीपकावृत्तिहि गहिए ॥८१॥

टीका—ल०-दीपकावृत्ति तीन, प्रथम में पद की आवृति, दूसरे में अर्थ की आवृति, तीसरे में पद और अर्थ दुहुन की आवृति ॥८१॥

(पद आवृत्ति)

दो०—भूप दिग्विजयसिंह जब तानि सरासन तीर।
सर सोहै सिर सेर के, सरसो घाय अधीर ॥८२॥

जवास = कण्टकी, एक काँटेदार वृक्ष। बारिद = मेघ ॥७८॥ पर्म=परम ॥७९॥
सर = बाण। सेर = सिंह। सरसो = फैल गया। घाय = घाव ॥८२॥

टीका—उदा० प्रथम—भूप ने तार को छाडे, सर माहे०—शर कहै तीर सोहै कहै शोभित है। सर के सिर मो घाय कहै अधिक घाय है ॥८२॥

(दूसर अर्थ आवृत्ति)

दो०—भूप दिग्विजय सिंह के, निरखे बाग विशाल।
फूली लतिका फूल की, बिकसे विशद रसाल ॥८३॥

टीका—दूसरा अर्थ को आवृत्ति, फूली लतिका, विशद रसाल। फूलब विकसब एकइ अर्थ ॥८३॥

(तीसर पद अर्थ हूँ की)

दो०—भूप दिग्विजय सिंह की, दल औ अदल निहारि।
अरि बिलसे बिलखे कुटिल, बिलखे दुष्ट बिचारि ॥८४॥

टीका—तीसर पद अर्थ को आवृत्ति, अरि बिलखे, दुष्ट बिलखे। बिलखै कहै व्याकुलताइ, एकै शब्द अर्थ एकै ॥८४॥

(प्रतिवस्तूपमा)

चौ०—उपमेयो उपमान वाक द्वै। धर्म एक प्रति बस्तुपमाख्यै ॥८५॥
दो०—रबि भ्राजै कर तेज करि, शशि राजै करि कांति।
छाजै छबि नृप दिग्विजय यश प्रताप कर ख्याति ॥८६॥

टीका—ल०—प्रतिवस्तूपमा उपमेयवाक्य अरु उपमान वाक्य दोऊ को धर्म एक, पै भिन्न २ दरशनीय होय, तहाँ प्रतिवस्तूपमा। उदा०—जैसे रबि भ्राजे, शशि राजे, कांति करि छाजे छबि यह। रबि ससि उपमान, भ्राजे राजै पद, छाजे छबि नृप उपमेय वाक्य। भ्राजे राजे को एक अर्थ भयो, तातें प्रतिवस्तूपमा ॥८५,८६॥

(निदर्शना)

दो०—जहँ उपमेय सुवाक्य में, उपमा वाक्य सुजोग।
जो सो करि सुनिदर्शना, कहैं सबै कवि लोग ॥८७॥
मगन सें मीठे बचन, कहिं दिग्विजै नरेस।
उपमा केहि सम दीजिए, सोन सुगन्धित बेस ॥८८॥

टीका—ल०—जहाँ उपमेय वाक्यार्थ में उपमान वाक्यार्थ को जो सो शब्द करि के सुजोग को अर्थ एकता करे तहाँ निदर्शना। उदा० प्रथम—मीठे बचन में सोन सुगन्ध जो सो करि आरोप ते प्रथम निदर्शना ॥८७, ८८॥

दल = सेन। अदल = अदलनीय, शक्तिशाली। बिलसे = शोभते हैं ॥८४॥
भ्राजे = शोभित होते हैं ॥८५॥ मगन = याचक ॥८७॥

दो०—राखै जहँ उपमेय मे, उपमा धर्महि आनि।
उपमा मे उपमेय को, धर्म धरै कवि ठानि ॥८९॥
भूप दिगविजय सिंह के, बाजी बेग निहारि।
गही सदागति सीघ्रता, देखे द्रिगन बिचारि ॥९०॥

टीका—दूसरी–जहाँ उपमेय म उपमान का धम अरु उपमान मैं उपमेय को धम तहाँ दूसरी। उदा०—बाजो के बेग, समार धारन कियो बाजी उपमेय, ताको धम बेग कहै गति पवन उपमान घाडा के है सो धारन किया, यात दूसरी ॥८९, ९०॥

(तीसरमत निदर्शना)

चौ०—जहाँ असत मत क्रिय उपदसै। करिकै तृतिय निदरशन वैसे ॥९१॥

दो०—लाल दिग्विजय भूप के, लडै न पछरै पाँव।
भलो लखावत समरहित, छत्री सूर सुभाव ॥९२॥

टीका—ल०–जहाँ क्रिया करि असत आनि को अथ समुझावै किवा सत भला को समुझावै तहाँ तीसरी निदर्शना। उदा०–दिग्विजय भूप के लाल कहै पक्षी लडत म भागते नहीं, यह क्षत्री रा को शूर का सुभाव दरसावत है। पछरै नही, यह क्रिया सों उपदेश प्रकाशित है ॥ ९१, ९२ ॥

(असत निदर्शना)

दो०—द्विरद दिग्विजय भूप के, झुँकत भूमि अडि जात।
नवल नारि पिय पै चलब, दरसावत सब बात ॥९३॥

टीका—झूमि झुकत अडि जात सो यह नवल नारि कहै नवोढा नायिका के प्रथम समागम की बात दरसावै है ॥९३॥

(दृष्टात)

चौ०—जहाँ बिंब प्रतिबिंब बाक्य द्वै। बर्न्याबर्न्य दृष्टात नाम स्वै ॥९४॥

दो०—तेजवान रबि उवि बना, सेतवान शशि चाल।
भूप दिग्विजय सिंह के, जस परताप बिशाल ॥९५॥

टीका—ल०—जहाँ उपमेय वाक्य अरु उपमान बाक्य भिन्न भिन्न धर्म होय अरु बिंब प्रतिबिंब को भाव देखायो होय, बिंब प्रतिबिंब को अर्थ–एक बात की छाया एक बात मैं परै तहाँ दृष्टात। उदा०–तेजवन्त रवि, शशि शातवन्त त्यौं हो यश प्रताप भूप के विशाल, यह बिंब प्रतिबिंब एक है ॥९४, ९५॥

बाजी बेग = घोड़े की गति। सदागति = वायु ॥९०॥
लाल = पक्षी। पछरै = पिछडते हैं ॥९२॥ द्विरद = हाथी ॥९३॥

(व्यतिरेक)

चौ०—उपमा ते उपमेय अधिक गुन । कहत ताहि बितरेक कबित सुन ॥९६।
दो०—पंकज तें गुन पुंज हैं, बूझ यह किए बिबेक ।
भूप दिग्विजय सिंह के, कर करि कान अनेक ॥९७॥

टीका—ल०-जहाँ उपमान ते उपमेय में कोइ गुण अधिक होइ । उदा०-कै कंज उपमान कर के हैं, कर में अनेक गुण, याते अधिक रूपवान् ॥९६,९७॥

(सहोक्ति)

चौ०—बरनै साथ दुहूँ रस सरसे । है सहोक्ति कारज सुभ दरसे ॥९८॥
दो०—भूप दिग्विजय सिंह जब, जातै रन मयदान ।
अरि प्रताप यक साथ हीं, चढै जाय असमान ॥९९॥

टीका—ल०-जहाँ दुइ बात को साथ ही बरनन होय सहोक्ति ॥९८,९९॥

(विनोक्ति)

चौ०-प्रस्तुत कछु बिन हीन प्रथम कहि । सोभा अधिक हीन प्रस्तुत लहि१००

टीका—ल०-बिनोक्ति प्रस्तुत वर्णनीय ते कछु हीन होइ तहाँ प्रथम, अरु वर्णनीय कछु हीन होय अरु शोभा अधिकी लहै तहाँ दूसरी ॥१००॥

(प्रथम विनोक्ति)

दो०—भूप दिग्विजय सिंह की, नीति सभा सुभ रीति ।
राजत बिना अनीति के, करै काज करि प्रीति ॥१०१॥

टीका—नीति सभा बिना अनीति के सब लोग प्रीति जुत कार्य्य करै हैं, प्रस्तुत कछु छीन ॥ १०१ ॥

(दूसर विनोक्ति)

दो०—भूप दिग्विजय सिंह के, राजै रूप बिलास ।
रोप रुखाई के बिना, सब गुन सरस प्रकास ॥१०२॥

टीका—उदा०-रोष कहै क्रोध, रुखाइ कहै उदासीनता बिना सब सोभा मान् है, कछु बिना अधिक गुन ॥ १०२ ॥

(समासोक्ति)

दो०—समासोक्ति अप्रस्तुतै, प्रगटे प्रस्तुत माँझ ।
चकई हूँ बिलखी लखे, यशशशि अरितिय साँझ ॥१०३॥
भूप दिग्विजै सिंह की, तरनि प्रताप अमंद ।
अमल अंबु फूले कमल, चकहूँ लहै अनंद ॥१०४॥

टीका—ल०—जहाँ कोई प्रस्तुत बर्णन मैं अप्रस्तुत को धर्म प्रगट करै तहाँ समासोक्ति। उदा०–तरनि कहै सूर्य्य प्रताप है सो कमल ऐसे प्रजा लोग फूले कहै अनद है, यह अप्रस्तुत प्रसंग ॥ १०३, १०४ ॥

(परिकर)

चौ०—जहाँ बिशेषन आसै लीन्हे। परिकर अलंकार कवि कीन्हे॥१०५॥
दो०—प्रजापुंज आनद मय, यह कहि बारबार।
नीति मान नृप दिग्विजय, हेरि हनै बदकार ॥१०६॥

टीका—ल०–जो भेद बतावे सो बिशेषण, जाको भिन्न करै सो बिशेष्य, जहाँ आशै को लिये बिशेषण होय तहाँ परिकर। उदा०–नीति आशै बिशेषण है, बद को दंड देहै, जे नीतिमान् होइ है ते अनीत नहीं राखै है ॥१०५, १०६॥

(परिकरांकुर)

चौ०—साभिप्राय बिशेष्य नाम जहं। परिकर अंकुर अलंकार तहँ १०७
दो०—करहु कपट दुरभाव जनि, सिखवै बैरी बाम।
जाहिर चारौ दिशन मैं, भूप दिग्विजय नाम ॥१०८॥

टीका—ल०—सहित अभिप्राय के बिशेष्य होय तहाँ परिकरांकुर। उदा०–दिग्विजय नाम सहित अभिप्राय कहै, दिग कहै दिशा विजै कहै जे जीतै तौ, बैरिन की स्त्री कहै है की कपट न करो चारों दिशा में न बचि हौ ॥ १०७,१०८ ॥

(श्लेष)

चौ०—एक शब्द मैं होत अर्थ बहु। बर्ण्याबर्ण्य दुहूँ मिलि श्लै लहु ॥१०९॥

टीका—ल०—अनेक अर्थ जहाँ शब्दनि मैं रहै, एक बार बर्ण्य में लागै, एक बार अबर्ण्य में लागै, तहाँ श्लेष। तीनि भाँति बर्ण्य, अबर्ण्य, बर्ण्याबर्ण्य ॥ १०९ ॥

(वर्ण्य श्लेष)

दो०—हित पंकज प्रफुलित करै, तुरंग तेज परकाश।
भूप दिग्विजय सिंह है, कैधौं भानु बिलास ॥११०॥

टीका—ल०–भूप पक्षे, हित पकज हित कहै मित्र जे कमल ऐसे है, प्रफुल्लित आनद करै है, तुरग कहै घोड़ा पर जब देखै तेज को प्रकाश। सूर्य पक्षे

तरनिप्रताप = सूर्य का तेज ॥१०४॥ बदकार = अपयश ॥१०६॥
जाहिर = प्रकट ॥१०८॥

हित जो पंकज ताको प्रफुल्लित करैं, तुरग जो बाजी रथ में लगे हैं, तेज जो दीप्ति प्रकाश है ।। ११० ।।

(अवर्ण्य श्लेष)

दो०—लसै शिलीमुख बास जुत, झरैं मंजु मधु मद ।
बाग दिग्विजय भूप की, की यह मत्तगयंद ।।१११।।

टीका—बाग पक्षे–लसै शिलीमुख शिलीमुख कहै भौंर, बास कहै सुगन्ध फूलन के मकरंद करै है । पतग पच्छ–शिलीमुख नाम मृग या शिलीमुख तीर । जो हाथी मतवारे होते हैं । भौंर जो मद बहत ताको पान करिबे को आस पास मँडराते हैं । अथवा शिलीमुख तीर, जो हाथी मस्त हैं छोड़ा कर भागते हैं मारे जात मस्तक में गड़े रहते हैं । मधु कहै मद बहै है ।।१११।।

(वर्ण्य अवर्ण्य)

दो०—पानी बरनि पुरान गुन, शिर बारन करि भंग ।
तेग दिग्विजय भूप की, की तिरबेनी गंग ।।११२।।

टीका—तरवारि पक्षे–पानी बरनि पुरान गुन० पानी कहै आबदारी, पुरान कहै बहुत दिनों की, गुन डोरादिक जौहर । शिर बारन०—शिर कहै मूँड़, बारन कहै हाथी को, भंग कहै काटती है । त्रिबेनी पक्षे–पानी कहै जल, बरनि कहै बखानत है, पुरान कहै शास्त्रादि, गुन कहै तीन प्रकार के जल हैं । स्याम स्वेत रतनार । बार० शिर के बारन कहै केशन को जाते ही सब लोग मुँड़ा डारते इति ।।११२।।

(अप्रस्तुतप्रशंसा)

दो०—अप्रस्तुत प्रसंस ते, प्रस्तुत ही को ज्ञान ।
अप्रस्तुतप्रशंस कहि, ताहि सबै मतिमान ।।११३।।
साल दुसाले माल हय, गज पावेहिं करि काज ।
धन्य सभा के लोग हैं, भूप दिग्विजय राज ।।११४।।

टीका—ल०–अप्रस्तुत प्रशंसा एक तो जहाँ अप्रस्तुत ही को बर्णन होइ, और पर कहै और पर लागै, सो अप्रस्तुतप्रशंसा । उदा०—धन्य वै लोग हैं प्रस्तुत, और उनके समता अन्य नृप के सभा से कोय नहीं, यह अप्रस्तुत इति ।।११३, ११४।।

(प्रस्तुतांकुर)

चौ०—प्रस्तुत मैं प्रस्ताव जहाँ है । प्रस्तुत अंकुर नाम तहाँ है ।।११५।।

दो०—स्वच्छ दिग्विजय भूप की, तजि सेवा जो कोइ।
जो शुक सेवै सेमरै, त्यागि रसालहि सोइ ॥११६॥

टीका—ल०-गोप प्रसंग में प्रधान प्रसंग नि रै, तहाँ प्रस्तुतांकुर, अथवा प्रस्तुत बणन में अ य उपदेशिक भाव होइ। उदा०—स्वामी आछे को सेवा सेवक छाडि कोइ बुरो स्वामी को सेवा करै, यह प्रस्ताइ कहै उपदेशिक भाव है ॥११५,११६॥

(पर्यायोक्ति)

चौ०—कछु रचना की बात प्रथम काह। मिसि करि कारज साधि दुतिय लहि ॥११७॥

दो०—जाहि तेज ते होत है, कैरव कमल बिलास।
सो दिगविजै महीप को, देहि पुंज परकाश ॥०१८॥

टीका—ल०-जहाँ रचना की बात सुधे कहनावनि त्यागि कोई और तरह से कहै तहाँ प्रथम, अवर जहाँ मिसु करि कार्य्य साधै तहाँ दूसर। उदा०-कैरव कमल जेकरे तेज ते बिलास करते हैं। अथ चन्द्र देखे कैरव, सूर्य देखे कमल ते भूपको सो पुंज प्रकाश देहि, यह रचना की बात ॥११७, ११८।

(व्याजस्तुति)

चौ०-निंदा सें जहँ अस्तुति जानहिं। निंदा अस्तुति प्रथम बखानहिं ॥११९॥

दो०—कोढी पगुल आँधरहिं, असन बसन सुख देत।
भूप दिग्विजयसिंह के, कहाँ कहौ यह हेत ॥१२०॥

टीका—ल०-निंदा किए ते अस्तुति निकरै, तहाँ प्रथम कोटि। उदा०—पगुलन को असन बसन देत, सुदर लागन को नहीं यह निंदा। अस्तुति काह निकरे ऐसे नृप दयावान् हैं अधर पगुलन को देत हैं, जिन तें कुछु स्वार्थ नाहीं, यह स्तुति है ॥११९,१२०॥

(व्याजनिंदा)

चौ०—व्याजनिंद निंदहिं सों निंदा। अलकार यह कहै कबिंदा ॥१२१॥

दो०—पर सुख देखत हरषि हिय, नृप दिग्विजै प्रवीन।
परसतापी सों कहै, क्यों न अध बिधि कीन ॥१२२॥

टीका—ल०-एक निंदा से जहाँ दूसरे का निंदा होइ तहाँ व्याजनिंदा। उदा०—पर सुख० पर औरन को सुख देखि भूप हर्षत है। परसंतापी कहै जे

सेमरै = सेमल को। रसाल = आम ॥११६॥

पर सुख देखि बिलखात, तासों कहत है कि बिधि आँधर तुम क्यों नाहीं किए, क्यों कि जेहि नैन ते सम्पति देख तुम्हैं दुःख होत, तो तुम्हैं नैन न चाहिये। यह परसना के निंदा से ब्रह्मा को निंदा भयो, इति ॥१२१,१२२॥

(व्याजस्तुति)

दो०—धन्य नीति तैं निज गुनन, भई जगत मे ख्याति।
भूप दिग्विजय सिंह के, बसति हिये दिन राति॥१२३॥

टीका—ल०—जहाँ एक की स्तुति से दूसरे की स्तुति होय। उदा०—धन्य नीति है, तैं अपने गुनन करि जगत् मे ख्यातिवाली भई, सो भूप के हिय दिन राति बसै है, नीति की अस्तुति ते भूप की अस्तुति इति ॥१२३॥

(निषेधाभास)

चौ०—कहिकै करै निषेध प्रथम कहि। करि निषेध ठहराइ द्विबिधि लहि।
दुरि निषेध बिधि बचन बनाए। तीनि निषेध कबिन ठहराए॥१२४॥

टीका—ल०—निषेधाभास, निषेध नाम मना करना, ताको आभास नाम झलक होइ, सो प्रथम निषेध ॥१२४॥

(प्रथम निषेध)

दो०—भूप दिग्विजय नीति लखि, खल नर कहैं अँधेस।
जाइ दुरावहु दोष अब, नतरु जाहु तजि देस॥१२५॥

टीका—उदा०—जाइ दुरावहु० जाय के आपन दोष कहो, नाहीं देस तजि कहूँ जाहु यहाँ न बचिहो, यह आभास को मूलक है ॥१२५॥

(दूसर निषेध)

दो०—जाचक जन यह कहत है, मिटै दरिद्र कलेश।
कलपबृक्ष पै है प्रगट, कर दिग्विजय नरेश॥१२६॥

टीका—ल०—पहिलो कहि कछु फेरै। पहिले आप कहै फेरि बिचारि कै निषेध करिबे को कहै, तामे करना नहीं निकरै, तहाँ दूसरो निषेधाभास। उदा०—जाचकजन कहै है को दरिद्र कलेस मेटहै कल्पबृच्छ पैह, इहाँ प्रगट कर कहै होय कल्पबृच्छ, भूप के कल्पबृक्ष को चाहो फेर दूर कर को कह्यो ॥१२६॥

(तीसर निषेध)

दो०—क्रूर कपट तजि छपि रहो, बन मे बसौ अदोष।
नीति निपुन दिग्विजय नृप, बूझि कीजिए दोष॥१२७॥

टीका—ल०—जहाँ काहू रचना के बात सों निषेध छपा होइ। उदा०—क्रूर कपट० कपट त्यागि बन में छपाइ रहो। अदोष कहै बिन दोष, नीति

निपुन नृप है समुझिके दोष कहै अपराध को करो, यह कहत है कि समुझि कै अपराध करो यह मना करिबो छपा अर्थात् अपराध न करो। भूप नीति मैं निपुन है, बदकारन को हेरि कै मारि है ॥१२७॥

(बिरोधाभास)

चौ०—भासै जहाँ बिरोध नहीं लहि। कहत बिरोधाभास कवित महि।१२८।

जब भूषन नहिं है तऊ, भूष न है मणि केरि।

दो०—भूप दिगविजय सिंह तन, सो अद्भुत छबि हेरि ॥१२९॥

चरचा देश बिदेश मैं, हित अनहित के धाम।

कबहूँ भजब न भजब लखि, भूप दिगविजय नाम ॥१३०॥

टीका—बिरोधऽभासे बिचारे बिराध न होइ तहाँ बिरोधाभास। उदा०—पहिने भूषन एक नहिं भूख न है लालसा मणिहूँ की न है, ऐसी आभा है। भूषन पहिले एक नहि भूषन कोटि भावत, यह बिरोध। कबहूँ भजब न भजब भूप के नाम, भजब न भजब बिरोध कहत है कि कबहूँ भजब कहै भागब न, लखिकै नाम भजब कहै जपब, यह बिरोध को मूल कहै शब्द मैं बिरोध अर्थ में अबिरोध ॥१२८-१३०॥

(विभावना प्रथम)

चौ०—कारण बिना काज होइ जाइ। बिभावना प्रथम दरसाइ ॥१३१॥

दो०—गहत न बान कमान कर, अबसि दिगविजय भूप।

द्वेषी दुशमन महि गिरै, बिलखित ह्वै लखि रूप ॥१३२॥

टीका—जहाँ कारण बिना कार्य्य तहाँ प्रथम बिभावना। उदा०—गहत न० अबसि कहै हमेशा बान कमान नहीं गहते पै दुशमन लखते ही गिर जाते हैं महि में, बिना बान कारण गिरजाबो कार्य्य ते प्रथम ॥१३१,१३२॥

(दूसर)

चौ०—हेतु अपूरन तें कारज करि। दूसर कहै बिभावन कविधरि १३३।

दो०—भूप दिगविजय सिंह के, पंकज पानि बिचारि।

जाहि इसारे जात गिरि, गिरि गढ़ बाध निहारि ॥१३४॥

टीका—जहाँ कारण अपूरण न होइ तहाँ दूसर। उदा०—पंकज पानि के इसारे कहै डोलाइए पहाड़ गिरै है, हाथ कंज पहाड़ गिराइबे को समर्थ नहीं, सो इसारे से गिरे, अपूरण हेतु ते कार्य्य पूरणभयो ॥१३३,१३४॥

(तीसर)

दो०—प्रतिबधक के होत ही, कारज पूरन होइ ॥

भजब न = भागेंगे नहीं। भजब = सेवा करेंगे ॥१३०॥

जिन सेरन के पानि पग, हति दिगविजय नरेस।
चले जात सो बिनु श्रमहि, अँगरेजन के देस ॥१३५॥

टीका—तीसर, प्रतिबंधक जहाँ कार्य्य कारण होइ। उदा०—जेहि बाघन के हाथ पाय शिकार में काटे गये हैं सो चमड़ा अंगरेजन के देश कहे मुलुक को गये, हाथ पाय कटन प्रतिबन्धक चलब कार्य्य भयो ॥१३५॥

(चौथी)

दो०—जबै अकारन बस्तु सों, कारज प्रगटै सोइ।
भूप दिग्विजयसिंह के, बाजत जबहिं सितार।
तासों कोकिल कल कढत, सुर सातों यक तार ॥१३६॥

टीका—ल०—जहाँ अकारण कहे हेतु न होय कार्य्य हे जाय तहाँ चतुर्थ। उदा०—सितार सों कोकिल कल कहे बोल कढ़, अथ कोकिल के बैन को पञ्चम सुर में गिनती है। सितार बाजब कारन, कोकिल कार्य्य भयो ॥१३६॥

(पंचम)

चौ०—काहू कारन तें जब काज। होइ बिरुद्ध पाँचवाँ साज ॥१३७॥

दो०—कीर्ति दिग्विजयभूप की, चन्द्र समान प्रकाश।
खल उलूक के दहन को, प्रगटे तरनि विलास ॥१३८॥

टीका—ल०—कौनेहु कारण ते कार्य्य को बिरोध होइ, तहाँ पंचम। उदा०—कीर्ति चन्द्रमा समान प्रकाश, खल कहे दुष्ट के दहन करिबे को तरनि कहे सूर्य्य से बिलास कहे शोभा प्रगटै है, सूर्य्य चन्द्रमा के बिरोधी ते कार्य्य भयो ॥ १३७, १३८ ॥

(छठयी)

चौ०—कछु कारज तें जहँ उतपत्य। कारन रूप कहैं कवि सत्य ॥१३९॥

दो०—भूप दिग्विजै नीति लखि, खल तिय विलपि अपार।
नैन कंज तें कढत हैं, कालिंदी की धार ॥१४०॥

टीका—ल०—जहाँ कार्य्य ते कारण उत्पन्न होइ तहाँ छठयीं। उदा०—कालिंदी के धार कमल तें कढत, धारा कहे जल ते कमल उपजत यह कार्य्य, ताते जमुना की धारा कढ़ी यह कारण ॥१३९, १४०॥

जात गिरि = गिर जाते हैं। गिरि = पर्वत। गढ़ = दुर्ग, किले ॥१३४॥
सेरन = सिंहों। हति = नष्ट किये ॥१३५॥

(विशेषोक्ति)

चौ०—जहाँ हेतु सों कार्य न उपजै। बिशेषोक्ति कहि कवि बुध सुभजै ॥१४१॥

दो०—पार जान को अरि सजे, बोहित दल बहु जोरि।
भूप दिगविजयसिंह तिन्हैं, बल बारिधि मैं बोरि ॥१४२॥

टीका०—ल०—जहाँ हेतु कहै कारण, ताते कार्य्य नहीं उपजै। उदा०—पार जान० पार कहै जातिबे हेत बैरी दल साजि कै आये, पै भूप बल बारिधि में बोरे। दल कारण [ते] जातब कार्य्य न भयो ॥१४१,१४२॥

(असंभव)

चौ०—कहै असभव होत जहाँई। बिन सभावन काज तहाँई ॥१४३॥

दो०—भूप दिग्विजय से बचो, दुरै दुष्ट बन धार।
को जानै कर कंज ते, हतै सेर बरियार ॥१४४॥

टीका—ल०—कहत में असंभव, बिना सभावन के कार्य्य होय। उदा०—को जाने कर कज ते बरिआर कहै बली सेर मारि है। कर कज असभव बाक्य है सिद्धि भयो ॥१४३,१४४॥

(असंगति प्रथम)

चौ०—कारन और ठौर है कारज। देश बिरुद्ध प्रथम कहि आरज ॥१४५॥

दो०—भूप दिग्विजयसिंह जब, दुष्टहिं दै बँन्दिखान।
छूटै भय सब देश के, आनंद लहै अमान ॥१४६॥

टीका—ल०—देश बिरुद्ध कारण, कार्य्य विरुद्ध। उदा०—छूटै भय सब देश के यह कार्य, बंदिखान कहै बधुआ, दुष्ट लोग भये सो दुष्टन को छूटै को चाही जे बाँधे जात तेइ छूटल, इहाँ देश के लोगन को भय छूटै ॥१४५,१४६॥

(असंगति द्वितीय)

चौ०—और ठौर के काज अवर थल। करै असगति दूसर है भल ॥१४७॥

दो०—भूप दिग्विजयसिंह के, तरनि तेज यह चार।
उदै चाहिए ब्योम मैं, उदे दुवन के द्वार ॥१४८॥

बोहित = बड़ी नौका, जहाज। बोरि = डुबो दिये ॥१४२॥

दुरै = छिपा। बनधार = जगल के कँगारो में। कर कज = कमल तुल्य हाथ। सेर = सिंह। बरियार = बलशाली ॥१४४॥

बँदिखान = बदीखाना, जेल। अमान = अपरिमित, अत्यन्त ॥१४६॥

दुवन = शत्रु, दुर्जन ॥१४८॥

टीका—ल०—दूसर, और ठौर के कार्य्य और ठौर। उदा०—उदै आकाश म चाहिये सो अरि द्वार पर ॥१४७ १४ ॥

(असंगति तृतीय)

चौ०—जौन काज को चाह कीन्हे। तासु विरुद्ध अरंभहि ठान्हे ॥१४९॥
दो०—भूप दिगविजयसिंह की, 'सूत्र' यह जानि लखाइ।
मान करत आए सरन, पहिले मान मिटाइ ॥१५०॥

टीका—ल०—तीसर, जौन कार्य्य को चाह है तासों विरुद्ध आरंभ होइ। उदा०—मान करत कहे आदर करत, मान मिटाइ मान कहे अभिमान मिटाइ कै तब प्रतिपालै। मान कार्य्य आरंभ विरुद्ध मान मिटावना ॥१४९,१५०॥

(तीनि विषम)

चौ०—अनमिल के संग प्रथमहिं संचरै। कारन रंग कारज कछु अवरै ॥
भल उद्दिम करते अनभल लहि। तीनि विषम बिचारि कबिन कहि।१५१

(प्रथम विषम)

दो०—भूप दिगविजय सिंह के, राजे तेज दिनेश।
जुगनू सें दरसात हैं, जो जग अहित नरेस ॥१५२॥

टीका—ल०—अनमिल के साथ प्रथम। जुगनू से और नृप कहा भूपति तेज भानु, यह अनमिल ॥१५१, १५२॥

(दूसरा विषम)

दो०—भूप दिगविजय सिंह को, लखि खल उर मैं ताप।
देखो स्याम कृपान तें, प्रगटै अरुन प्रताप ॥१५३॥

टीका—ल०—दूसर, कारण ते कार्य्य को रंग अवर होय। उदा०—स्याम कृपान ते अरुण प्रताप ॥१५३॥

(तीसरो विषम)

दो०—परधन पचवन को रिनी, कागद जाल बनाय।
भूप दिगविजय जानि तहिं, कैदहि दूत कराय ॥१५४॥

टीका—ल०—तीसर, उद्यम ते इष्ट की हानि। उदा०—परधन पचवन कहे हरि लेवे को जाल कहे कपट के कागज बनायबो उद्यम, पचाइबो इष्ट, ताकी हानि भयो, कैद है जात हैं ऐसो नीति नृप करत है ॥१५४॥

पचवन = पचाने के लिये। रिनी = ऋणी, कर्जदार ॥१५४॥

(तीनि सम)

चौ०—जोग संग सम प्रथम कहावै। कारन में कारज अंग पावै।
श्रम बिनु कारन सिद्धि जु होई। अलंकार सम यह त्रै सोई।१५५।

(प्रथम सम)

दो०—हेरि थकी सब नृपन को, अपने लायक देखि।
नीति दिग्विजय भूप के, चित मैं बसी बिशेषि ॥१५६॥

टीका—ल०–जथा जोग्य को संग प्रथम। उदा०—हेरि थकी० हेरि ढूँढि हारी अपने लायक नहीं पायो तब नीति भूप के हिए बिशेष करि बसी, अपने लायक जानिकै ॥१५६॥

(दूसर सम)

भूप दिग्विजय सिंह की, बुद्धि बिमल दरसात।
जाते बिद्या गुन उपजि, नीति निपुन अवदात ॥१५७॥

टीका—ल०–दूसर, जहाँ कारन मे कारज को अंग होइ। उदा०—बुद्धि० बुद्धि बिमल कारन, जाते बिद्या उपजी यह कार्य्य ॥१५७॥

(तीसर)

दो०—भूप दिग्विजयसिंह के, निरखि नीति की साज।
छमा करत अरि देश पर, छमा लेन के काज ॥१५८॥

टीका—ल०–तीसर श्रम बिन कारज सिद्धि होइ। उदा०—छमा करत अरि के देश पर छमा कहै पृथी लेन के हेतु। यह श्रम बिन कारज साध्यो ॥१५८॥

(बिचित्र)

चौ०—इच्छा फल बिपरीति की होई। कहत बिचित्र कबित कबि सोई॥१५९॥
दो०—भूप दिग्विजयसिंह को, बानि लखौ अभिराम।
पाय परत अरि आइ कै, पाय जात धन धाम ॥१६०॥

टीका—ल०—इच्छा फल बिपरीत को जतन होय। उदा०—पाय० पाय परत अरि फल बडो पाइनि धन धाम ॥१५९, १६०॥

(अधिक)

दो०—अधिकाई आधार ते, जब आधेय की होय।
जो अधार आधेय सो, अधिक अधिक है दोय ॥१६१॥

अवदात = प्रकाशमान ॥१५७॥ छमा = क्षमा। छमा = पृथ्वी ॥१५९॥

(प्रथम)

दो०—भूप दिग्विजयसिंह को, लखि पुर नीति निवाह।
हरष प्रजन के उर बढ्यो, नहिं अमाय उर माह ॥१६२॥

टीका—ल०—रहनेवाला आधेय, जामे रहै सो आधार, आधार ते आधेय अधिक प्रथम। उदा०—हरष० हरष कहै आनंद ऐसा बाढ्यो कि हिय में नहीं अमा यो। हिय आधार आनंद आधेय ॥१६१, १६२॥

(दूसर)

दो०—जेहि जगदम्बा की सुजस, जग में नहीं अमाय।
भूप दिग्विजयसिंह के, हिए बसी सो आय ॥१६३॥

टीका—ल०—दूसर, आधेय से आधार अधिक होय। उदा०—जेहि० कहै जेहि देवी की यश जग में नहीं अमाय है सो भूप के हिय में बसी। जग आधार, यश आधेय, जग में नहीं अमानो यह आधेय की अधिकाइ ॥१६३॥

(अल्प)

दो०—अल्प अल्प आधेय ते, सूक्षम होइ अधार ॥१६४॥
भूप दिग्विजय दल अदल, खलतिय हिए विचारि।
किंकिनि ह्वै छिगुनी छला, कटि मै जाति निहारि ॥१६५॥

टीका—ल०—जहाँ आधेय तें आधार सूक्ष्म होय तहाँ अल्पालंकार। उदा०—छिगुनी के छला किंकिनि भई यही भाँति कटि खीन दलि परो।
॥१६४, १६५॥

(अन्योन्य)

चौ०—आपुस मैं उपकार करै जहँ। अन्योन्यालंकार कहै तहँ ॥१६६॥
दो०—भूप दिग्विजय सिंह में, लखी परसपर प्रीति।
नीति सो लागत नीक नृप, नृप तें लहि छबि नीति ॥१६७॥

टीका—ल०—जहाँ आपुस मे परोपकार होइ तहाँ अन्योन्यालंकार। उदा०—नीति से नृप सोहै, नृप से नीति ॥१६६, १६७॥

(विशेष प्रथम)

चौ०—बिनु अधार के जहाँ अधेय। प्रथम बिशेष तहाँ कवि लेय ॥१६८॥
दो०—भूप दिग्विजय सिंह के, खल नर समुझि उपाय।
हिए रहै सुधि त्रास की, हियरो गयो हेराय ॥१६९॥

प्रजन = प्रजाओं के। अमाय = अटता है ॥१६२॥ अदल = न्याय ॥१६५॥
त्रास = भय। हियरो = हृदय ॥१६९॥

टीका—ल०-जहाँ बिना आधार के आधेय तहाँ प्रथम । उदा० —हियरो हेराय गया ओ सुधि बनी रहै हा । हिय आधार बिना आधेय सुधि बनी रहै है ॥१६८, १६९॥

(दूसर विशेष)

चौ०—येक वस्तु बहु ठौर बखाना । कहा बिशेष दूसरो जानौ ॥१७०॥

दो०—भूप दिगविजय रूप लखि, अरि दिशि बिदिशि बिचारि ।
चित मै चख मै भौन मे, भागै भीति निहारि ॥१७१॥

टीका—ल०-दूजा भेद, एक बस्तु जहाँ अनेक ठौर होय । उदा०-चित मे, चख मै, भौन मैं यह अनेक थल है ॥१७०, १७१॥

(तीसर विशेष)

चौ०-लघु अरभ तें बड़ी बस्तु लहि । है बिशेष तीसरो कबित कहि ।१७२।

दो०—भूप दिगविजय सिह की, माह मगन कहि पेखि ।
करन नृपति देखो सही, करन रावरो देखि ॥१७३॥

टीका—ल०-थोरे आरभ ते बडे पदार्थ को प्राप्त होयबो तहाँ तीसरो । उदा०— करन नृपति को देखे जो तुमारे करन कहै कर दानों दान देत हैं ॥१७२, १७३॥

(व्याघात)

चौ०-और ते कारज औरै करिए । प्रथम कहौ व्याघात जो लहिए ।१७४।

दो०—भूप दिगविजय अरि कहैं, बैर कियो बिनु हेत ।
जेहि अवलोके सुख मिलै, ते देखे दुख देत ॥१७५॥

टीका—ल०-और ते ओर कार्य्य करो तहाँ प्रथम । उदा०—जाहि अव लोके सुख मिलत ताहि देखि अब दु ख होत है ॥१७४, १७५॥

(दूसर व्याघात)

चौ०-काज बिरोधी ते जब लावै । दूसर है व्याघात बतावै ॥१७६॥

दो०— भूप दिगविजय से कहैं, जाचक बचन रसाल ।
जो जानहु यह दीन हैं, तौ है दीनदयाल ॥१७७॥

टीका—ल०-कार्य ते जहाँ क्रिया बिरोधी होइ तहाँ दूसर । उदा०—जो जानहु दीन है तौ दीन दयाल होहु, दीन कहै जे दु ख से पीड़ित होय तापर दया कीजै ॥१७६, १७७॥

चख = चक्षु, नेत्र । भीति = भय, दीवार ॥१७१॥

करन = कर्ण (राजा) । करन = हाथो को ॥१७३॥

(कारणमाला)

चौ०—कारण कारज परम्परा है। कारणमाला नाम धरा है ॥१७८॥
दो०—महाराज दिग्विजय सिंह, मदै निबाहै नीति।
नीति हि ते परजा बढ़ै, प्रजा ते बित अरिजीति ॥१७९॥

टीका—ल०—जहाँ कारण कार्य के परम्परा होय तहाँ कारणमाला। उदा०—नीति ते प्रजा बढ़, नीति कारण प्रजा को वृद्धि कार्य। प्रजा ते वित्त बढ़े, वित्त अरि को जीतै, फेरि प्रजा कारण वित्त कार्य, फेरि वित्त कारण अरि को जीतब कार्य ॥१७८, १७९॥

(एकावली)

चौ०—ग्रहित मुक्त एकावलि होई। अलंकार यह भल है सोई ॥१८०॥
दो०—भूप दिग्विजय सिंह के, मृग जब सुनै सितार।
बन से आए नगर लों, नगर से चलिगे द्वार ॥१८१॥

टीका—ल०—जहाँ ग्रहन और त्यागन होय तहाँ एकावली। उदा०—बन से नगर आए, नगर ते द्वार पर बैठे मृग लोग, जब नृपति के सितार बजे है। बनत्याग नगर ग्रहन ते एकावली ॥१८०, १८१॥

(मालादीपक)

चौ०—दीपक एकावलि मिलि जामैं। माला दीपक कहि परिनामै ॥१८२॥
दो०—भूप दिगविजय सिंह की, बुद्धि बिमल अवगाह।
नीति बसी नृप के हिए, नृप हिय धरमै माहँ ॥१८३॥

टीका—ल०—जहाँ दीपक एकावली मिलि जाय तहाँ मालादीपक। उदा०—नीति बसी नृप के हृदय में और नृप हिय धरम में। नीति त्याग, धर्म ग्रहन एकावली, बसी क्रिया एक अन्वय ते दीपक ॥१८२, १८३॥

(सार)

चौ०—एक एक ते अधिक जहाँ है। सार अलंकृत कहै तहाँ है ॥१८४॥
दो०—बुधि सों बिद्या है बड़ी, तासों बड़ो बिचारे।
तासों दाया धरम रुचि, भूप दिग्विजय प्यारे ॥१८५॥

टीका—ल०—जहाँ एक ते एक अधिक तहाँ सार। उदा०—बुद्धि सों विद्या बड़ी है, विद्या से विचार, तासों दया ॥१८४, १८५॥

बित = वित्त, कोश। अरिजीति = शत्रुओं पर विजय ॥१७९॥ अवगाह = अथाह ॥१८३॥

(यथासंख्य)

चौ०—जथा अनुक्रम सग बिचारो। जथासख्य सन्दहि निरधारो १८६॥

दो०—भूप दिगविजय सिंह की, नीति अहित हित देखि।
बहु बिलखै हरषै हिए, अँचल चपल चित पेखि॥१८७॥

टीका—ल०—जहाँ क्रम से सगी के बर्णन होय। उदा०—नाति अहित हित देखि बिलखै, हरषै अँचल चपल। अहित देखि बिलखै हित देखि हरषै॥१८६, १८७॥

(पर्य्याय)

चौ०—बहु को क्रमते आश्रय येक। क्रम से आश्रय धरै अनेक॥१८८॥

टीका—ल०—बहुतन को क्रम से एक आश्रय तहाँ प्रथम, जहाँ क्रम ते अनेक आश्रय होय तहाँ दूसर पर्य्याय॥१८८॥

(प्रथम पर्य्याय)

दो०—भूप दिगविजय अबल को, केहि बल कहै सराहि।
त्यागि आगि को तेज रबि, बसो प्रतापहि माहिं॥१८९॥

टीका—उदा०—आगि का तेज त्यागि रबि को याते प्रताप में बसी, यह एक आश्रय॥१८९॥

(दूसर पर्य्याय)

दो०—भूप दिगविजय सिंह ढिग, दीन दुखी जे जात।
रहैं बिपति के बिबस मे, सुखद भरे दरसात॥१९०॥

टीका—उदा०—बिपति के बश रहे अब सुखद दरशात॥१९०॥

(परिवृत्ति)

चौ०—थोरो दै बहुतै जे लेइ। परिवृत्ति अलकार सुख देइ॥१९१॥

दो०—भूप दिगविजयसिंह के, निरखे दान बिबेक।
आदर दै लै कबिन तें, कीरति कबित अनेक॥१९२॥

टीका—ल०—जहाँ थोरो दैकै बहुत को लेय। उदा०—आदर दै कबिन ते यश के कबित लेत॥१९१, १९२॥

(परिसख्या)

चौ०—यक थल बरजि ठौर दूजे महँ। परिसख्यालकार कबित कहँ।१९३।

दो०—महाराज दिगविजय सिंह, करै नीति निरबाह।
दड जोतिषी पत्र मे, बैर बाग बन माह॥१९४॥

टीका—ल०—एक थल बरजि दूसरे ठौर होइ तहाँ परिसंख्या। उदा०—दण्ड जोतिषी पत्र कहै पत्रा में दण्ड कहै नरा, दण्ड राज में नहीं। बैर कहै नहरि बाग बन में रही, बैर कहैं दुममनगी नहीं रहा ॥१९३, १९४॥

(विकल्प)

चौ०—समबल को जु बिरोध जहाँ है। कबिजन विकल्प बखानि तहाँ है।१९५।
दो०—दुख पाए नर आइ कहि, भूप दिगबिजय गाथ।
की शिर दुष्ट नवाइहो, की धनु लेहो हाथ ॥१९६॥

टीका—ल०—जहाँ समबल को विरोध होय। उदा०—की दुष्टन के सिर नवाइहौ की धनु हाथ में लेहौ ॥१९५, १९६॥

(समुच्चय)

चौ०—बहुत भाव येकहि मैं उपजै। प्रथम समुच्चय कबिवर सुभजै ॥१९७॥
दो०—भूप दिगबिजय के लखे, चारिउ नीति उपाय।
भागै खल भू मैं गिरै, उठि भागै सतराय ॥१९८॥

टीका—ल०—जहाँ बहुत भाव एक साथ उपजे। उदा०—भागै, गिरै, सतराय, अनेक भाव संग में ॥१९७, १९८॥

(अपर समुच्चय)

चौ०—अहं पूर्विका कारज बोलै। दुतिय समुच्चय भाव अडोलै ॥१९९॥
दो०—भूप दिगबिजय सिंह की, मति गति तीनिउ माहिं।
विद्या दान कृपान जग, यश उपजावत ताहि ॥२००॥

टीका—ल०—जहाँ अहं शब्द बोलै तहाँ दूसरो। उदा०—विद्या, दान, कृपान यश जग में करत हैं, बिद्या कहै हम पहिले करैं, दान कहै हम करैं, कृपान कहै हम करैंगे ॥१९९, २००॥

(कारक दीपक)

चौ०—यक मैं क्रम ते क्रिया अनेक। कारक दीपक अर्थ बिबेक ॥२०१॥
दो०—भूप दिगबिजय नाम सुनि, खल लोगन उर त्रास।
भजै थरहरै फिरि चलै, चलै सघन बन बास ॥२०२॥

टीका—ल०—एक क्रम ते क्रिया अनेक। उदा०—भजै थरहरै गिरै ॥

दण्ड = घड़ी (२४ मिनट का प्रमाण), राजदण्ड। बैर = बदरीफल, द्वेषभाव ॥१९४॥ गाथ = गाथा वर्णन। नवाइहो = झुका दूँगा ॥१९६॥

सतराय = नाक भौं सिकोड़ कर ॥१९८॥

भजे = भागते हैं। थरहरै = काँपते हैं, ठहरते हैं ॥२०२॥

(समाधि)

चौ०—अवर हेत मिलि काज सुगम जहँ। कहत समाधि कवीश कवित्त महँ ॥२०३॥

दो०—भूप दिगविजय घेरि बन, हेरे मिले न एक।
भये पियासे तब कढे, मारे बाघ अनेक ॥२०४॥
भूप दिग्विजय सिंह ढिग, रहा अरज को चाहि।
अरजी देने को हुकुम, भया गरज है जाहि ॥२०५॥

टीका—ल०—जहाँ अवर हेत कार्य सिद्ध होय। उदा०—हेरे पर न मिले जब पियासे भे तब मिले, यह पान पिआव सिकार कहावै है॥ अरजीते है जात, जाको जोन गरज है, यातें वाछित अधिक फल ॥२०३-२०५॥

(प्रत्यनीक)

चौ०—दुख दै अरि पक्षन पर जबहीं। बरी शत्रु अवलोकै तबहीं ॥२०६॥

दो०—भूप दिगविजय तेज रबि, निरखि चन्द हियहारि।
मुकुलैबो कमलन करै, निशि मै यही बिचारि ॥२०७॥

टीका—ल०—जहाँ अरिके पच्छ पै दुःख दीबो होइ तहाँ प्रत्यनीक। उदा०—तेज रबि चन्द्रमा देखिहारि मा यो, सूर्य के हित कमल पै जोर करि निशि दुःख देने लगे ॥२०६, २०७॥

(काव्यार्थापत्ति)

दो०—काव्यार्थापति यह कियो, तिनको यह कहि जात ॥२०८॥

दो०—भूप दिग्विजय सिंह के, लखि प्रताप बरिआर।
तेज जीत अरि तरणि को, कहाँ चंद बदकार ॥२०९॥

टीका—ल०—यह कियो तौ वह करब कौन बात है, तहाँ काव्यार्थापत्ति, उदा०—तेज सूर्य्य को जीतौ तौ चन्द्रमा जीतिबे को कौन बडा बात है॥

(काव्यलिङ्ग)

चौ०—जुक्ति सो अर्थ समर्थन कोजै। काव्यलिंग तहँ कबि कहि दीजै।२१०।

दो०—है बदकार उलूक खल, दुरा विवर थल देखि।
भूप दिग्विजय सिंह के, तेज तरणि इत देखि ॥२११॥

अरज = निवेदन। अरजी = प्रार्थनापत्र। गरज = चाह ॥२०५॥

मुकुलैबो = मुकुलित हो जाना ॥२०७॥ बरियार = बली। बदकार = कुकर्मी ॥२०८॥ दुरो = छिपगया। विवर थल = बिल, छिद्र ॥२१०॥

टीका—ल०-जहाँ जुक्ति सों अर्थ समत्थन तहाँ का०यलिग। उदा०—तेज तरणि देखि उलूक दुरत है यह अर्थ को समर्थन है ॥२१०, २११॥

(अर्थान्तरन्यास)

चौ०—जो विशेष सामान्य द्रिढावे। सौ अर्थान्तरन्यास बतावे ॥२१२॥

दो०—पूज्यौ सुर दिग्गिज नृप, चारिउ धामन माँह।
यह अचरज की बात नहि, बडे करैं नहिं काह ॥२१३॥

टीका—ल०-जहाँ विशेष से सामा य द्रिढ होइ। उदा०-नृप नाम विशेष, बडे करै नहि काह, यह सामा य ॥२१२, २१३॥

(विकस्वर)

चौ०—धरि विशेष सामान्य विशेष। विकसर कहत कवित अवरेख॥२१४॥

दो०—भूप दिग्विजय के सदै, ग्यान एक रस देखि।
सिपुरुष त्यागै धर्म नहिं, बलि हरिचन्दहि पेखि ॥२१५॥

टीका—ल०-जहाँ विशेष, फिरि सामान्य, फिरि विशेष होइ। उदा०—नृप नाम विशेष, सिपुरस नर सामान्य, हरिचन्द नृप विशेष ॥२१४, २१५॥

(प्रौढोक्ति)

दो०—प्रौढउक्ति उतकरष को, धरे अहेतहि हेत ॥२१६॥
मजुल मोती माल बहु, हीरा हरमिनिकेत।
भूप दिग्विजयसिह की, कीरति याते सेत ॥२१७॥

टीका—ल -जहाँ उत्कर्ष का धारन अहेतु म हेतु होइ। उदा०—हीरा, मोती ते यस सेत भयो, यह अहेतु को हेतु है ॥२१६, २१७॥

(सभावना)

दो०—है यौ जौ यौ होय तौ, सभावना विचार ॥२१८॥
भूप दिग्विजय सिंह की, निरखि नीति अवदात।
रसना होती नैन के, तौ कहती कछु बात ॥२१९॥

टीका—ल०-है यौ जौ यौ होइ०। उदा०—जौ नैन के रसना कहै जीभ होती तो गुण कहती ॥२१८,२१९॥

अवरेख = कल्पना ॥२१४॥ सिपुरुष = सुपुरुष, सज्जन ॥२१५॥
हरमि निकेत = घरके अन्त पुरमे ॥२१७॥
अवदात = चमकता हुई ॥२१८॥

(मिथ्याऽध्यवसित)

चौ०-एक झूठ के लिए झूठ कहि । मिथ्याध्यवसित अलकार लहि।२२०।
दो०-दुरजन बानी माधुरी, सत बचन बिष भूरि ।
महाराज दिग्विजय सिह, कीन्हो दोऊ दूरि ।।२२१।।

टीका—ल०-जहाँ एक झूठ के लिये दूसरा झूठ । उदा०—दुरजन की बानी मधुर यह झूठ, सज्जन वचन विष, यह दूसर झूठ ।।२२०, २२१।।

(ललित)

चौ०-प्रतिबिब वाक्य सदृश जहँ होई ।
ललित अलकृत कबि कहि सोई ।।२२२।।
दो०-भूप दिग्विजय से बयर, करिजे चहै सहाय ।
इत उत बाँधै बाँध ज्यौ, सरिमै भौन बनाय ।।२२३।।

टीका—ल०-जहाँ प्रस्तुत बर्ण्य बाक्यार्थ को प्रतिबिंब वर्णन होइ, उदा०—सरिता बाँध यह बाक्यार्थ प्रस्तुत यह की सरिता भौन बनाइबो अर्थ यह नृप से बयर करिबो ताको सहायता कोई काम न ऐहै ।।२२२, २२३।।

(तीनि प्रहर्षण)

चौ०-जतन बिना बाँछित फल पावै । बाँछित ते अधिको फल लावै ।।
लाभ जतन करतै वह आवै । तीनि प्रहर्षण कबि कुल गावै।।२२४।।

टीका—ल०-जतन बिना बाँछित फल प्रथम, बाछित ते अधिक फल दूसरो जतन करतै लाभ तीसरो ।।२२४।।

(प्रथम)

दो०-दुख पाये नर आवही, लखि दिग्विजय नरेश ।
देत रुचै फरिआद को, दुष्ट निकारहि देश ।।२२५।।

टीका—उ०-फरियादी को फरिआदि, दुष्ट पै दण्ड प्रथम ।।२२५।।

(दूसर)

दो०-भूप दिग्विजय सिह की, लखि बकसीस बिशाल ।
चाहेत पाँच पचास लहि, पट रुचि साल दुसाल ।।२२६।।

टीका—पाँच को आस करि पचाश पाये, दूसरो ।।२२६।।

बयर = बैर । सरि = नदी । ।।२२३।।
फरिआद = फर्याद, प्रार्थना ।।२२५।।

(तृतीय)

दो०-भूप दिग्विजय विपिन मे, हेरै बाघ विचारि ।
हेरत ही मिलि द्वै गये, बेर एक ही मारि ॥२२७॥
टीका—हेरत ही दुइ व्याघ्र मिले, तासरो ॥२२७॥

(विषाद)

चौ०-चित्त चाहते उलटो होई । कहत विषाद ताहि सब कोई ॥२२८॥
दो०-भूप दिग्विजय सिंह ढिग, चुगुल कहै परदोष ।
मानहिं चहै अमान लहि, सहै काटिसह रोष ॥२२९॥
टीका—ल०-चित चाहते उलटो होय । उदा०—चुगुल चुगुली करि मान चाहै अपमान भयो ॥२२८, २२९॥

(उल्लास)

दो०-एकहि गुण तैं गुण लहै, दोषहि ते गुण मानि ।
गुग ते दोषहि दोष ते, दोषहि होत बखानि ॥२३०॥
टीका—ल०-प्रथम जहाँ एक के गुण ते गुण, दोष ते गुण दूसरो, गुण ते दोष तीसरो, दोष ते दोष चतुर्थ ॥२३०॥

(प्रथम)

दो० भूप दिग्विजय सिंह के, यह चित बसत बिलास ।
आवै कवि कोबिद सभा, कीरति करहि प्रकास ॥२३१॥
टीका—उदा०-कबि को आइबो गुण, कीरति प्रकाश करिबो प्रथम ॥२३१॥

(द्वितीय)

दो०-भूप दिग्विजय सिंह के, कोमल चित परवीन ।
बैरिहु को मारै नहीं, शरन जो होइ अधीन ॥२३२॥
टीका—सरन आये जीव बचो ॥२३२॥

(तृतीय)

दो०-लखि बाँधे हथियार अरि, बली बाहु बलवेस ।
ताहि हतै आए समर, श्री दिग्विजय नरेश ॥२३३॥
टीका—हथियार बाँधब गुण, मारे जाहि दोष ॥२३३॥

शरन = बाणो से, आश्रय में ॥२३२॥

(चतुर्थ)

दो०-भूप दिग्विजय सिंह से, भागै धरि भयभार ।
नख कठोर तरवा मृदुल, बिधि निंदै बदकार ॥२३४॥

टीका—भूप की भय से अरि तिय को भागिबो दोष, बिधि को निंदा करिबो दोष ॥२३४॥

(अवज्ञा)

दो०-गुण ते गुण होवै नहीं, नहीं दोष ते दोष ।
होत अवग्या भाँति द्वै, कहत कबिन मतिचोष ॥२३५॥

टीका—ल०-जहाँ गुण ते गुण न होइ, दोष ते दोष न होइ ॥२३५॥

(प्रथम)

दो०-भूप दिग्विजय सिंह की, नीति कलाधर देखि ।
बदकारी बारिज बदन, बिकसै नहीं बिशेषि ॥२३६॥

टीका—उदा०-गुण ते गुण जहाँ नहीं, नीति कलाधर देखि बदकारन के बारिज बदन बिकसै नहीं ॥२३६॥

(दूसर)

दो०-अपने दोषन ते सदै, दुष्ट लहैं बिपरीति ।
नीति दिग्विजय भूप की, केहि बिधि कहैं अनीति ॥२३७॥

टीका—जहाँ दोष ते दोष न होइ, दुष्ट अपने दोष तें बिपरीति कहै दु ख पावै है, भूप को नीति मैं दोष नहीं ॥२३७॥

(अनुज्ञा)

चौ०-जहाँ दोष को गुण करि मानै । ताहि अनुग्या कबिन बखानै ।२३८।

दो०-भूप दिग्विजय सिंह के, सेवक सम ह्वै सेय ।
हय हाथी हथियार धन, धरा रीझिकै देय ॥२३९॥

टीका—ल०-दोष को गुण मानै । उ०—सेवा करिबो दोष, सपदा पाइबो गुण ॥२३८, २३९॥

(लेश)

दो०-गुण ते दोषरु दोष गुण, मानै कवि तहँ लेश ॥२४०॥

टीका—ल०-गुण ते दोष अरु दोष ते गुण ॥२४०॥

कलाधर = चन्द्रमा । बदकारी = दुष्कर्मी । बारिज = कमल ॥२३६॥

(प्रथम)

दो०-जे पच्छी बोलत मधुर, लडत लड़ाई बेश ।
पकरि मँगावै ताहि को, श्री दिग्विजय नरेश ॥२४१॥

टीका—उ०-गुण ते दोषालंकार, जे पच्छी बोलत या लडत है गुण, पकरि आवे है दोष ॥२४१॥

(दूसर)

दो०-जे गुनही अपनो गुनह, छल तजि कहै निदान ।
ताहि भूप दिग्विजयसिंह, मॉफ गुनह करि मान ॥२४२॥

टीका—दोष ते गुण, जे आपन गुनह कहै दोष कहि देत ताका नृप दोष माफ करि मान कहै आदर करत है ॥२४२॥

(मुद्रा)

चौ०-प्रस्तुत पद मे अवरै अर्थ । मुद्रा ताहि कहै समर्थ ॥२४३॥
दो०-दान मान हरद्वार मे, सुभग लहाउर चाल ।
भूप दिग्विजय 'बृज' लखे, पुरी दिली नेपाल ॥ २४४॥

टीका—ल०-प्रस्तुत कहे वर्णनीय अर्थ में, पद में अवर अर्थ होय। उदा०—दान मान०—दान कहे पुण्यार्थ, मान कहै आदर सहित हरद्वार म दिये हैं, अवर लहाउर देश बृज कहै मथुरा, पुरी कहै जगन्नाथ, दिली कहै दिल्ली, नैपाल देखे हैं, यह प्रस्तुत अर्थ पद है। औरै अर्थ दानमान दान दातव्य मान सनो मान, हर द्वार कहै सब दरवाजे पर है। सुभग लहाउर चाल—सुभग कहै सुदर, लहा कहै प्राप्त है, उर कहै हृदय मे, चाल कहै रति बृज लखे—बृज कवि कै नाम है सो कहै है कि पुरी दिली नेपाल—पुरी कहै पूरन, दिली कहै जीव ते अर्थात् मन ते, नैपाल नै कहै नीति पाल कहै प्रतिपालत है ॥२४३, २४४॥

(रत्नावलि)

चौ०-प्रस्तुत अर्थ क्रमहिं ते नाम । अलकार रत्नावलि दाम ॥२४५॥
दो०-भानु भानुमय कलानिधि, करै कला निधि वित्त ।
भूप दिग्विजयसिंह के, मगल मगल वित्त ॥२४६॥

टीका—ल०-जहाँ क्रम ते वर्णन होय। उदा०—भानु चद्र मगल क्रम ते है ॥२४५, २४६॥

(तद्गुण)

चौ०—अपनो गुण तजि सग के लावै। अलकार तद्गुण कवि गावै २४७॥

दो०—भूप दिग्विजयसिह के, उज्जल यस अभिराम।
पढत कबित कवि के लखो, भये धवल धन धाम ॥२४८॥

टीका—ल०-अपनो गुण तजि सगति गुण लेय। उदा०—भूप के कीरति के कवित कवि पढतेही धवल धाम पावते हैं ॥२४७, २४८॥

(पूर्वरूप)

दो०—पूर्ब रूप ले सग गुण, तजि फिरि निज गुण लेत।
दूजे गुण जो ना मिटो, कियो मिटन को हेत ॥२४६॥
बाग तड़ागु पुरान जे, गिरे पटे पुर पाइ।
भूप दिग्विजय फेरि सो, दिये तिन्हैं बनवाइ ॥२५०॥
अरि तिय दीप बुझाय निशि, भागि जात जेहि धाम।
दीपति देह मशाल सम, करत प्रकाश ललाम ॥२५१॥

टीका—ल०-पूर्व रूप लै सग गुण प्रथम, मिटाइबे को हेतु करै पै गुण न मिटै दूसर॥ उदा०—बाग तडाग जे पुराण रहे सो गिरिगे पटिगे ताहि भूप फिरि वैसही बनवाए॥ दीप बुझाइ जहाँ भागती है राति को तहाँ देह की दीपति मशाल ऐसे प्रकाश ह्वै जाती है ॥२४६, २५१॥

(अतद्गुण)

चौ०—सगति के गुण गहैं न सगी।
कहत अतद गुण, कवि रस रगी ॥२५२॥

दो०—हय हाथी हथियार दल, राज काय पद पाइ।
भूप दिग्विजयसिह के, मद उपजो नहि आइ ॥२५३॥

टीका—ल०-सगति के गुण जहाँ ग्रहन सगी न करै। उदा०—राजा मद पाइ मन में मद नही उपजो ॥२५२, २५३॥

(अनुगुण)

चौ०—सगति से पूरब गुण सरसै।
अलकार अनुगुण रुचि परसै ॥२५४॥

दीपति = चमकती है। ललाम = सुन्दर ॥२५१॥

दो०—भूप दिग्विजय मुकुट में, मानिक मंजु बिसाल।
लहि आभा तन तेज के, होत अधिक छबि लाल ॥२५५॥

टीका—ल०-संगति ते पूर्व गुण सरसे कहै अधिक होय। उदा०—मुकुट में मानिक अंग के तेज से अधिक अरुण भयो ॥२५४, २५५॥

(मीलित)

चौ०—सादृश ते जहँ, भेद न लखिए।
तहँ मीलित कवि कहत, विशेषिए ॥२५६॥

दो०—भूप दिग्विजयसिंह के, तेज तरनि अवरेख।
रूप एक नहिं भेद कछु, कहिए काह विशेखि ॥२५७॥

टीका—मीलित। तरनि कहै सूर्य अरु भूप तेज भिन्न नहीं ॥२५७॥

(सामान्य)

चौ०—सादृश्य ते नहि जानि परत है।
कौन विशेष विचारि धरत है ॥२५८॥

दो०—भूप दिग्विजयसिंह की, कोठी दरपन धाम।
रूप अंग प्रतिबिंब की, भेद न लखि सरिनाम ॥२५९॥

टीका—ल०-जहाँ सादृस्य ते न जानि परे। उदा०-रूप कहै तन। प्रतिबिंब कहै परछाँही न जानि परा, कौन है दर्पन के धाम में ॥२५८,२५९॥

(विशेष)

चौ०—फुरै बिशेष जो समता माँह। कहै विशेष कविन करि चाह२६०॥

दो०—भूप दिग्विजयसिंह को, सुजस सेत शशि सेत।
जानि परै गरहन परे, कीरति निशिपति हेत ॥२६१॥

टीका—ल०-जहाँ सादृस्य मे विशेष प्रगटै। उदा०-सुयस सेत चन्द्रमा सेत, ग्रहन परे पर जानि परै कि यह कीर्ति होइ यह चन्द्र ॥२६०,२६१॥

(गूढोत्तर)

चौ०—कछु भावन उत्तर गूढो कहि। गूढोतर तेहि कविन लोग लहि२६२

दो०—जो निज गुण को ऐगुनी, तुम्है गरब मन माँहु।
तौ महीप दिग्विजय के, चलि समीप अब जाहु ॥२६३॥

तरनि = सूर्य। अवरेख = समझना ॥२५७॥

दरपनधाम = आदर्श जुड़े हुए भवन। सरिनाम = प्रसिद्ध ॥२५९॥

गरहन = ग्रहण (पर्व)। निशिपति = चन्द्रमा ॥२६१॥

टीका—ल०–कुछ भाव गूढ कहै गुप्त होय। उदा०–हे गुणी पुरुष जो तुम्हैं गुण को गर्व होइ तौ नृप ढिग जाहु। अर्थ यह कि नृप ऐसे गुनी हैं कि तुम्हारो गर्व न रहिहै ॥२६२,२६३॥

(चित्रोत्तर)

चौ०—जहाँ प्रस्न के उत्तर दीजै। चित्रोत्तर कवि भाव भनीजै ॥२६४॥
दो०—करै नीति को शम्भु के, सोहै पट अभिराम।
समर माह लहि कौन फल, भूप दिग्विजय नाम ॥२६५॥

टीका—ल०–जहाँ प्रश्नके उत्तर होय। उदा०–करै नीति०—नीति को करै, सम्भुके काह पट है, समरमें जीति कै कौन फल मिलत है, यह तीनि प्रश्न के—भूप दिग्विजय के नाम उत्तर है। नीति भूप करै है, सिव के दिग् कहै दिशा पट है। समर में काह चाहिए विजय कहै जीति ॥२६३,२६५॥

(सूक्ष्म)

चौ०—पर आसै लहि क्रिया कछू करि। अलकार कवि सूक्ष्म चित धरि ॥२६६॥
दो०—भूप दिग्विजय बिपिन मे, लखि कै बाघ विशाल।
और सिकारिन बीर असि, सिपर देखाए ढाल ॥२६७॥

टीका—ल०–पर आसै जानि जहाँ कृपा करै। उदा०–भूप ने बन में सेर को देखि अ य सिकारिन की ओर असि कहै तरवारि, सिपर कहै ढाल देखाए। अन्य सिकारी की आसै यह की गोली से न मारो तरवारि से मारो, ढाल से यह अर्थ अडि ०है जाहु, वा रोके रही, आगे न जाइ पावै ॥२६६,२६७॥

(पिहित)

चौ०—छपी बात को परगट कीजै। पिहित अलकृत कबि मन दीजै २६८
दो०—भूप दिग्विजयसिह जब, निमक हरामहि देखि।
नीति दड के ग्रथ धरि, आगे पढो बिशेषि ॥२६९॥

टीका—ल०–जहाँ छपी वस्तु को प्रकट कहै। उदा०–निमकहरामिन के आगे नीति ग्रन्थ धारिभो छपी बात को प्रकट यह की पढे ते जानि लेहै ॥२६८,२६९॥

पट = वस्त्र, द्वार ॥२६५॥
आसै = आशय। बीर = ओर, तरफ। असि = खड्ग। सिपर = ढाल ॥२६७॥
निमकहरामहिं = कृतघ्न को। नीतिदण्ड के = कानून के ॥२६९॥

(व्याजोक्ति)

चौ०—काहू डर ते गोप अकार।
करै ताहि व्याजोक्ति विचार ॥२७०॥
दो०—आवन लखि दिग्विजय नृप, हिए खलन के भीत।
कर कपै पग नहि परै, कहै सतायो शीत ॥२७१॥

टीका—ल०-काहू के भय ते आकार के गोपन करय। उदा०-भूप को देखि खल नर को कर कपै है, ताको छुपाइ कहै है यह शीत सतायो है ॥२७०,२७१॥

(गूढोक्ति)

दो०—औरे का उद्देश करि, कहै और की बात ॥२७२॥
काहू से काहू कहै, जहाँ दुष्ट बदकार।
यहि बन खेलन आरहे, नृप दिग्विजय सिकार ॥२७३॥

टीका—ल०-और से अवर उपदेश करि अवर की बात कहै। उदा०-काहू ते काहू कहे की यहि बन में भूप शिकार खेलन ऐहै, गूढ़ बात यह है की तुम यहाँ ते भागि जाहु ॥२७२,२७३॥

(विवृतोक्ति)

चौ०—श्लेष छप्यो प्रगटै कवि ताके।
व्यग सहित विवृतोक्ति प्रभाके ॥२७४॥
दो०—मन दै जे पावन परम, प्रेम अतोल सुवेश।
भाव बराबरि ताहि सो, करि दिग्विजय नरेश ॥२७५॥

टीका—ल०-जहाँ श्लेष छप्यौ प्रगट व्यङ्ग ते होत तहाँ। उदा०-मन दे० मन कहै जीव प्रेम ते अतोल कहै तोलने लायक नहीं, तासो नृप भाव बराबरि के तुल्य राखै है। श्लेष छप्यो यह है की मन चालीस सेर के होय है, अतोल कहै जिनकी गिनती नाहीं तिनते बराबरि भाव राखै है, भाव कहै दरि जो बजार म बिकाय है ॥२७४,२७५॥

उद्देश = लक्ष्य। बदकार = अपयश ॥२७३॥

मन = चित्त, ४० सेर का प्रमाण। पावन = पवित्र, पाव (सेर का चोथा भाग) नही। अतोल = असीम। भाव = अभिप्राय, दर ॥२७५॥

(युक्ति)

चौ०—गोपन मर्म करै निज परसों।
क्रिया करै कहि युक्तिहि वर सो ॥२७६॥
दो०—भूप दिग्विजय दल अदल, खल नर सुने अचेत।
थर थर कपै देखि पर, वोढि शीत पट लेत ॥२७७॥

टीका—ल०-जहाँ निज मर्म अवर सों गोपन करै। उदा०-नृप के दल अदल दुष्ट नर सुनि काँपै है और लोगन को देखि वोढते सीत पट कहै रजाई आदिक ॥२७६,२७७॥

(लोकोक्ति)

चौ०—जहँ कहनाँवति लोक बात की।
लोक उक्ति कहि कबिन ख्यात की ॥२७८॥
दो०—भूप दिग्विजयसिंह के, जे तजि सेवा ठाट।
कूकर धोबी के सदृश, घर के भयो न घाट ॥२७९॥

टीका—ल०-जहाँ लोक की कहनावति होय। उदा०-जे भूप की सेवा त्यागि चले सो धोबी के कूकर, लोक की कहनावति है ॥२७८,२७९॥

(छेकोक्ति)

दो०—लोक उक्ति कछु अर्थ सो, छेकोक्ती कहि सोइ ॥२८०॥
भूप दिग्विजयसिंह को, के करि सकै बखान।
नृपति नीति की रीति को, नृपति होइ सो जान ॥२८१॥

टीका—ल०-जहाँ लोक की उक्ति अर्थ सों होय तहाँ छेकोक्ति। उदा०-नृपति की नीति को नृपति कहै राजा होय सो जानै ॥२८०,२८१॥

(वक्रोक्ति)

चौ०—स्वर श्लेष सो अर्थ फिरै जब।
वक्र उक्ति प्रश्नहि मे कहि तब ॥२८२॥
दो०—पट दै याचक द्वार फिरि, रुचि भूषन कवि गाथ।
भूप दिग्विजय सुनि कहै, लोभी नर के साथ ॥२८३॥

दल = सेना। अदल = न जीत सकने योग्य। वोढि = ओढ़ना, ढके लना ॥२७७॥

कहनावति = कहावत ॥२७८॥

टीका—ल०-जहाँ स्वर श्लेष करि अर्थ को फेरै कहै दोसर करै । उदा०-लोभी नर पट माँगै है नृप ते, नृप कह्यौ पट दै, अर्थ यह की पट नाम केवार को है सो न देहु जाचक द्वार तें फिरि जाइ है, फेरि भूषन माँगै है नृप यह कह्यौ की भूषन कहै अलकार कवि के कविताई में है ॥२८२,२८३॥

(सुभावोक्ति)

चौ०—बरनै जाति सुभाव जहाँ है ।
सुभावोक्ति कवि कहत तहाँ है ॥२८४॥
दो०—जेठ दुपहरी में करै, कानन कठिन विहार ।
भूप दिग्विजयसिंह सदै, खेलै सेर सिकार ॥२८५॥

टीका—ल०-जहाँ जाति सुभाव होय । उदा०-जेठ की दुपहरा में वन म शिकार खेलिबो यह जाति सुभाव है ॥२८४,२८५॥

(भाविक)

चौ०—भूत भविष्य प्रतच्छ बखानै ।
अलकार भाविक तहँ ठानै ॥२८६॥
दो०—दया धरम नृप करन की, सिवि दधीच की नीति ।
भूप दिग्विजयसिंह के, अजौ लखी बहु रीति ॥२८७॥

टीका—ल०-भाविक भूत जो बीते होय ताहि प्रतच्छ कहै । उदा०-सिवि दधीचि की नीति भूप करत अजा कहै अबहीं लखो ॥२८६,२८७॥

(उदात्त)

चौ०—सपति चरित जहाँ ईं अति लहि ।
कहत उदात्त अलकृत कविमहि ॥२८८॥
दो०—हय हाथी हथियार लहि, भूषन बसन अपार ।
भूप दिग्विजयसिंह जब, जेहि चितवै यक बार ॥२८९॥

टीका—ल०-जहाँ सम्पति ऐश्वर्य अति बर्णन होय । उदा०- हय घोडा, हाथी भूषनादि जाके ओर निहारै कहै क्रिपा करै भूप, ताके ह्वै जाय ॥२८८,२८९॥

पट दै = वस्त्र, द्वार । भूषन = अलकार, आभूषण । कविगाथ = कवियों की गाथा (कविता) ॥२८३॥

करन = कर्ण ॥२८७॥

चितवै = देख दें ॥२८९॥

(अत्युक्ति)

चौ०—अद्भुत झूठी बातै अतिसै।
बरनै तेहि अत्युक्ति सुमति सै ॥२६०॥
दो०—भूप दिग्विजयसिंह के, अरि की यह गति देखि।
तेज अगिनि करि दिनहि जरि, जियै कद यस पेखि ॥२६१॥

टीका—ल०–अति झुठाई जहाँ होय। उदा०–दिन में तेज के अगिनि ते जरै है, रात्रि को यशचन्द्र देखि जिये है कहै शीतल होय ॥२६०,२६१॥

(निरुक्ति)

चौ०—सो निरुक्ति जब जुक्ति करै कबि।
अर्थ कल्पना आन धरै फनि ॥२६२॥
दो०—चारिउ दिशि मैं नहि बचै, करै दोष बिन काम।
सदल असल करि प्रबल है, भूप दिग्विजय नाम ॥२६३॥

टीका—ल०–जहाँ जुक्ति ते अर्थ की और कल्पना होय। उदा०–चारो दिशान मे न बचिहै, क्यो कि दिग्विजय नाम है नृप के। दिग् कहै दिशा, विजय कहै जे जीते, यह अर्थ अपर भयो ॥२६२,२६३॥

(प्रतिषेध)

दो०—सो प्रतिषेध निषिद्ध जो, अर्थ निषेधो जाय ॥२६४॥
भूप दिग्विजय सो न छल, किए क्रूर तै जाइ।
मिटि जैबे को सत्यता, कीन्ही आप उपाइ ॥२६५॥

टीका—ल०—जहाँ अर्थ को निषेध होइ। उदा०–कोई काहू ते कहै है की तैं भूप से छल नाहीं कियो है, तै अपने मिटि जाइबे को सत्य उपाय आपही कियो है ॥२६४,२६५॥

(विधि)

दो०—अलकार बिधि सिद्ध जो, अर्थ साधिए फेरि ॥२६६॥
भूपति है भूपति जबै, राज नीति करि स्वच्छ।
भूप दिग्विजयसिंह मै, दूनौ देखि प्रतच्छ ॥२६७॥

टीका—ल०-सिद्ध जो अर्थ ताहि फेरि साधे तहाँ। उदा०–भूपति है भू नाम पृथ्वी के पति कहै स्वामी है जब राजनीति करिहै ॥२६६,२६७॥

भूपति = राजा, भूपति = पृथ्वी का स्वामी ॥२६७॥
दीह = दीर्घ। अनूप = जिसकी उपमा न हो सके ॥२६६॥

(हेतु)

दो०—हेतु अलङ्कृत होय है, कारन कारज सग ।
कारन कारज ही जबै, लहत एक ही अग ।।२९८।।
उदै तेज रवि दरिद तम, दीह मिटावन रूप ।
भूप दिग्विजय की कृपा, 'बृज' सुख पाइ अनूप ।।२९९।।

टीका—ल० जहाँ कारण कार्य सग हो होय, दूसर जहाँ कारण कार्य एक ही होय । उदा०-तेज उदय कारण दरिद्र तम मिटिबो कार्य, भूप कृपा सुख बृज को मिलिबो ।।२९८,२९९।।

लिखे अलङ्कृत क्रमहि तें, गति मति की अनुसार ।
अब विन क्रम वर्णन करौ, युक्ति अनेक प्रकार ।।३००।।

टीका—अब अक्रम अलङ्कृत लिखा हो प्रचीना के मत देखि ।।३००।।

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

(रूपकातिशयोक्ति)

दो०—आजु अपूरब हौं लखी, छबि छहरै 'बृज' बृद ।
मदनकदन के शीश पर, पाँच दुइज के चद ।।३०१।।

टीका—मदन कहे काम, ताका कदन कहे मिटावनहार महादेव, ताके शीश पे पाँच द्वैज के चन्द्र केवल उपमान है, महादेव उपमान उराजके है, चन्द्रमा द्वैज के उपमान नखक्षत के है । नायिका के रति समय मे पाँचो अगुरी के नखक्षत उरोज पै लगे हैं, ताहि सखी अतिशयोक्ति अलकार करि लक्षित कियो, ताते लक्षिता [नायिका] ।।३०१।।

(असंगति)

दो०—जेठ जलाकनि मैं सबै, चले छोड़ि बन छाँह ।
करि केहरि मृग आदि खग, नारि निरखि कहि आह ।।३०२।।

टीका—जेठ जलनि में वन छाँह छाडि मृगादि भागे, नारि निरखि आह कियो, ताते असगति । जेठ म दवा ते वन जरै है, सकेतनाश जानि नायिका आह कियो, ताते अनुशयाना ।।३०२।।

मदनकदन = शिव ।।३०१।।

जलाकनि = गर्मी, लू । केहरी = सिंह ।।३०२।।

(समासोक्ति)

दो०—छिति छहराइ छटा लखो, छिति छ्वै छीरद नाथ ।
छैल न छोड़ै यहि समै, छिनक छबीली साथ ॥३०३॥

टीका—छीरद कहै मेघ, छिति छाय रहे कहै उनै रहे, ऐसे में छैल कहै रसिक लोग नायिका को नहीं छिनो भर छाडै, तुम बड़ा मूर्ख हौ छोडिकै जात हौ ॥३०३॥

(विभावना)

दो०—श्याम गहे बृज बाम कर, बोली चाकित बोल ।
मजु मीन उगिलै लगी, मोती पुज अमोल ॥३०४॥

टीका—चकित बोल बोली अर्थ पी कहाँ रहे । मीन मोती उगिलने लगी, मीन आँखि मोती आँसुन के बुद उपमान है, जहाँ अकारण ते कार्य होय । नायिका धीरा ॥३०४॥

(पिहित)

दो०—हाव भाव आदर अदब, जगर मगर दुति दीप ।
केलि धाम किन लै धरे, शारी सेज समीप ॥३०५॥

टीका—केलिधाम मैं शुक कहै सुगा, सारी कहै मैना धरि राख्यो । सेज के समीप यह छुपी बात है, जाको प्रकट कियो की रति तें रूपी कै रति न करौंगी, याते प्रौढा धीरा ॥३०५॥

(यथासंख्य)

दो०—चख चकोर अलि खजनै, चितै चलै हरखाय ।
चद चमेली मुख प्रभा, हाँस फाँस बगराय ॥३०६॥
नृप बुध बारिध नैन नित, चित न चाह घटि देत ।
पर पुहुमी बिद्या सलिल, प्रिय दरसन के हेत ॥३०७॥

छिति = पृथ्वी । छहराइ = घिरी है । छीरद = बादल । छैल = चतुर नायक । छिनक = क्षणभर । छबीली = सुन्दरी नायिका ॥३०३॥
मंजु = सुन्दर । अमोल = बहुमूल्य, कीमती ॥३०४॥
हाव भाव = कामसूचक आकृति और चेष्टायें । जगर मगर = झलमल । केलिधाम = क्रीड़ागृह । शारी = मैना ॥३०५॥
चख = चक्षु । फाँस = जाल । बगराय = फैला रही है ॥३०६॥
पर पुहुमी = पर पृथ्वी, शत्रुभूमि ॥३०७॥

गुनह गुनाही लोग के, गुनी गूढ गुन भाषि।
एक निकासे आँखि सा, एक लाख दै राखि ॥३०८॥

टीका—चल चकोर, अलि खजन के ओर चितै कै हरखि चलै, यह अर्थ की जाके नेत्र चकोर ऐसे टक लगाए हैं तिनकी ओर और जिनके नैन खजन ते चचल ह्वै रहे हैं तिनके ओर। च द चमेली पाँस तीना के ओर तीनि भाँति देखाये चलती, यातें कुलटा नायिका। जथा नृपबुध आरिध नेन० पृथ्वी विद्या सलिल प्रिय दरशना। जथा गुनाही, गुनी, गूढ एक का आँखिते निकारै कहै नेत्र के स मुख न आवै, एक को लाख दै कै राखै ॥३०६-३०८॥

(उल्लास)

दो०—हुती मायके मे सवति, पिय बोलो मुसुकाय।
गवनो लेनो चाहिये, नारि कह्यो हरषाय ॥३०९॥

टीका—सौति मायके में रही, ताहि लाइबे का नायक कही तौ नायिका ने हरषाय कही, सौति का हरष हानो सौति आइबे म असंभव। दाष ते गुण, याते उल्लास, सौति के साथ नायक रहैगो मैं मित्र से मिलौगी, यात मुदिता नायिका ॥३०९॥

(लेश)

दो०—एक एक शिर बार मे, जो गुण होइ हजार।
एको फल दायक नहीं, जो दिन होइ निकार ॥३१०॥

टीका—एक एक सिरबार में० सुगम ॥३१०॥

(अनुगुण)

दो०—जो पै सगति नीच की, दोष न लहै प्रबीन।
डार डार अहि गहि मलय, तऊ न विषमें लीन ॥३११॥

टीका—जौ पै सगति० सुगम ॥३११॥

(व्यतिरेक)

दो०—मनि मानिक मुकुता अधिक, भये भाव सहताइ।
विद्या धन ज्यों ज्या बढै, त्यो त्यो मँहँग बिकाइ ॥३१२॥

टीका—मनि मानिक० अधिक भए अधिक बिकाय, बिद्या अधिक होने ते बडी आदर है, याते वितरेक ॥३१२॥

गुनह = अपराध। गुनाहा = अपराधी ॥३०८॥
भाव = दर। सहताइ = सस्ता ॥३१२॥

(रूपक)

दो०—करनधार बरबुद्धि नर, बिद्या बोहित पाइ ।
सनोमान मुकुता लहै, सभा सिन्धु मे जाइ ॥३१३॥

टीका—करनधार० सुगम ॥३१३॥

(व्यतिरेक)

दो०—बिद्यावान बराबरी, नहि करि सकत नरेश ।
गुन को आदर ठौर सब, राजा को निज देश ॥३१४॥

टीका—विद्यावान० सुगम ॥३१४॥

(उल्लास)

दो०—नृप ऐगुन जो आदरै, गुन गनिए भल सोइ ।
बक्र चद्र शिव शीश लहि, सब बिधि बदित होइ ॥३१५॥

टीका—वक्र कहे टेढ़ च द्र को सब जग व दन करत है। जाको नृप आदरै सोई गुनी है ॥३१५॥

(दीपक)

दो०—दान समय तीरथ गमन, बिद्या पढब अपार ।
यामे बिलँब न कीजिए, करि 'ब्रज' बेगि बिचार ॥३१६॥
पचाइति पर तिय गमन, बध बिरोध निहारि ।
जिय मारत हित कलह मे, कीजै बिलँब बिचारि ॥३१७॥

टीका—दान समय, तीरथ जाने को, विद्या मे, भोजन करने मे बिलम्ब न करै ॥ पचाइति मैं० सुगम ॥३१६, ३१७॥

अन्य प्राचीन कविन के कवित्त

(दीपक अलंकार)

दो०—चदन चाउर चून तिय, बक लक सन सूत ।
ए नव पतरे चाहिए, तुला राग रजपूत ॥३१८॥
पय पानी अरु पानहीं, पान दान सनमान ।
ए नव मोटै चाहिए, राजा और दिवान ॥३१९॥
कस्तूरी कदली तुरै, मोती उपवन धाम ।
ए नव उतमै चाहिए, काम दाम अरु बाम ॥३२०॥

करनधार = कर्णधार, नाविक । बोहित = जहाज ॥३१३॥

दया भक्ति अरु तरनि कुच, उस जु सिंधुर नाम ।
ए नव दाबे गुन करैं रहुआ महुआ आम ॥३२१॥

साहेब सॉचे गेह पुनि, परन निछौना घाट ।
ए नव सुकुते चाहिये, हाट बाट अरु खाट ॥३२२॥

बसती बयन नपेसारी, प्रोहित तंदुल पान ।
ए नव जूठन चाहिए, तेग नरेश दिवान ॥३२३॥

टीका—चन्दन चाउर आदि नव पातर की अन्वय ते दीपक। पय पानी पानकी पान वानादिक में मार अन्वय, ताते दीपक। कस्तूरी में अन्वय दीपक। दया भक्ति में सुगम। साहेब सॉचे आदि सुगम। बसती बयन में सुगम ॥३१९–३२३॥

कवि—मतिराम

(पंचम प्रतीप)

दो०—पाहन जनि जिय गरब धरि, हौं हिय कठिन अपार ।
चित दुरजन को देखियत, तो सो लाख हजार ॥३२४॥

टीका—पाहन जन मन में गरब न करा ॥३२४॥

(न्यून रूपक)

दो०—विप्रनके मन्दिरन तजि, अवर ऑच सब ठोर ।
भाव सिंह भुवपाल के, तेज तरनि कछु ओर ॥३२५॥

टीका—रूपकहीनोक्ति। विप्रन के मन्दिर में ऑच नहीं करै है, तेज तरणि कहै और है अतः न्यून रूपक ॥३२५॥

(तीसरो निषेधाभास)

दो०—हौं न कहति तुम जानि हो, लला बाल की बात ।
ॲसुवन उडगन गिरत हैं, होन चहै उतपात ॥३२६॥

टीका—हौं न कहति मैं नहीं कहती, निषेध का सूचक ॥३२६॥

(चौथी विभावना)

दो०—हॅसत बाल के बदन मैं, लहि छबि कछुक अतूल ।
फूली चंपक बेलि तें, झरत चमेली फूल ॥३२७॥

टीका—चंपक बेलि नायिका, चमेली फूल हॉस, अकारण ते कार्य ॥३२७॥

(प्रत्यनीक)

दो०—तो मुख छबि सो हारि बिधु, भयो कलंक समेत।
सरद इंदु अरबिंद मुख, अरबिंदन दुख देत ॥३२८॥

टीका—मुख ते इंदु हारि अरबिंद मुख को दुःख देत, हित पच्छ जहाँ बल करै ॥३२८॥

(विशेष)

दो०—सुंदरता की शोभ तिय, बोलत बानी बंक।
गुण मे अवगुण दबत है, ज्यौं शशि माँह कलंक ॥३२९॥
भावी बडी प्रचंड है, तजत न अपनो अंग।
रामचन्द्र धावत भए, कनक हरिन के संग ॥३३०॥

टीका—विशेष गुण ते ऐगुण दबत है, जैसे शसि में कलंक ॥ भावी बडी प्रचंड, रामचन्द्र धावत भए कनक मृगा देखि यह ज्ञान नहीं भयो, कहूँ सोनौ के मृगा होत ॥३२९, ३३०॥

(मिथ्याध्यवसित)

दो०—खल बचनन की मधुरता, सुने साँप निज श्रौन।
रोम रोम पुलकित भए, कहत 'बोध' गहि मौन ॥३३१॥

टीका—खल बचन में मधुराई झूठ, साँप के कान, यह एक झूठ के लिये दूसरो झूठ ॥३३१॥

(अवज्ञा)

दो०—मेरे द्रिग बारिध बृथा, बरपि बारि परवाह।
होत न अंकुर नेह को, तो उर ऊसर माँह ॥३३२॥

टीका—जल अंकुर नहीं करत यातें गुण नहीं लग्यौ ॥३३२॥

(अत्युक्ति)

दो०—बारि बिलोचन बारि को, बारिध बढ़ै अपार।
जारै जौन बियोग की, बडवानल की झार ॥३३३॥

टीका—नेत्र ते बारिध की धार आँसू निकसे ॥३३३॥

बंक = टेढ़ी। भावी = होनी, भविष्य। कनकहरिन = स्वर्णमृग ॥३३०॥
झार = लपट ॥३३३॥

कवि—तुलसीदास

(पूर्णोपमा)

दो०—नीच गुडी लौं जानिए, तो ला तुलसीदास।
ढीलि दिये गिरि परत महि, खचे चढन अकाश ॥३३४॥

टीका—नीच उपमेय, गुडी पतग उपमान, लौं वाचक, गिरिवो चढिवो धर्म ॥३३४॥

(दीपकावृत्ति)

दो०—भले भलाई को लहैं, लहैं निचाई नीचु।
सुधा सराही अमरता, गरल सराही मीचु ॥३३५॥

टीका—[भले] भलाइ लहै, नीच निचाइ लहै, सुधा सराही, गरल सराही, लहै को अर्थ सब एकइ है ॥३३५॥

(यथासंख्य)

दो०—उत्तम मध्यम अधम नर, पाहन भू जल रेख।
प्रीति अनुक्रम से कहो, वैर वितिक्रम पेख ॥३३६॥

टीका—पाहन, भू, जल रेख प्रीति क्रमते उत्तम प्रीति पथरलीक, मध्य कै भूमि रेख, अधम कै जल रेख। वैर वितिक्रम—अधम कै वैर पत्थर की लीक, मध्यम कै भूमि रेख, उत्तम ते वैर जल रेख ॥३३६॥

(प्रस्तुतप्रशंसा)

दो०—गगा जमुना सरस्वती, सात समुद भरि पूरि।
तुलसी चातिक के मते, बिना स्वाति सब धूरि ॥३३७॥

टीका—चातिक गगादिक के जल को निरादर कियो, एक स्वाति बिना, ऐसे जे नर सिपुरिस है एक अपने स्वामि सेवाइ और को नहीं जानै है ॥३३७॥

गुडी = गुड्डी, पतग ॥३३४॥

लहैं = पाते हैं। सुधा = अमृत। अमरता = देवत्व, मृत्युको जीतना।
गरल = विष। मीचु = मृत्यु ॥३३५॥

अनुक्रम = सीधा क्रम। व्यतिक्रम = उलटा क्रम, ॥३३६॥

समुद = समुद्र। स्वाति = एक नक्षत्र ॥३३७॥

(उल्लास)

दो०—हित हूँ अनहित होत है, तुलसी दुरदिन पाय।
बधिक बध मृगबान तें, रुधिरै देत बताय ॥३३८॥

टीका—रुधिर गिरब दोष, ताते फेरि मारगे, यह दाप ते दोष ॥३३८॥

(अप्रस्तुतप्रशंसा)

दो०—सगबासी काची भखै, पुरजन पाक प्रवीन।
कालछेप केहि मिलि करै, तुलसी खग मृगमीन ॥३३६॥

टीका—खल नरन सग क्या निबाह होइगो ॥३३६॥

(निदर्शना)

दो०—गुण सरूप बल बित्त को ,प्रीति करै सब कोय।
तुलसी प्रीति सराहिए, इनते बाहर होय ॥३४०॥

टीका—गुण, स्वरूप, बल, धन देखि सबै पीति करैहै ॥३४०॥

(अर्थान्तरन्यास)

दो०—बड़ो छोट सों छल करै, जनम कनौडो होय।
श्रीपति सिर तुलसी लसी, बलि बावन गति सोय ॥३४१॥

टीका—बड़े छोट यह सामा य, श्रीपति बलि बावन विशेष ॥३४१॥

(अप्रस्तुत प्रशंसा)

दो०—मीन काढ़ि जल धोइए, खाये अधिक पियास।
तुलसी प्रीति सराहिए, मुयेहु मीतकी आस ॥३४२॥

टीका—मीन जलते निकासि जले म धोईए, खाय फेरि पियास जलै को, ऐसे ही मित्रता चाहिये ॥३४२॥

बधिक = व्याधा, कसाई ॥३३८॥
कनौडो = एहसानसद। श्रीपति = विष्णु ॥३४१॥
मुयेहु = मरे हुए ॥३४२॥

(निदर्शना)

दो०—खल उपकार बिकार फल, तुलसी जान जहान ।
मेडुक मरकट बनिक पिक, कथा सत्य उपखान ॥३४३॥

टीका—मेडु मर्कट बनिक पिक यह कथा उपाख्यान है, ताते लोकोक्ति, अथवा सत को उपदेश ते निदशना ॥३४३॥

(उल्लास)

दो०—नीच निरादर ही सुखद, आदर दुखद बिशाल ।
कदली बदरी बिटप गति, पेखहु पनस रसाल ॥३४४॥

टीका—नीचनिरादर दोष, ताते सुख गुण भया ॥३४४॥

(सधर्म दृष्टांत)

दो०—प्रभु सनमुख गे नीच नर, होत अधिक बिकराल ।
रबि रुख लखि दरपन फटिक, उगिलत ज्वाला जाल ॥३४५॥

टीका—रवि का देखि दरपन ते आगि झरै है, तस प्रभु के सनमुख नीच नर करालता पावे है ॥३४५॥

(दृष्टात)

दो०—प्रभु सनमुख गे सुजन जन, होत सुखद सुपकारि ।
लोन जलधि जल ज्यो जलद, बरषत सुधा सुबारि ॥३४६॥

टीका—प्रभु सनमुखगे सुजन सुख पावै है जैसे लोन जलधि जलद सुधा बरषै है ॥३४६॥

(उपमा)

दो०—बरषत हरषत लोग सब, करषत लखै न कोय ।
तुलसी भूपति भानु सो, प्रजा भागबश होय ॥३४७॥

टीका—बरसत करषत धर्म, नृप उपमेय, भानु उपमान, सो वाचक ॥३४७॥

जहान=ससार । मेडुक=मेंढक । मरकट=बदर । बनिक=बनिया । पिक=कोयल । उपखान=उपाख्यान, वर्णन ॥३४३॥
कदली=केला । बदरी=बेर । पनस=कटहल । रसाल=आम ॥३४४॥
लोन=लवण, खारा । ॥३४६॥
करषत=खींचते हुए । भागवश=भाग्यवशात् ॥३४७॥

(रूपक)

दो०—सूम कोठरी श्वानि भग, ए द्वै एक समान ।
भारत ही दुख होत है, काढत निकरत प्रान ॥३४८॥

टीका—सूम कोठरी उपमान उपमेय ॥३४८॥

(काव्यलिग)

दो०—बार बार जहँ आइए, बिना काज धरि लोभ ।
तुलसी तहँ अपमान को, कहा कीजिए छोभ ॥३४९॥

टीका—लाभते आदर निरादर होना सामर्थ्य है ॥३४९॥

(अवज्ञा)

दो०—वरषत बसु हरषित करै, हरै जगत की त्रास ।
तुलसी निज गुण दोष ते, जल ते जरै जवास ॥३५०॥

टीका—जगत हरष जवास जरै अपने स्वभावते ॥३५०॥

कवि—शोभनाथ

(प्रतिवस्तूपमा)

दो०—सुख बिलसो नवलाल सो, तजो अटपटे तेह ।
लसति नारि मनि मान सो, लसत नारि पिय नेह ॥३५१॥

टीका—लसत नारि, लसत पिय नेह, याते प्रतिवस्तूपमा ॥३५१॥

(निदर्शना प्रथम)

दो०—फैलि रह्यो मनि सदन मै, आनन अमल प्रकास ।
अलकनि चचलता लखो, नागिनि गमन विलास ॥३५२॥

टीका—अलक के चचलता नागिन की गमन ते निदर्शना ॥३५२॥

छोभ = छोभ, दुख ३४९॥
बसु = जल । जवास = कण्टका ॥३५०॥
अटपटे = अडबड । तेह = क्रोध ॥३५१॥
मनिसदन = मणिमय गृह । अलकनि = केशामें ॥३५२॥

(पिहित)

दो०—बिथुरे कच रति रंग में, समुझि सखी मुख मोरि ।
दई तरुनि को बिहँसि कै, अग्न पाट की डोरि ॥३५३॥

टीका—चार बिथुरे देखि सखी अरुण पाट का डोरा दई, याते आरन का बाँधि लीजै, यह छुपी बातको प्रगट किया, यात पिहित ॥३५३॥

(अतद्गुण)

दो०—सिगरी निसि नव कंज में, कीन्हे ह्यो निकेत ।
निरख्यौ तऊ भयो नहीं, स्यामल मधुकर सेत ॥३५४॥

टीका—कंज में सिगरी निशि रह्या भोर, पै सेत न भया, संगति के गुन न लग्यौ, यातें अतद्गुण ॥३५४॥

(लेश प्रथम)

दो०—सुनहु सयान क्षीरनिधि, बचन चारु चितलाइ ।
रतन सग्रहन ते सुरन, उदर मथ्यो तौ आइ ॥३५५॥

टीका—रतन राखे ते उदर मथ्या गया हे समुद्र, ताते लेश ॥३५५॥

(अवज्ञा)

दो०—निशि बासर तरुनीन में, विहरे परगट गोय ।
सूर वीर नर नेकहूँ, कबहुँ न कायर होय ॥३५६॥

टीका—सूर वीर तरुनी के संग विहार करत, तरुनी को गुण ग्रहण करना चाहिए सो न लग्यो, ताते अवज्ञा ॥३५६॥

(प्रत्यनीक)

दो०—तो पर जोर चले न कछु, निबल अपनपौ मानि ।
केदली को तोरत करी, जवन के सम जानि ॥३५७॥

टीका—तो पर जोर गयन्द का नहीं चलो तो केदरी को तोरन लगे जाँघ सम जानि, अरि पक्षी पै जोर किये प्रत्यनीक ॥३५७॥

बिथुरे कच = बिखरे केश ॥३५३॥

निकेत = निवास । मधुकर = भ्रमर । सेत = श्वेत ॥३५४॥

सग्रहन = संग्रहण, एकत्रित करना ॥३५५॥

गोय = गुप्त ॥३५६॥

अपनपौ = आत्मीयता, अपनापन ॥३५७॥

कवि मुकुद (लेश)

दो०—हौ देखौं सब जगत का, देखे कोइ न मोहि ।
तुव प्रसाद हौ सिद्ध भो, नमो दरिद्र प्रभु तोहि ॥३५८॥
काहू न ह्वै सतसग म, देखो, तिल अरु तेल ।
मोल तोल सब बढि गये, पायो नाम फुलेल ॥३५६॥

टीका—हा सा जग को देख्या अर्थात् सब ते जाचना किये, पै मोका काई नहीं देखि पायो, सिद्धि भयो, सो हे प्रभु दरिद्र । तुमहि मेरे नमो०, याते लेश । सतसग ते काहू नही ह्वैहै ॥३५८, ३५६॥

(प्रत्यनीक)

दो०—घन डरपै घनस्याम से, इतै आइ दुख देत ।
रबि सो चलै न चद की, कज प्रभा हार लेत ॥३६०॥

टीका—रवि सो चद का बल नहीं चलैहै, रवि के हित कज, ताको चद दुख देय है, याते प्रत्यनीक ॥३६०॥

(विनोक्ति)

दो०—रूप अनूप प्रकास तन, भूप भूमि मे लीन ।
सब गुण सहित प्रबीन हौ, बिना नम्रता हीन ॥३६१॥

टीका—बिना नम्रता हीन, यह प्रस्तुत, कछु बिना छीन, यातें विनोक्ति ३६१

(विरोधाभास)

दो०—हस्त बस्त जै नृपति है, योगी लिप्त बिभूति ।
हरि सुमिरत ते भगत है, तीनिउ गए विभूति ॥३६२॥

टीका—हस्त बस्त जे नृपति कहै जे नृप हस्त कहै हाथ बस्त कहै मूठी बाँधे है । अर्थ यह कि कुछु दातव्य नहीं, अरु योगी बिभूति लिप्त कहै बिभूति ऐश्वर्य में पगे है, हरि सुमिरत ते भगत कहै हरि के सुमिरन ते भागते, यह शब्द बिरोध अर्थमें नहीं, अर्थ अविरोध यहि भाँति है हस्त कहै हाथी, बस्त कहै जे नृप बाँधे है, जोगी जे बिभूति राखिमे लिप्त कहै लगाए है, हरि सुमिरत ते भगत है कहै भक्त, याते बिरोधाभास ॥३६२॥

फुलेल = इत्र ॥३५६॥
विभूति = ॥३६२॥

(अर्थान्तरन्यास)

दो०—नीच बड़ाई लहत हैं, लहे बड़ेन के साथ।
ढाक पात सँग पान के, चढ़ै छत्रपति हाथ ॥२६३॥

टीका—नीच सामान्य, ढाक पात विशेष ते अर्थान्तर यास ॥३६३॥

(यथासख्य)

दो०—रक लोह तरु कीट अरु, परसि न पल्टे अंग।
कहाँ नृपति पारस कहाँ, कँह चन्दन कँह भृग ॥३६४॥

टीका—रक, लोह, तरु, नाग—नृपति, पारस, चन्दन, भृगी यह चारिउ चारि में लगे ते अग पल्टे है। जैसे राजा के पास गये ते दरिद्र मिटि जात, लोह पारस परसि सोना होत, तरुमलया चदन परसि चदन होत, कीट भृगी परस ते भृगी होत, यातें जथासख्य ॥३६४॥

कवि—रसलीन

(रूपक)

दो०—भ्रू डाँडी काँटा तिलक, पल चख पुतरी बाँट।
तौलति मूरति मित्र की, नेह नगर की हाट ॥३६५॥

टीका—भ्रू डाँडी भ्रू कहै भृकुटी डाँडी, काँटा तिलक, ते रूपक ॥३६५॥

(शुद्धापह्नुति)

दो०—अरुन माँग पटिया नहीं, मदन जगत को मारि।
असित फरी पर लै धरी, रकत भरी तरवारि ॥३६६॥

टीका—यह अरुण सेंदुर माँग में नहीं है मदन जगत को मारिकै स्याम ढाल पर रकत लगी तरवारि धरी, धर्म दुराये ते शुद्धापह्नुति ॥३६६॥

(समस्तविषयी रूपक)

दो०—जाल घुँघुर अरु डाँड भ्रू, नैनन मुलह बनाइ।
खींचत दृग खग जग त्रिया, तिल दाने दिखराइ ॥३६७॥

टीका—जाल घुँघरु, डाँड भृकुटी, नेत्र मुलह, ताते रूपक ॥३६७॥

पल = पलक। चख = चक्षु। पुतरी = कनीनिका। बाँट = बटखरा। हाट = बाजार ॥३६५॥

मदन = कामदेव। असित = काली। फरी = ढाल। रकत = रक्त, खून ॥३६६॥

(विरोधाभास)

दो०—सब जग पेरत तिलन को, का न ठग्यौ यह हेरि ।
तव कपोल के एक तिल, सब जग डारे पेरि ॥३६८॥

टीका—तिल को कोल्हू पै पेरत । तिल कोलु कौन कहै सब जग पेरै, यह विरोध शब्द ॥३६८॥

(अत्युक्ति)

दो०—लिखन चहत 'रसलीन' जन, तुव अधरन की बात ।
लेखन की बिधि जीभ बँधि, मधुराई ते जात ॥३६९॥

टीका—लेखनी कहै कलमके जीभ पर मधुराई आवै ॥३६९॥

(उत्प्रेक्षा)

दो०—स्याम दसन अधरान मधि, सोहत है यहि भाँति ।
कमल बीच बैठी मनो, अलि छौनन की पाँति ॥३७०॥

टीका—कमल बीच अलि छौना बैठो, याते उत्प्रेक्षा ॥३७०॥

(गम्योत्प्रेक्षा)

दो०—चद्रमुखी जूरो चितै, चित लीन्हो पहिचानि ।
शीस उठायो है तिमिर, शशि के पीछे जानि ॥३७१॥

टीका—शीश उठायौ, तिमिर, शशिको पीछे डारि, वाचक नहीं याते गम्योत्प्रेक्षा ॥३७१॥

(अपह्नुति सुद्धा)

दो०—दई न बाम लिलार पर, बेंदी स्याम सुधारि ।
माँग स्यामता उरग लहि, बैठो कुडल मारि ॥३७२॥

टीका—दई न बामलिलार पट यह बेंदी कुडल करि साँपिनि बैठी धर्म दुरे ते अपह्नुति ॥३७२॥

दसन = दाँत । मधि = मध्य, बीच । अलिछौनन = भौंरो के बच्चा की ॥३७०॥
जूरो = जूडा (केशा का) ॥३७१॥

बाम = सुन्दरी स्त्री । लिलार = मस्तक । उरग = सर्प । कुडलमारि = कुडल की तरह गोलाकार होकर ॥३७२॥

१—मिस्सी लगाने से दाँत काले हो गये हैं अत श्याम दशनों की यह उत्प्रेक्षा है । वस्तुत यह कविसमय प्रसिद्धि के विरुद्ध है, दाँतो का वर्णन सर्वथा श्वेत रूप में ही कवियो ने किया है ।

(श्लेष)

दो०—मुक्त भए घर खोइ कै, बैठे कानन जाइ ।
अब घर खोवत और के, कीजै कौन उपाइ ॥३७३॥

टीका—मुक्त भये घर खोय कहे घर छाडि के तब मुक्त भये। कानन कहे बन मे बसे, यह एक अर्थ। मुक्त भए घर खोइ कहै जब मोती निकसे है तब सीपो की छाती फाटि जाती है। कानन कहे कान म पहिनी जाती, याते श्लेष ॥३७३॥

(अतद्गुन)

दो०—ठगत सकल श्रुति सेइ करि, लहत साधु परिमान ।
यह खुटिला श्रुति सेइ करि, खुटिले रह्यौ निदान ॥३७४॥

टीका—श्रुति सेए ते ठग साधु होत। यह खुटिना श्रुति सेय खुटिलै रह्यो। सगति गुण न लग्यो, ताते अतदगुण ॥३७४॥

कवि—दास

(उन्मीलित)

दो०—जमुना जल में मिलि चली, उत अँसुवन की धार ।
नीर दूरि ते ल्याइयतु, जहाँ न पैयत खार ॥३७५॥

टीका—जमुना जल स्याम, आँसू स्याम मिलो खार ते जान्यो ॥३७५॥

(लेश)

दो०—ललित लाल मुख मेलि कै, दियो गँवारन फेरि ।
लील न लीन्हो यह बड़ो, लाभ जौहरी हेरि ॥३७६॥

टीका—लीलि न लीन्हो, फेरि पायो, जौहरी तेरी बडी भाग है, ताते लेश ॥३७६॥

मुक्त=विरक्त, मोती। कानन=वन, कानो म। खावत=नष्ट करते हैं ॥३७३॥

श्रुति सेइ करि=शास्त्रो का मनन कर। लहत=प्राप्त करते हैं। परिमान=प्रमाण (प्रत्यक्षादि)। खुटिला=कान का एक आभूषण। श्रुति=कान ॥३७४॥

लाल=रत्न। गँवारन=असभ्या ने। लाल न लीन्हो=निगल न लिया ॥३७६॥

(विभावना)

दो०—चंद निरखि सकुचत कमल, नहि अचरज नँद नंद ।
यह अचरज तिय मुख कमल, लखि के सकुचत चंद ॥३७७॥

टीका—यह अचरज तिय मुख कंज देखि चंद सकुचै, यह कार्य ते कारण, ताते विभावना ॥३७७॥

(व्याघात)

दो०—'दास' सपूत सपूत ही, गथ बल होइ न होइ ।
यहै कपूतहुँ की दशा, भूलि न भूलै कोइ ॥३७८॥

टीका—सपूत सपूती किये होइ गथ बल से सपूत नहीं ॥३७८॥

(विरुद्ध)

दो०—लोभी धन संचै करै, दारिद की डर मानि ।
'दास' वही डर मानि कै, दान देत है दानि ॥३७९॥

टीका—लोभी धन संचै करे है दारिद डर ते ॥३७९॥

(व्याज निंदा)

दो०—नहि तेरो यह बिधिहि को, दूषन काक कराल ।
जिन तोहूँ कलरव हुकी, दीन्हो बास रसाल ॥३८०॥

टीका—हे काग ! तेरो दोष नहीं, यह, जिन जौ तोको कलरव शब्द दियो है। कागका निंदा ते पैदा करणहारे की निंदा ॥३८०॥

(सम तीसरा)

दो०—जो कारन ते उपजि कै, कारन देत जराय ।
ता पावक सों उपजि घन, हनै पावकहि पाय ॥३८१॥

टीका—जो आगि कानन ते उपजि कानन को जरावै ताही पावक सो घन होत। वही घन अगिनि को बुझाइ देत है, याते सम ॥३८१॥

गथ = पूँजी ॥३७८॥

बिधि = विधाता, ब्रह्मा। दूषन = दोष। कलरव = मधुर शब्द। रसाल = आम ॥३८०॥

कार—राम सहाय

(मुद्रा)

दो०—पटना देरी लखनऊ, कासमीर सुखदेत।
करनाटक नैपाल की, चढ़ि चलु कंत निकेत ॥३८२॥

टीका—पटना देरी लखनऊ कासमीरादिक सहर नाम निकस्यो। अथ सूच्यार्थ—पट ना कहे पट दरवाजा न देरी सखी। लखनऊ कहे लख दरा, नऊ कहे नवा। कासमीर कहे का सुन्दर समीर सुख देत है। करनाटक कहे कर न अटक कहे देर न कर। नैपालकी कहे नइ पालकी पर चढ़ि चलु, यातें मुद्रा ॥३८२॥

(समुच्चय)

दो०—प्रथमहि पारद मैं रही, फिरि सौदामनि माहँ।
तरलाई भामिनि हगन, अब आई ब्रज माहँ ॥३८३॥

टीका—पहिले पारा में रही, सोदामनि कहे बिजुलामें, अब तरुनाइ भामिनि में आई। क्रमते एक आश्रय, ताते समुच्चय ॥३८३॥

(विभावना)

दो०—शशि लखि जगत बिदित्त हो, जात कमल कुँभिलाय।
यह शशि कुँभिलानो कहो, कमलहि लखि केहि भाय ॥३८४॥

टीका—यह शशिकमल देखि सकुचानो, ताते बिभावना ॥३८४॥

(पर्य्यस्तापह्नुति)

दो०—श्याम रंग के पास ते, उपजो पुलक शरीर।
आली बनमाली मिले, नहि जमुना के तीर ॥३८५॥

टीका—आली बनमाली, नहि जमुनाको नीर स्यामल होय, ताते पुलक भयो ॥३८५॥

समीर = वायु। कंत निकेत = प्रियतमक भवन ॥३८२॥
पारद = पारा। सौदामनि = बिजली। तरलाई = चंचलता ३८३॥
कुँभिलाय = मुरझा जाता है। केहिमाय = किसे अच्छा लगता ह ॥३८४॥
पुलक = रोमांच। बनमाली = श्रीकृष्ण ॥३८५॥

कवि—प्रवीनराय

(संबंधातिशयोक्ति)

दो०—कुच उतग सुर बश कियौ, नगर नृपति बश कीन ।
अब बश करन पताल को, लवटि पयानो कीन ॥३८६॥

टीका—कुच ता ऐसे उतग की सुर लोक बसि कियो । अजोग जोग ते असबधाति० ॥३८६॥

(पूर्णोपमा)

दो०—जोबन सरक्यौ अग ते, बदन चटक केहि हेत ।
मन मथ बोरि मशाल ज्यौ, सैति सिहारे लेत ॥३८७॥

टीका—मनमथ उपमान, मशाल उपमेय, ज्यों वाचक, सेहारिबो धर्म, यात पूर्णोपमा ॥३८७॥

(पिहित)

दो०—बिनती 'राय प्रबीन' की, सुनिए साहि जहाँन ।
जूठ पतौआ ह्वै भखै, कौआ औरौ स्वान ॥३८८॥

टीका—जूठ पतरी दो खाते हैं, एक काग अरु एक कूकुर । यह छपी बात को जनायो प्रवीन राय, पतुरिया इन्द्रजीत राजा की होय बादशाह से कहै है की मै तुम्हारे लायक नहीं हौ, याते पिहित ॥३८८॥

कवि—नवाब खान खाना

(दीपकावृत्ति)

दो०—नैन सलोने अधर मधु, कहि 'रहीम' घटि कौन ।
मीठो चहिए लोन पै, मीठे हू पै लोन ॥३८९॥

टीका—मीठे मीठे, लोन लोन शब्द अर्थ एकई है ॥३८९॥

उतग = उत्तुङ्ग, ऊँचे । पयानो = प्रयाण, प्रस्थान ॥३८६॥

चटक = कांति, चमक । सिहारे लेत = ढूँढे लेता है ॥३८७॥

साहि जहाँन = ससारके राजा । पतौआ = पत्तल । भखै = भक्षण करते है ॥३८८॥

सलोने = सुन्दर, नमकीन । लोन = नमक ॥३८९॥

(असंगति)

दो०—'रहिमन' वोछ प्रसग त, नित प्रति लाभ विकार ।
नीर चुरावत सपुटी, मार सहत घरियार ॥३९०॥

टीका—नीर सम्पुटी चोरावै, मार घरियार सहै । कार्य कारण ते विरुद्ध, ताते प्रथम असगति ॥३९०॥

(दीपकावृत्ति)

दो०—'रहिमन' पटे ना कहै, क्या न भई तुम पाठि ।
भूखे मान बिगारहू, भरे बिगारहु दीठि ॥३९१॥

टीका—भूखे मान को बिगारै है, भरे पर दीठि बिगरत पद ते दीपका वृति ॥३९१॥

(उल्लास)

दो०—अमी पियावै मान बिन, 'रहिमन' मुहि न सोहाय ।
मान सहित मरिवो भलो, वरु विप देइ बुलाय ॥३९२॥

टीका—विप मान सहित पियावै, सो भलो है, दाप को गुण मान्यो, ताते उल्लास ॥३९२॥

(दीपक)

दो०—'रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून ।
पानी गये न ऊबरै, मोती मानुप चून ॥३९३॥

टीका—मोती, मानुस, चून में एक पानी के अन्वय ते दीपक ॥३९३॥

(अर्थान्तरन्यास)

दो०—बडे बडाई ना तजै, लघु 'रहीम' इतराइ ।
राय करौंदा होत है, कटहर होत न राइ ॥३९४॥

टीका—बडे बडाई लघु यह सामान्य, राय करोंदा विशेष, यात अर्थांतर न्यास ॥३९४॥

वोछ = ओछा । सपुटा = छोटी डिबिया । घरियार = घडियाल, मगर ॥
अमी = अमृत । मुहि = मुझे । बरु = भरेही ॥३९२॥
पानी = जल, ओज, प्रतिष्ठा । सून = शून्य ॥३९३॥
इतराइ = घमण्ड करते है ॥३९४॥

(अप्रस्तुत प्रशंसा)

दो०—फरजी साह न ह्वै सकै, गति टेढी तासीर ।
'रहिमन' सीधी चाल ते, प्यादे होत उजीर ॥३६५॥
टीका—सीधी चालते प्यादा उजीर होत, अप्रस्तुत प्रशसा ॥३६५॥

(उत्प्रेक्षा)

दो०—करत निपुनई गुन बिना, 'रहिमन' निपुन हजूर ।
मानो टेरत बिटप चढि , यहि प्रकार हम कूर ॥३६६॥
टीका—मानो० मानो बिटप चढि टेरत है की हम ऐसे कूर हैं ॥३६६॥

(प्रथम असंगति)

दो० –'रहिमन' खोटे सग मैं, साधु बाँचते नाहिं ।
नैना धैना करत हैं, उरज उमेठे जाहि ॥३६७॥
टीका—नैना लगालगी करे हैं, उरज उमेठे जाय हैं, याते असगति ॥३६७॥

(दृष्टांत)

दो०—खीरा शिर धरि काटिए, मलिए लोन लगाइ ।
करुए मुख को चाहिए, 'रहिमन' एही सजाइ ॥३६८॥
टीका—करुए मुख को यही दण्ड है, जैसे खीरा में लोन लगाइ कै तब काटते है, याते दृष्टान्त ॥३६८॥

कवि चन्द

(अत्युक्ति)

दो०—सीक बान पृथुराज की, तीनि बाँस गज चारि ।
लगत चोट चौहान की, उड़त तीस मन गारि ॥३६९॥
टीका—तीस मन माटी तीर लागे उडि जाती है, याते अत्युक्ति ॥३६९॥

फरजी = कल्पित, शतरजका एक मोहरा । साह = राजा । तासीर = प्रभाव । प्यादे = पैदल सिपाही । उजार = वजार, मन्त्री ॥३६५॥

निपुनई = चतुरता । टेरत = पुकारता है । बिटप = वृक्ष । कूर = क्रूर ॥३६६॥

बाँचते = बचते । धैना = धन्धा, काम । उरज = स्तन । उमेठे = मरोड़े या मसले ॥३६७॥

लोन = नमक । कड़ये = खोटे । सजाइ = सजा दण्ड ॥३६८॥

गारि = मिट्टी ॥३६९॥

(पिहित)

दो०—धर पलट्यौ पलटी धरा, पलट्यो हाथ कमान।
'चंद' कहै पृथुराज सो, दिन पलटे चौहान ॥४००॥

टीका—दिन पलट्यो है, हे पृथुराज वही कमान तुमारे कर में आई, शत्रु को मारो, यही छुपी बात को जताया ॥४००॥

(पर्यायोक्ति)

दो०—बारह बॉस बतीस गज, अगुल चारि प्रमान।
यतन धरे पतसाह है, मति चूको चौहान ॥४०१॥

टीका—बारह बॉस बतीस गज चार अँगुल, इतनी ऊँचाई पर है, निशाना के बहाने ते पातसाह इतने ऊँचे पर बैठा है मारो, मिसुकरि कार्य, याते दूसर पर्य्यायोक्ति ॥४०१॥

(असत निदर्शना)

दो०—फेरि न जननी जनमिहै, फेरि न खेंचि कमान।
सात बार तुम चूकियो, अब न चूकु चौहान ॥४०२॥

टीका—सात बार चूक्यो, अब न चूको, फेरि तुमारा जन्म न है है जो करब को होय सो करि लेहु ॥४०२॥

कवि—सुखदेव (स्वभावोक्ति)

दो०—खेलनवारिन संग अजौं, करत धूरि को गेह।
वेई खेलति खेल पै, रहत बचाए देह ॥४०३॥

टीका—खेल वही खेलत जो आगे खेलती रही पै धूरिते देह बचाये रहती है, क्या की अंग मैल है जै है याते जातजानना ॥४०३॥

धर = पर्वत। धरा = पृथ्वी। कमान = धनुष ॥४००॥

पतसाह = बादशाह, राजा ॥४०१॥

खेलनवारिन = खेलनेवाली सखियाके। अजौं = आज भी। धूरिका गेह = मिट्टी का घरोंदा ॥४०३॥

(पर्य्यायोक्ति)

दो०—कत हँसती ह्याँ है कहाँ, हँसिबो को मजकूर ।
कान्ह बतावत गहि गरो, यों माऱ्यो चाणूर ॥४०४॥

टीका—का ह को गरव करि कहती है कि यही भाँति चाणूर को मारथा, यह मिसु करि कार्य साध्या, यात बर्तमान गुप्ता ॥४०४॥

(स्वभावोक्ति)

दो०—तौ मै तुम्है न राखिहौ, नेकु आपने ठौर ।
केलि कथा छिन छोडि जो, चलन चालि हो और ॥४०५॥

टीका—केलि कहै रतिप्रसग क कथा छाडि ओर चरचा करिहो तो अपने ठौर न राखिहा, काम केलि ते तृप्ति नही है, याते कुलटा ॥४०५॥

(निषेधाभास)

दो०—भली भई पिय सा मिली, अब दुरावती काहि ।
बीस बिसे येह बीजुरी, बादर ही की आहि ॥४०६॥

टीका—यह निजुरी बादरहीं की, यह लच्छित किये ते लच्छिता ॥४०६॥

(काव्यलिग)

दो०—कियो होय जो मे कहूँ, और तरुनि सा साथ ।
तो तेरे कुच ईश के, सीस धरत हौ हाथ ॥४०७॥

टीका—तेरे कुचइश के शीस पे हाथ धरि कहत हो । मीठे बचन ते सठ, ईश उपमान, कुच के कसम के समर्थन काव्यलिग ॥४०७॥

(उल्लास)

दो०—पिय बिछुरे के पीर मै, पीछे जाने जाइ
भरी ह्वैक लौ मूरछा, लीन्ही मोहि जिआइ ॥४०८॥

टीका—मूरछा लिया जियाइ, मूरछा दोष ते जियब गुण उल्लास ॥४०८॥

कत = क्यों । मजकूर = विवश । कान्ह = कृष्ण । गहिगरो = गला पकड़कर । चाणूर = एक दैत्य (जिसे कृष्णने बचपनमें मारा था) ॥४०४॥

नेकु = थोड़ा भी । ठौर = जगह ॥४०५॥

दुरावती = छिपाती । बीसबिसे = पूर्णरूप से ॥४०६॥

कुचइश = स्तनरूप शिव । सीस = मस्तक ॥४०७॥

कवि—बिहारीलाल (विशेषोक्ति)

दो०—चितवत जितवत हित हिए, किए तिरीछे नैन।
भीजे तन दोऊ कँपैं, क्योंहूँ जप निबरै न ॥४०९॥

टीका—चितवत हैं हित लिए करि तिरीछे नैन करके, दोऊ काँपत, जप कहे जपन नहीं पूर करत, पर अवलोकन का ॥४०९॥

(पर्यायोक्ति)

दो०—मुँह धोवति एड़ी घँसति, हँसति अनँगवति तीर।
धसति न इन्दीवर नयनि, कालिंदी कौ नीर ॥४१०॥

टीका—मुँह धोवती है, एड़ी घँसती, हँसती, अनँगवति कहे अनगमई, तीर कहे तट पर यह भाव करि रहा, पै नीर में पाँव नहीं रक्खो याते पर्यायोक्ति ॥४१०॥

(पूर्णोपमा)

दो०—दीठि बरत बाँधी अटनि, चढ़ि आवत न डेरात।
इत उत ते चित दुहुनके, नट लौं आवत जात ॥४११॥

टीका—दीठि उपमेय, बरत नाम रसरा उपमान, अटन अपने अपने पर से दोऊ लखि रहे हैं, यह नट लौं चित दुहुन के आवत जात हैं, याते पूर्णोपमा ॥४११॥

(सम्भावना)

दो०—तूँ मत मानै मुकुत ई, किए कपटबत कोटि।
जो गुनही तौ राखिए, आँखिन माँह अगोटि ॥४१२॥

टीका—जो गुनही तो आँखि में अगोटि कहे छुपाइ राखो, याते सम्भावना ॥४१२॥

चितवत = देखते हैं। जितवत = जीतनेके लिये। निबरै न = समाप्त नहीं होता ॥४०९॥

अनँगवति = कामिनी। कालिन्दी = यमुना ॥४१०॥

दीठि = दृष्टि। बरत = चलता हुई। अटनि = अटारियाँसे। इत उत ते = इधर उधर से ॥४११॥

मुकुत = मुक्त, निरपराध। कपटबत = छलकी बातें। गुनही = अपराधी। अगोटि = रोककर ॥४१२॥

(प्रहर्षण-प्रथम)

दो०—खिचे मान अपराध त, चलिगे बढ़े अचैन ।
जुग्त दीठि तजि रिसिखिसी, हँसे दुहुन के नैन ॥४१३॥

टीका—मान ते नायिका को मन खिचे है, आपने अपराध ते नायक को मन खींचे है, तो मिलाप कहा होय । जुरत दीठि कहै मिलत है नेत्र, दोनों के रिसि त्यागि, हँसे दुहूँ के चित्त, अपनी अपनी रीति बूझि जतन बिन मिले, याते प्रहर्षण ॥४१३॥

(काव्यलिंग)

दो०—ढीठ परोसिनि ईठि ह्वै, कहे जु गहे सयान ।
सबै सँदेसो कहि कह्यौ, मुसुकाहट मे मान ॥४१४॥

टीका—जाहि नायिका ते नायक हसत रहो, ताहि देखि निज प्रिय मान कियो, वही नायिका जासों नायक हँसि रहो सो मनावन आई, कैसी वह ढीठ परोसिनि सब सदेश नायिका को कह कर कह्यो की यतने मुसुकानि पर मान कियो, यातें काव्यलिंग ॥४१४॥

(प्रहर्षण)

दो०—अरी खरी सट पट परी, बिधु आधे मग हेरि ।
सग लगे मधुपन लई, भागन गली अँधेरि ॥४१५॥

टीका—आधे मग म बिधु कहे चन्द्रमा देखिपरो तो नायक के पास कौन भाँति ते जाय । प्रकाश अग सुवास ते भार सग लगे, गली अधेर ह्वै गई भागन ते, याते प्रहर्षण ॥४१५॥

(पूर्णोपमा)

दो०—बिरह बिथा जल परस बिनु, बसियत मो जिय ताल ।
कछु जानत जलथभ बिधि, दुरजोधन लौ लाल ॥४१६॥

जुरत = जुड़ते हैं । दीठि = दृष्टि । रिसिखिसी = क्रोध और खीझ ॥४१३॥

ढीठ = धृष्ट । ईठि = प्रेमयुक्त ॥४१४॥

खरी = अत्यन्त । सटपट परी = घबराहट हो गयी । बिधु – चन्द्रमा । मधुपन = भौंरों को । भागन = भाग्य से ॥४१५॥

परस = स्पर्श । बसियत = रहा जाता है । जलथभ = जलस्तम्भन । दुरजोधन = ज्येष्ठ कौरव । लाल = नायक ॥४१६॥

टीका—विरह विथा को जो जल, सो हे लाल तुम्हरे अंग में नहीं छुइ जात है, क्योंकी मेरे जिय ताल में तुम राता दिन बसत हो, कछु जलथभन की विद्या जानत हौ, दुरजोधन जो जानते रहे। उपमान दुरजोधन, लौं वाचक, विदि तुम उपमेय, नहिं लगै धर्म ते पूर्णोपमा ॥४१६॥

(दीपक)

दो०—बालम बारी सौति की, सुनि पर नारि बिहार ।
भो रस अनरस रगरली, रीझि खीझि यक बार ॥४१७॥

टीका—बालम कहे नायक की नारी करै बारगी, परनारी के साथ विहार को सुन्यो, भा रस अनरस रस अनरस दुनों के रंग में रंगी रीझि खीझि येक ही बार, याते दीपक ॥४१७॥

(पूर्णोपमा)

दो०—हरि छवि जल जबते परे, तबते छिन बिछुरैन ।
भरत ढरत बूडत तरत, रहत घरी लौं नैन ॥४१८॥

टीका—छवि के जल उपमान उपमेय, भरत ढरत धर्म, लौं वाचक, घरी उपमान, नैन उपमेय, ते उपमा ॥४१८॥

(अधिक)

दो०—बिधि बिधि कै निकरै टरै, नहीं परे हूँ पान ।
चितै कितै ते लै धरयो, इतौ इतै तन मान ॥४१९॥

टीका—विधि कहे उपाय किये ते निकर जाय है। चितै कहे ताकि कितै कहै कहाँ ते धरो इतने पान तन पै मान ॥४१९॥

(विषम)

दो०—साजे मोहन मोह को, मो हिय करत कुचैन ।
कहा करौ उलटे परे, टोने लोने नैन ॥४२०॥

बालमबारी = स्वकीया नायिका। अनरस = (दे० दि० पृ०) ।
रीझि = प्रसन्नता। खीझ = क्रोध ॥४१७॥

रहटघरी = कुएँ पर का घड़ा ॥४१८॥

विधि बिधि = विविध उपाय। पान = पैरामें। चितै = खोजकर। कितै ते = कहाँ से ॥४१९॥

साजे = अलङ्कृत किये। कुचैन = व्याकुलता। टोने = जादू भरे। लोने = सुन्दर ॥४२०॥

टीका—मोहन के मोहिबे को साजे साज गा, मेरे हिये में कुवेग कहै दुःख भरो, काट उलग भया मेही मारि गई, याते विषम अलंकार ॥४२०॥

(असंगति)

दो०—दृग अरुझत टूटत कुटुँब, जुरत चतुर चित प्रीति ।
परत गाँठि दुरजन हिए, दई नई यह रीति ॥४२१॥

टीका—द्रिग अरुझा टूटत कुटुम्ब, जो अरुझै वुही टुटिबो चाहिए, कारण ते कार्य भिन्न, याते असगति ॥४२१॥

(विशेषोक्ति)

दो०—नेकु न झुरसी बिरह झर, नेहलता कुँभिलात ।
नित नित होत हरी हरी, खरी झालरति जात ॥४२२॥

टीका—झुरसी विरह झरते नेहलता कुँभिलात नेकु न कहै रचहूँ नाहीं, याते विशेषोक्ति ॥४२२॥

(लेश)

दो०—मानो बिधि तन अच्छ छबि, स्वच्छ राखिबे काज ।
दृग पग पोछन को कियो, भूषन पायनदाज ॥४२३॥

टीका—यह नायिका के अग म भूषन नहीं होय, यह ब्रह्मा पायनदाज बनावा जो फरस पर पाँव पाछने के हेतु राखै हैं सो है, क्यो दृग पग के मैल भूषण पर परै देह म न लगै याते बस्तूत्प्रेच्छा ॥४२३॥

(अत्युक्ति)

दो०—मैं लै दयौ सुलयौ, कर, छुअत छनक गो नीर ।
लाल तिहारे अरगजा, उर ह्वै लगो अबीर ॥४२४॥

टीका—हे लाल तुम्हारे अरगजा मे नायिका के कर म दये ते सही नीर जरि गयो, अबीर उधी सास ते उडि गयो ऐसे ताप तन मे है, याते अत्युक्ति ॥४२४॥

झुरसी = झुलसी । झर = ज्वाला, लपट । नेहलता = स्नेहरूप लता । कुँभिलात = मुरझाती है । झालरति = फैलती जाती है ॥४२२॥
अच्छ = सुन्दर । पायन्दाज = पैर पोछने का पायदान ॥४२३॥
छनक = छिनमें । अरगजा = चन्दन, अगलेप ॥४२४॥

(रूपक)

दो०—कालबूत दूती बिना, जुरै न आन उपाउ।
फिरि वाके टारे बनै, पाके प्रेम लगाउ ॥४२५॥

टीका—कालबूत नाम जो पक्का मकान जो पर लादा जाता है, ताको रंग चाभी कहत है फिरि जब मकान बनि जाइ है तब वह साँचा निकासि डारत है। कालबूत दूती रूपक ॥४२५॥

(दृष्टान्त)

दो०—पिय मन रुचि ह्वैबो कठिन, तन रुचि होइ सिगार।
लाख करौ आँखि न बढ़ै, बढ़ै बढ़ाये बार ॥४२६॥

टीका—पिय मन की रुचि होना कठिन है और सिगार तो तन रुचि ते है, आँखि नहीं बढ़ती बढ़ाये ते बार बढ़ै है, याते नायक को मिलै ॥४२६॥

दो०—पति रितु ऐगुन गुन बढ़त, मान माँह को शीत।
जात कठिन ह्वै अति मृदुल, तरुनी मन नवनीत ॥४२७॥

टीका—पति रितु, औगुन गुण, पति है रितु, पति के ऐगुन माह है रितु के गुन, निज गुन ते बढ़त सीत, पति ऐगुन ते बढ़त मान, यातें रूपक ॥४२७॥

(लोकोक्ति)

दो०—वाही दिनते नहिं मिटो, मान कलह को मूल।
भले पधारे पाहुने, ह्वै गुडहर को फूल ॥४२८॥

टीका—भले पधारे कहै भले पाहुने आए, वाही दिन ते मान न मिट्यो गुडहर के फूल ह्वै कै, यह लोक उक्ति है कि जहाँ गुडहर के फूल रहै तेहि घर कलह होय ॥४२८॥

दो०—गहिली गरब न कीजिए, समै सुहागहि पाइ।
जिय की जीवनि जेठ सो, माँह न छाँह सुहाइ ॥४२९॥

टीका—गहिली कहै जाहिर गर्व न करु, समय सोहाग कहै पति पाइ को जिस की जीवनि है जेठ के महीने की छाँह सो माघ के मास में नहीं प्यार लागै है ॥४२९॥

कालबूत = ढाँचा (जो छत वगैरह की जुड़ाई मजबूत होने तक काम में आता है) पाके = परिपक्व या प्रौढ़ होने पर। लगाउ = लगाव, बोझ ॥४२५॥
ऐगुन = अवगुन। मान = गर्व। माँह = माघ। नवनीत = मक्खन ॥४२७॥
गुडहर = अड़हुल ॥४२८॥ गहिली = अत्यन्त, गहिरा ॥४२९॥

(अत्युक्ति)

दो०—सीरे जतन न शिशिर निशि, सहि बिरहिनि तनताप।
बसिबे को ग्रीसम दिवस, परै परोसिनि पाप ॥४३०॥

टीका—सीरे कहै शीतल जतन ते शिशिर निशिमे बिरहिनि ताप को सही अरु बसिबे कहै रहिबे को ग्रीषम के दिवस में परोसिन पर पाप कहै दुष्य ह्वै है ॥४३०॥

(व्याघात)

दो०—पावक झर ते बिरह झर, दाहक दुसह विशेखि।
दहै देह वाके परस, याहि द्रिगन ही देखि ॥४३१॥

टीका—पावक झरते बिरह को झर विषम है, देह दहत है पावक छुये ते, यह द्रिगन के देखते दाह होत ॥४३१॥

(अर्थान्तरन्यास)

दो०—वोछे बडे न ह्वै सके, लगि सतरोहे बैन।
दीरघ होइ न नेकहूँ, फारि निहारे नैन ॥४३२॥

टीका—वोछे कहै छोट बडे नहीं है सकते हैं, यह सामान्य दीरघ कहै बडे नहीं होते है, जो नैन को फारि निहारिए यह विशेष ते अर्थान्तर ॥४३२॥

(मालादीपक)

दो०—सम्पति केश सुदेश नर, नवत दुहुन यक बानि।
बिभव सतर कुच नीच नर, नरम बिभव की हानि ॥४३३॥

टीका—सम्पति केश सुंदर देश नर नवत विभव पाइ सतर कहै डेढ कुच नीच नर नरम कब होत जब बिभव कहै धन की हानि ह्वै जाइ है, अवर्ण्य वर्ण्य ते दीपक ॥४३३॥

सीरे = ठढे। बसिबे = रहने के लिये ॥४३०॥ झर = लपट, लौ ॥४३१॥
वोछे = ओछे, छिछोर, सतरोहे ॥४३२॥

(श्लेष)

दो०—दूरि भजत प्रभु पीठि दै, गुन बिस्तारन काल।
प्रगटत निरगुन निकट रहि, चग रग भूपाल ॥४३४॥

टीका—पतगपक्षे-चग कहे पतग दूरि भजत कहै उडत, प्रभु कहै जे उडावत है, गुण बिस्तारन काल गुण कहै डारी, बिस्तारन कहे बढाइब का समय, प्रगटत निरगुन निकट आवत है निकट निरगुन रहै जब डारा खींचत है। ऐसो चग है। भूपालपक्षे-जे गुण आपन बिस्तार करत, की हम बडे गुणी, तामों प्रभु जो परमेश्वर सों पीठि दै दुरि जात है, प्रगटत निरगुन निकट प्रगट होत है निकट जब निरगुन ह्वै जात कि हम कुछ नहि जाने है एस भुव जो पृथ्वी ताको पालनहार परमेश्वर ॥४३४॥

कवि—पद्माकर (अतिशयोक्ति)

दो०—कछु गज गति की आहटनि, छिन छिन छीनत सेर।
बिधु बिकास बिकसित कमल, कछू दिनन के फेर ॥४३५॥

टीका—मुग्धा नायिका के कछु गज गति आवन लगी ताहि देखि सेर कहै सिंह, कटि खीन, बिधु कहै मुख प्रकाश, कमल कहै नेत्र, बिकास यातें अति शयोक्ति ॥४३५॥

(दृष्टांत)

दो०—तिय तन लाज मनोज की, अब यों दसा देखाति।
ज्यों हेमत रितु म लखो, घटत बढत दिन राति ॥४३६॥

टीका—लाज मनोज ते मध्या, ज्यौं हेमरितु घटत बढत है राति दिन। ४३६।

(पूर्णोपमा)

दो०—करति केलि पिय हिय लगी, कोक कलनि अवरेखि।
बिमुद कुमुद लौं ह्वै रही, चद मद दुति देखि ॥४३७॥

टीका—बिमुद कहै बिना मुद कुमुद लोके रही चद मद देखि, याते प्रोढा रतिप्रीता ॥४३७॥

गुन विस्तारनकाल = गुणो का विस्तार करते, तागा बढ़ाते समय। चग = पतग, गुड्डी ॥४३४॥

आहटनि = पैर की ध्वनि। छाजत = क्षीण होता है। सेर = सिंह ॥४३५॥

कोककलनि = काम अथवा चन्द्रमा की कलाओं से अवरेखि = खींचकर। विमुद = अविकसित ॥४३७॥

(लुप्तोपमा)

दो०—निरखि नयन मृग मीन से, उठी सबै मिलि भापि ।
पर घर जाइ गँवाइ रिसि, हौं आई रस राषि ॥४३८॥

टीका—नयन मृग मीन से, नेत्र उपमेय, मृग उपमान, से वाचक ते लुप्तोपमा और यह कहते ही रिस भयो की मेरे नेत्रको ऐसो कहो, याते रूप गर्विता ॥४३८॥

(असंबंधातिशयोक्ति)

दो०—बरसत मेह अछेह अति, अवनि रही जल पूरि ।
पथिक तऊ तव गेह ते, उडत धँधूरन धूरि ॥४३९॥

टीका—पथिक तिहारे भौन ते धूरि उडत आगिनि की, ऐसे वर्षा के समय अजोग जोग असंबंधातिशयोक्ति ॥४३९॥

दो०—घन घमण्ड पावस निसा, सरवर लग्यौ सुखान ।
निरखि प्रान पति जानि गो, तज्यौ मानिनी मान ॥४४०॥

टीका—प्रान पति जान्यौ की मानिनि ने मान का त्यागो, जब कलह करी तब तौ कुछ बियोग नहीं रहो, जब नायक गयो, पछितान लागी, बिरहागि ते मंदिर के सरवर सुखान लागे, यात कलहांतरिता ॥४४०॥

(उन्मीलित)

दो०—जुवति जुन्हाई सो न कछु, अवर भेद अवरेखि ।
तिय आगम पिय जानिगो, चटक चाँदनी पेखि ॥४४१॥

टीका—जुन्हाई मे मिली भेद न रहो, पै नायक चटकीली चाँदनी देखि जा यौ की नायिका है ॥४४१॥

(सूक्ष्म)

दो०—अमल अमोलि कलाल मय, यहि बिधि भूपन भार ।
हरखि हिये पर तिय धरयौ, सरुप सीप को हार ॥४४२॥

टीका—तिय धरयौ सुरुप सीप को हार अर्थात् प्रात काल अरुणोदय है हे तब मिलि है ॥४४२॥

अछेह = निरन्तर। धँधूरन = धू धू करती हुई ॥४३९॥ पावस = वर्षा ४४०॥
जुन्हाई = जून, चाँदनी। अवर = दूसरा। अवरेखि = समझ पड़ता ॥४४१॥
अमल = स्वच्छ। अमोलि = बहुमूल्य। सरुप = सक्रोध ॥४४२॥

कवि—पखाने (लोकोक्ति)

चौ०—जो पति रस सो ठयौ न जाम। कहा सुकी है उपपति काम॥
कहै 'पखाना' जग सुख दाइ। ओसन चाटे प्यास न जाइ॥४४३॥

टीका—ओसन के चाटे प्यास नहीं बुझाइ अर्थात् एक पुरुष से भोग किये॥४४३॥

सखी सुनी उपपति रसपागी। सुकियन दोस लगावन लागी॥
लोक 'पखाना' चित नहिं धरै। एक मछरी जल गदा करै॥४४४॥

टीका—सुकिया परकिया की बात सुनि कही एक मछरा सारे ताल के जल भरे पर गंदा करता है तैसे कुल के धर्म परपुरुष देखते नसाय जाय है॥४४४॥

(मुग्धा नायिका)

दो०—सुंदरताई अकह तन, तनिया सुख सरसात।
होनहार विरवान के, होत चीकने पात॥४४५॥

टीका—होनहार वृच्छ के पात चीकने होय है तैसे मुग्धा की तरुनाइ॥४४५॥

(मध्या)

चौ०—लाज काम दोऊ दुख दाई। चलौ कौन के कहे समाई॥
कहै 'पखानो' सुनु नव तूँ घर। भई मोहि गति साँप छछूँदर ४४६॥

टीका—साँप छछूंदर की गति लाज काम ते मध्या॥४४६॥

(प्रौढा आनंदात्मसम्मोहा)

चौ०—रसिक कवन यह केलि अनेह। जामैं सुधि बिसराई देह॥
यह तौ रस है कहत सयानै। काया राखे धर्म बखानै॥४४७॥

टीका—रस मे मोही केलि समय तिस्से देह की सुधि न रही॥४४७॥

(परकीया)

देखि घटा तम सुन्दर नारि। करी केलि दुरि पिय सुख सारि॥
सखि लखि कहो 'पखानो' जपनो। निशि कारी परसैआ अपनो४४८

टीका—निसि कारी परसैआ अपना, अर्थ अंधेरी राति औ आपुहि ते मित्र मिले, याते परकीया॥४४८॥

ठयो = समझा। ओसन = ओस के॥४४३॥
सुकियन = स्वकीया नायिकाओंको॥४४४॥
अकह = अकथनीय। विरवान = वृक्ष॥४४५॥

दो०—फेरि मिलो नहि देहि दुख, चहो जु नदकुमार ।
जैसे हाँडी काठ की चढै न दूजी बार ॥४४६॥

टीका—हे नन्दकुमार तुम्हैं हम मिलैं, फेरि हमको दुःख न देहु अर्थ अ य तीर न जाहु, जैसे काठ की हाँडी फेरि काम लायक नाहीं येक ही बार मैं जरि जाय तैसे हमारो कुल को धर्म एक ही मिलन मैं नसि जैहे ॥४४६॥

चौ०—सुरति करी पिय परबस काम । अब बूझत रसिया को नाम ॥
लोक उक्ति मन मे नहि सूझै । पानी पिये जाति का बूझै ॥४५०॥

टीका—पानी पी कै जाति का बूझै, रति करि कै पीछे नाम ॥४५०॥

दो०—छाड सुपति पति हित तिया, जानत है जेनिद्ध ।
घर को जोगी जोगड़ा, आन गॉव को सिद्ध ॥४५१॥

टीका—घर को जोगी कुछ काम को नहीं याते परकीया, या घर कै पति कुछ रसिक नाहीं ॥४५१॥

(वाग्विदग्धा)

दो०—कहै परोसिनि सो तिया, निरखि सखी सुख दैन ।
चारि दिना की चाँदनी, फिरि अँधियारी रैन ॥४५२॥

टीका—चारि दिन की चाँदनी है फेर अँधेर पक्ष ऐहै तब मिलैगा ॥४५२॥

(अनुशयाना)

गई न बदि सकेत को, बिलखै व्याकुल बाल ।
औसर चूकी डोमिनी, गावै ताल बेताल ॥४५३॥

टीका—औसर चूकी नायक गयो सकेत, आपु न गई, यही औसर चूक है ॥४५३॥

(धीरा)

दो०—लग्यौ डक मुख जाइए, जहाँ कुटिल अलि जान ।
ज्यौं मधि काजर कोठरी, लागै रेख निदान ॥४५४॥

टीका—जैसे काजर के कोठरी में गये रेख लगिहै । सह भौंरन को काटा होय लग्यौ है, याते धीरा ॥४५४॥

चौ०—लाल बाल सजि साज सिगार । चलो चहत ढिग तिय पर वार ॥
कहो कहाँ उ 'पखानो' हल्ली । पच कहै बिल्ली तो बिल्ली ४५५॥

टीका—पंच कहै, जो नायक तुम कहते हौ वही मति है ॥४५५॥

पिया बिदेस सन्देस न पाऊँ। सजि सिंगार हौं काहि रिझाऊँ॥
सुनो 'पखानो' नहिं बिधि चाहा। नाँगी न्हाइ निचारै काहा॥४५६

॥ इति श्री दिग्विजयभूषणनामग्रन्थे एक अलंकारवर्णन नाम एकादश प्रकाश ॥११॥

टीका—सदेस विदेस ते नहीं आयौ सिंगार किनको देखावों, जैसे नङ्गी नहाय तो क्या निचारे ॥४५६॥

इति श्री दिग्विजयभूषणनामग्रन्थे टीकायाम एकअलंकारवर्णन नाम एकादश प्रकाश ॥११॥

द्वादशः प्रकाशः

चित्रालंकार वर्णन[1]

(प्रश्नोत्तर[2])

दो०—प्रश्न शब्द मे अर्थ जो, उत्तर निकसत जाहि।
पश्नोत्तर यक भाँति यह, कवि जन बरनै ताहि ॥१॥

टीका—प्रश्न शब्द के अर्थ में जो बात होय वही उत्तर है ॥१॥

छप्पै—केसहि बधन बेस लहै आभा अधिकारी।
कामहि मोहन हार रहत जेहि बस नरनारी ॥
गिरि पै केकी गिरा सुभग वरषा रितु सोहै।
कालखाहि जग जोर हानि हित की करि को है ॥

१—जिस कविता में कवि की प्रतिभा से उत्पन्न कुछ ऐसी विचित्रताएँ हों जिन्हें समझने में साधारण बुद्धि काम नहीं देती, वहाँ चित्रालङ्कार होता है। इसके भेद कोई निश्चित नहीं होते, कवि की अपनी प्रतिभासम्पन्नता पर निर्भर करते हैं। खड्गबन्ध आदि भी इसी के अन्तर्गत आते है। पर्वतीय श्रीविश्वेश्वर पाण्डेय का 'कवीन्द्रकर्णाभरण' और धर्मदास का 'विदग्ध मुखमण्डन' संस्कृत में ऐसे विषय की उत्कृष्ट रचनाओं से भरे हैं। प्रकृत ग्रन्थ कार ने जो भेद लिखे हैं उनका विवेचन आगे किया जाता है।

२—प्रश्नोत्तर—प्रश्नवाचक वाक्य के शब्दों में ही जहाँ उस प्रश्न का उत्तर निकल आये अथवा सभङ्ग श्लेष से प्रश्नवाचक शब्द के अर्थ में ही उत्तर हो, वह पश्नोत्तर चित्र कहलाता है।

के सहि = कोन सहकर (प्र०), केसहि = केश ही (उ०), कामहि = कौन पृथ्वी को (प्र०), कामहि = कामदेव ही (उ०), वर्षाऋतु में केकी = किसकी, गिरा = वाणी, अच्छी लगता है (प्र०), केकी = मयूर (उ०), का लखाहि = कौन देख पड़ता है जगत्मे जोरदार बली (प्र०)। काल = यमराज या मृत्यु (उ०) हितकी हानि को करि है—(प्र०) कोहै-क्रोध ही (उ०) रति भवन में कला को कहै = कौन कही जाती है (प्र०), कोक = कामकला (उ०), शूर होता हुआ भी मैदान में युद्ध नहीं करता, ऐसा का दरसै = कौन दीखता है? (प्र०) कादर = डरपोक (उ०) ॥२॥

कोकहै कला रति भौन में कौन है नारि नवोढहर।
कहि 'गोकुल' कादरसे समर, करत नहीं रन सूर नर ॥२॥

टीका—के रधन लहि कै शोभा पावत, केशहि कहे वार, कामहिमोहन कहै के है महि कहै पृथ्वी में मोहनहार, कामहि अर्थ काम कहै मनोज यही भाँति सब पदन म है ॥२॥

कवि—दास

सवैया—कौन परावन देव सतावन को लहै भार धरे धरनाको।
कोदसही म सु यो जनि ठौरनि कीन्हो दसो दिगपालन टीको॥
जानत आपक बृंद समुद्र मे कार्म सरूप करी हिए ताको।
कादरबारन सोहत सूरन, कोपजरावत पुन्य तपी को ॥३॥

टीका—कहै कोन भगावत है देवतन को, कौन परावन कौनप कहै राक्षस रावन देवन को सतावै है, कोदश हीम कोद सही का दस दृ कोद कहै साँप दसो दिशन मे है, जानत आपक जानत हो आप कहै जल ह समुद्र म कादरबारन का कहै काह दरबारन कहै दरबार म सोहन सूर न, कादर कहै भग आ दरबारन म नहीं सो है। बारन कहै हाथी सोहै, कोपजरावत कोप जरावत पु य तपी का कोप कहै रिसि जरावत पुन्यको ॥३॥

कवि—गोविन्द

सवैया—कोपकरै शसि को लखि राहु सुकोकिल बोलत है मृदु बानी।
कोकहिए दुखिया नित जामिनि, कोकलहै सु महा रस जानी॥
कामधुरो सखिया बृज मे बृज चद 'गोविंद' कहै मन मानी।
फागुन मे तिय आपनी लाज रखै घर कोनमे बैठि सयानी ॥४॥

कोन ? परावन = भगानेवाला, कौनप = राक्षस, रावन। का लह = कौन शोभा पाता है ? कोल = वराहावतार। को दसहाम = कान दशामें ? कोद = सर्प। जानत आपक्बृन्द = जानते हैं जल समूह। जा नत आपक बृन्द = नीचे की ओर बहता हुआ जल समूह। काम = किसम ? कामें = कामदेव हो। कादरबारन सोहत सूरन (इसमें दो प्रश्न और उनके पृथक् पृथक् उत्तर हैं १—दरबार सूरन का न सोहत ?) = दरबारमें शूराको कौन अच्छा नहीं लगता ?, कादर = डरपोक २—दरबारन सूरन का सोहत ? = दरबारोंमें शूराको कौन अच्छा लगता है ?, बारन = हाथी ॥३॥

टीका—को पकरै कहै को गहत ससि को, कोप करै कहै रिसि करै है राहु। को किल बोलत को कहै किल अच्छा बोलत, कोकिल कहे पिक। का मधुरी काह है मधुर बृज में, कामधुरो काम कै धुरो कहै धूरा बृज में गोविंद है ॥४॥

कवि—केशवदास

दो०—कोदण्ड गाही सुभट, कोकुमार रतिवंत।
कोकहिए शशि ते दुखी, कोमल मनके संत ॥५॥

टीका—कोदण्ड कहै धनु गहत है सुभट। को कुमार रति कोक शास्त्र मार काम की कहि दुखित कोक चक्रवाक ॥५॥

दो०—कालिह काहि पूजै अली, कोकिल कठहि नीक।
को कहिए कामी सदा, काली काहै लीक ॥६॥

टीका—कालिह काहि पूजा कालिका देवी जी को। कोकिल कठ कहै कोकिला को कहि कामी सदा कोक हिए कहै कोकशास्त्र जाके हिय में बसत ॥६॥

(एकोनेकोत्तर)

दो०—बहुत शब्द के प्रश्न को, एक जो उत्तर धारि।
एकोनेकोत्तर वही, कबि जन कही बिचारि ॥७॥

टीका—बहुत शब्दन के एक उत्तर ताहि एकोनेकोत्तर कही ॥७॥

दंडक—[1]कौन के कुमार जो उजारि दससीस बाग,
[2]कौन हेत प्रान त्यागे दसरथ ख्यात है।
[3]तन धन दै कै काहि राखत सयान लोग,
[4]कौन रोग भए कॉपै पानि पाय गात है ॥

कोप करै = क्रोध करता है अथवा कोन पकड़ता है? राहु (उ०)। को किल = निश्चिय ही कौन, कोकिल (उ०)। को कहिए = किसे कहा जाता है, जामिनि = रात्रिमें, कोक = चक्रवाक, अथवा कोकहिए = कोक कामदेव है हिए = हृदयमे जिसके अर्थात् कामी पुरुष। को कल है = कौन कला है?, कोक = काम कला (उ०) अथवा महारस = श्रृंगारका ज्ञाता हो, सु = अच्छी प्रकार, कोक लहे = कामको प्राप्त करता है। कामधुरो = कोन मधुर है अथवा काम = कामदेवका धुरो = धूरा (अग्रसीमा) है। घरकोनमें = घरके कोनेमे अथवा फागुनम को = कौन सयानी स्त्री अपनी लाज बचा पाती है? को नमे बैठि = जो अपने घरमें नमे बैठि = लुककर बैठी है ॥४॥

५ अहि के अहार काह ६ को है बैरी दीप ध्वार,
७ अनल के मित्र को है बडो दरसात है।
'गोकुल' अनक बात पूछे है प्रबीन लोग,
पावन परम कहि दीजे येक 'बात' है ॥८॥

टीका—कौन पुत्र दश शिर आग उजारे, दशरथ प्रान कौन हेत त्यागे, धन तन दै कै का राखत सुजन, कौन रोग भए देह काँपत, साँप न का भोजन है, अगिनि के कौन मित्र है, येते प्रश्न, उत्तर एक बात है ॥८॥

कवि—दास

दो०—बरो जरो घोरो अरो, पान सरो क्यौं दार।
हितू फिर्‌यौ क्यौं द्वार ते, हुतो न फेरनहार ॥६॥

टीका—बरो जरिगो क्यों, घोडा अरो क्यो, पान सरो क्यों, हितू फिरो क्यों, ऐते प्रश्न को उत्तर एक, फेरनहार नहि रहो ॥६॥

कारो कियो बिशेप के, जावक हाँस सभाग।
काहे उडिगो भौंर पर, पंडित कहैं पराग ॥१०॥

टीका—विशेप जावक हास सभाग और उडिगो, एत प्रश्न को उत्तर पराग ॥१०॥

कैसी नृप सेना भली, कैसी भली न नारि।
कैसी मग बिन बारि की, अतिरजवती बिचारि ॥११॥

टीका—नृपसैन कैसी भली, कैसी नारि नहीं भली, कैसी मग बिना पानी की, एते प्रश्न के उत्तर एक अतिरजवती ॥११॥

कवि—अज्ञात

दो०—बर बरपा माकद खत, बनिता बचन प्रबाह।
ए बिन मोर न सोहही, कहैं कबिन के नाह ॥१२॥

इस पद्यमें प्रश्न १, ५, ६, ७ का उत्तर—बात = वायु, प्र० २, ३ का बात = कथन, ४ का बात = वातरोग ॥८॥

बड़ा क्या जला ? घोड़ा क्या अड़ा ? पान क्या सड़ा ? मित्र द्वारसे वापस क्यों गया ? इन ४ प्रश्नोका एक उत्तर हे—फेरने (लौटाने) वाला न था ॥६॥

नृपसेना अतिरजवती = अधिक पराक्रम शालिनी, नारी—अधिक रक्तस्राव वाली, मग—अत्यन्त धूलभरी ॥११॥

टीका—वर, बरषा, माकद, रत, बनिता, बचन, प्रवाह एते प्रश्न पे उत्तर एक मोर, माकद नाम आम के वर नाम दुलहा को ॥१२॥

कवि—चतुर विहारी

दण्डक—'चतुर बिहारी' पै मिलन आई बाला साथ,
मॉगत है आज कछू हम पै देवाइए।
गोद लेहु[1], फूल देहु[2], नीके पहिराय मोती[3],
[4]पानन की पातरी, हुताशन ले आइए[5]।
[6]ऊँचे से अवासकै झरोखे चढि बैठिए जू,
[7]सेज स्याम चलिए सुरति पति ध्याइए।
ग्वालि समुझाइबे को उत्तर जो दीन्हे एक,
उकति बिशेप भॉति वारी नहीं पाइए ॥१३॥

टीका—बिहारी पे मिलन आई गोद लेहु फूल देहु पानन की पतरी हुतास न रति पति ध्यान एते प्रश्न को एक उत्तर, वारी नाहीं ॥१३॥

(सासनोत्तर)

दो०—त्रै प्रश्नन को जानि कै, यक यक उत्तर होय।
सासन उत्तर उक्ति है, कविजन बरनै सोय ॥१४॥

टीका—तीनि प्रश्न के जहाँ एक उत्तर होइ सोवा उत्तर है ॥१४॥

इन ७ में क्रमसे मोर पदके निम्न अर्थ हैं—

मौर (मुकुट), मयूर पक्षी, मञ्जरी, मोड़ (घुमाव), आत्माय (पति), बदलाव ॥१२॥

इन प्रश्नों का एक ही उत्तर है 'वारी नही।' प्रश्नके अनुसार वारी शब्द के विभिन्न अर्थ क्रमश इस प्रकार हैं—

१ बालिका, २ क्यारी (फुलवारी), ३ बाला (नथ, नाक का आभूषण जिसमें मोती गुँथे रहते हैं), ४ पत्तल बनानेवाली, ५ जलायी, ६ वारि (वरषा), ७ नायिका ॥१३॥

कवि—चित्र कलाधर

दंडक—हारत जुआरी काह[1] बाहन दिनेश को है[2],
मोहै कब बाँसुरी[3] पै गोपी तजै होस है।
काहि सो बजाज[4] नापै पट, को बँदूख[5] भरे,
ग्राह सो बचाये केहि[6] कृस्न करि रोस है॥
पूँछै पथ पथी[7] कहाँ कर्ज मैं भ्रमत भौर,
आखर अरथ[9] कौन करै मेदि दोस है।
काह नर नाह[10] नित चाह सो चहत चित,
'गोकुल' बिचारि कह्यो बाजी गज कोस है॥१५॥

टीका—जुआरी का हारै बाजी कहै दाँव को, बाहन दिनेश के बाजी घोडा, गोपी काह मोही जब बाँसुरी बाजती है, यह तीनि प्रश्न के एक बाजी उत्तर है, बजाज पट कासों नापे, बदूख कासों भरी जाय है, ग्राह ते कृस्न काको बचाए तीनि प्रश्न उत्तर गज, पथिक काहू पूछै कज मैं भौंर काने थल भ्रमै, आखरके अर्थ कौन करे तीन प्रश्न के उत्तर कोश, बाजी गज कोश सब प्रश्न के उत्तर है॥१५॥

कवि—केशवदास

छप्पै—चौक चारु करु कूप ढारु घरि आर बाँधु घर।
मुक्त मोल करु खड्ग खोल सींचहुँ निचोलवर॥
हय कुदाउ दै सुरत दाउ गुन गाउ रक को।
जानु भाव सुर धाम धाउ धन लाउ लक को॥
यह कहत मधुकर साहि नृप रह्यौ सकल दीवान दबि।
तब उत्तर 'केशव दास' दिय घरीन पानी जानु कवि॥१६॥

१—प्र० १ २ ३ का उत्तर है बाजी, जिसका अर्थ क्रम से दाँव, घोडे और बजना होता है। ४ ५ ६ का उत्तर गज है जो क्रम से गज (३६ इञ्च का परिमाण), बन्दूक में बारूद भरने का गज और गजराज (हाथी) का वाचक है। ७ ८ ९ का उत्तर कोश है जो २ माल, कमलमुकुल और शब्दों के पर्याय बतानेवाले ग्रंथको सूचित करता है। १० वें प्रश्न का उत्तर पूरा बाजीगजकोस = घोडे, हाथी और खजाना, है।

टीका—चौकपूर, कृप दारु, घरिआर नाथ तीनि के उत्तर घरीन, मोती को मोल करु, सङ्ग खोतु, निचाय निचोल तीन के उत्तर पानीन, हय कहै घोडा कुदाउ, सुरत करि, गुननाउ रक को तीना को उत्तर जानन जानु भाव को गुर धामधाउ, घनलक कर लाउ, कबिन ॥१६॥

(कमलोत्प्रश्नोत्तर)

दो०—आदि बरन तजि क्रमहि ते, अंत बरन गहि एक ।
पद उत्तर करि लीजिए, कमलोत्तर निबेक ॥१७॥

टीका—आदि के अच्छर क्रम ते, त्या अत को अच्छर एक म मिला कर प्रश्न के जवाब देय ॥१७॥

छप्पै—[2]काह भृत्य को कहै ? काह भोगत नर तन मे ।
किहि बल फिरै तुरग ? अन्न उपजै को बन मे ॥
केहि बस सूर सुतपी ? सूम मगन लखि का कहि ?
पवन बाजि से बेग बड़ो का को जग मे लहि ?
भ्रम भीर भूरि भय भूतभव भेद भाव मिटि रुचि कवन ।
कहि 'गोकुल' कलिमल दलत दुख जो जप राधारँवन मन ॥१८॥

टीका—भृत्य को काह कहै, तन मै को भोगवे है, तुरग केहि बल फिरै, अन्न कहा, वन पानी में, कहा बस सूर तपी तप करै, सूम मगन लखि का कहै है, पवन ते बेग का को बडो है, सब प्रश्न के उत्तर जप राधा रँवनमन आदि म जकार अत में नकार जन पन रान धान रन वन नन मन ॥१८॥

कवि—दास

छप्पै—[3]कह कपीस सुभ अङ्ग कहा उछलत बर बागन ?
कहा निशाचर भोग ? माह मै दान कौन भन ? ।

१—इसमें अन्तिम एक वर्ण ज्या का त्यों रहता है और आदि से क्रमश एक एक वर्ण उसमें मिलाने से प्रश्न का उत्तर हो जाता है ॥१७॥

२—इन प्रश्ना का उत्तर क्रमश —जन, पन = अवस्था (बचपन आदि) रान = जघा, धान, रन = युद्ध, वन = जगल, न न = नहा नही, मन = चित्त, राधा रँवन = श्रीकृष्ण ॥१८॥

३—इन प्रश्नों का उत्तर क्रमश —गल = गला, नल = डठल, पल = मास, तिल, जल, नल = एक बानर, नील = बानर, नाल = डण्डी, मल = मैल, बल = बलदेव जी ॥१९॥

काह सिन्धु मे भर्यो ? सेतु किन कियो ? को दुत्तिय । ?
सरसिन किते सकट ? कहा लखि निना होत हिय ?
किहि 'दास' हलायुध हाथ धरि मार्यो महा प्रलब बल ।
क्यो रहत सुचित शाकत सदा गनपतिजननीनामबल ॥१६॥

टीका—कपीश सुभ अग कौन, छुि कहा उछलत, निशाचर के भोजन काह, मास मे कौन दान, सिंधु मे काह भए, सेतु को कियो, हलायुध को धारन करै, प्रश्न के उत्तर गनपतिजननीनामनल । गल, नल, पल, तिल, जल, नल, नील, नाल, मल, नल ॥१६॥

कवि—केशव

[१]का नहि सजन बोरत ? काह सुनि गोपी मोहित ? ।
काह दाम को नाम ? कबित मे कहियत को हित ॥ ?
को प्यारो जग माहिं ? काह छिति लागे आवत ।
को बासर को करत ? काह ससारहि भावत ? ॥
कहि काह देखि कायर कँपत ? आदि अत काके शरन ? ।
सुनि उत्तर 'केशव दास' दिय सबै जगत शोभा धरन ॥२०॥

टीका—सज्जन का भकोतन, गोपी कासा मोहत, दास के काह नाम, कवितमें को हित, जग म का प्यार, काह छिति लागै आवत, दिन को को करत, ससार में को भावत, का को देखि कायर डरत, सब प्रश्न के उत्तर सबै जगत सोभा धरन, मन नैन जन गन तन सोन भान धन रन ॥२०॥

([२]शृंखलोत्तर)

दो०—प्रथमहि गत चलि जात है, अगत चलै पुनि न्यस्त ।
कहो शृखलोत्तर वही, गत अरु अगत समस्त ॥२१॥

टीका—प्रथमहि गत चले फेरि अगत वही शृङ्खलोत्तर कहावै ॥२१॥

१—इन प्रश्नो का उत्तर क्रमश —सन = सनई, बेन = बाणा (वेणु), जन, गन = गण (मगण आदि मात्रा सूचक), तन = शरीर, शोन = रक्त, भान = (भानु), सूर्य, धन, रन ।

२—जिस प्रकार शृखला (जजीर) की एक कड़ी को दूसरी कड़ा में जोड़ने के लिये पहिले साधे ले जाकर फिर उलटा मोड़ना पड़ता है उसी प्रकार प्रश्नो के अक्षरो की व्यस्त और समस्त गत अगत द्वारा एक शृखलासी जिसमें बन जाती है वही शृङ्खलोत्तर चित्रालङ्कार है । अर्थात् इसमें एक एक अक्षर पहिले

कवि—गोकुलदास 'बृज'

सवैया–[१]बस कौल कहा ? सुख नारी कबै ?
शिव को अरि ? का पे लला नग आने ?
सग का करि शत्रु औ मित्रहु ते ?
'बृज' हाजिर बाचक काह भने ?
करि काह बड़े ? भुइ जोत बिना कस ?
भाव सहायक काहि गने ॥ ?
बिरही को सतावत ? नेन लगावत,
काह कहो सर मेन हने ॥२२॥

टीका—बसक जहाँ इत्यादि प्रश्न के उत्तर सर मैन हने जानिए, कौल कै बस कहा, सुख नारि कब है, शिव को अरि का, कापर लला कृस्न जी नग पर्वत धारे, सतु सग काकरी, यहि प्रश्न के उत्तर सर रमैं मैन नह हने। अगत मित्रते काह कीजे, हाजिर जाचक कौन है, बडो जनका करत है, भूमि जाते बिना कस हात, भाव सहायक कौन ने है, यहि प्रश्न के उत्तर प्रथम उत्तर उलटि कर कह्यौ जैसे सर, मेन, हने, उलटि लिखो नेह, नमै, रस, मित्रते नेह, हाजिर बाचक, नेहन नमै, मैरस समस्त बिरही को कौन सतावत है सर मैन हने नैन के लगाए काह होत है नेह कहै प्रीत उत्तर नेहन मे रस ॥२२॥

छप्पै—[२]कौन बरन रति समै बोलि बाला पिय मोहे ? ।
रामचद्र दश कठ समर किहि कारन जोहे ? ।

उत्तर का लेकर अगले अक्षर से जोड़ने से दूसरे प्रश्न का उत्तर बनता है—यह गत हुआ। इसी प्रकार उलटा अर्थात् अन्तिम अक्षर से करने पर अगत होगा। अलग अलग पदों से व्यस्त और समग्र पद में समस्त कहलायेगा। अगले उदाहरण से स्पष्ट है।

१—इन प्रश्नों के उत्तर क्रमश गत से (साधे)—सर = तालाब, रमै = रमण करे, मैन = कामदेव, नह = नख, हने = मारे। अगत (उलटे)–नेह = प्रेम, ह न = हाँ या ना नमै = नम्र होते हैं, मैर = मैल (खादयुक्त), रस, (ये व्यस्त में उदाहरण हैं, अब समस्त में–) सर मैन हने = काम द्वारा मारे गये बाण, नेह में रस = प्रेम में रस की उपलब्धि , कौल = कमल॥२२॥

२—इन प्रश्नों के उत्तर क्रमश —सी = सी सी शब्द, सीता, तारा, राम, महि = पृथ्वी, हित = मित्र, सातारामहित = सातारास का शुभ चिन्तक ॥२३॥

बाम बालि की कौन ? ताहि को कोपन मारे ? ।
अति गँभीर लहि पीठ कौन को अहिपति धारे ? ।
दुख सुख मैं शिक्षक परम हित ह्वै सहाय कहि कोन नित ।
को असरन कँह रासत शरन 'गोकुल' सीता राम हित ॥२३॥

टीका—को न अच्छर रति समै तिय बोले, रामचन्द्र औ रावन ते समर के हित, बालि की तिय को, बालि को को मारो, अहिपति काको पीठि पर धरे, सब प्रश्न के सीता राम हित। सी, सीता, तारा, राम, महि, हित ॥२३॥

कवि—दास

सवैया–[1]छबि भूषन को ? जन को हर को ?
सुर को घर कौन ? को सो भरती ?
किहि पाए गुमान बढै ? किहि आए घटैं ?
जग मे थिर कौन दुती । ?
शुभ जन्म को 'दास' कहा कहिए ?
बृषभान की राधिका कौन हुती ?
घटिकानि सु आजु सु केती अली,
किहि पूजती हैं नगराजसुती ॥२४॥

टीका—भूषन कौन को नते है, हर को जन का है, सुर का घर को, सुर कासो भरत है, किहि पाये गुमान, काह आये छीन, जग मैं थिर काह, कौन दुति है, सुन्दर जन्म को काह कहै, बृषभान की राधिका को होत। एते प्रश्नके उत्तर नगराजसुती म है—नग गन राज जरा गरा राग जस स्ज सुती तीसु। दोनों अच्छर उलटि पलटि कर उत्तर है ॥२४॥

कवि—केशवदास

दंडक–कहै रस ? कैसे लई लक ? काहे पीत पट,
होत ? 'केशोदास' कौन शोभिए सभा मे जन ?
भोगन को भोगवत ? कौने गाए भागवत ?
जीते को जतीन ? कौन हैं प्रनाम के वरन ?

१—इन प्रश्नों के उत्तर अक्षर उलट पुलट कर क्रम से इस प्रकार है—नग = रत्न, गन = गण, गरा = (कंठ) गला, राग = अलाप, राज = राज्य (सम्पत्ति, अधिकार), जरा = वृद्धावस्था, जसु = यश, सुज = सु (सुन्दर) + ज (जन्मवाला), सुती = पुत्री, नगराजसुता = पार्वती ॥२४॥

कौन करी सभा ? कौन जुवती अतीत जग ?
गावै कहा गुनी ? काहे भरे हैं भुजग गन ?
काहे माहे पशु ? कहाँ करै अति तपी तप ?
इन्द्र जू बसत कहाँ ? नव रंग राइ मन ॥२५॥

टीका—केशव कवि, रस कै, रावन लका केसे पाइ, पीत पट क्या इत्यादि पदन को उत्तर उलटि पलटि करि नव रग राइ मन गे है। गाथ गत कै उत्तर नव वर गरा गइ इम मन। अगत जथा नम मइ राक्षस इरा राग रव गर वन ॥२५॥

(व्यस्तसमस्त उत्तर[1])

दो०—यक यक बरन बढाइए, आखर अत समस्त।
यह प्रश्नोत्तर सुभग कहि, लै क्रम व्यस्त समस्त ॥२६॥

टीका—व्यस्त समस्त उत्तर क्रमते एक एक वरण आगे के ले कर प्रश्न उत्तर है ॥२६॥

छप्पै—सुभ अच्छर है कवन ? बडे सग का भल ठाने। ?
दोइ बरन मिलि गये काह कवि लोग बखाने। ?
को बैरी रस बीर धीर मति कौन बिरागत। ?
त्रिपुरासुर जरि मर्यौ छिनक मैं काके लागत ॥ ?
दुख दारिद दीरघ दरद को दलनहार काके चरन ?
कहि 'गोकुल' बेद पुरान जग असरन लहि शकर सरन ॥२७॥

टीका—सुभ अच्छर कौन है, बडे सग काह करि भला है, दो बरन मिले ते काह है, बीर रस को को बैरी है, त्रिपुरासुर का सा जर्यौ, सब प्रश्न के उत्तर सकर सरन शशाक शकर सरन ॥२८॥

इन प्रश्नो के उत्तर इस प्रकार हैं—(गत से) नव = नौ, वर = वर दान में, रग, गरा = सुन्दर कठस्वर से युक्त, राइ = राजा, इम, मन। (अगत से) नम = नमस्कार, मइ = मय दैत्य, इरा = वारुणी, राग, गर = विष, रव = शब्द, वन = जगल ॥२५॥

१—व्यस्त समस्त उत्तर में प्रथम प्रश्न के उत्तर मे एक एक वर्ण (अक्षर) आगे का जोडने से क्रमश अगले प्रश्नो के उत्तर होते हैं।

२—इन प्रश्नो के उत्तर इस प्रकार हैं—श = शुभ या सुख। शक = शका, जिज्ञासा। शकर = सकर, मिश्रित। शकरस = शङ्का (सञ्चारीभाव), शकरसर = शिवजी का बाण। शकर = शिव, सरन = शरण ॥२७॥

कवि—दास

सोरठा–[1]कौन बिकलपी बर्न ? कहा बिचारत गनक गन । ?
हरि ह्वै कै दुख हर्न काहि बचायो ग्रसत छन । ? ॥२८॥
कै वा प्रभु अवतार ?, को बारै राई लवन ? ।
कवन सिद्धि दातार ? 'दास' कह्यौ बारनबदन ॥२९॥

टीका—कौन बिकल्पी बर्ण, इत्यादि प्रश्न के उत्तर बारनबदन । वा, बार, बारन, बारनव, बारनबद, बारनबदन ॥२८॥

कवि—केशवदास

छप्पै—का सुभ अच्छर ? कौन जुवति जो धन बस कीन्हीं ? ।
बिजै जुद्धि संग्राम राम कौने कँह दीन्ही ? ॥
कस राज जदु बस बसत कैसे कै वै पुर ।
बट सो कहिए कहा नाम समुझौ अपने उर ॥
कहि कौन जननि सब जगत की कमल नयनि सूक्षम बरनि
सुनि बेद पुरानन में कही सनकादिक शंकरतरुनि ॥३०॥

टीका—का शुभ अच्छर, को जो धन को वश कीन, बिजै कौन पाए इत्यादि प्रश्न के उत्तर शंकरतरुनि, श शंक शंकर शंकरत शंकरतरु शंकर तरुनि ॥३०॥

(अंतादिवर्ण प्रश्नोत्तर[2])

दो०—आदि अंत के बरन यक, क्रमते गहिबो त्याग ।
दुइ अच्छर लै उत्तरहि, देइ सो कबि बड़भाग ॥३१॥

टीका—अंतादि प्रश्नोत्तर में एक वर्ण आदि के अरु एक अंत के, दुइ वर्ण मिलाकर प्रश्न के उत्तर है ॥३१॥

१—बिकल्पी = विकल्प (अथवा का) सूचक (वा), बार = दिन, बारन = गज, बारनव = नौवार, बारनवद = बद्द (बुराई) के वारन (निवारण) के लिये, बारनवदन = गणेश जी ॥२८, २९॥

श = सुखका वाचक, शक = (शकु) कामुकी, वेश्या, शंकर = शिव, शंकरत = शंकायुक्त, शंकरतरु = वटवृक्ष, शंकरतरुनि = पार्वती ॥३०॥

२—अंतादिवर्ण प्रश्नोत्तर में क्रम से एक एक अक्षर आदि और अंत का लेने से प्रश्न का उत्तर बनता है ।

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

छप्पै—बीति[1] जात जो बात समय वह कौन कहावे ।
किहि बिनि बिहँग मलीन जाहि बिन उड़व न आवै ॥
दैत कौन के बश नाम तेहि बिपद बखानौ ।
बितबल जाके हाथ पुरुष वह कौन प्रमानौ ॥
रन भए काह नर यस लहैं, दान दया नय को करत ।
प्रति उत्तर 'गोकुल' यह दिये भूप दिगबिजै नीतिरत ॥३२॥

टीका—जो बात बीती वह समय कौन कहावे, बिहग काह बिन विहीन, दैत्य कौन के वश है, बित बल जाके हाथ वह कौन पुरुष है, रन में काह भए यस लहत, सब प्रश्न के उत्तर भूप दिग्विजयनीतिरत, भू अच्छर आदि में अंत मे तकार दोनों, यही क्रमते मिलावे भूत पर दिति गनी बिजै ॥३२॥

छप्पै—लच्छिमी[2] किन की चेरि बखानत कवि कोबिद जन ।
काम अगिनि का करै बियोगी नर नारी तन ॥
ताल तान सुर ग्राम गुनी जन किन मे गावत ।
बात गये पर उचित काह परबीन बतावत ।
नित भूप भलाई के लिये को सब दिन चितते चहत ।
प्रति उत्तर "गोकुल" नीति नव सदा राम सकर गहत ॥३३॥

॥ इति श्री दिग्विजयभूषणे चित्रालकार वर्णन
नाम द्वादश' प्रकाश' ॥

टीका—लच्छिमी कौन की चेरी, काम अगिनि काह करै, ताल सुर कामे गावा जात, बात गए पर काह होत, एते प्रश्न के उत्तर सदा रामसकर गहत आदि में सकार अंत मे तकार यही भाँति दोऊ ओर के अच्छर मिला कर उत्तर है सत दाह राग मर सकर ॥३३॥

इति श्री दिग्विजयभूषणे टीकाया चित्रालकारवर्णन नाम
द्वादश प्रकाश' ॥१२॥



१—इन प्रश्नों के उत्तर क्रम से इस प्रकार हैं—भूत = बीता हुआ काल, पर = पख, दिति = दैत्यों की माता, बिजै = विजय, भूपदिग्विजै नीतिरत ॥३२॥

२—इन प्रश्नों के उत्तर क्रम से—सत = सत्वगुणप्रधान विष्णु, दाह = जलन, राग = आलाप, मर = मृत्यु । सकर = शिव ॥३३॥

त्रयोदशः प्रकाशः

(अनुप्रास लक्षण)

दो०—स्वर बिन समता बर्ण की, अनुप्रास लकार ।
कोमल कानन की लगै, चित्र कवित्त बिचार ॥१॥

टीका—स्वरबिन०–जहाँ स्वर बिना बर्ण की समताई होय तहाँ अनुप्रास, ॥१॥

(अनुप्रास गणना)

हरिपद०—छेका दुइ वृत्त्या कहि त्यौंही यक अन्त्या की जानि ।
श्रुत्या एक एक लाटा कहि एक यमक पहिचानि ॥
पुनरुक्तापदभास एक कहि सातौ भाँति बखानि ।
अनुप्रास यह शब्द अलंकृत काव्य कला मैं जानि ॥२॥

टीका—अनुप्रास संख्या—छेकानु०, वृत्त्या०, अन्त्या०, श्रुत्या०, लाटा०, जमका०, पुनरुक्तवदाभास ॥२॥

(छेकानुप्रास[2] लक्षण)

दो०—दुइ दुइ अक्षर की जहाँ, पद मे आवृति होइ ।
शब्द दोइ सग छेक को, छेक देश मे सोइ ॥३॥

१—अनुप्रास—(अनु + प्र + आस) रसादि के अनुकूल प्रकृष्ट न्यास को अनुप्रास कहते हैं अर्थात् जहाँ वर्णो में समानता होती है, चाहे स्वर में समता हो या न हो, वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है । अनुप्रासयुक्त कविता सुननेमें अच्छी लगती है। यही इसकी विचित्रता है। अनुप्रास ५ होते हैं, १—छेकानु०, २—वृत्त्यनु०, ३—अन्त्यानु० ४—श्रुत्यनु०, ५—लाटानुप्रास, इनके लक्षण आगे यथास्थान वर्णन किये गये हैं, केवल शब्दालंकार होनेसे ही यमक को भी कुछ आचार्यों ने (प्रकृत ग्रन्थकार ने भी) अनुप्रासमें ही गिना है। वस्तुत यह स्वतन्त्र अलंकार है । इसी प्रकार पुनरुक्तवदाभास भी पृथक् अलंकार है ।

१—छेकानुप्रास—["छेकस्त्रिषु विदग्धेषु गृहासक्तमृगाऽण्डजे" रभसकोश]

टीका—जहाँ दुइ वर्ण की आवृत्ति होय छेकानु०। पक्षी कोई देश मे होत है दुइ बोल बोलै है ॥३॥

(आदिपद छेका०)

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

दडक—आपगा अगम नद नारे नै नहरि मिली,
सरिता सरोबर मैं कूप मै कियारी हैं।
बिटप नबेली 'बृज' लपटी लतान लोनी,
मोर सो मुरैली काम कला किलकारी हैं।
छनक न छोडै देखो दामिनि घनेरे घन,
रमनीरमन प्रेम पुज सो पियारी हैं।
सुरी ऑसुरीन मै न नरी किन्नरीन मै न,
कोऊ नारी न्यारी बात तेरी तीय न्यारी हैं ॥४॥

टीका—आपगा अगम, नद नारे, सरित सरोवर, कूप कियारी, आपगादि अकार, नकार, सकार, ककार, दुइ अक्षर के शब्द हैं याते छेका० ॥४॥

कवि—दास

दो०—बर तरुनी के बैन सुनि, चीनी चकित सुहाय।
दुखी दाख मिसरी मुरी, सुधा रही सकुचाय ॥५॥

टीका—नर तरुनी कै बैन० बकार चकार के आवृति ॥५॥

(अंतपदवर्ण छेका०)

दो०—जन रजन भजन दनुज, मनुज रूप सुरभूप।
बिश्व बदर बर्धित उदर, जोवत सोवत सूप ॥६॥

टीका—रजन भजन, नकार जकार अत पद छेका० ॥६॥

छेक शब्द के दो अर्थ हैं—चतुर और घौसले में बैठा हुआ पक्षी, चतुर व्यक्ति श्रवणसुखदता के लिए जिसका प्रयोग करते हैं अथवा घौंसलेमें बैठे पक्षीके रवकी भाँति जिसमें अक्षरों (व्यञ्जनों) की पुन आवृत्ति होती है उसे छेकानुप्रास कहते हैं। यहाँ भी यह स्मरणीय है कि व्यञ्जनाके साथ स्वरसाम्य आवश्यक नही है।

कवि—पदुमाकर

दण्डक—बैठी बनि बानिक से मानिक महल बीच,
अंग अलबेली के अचानक थरकि परे।
कहै 'पदुमाकर' तहाँई तन तापन ते,
हारन ते मुक्ता हजारन दरकि परे।
जात छतिया पै धक धक ना सुनत कौन,
बक ना कढत कर कँकना सरकि परे।
पाँसुरी पकरि रही साँसुरी सम्हारै कौन,
बाँसुरी सुनत वाके आँसुरी ढरकि परे ॥७॥

टीका—बैठी बनि बकार आदिक दुइ दुइ अक्षर के शब्द है ॥७॥

(अतपद छेका०)

सवैया—बोलनि कोकिल काम कलोलनि बृंद मलिंद लखे सुख पाय।
मोर करैं नृत सोर असंक मयंक मुखी नित ही चित चाय ॥
सोचिबे जोग न लोग जहाँ लखि लोचिबे लायक नीक निकाय।
बंजुल मंजुल पुंज निकुंज चितै हरषाय उतै जब जाय ॥८॥

टीका—बोलनि कलोलनि, बृंद मुलिंद, लखै सुख, बकार, नकार, दकार, यकार, दुइ दुइ अक्षर के शब्द अंत में है और जहाँ तेरी ससुरारि वहाँ यहि भाँति के कुंज, याते अनुशयाना नायिका ॥८॥

सुरभूप = देवोंके स्वामी। बदर = बदरी, बेर ॥६॥

बानिक = सजधजकर। मानिक महल = मणिजटित केलिगृह। थरकिपरे = काँपने लगे। दरकिपरे = फट गये। बक = बैन, वचन। कँकना = कंकण, वलय। पाँसुरी = पसली। साँसु = श्वास। आँसुरी = आँसू ॥७॥

बोलनि = वचनों में। कामकलोलनि = काम क्रीड़ाओं में। बृन्द मलिन्द = भौंराके झुण्ड। नृत = नृत्य। मयंकमुखी = चन्द्रमुखी। लोचिबे लायक = रुच्युत्पादक। निकाय = घर। बंजुल = अशोक, बैंत। मंजुल = मनोहर ॥८॥

(वृत्यनुप्रास[१] लच्छन)

दो०—बरन एक बहु बारही, आवृत आवै लेखि।
आदि अंत दुइ वृत्ति करि, वृत्या है अवरेखि ॥९॥

टीका—जहाँ एक वर्ण अनेक बार आवै तहाँ वृत्यनुप्रास आदि अंत दुइ भेद ॥९॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज' (आदिपद वृत्यनु०)

दंडक—अमल अमोल ऐसे अगन मै अगराग,
अमित अतोल आभरन आने बृंद है।
आँखि अरबिंद अभि अंजन को आँजे 'बृज',
अलबेली बाल के अनंग के अनंद है॥
आली अवलीन मे अवास ते अलेख आई,
औनि ते अकास लौ प्रकास सुरा कंद है।
आभा अभिराम अवलोकिये अमंद रूप,
आनन अनूप आगे मंद लागै चंद है ॥१०॥

टीका—अमोल आदिक चारयौ पदन में अकार है, याते वृत्या० नायिका अभिसारिका ॥१०॥

चोंप सी चढ़ी है भौंह चख है चलाक सान,
चोंच कीर नासिका चिबुक छबि केरे सो।
चामीकर चंपक ते रंग चटकीले अंग,
चौंका चमकनि चल चपल निबेरे सो।
चंदन चमेली चारु चंद्रक ते बास 'बृज',
चहुँघा से चंचरीक चले मग घेरे सो।
चंद्रमुखी मुख छबि मंद मुसुकान आगे,
चेरी लागै चंद्रिका औ चंद्र लागै चेरे सो ॥११॥

१—रसविषयव्यापारवती अर्थात् रसका व्यञ्जन करनेवाली वर्णरचना को वृत्ति कहते हैं, यह तीन प्रकारकी होता है—उपनागरिका, परुषा और कोमला, इसी को ग्र थान्तरो में वैदर्भी, गौड़ी और पाञ्चाली नाम से कहा गया है, इसी वृत्तिके अनुकूल प्रकृष्ट वर्णविन्यास वृत्यनुप्रास कहलाता है। इसमें एक ही वर्ण की बहुत बार आवृत्ति होता है। छेकानुप्रास मे स्वरूपत और क्रमश वर्णों आवृत्ति होती है किन्तु वृत्यनुप्रासमें केवल स्वरूपत ही ।

अवास=आवास, गृह। अलेख=अलक्ष्य, एकाएक। औनि=अवनि, पृथ्वी ॥१०॥

टीका—चाप ते चढ़ी है भौहै, चख चलाक दान चोचादिक चकार चारों पदन में है ॥११॥

चोज मामिले के जानै चापलोसी को बखानै,
चतुर चलाक चेत राखै स्वामिकाम तैं।
चूकत न हेत निज चाहैं कौड़ी मे हस्क,
चीन्हैं नेक बद चोखी बुद्धि सबै ठाम कै।
चलन चाहत बात चार कैसे करैं खोज,
चाल चलैं चोज दृढ दरबार आम मैं।
चारुता चलन सार 'गोकुल' विचारि नीके,
चौदहों चकार ही ते चौधरी के नाम हैं ॥१२॥

टीका—चोज मामिलाके जानै चापलूसी आदि चकार सब पदन में है ॥१२॥

चचल सुभाव चोज चुनिहा चबाव खोजै,
चुपरी चलावै चल बात अधरम जे।
चट महा चकी मति सब सों रहत नित,
चाटकी चुगुलखोर चोप अधरम मे।
चाहैं पर हानि चित लपट लबार मानि,
चाव करै देखै पर दुख वेसरम ते।
'गोकुल' विचारि यह चौदहो चकार कूर,
करै नर धरी नाम चौधरी अधम के ॥१३॥

टीका—चचल सुभाव चोजादिक चकार है ॥१३॥

चाप = धनुष। चख = चक्षु, नेत्र। सान = शाण, अस्त्रों को पैना करने का एक पत्थर। चामीकर = सुवर्ण। चौका = आँगन। चन्द्रक = कपूर। चहुँघा = चारो ओर। चचरीक = भौंरे। चेरी = दासी। चेरे = दास ॥११॥

चोज = दूसरोको प्रसन्न करनेवाला बातें। चापलोसी = चाटुकारिता। नेकबद = अच्छा बुरा। ठाम = जगह। चार = ग्रह। दूत ॥१२॥

चोज = सूक्ति। चुनिहा = चुने हुए। चबाव = परनिन्दा, बदनामी। चकी = आश्चर्यकारक। चाटकी = विश्वासघाती। चोप = उत्साह। चाह = इच्छा ॥१३॥

कवि—नरहरि (आदिपद वृत्त्यनुप्रास)

छप्पै—कबहुँ ध्वार प्रतिहार कबहुँ दरदर फिरत नर ।
कबहुँ देत धन कोटि कबहुँ करतर करत कर ॥
कबहुँ नृपति मुख चहत कहत करि रहत बचनवर ।
कबहुँ दास लघुदास करत उपहाँस जिभ्यरस ॥
कछु जानि न सपति गर्बिए बिपति न ग्रह उर आनिए ।
हिय हारि न मानत सतपुरुष 'नरहरि' हरिहि सँभारिए ॥१४॥

टीका—कबहु ध्वार प्रतीहार कबहूँ आदिक ककार अनेक बार आवृत्ति ते है ॥१४॥

न कछु क्रिया बिन बिप्र न कछु कादर जे छत्री ।
न कछु नीति बिन नृपति न कछु अच्छर बिन मत्री ॥
न कछु बाम बिन धाम न कछु गथ बिन गुरुआई ।
न कछु दान सनमान न कछु मुख आप बड़ाई ॥
न कछु मान आदर बिना नष्ट कुभोजन जासु दिनु ।
यह कबित सो 'नरहरि' कहि यथा बृथा जन्म हरि भक्ति बिनु ॥१५॥

टीका—न कछु क्रिया बिन न बिप्रन कछु आदि ककार नकार अनेक बार ॥१५॥

कवि—श्रीपति (आदिवर्ण वृत्त्यनुप्रास)

दण्डक—झूमत झुकत उभकत फिरि झूमत है,
झूमि झूमि झूमै मानौ कज्जल ते कारे हैं ।
ऐंडायल ऐंड भरे ऐंडत अड़त अति,
अगड परे ते कहूँ टरत न टारे हैं ।

प्रतिहार = द्वाररक्षक । दर दर = घर घर । करतर = हाथ के नीचे ॥१४॥
क्रिया = कर्म, अनुष्ठान । कादर = डरपोक । बाम = स्त्री । धाम = घर । गरुआई = गुरुता, महत्त्व ॥१५॥

गुनन गहीले गरबीले जरबीले पेखि,
'श्रीपति' सुजान भये परम सुखारे हैं।
प्रीय प्रान प्यारे भाँति भाँतिन सँवारे प्यारी,
लोचन तिहारे किधौं गज मतवारे हैं ॥१६॥

टीका—झूमत झुक्त उझकि फिरि झूमत, झकार प्रथम पद म अनेक नार आवृत्ति ॥१६॥

दडक—उन्नत उरोरुह की वोप उपटति अति,
अँगिया अनूप अलबेली आला अलकें।
दीप द्युति दबत दहत दुख देखत ही,
देह द्युति कामिनी की दामिनी की दलकै।
पोखराज खचित है पैजनी परम पाँय,
पल पल पेखि प्रेम परत न पलकैं।
लहलही ललित लता सी लहकत लखि,
लाल ललकत लोने लोयन की ललकै ॥१७॥

टीका—उन्नत उरोरुहकी दुइ पदतें छेका, अति अगिया अनूप अलबेली अलकैं अकार अनेक बार आवृत्ति ते वृत्यनु० छेका०, कै सकर है ॥१७॥

दडक—कोकिल कलाप कल कूजत कदम्बन पै,
अबन पै कोकिल कलाप वाह वाढ की।
घरी घरी घेरि घोर घोरै घन घूमि घूमि,
घटत न घुमडत घने घन गाढ की।
'श्रीपति' सयान मनि सीतल समीर धीर,
झरप लता की मनो वह्नि नन डाढ की।
दहै देह दामिनि बिरह जनु भामिनि की,
आई काल कामिनी की जामिनी असाढ की ॥१८॥

उझकत = उछलते हैं। ऐडायल = ऐंठ दिखाने वाले। ऐंड़भरे = गर्वभरे। ऐडत = ऐंठते हैं। अँगडाई लेते हैं, अगड = जजीर। गहीले = गहरे, भरे हुए, जरबाले = शोभायुक्त ॥१६॥

उरोरुह = स्तन। वोप = आभा। उपटति = उभड़ती है। अनूप = अत्यन्त। आला = श्रेष्ठ। अलकैं = केश। दामिनी = बिजली। दलकै = चमकता है। पोखराज = एक रत्न पीले वर्ण का। पैजनी = नूपुर। पलकैं = आँखो की पलकें। लहलही = प्रफुल्ल। लहकत = लहराती या झोके खाती है। ललकत = ललचता है। लोने = सुन्दर। लोयन = लोचन ॥१७॥

टीका—कोकिल कलाप कूजत कदम्बादिक ककार अनेक बार आवृत्ति ॥१८॥

कवि—महाराज पं० उमापति

दंडक—जाकी काम शोभा सुरधाम लखि लोभा पुन्य,
धन्यताई देखि छोभा सर्व मन छाई है।
नीरधि गभीरताई कल्प की उदारताई,
भव्यताई नव्य गुण गणप की पाई है।
गुरुताई मेरु सी धनेस कैसी धनताई,
दधिच्च नरेश कैसी उपकारताई है।
कोविद कविन्द्र महाराज दिगविजैसिंह,
बेधा निज मेधा दै आपको बनाई है ॥१६॥

टीका—अंत पद वृत्य० पंडित उमापतिजी के, जाकी काम शोभा सुर धाम लखि लोभा पुन्य धन्यताई देखि छोभा सर्व मन भाई है। सोभा कै लोभा छोभा, भकार अनेक बार आवृत्ति ते वृत्यनु०। पुन्य धन्य नकार दुइ पद की आवृत्ति ते वृत्यानुप्रास है और अर्थालंकार में अर्थ गम्भीर है। विस्तार पूर्वक अन्य ग्रंथ में कहैंगे ॥१६॥

(वृत्यनुप्रास)

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

दंडक—सत्य गुन सार सी है सारदा सिंगार सी है,
नारद उदार सी है सुरधुनि धार सी।
हंस के अगार सी है हीरा के भण्डार सी है,
हिमि पारावार सी है घने घनसार सी।
कीरति तिहारी राम 'गोकुल' निहारी लोक,
चारु चंद्रिका सी सोहै हाँसी देव दार सी।
पय पारावार सी है पाला के पहार सी है,
कल्पवृक्ष डार सी है हराहर हार सी ॥२०॥

कलाप = झुंड। अबन = आम के वृक्षों। धुमड़त = गरजते हैं। झरप = बूँदाबाँदी। काल जामिनी = मृत्यु। जामिनी = रात्रि ॥१८॥

सुरधाम = स्वर्ग। धन्यताई = भाग्यवत्ता। छोभा = क्षोभ। नीरधि = समुद्र। कल्प = कल्पवृक्ष। भव्यताई = सुन्दरता। गणप = गणेश। धनेस = कुबेर। बेधा = विधाता। मेधा = बुद्धि ॥१६॥

टीका—अतपद एक वर्ण अनेक बार आवृत्ति सत्य गुन सार सी है, सारदा सिंगार सी है, नारद उदार सी है, रकार सकार अनेक बार अन्त मे आये, याते अतपद वृत्य० ॥२०॥

दडक—आनद के कद नॅदनद ते मिलाप बदि,
साजे छद बद औ सिगार जो पसद है।
आभरन बृद 'बृज'चद्रमनि चद्रकाति,
तरके तनीके बद उमगै अनद है।
नैन अरबिंद अस राजै रद कली कुद,
लपटे मलिद जो सुगध सुख कद है।
कुज भौन गौन कै गयद कैसे मद मन्द,
आनन अमद आगे मद लागै चद है ॥२१॥

टीका—आनद कद नदनद ते नकार आदिक अनेक वर्ण अनेक बार आवृत्ति ते वृत्यनु० अलकार ॥२१॥

कवि—घनसिंह

दडक—मोसो कै करार गयो लपट लबार मन,
मानि यतबार तौ सिंगारऊ बनायो री।
छोड़ि गृह काज छोड़ि सखिन समाज आज,
छोडि कुललाज बृजराज मन लायो री।
कज निशि जागी 'घन सिंह' प्रेमु पागी भय,
नेकऊ न लागी अब सूर उइ आयो री।
सेइ बन माली घेरि आग बनमाली लागे,
भरै बन माली बनमाली क्यो न आयो री ॥२२॥

टीका—लबार यतबार रकार कै अनेक बार आवृत्ति ते वृत्यनुप्रास और करार करि नहीं आया, याते परकीया उत्कठिता। सेइ बनमाली जो कृस्न आये बनमाली कहै बगवानादिक पदन ते यमक वृत्य सकर ॥२२॥

कद = मूल। छद बद = इच्छित पदार्थ। तरके = तड़क गये। तनीके बद = अंगिया (चोली) के बन्धन। उमगै = उमड़ता है। रद = दाँत। मलिद = भौंरे। कुज भौन = लतागृह। गौन = गमन। गयद = हाथी ॥२१॥

यतबार = विश्वास। पागी = रमी हुई। सूर उइ आयो = सूर्य उदय हो गया। बनमाली = वृक्षो का झुण्ड, बाग का रक्षक, मेघ, कृष्ण ॥२२॥

कवि—अनुनैन

दंडक—सुंदर मजीले पर लग सहजीले राधे,
परम लजीले सुभ काजन कजीले है।
बेलिन वसीले अलि बोलिन हँसीले आदि
रस में रसीले रूप यस मैं यशीले है।
नेह सरसीले पर तेह परसीले "अनु
नैन' चहकीले चटकीले मटकीले है।
तेरे कच नीले लूटि छबि से छबीले मानो,
पन्नग रँगीले मैन मन्त्र बतकीले है ॥२३॥

टीका—मजीले सहजीले,लजीले,लकार अनेक बार आवृत्ति ते वृत्य०॥२३॥

कवि—अज्ञात

दंडक—पंपा के सलिल मध्य झपा करि ताही छिन,
चंपा कुसुमनि कै लपट लूटि लायो है।
काशमीर देश की कुरंगनैनी कुचबेश,
केसरि जो लेश भेश देश दरसायो है।
माधुरी लता को परिरंभ कंप ताको देत,
धरै मंदता को जनता को सरसायो है।
धीरनि अधीर किये नीरज को नीर लिये,
बीर पंचतीर को समीर आज आयो है ॥२४॥

टीका—पंपा झपा अनेक आवृत्ति ते वृत्य० । यह समीर पंचतीर जो है काम को होय अर्थात् बसंत रितु की बयारि है ॥२४॥

मजीले = मँजे हुए, स्वच्छ । सहजीले = मनोहर । कजीले = घुँघराले । बेलिन वसीले = लताओं की तरह । आदिरस = शृङ्गार । तेह = रोष । कच = केश । मैनमन्त्र बत कीले = काम के द्वारा मन्त्र की तरह जिनका कीलन किया हुआ है ऐसे ॥२३॥

पंपा = सरोवर । झपाकरि = कूदकर । लपट = गंध । परिरंभ = आलिंगन । पंचतीर = काम । समीर = वायु ॥२४॥

(अन्त्यानुप्रास[1])

दोहा—कहि अत्यानुप्रास को, जो पदांत मे होइ ।
एक चरन मे बाक्य द्वै, तहाँ अत्य कहि सोइ ॥२५॥

टीका—अत्यानुप्रास लक्षण—जो पदा त मे वर्ण की समता होय ॥२५॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

दुमिला–बॅधिगो अति बाँधत नारन मै 'बृज' तेरे सिवार से बारन मे ।
दबिगो चल भौंहॅ के भारन मे फिरि दौरे फिरे दृग तारन मे ।
परिगो मुख पानिप धारन मे बहि लागो उरोज किनारन मैं ।
तहाँ हेरि थक्यौ बहु बारन मैं मन मेरो हेराइ गो हारन मै २६॥

टीका—बाँधत नारन मैं बारन मैं भारन मे तारन मे एक पाद म दुइबार आयो है, नारन नारन मे, याते अत्या० । हेरि थक्यौ नाहीं पायो अपनो आसक्तता कहै है याते स्वाधीनपतिका ॥२६॥

(श्रुत्यनुप्रास[2])

दोहा—एक वर्ग के बर्न जहॅ, क्रम से आवैं सोय ।
सो श्रुत्यानुप्रास है, बरनै कबि मति जोय ॥२७॥

टीका—लक्षण—जहाँ एक वर्ग के वर्णक्रम ते होय ॥२७॥

मत्तगयद छन्द—

कुदन काति खरे द्रिग खजन गोरि सी गोरी घटा घन केश ।
चाल चलै छबि छाजै जगै जहॅ भूमि रहे झुमके श्रुति देश ॥

नारन मे = , चल = चचल । तारन में = आँख की पुतली में, पानिप = शोभा, जल ॥२५॥

१ अन्त्यानुप्रास—यथासभव अपने आद्य स्वर और अनुस्वार, विसर्ग आदिसे युक्त वर्णका ज्यो का त्यो अन्तमें आवृत्ति हो तो उसे अ त्यानुप्रास कहते हैं । यह दो प्रकारका होता है—१—पदान्त्यानुप्रास, २—पादान्त्यानुप्रास ।

२ श्रुत्यनुप्रास—दन्त, कण्ठ, तालु आदि एक ही स्थान से उच्चार्यमाण वर्णों का जहाँ एक साथ प्रयोग किया जाय वहाँ श्रुत्यनुप्रास होता है, अत्यन्त श्रुतिसुखद होनेसे इसे श्रुत्यनुप्रास कहते हैं ।

टोने सी ठीक वै डीठि दुरै तन के थल दीपति धाम हमेश।
पानि है पकज फूले फबै 'ब्रज'बाल भली मन मोहनी वेश ॥२८॥

टीका—कुद० रोरसजा, गौरि सी गोरी, घटाघन केश, कखगघन इत्यादि वर्ण है कवर्ग के प्रथम। मदम चलै छबि जगे भूमि चछजझ चकार वर्ग वण याही चारौं पदन में है ॥२८॥

(लाटा अनुप्रास)

दो०—भाव सहित जहँ पद फिरै, अर्थ भेद कछु होइ।
सो लाटा अनुप्रास है, एक शब्द द्वै सोइ ॥२६॥

टीका—लक्षण—जहाँ भाव सहित पद फिरै अर्थ म कछु भेद होय ॥२६॥

सवैया—नेह जरावत दीपक ज्यौ रिसि त्यौंही है नेह जरावन को।
पावन लोग चलै नयकै नय नेक बढ़ावन पावन को॥
वाम रसील जसील जे हैं बलि वाम सुभाव नसावन को।
मान के दीप बढावत मानिनि मजुल मान बढावन को ॥३०॥

टीका—नेह नाम तेल को, जरावनहारो दीप, तैसे नेह नाम प्रीति को जारत रिसि, पावन कहै पवित्र लोग नयकै चले है, नय कहै नीति बढापन। पावन कहै पाइबेको, वाम रसील जे बाम कहै नायिका रसीली है। वाम सुभाव वाम कहै टेढ स्वभाव नसावती है। मान दीप बढावत कहै बुतावत है। मानिनि मान कहै आपन आदर को बढावत कहै मिटावत है। मान बढावनको मान वृद्धि करै को ॥३०॥

कवि—कुलपति (लाटानुप्रास)

दडक—बोलत मधुर होत मधुर सुयस यह,
नीको जानि नीको मन मोद ही सो भरिये।
करिए सो डरिए न करिए तौ डरिए न,
सब ही भलाई जो भलाई उर धरिये।

कुदन = सुवर्ण। गोरी = पार्वती। गोरि = गोरेवर्ण की। टोनेसी = जादू सी। दुरै = झलकती है। तनके थल = देह से। पानि = कर, हाथ। फबै = शोभित हैं ॥१२७॥

नेह = तेल, प्रेम। रिसि = रूठना। पायन = पवित्र, पाना। नय = नीति। बाम = सुन्दरी, वक्र ॥३०॥

जैसे सीत भान मान प्रभा प्रभाकर त्यौंही,
    जान जानपन्यौ फल यह जिय धरिये ।
कीजै नित नेह नंदनंदन के पॉयन सो,
    पॉयन सों तीरथ के पथ अनुसरिये ॥३१॥

टीका—बोलत मधुर ताको सुयश मधुर होत, नीको जानि नीको मन मोद करिये, करिए तौ डरिये और न करिये तौ न डरिए, सबही भलाई सबै भलाई करै जो अपना भलाई को धारन करिय, शीतभान चन्द्रमा, भान सूर्य्य, प्रभाकर प्रभाकर जान कही जानौ जानपन्यौ कहै जन्मको कलह जिय धरिए, नित नेह नँदनद के पगन कहै चरण करिये । पायन कहै पग ते तीरथ जैए ॥३१॥

कवि—मुकुंद

दो०—जिन[1] सो मित्त मिले नहीं, तिन्हैं बजार उजारि ।
    जिन से मित्त मिले नहीं, तिन्है बजार उजारि ॥३२॥

टीका—जिनसों मित्त कहै मित्र मिलो नाहीं तिनको बजार उजारि लागत । जिनसो मित्र मिले बजार उजारि तिनको नहीं लागै है ॥३२॥

कवि—सोमनाथ

दो०—रन मे जे हारत नहीं, पैने जिनके बान ।
    रन मे जे हारत नहीं, पैने जिनके बान ॥३३॥

टीका—पैन जिनके बान हैं जे रन में हारत नहीं रन में जे हारत हैं वाके बान पैन नही हैं ॥३३॥

लाटानुप्रास—जहाँ शब्द को उसके अर्थ सहित पुनरावृत्ति होती है केवल तात्पर्य (अन्वय) मात्र में भेद रहता है वहाँ लाटानुप्रास होता है । इसके ५ प्रकार हैं—पद की आवृत्ति, पदों की आवृत्ति, एक समास में आ०, भिन्न समास में आ०, समासासमास में आवृत्ति । लाट देश के लोगों द्वारा इस प्रकार की भाषा का अधिक प्रयोग होने से इसे लाटानुप्रास कहते हैं ।

१ ३२, ३३, ३४ में एक 'नहीं' पद पहिले पादके साथ और दूसरा 'नहीं' पद चतुर्थपाद के साथ पढ़ना चाहिये ।

पैने = तीचण ॥३३॥

कवि—राजा जसिवंत सिंह

दो०—पीय निकट जाके नहीं, घाम चाँदनी ताहि ।
पीय निकट जाके नहीं, घाम चाँदनी ताहि ॥३४॥

टीका—पीय कहै पति जाके निकट नाहीं है ताहि चाँदनी घाम ऐसो लागै है पिय निकट जाके है, नहीं घाम ताको चाँदनी है अथवा नहीं घाम चाँदनी है ॥३४॥

कवि—बेनी

दंडक—बाँधे द्वार काकरी चतुर चित्त काकरी सो,
उमिरि बृथा करी न राम की कथा करी ।
पाप को पिना करी न जानै नाक ना करी सो,
हारिल की नाकरी निरंतर ही नाकरी ।
ऐसी सूमता करी न कोऊ रामता करी सो,
'बेनी' कविता करी प्रकास तास ताकरी ।
न देव अरचा करी न ग्यान चरचा करी,
न दीन पै दया करी न बाप की गया करी ॥३५॥

टीका—बाँधे द्वार पर काकरी, का कहै कंचन के जेवर युत करी कहै हाथी, चतुर चित का करी, चतुर कहै प्रवीन चित है का करी कहै काह किहिनि, उमिरि बृथा करी न राम कै कथा करी कहै नाही किहिनि । पाप कापि ना करी पापको पिया करै न जानै नाक नाकरी नाही जानते हैं नाक कहै स्वर्ग कहै परलोक की ना करी नाही करते हैं पाप को त्यागना, हारिल की नाकरी हारिल एक पक्षी होत नकरी कहै लकरी को दिनो राति पकरे रहते तेमइ पाप का पकरे हौ, निरंतर ही नाकरी निरन्तर कहै कुछ अंतर नाहीं । ना करी कहै नाहीं करी है ऐसी सूमता करी जाको कोई समानता नाहीं करी है सोतिन प्रकाशता सता कहै सत्य ही बेनी कविता करी है जो सूम है न देव को अरचा कहै पूजा, न ज्ञान कै चरचा करी इत्यादि, करी पद ते लाटा ॥३५॥

कवि—इंदु

दंडक—ऊँचे धौल मंदिरके अंदर रहनवाली,
ऊँचे धौल मंदिरके अंदर रहाती हैं ।
कंद पान भोग वारी कंद पान भोग करैं,
तीनि बेर खानवाली तीनि बेर खाती हैं ।

मैननारी सी प्रमान मैननारी सी प्रमा न,
बिजन डोलाती ते वै बिजन डोलाती है ।
कहै 'कवि इंदु' महाराज आज बैरी नारि,
नगन जड़ाती ते वै नगन जडाती है ॥३६॥

टीका—ऊँचे धौल नाम सपेद मंदिर कहै पहाडके कंदरम रहती है कद पान भोंग वारी कहै कद जो मिश्री आदि पान कहे तमोल खान वारी अरु कद के सरबत पियन हारी सो कद पान भाग करैं कद कहै जीवन वृक्षन को, पान कहै खाती पियती हैं, तीनि बेर खान वारी कहै तीनि बार भोजन करनहारी सो तीनि नइरि खाइ कै रहती हैं। मैन नारी सी प्रमान मेन कहै काम के नारि ते जिन नारिन को तुल्यता रही सो मैन नारी सी प्रमान मैन कहै काम के नारी सी प्रमा कहै शोभा न रह्यौ। बीजन कहै पखा जाके हाँका जात रहो सो बिजन कहे बिना जन कहै दास के डोलतीं बनमे। इंदु कवि कहै महाराज तिहारो त्रास ते बेरीन की बधू जो नगन जडित भूषन पहिने रहीं सा नगन जडाती कहै तुछु वस्त्र नहीं है नगी है जडाती हैं इति ॥३६॥

(यमकानुप्रास[1])

दो०—यमक शब्द सोई रहै, अर्थ भिन्न ह्वै जाय ।
अनुप्रास यमका कहै, कवि मति मंजुल पाय ॥३७॥

टीका—लक्षण—लाटा में तुइ पद के अर्थ और यमक में अनेक पद वही भाँति अर्थ अनेक भिन्न जहाँ होय ॥३७॥

---

१ यमक—स्वरसहित व्यञ्जन समूह की, अर्थ रहते हुए जहाँ पुन रावृत्ति हो किन्तु अर्थ भिन्न भिन्न होता हो वहाँ यमक अलङ्कार होता है, यहा यह स्मरणीय है कि अनुप्रासमें केवल वर्णों की आवृत्ति होती है उसमें भी स्वरसाम्य आवश्यक नहीं किन्तु यमक में स्वरसहित वर्ण समूह की आवृत्ति होती है। इसी प्रकार लाटानुप्रासमें सस्वरसति वर्णसमूह की आवृत्ति होती है किन्तु उनका अर्थ भिन्न नहीं होता केवल तात्पर्यमें भेद होता है और यमक में अर्थ भी भिन्न भिन्न होते हैं। यही अन्तर यमक और अनुप्रासम है। आकर ग्रन्थोंमें यमक के ११ भेद कहे गये हैं—देखिये साहित्यदर्पण की छाया टिप्पणी।

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

दंडक—पल कल पावत न पलक लगावत न,
काम कल पावत न कल करै प्यारे सो ।
जात न तियाके तीर जा तन मदन तीर,
लागे कहि जात न यो जात ना विचारे सो ।
नारिको नवाइ बैठी 'बृज' बृजनारिन मै,
नारी नारी छूटि गई कियो नेह न्यारे सो ।
मोह न तिहारे मनमोहन तिहारे मन,
रूप मनमोहन तिहारे मै निहारे सो ॥३८॥

टीका—पल कल नाहीं पावत, पलक नाहीं लगावै है । काम कलपावत कहै मदन तरसावत, नकल करै प्यारे सो जात न कहै जाते नहीं तिया के ढिग जा तन मदन तीर लागे, कहै जाके तन मे मदन के बान लागे हैं । कहि जात न मासो नहीं कहि जात है ऐसो जात ना कहै विथा विचार हो । नारि को नवा० नारि कहै ग्रीवाँ नवाइ कहै शिर नीचे करि बृज नारिन मे बैठी है, नारी नारी छूटी कहै कर की नारी नही चलती है । मोहन तिहारे० मोह तिहारे मनमें नहीं है, हे मोहन कृष्न तिहारे रूप मन को मोहनहार है, मैं निहारे है ॥३८॥

कवि—माखन

दंडक—ऐसे मै न काहू के न ऐसे मैन काहू के न,
ऐसे मै न काहू के सँवारे दीह दौर के ।
भौर है न कारे ऐसे भौंर है नकारे ऐसे,
भौर हैं नकारे कज मजुल मरोर के ।
सर से सुपमा के है सरसे सुपमा के हैं,
सर से है 'माखन' कटाच्छ पैन कोरके ।
देखे हरि नीके नैन देखे हरिनी के नैन,
देखे हरिनी के नैन नीके हैं न और के ॥३६॥

पल = क्षणभर । कल = चैन, आराम । कलपावत = तड़पाता है । तीर = समीप । मदनतीर = कामबाण । नारि = ग्रीवा, गर्दन । नवाइ = झुकाकर । नारी नारी = स्त्री की नाड़ी । मोह = अज्ञान । मोहन = कृष्ण । निहारे = देखे ॥३८॥

टीका—ऐसे मैन कहै काम काहू के कहै को हो के नाहीं, सँवारे कहै बनाए है, ऐसे मैनकाहू के न ऐसे मैनकाहू कहै अपसरा के नहीं है ऐसे म न काहू के न ऐसे मे काहू के नाहीं सवारे कहै सुधारे है। भौर है न कारे ऐसे भौर कहै भौंरा कारे अस नहीं हैं, भौर नकारें हैं कहै नकारे बुरा है जे ऐसे हैं, भौ रहै नकारे ऐसे भौ कारे होत है ऐसे कज कारे नहीं। सरसे सुषमा के हैं कहै अधिकात है साभा ते सरसे सुखमाके है सर कहै तलावा है सो दर्प्य ताके सर से कहै बान ते पैने हे। देखे हरि नीके नैन, हे हरि देखे नीके नैन ते हरिनी जो है मृगी के नीके नैन ताके देखे हो हरिनीके नेत्र ऐसे नीके नैन तीके और के नहीं ॥३६॥

कवि—अनुनैन

दंडक—धूम उपजाए उपजाए धूमध्वज हिए,
धूमरे जो घर्घरात धाई पुरवैया हैं।
चमकत बीजुरी सो बीजु री बियोग कैसी,
कौन 'अनुनैन' हिए दुख को दवैया है।
पीवन चहत यह जीवन को कौन भाँति,
जीवन बचैगो पार जैबे को न नैया है।
नैहर लेवाइ जैबे आयो जेठ भैया है न,
आयो जेठ भैया है न आयो जेठ भैया है ॥४०॥

टीका—धूम उपजाए, कहै धुवाँते उतपन्न भये मेघ सो मेघ उपजाए

मैन = कामदेव। मैनका = एक अप्सरा। सँवारे = सुधारे। भौंर = भौंरे, भँवर। नकारे ऐसे = तिरस्कार किये। भौ रहैं = भृकुटि है। सरसे = शोभित हैं, सुषमा = परमशोभा। सर से = तालाब से। सर से = बाण जैसे। पैन = तीखे। हरि = हे कृष्ण। नीके = सुन्दर। हरिनी के = मृगा के। तीके = नायिका के ॥३६॥

धूमध्वज = अग्नि। धूमरे = धूसर वर्ण के। घर्घरात = गरज रहे हैं। बीजुरी = बिजली। बीजु = बीज (जो बोया जाता है)। पावन = पाना। प्रियतम। जीवन = जल, जीवन = जिन्दगी। जेठभैया = बड़ाभाई, जेठके भैया अर्थात् पति, जेठ के बाद का महीना अर्थात् आषाढ़ ॥४०॥

हिए में धूमध्वज कहै अगिनि औ धुमरे कहै धूमिल, घरघरात कहै गरिजै है पुरवाइ नहि रही। चमक बिजुरी सो, बीजुरी कहै बीज कहै बिया होइ बियाग केरी है सखी, पीवन चहत कहै पिया चहत है, जीवन कहै जल जीवन कहै जीवन न्वैगो। नैहर लैगैगो को। आए जेठ भइया कहै जेठ भाई और न मेरे जेठ के भाई कहै पति परदेश ते नाहीं आयो, जेठ भइया कहै जेठ क महीना ते करै भैया असाढ़ आइ गयो ॥४०॥

कवि—भूषन

दंडक—जेते मनि मानिक हे ते ते मनमानिक हैं,
धरा म धरा है धरा धूरि ही मिलायबी।
देह देह देह फिरि पाइ ऐसी देह कौन,
जाने कौन देह कौन योनि जिय ज्यायबी।
भूख एक राखि भूख राखै मति 'भूषन' की,
भूषन की भूषन है भूखन न पायबी।
गगन के यमगन गग न गनन देहै
नग न चलैगा साथ नगन चलायबी ॥४१॥

टीका—जेतने कहै मनि मानिक रतन है तेते मन मानि कहै कहत हे ॥ धरा जो भूमि में धरा है सा धूरि में मिलि जैहै, देह देह ० देह देह ऐसी देह कहै तन फिरि न पैहै, कोन जानै कान देह कोन जोनि में जिव हावै। भूख एक राखि० भूख कहै एक छुधा को राखे मनि भूख कहे लालसा भूषन कहे जेवरादि का को राखै भूषन की भूषन है० कहै भू जो पृथ्वी खनको कहै खनिबे की भूख कहे लोभ ते न पैहै। गगन के यमगन गगन गनन कहै गगा को सुमिरन न करन देहै, नगन कहे नगा चलैगो साथ नग कहै रतनादिक साथ न जैहै ॥४१॥

मनिमानिक=मणिरत्नादि। धरा=पृथ्वी, धरा= रक्खा। धराधूरि= पृथ्वी का मिट्टा। देह (देहु)=दे दो। देह=शरीर। जिय=जीव। भूख= क्षुधा, लालसा। भूषन=अलंकारों का। भूखनकी भूषन=भूख से व्याकुल व्यक्तियोंके योग्य। भूखनन=पृथ्वी को खोदना, खेती करना। गगन= आकाश। यमगन=यम के दूत। गनन=स्मरण करने। नग=रत्न। नगन=नंगा, वस्त्रहीन ॥४१॥

कवि—लाल

दंडक—मेह बरसाने तेरे नेह बरसाने देखि,
यह बरसाने वर मुरली बजावैगो।
साजि लाल सारी लाल करैं लालसारी आज,
देखिबे को 'लाल' सारी लाल सुख पावैगो।
तुही उरबसी नाहि उर बसी आन तिय,
कोटि उरबसी तजि तो सो चित्त लावैगो।
सेज बनवारी बन वारी तन आभूषन,
गोरे तनवारी बनवारी आज आवैगो ॥४२॥

टीका—यह नायिका मानिनि ते सखी कहै है, मेह कहै जल बरसत देखि तेरै नेह वर कहै श्रेष्ठ सनेहै यह बरसाने नगर म मुरली बजावैगा, साजि के लाल सारी लाल के लालसा कहै अभिलाष आज पूर करे। देखिबे को लाल कवि की उक्ति उसकी सारी सुख पावैगे। तुही उरबसी कहै, अपसरा उरबसी तुही है नाहि उर बसी आन तिय है कोटि उर बसी को तजि तूही सा चित्त लागे है। सेज बनवारी० सेज कहै बन वाली बनवारी कहै वनितन आभूषण है गोरे तन वारी बनवारी कहै कृस्न जी आजु मिलै ॥४२॥

कवि—नीलकंठ

तन पर भार तीन तन परभारतीन,
तन पर भारती न तन पर भार है।
पूजे देवदार तीन पूजे देवदार तीन,
पूजे देवदार ती न पूजे देव दार हैं।
'नीलकण्ठ' दारुण दलेलखान तेरे धाक,
देहरी न नाँघती सो नाँघती पहार हैं।
ओंधरो न कर गहे बावरो न संग लहे,
बार छूटे बार छूटे बार छूटे बार है ॥४३॥

मेह = मेघ। बरसाने = बरसते। नेहवर = उत्तम स्नेह। बरसाने = बरसाना नगर में। वर = श्रेष्ठ। लालसारी = लाल रंग की साड़ी। लाल = नायक। लालसा = इच्छा। उरबसी = हृदय मे बसी हुई। उरबसी = उर्वशी नाम की अप्सरा। बनवारी = बन में जो बनाई थी। बनवा = सजा। बनवारी = श्रीकृष्ण ॥४२॥

टीका—नीलकंठ कवि भनै की हे दारुण कहै भयानक दलेलखान तेरे धाक ते ऐसी रिपुनारि हको ऐसी त्रिपत्ति है। कैसी है की जिनके तनपर भारती न केश भार,[१] कुच भार,[२] नितम्ब भार[३] फिरि कैसी है तापर भारती कहै अग में परम श्रेष्ठ भा शोभारती भाग्य है फिरि कैसी है न तापर भारती कहैं जिन्हके तन ते परभा कहे उत्तम शोभा वाली रती कहे काम स्त्री न है अथवा न तन पर भारती न कहे तन पर भाते रती न कहैं इव कैके रति है। अब ऐसी विपत्ति है की तन पर भार है कहे भय से तन परम भार ह्वै रह्यो है अथवा न तनपर भा शोभा रहै फिर कैसी है पूजै देवदार तीनि कहे तीनि जो ब्रह्मादि वृक्ष है पलाश[१], पीपर[२], वट[३], तिन्हैं पूजती है फिरि पूजै देवदार तीन दार कहे नारी सरस्वती[१], लक्ष्मी[२], गौरी[३] इ हैं पूजैं फिरि पूजै देवदारती० ती कहै स्त्री देवह्न में दार कहे श्रेष्ठ के हैं ब्रह्मादिक ति है पूजै अथवा पूजै कहैं पूजित देव कहैं राजा तिन्ह की दार ती के हैं उत्तम नारी यह सब करती है अब विपत्ति है कौ न पूजै देवदार है कहे देव पूजा दार न है सिद्ध न है अथवा देवदार कहैं कल्प होने को चाही सो नहीं है। भाव यह है कि पूजा इन्ह का इष्ट नहीं देति तीसर पाद स्पष्ट है आगे अति भय कहै है कोई आँधर को लै चलै को हाथ न धरा फिरि घर के बावरे जन केहूँ को सग न पायो फेरि वार कहे बालक छूटे फेरि वार छूटे, वार कहै द्वार पर आपने जनको वार कहे समूह छूटे फेरि छूटे वार है वार कहे केश छूटे हैं ॥४३॥

कवि—केशवदास

दूषन दूषन के यश भूषन भूषन अगनि 'केशव' सोहैं।
ज्ञान सँपूरन पूरन कै परिपूरन भावनि पूरन जोहैं॥
श्री परमानँद की परमा परमानँद की परमा कहि को हैं।
पातुरसी तुरसी जिनके अवदा तुरसी तुरसी पति मोहैं॥४४॥

टीका—साधुन को वर्णन—जिन को यश दूषन कहै दोष दूषन करन हारो है और यश जो है वही भूषन है ऐसे भूषन अग मोहै श्री परमानंद कहै परमेश्वर की जो परमा कहै शोभा तामें पर कहै तत्पर है, पर आनन्द की परमा

भार = बोझ। परभारतीन = उत्तम शोभा और भाग्ययुक्त। भारतीन = कामदेव की स्त्री रति की भा (शोभा) फीकी है। परभार = अत्यन्त भारी। देवदार = देवताओं के वृक्ष, देवताओंकी स्त्रियां, देवताओं में श्रेष्ठ। ती = स्त्री। बावरो = पागल। वार = बालक, स्वजन, द्वार, केश ॥४३॥

ो कहिबे लायक है। ज्ञान सँपूरन० ज्ञान जो है ताको पूरण करि परि पूरण ावनि करि तिन को देखत है, अवर पातुरसी तुरसी० और पातुर की सुहाती ोभा ताते पार है पातुर सी जुहै तुरसी की शोभा सोऊ तुरसी कहै सथाई रानरि है जिनकी मति मोहै है ॥४४॥

कवि—श्रीपति

डक—सारसी सुबास माती सार सी करत कूकैं,
सार सी भई है छाती नाहीं दरकत है।
हार सी जोन्हाई देखि हार सी परी विशेखि,
हारसी परेखि मति 'श्रीपति' भँवत है।
वारसीत लागत ही वारसीत दहै देह,
बारसी को पलकारी वार सीररत है।
आरसी भयेरी कोंध आरसी भँवर धुनि,
आरसी बिलोकि मोहि आरसी लगत है ॥४५॥

टीका—सार कहै फूलन को रस ताके सुबास से माती है, सारसी करत कूकै ार बाजा लडाई में बाजत है तैसोई बोलत है सारसी भई है छाती नाही रका त्यादि पदन के अर्थ ऐसे ही जानि लीजै ॥४५॥

कवि—सरदार

डक-सुन्दर सती को बसती को असती को नाँव,
सुनि हाल कीन्हो सो न होत अस नीको है।
खजपतिनी को पतिनी को पति नीको कौन,
सुनि पतिनी को पति नीको हत ही को है।
'कवि सरदार' गोरे सामरे किसोर देखि,
देखिबो न चाहै होत देखि हारी ही को है।
मन्द मत नीको मत नीको तौ निहारिए री,
कौन अति नीको पतिनीको पति नीको है ॥४६॥

टीका—कहै सुघर सती को बसती कहै नगर है वासती को बसती को नाव ुनि सो न होत अस ती को है इत्यादि पदन मे जानिए ॥४६॥

सारसी = सारसपत्नी। रणभेरी सी = ठोस पदार्थ जैसी। हारसी = धवल। ोन्हाई = चांदनी। हारसी = शिथिलतासी, नाशक सी। आरसी = आलस्ययुक्त।

कवि—अज्ञात

आई हौ निबेदन को बनिता के बेदन को,
क्या न होहु बेदन को बेद भरि राती हैं।
क्यौ न होहु बारिजात क्यौ न होहु बारि जात,
बारि बारि जात तौ तू कैसही सिराती हैं।
लेहु हरि कीरति न लेहु हरि को रति न,
लेहु हरि कीरति उनीदो निअराती है।
ज्यौं ज्यौ पियराती आवै त्यौ त्यौ पिय राती आवै,
ज्यौ ज्यौं पियराती आवै त्यौं त्यौ पियराती हैं ॥४७॥

टीका—आई निवेदन कहे मिटाइबे को बनिता के बेदन कहे बिथा को बेद भरि कहे चारि याम राति है ऐसे ही ओर जानिए ॥४७॥

कवि—दास

दडक—छपती छपाइ ही छपाइ गन सोर तन्छ,
पाइ ज्यौ अकेली ह्यॉ छपाई ज्यौ दगति हैं।
सुखन निकेत की या केतकी लखे ते पीर,
केतकी हिए मे मीनिकेत की जगति हैं।
लखि कै सशक होती निपटै सशक 'दास',
शकर मै सावकास शकर भगति हैं।
सरसी सुमन सेज सरसी सुहाई सर
सीरुह बयारि सीरी सरसी लगति हैं ॥४८॥

टीका—छपती छपाइही कहे छपि जाती ही म छपाइ गन सोर कहे प्रगट जो अकेली त्यों छपती यही रीति जानिए ॥४८॥

कवि—पदुमाकर

दडक—सोभित सुमन वारी सुमन सुमन वारी,
कौन हूँ सुमन वारी यौ नही निहारी है।
कहै 'पदुमाकर' त्यो बॉधनू बसन वारी,
वहै ब्रज बरान वारी ह्या हरन हारी है।
सुबरन वारी रूप सुबरन वारी सजै,
सुबरन वारी काम करकी सवारी है।
सीकरन वारी सेद सी करन वारी रति,
सी करन वारी सो वशीकरन वारी है ॥४९॥

टीका—सोभित सुमन कहै शोभामान सुमन कहै फूल की वारी कहै फुलवारी कौनहू कहै कोई सुमन कहै स देह मन को वारि कै निहारी है ऐसे ही और जानिए ॥४६॥

पुनरुक्त पदाभास अनुप्रास अलंकार

दो०—भास जहाँ पुनरुक्त के, नहिं पुनरुक्त लखाइ ।
पुनरुक्ता पद भास कहि, कवि मति मजुल पाइ ॥५०॥

टीका—भास कहै जहाँ पुनरुक्त को झलक होय कुछ अर्थ पुनरुक्त न होय ॥५०॥

सवैया—सुरतालहिं बाँधि बजावत बीन बँधै सरके जल देव त्रिमोहै ।
'बृज' बानी मनोहर राग रँगे अनुराग गिरा करि कै सकुचो है ॥
रस राग बिलास अनत कला कहि जात न सेष की बुद्धि हरो है ।
मनमोहन गोपसुता सँगगो परतत्त्व दुरे मनमोहत जो है ॥५१॥

इति श्री दिग्विजयभूषणे चित्रालकारादि अनुप्रास वर्णन नाम त्रयोदश प्रकाश ॥१३॥

टीका—सुरताल बाँधि कै गुनी गायन बीन बजावत जासो सर कहै ताल के जल विधि, जात ताल सर शब्द पुनरुक्त को झलक है । अर्थ दोसर है बृज म बानी मनोहर ते राग गावै गिरा कहै सरस्वती सकुचाती है बानी गिरा आभास रस रास मे अनन्त जाको अन्त नहीं ऐसो कला करि रहे । कहि जात नहीं शेष की बुद्धि हरीगै अन त शेष आभास मन मोह गोप सुता गोप गुप्त परतत्त्व लीला करि रहे गोप गोप आभास ॥५१॥

इति श्री दिग्विजयभूषणे टीकाया अनुप्रास वर्णनं नाम त्रयोदश[1] प्रकाश ॥१३॥

१—जहाँ शब्दों की पुनरुक्ति जैसी प्रतीति हो वस्तुत पुनरुक्ति न हो, अर्थात् पर्यायवाची होने पर भी प्रयुक्त शब्द कविता में भिन्न अर्थ रखते हों, वहा पुनरुक्तवदाभास अलकार होता है, भिखारीदास के 'काव्यनिर्णय' का निम्न उदाहरण अधिक स्पष्ट है—

अली भँवर गुञ्जन लगे, होन लग्यो दल पात ।
जहँ तहँ फूले वृच्छ तरु, प्रिय प्रीतम कित जात ॥

[यहां यह ज्ञातव्य है कि यमक में भिन्नार्थक एक ही शब्द की आवृत्ति होती है किन्तु पुनरुक्तवदाभास में भिन्नार्थक पर्यायवाची शब्द की ।]

चतुर्दश प्रकाश

अथ ग्रंथान्तरे— (वीप्सालंकार)

दो०—वीप्साश्लेष समेत कवि, वक्रोक्तिक कहि स्वच्छ।
कहूँ कबिन तीनिउ लिखे, शब्द अलकृत लच्छ ॥१॥

टीका—वीप्सादि वर्णन—वीप्सा, श्लेष, वक्रोक्ति तीनिउ शब्दालकार कोई कोई कवि वरणन किए है ॥१॥

(वीप्सा लच्छन)

दो०—आदर भय उद्वेग करि, एक शब्द बहुबार।
बोलि उठै न विचार कछु, तहँ वीप्सा निरधार ॥२॥

टीका—जहाँ आदर वा भय कहै शका होय वा उद्वेग, एक शब्द बहुत बार आवै तहाँ वीप्सा ॥२॥

(आदर करि)

दो०—आवो आवो छाँह यहि, बैठो बैठो श्याम।
बोलहु बोलहु बोल बलि, कहाँ चलेहु केहि काम ॥३॥

टीका—आदर ते —आवो आवो, बैठो बैठो, बोलो बोलो इत्यादि ॥३॥

(भय करि)

दो०—हाय हाय कहि हायको, बृजपर मेघ निहारि।
भागहु भागहु नारि नर, सुमिरौ श्याम सँभारि ॥४॥

टीका—भयकरि हाय हाय भागो भागो ॥४॥

(उद्वेग करि)

दडक—गुजरत मजुल मलिद जहाँ मद मद,
कोकिल कलापी कीर कहाँ को भगायो है।
सघन तमाल पर लतिका ललित तहाँ,
निरखो निकट नीर नहरि बहायो है।

१—वीप्सा का अर्थ है पुनरुक्ति अर्थात् आदर भय आदि कारणोंसे एक ही शब्दको एकाधिक बार कहा जाय तब वीप्सालकार होता है जैसा कि उदाहरणमे स्पष्ट किया है। कलापी = मोर ॥५॥

आवो आवो आवो दौरि बेर न लगावौ 'बृज'
पाछे पछिताउ फेरि बनै न बनाया है।
धावो धावो धावो हेरि बाँधकी बँधावो घेरि,
कालिंदीकी धार कुंजधाम परधायो है ॥५॥

टीका—उद्वेग करि यथा —आवौ आवो, धावो धावो कुंजका धाम बचावहु याते अनुप्रास ॥५॥

(श्लेष)

दो०—एक शब्द मैं अर्थ बहु, जहाँ कहत सो श्लेष।
वर्ण्यावर्ण्य अवर्ण्य कहि, वर्ण्य सहित भै लेप ॥६॥

टीका—श्लेष जहाँ एक शब्द से अनेक अर्थ तीनि भाँति ॥६॥

दो०—सो तीनौं विधि लिखत हौं, दूतिन मैं पद सोधि।
उत्तम मध्यम अधम है, तीनि बात परबोधि ॥७॥

टीका—तीनिउ विधि कहै विधान ते लिपत है ॥७॥

रस राजा सिंगार रस, प्रजा चाहिए ताहि।
सर्व जाति ताते लिखे, दूती दूत सराहि ॥८॥

टीका—रसन के राजा सिंगार ताका प्रजा चाहि दूतादिक ॥८॥

जौन धर्म जिन जाति को, कहै बात रुचि सोइ।
निकसै तामै दूतपन, तब दूती वह होइ ॥९॥

टीका—जो धर्म जेहि जाति को होय वह कहै तामे दूत पन को बात निकरै ताहि दूती कहिए ॥९॥

जग मैं कौम छतीस है, ताम भेद अपार।
दूती दरपन मे लिखे, सबके मैं व्यौहार ॥१०॥

टीका—जग मैं कौम छतीस हैं ताम अनेक भेद तासो छतीस जातिके ॥१०॥

तामे सो मैं काढि कछु, लिखे इहाँ अनुमानि।
रचना रुचिर निहारि कवि, छमहु ढिठाई जानि ॥११॥

टीका—कवित्त दूतीदरपन ग्रंथ निकारि कहै इहाँ लिखो है ॥११॥

काज सजन के सधत है, कौम छतीस विचारि।
त्यौं नायक अरु नायिका, दूती काज निहारि ॥१२॥

टीका—जैसे कार्य्य छतीसौ कोम ते सबके होत है तैसो दूती ते सिगार रस मैं नायक नायिका के होते है ॥१२॥

बिरहि निबेदन एक हैं, सघट्टन हैं एक।
देत मिलाइ छोड़ावही, मान उपाय अनेक ॥१३॥

टीका—विरह निवेदनादि तीनि दूती है, मिलवत छोड़ावत ॥१३॥

कवि—दास—(दूती लच्छन, रस निर्णय)

दो०—पठई आवै अवर की, दूती कहिए सोइ।
अपनी पठई होइ सो, बानदूतिका जोइ ॥१४॥

टीका—पठई अवर की आवै दूती, अपनी पठाई बानदूतिका ॥१४॥

(दूती-भेद)

अनसिखई सिखई मिली, सिखई पै कहि जाइ।
उत्तम मध्यम अधम जो, तीनि दूतिका आइ ॥१५॥

टीका—उत्तम मध्यम अधम ॥१५॥

(उत्तम दूती)

हिय हजार मोहि लाभ री, बहैं अमा तिन श्याम।
करति जाति छामोदरी, देह छमा ते छाम ॥१६॥

टीका—हिय में हजार लाभ ॥१६॥

छामोदरी = कृष्णोदरी, पतली कमरवाला। छाम = कृष ॥१६॥

दूती—लक्षण ग्रंथकारों के अनुसार, नायिका लेख्य, प्रस्थान, स्निग्ध वीक्षण, मृदुभाषण और दूती सम्प्रेषण द्वारा नायक के प्रति अपने भावों को अभिव्यक्त करता है। दूती कौन हो सकती है? इस विषय में साहित्यदर्पणकारका कथन है—सखी, नटी, दासी, छात्री, पड़ोसिन, बालिका, भिक्षुणी, कारु और शिल्पिनी आदि दूतियां बनाई जाती हैं, कभी कभी स्वयं नायिका भी दूतकर्म कर लेती हैं। प्रकृत ग्रंथकार ने जिन ३६ दूतियों का वर्णन किया है वे 'कारु शिल्पिनी आदि' की श्रेणी में ही आती हैं। ग्रन्थकार के दूसरे ग्रन्थ 'दूती दर्पण' में निश्चय ही इस विषय का विशद विवेचन रहा होगा किन्तु प्रयत्न करने पर भी यह ग्रंथ अभी तक उपलब्ध न हो सका। यों तो दर्पणकार प्रभृति ने उत्तम, मध्यम और अधम ये तीन ही प्रकार सभी दूतियों के माने हैं किन्तु प्रकृत ग्रन्थकार ने (मूलतः) दो प्रकार कहे हैं। १ दूती, २ बानदूती, इनमें अन्तर यह बताया है कि जो दूसरे की भेजी हुई अपने पास आये वह दूती और अपनी भेजी हुई जो दूसरे के पास जाये वह बान

(मध्यम)

दो०—कहत मुखागर बालके, रहत बन्यो नहि गेह ।
जरत बाँचि आई ललन, बाँची पाती लेहु ।।१७।।

टीका—जरत रही बाचि आई हौं यह पाती लेहु ।।१७।।

(अधम)

लाल तुमै मनभावती, दीन्हो समै पठाइ ।
माग्यो जरकी औषधी, कहौ कही त्यौं जाइ ।।१८।।

टीका—जर की औषधी मागी है सो कहो कहो जाइ ।।१८।।

(बानदूतिका)

हित की अरु हित अहित की, अरु अहितै की बात ।
कहै बान दूतीन के, गुन तीनो गति जात ।।१९।।

टीका—हित, हित अहित, अहितै की बात कहै सो बान दूती है ।।१९।।

(हित)

कियो चहत बन माल तौ, आज रहो यहि धाम ।
फूल माल को आइ है, फूल माल सो बाम ।।२०।।

टीका—जो बनमाल कहै माल सदृश्य कीन चाहो यहि धामको फल और माला लेन का आइ है ।।२०।।

(हित अहित)

पहिरि स्याम पट स्याम निसि, क्यो आवै वर बाल ।
होहि कितौ उत निबिड तम, दुरत न बरत मशाल ।।२१।।

टीका—अहित हित—स्याम पट पहिनि स्याम निशा में क्या आवै वर सुंदर बाल, कितौ उत्तम निबिड है तौ आवै तन मशाल ऐसे प्रकाशमान तो न ऐहै पहिले आवन कह्या हित, क्यो ऐहै यह अहित ।।२१।।

दूता है, दूती तीन प्रकारका बताई है—उत्तम मध्यम और अधम । बान दूतिका भा तान प्रकार का कही हैं—हितभाषिणी, अहितभाषिणी और हिताहित भाषिणी । शेष ग्रन्थ में हा स्पष्ट है ।

जरत बाँचि आई = जलनेसे से बच गई (कामाग्निमें) ।।१७।।

मनभावता = प्रिया । जर = काम ज्वर ।।१८।।

(अहित)

पावत बदन हीन अरु, दावन घेरु विशाल ।
है नवरी अस्तीन की, चहत यकतही लाल ॥२२॥

टीका—पावत—पावत बदन हीन अरु दावन घेरे अस्तीन कहे बाँही एकतही मिरजाई यकहरी यह अर्थ ऑगा पक्षे, अब नायिका पक्षे पावत बदन कहे घात नाहीं पावत या दावन कहे फुरसति या जता घेरू विशाल कहे घेरे है सब घर के लोग, है नवरी०—कहे अस और को तिय बडी नहीं जैसी वह है, चहत एक तुही कहे चाहत है येक तुही को यह लाल ॥२२॥

त्या ही सकुल कवित्त मे, सब दूतिन की रीति ।
कहत यथामति बूझि करि, उदाहरन करि प्रीति ॥२३॥

टीका—तैसे ही सब कवित्तन श्लेषकरि वर्णन है ॥२३॥

(दूतीगणना)

मालिनि, बरइनि, ग्वालिनी, बारिनि, नाइनि मानि ।
पनिहारी, धोबइनि तिया, बढ़ै, लोहार बखानि ॥२४॥
रगरेजिनि, दरजिनि सहित, बेस बिसातिनि रीति ।
कबरिनि, कुरमिनि, गधिनी, सहित पसारिनि प्रीति ॥२५॥
बरतन बेचन हारिनी, चारु चितेरी ठान ।
तरकी बेचन हारिनी, चिरै मारिनी मान ॥२६॥
तेलिनि, अरु हलवाइनी, और बजाजिनि होइ ।
धुनैन अरु मल्लाहिनी, कलवारिनि कहि सोइ ॥२७॥
कमरो बेचन हारिनी, रतन पारखी बाम ।
सिकिल दारिनी, भरिनि कहि, और सोनारिनि काम ॥२८॥
पटहारिनि, चुरिहारिनी, डोमिनि तिरगर नारि ।
कहौ कुम्हारिनि छत्तिसौ, और अनेक बिचारि ॥२९॥

॥ इति ॥

टीका—यथा सख्या—मालिनि[१], तमोलिनि[२], ग्वालिनि[३], बारिनि[४], पनिहारिन[५], नाइनि[६], धोबइनि[७], बढइनि[८], लोहारिनि[९], रगरेजिनि[१०], दरजिनि[११], विसातिनि[१२], कविरिनि[१३], कुरमिनि[१४], गधिनि[१५], पसारिहि[१६], बरतनबेचनेहारी[१७], चितेरी[१८], तरकिहारी[१९], चिरैमारिनि[२०], तेलिनि,[२१], हलवाइनि[२२], बजाजिनि[२३], धुनिनि[२४], मलाहिनि[२५], कलवारिनि[२६], गडरिनि[२७], रतनपारषीवाम[२८], सिकिलदारिनि[२९], सोनारिनि[३०], भरिनि[३१], पटहारिनि[३२], चुरहेरी[३३], डोमिनि[३४], तिरगरिनि[३५], कुभरिनि[३६] ॥२४–२९॥ यही प्रकार छतीसो दूती वरणो है ।

अथ श्लेषमें छतीसों दूती—

(मालिनी दूती)

दडक—सेवती है आलिन की अवली जो आस पास,
बगरै, सुगध मद वृद सुखधाम है।
सुदर सिगार हार मजु मौलशिरी सोहै,
चारु चपकली कहि जात न ललाम है।
केतकि निवारी मान सुदरी विलोकि 'वृज',
कुन्न वरन जाहि जपा करै नाम है।
आजु यहि बेला माहि श्यामा को मिलाइ देहौं,
माल है अनेक भाँति भावै सोई श्याम है ॥३०॥

टीका—फूल पक्षे सेवती—सेवतीको आलीकहे भोर घेरे है और सिगार हार फूल और मौलशिरी और चपकली कहै चपा और केतकी नेवारी कुदन जपाकर जूही कनइल आदि यहि बेला के फूल मे श्यामलक फूल को मिलाइ कै माला बनाइ लैहौं, हे श्याम जो तुमको भावै इति। नायिका पक्षे सेवती पद० सेवती कहै सेवा करती है आली कहैं सखीजन और सुगध जो अगरागन की फैलत है धाम में सु दर सिंगार, सिगार करिकै हार आदि भूषन, मजु मौल-शिरी कहै सुन्दर मौल कहै माथ शिरी कहै शोभा जेकरे भाल में है, चारु चपकली चारु कहै रमनीय चपकली कहै चपा कैसे रग, जा तन कहै जेकरे तन में छाइ रहै हे केतक नेवारी नेतक कहै कितनी सु दरी आपने रूपको मान निवारी करै है,

न्यून मानती है वह कुदन जो सोनाको वरन कहै रग अवलोकि कै हे कृस्न जेकर नाम तुम जपा करत कहै रटा करते हौ ताहि को आज वाहि बेला कहै यहि घरी में श्यामा कहै राधिका को मिलाइ देहौ। माल है अनेक भा कहै शोभा जाकी अनेक प्रकार की जो तुमै भावती है ॥३०॥

(बरइनि दूती)

सवैया—चारिहुँ ओर निहारि सँभारि उपायन सो कतरो है रसालहि।
लाइहौ मै बरजोरिकै पावन तोहित प्रेम लगाइ निशालहि ॥
पुज प्रकाश करै सुख जो कहि जात न जैसे है लेसे मशालहि।
धै अधराधर सारस पानहि लाल करो मन भावत ता लहि ॥३१॥

टीका—पान पच्छे—चारिहु ओर कहै धोइ करि कतरो कहै तरासे है, लाईहौं बरजोरी कहै सुदराई से जोरि कहै लगाइ लाइ हों, पुज प्रकाश कहै

बहुत शोभा मुख में करिहे जैसे लेसे मशालहि कहे जस मसाला खैरसुपारी आदि लेसे कहै लगे है। वे अधराधर कहे ओठ धै सारस ताकर रसपान कहे बीरा खाइ कर लाल कीजै ॥

टीका—नायिका पक्षे—चारिहु वोर पद —चारिहु वोर कहै सब वोर देखि कै कतरो कहै कितनो जतन करिहै रसाल कहै रस के धाम। लाइ हौ पद— लाइहो बरजोरी कहे बरजम पावन कहै पैदर तो हित कहै तिहारे हेत प्रीति का प्रेम बडा लगाइ लाई हों पुञ्ज प्रकास पद० पुञ्ज कहे अनत प्रकाश है जाके मुख मे कहि जात न० कहै जे करे तन मे ऐसी दुति जैसे मशाल की ज्योति लेसे कहै वारे है, धै अधराधर कहे ओठन पर ओठ धरि सारस कहै अधर को रस पान करो है लाल जो तुम को भावत है ता लहि तोने को लीजै ॥३१॥

(अहिरिनि दूती)

सवैया—मेल सो पावन कै पहिले फिरि तामे धरै पय कौन बखानी।
सीरे करे हरे बातन सो परे लाल कराही मै देखि सयानी॥
जामन दै तेहि वाम कहै अब मान तजो मन माखन आनी।
देहौ दही अजो मैनविकार बिचारि कहो बृजराधिका रानी॥३२॥

टीका—दही पक्षे मेल सो—मेलसो कहै मेलसा जामें दूध दुहावै है ताको पहिले पवित्र करि के पय जो दूध धरे, मद सीरे करै पद० सीरे कहै धीरे धीरे बात कहै वयारि करि के जब कराही मे लाल परे जागन दै० जामन दै जमाये है माखन जो मन चाहत ओर दही मै निकारन देउँगी इति॥

नायक पक्षे मेल सो पावन —मेल सो कहै प्रथम मिलाप जो किये सो पावन कहै पवित्र फिरि तामें धरे पय कौन फिरि का पनो तामे कहे तिनमैं पय कहै दाष कौन लगाए सो कहै, जामन दै पद०—जामन कहै जेका मन दिए तेहि वाम कहै टेर कहती है। अब मानत जो अर्थ मा ते मान छोटो माखन आनी माखन लावो।

देहौं दही पद०—देहते सरीर दही कहै जारे है अजो मैन विकार अजौ कहै अबही मैन कहै काम विकार कहै कलोल चाह आदि हे राधिका रानी इति॥३२॥

(बारिनि दूती)

सवैया—काज करो निज बारी भलो यह तौ हित हेत किये श्रम जे हैं।
कोरि उपायन सो खरिका कँह लाई है बैठि किए छबि गेहैं॥

दोनों विलोचन दै इत देखत मजुल चोप तियामे लसे है।
बूझिहौ वै पनवारो विलोकत रीझिहौ जो लहि पातरी देहै ॥३३

टीका—बारी पक्षे—काज करो काज कहै यह बारी हमारो बनायो तिहारे हेत श्रम करि कै ॥ कोरि उपायन०—कारि कहै तरासिक खरिका जासो दॉत खोदते हैं और बैठकी औ दोना चोपती चारि पत्ते के औ पनवार देखि मानिहौ और पतरी देहै तौ रीझिहौ इति ॥

नायिका पक्षे—काज करो निज पद०—काज कहै आपन हेत वारी कहै समै भली है करो तिहारे हित के बदे बडो श्रम किए है, कारि उपायन सो०—कोटि जतन से खरिका कहै जो गऊ गॉव के बेठाते हैं तहाँ लै आइ, बेठि लिए छवि गेहै कहै बैठि अहै छवि गेह में प्रकासित किये है, दोनों विलोचनन पद—दोनों नेत्र देखि रही है, मजुल चोप पद०—चोपतिया मेल से चाप कहै चाह तिया कहै स्त्री म लसे है, बूझिहौ०—वैपनवारो कहै चापि होवै कहै अवस्था जुवा वारिहो लहि पातरी देहै अर्थ पातरि है। देखि मन वारिहो कहै वस हाइहो इति ॥३३॥

(नाइनि दूती)

सवैया—जावक हेरी वहै मन भावन स्वच्छ सिंगार रसै बरसै।
लाईहौ लाख उपायन सो मन मानत जो रुचिकी सरसै ॥
नेकु मलीन न होय कबौं कहुँ पानि ते पायन को परसै।
लाल है मजु महाउर हाल लगाइले बाल न तो तरसै ॥३४॥

टीका—जावक हेरि पद० जावक है महावर को हेरि वही है जो तेरे मन मैं भावत है रसै बरसै कहै रस को प्रगटत है क्यो की सोरह सिंगार मे जावक प्रथम बरने है। लाइहो लाख पद—लाख कहै लाह जो रग बनत है सो उपाय सो लाई हौ, जो मन हमारे मानत कहै चाहत है, नेकु मलीन पद०—नेकु कहै रचहु मलीन न हैहै कहतौ पॉय पानि ते पखारि कै लगावै, औ लाल कहै अरुन है हे बाल लगाइले नहीं तौ तरसैगी ऐसो न मिलि है, नायक पक्षे—नाइनि दूती मान छुटावन गई। जावक हेरि पद०—जावक हेरि जाव कहे जाउ जहाँ हरि है कहेरी कहैरी सखी कहे हमसो वहै मन भावन कहै वोई मन भावन जो तुमारे मन भावत कहै जिसको पियार करती रही। स्वच्छ सिंगार पद०—स्वच्छ अच्छा सिंगार रस को बरसन हारे कहै पूर करन हारे हौ। लाख उपाय पद०—लाख कहै अनेक जतन करि लाइ हो, मनमान तजो० कहै मनके मान को त्यागो, नेकु मलीन पद०—कहै रचहु

मलिनाई कबहुँ न होइहै कहौ तौ हाथ ने तेरे पायन कों परसै कहै तेरे पाइ परैँ पानि धरैं याते प्रनत उपाय, लाल है मजु--लाल जो श्री कृस्न बहुत शोभमान है, हाल ही गरेमें लगाइ ले नहीं तो फेरि पछिताइगी जो रुठि जाइहै ॥३४॥

(पनिहारी दूती)

सवैया-वह ह्वै गई बावली जोबन मजु मलीन महा केहि भाँति बखानी।
कहि जात न पानिप छीन भए चलि पास बसै तेहि पूछि पिछानी ॥
यहि औसर काज बिचारि किये बनि है मन मान तजो हित जानो।
'बृज' मैन बिकार सो देहै घटो भरि बारि बिलोकत नेन सयानी ॥३५॥

टीका—बावली पक्षे—वह ह्वै गई—वह बावली कहै कुआ जो नन के जल मजु कहै सु दर हुते सो मलीन कहै काई लगि गई। कहि जात न—कहो नहीं जात पानिप कहै सो प्रकासता छीन भई, यहि समे काम सँभारि कै करो। बृज मैन विकार० मैनही विकार घट कहै गगरी भरि देउगी ॥

नायिका पक्षे—वह पद—वह नायिका जासो प्रीति रही सो तुमारे बिना बावली कहै बौरही ह्वै गई, जोबन कहै तरुनाई मलीन है। कहि जातन० कहै जाके तन के पानिप जो सोभा छीन भई यहि औसर कहै यहि घरी मन मान तजो कहै मनके मान त्यागो हित जानि कै, बृज मैन विकार पद० बृज कवि की उक्ति मैन विकारसे देह घटो कहै कृशताई आई, भरि वारि कहै जल भरे नेत्रसे मग हेरि रही है ॥३५॥

(धोबइनि दूती)

सवैया—यह काज करै कहु के सहजे अतुराइ किये न कछू बनि आवै।
तरवा कर धूरि चढै शिर पै शिरस्वेद कनी तरवा तरै जावै ॥
दुति सारी ये स्याम मलीन भई केहिते केहि नेह लगे हैं छोडावै।
'बृज' बाल उपाय को हाल करै जेहिते वह लाल लली कलपावै ॥३६॥

टीका—धोबी पक्षे दुति सारी पद—कहै दुपट्टा श्यामरगके मलीन है, कै हितपद कौन नेह कहै तेल लगा है ताहि छोडावै, बृजबाल पद—ए बृजबाल, उपाय करि जेहि ते वह लालपट कलपावैगी ताहि हम करैंगी, नायिका पक्षे-यह काज पद यह काज कहै यह बात सहजो को करै, तरवा पद शिर के पसीना तरवा तर जाइ है और यह एक लोकोक्ति है अर्थात् यह की बहुबार जा इते उते जायगी तब ह्वैहै, दुति सारी पद—दुति कहै जोति सारी कहै सब स्याम कहै कृस्न की

मलीन कहै मद है, केहि पद—केहिते कहै कौनै कारन यह गति भई, नेह कहै प्रीति लगी तू छोडावती है, बृजबाल पद है बृजबाल उपाय कहै जतन ऐसो करै जेहि ते लाल कहै नायक कल पावै कहै सुख लहै ॥३६॥

(बढ़इनि दूती)

स०—जाहि की चाह लला सत सालहि सोधि बनाइ लै आइहौं ताको ।
पावन रग सुरग महावर पाटी परी छबि है सिर वाको ॥
ता परबीनी बरो गुन सुदर मजुल सो कहिहै सुषमा को ।
या पलका मे विहार करो 'बृज' लाई तिहारे कि सो सुखदा को ॥३७॥

टीका—पलका पक्षे—जाहि की चाह है लला जाको चाह हता सो सत साल कहै लकरी सोधि कहै सालिकर लै आईहो ताको कहै ताहि को, पावन रग पद-पावन कहे मचवन मै रग लाल बर कहै श्रेष्ठ पाटी और सिरई लगी है, तापर बीनि पद-तापर कहै तेहि पर बीनो है बरो गुन कहै भॉजी रसरी मजुल सोकाहि कहै शोक शोभा मान है, या पलका पद-या कहैं यह पलका कहै पलगा पर विहार करो ॥ नायिका—जाहिकी चाह ललासत-जाहि कहै जेहि की चाह कहै अभि लाप ते सत साल कहै सब साल है कसक रहा सो लै आई हौ ताको कहै देखो । पावन रग सुरग पद—पावन कहै पगन मे रग महावर पाटी परा कहै केस पास गुहे है छबि सिर कहै माथ में वाके है । तापर बीनी पद—ता कहै तौनि परबीनी कहै नागरी बरो कहै बडो गुन कहै निपुनता जामे भरे है या पलका मै विहार करो या पल कहै यहि घरी कामे कहै मनोज निहार कहै रति प्रसग करो ॥३७॥

(लोहारिन दूती)

सवैया—मजु लसै दुति पावन पानि भलो कटि हे सिर वार नकारे ।
सोन ही रग बखानिबे जोग है तेज बडी मुहँ की रुचिधारे ॥
है यहि बानक बेस बनी 'बृज' सान किए छबि बाढि निहारे ।
स्वच्छ सनेह सनी असि सुदरि कालिह लै आइहौ तीर तिहारे ॥३८॥

टीका—तरवारि पक्षे—मजु लसै०—मजु कहै बडी स्वच्छ दुति कहै चमक पावन कहै विमल पानि कहै पानी भलो है कटिहै कहै दो खड करैगी, सिरवारन कहै माथ हाथी के। सो नहीं पद—सो कहै वह रग बखानिबे जोग नहीं है । तेज बडे मुह० मुह की बडी तेज है, रुचि धारे धार चोखी है,यहि बानक कहै यहि भाँति से बनी है, सान कहै खरसान पर चढाइ कै बाढि कढी है, स्वच्छ

सनेह—स्वच्छ कहै अच्छा सनेह कहै तेल मे सनी लगाई है असि—सु दरि असि कहै तरवारि सु दरि तीर कहै पास दूसर अर्थ तीर कहै बान काल्हि लै आइहो इति ॥

नायक पक्षे—मजु लसे पद—मजु कहै कोमल दुति कहै रग पावन कहै पग, पानि कहै हाथ, कटिहै कहै करिहाँउ सिरवारन कहै केस, कारे कहै स्याम हैं। सोन्ही रग बखानिबे०—सो न कहै सो नाही कहै निश्चै करि देह के रग बखानिबे जोग्य है, तेज कहै प्रकाश मुह कहै मुख के बडी है, बानक कहे यहि भाँति से बनी है, तासो सान कहै गुमान किए है, अपनी छवि बहुत देखि के स्वच्छ सनेह सनी असि० स्वच्छ कहै सु दर सनेह कहै प्रीति सनी कहै पूरित असि कहै यहि भाँति सुन्दरि कहै नायिका तीर कहै पास तिहारे लै आवोगी इति ॥३८॥

(रँगरेजिनि दूती)

तब तो कहे लाल पै चित्त चुभे अब तो क्यौ कहै जनि वै जनि लावै।
फिरि आनि अरोपहि रोसो सनी असमानी निके कहि मोहि बतावै ॥
'बृज' आनै पिया जी सो नेह लगे यह बात किए न कछू बनि आवै।
मैं न रँगो पियरो रँग साँवरे ऐसो न बाम कलाम सुनावै ॥३९॥

टीका—रग पक्षे—तब तो पद०ताहि छिन कहो लाल रग पे चित्त चुभे हैं, अब क्यो कहती है बैजनी लावो फिरि आनि कै अडी कहै देती है कि मै सोसनी पहिरागी और असमानी और पियाजी। मैनपद—मै न रगो मैं अब न रगो, पियरो अवर साँवरो रग का ऐसी बातैं बाम कहै न सुनावै इति।

नायिका पक्षे—तब तो पद०—तब कहती रही की लाल जो कृस्न जी है तापै चित्त चुभे है, अब तो पद—अब क्यो कहती है जनी वै जनि लावै कहै है जनी है सखि वैजनि उनको जनि लावे, फिरि आनि पद—फिरि कै घूमि कै आनि कहै आ करि अरोप किये हिये में रोस कहै रिस सनी, असमानिनि पद—अस कहै ऐसी मानिनि को है बृज आनै पद—बली कहै बलाइ लेउ अनै पिया जी से औरे पति से नेह तासो इतनो मान, मैन रगो पद मैन कहै काम रँगो है श्याम को पियर रग ऐसो कलाम कहै बात बाम कहै टेढ न कहै इति ॥३९॥

(दरजिनि दूती)

दण्डक—गज सो नपैहै बड़े चाल हैं तरह दार,
नीके तनजेब जामै छबि छावै बूद है।

अरज मै कीन्हे 'बृज' ब्योंत सो अनेक भाँति,
मिलिबे को मगजी सो कतरो कै बद है।
कमर पतील सोहै केतक कली बगल,
मजु असतीन और देखे सुख कद है।
आगा अरु पीछे हेरि परदा से लाइ घेरि,
बाला बर बेस जौन आपको पसद है ॥४०॥

टीका—जामा पक्षे—गज सो नापेहे नड़े गजन से नापे हे, करडा तनजेन है जामा नगायो है। अरज पद—अरज कहै चौडाई मे अनेक ब्योत लेने को मगजी की हे कतरो कितनो नद लगाये है, कमर पतील पद—कमर पट्टी लगी है, केतक कहै कितनी कली और बगल और अस्तीन कहै बाँही देखो आगा अरु पीछा परदा घेर के सिलाई और बाला बर सु दर वेश जौन आपको पसन्द है ॥

नायिका पक्षे—गजसो नपै है —गज कहै हाथी सो कहै बड़े मतग है चाल तरहदार यह नायिका कीन पेहै, नीके तन जेन नीके कहै आछे तन जेन कहै तन मैं शोभा छाइ रही वृद है। अरज मैं की हे—अरज कहै विनती बृज ब्यौत बृज कहै कवि की उक्ति ब्यौत कहै उपाय अनेक कहै बहुत, मिलबे को मग०—मिलबे को कहै यकठा होनो को मग कहै राह मे जी सो कहै जीव लगाइकै, कतरो बद० कतरो कहै कितना नद कहै घात कीह है, कमर पती० कमर कहै कटि सूक्ष्म केतक कली कहै केतकी के फूल के कली कैसे बगल है, मजु अस्तीन पद० मजु कहै सु दर अस्तीन कहै अस्तीन और कहै दूसरी देखे है, हे सुख कद आगा पीछा पद—आगे और पीछे देखि कै परदा से घेर लाई हो, बालावर—बाला कहै नायिका वर कहै श्रेष्ठ जो सु दरी है जो आपको पस द हे ॥४०॥

(बिसातिनि दूती)

स०—'बृज' मजुल काम किनारी चितौ चित चारु चुभै रमनी सुरमोहै।
अलि काह बखान करो अब रेसम को है नेवार बड़े अरजो है ॥
सुखमा सुख देखि परै मुकरे तिलरी हम जानी है लालरि सोहै।
नग है अस रोसनी कीमतिदार अजो मन मानत जो कहि सोहै ॥४१॥

टीका—बिसातिनि पक्षे—काम किनारी—काम है किनारी मे, सुरमे है, रेसम के नेवार है, मुकुर कहै ऐना और तिलरी हम जानी है लालरी है नग है जो तुमार मन चाहै सो लेइ इति ॥

नायक पक्षे—बृज मजुल पद—बृज कवि की उक्ति—मजुल कहै सुन्दर काम कहै मनोज की नारी रती चिते चित्त और रमनी सु दर मोहै कहै रमनी

स्त्री सुर कहे देवता को मोहती है। सुखमा पद०—सुखमा कहे शोभा मुकरे कहे मलीन है। तिलरी कहे तिय लरी कहे झगरी है तू लाल रिसाहे कहे लाल जो नायक सो रिसो कहे रिसिहा है। नग है पद—न गहे कहे नहि पकरे रोसनी कीमति दार रोस कहे रिसि नीकी कहे अच्छी मति, हे दार। अजो पद०—अन मान को तजि दे इति ॥४१॥

(कबीरनि दूती)

स०—तूति अमार पियारि कै सेव रसालहि आमिलि ले रस भारी।
गाजरि मूरि बोये सुख पालक सेमि लै सुदरि है यहि बारी॥
लीजिये मेरसो कै चित चाह करेलहि केलि घरी सुखकारी।
काकरि फूटि है बैर बडो अब लासुन आन पियाजू कियारी॥४२॥

टीका—कबीरनि पक्षे—तूति—तूति है अमार सेव रसाल कहे आम है अमली गाजरि मूरी पालक सेमि है यहि बारी में मेरसा करेला केरा घुरी काकरि बैरि लासन पियाज लीजे॥

टीका—नायिका पक्षे—तूति अमार पद—त तिअ गार कहे काम, प्यार करि सेवै, रसालहि कहे जे रस के घर है आ मिली रस भारी आइकै मिलु रस ले, गाजरि मूरिवो-कहे गाइ जरि मूरिवो कहे ऐसो रूठिवो सुख पालक है सुखके देन हार है। मिले तो सो मिलै यहि बारी कहे यहि साइति, लीजिये पद० मेरसा कहे मिलाप चित चाह से करि ले या घरी ही सुखकारी कहे सुखकी देन हारी, का करि पद०—का करि कहे काह करिहै फूटि कहे भिन्न ह्वैकै बैर कहे दुरभाव, अबला सुन० हे अबला नायका सुन आने कहे और पति से यारी कहे प्रीति है॥४२॥

(कुरमिनि दूती)

दडक—लहै शुभ धान कैसे जोधरी निरस भाव,
सोचन बिछोह कर अकसै विकार है।
'गोकुल' केराव आछे सरसवै नेह भरे,
तासो अरसी ले बोलै तिलो तो विचार है।
लावहि को दोसरी बतावै ताहि जो खरीतै,
मासुरी समान प्रिय गेहू मे अपार है।
बड़े रिझवार खडे बरदे है वारि ग्वालि,
आरहरि आजु मिले मान तजै प्यार है॥४३॥

टीका—अन्न पक्षे—लहै पद—लहै कहै लेई सुभ कहै सुन्दर धान जोधरी भाव निरस है सो चना बिछो है कर यह बिछे है अकसै कहै अकसा निकारि डारे गोकुल केराव० कवि की उक्ति केराव सरसौ अरसी लीजे तिल जो बिचार होइ लावहि कोदौ खरी बतावै और जब मसुरी गोहू जो प्रिय होइ। बड़े रिझवार पद–बड़े कहै बहुत रीझत है खडा उरद और अरहरि जो मन तुमार चाहत हो सो लेइ इति ॥

नायक पक्षे—लहै सुभ पद०लहै सुभ धान कहै सुभ स्वच्छ निहचिंतइ जो निरसोच कैसे हो है जो यह निरस बिना रस के भाव धारन किए है। सोचन बिछोह कर—सोच कहै चिंता बिछोह कहै वियोगकर नहीं है यह अकसै कहै बयर बिकार है। गोकुल केराव पद०—गोकुल कहै नगर विशेष तेकर राव कहै राजा कृस्न है तासो अरसी ले कहै तिन सो निरस बोलै है तिलौ तो कहै तनिको विचार तेरे नहीं है। लावहि या–लावहि कहै को लगावत है दोष ताहि बतावै जो खरी कहै सच्ची। होइ तू मासुरी समान पद–मा कहै लछिमी सुरी कहै देवतन की इस्त्री के समान जिहिके गेह प्रिय अपार कहै सो हजार नायिका है। यह मध्यम दूती की उक्ति है बड़े रिझवार बड कहै बहुत रिझवार कहै रीझनेहारे खड़े कहै ठाढे तेरे आस उर कहै मन अपना वारि देहैं आर हरि कहै मित्र कृस्न मान तबो मान कहै गर्व मन ते त्यागो प्यार कहै प्रीतम ते इति ॥४३॥

(गंधिनी दूती)

सवैया—रीझि हौ छ्वै कर सीसी भरै मुँह लोचो वै देखत रग विमोहैं।
के सकै श्याम बखानि प्रभा अतरो रुचिरो कहि जात न जो हैं॥
दै हैं जो चपक तेल है मजुल जाके सुगध मनोहर मोहैं।
सीरे सिताब कै ताप बडो 'बृज' पावन पानि गुलाब तौ सोहैं॥

टीका—गधिनी पक्षे—रीझिहौ पद—रीझिहौ कहै खुश होगे सीसी भरे है मुहु लोचो वा केस कै स्याम हे स्याम अतर कै साभा को बखानि सकै देहै चपक देहगी चपक कहै चपा के तेल और सीरे सिताब कहै शीघ्रही ताप को हरै है ऐसे गुलाब के पानी ॥

नायक पक्षे—रीझिहो पद०—रीझिहौ कहै मोहि जैहौ कर कहै हाथ से छुए पर जब वह सीकार मुँह से भरैगी। केस कै केस कहै बार के शोभा अतरो अतना रुचिर है कहि जा तन जो है देहै जो० देहै कहै तन चपक है चप के रग सुग ध मनोहर है। सीरे पद०—सीरे कहै सीतल सिताब कहै सिघ्र ही करत है पावन कहै पाव पानी कहै कर गुलाब के फूल से है ॥४४॥

(पसारिन्हि दूती)

स०–कस्तूरी अहै करियारी मुरी कछु सोचर लोन लहै मन भावै।
धनिया 'बृज' तूतिया केसरि है बलि पीपर सेंदुर भाव सुनावै॥
तज नागरि जो अँवरो सह तो रजनी है भली सजनी हरे लावै।
चित चाह जो है करपूर अजो बनि आवै कहे सबके न बतावै॥४५॥

टीका—पसारी पक्षे—कस्तूरी०—कस्तूरी है करियारी सोचरलोन है मन भावै कहै जो चाहती होइ। धनिया पद०—धनिया तूतिया पीपर सेंदुर के भाव सुनावै है। तज पद०—तज पाता है नागरि कहै सोंठिहै अवरा सहत रजनी कहै हरदी हरा कहौ लै आवै। चित चाह पद —चीत है चाह है करपूरक है कपूर है बनिया के सब यह केन कहावत है मसाला आदिक इति॥

नायक पक्षे—कस्तूरी०—कस्तूरी कहै तू री सखी कैसी है करियारी मुरी यारी कहै प्रीति मुरी कहै मुख मोरी रही है कछु सोच कछु कहै थोरहू सोच कहै चिंता नहीं है लहै मन भावै कहै जासो मन भावत है। धनिया०–धनि कहै धन्य है या कहै यहि बृज मैं केसरी है कहै तेरे सम को है बलि पीपर बलि कहै तेरी बलैआ लेऊँ पीपर कहै पराये पी सो दुरभाव कहै दुष्ट भाव सुनाती है। तज नागरि०—तज कहै त्यागु ये नागरि जो आव रोसहतो कहै जौन न रोस कहै रिसि हतो कहै हुतो रजनी है राति भली है तेरे पास लै आवै चित चाह जो है०—जो चाह कहै अभिलाष होइ पूर कर अजो कहै अबही सबते न सुनाव कहै कोई यह बात न जानै॥४५॥

(बरतन बेचन हारिनी दूती)

दंडक—माल है अनेक भाँति अमल अनूप सो है,
फूलन के बासन बरनि बृज जाइ है।
जो है मुह कर भलो सुभ गगरै की छवि,
लोटहि बिलोकि 'बृज' आप ही बिकाइ है॥
तामन की तौली रुचि कलित कराही रही,
पीतरि बरन रग है मै देखाइ है।
लहति महा निहारि मानत जो मानवारि,
मिलिहै परात गोडेदार की लै आइहै॥४६॥

टीका—बरतन पक्षे—माल०—माल कहै धातु अनेक भाँति के है तामे फूलन के बासन नहीं बरनिबे जोग है—सोहै मुह कर —मुह कर मुह गगरे कहै गगरा के सोहत है। लोटा कहै जल पात्र देखि आप ही बिकाइ कहै

रीझिहौ तामन की तामन कहै तामो की तौला है रुचि कहै जा चहै औ कराही पीतरि की देहा देखाइ में लहि तमहा लहि कै कहै लखि के तमहा हारि बो मन मानि हे तौ वारि देहो मन मिलि है। परात गोडोदार को ले आई हो इति ॥ नायिका पक्षे—माल है अनेक०—मा कहै शोभा अनेक है लहै कहै लखै। फूलन के वासन पद —फूल कहै प्रसूनन के वास कहै सुगंध नहीं बरनि जाइ है ऐसे अगन मे है जो है मुह कर भलो जोहै कहै देखै मुह कहै मुख कर कहै कला भलो है सुभग गरे की छवि सुभग कहै सुन्दर गरे कहै ग्रीवा की छवि छोटहि कहै त्रिबली को देखि बिकाइ कहै मोहि जाइ। तामन पद—ता मन कहै तेहि मन की तौली कहै परखी है रुचि कहै चाह कलित कराहि कलित कहै कै रही है आहि पीतरि बरन न दे है पीतरि कहै पियर बरन कहै रंग देहै कहै तन मे देखाति है। लहि तमहानि हारि लहि कहै पाइ तम कहै अँधेर हानि कहै मिटि जाइबो देखि मान तजो कहै मान त्यागो मन वारि मिलिहै। परात गोड़ेदार—प्रात कै प्रात काल गोड़े कहै पेहरे दार कहै स्त्री को लै आइ हा इति ॥४६॥

(चितेरिनि दूती)

सवैया-परभा न लहै घनकुतल नील कला अछराज मुखी छवि छाजै।
'बृज' सोहै सुकठ भुजा बर अगद जे हरि पायक मजु बिराजै।
युत लक्षन भावय देही लसै रुचि रंगभरी दुति सुन्दरि साजै।
विरचे बिधि सो अपने करसो दरसो चलिचित्र के मंदिर राजै॥४७॥

टीका—चित्र पक्षे—परभा न लहै०-प्रभा कहै शोभा न लहै कुतल नील अछराज कहै जामवत बृज सोह सुकठ सुग्रीव अगद जे हरि पायक कहै हनोमान युत लछन कहै सहित लछिमन बयदेही कहै जानकी की दुति सुन्दरि विरचे रचे है चित्र के मदिर देखो चलि इति ॥

नायिका पक्षे—परभान लहै०—प्रभा कहै आभा घन कहै मेघ कुतल कहै बार के नही लहते है कहै पातरे हैं कला रिछराज कला कहै परकास। रिछ राजमुखी कहै चद्रमुखी नायिका की छवि छाइ रही है बृज सोहै बृज कवि की उक्ति सुकठ कहै सुदर ग्रीव भुजा कहै बाहु अगद कहै बिजायठ जे हरि कहै पैजनी पायक कहै पाय के राजत है जुत लछन जुत कै सहित लछन कहै सुभ मा कहै शोभा वैदेही वहि देह मे राजत है विरचे बिधि सो विरचे कहै रचे है विधि कहै ब्रह्मा मानो आप इति ॥४७॥

(तरकिहारिनि दूती)

सवैया—पावन पुज पभा दरसै सरसै कहि जात न दीपति वारै।
भारी धरे नग सोहै सुनी कर वै 'बृज' राजै लखे मनहारै॥
आजु लै आई बनाइ भले विधि जो रग रॉवरे तोहि पियारै।
कानन मे बिलसे छवि मजुल तारन के तरकी जो बिहारै॥४८॥

टीका—तरको पक्षे—पावन पुज—पावन कहै विमल प्रभा है दीपति जारे कहै चमकजारे भारी धरे भारी कहै दामवारे रवै कहै ग्ना जो तरकी मै होते है। आजु लै—तिहारे हेत ला" विधि सो रग दिये हैं सॉवर कहै श्याम जी तुम्हें पियारो है। नायिका पक्षे—पावन पुज—पावन कहै पवित्र पुज कहै बहुत जातन कहै जे करे दीपति के जाति दरसै है भारी धरे नग भारा कहै गभीर नग कहे परबत गोवर्धन सोहै सुनीकर कहै सुनाकर पर राधे वै बृज राजै कहै वाई बृज के राजा है आजु ले आजु कहै अबही लाई हो सॉवर रग श्यामल रग जो तुम्है पियार है कानन मे बिलसे कानन कहै बनमै छवि विलसत है। तारा को तरकी पद—कहै तालके बृक्ष तर कहे नीचे विहारै कहै भोग की जा कहै करो॥४८॥

(चिरैमारिनि दूती)

सवैया—मजुल कोक कलापी मे है पर काक है कोइल है रगवारी।
हारिल लावै अजो सुन कानन तूती बड़ी मुख बोलनिहारी॥
जो मन माह कुही है कहै करवानक सारो भले मिलै प्यारी।
तोते करार बटेर कहौ 'बृज'लाल ल आइहौ जाल पसारी॥४९॥

टीका—पच्छी पक्षे—मजुल कोक० मजुल कोक कहै चकई चकवा कलापी कहै मजोर काक कहै कागा कोइल कहे कोकिला हारिल तूती बडी बोलनहारी कहै बहुत बोलती है, बाज करवान सारो कहै मैना तोते कहै सुआ करार बटेर लाल को जाल पसारिके लावोगी।

नायिका पक्षे—मजुल पद० कहै सुदर कोक कलापी मे है कहै कोक की रीति जाने है परका कहै पर कहै दूसर को काह कहै की कोइल है रग वारी कोइ वह रग कहै भाव को न पाइ है। हारि लला० कहै हारिकै वै लला तरे बोल सुनिकै तूती बडी तूती कहै तै ती बडी मुखकी बोलनहारी है जो मनमाह कही जो मन में कही कहै सोच होइ करवानक कहै सब कजकर मिले तोते करार कहै तोसो अवधि करती हो बृजलाल कहै बृज के लाला को जाल कहै छलबल करिकै लावोगी इति॥४९॥

(तेलिनि दूती)

मानत जो चित तेल है सुदरि आजु तयार मिलै मनभाई।
बोलै कहा अरसी ले अजो तिय तेरे बिचार तिलो ठहराई॥
जो अब लाही करू कहि बातहि प्यार किये मनही सो मिठाई।
और सुनै सरसौ कै सनेहहि तो हित सो अब दहैं पिराई॥५०॥

टीका—तेलपक्षे—मानत पद—मानत कहै जो चित चाहत होइ सो तेल सब मिलि है, बोले कहा० कहे अरसीले कहै अरसी के और तिलकै जो अब लाहीक है जो लाही कै करू चाहती होइ या मिठा चाहता होय या सरसो के चाहती सो पिराइ देऊँगी इति। नायिको पक्षे—मान तजो० कहै मानको त्यागा, चित ते लहै सुन्दरि मिलै ऐ सुन्दार आजु तै यार कहे मित्रको जो मनभावत होइ। बोलै कहा पद कहै काह अरसाले कहै अनरस बोलती है, तिय तेरे है तिय तेरे तिलो बिचार कहै तनको विचार नहीं है जो अबलाही करू० कहै जो अबला कहे नायका करू कहै और सुनै० और कहै फेरि सुनै सरसो कहै अधिक सनेह से देह म परी है॥५०॥

(हलवाइनि दूती)

दडक—प्रीति करि लहै अनरसै अलबेली बाल,
चाह बरफी की नीकी रसमे रसाल को।
लई मुरबा तै कहा वेगि दे बतासो वही,
कौन मिसिरी लै मनमानै जो विसाल सो।
'गोकुल' बखानै बलि माखनहि आनै प्रिय,
सबै सुख सेवन मै पाई है निहाल हो।
मोद करि मिलै बरसोलहि अनन्द कन्द,
मजुल मिठाई खोवै खई 'बृज' बाल तो॥५१॥

टीका—मिठाई पक्षे—प्रीतिकरि लहै प्रीति कहे नेह करि अनरसै कहै अनरसा औ चाह बरफी कहै अभिलाष से बरफी लेई मुरबाते कहै लीजै मुरब्बा को वेगि बतासो कहै शीघ्र ही बतासो की लीजै मिसरी लै माखनहि कहै लो माखन और सेव में रावरी रुचि है, मोदक पद—मोदक कहै लड्डू बरसोलहि कहैं बरसोला आनदकद कहैं सुख देन हारे है कद औ खोवा आदि इति।

नायिका पक्षे—प्रीतिकरि पद—प्रीति कहै सनेह करि अनरसै कहै निरस बोलती है। हे अलबेली बाल चाह बर फीकी कहै अभिलाष बर कहे श्रेष्ठ फीकी

कहै अनचाह रसमें है जैहै, लइ मुर० लई मुर बात कहा कहै दीन्हें कहा कहै कौन रूसिवे की बातै कहै, बात को बेगि सो बतावो कौन मिसि री कहे री सखी कौने बहाने से मान ठानै है। बलि मास नहि आवै—बलि है मैं तेरी बलि जाउँ कहै बलाइ लेे मास नहि कहै मास न है अमरस न मन आनै सबै सुख सेवन सब कहै सारे सुख सेवन कहै सेवकाई सो मिलत है, मोद करि कहै आनन्द करि मिलै, बर सो लहि बर कहै पति सो आनद के कद है मजुल कहै स्वच्छ मिठाइ कहे चाह, खावै खई कहै विनासै खई कहै कलह हे बृज बाल ॥५१॥

(बजाजिनि दूती)

दण्डक-सोहै गुल बदन अमल के सकै बखानि,
चीकन हैं चारु मखतूल जो बिसाल बर।
सुभग अधर सोहै मारकीन ऐसो प्रिय,
नीकी लगै सारी दुति सुन्दर प्रकास धर।
मजु उर माल पुज प्रभा राजै तनजेब,
देखत नयन सुख सुषमा उजास कर।
जौन है गरज लाल तूल कै अरज बड़ो,
लाई हौ उपाइ करि मिलिहै दुकान पर ॥५२॥

टीका—कपड़ा पक्षे—गुलबदन चीकन मखतूल और अधर मारकीन सारी उरमाल तनजेब नयनसुख लालतूल इति ॥

नायक पक्षे—सोहै गुलबदन० सोहै कहै शोभामान है गुलबदन कहै फूल कैसे मुख केस कै बखानि कहै केश जो बार ताको बखान चीकन मखतूल कहे रेसम कैसे है, सुभग अधर सुन्दर अधर कहै ओठ है, मार की न ऐसो प्रिय कहै मार जो काम ताकी प्रिय कहै रति सो नहीं है, नीकी लगे सारी दुति० कहै आछी लगति है सारी कहै सबै दुति ऐसी सुन्दरि प्रकाश किये घर में, मजु उरमाल पद० मजु सुन्दर उरमें माला है पुञ्ज प्रभा तनजेब पुञ्ज कहै बहुत प्रभा कहै आभा तन कहै देह जेब कहै सुघराई है देखत नयन सुख देखत कहै देखे ते नयन को सुख है है, जाहि की गरज कहै अर्थ चाह है लाल तूल कहै दुरुस्त कियो है, अरज बडो कहै बिनती करि लाई हौं सो मेरे दुकान पर है मिलिहै इति ॥५२॥

(धुनिनि दूती)

सवैया—अस मजु महान रमे बृज कौ न बखान करौ सुषमा छबि छावै।
तिहि तूलहि आजु उपायन सो 'बृज' हेरि के आपने धामहि लावै॥

परदे करि बातन सो धुनिके मति सचि सखी करि प्रेम लगावै।
अति जो मन भावतो सो पिउरी मिलि है निशि आवते आवते आवे ॥५३

टीका—रूई पक्षे—अस मजु० अस कहै ऐसो मजु कोमल नरमे कहे नरमा अर्थात् जि है कपास कहते हैं। छवि छावे है तिहि प८० तेहि कहै ताहि तूल कहे रूई अपने घरना लै आइहो, परदे पद० परदे कहै वाट बातन कहे बयारि सो धुनि कहै धुनिकै मति थिर करि, अति जो मन पद० अति जो मन भावतो कहै जो अति मनभावत है सो पिउरी कहै बाती के सदृश होती है, निशि आवते कहै साँझ होत ही आवे तो पावे इति। नायिका पक्षे—अस मजु कहै ऐसे सुदर नर मे वृज कहे वृज के नरन म ऐसो गोप लोगन म कोन है, बखान करि कहती है, शोभा को छाइ रहे है तिहि कहै ताहि तूलहि कहै तू आज लहि कहै मिलि है, अपने घर ले आइहौ, परदे पद० परदे कहै गुप्त बात न कहै बचन सो धुनि कै कहै समुझि बूझिकै मति सचि कहै बुद्धि थिर करि प्रेम को लगावै, अति मन कहै जो मनभावत है सो पिउ री कहै री सखी सो पिउ निशि आवते आवते आवै कहै निशि होत ही आवतै कहे आवै कहै आवैंगे इति ॥५३॥

(मल्लाहिनि दूती)

सवैया—भावत भौंर है केशकै जानि बडे 'बृज' लोयन मीन रामानै।
नीक है नाक लहै मुह सो मगरो दरसै विलसै कछु आनै॥
जोबन मजुल सो कहि जात न सुदरि केसरि काहि बखानै।
आइहो लै कर बोहित देत परो रहै घाट वे छूछ छिपानै ॥५४॥

टीका—नदी पक्षे—भावत भोर है—भावत कहै राजत है भोर कहै जहाँ जल घूमत है, के सकै जानि बड़े है लोयन कहै सु दर मीन कहै मछरी है नीक है नाक अच्छी है, नाक लहै कहै देखे मगर कहै घरियार कछु आनै कहै कछू और भाँति के है, जो बन मजुल जो बन कहै जल है के कहै बरनि नहिं जात, सरि कहै नदी ऐसी है काह बखान करौ, आइहौ लेकर० कहै ले आई हो बोहित कहै नाव तन हित हेत हीको यहि घाट पर छूछ छिपाने कहै लुकाने परे रहत है, या हेत उतरै लायक नाहीं है, इति। नायिका पक्षे—मल्लाहिनि दूती नायका की बात कहै है—भावत भोर कहै भोर मलि द ऐसे केस कहै और भावत है। नयन मीन० लोयन कहै नेत्र मीन कहै मछरी से चचल है, नीक नाक० कहै नासिका सु दर मुहुँ कहै मुख सोम कहै चन्द्रमा गरो दरसै ग्रीवा देखायमान है, जोबन पद० जो बन कहै तरुनाई मजुल कहि जा तन कहै जाके तन म सु दरि

केसरि कहै नायिका के सरि कै केकरे बराबर बखान करो, आइहो लैकर लै कै आइहो, करजो हित० अर्थ हित की हिताई करिहो परे रहै घाट कहै वहि घाट परो रहै छूछ कहै सुय जहाँ कोई नहीं जात छिपानो कहै गुरा है रति ठौर जोग जानो। इति ॥५४॥

(कलवारिनि दूती)

सवैया-माते हैं मजुल पान रले मुख जाहि बिलोचन रग लुनाई।
है सुखदायक देखे चुभै चित आजु कहा 'बृज'कीजे बडाई॥
सोहै सुहावन जो बनो है मद देहै मनो हरतो मन भाई।
फैलत जामे सुगध है फूल सो छैल छिपाइ दुकूल मे लाई॥५५॥

टीका—मद पक्षे—माते हैं मजुल—माते हैं कहैं मतवारे हैं पानरले कहै जे पिये हैं तिनके नेत्र मे अरुनाई है, सुखदा० कहै देखे चितै प्रसन्न है सोहै सुहावन कहै सुदर जो बना है यह कहै जस बना है मद देहैं कहै देउँगो फैलत जामे सुगध कहै सुवास फैलत है फूल सो कहै भूर जा अगिनि मे डारे बरि उठै ति हैं फूल कहत है सो हे छैल ले आइहो इति॥ नायिका पक्षे—यह कलवारिनि दूती कहै है। माते है पद० मा कहै लक्ष्मी ते कहै तेहि ते मजुल कहै सुदरि है जाहि कहै जिहि बिलोचन कहै नेत्र लोनाई कहै शोभा है, है सुखदायक० कहै वह सुखदेन हारी देखतै लोभि जाइहो। सोहै सुहावन कहै सोभावान जोबनो कहै जवानी मद कहै तरुनाई कै मद देहै कहै देह में मनोहर कहै मन हरै या फैलत जामें, फैलत कहै बगरत है सुगध फूल कैसे छैल छिपाइ कहै छैल ताहि छिपाइ दुकूल कहै बसन वोढ़ाइ के ले आई हौ इति॥५५॥

(कमराबीननहारी दूती)

स०-अति चीकन चारु सँभारिकै बार बरो मृदु मै मखतुल से मानो।
'बृज' भाल है मजुल पाटी रली रुचि सुन्दर तापर बीनी है जानो॥
बिरचे बिधि सो निज पानि भले छबि जात नही कहि काहि बखानो।
कमरो पतरो रुचिरो रँग पावन मै मन भावन तो हित आनो॥५६॥

टीका—कमरा पक्षे—अति चीकन०—अति चीकन कहै अति चीकन बार जो है मृदु कहै कोमल बरो कहै बरा, मखतूल कहै पाट कैसे हैं बृजभाल कै कहै भा सोभामान कहै है पाटी रली कहै कमरा में पाटी कै जोर लागत है सो रली कहै जोरी है, सुदरता कहै तापर बीनी हे बिरचे बिधि कहै रचे हो बिधि कहै जतन से कमरो पतरो कहै कमरा पातर कहै महीन तुम्हारे हेत लाई हों है

मन भावन इति। नायिका पक्षे—यह गडरिनि दूती नायिका की शोभा कृष्ण से बरनत है अति चीकन चारु कहै अति चीकन है सुहावन चारु कहै रमनीय बार है मखतूल कहै रेसम है मानो बृजभाल हे० बृज कवि की उक्ति की भाल पर पाटी गुहे है रुचि सुन्दर है ता परवीनता कहै तोनि परवीनि कहै नागरी है बिरचे बिधि सो कहै रचै है बिधि कहै ब्रह्मा निज कहै अपने हाथ सो छबि जात नहीं कहै छबि नहीं कहि जात है, कमरो पतरो कहै करिहाँउ की पातरि रुचिर कहै सुंदर रँग पाउन में कहै महाउर जुत है मन भावन ताहि लाइ हो इति ॥५६॥

(जवाहिरिनि दूती)

स०—केश कै नीलम आभा बिलोकि भलो दुति मानि कहैं छबि भारे।
है अति सुन्दरता मुकता कहि जा तन रीझिहौ हीरा निहारे॥
सारी चुनी रग रूरे लसै मनि भाल है पुंज पभा उजिआरे।
जो मन भाई हैं लाई हौं सो पर बाल अहै घर लाल हमारे ॥५७॥

टीका—रतन पक्षे—के सकै कहै के देखि सकै ऐसी आभा नीलम केहै ओ मानिक के है। अति पद० कहै सुंदरता मुकता कहै मोती कहि जात नहीं सारी चुनी पद० सारी कहै सब चुनी रंग लसै मनि प्रकाश वारे है जो मन भाइ० कहै जो मन चाहत है सो लाई हो और परबाल कहै मूँगा सो मेरे घर है इति ॥

नायिका पक्षे—जवाहिरिनि दूती नायक से कहै। केश कै पद० केश कहै बार कै आभा नीलम कहै स्याम मनि कैसे दुतिमानि कहै दुति कहै दीप्ति भलो मानि कहे है अति सुंदरता० कहै सुंदरता मुकता कहै बहुत जा तन कहै जेकरे तन मा हीरा कहै हृदय देखि रीझि हौ, जो मन भाई पद० जो कहै जाहि मन को भावत है सो पर बाल कहै पराई नारि मेरे घर है इति ॥५७॥

(सिकिलिदारिनि दूती)

दण्डक—जगमगै जोति जो मैं बोपनी कसीस रंग,
फँसे बहुबार श्याम सोहैं धारि सानो मैं।
पावन परम छबि मखमल कैसे लाल
दीह दुति मंजुल री राजै का बखानो मैं।
'बृज' अवलोकि मुँह की है अति आबदार,
कटिकै कठोर छाती छैल छुइ जानो मैं।
सुभग सनेह सनी बनी हैं सलोनी असि,
सुन्दरि चढाइ लाई मंजुल मिआनो मैं ॥५८॥

टीका०—सिकिल पक्षे—जगमगे कहे झलकत है वोपनी श्रो कसीस के रग कसे है बहुत बार स्याम है रग और धारि पावन परग कहे विमल रग है छवि देखत मखमल कैसे लाल है और सिराजा के कौन बखान करा बृज जुति पद०मुँह की है अति आबदार कटि है कठोर छाती कहै है छैल मुँह की बडी आब दार कठोर छाती को कटि है सो छुइ कै देखि ल२ हे, सुभग पद०कहै सु दर सनेह कहे तेल सनी कहै विनसाई असि कहै तरवारि मिआनो कहै मियान को चढाइ कहै बनाइ लाइ हो। यह सिकिलदारिनि दूती नायक सो नायिका को मिलाप करायो चाहति । नायिका पक्षे—जगमगे पद० कहे जगर मगर जोति दीपति वोपनी कहै सुहावन स्वच्छ है, ससिरग कहै ईंगुर आदिक से बहुबार कहे केश को बाँधे है स्याम कहे नील साहै धारि कहै धारन किये हे । सानो कहे गुमान को पावन कहे पाव दूनौ मखमल ऐसे लाल दीह कहै बडी दुति लसी रहे । राजे का बखानौ मे राज रही है मै काह बखानौ कहै बखान करो बृज अवलोकि० कहै देखि मुँह की अति आबदार कहै मुह की अति चटकीली है। कटि है कठोर छाती० कटि है कहै कमर कठोर कहै करें है। छाती कहे स्तन है छैल छुइ हौ तब जानि हो। सुभग सनेह पद कहै स्वच्छ सनेह कहै प्रीति सनी कहै लगी है असि कहै यहि भाँति सुदरि नायिका मिआनो कहै पालकी पर चढाइ लै आई हौं ॥५८॥

(किरातिनि दूती)

दण्डक–कारे विषधर ऐसे केस कै विलोकि आभा,
लोयन चलाक मृग लोने छबि छावतो ।
द्विजन की पाँति बड़ी काति मुँह रीछराजै,
भ्राजै सुग्रीव जैसे हरि दरसावनो ।
'बृज' कमनीय करिहाऊ केहरी लौं खरी,
नेउर दबाय पाय चले चित चावतो ।
देहौ मै देखाइ अस यौवन ललित लाल,
कीजिये बिहार जो शिकार मनभावतो ॥५९॥

टीका—बनपक्षे—कारे कहै स्याह विषधर कहै साँप ऐसे है की कौन देखि सकै। लोयन कहे सु दर, चलाक कहै भगेआ, मृग कहै हरिनाद्विजन की पाँति, द्विज कहै पच्छी, पाँति कहै श्रेनी, काति कहे सोभा, मुँह कहै सुख के रीछ राजै रीछ कहै भालू राजत हैं। सुग्रीव कहै सुकठ ऐसे हरि कहै बाँदर है। बृज कमनीय०—कमनीय कहै रमणीय, करि कहै हाथी, हाऊ कहे भेडिया, केहरी कहै

सिह ग्रो लोखरी नेउर पाय दबाय को चलते हैं। देहो मे देखाइ०—कहै बनाइ देऊँगी जा वन कहै जौन बन है, बिहार कहै बिचरौ, जा सिकार खेले ने हाइ सा खेलौ, यह किरातिनि कहे भीरनि है दूती नायिका की शाभा नायक से बरनत है।

नायिका पक्षे—कारे कहै स्याम, बिषधर कहै पन्नग ऐसे, रस कहै नार, तेकर आभा कहै या भा है, लोयन कहै नेन, मृगा कैसे है, दिजन०—दिज कहै दाँतों की, पाति कहै अवली, बडी कहै बहुत, कांति कहै आभा, मुँह कहै मुख, रीछ कहै नक्षत्र, राजै कहै चद्रमा कैसे मुख सुग्रीव के सुदर ग्रीव है, हे हरि कहे कृष्ण ऐसे देखे हैं, बृज कमनीय०—कमनीय कहै रमनीय है, करिहाँउ कहै कमर, केहरी कहै सिंह कैसे है लोखरी, लो बाचक, खरी, नेउर कहै रसना, रसना कहै क्षुद्रघटिका, दबाइ को पाय धरति अर्थात् परकीया है, देहो में० देहौ कहे सब अगन म, अस यौवन कहै ऐसी तरुनाई, ललित कहै सुहावन कीजै बिहार को जो सिकार कहै जौन सिकार सी सी रतिसमै में करती है जो तुम्हारे मनमे भावत सा आजु में देखाइ देऊँगी इति ॥५९॥

(सोनारिनि दूती)

सवैया–दिय भाग सोहाग भलो विधि सों तिहि बातन ते पिघलाइ रसै।
कहि जात न राजत हैं मुकुता दुति सोन प्रभा बहु वार कसै॥
यहि बानक सो सुषमा छबि चन्द कलै दुति मानि कहै जो लसै।
'बृज' बेसरि आजु मिलै वह सुंदरि जे हरि जीय तिहारे बसै॥६०॥

टीका—बेसरि पक्षे—दियभाग कहै दिये है भाग जितनो चाहिए सोहाग कहै सोहागा बिधि कहै जतन ते सोना में पघिलाइ कहै गलाए है, कहि जात० कहि जात नाहीं वही सोनामें मुकुता लैकर कसै है, यहि भाँति से छवि चदक है और मानिक लगे, बृज बेसरि कहै आजु बेसरि कहै बुलाक, जेहरि कहै पैजनी मिलेगी इति। नायिका पक्षे—यह सोनारिनि दूती नायिका की भा बरनत है, दिय भाग० दिये कहै दीजै, भाग कहै कर्म सो पघिलाइ कहै हिको, बहुवार कहै बहुतवार, जातन कहै जेकरे तनमा मुकता कहै बहुत दुति कहै दीपति सोना कहै कचन कैसे राजत है, यहि बानक कहै यहि भाँति से, सुषमा कहै कांति, चदकला कहै शशि कैसे प्रकाशमनि कहै मानत है, बृज बेसरि कवि की उक्ति, बेसरि कहै बिना श्रम ही वह सुदरि कहै वही नायिका जेहरि जीय कहै हे हरि जे तिहारे जी म बसती सो आजु मिलैगी ॥६०॥

(पटहारिनि दूती)

स०–जो कछु गाँठि मुरी की परी सुरझाइ भले विधि सो हरि हाल है।
काह बखान करो अब रेशम है दुति सुन्दरि रग बिसाल है॥
पुञ्ज प्रभा नख ले शिखरो मन लाइ गुहे वह बार रसाल है।
पाइ हौ लाल वही परवाल को जो मन भावत मजुल माल है॥६१॥

टीका—पाटपक्षे—जो कछु कटै गाँठि औ मुरी परि रही सो छोडाइकै विधिसों हे हरि काह बखान कहै रेसम को काह बखान करौं, पुजप्रभा कहै बहुत प्रभा कहै आभा नखलैसि कहै लगाइ खरो कहै आछे भाँति मन लाइ गुहे, पाइहौ० कहै पावोगे परवाल कहै मूँगा को माला जो तुमारे मन भावत है, इति।

नायिका पक्षे—यह पटहारिनी दूती को बचन है, जो कछु गाँठि कहै अकसमुरी कहै मान के समै की ताहि बिधि सों छोडाई है हे हरि हालि कहै सीघ्र ही, काह बखान० काह कहै कौन, बखान कहै वरनन, करौ कहै कीजै, अब रेसम कहै औरे के समता दुति कहै दीपति सुदरि कहै सुहावनि रगबरन बिशाल कहै बडो है। पुज प्रभा० पुञ्ज कहै समूह प्रभा कहै आभा, नख कहै पायनते, शिख कहे सिरतक है। रोमन कहै नारा, वह कहै स्त्री, गुहे कहै बाँधे, बार कहै केश को, पाइहौ कहै मिलैगी, लाल कहै हे कृष्ण, वही कहै सोइ, पर बाल पराई बाल जो मन भावत चाहि जहैं, मा लहै कहै लक्ष्मी कहै शोभा को प्राप्त है इति॥६१॥

(लहेरिनि दूती)

वै रग नायक जोरती है कहि जाइ न श्याम प्रभा छवि छावै।
जा चित चाह ते जात चुरी तिहि आजु मिलै मन मोद बढावै॥
लाइहौ लाख उपायन कै 'बृज' देखिय लाल जो तो मनभावै।
बदहि बदहि बाह मिलाइ ले साध जो होइ तौ साध बतावै॥६२॥

टीका—चुरिया पक्षे—वैरगनायक० कहै चुरिया मे वैरग ना होत, यक जोरती है कहै जो रहै है तिय स्याम प्रभा जामैं है, जाच्चित कहै जाहि चित चाहते जात रही सोई चुरी कहै चुरिया मिलि है, लाइहौं लाख उपाइ लाख कहै लाह उपाइ कहै जतन से लाइहौ जो यह लाल लाह रग कहै। बद बद जोर जोर बाँह में पहिन जो साध होइ तौ साध कहै इच्छा पूर करै।

नायिका पक्षे—यह लहेरिनि दूती नायिका की प्रशसा करि मिलावती है, वै रग नायक ० वै कहै अवस्था रंग नायक जो रती कहै है काम के ऐसे प्रभा

स्याम कहि नहीं जातो । जाचित० कहे जाहि चाहते चुरी कहै गरी जात रही तिहि को आजु मिलै, लाइहौं० कहै लाय, उपाय कहै तदबीर से लाइहौं, देखु जो लाल मन भावत होइ, वदहि नद न द कहै घातै घात बाँह कहै अक भरि ले साथ कहै जो हौसिला होय सो बतावे कहै पूर करिले इति ।।६२।।

(डोमिनि दूती)

सवैया—हेरिहौ पावन बागे बने बृज आजु तिहारे हिते हित माने ।
चीरो भलो बिधि सो है सखी सिरकी छबि कामै बिलोकि बखाने
देहै मै सूपन ये री सुनै लखि मोहि रहै बृज की बनिताने ।
तै फटकी है दिनै बहुते तेहि बाँधि अनेक उपाइ ते आने ।।६३।।

टीका—सूपपक्षे—हेरि हो० हेरि कहे ढूँढे है, पावन कहै, पवित्र, बागे कहै बगिया, बनै कहै विपिन मे चीरो भलो कहै चीरा है, बिधि कहै जतन से सिरकी कहै जासो सूप बनत है, देहमें० देह कहै देउँगी सूप नवा जाहि देखि बृजनारी मोहि रहै, तै फटकी० तू बहुत दिन तक फटकिहै कहै पछोरिहै, ताहि बाँधि कहै बनाइ लाइहौ । नायिकापक्षे—यह डोमिन दूती कृष्ण की बडाई करि कै मिलायो चाहती है, हेरि हौ कहै देखि हौ, पावन कहै पाँयन में, निमल बागे कहै जोडा जामा पेन्हे बने है, तिहारे हेत चीरो भलो कहै पगरी, सिरकी कहै माथ की, छवि कामै कहै छवि काम कैसो है, देहै में सूपन कहै देह में सू कहै सुदरपन कहै अवस्था, येरी कहै ये सखी, जेहि देखि बृज की बनिता मोहि रही हैं, तैं फटकी है तू फटकी कहै बिकल बहुत दिन ते रही है, सो ताहि उपाय कहै जतन बाँधि कहै करिकै आने है कहै लाइहौ ।।६३।।

(तिरगरिनि दूती)

मजु सुबास भरे कहि जात न पातरे है मनो साँच के ढारे ।
सुन्दर सो नहि रग बखानिबे योग अहै विधि सो दए सारे ।।
गोसे मैं गासि कै गाढ़े गहौ कर कीजिए जो चित चाहत प्यारे ।
लोचन सो अनियारे लगै 'बृज' कालिह ले आइहौं तीर तिहारे ।।

टीका—तीरपक्षे—मजु० कहै स्वच्छ, सुबास कहै सुदर बास भरे कहै भरतू कहिजात नहीं मानो साँचेके ढारे है, सुन्दर कहै अच्छा रग दिये हैं । विधि सो बखानिबो जोग नाही, गोसे मे कहै धनुहा के रौदा में गासि के मिलाइ कर गहै, लोचन सो अनिआरे कहै नैन से नुकीले लगा तीर कहै बान तिहारे कालिह लै आवोंगी ।

नायिका पक्षे—यह तिरागरिनि दूती है नायिका की प्रशसा करती है, मजु सुबास कहे सुभग, सुग ध है जाके तन मे, पतरे कैसे है तन जैसे साँचे के दारे, सुदर सोन कहे स्वच्छ सोना ही कहै बहिरग बरानिबे योग निधि कहै बह्मा सारो कहे सब दइ है। गोसे० गोसे कहे एकान्त गासि कहै अक भरिकै जो चितमा चाहै है सो करो लोचन सो० लोचन कहै नेत्र अनिआरे कहे नुकीले, ऐसी सुदरि कालिह तीर कहै पास तिहारे लै आइहो इति ॥६४॥

(कुँभारिनि दूती)

न घटो मन भावतो कै कछु चाह कहै रुचि साँच कहौ करिकोलै।
तिय देहु कै मेलसो मजुल पावन ग्वालिनि जाहि चहै चित सोलै॥
'बृज' और चहै तौ धरै धर धीरज आजु औ कालिह कै धोस न बोलै।
परसो कर वादे है आवै लगे बलि छोड़ि कराहि दिली मिलै तोलै॥

टीका—बरतन पक्षे—न घटो० न कहे नाहीं घटो कहै घट गगरी नहीं भवरत है कहै रुचि अर्थ आपन अभिलाप कहै साँचा बनावै, तिय है तिय मेल सो कहे मेलसा जामे दूध दुहावे है, परसों कहै परो, करवा दे कहे करवा देहे, आवौ लगै कहै आँवा लागि है भछोडि और कराहो दिली कहे दिअरी और कराही मिलि है इति। नायिका पक्षे—यह नायिका कुँभारिनि दूती है। न घटो कहै नाहीं कम, मनभावतो कहै नायक कै चाह कहै प्रेम, साँच कहै सत्य कहती हो, करि कोले कहै यकरार, तिय देहु० कै मेलसो कहै मेर, मजुल कहै स्वच्छ, जाहि चाहै है। परसो० परसों कहै तीनि दिन करवादे है वा अवध आव लगै कहै आवै लग कहै ढिग छोडि कराहि कहै आहि करब, त्यागि दिली कहै मन से मिलै इति ॥६५॥ इति श्लेष ॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

(वक्रोक्ति अलंकार)

दडक—बारन को बाँधै खुले पील पीलवान बाँधै,
सारी को सँभारि खेलि चौपरि न जात है।
नेह के लगाये सुख केश मै की देही ही मै,
यह कौन दशा दीप बारे दरसात है॥
भूषन सँवारि चलै पढे कबिताई नाहि,
मिलै नँदलाल 'काह हाट मै बिकात है।

कोप तरुनी के नाहि नीके कब देखे बाग,
बात को बिचारि कह्यो बहै कौन बात है ॥६६॥

टीका—प्रीतिपक्षे—बारन कहै केश को बाँधै, बक्र उक्ति, बारन कहै हाथी का पीलवान बाँधै है, नायिका कह्यो सारी को सँभारि लै नायिका कह्यौ सारी नाम चौपरि की गोट कहै हम नहीं खेलती, नेह कहै प्रीति के लगाए सुख नायिका कहै नेह कहै तेल बार में लगाए सुख की देह में कह्यो यह कौन तेरी दशा कहै हाल कही दशा नाम बाती दिया म देखि परी है, कह्यो भूषन जो गहना पहिनि चले कह्यो भूषन कहै अलकार हम नहीं पढ़ा है। कह्यो मिले नँदलाल कहे दलाल नाहीं मिलते हे। काप तरुनीके कहै कोप क्रोध तरुनी कहै नायिका को नीक नाहीं होत कहै कोप नाम अकुर तरु कहै वृक्ष नीके में कब देखे। कह्यो बात बिचारि कहै कह्यो बात नाम कोन बयारि बहै है ॥६६॥

दडक—जागरो बन्यौ है बृजराज आज कौन काज,
किए पूरी कौन बात कहिए प्रमान को।
भली बेरही मे रुचि धरी है कवन वह,
कढी छवि आगे काहू कीजिये बखान को ॥

वक्रोक्ति—वक्ता के भिन्नार्थक कथन का श्रोता श्लेष या काकु द्वारा भिन्न ही अर्थ मे उत्तर दे तब वक्रोक्ति होती है। वास्तव में उक्ति की विलक्षणता ही वक्रोक्ति है। कुछ आलकारिको ने अतिशयोक्ति में ही इसका अन्तर्भाव किया है। अन्य अलकारो की अपेक्षा इसका प्रभाव साहित्य शास्त्र पर अत्यधिक रहा है। यहा तक कि आचार्य श्री कुतक ने "वक्रोक्ति काव्यजीवितम्" कहकर इसे ही काव्य का आत्मा सिद्ध करने का प्रयास "वक्रोक्तिजीवित" नामक ग्रन्थ द्वारा किया है। प्रसिद्ध आलकारिक श्री भामह ने भी इसकी प्रशसा इन शब्दो में की है—

"सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयाऽर्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्या कविना कार्य कोलऽङ्कारोऽनया विना ॥"

बारन = केशा को, हाथी। पील = हाथी। पीलवान = महावत। सारा = साड़ी, चोपड की गोटी। चौपरि = चौपड़ (एक खेल)। नेह = प्रेम, तेल। दशा = अवस्था, बत्ती। भूषन = गहने, अलकार (उपमादि)। नँदलाल = नँद के कुँवर कृष्ण, दलाल नहा। कोप = क्रोध, कोपल। तरुनीके = युवती के, अच्छे वृक्ष। बात = वार्ता, वायु ॥६६॥

बडे रिझवार उर देहै कौन ग्वालि कहँ,
भा तन विलोकि शोभा किन रूपवान को ।
लहै बराबरी तोसो को है घटिअरी बाम,
बिसद रसोई नव रस मे सयान को ।।६७।।

टीका—रसोईपक्षे—जाउरी री सखी जाउ कहै जहाँ ब्रजराज ब यो है । कह्यो जाउर जो दूध की बनत मो ब यो है । कह्यो पूरी करै कहै पूरी नाम लुचुई बनी है भली देरही म मिलै कहे बेर नाम समै भली है कह्यो बेरही रोटी चना के दालि की बनती है । कह्यो कढ़ी कहै निकसी है छवि, कह्यौ कढ़ी नाम दही को बनत है तौन है । कहै बड़े रिझवार हैं कृष्ण उर देहै कहै हिय देहैं, कह्यो बड़े रिझवार कहै चुरन हारे उरद हैं । भा तन कहै भा शोभा तामे कहै भातन के चाउरन के लहै बराबर कहै समताई को पावै बराबरी बरियाभरी कहै बिसद रसोई नवरस है ।।६७।।

सवैया-लहि सुदर जोबन जाइ भजै हरि नाहि अबै बिरधापन है ।
निज प्रेम करै लछिमी पति है रति मै रुचि वारवधू धन है ।।
कहि 'गोकुल' साजिकै कीजे सँयोग करै यह योगी यती जन है ।
निज बात विचारि कह्यो कहती उपचारते जात बिथा तन है ।।६८।।

टीका—लहि कहै पाइकै सु दर योवन कहै जवानी, भजै हरिको कहै कृष्ण ते विहार करे कह्यो अबही बिरधापन नहीं है जो सु दर बन म जाइकै हरिके भजन करै निज प्रेम करै । लछिमी कहै रमा के पति विष्णु होइ कह्यो लछिमी नाम सम्पदा की रुचि रति वारबधू की है, साजिकै सयोग कहै नायक ते मिलाप करै । कह्यो सँयोग कहै सु दर जोग करै । बात निचारि कहौ कहै बात रोग की बिथा औषध से जात है ।।६८।।

कवि—परमहंस दीनदयाल गिरि

सवैया—हम तो बिलखाहिं कदम्ब तरे तुम हो कुलटा यह बैन कहावै ।
तुम तो नर हो नागी नाहि लखो कित जाहि चले निज रूप लखावे।।
हम तो न चहैं तुम पै हठ जू भली बातन चोकहि को नहिं भावै ।
हरि अम्बर देहु हमैं करमै गहिए किन सुदरि जो कर आवै ।।६९।।

टीका—गोपी लाग कह्यौ हम बिलखाती कदम्बके नीचे कह्यौ तुम कुलटा हो कदम्ब कहै बहुत के तरे रहती हो, तुम तो नर हो नागी न देखौ कहा हम न रहैं कहाँ चले जाहिं, हरि अम्बर देहु कह्यौ अम्बर जो आकाश करमे आवै गहि लेहु ।।६९।।

दंडक—लाल फूल वारी यह कापै कौन मुद पाइ,
नाहीं जू निवारी है करत कहाँ हे प्रिये ।
माधवी है माधव दहति क्यौं न सौति देखि,
सेवती है सुने स्याम काको अपने हिये ॥
जाप कहै यदुनंद कौन को जपै है जाप,
जपा है जसोदा सुत केते जप को किये ।
कुंद है मुकुंद अहे तीच्छण कै लीजै किन,
बेला वर 'दीनद्याल' कौन तीन मैं तिये ॥७०॥

टीका—लाल फुलवारी—कहो कौने हेतु यह फूली फिरे है नाहीं जू यह निवारी है, कह्यौ का करत है, माधवी है माधौ तौ सवति को देखि क्यों नहीं जरतो है, सेवती है कह्यौ कौन का सेवा करती है, जापक है कह्यो कौन का जपती है, जपा है कह्यो केतने जप किए है, कुंद है कह्यौ कुंद गाठिल है तौ चोख करि लीजै बेला है कह्यो बेला नाम समै तीनिउ मे कौन है ॥७०॥

॥ इति श्री दिग्विजयभूषणे श्लेषवक्रोक्ति आदि वर्णन नाम चतुर्दश प्रकाश ॥१४॥



पञ्चदश प्रकाश

अथ नखशिख

दो०—अलकार मै चाहिए, उपमेई उपमान।
तातै नख शिख बरनिबो, उचित प्रबध प्रमान ॥१॥

टीका—अलकार के ग्रन्थन में नख शिख बर्णन उचित है क्योकि बिना उपमान उपमेय जाने अलकार न जानि परैगो ॥१॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

दडक—दोष दुख तम न सताइ सकै केहूँ काल,
भानु ते अमद तेज राजत घनेरे है।
अगुरी अनूप दस पाँपुरी बिमल कर,
आभा अधिकात अरुनारे छबि चेरे हैं॥
'गोकुल' बिलोकि शुभ शोभा के तड़ाग गध्य,
करै अनुराग जाग सुरमुनि चेरे है।
राम पदपकज पराग पुज राजै मजु,
जन मन मजुल मलिंद के बसेरे है ॥२॥

टीका—राम पद पकज पराग कहै पायके धूरि वा पराग तीर्थराज ॥२॥

कवि—नृप शंभु

सवैया—कोहर कौल जपादल बिद्रुम क्या इतनी जो बँधूक मै कोत है।
रोचन रोरी रची मॅहदी 'नृप शभु' कहै मुकुता समपोत है॥
पाय धरै ढरै इगुर सो तिन मै मनि पायल की घनी जोत है।
हाथ द्वै तीनिला चारिहु ओरते चाँदनी चूनरीके रग होत है।३।

दोप = दोषा, रात्रि। सताइस = २७ नक्षत्र। पाँखुरी = पखड़ियाँ। अरुनारे = लाल। चेरे = सेवक। पराग = मकरन्द, प्रयाग तीर्थ। मलिंद = भौरे ॥२॥

टीका—चाँदनी चूनरी के रग सम होत है ॥३॥

कवि—शभु

बिब प्रबाल बँधूक जपा गुललाल गुलालहि आभा लजावत ।
'शभु जू' कज खुले टटके किसलै बटके भटकी गिरि गावत ।
पाय धरे एक वोर तऊ बहु छोर ललाई की लीक सी धावत ।
मानो मजीठिको माठ ढरयौ इक वोर ते चाँदनी बोरत आवत ॥४॥

टीका—मनो मजीठिको माठ कहै बरतन ढरकि परो है ॥४॥

कवि—चिंतामनि

दडक—प्यारी के पगनि पर एती अरुनाई जामैं,
मुगध बधून दिन साँझ करि भाख्यौ है ।
नाग ह्वै कढति जाके सिसिर लतान हूँ कै,
किसलय तारिबे को मन अभिलाख्यौ है ॥
'चिंतामनि' आए जाके चाँदनी बिछौना पर,
लाल मखमल को बिछौना जनु नाख्यौ है ।
चरन धरत जाके आँगन फटिक चद,
मानो लाल बिद्रुम दलान बाँधि राख्यौ है ॥५॥

टीका—मानो विद्रुम कहै मूँगा के लाल दन्त बाँध्या है,दसन नाम पाता॥५॥

कवि—मुरली

अरुनता ऐंड़िन की रबि छबि छाजत है,
चारु छबि चद आभा नखन करे रहैं ।
मगल महावर गुराई बुध राजत है,
कनक बरन गुर बनक धरे रहै ॥

कौल = कमल । जपादल = जवा (अड़हुल) पुष्प का पखुड़ियाँ । विद्रुम = मूँगा । बधूक = दुपहरिया का फूल । कोत = शोभा, कांति । रोचन = गोरोचन । मनिपायल = नूपुरो में जड़े रत्न ॥३॥

टटके = ताजे । भटकी = भ्रान्त । लीक = रेखा । मजाठि = मेंहदी । माठ = मिट्टी का बडा सा हडा । बोरत = डुबाता ॥४॥

अरुनाई = लालिमा । नाख्यौ = लाँघ दिया, पराजित किया ॥५॥

सुक्र सम जोति सनि राहु केतु गोदना है,
'मुरली' सकल सोभा सौरभ भरे रहै।
नवो ग्रह भाइन ते सेवक सुभाइन ते,
राधा ठकुराइनि के पाइन परे रहै ॥६॥

टीका—अरुन एडी रवि, नखसित चंद्र, महावर मंगल, गुराई बुध, सोना के सम तन गुरु बृहस्पति, जोति शुक्र, गोदना शनि राहु केतु यह नवग्रह है ॥६॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

(पगतल वर्णन)

दंडक—कलुष कलेस कोटि बिमुख उलूक ऐसे,
कोकसे असोक सुख सेवक असेखते।
जन मन मंजुल प्रकास पुंज पंकजसे,
कैरौ सी कुमति कुँभिलाई अवरेखते ॥
'गोकुल' बिलोकि रूप राजत अनूप छबि,
अंत न अनंत पाये गाइ गुन लेखते।
तम से भरम भागै तामस तुषार तैसे,
तरवा तरनि तेज राम पग पेखते ॥७॥

टीका—तम कहै तिमिर ऐसे भ्रम भागै, तामस कहै क्रोध ऐसे तुसार कहै पाला ॥७॥

कवि—प्रताप

दंडक—गहगहे अवध गलीन के गुलाब ये न,
आब देन मही महिमा के अवतार हैं।
कोमल अमल मखमल से विमल मंजु,
माखन ते मृदुल मनोरथ बिहार है ॥

अरुनता = लालिमा। महावर = आलता। गुराई = गोरापन। बनक = बानक, स्वरूप ॥६॥

कोक = चक्रवाक। अशोक = शोक (वियोग) रहित। कैरो = कैरव, कुमुदिनी। गुनलेख = गुणवर्णन। भरम = भ्रम। तरनि = सूर्य। पेखते = देखते ही ॥७॥

पावन प्रसिद्ध पुरुषोत्तम के पाय तल,
कीन्हे कमला जे करतल के सिंगार है।
रगभूमि धारे निरधूम रग पावक के,
जावक के जन जपाकर जैतवार हैं ॥८॥

टीका—जावक जपा करके जितैआ है ॥८॥

कवि—भरमी

(अंगुरी वर्णन)

दडक—अरुन कमल पग पाँखुरी की पाँति लसै,
सरस सघन शोभा मन के हरन की।
दीरघ न लघुताई पातरी सुहावती है,
देखे दुति होति जाति बिद्रुम बरन की॥
नख की निकाई नीकी आरसी सी सोहति है,
जामे देखि जाति शोभा सौति के सरन की।
'भरमी सुकवि' कहि आवत न मेरी मति,
पाँगुरो भई है लखि आँगुरी चरन की ॥९॥

टीका—मेरी मति पाँगुरी भई कहै पगु कहै लूली भई, री सम्बो-
धन है ॥९॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

(नख वर्णन)

सवैया—मानिक बिद्रुम जोति जपाकर रग मजीठि के लाजत है।
भानु समान दशौ दिशि दायक पुज प्रकाश बिराजत है॥
राम के पायन की अँगुरी नख 'गोकुल' यों छबि छाजत है।
पकज की पँखुरी पै मनो कमनीय नछत्र बिराजत है ॥१०॥

गहगहे = खिले हुए। आबदेनहारे = शोभाप्रद। महिमा = गौरव। अमल = स्वच्छ। मजु = मनोहर। पुरुषोत्तम = रामचन्द्र। कमला = लक्ष्मी। रगभूमि = क्रीड़ास्थल। जावक = महावर, लाक्षा। जपा = पुष्प। जैतवार = जीतनेवाले॥८॥

पाँखुरी = पखड़ियाँ। पातरी = पतली। दुति = द्युति, शोभा। निकाई = सुन्दरता। पाँगुरी = पगु, लँगड़ी ॥९॥

टीका—कमल की पॅखुरी पै नक्षत्र बिराजै है ॥१०॥

कवि—मनीराम

दडक—राधे के चरन युग अरुन अरुन रूप,
लाल मनि बलि ऐसी लाल मे न होती है ।
कोमल सुमन हूते शोभा भरे शोभित है,
दाहन मरत जपा भयो मानो गोती है ॥
तामै सुधाधर से विविध भॉति राजत है,
कहै 'मनीराम' नख मिले बनी जोती है ।
याते एक उपमा अधिक भासी मेरे जिय,
पकज दलन अग्र धरे मानो मोती है ॥

टीका—पकज कहै कमलके दल पर मोती धरा है ॥११॥

कवि—रसलीन

दोहा—दुतिया उचित न नखन की, भनै कौन कवि ईश ।
पाइ परत छत जाहि को, भयो चद पिय सीस ॥१२॥

टीका—दुतिया के च द उचित नहीं है नखके नायिका के नायक पगे लागो ताको छत नखको नायक के चद्र सदश भयो है ॥१२॥

कवि—प्रताप

(गुल्फ वर्णन)

दडक—गहगहे गहक गुलाब गुल आबवारे,
गौन गुटिका है मुनि मानस अराम के ।
चरन सरोज भौर भौरन के भूपा कैधौ,
रूपसर बीज बये बिधि अभिराम के ॥

जपा = जवापुष्प । पकज = कमल । पखुरी = दल । कमनीयनक्षत्र = सुन्दर तारे ॥१०॥

बलि = शोभा । गोती = सजातीय । सुधाधर = च द्रमा ॥११॥

दुतिया = दूज, दूसरी ॥१२॥

जन मन मोदक विनोद कर कंदुक है,
सुमन समाज अवलंब विसराम के।
जगमगे जेवर, जवाहिर कुलुफ ऐसे,
सुलुफ सुढार सोहैं गुलुफ सुरामके ॥१३॥

टीका—जवाहिर कुलफ ऐसे गुल्फ ॥१३॥

कवि—दिनेश

चरण कमल करि हाटक की शोभा देत,
पूरी मनि मानो लट नागिनि वलफ की।
रंभा तरु उलटि कपूर पूर राखिबे की,
कोठी है जुगल कम काम के कुलफ की।
साजत सुदेश गाँठि गीरी है 'दिनेश' कीधौं,
रेसम रसे की रूप भूप के सुलफ की।
ऐंड़िन सो आइ राजै पायन दुहूँ बिराजै,
अति छबि छाजै लाल गोरी के गुलफ की ॥१४॥

टीका—यह काम के कोठी को कुलुफ होइ गुल्फ नहीं ॥१४॥

(जाँघ वर्णन)

मोहन के मन के है अवलंब आली लखि,
चित्र मे लिखे न जात चकित चितेरे हैं।
कंचन के खंभन के दंभ दूरि करिबे को,
कीन्हें करतार ऐसे कहू काहू हेरे हैं॥
रूप ही के ईंडुरी पै पींडुरी 'दिनेश' जामैं,
लघु न बिशाल लाल चाहि भए चेरे है।
सूखो सब सौति मन सोचन सकोचन ते,
सोचु मद मोचन जुगल जानु तेरे हैं ॥१५॥

गहगहे = खिले हुए। गुल = फूल। आब = शोभा। अराम = बगीचा। रूपसर = रूप का तालाब। मोदक = प्रसन्नकारी। कंदुक = गेंद। अवलम्ब = आसरा, सहारा। बिसरा = विश्राम। जेवर = गहना। जवाहिर = दाँत। कुलुफ = ताला। सुलुफ = कोमल, लचीले। सुढार = अच्छे ढले हुए। गुलुफ = गुल्फ, एड़ी के ऊपर की गाँठ ॥१३॥

रंभा तरु = केले का वृक्ष। कुलफ = ताला, ढकना। सुलफ = मृदुल ॥१४॥

टीका—मोहन के मन के०—रूप के इडुरी पे यह पिडुरी होइ जब तेरे सोच के मोचनहार हैं ॥१५॥

कवि—प्रताप

जगत बितान के उतान युग खभ अव
लब अवनी के जन जीके रखवारे है।
सब के अधार बल बिक्रम के पारावार,
सार मय सरस सुढार निरधारे है॥
कहै 'परताप' कलधौत के उदड कला,
भाई जुग दड काम करन सँवारे हैं।
बरनै सु कवि सदा जिन के प्रबध राम,
सागर उलघ जघ जुगल तिहारे है ॥१६॥

टीका—जगतवितान०—जगतवितान के उतान कहै उलटे दुइ खभ होइ, कलधौत सोना के भाई कहै खरादे दुइ काम के करके दड होइ ॥१६॥

कवि—दास

(नितम्ब वर्णन)

दण्डक-तोतन मनोज ही के फौज है सरोजमुखी,
हाव भाव सायकै रहे है सर सायके।
तापर सलोनी तेरे बस हैं गोविन्द प्यारे,
मैनहूँ के बश भए तरे ढिग आयके॥
तिनहूँ गोबिद लै सुदरशन चक्र एक,
कीन्हो बस भुवन चतुर्दश बनायकै।
काहे न जगत जीतिबे को मन राखै मैन,
दुर्लभ दरश द्वै नितम्ब चक्र पायकै ॥१७॥

टीका—तोतन०—गोविन्द सुदर्शन चक्र लैकै जगत को जीते तो मैन जो काम जगत जीतने को क्यों न मन राखै तेरे दोय नितम्ब चक्र पाय कै ॥१७॥

अवलब = आसरा। चितेरे = चित्रकार। पीडुरी = पिंडली ॥१५॥

बितान = चदोवा। उतान = उलटे। अवलम्ब = सहारे। अवनी = पृथ्वी। पारावार = समुद्र। सुढार = अच्छी प्रकार ढले हुए। कलधौत = सुवर्ण। कलाभाई = सुन्दर खरादे हुये ॥१६॥

तोतन = तुम्हारे शरीर में। मनोज = कामदेव। सरोजमुखी = हे कमल वदनि। हावभाव = कामजनित विकार और तज्जन्य चेष्टायें। सायकैं = बाण ही। सलोनी = प्यारी। गोविन्द = श्रीकृष्ण। मैन = कामदेव ॥१७॥

अगनि मै कैधौ जघ अजब अनग रचे,
गाढ कुच गिरि हित हेत मद चाल के ।
अमृत सो सानी कैधौं सोने की सरसपिंडी,
सोहत है सु दर सुभग सेनी बाल के ॥
विपरीति मडित जघन खभनिम्न कैधौं,
लाह को गिरद गादी मैन महि पाल के ।
कटि रथ चक्र की आकृत यामे पाइयत,
केलि कला बैठक ए रसिक रसाल के ॥१८॥

टीका—यह जघन खभे के नेइ होइ कि मैन वे गादी के गिरदा होइ कि कटिरथ के चक्र कहै पहिया होइ ॥१८॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

(कटि वर्णन)

सबैया–रचक डीठि के भार लहै बहु बार बिलोकनि ईठि अनेसे ।
टूटिहै लागिहै लोक अलोक तबै हठ छूटिहै जूटिहै कैसे ॥
पौन बहै 'बृज' देहमैं लागत देखि परै नहि ऑखिन जैसे ।
तैसे है सूछम छामोदरी कटि केहरि केहरि लकन ऐसे ॥१६॥

टीका—रचक डीठि परे ते भार का लहै है, बहुत ताकत अनैस है क्यों जब टूटि जैहै तो अलोक कहै कलक लगि है, पौन बहत अग में लागत पे देखि नहीं परत तैसे कटि है, केहरि केहरि पद० केहरि कहैं सिंह के हे हरि ऐसो लक नहीं ॥१६॥

कवि—मदन गोपाल

हारी हार धार उर भार त्यौं उरोज भार,
जोबन मरोर जोर दाबे दलियतु है ।

कुचगिरि = स्तनरूप पर्वत । सानी = मिलाई या लपेटी हुई । खभनिम्ब = नीम का खभा । लाह = लाभ, लाख । गिरद = तकिया । गादी = गद्दी । मैन = काम । केलि कला बैठक = काम क्रीड़ा का आसन ॥१८॥

डीठि = दृष्टि । ईठि = प्रेम, रति । अनैसे = अनिष्ट । अलोक = कलक । जूटिहे = जुड़ेगा । पौन = हवा । सूछम = सूक्ष्म । छामोदरी = कृशोदरी । केहरि = सिंह । लकन = कटि ॥१६॥

परग परग पर यहै जिय होत शक,
टूटि न परत कौन पुन्य फलियतु है ॥
कोऊ कहै खरी खीन कोऊ कहै कटि हीन,
'मदन गोपाल' ऐसे चित धरियतु है ।
काहू की न मानौ साँक कहत ही आई नाँक,
ऐसे खीने लाँक पै उलाँक चलियतु है ॥२०॥

टीका—कहत ही आई नाक० यह लोक की कहनावति है कि नाकन माहन सो ऐसे खीन लकपर उलाँक कहै कूदत हौ ॥२०॥

कवि—हरिकेश

दण्डक—लरकी लरक पर भौह की फरक पर,
नैन की ढरक पर भरि भरि ढारिए ।
'हरिकेश' अमल कपोल बिहँसनि पर,
छाती उकसन पर बेसक निहारिए ॥
गहिरो ही गति पर गहिरो ही नाभि पर,
हौं न बरजत प्यारे नेक निरबारिए ।
एक प्रान प्यारी जूके कटि लचकीली पर,
ढीली ढीली नजरि सँभारे लाल डारिए ॥२१॥

टीका—कटि लचकीलो पर ढीली कहै हलुकी नजरि कहै दीठि परै जाते भार न होइ लचकि परै ॥२१॥

कवि—रसलीन

दो०—सुनियत कटि सूक्षम निपटि, निकट न देखत नैन ।
देह मध्य यौं जानिए, ज्यौं रसना मे बैन ॥२२॥

टीका—जैसे जिह्वा में बचन है देखि नहीं परै तैसे कटि है ॥२२॥

हारी=मनोहर । उरोज=स्तन । दलियतु=दमन करना । परग परग=डग डग पर । खराखीन=अत्यन्त क्षीण । साँक=शंका । लाँक=लंक, कटि । उलाँक=उछल कर ॥२०॥

लर=हार । लरक=चंचलता । अमल=स्वच्छ । उकसन=उभार, औन्नत्य । बेसक=निस्सन्देह । निरवारिये=हटाइये ॥२१॥

निपटि=अत्यन्त । रसना=जिह्वा । बैन=वचन ॥२२॥

कवि—केशव दास

दण्डक—भूत की मिठाई जैसी साधु की झुठाई तैसी,
स्यार की ढिठाई ऐसी छीन छहरित है।
धीरा कैसो हास 'केशौदास' दास केसे सुख,
सूर कैसी शक अरु रक कैसो चित है॥
सूम कैसो दान मति मूढ कैसो ज्ञान गोरी,
गौरा कैसो मान मेरे जान समुदित है।
कौन धौं सँवारी बृषभानकी कुमारी यह,
तेरी कटि निपटि कपट कैसे हित है॥२३॥

टीका—भूतकी मिठाई—झूठ है कहिबे को साधुकी झुठाई कहिबे को स्यार की ढिठाई नहीं है कहिबे को इत्यादि पदन म ऐसो जानो॥२३॥

(छुद्रघंटिका वर्णन)

रागिनी को मडल रची है कामदेव कीधौं,
रागिनी समेत रचना है चित चोरी की।
कैधौं नाभि कूप की रहट धरी रूप भरी,
ढरी अनढरी है विचित्र भाँति भोरी की॥
कैधौं है 'दिनेश' अलि वेश कोऊ मोहिनी को,
मोहन को मोहे मन बैन धुनि थोरी की।
कैधौं बर बाजन बिराजत नितम्ब ढिग,
छाजत छबीली छुद्र घटिका किशोरी की॥२४॥

टीका—यह छुद्रघटिका नहीं होइ रागिनी को मडली है की नाभी कूप की रहट होइ कैधौ बाजन होर नितम्ब के ढिग॥२४॥

कवि—रसलीन

दोहा—उदर सुधा सर बुद विधि, लसत कमल की पाँति।
ता पाछे किंकिन परी, कमल भँवर की भाँति॥२५॥

धीरा = नायिका विशेष। रक = दरिद्र। सूम = कजूस॥२३॥

रहट = कुएँ से पानी निकालने का एक यत्र। ढरी अनढरी = गिरी या भरी हुई। भोरी = भोली। अलिवेश = भौंरे के रूप में॥२४॥

किंकिन = क्षुद्रघटिका॥२५॥

टीका—सुधा सरमें कमरा पर भँवर होइ ॥२५॥

कवि—मनिकंठ

(नाभी वर्णन)

दडक—कैधौं यह परम अनूप रूप सरिता को,
भ्रमत भँवर जोर भँवै पिय मान है।
सहज सिंगार की गुफा है जहाँ मेन बैठि,
ऐसे मन्त्र जपै शभु दंभ दै बिकान है॥
कैधौ 'मनिकण्ठ' यह आनँद भवन वेह,
जाहि देखिबे ही प्रन सौति को निदान है।
वारी हौ तिहारी बड़े भाग मै निहारी सुनि,
कैधौं प्रान प्यारी तेरी नाभी निरमान है ॥२६॥

टीका—यह सिंगार की गुफा होइ जहाँ मैन महादेव जीतिको मन्त्र जपै है कि यह आनद भवन को वेह कहै द्वार होइ ॥२६॥

कवि—कालिदास

राजत गँभीर रोमावली बन तीर मन,
तीर पहुँचे ते भूले त्रिबली डबर मैं।
भूरि भीर भारी छबि छलक सिंगार पानी,
'कालिदास' देखत भँवर क्यों न भरमै॥
ऊबी नेक ही मै डूबी गई लरिकाई ताते,
रहिये छपाय सखी बाहिर नगर मैं।
चचल गोपाल खेलै गोकुल की गली बीच,
बड़ी करवर तेरे नाभी सरवर मै ॥२७॥

टीका—गोपाल चचल या गली मे खेलै है, तेरो नाभी सर में न परि जाइ बडो करवर कहै कराल है ॥२७॥

अनूप=अत्यन्त सुन्दर। भँवै=घूमता है। वेह=द्वार, दरवाजा। वारी=निछावर ॥२६॥

त्रिबली=पेट पर की तीन बलें। डबर=कुड। भँवर=जल का आवर्त। भरमै=घूमै। ऊबी=उद्विग्ना, परेशान। लरिकाई=बालपन। करवर=कुलबुलाहट, कलरव ॥२७॥

कवि—दास

(उदर वर्णन)

कैसी भरी एती ए ती अद्भुत निकाई भरी,
छामोदरी पातरी उदर तेरो पान सो।
सकल सुदेस अग बिहरि थकित ह्वै कै,
कीबे को मिलान मैं रमन को अमान सा।
उरज सुमेर आगे त्रिबली बिमल सीढी,
सोभा सर नाभि सुभ तीरथ समान सा।
हारन की भाँति आवागौन की बँधी है पाँति,
मुकुत सुमन बृद करत नहान सो ॥२८॥

टीका—उरज सुमेर आगे त्रिबली सीढी सोभासर में नहाइ हारन की भाँति आवागौन की पाँति मुकुत कहै मुक्त है जाइ, मुकुत कहै मोती हारन में है ॥२८॥

कवि—भरमी

कोमल बिमल काम भूप की सुरगभूमि,
पान को सो दल चलदल को सो पात है।
मोहन के मन की मनोरथ की मोहनी कै,
सौति के सतायबे को सोभा सरसात है ॥
नाभि रस कूप की सुघाट मिलि सीढी डारी,
दरत न डीठि नीठि नीठि दरसात है।
'भरमी सुकबि' रोम राजीकी बिराजी छबि,
उरज अनूप ऐसे सुभग सुहात है ॥२९॥

टीका—काम भूप की सुरगभूमि होइ ॥२९॥

एती = इतनी। एती = स्त्री। निकाई = सु दरता। छामोदरी = कृशोदरी। पातरो = पतला। अमान = मान छोड़कर। उरज सुमेर = मेरु पर्वत के समान स्तन। आवागौन = आना जाना। मुकुत = विरक्त, मोती। नहान = स्नान ॥२८॥

सुरगभूमि = सुन्दर क्रीडास्थली। दल = पत्ता। चलदल = पीपल। डाठि = दृष्टि। नाठि नीठि = थोड़ा थोड़ा ॥२९॥

(त्रिवली)

दण्डक–कैधौ मैन भूपति के रथ के सुचक्र चले,
तिनही की लीकैं उर भू मे जान तौन है।
कैधौ मन ठग की गली ये भली ठगिबे की,
कीधौ रूप नदी ह्वै तिधारा कियो गौन हैं॥
ऐसी छबि देखिये री मोहे मनमोहन जू,
याते मैं हूँ जानी येई मोहिबेको मौन है।
येक बली सबही को बस करि राखत है,
त्रिबली जो करै बस अचरज कौन है ॥३०॥

टीका—रूप नदी त्रिधारा करि चली है, एक बली तौ सबको बस करि सकत है त्रिबली कहै जहाँ तीनि बली होइ तौ बश करै तो कौ। अचरज है ॥३०॥

कवि—मनिकण्ठ

अमल अनग के अनद की उदित भूमि,
जीति पिय बाजी दगाबाजी सी पसारी हैं।
कनक के पान से उरज मै उदित दुति,
त्रिबली तिहारी मैं निहारि मनिहारी हैं॥
रूप गुन चातुरी सो सुर नर नागन को,
जीते 'मनिकण्ठ' बिधि सोहै रेख सारी हैं।
सौति सुख उतरे को पिय प्रेम चढ़िबेको,
कुदन की प्यारी पैरकारी सी सँवारी हैं ॥३१॥

टीका—पैरकारी कहै चढै उतरै की सीढ़ी होय ॥३१॥

मैन भूपति = काम नृप। लीकैं = रेखायें। उरभू = स्तन। तिधारा = तीन धाराओं वाला। मोहिबे को मौन = जादू गर। बली = बलवान ॥३०॥

उदितभूमि = उदयस्थल। बाजी = दाँव। कुन्दन = सुवर्ण। पैरकारी = सीढ़ी ॥३१॥

(रोमराजी वर्णन)

सवैया-बैठी मलीन अली अवली कि सरोज कलीन सो है बिफली है।
शभुगली बिछुरो ही चली किधौ राग लली अनुराग रली है॥
तेरी अली यह रोमावली की सिगार लता फल फैलि फली है।
नाभि थलीते जुरे फल द्वै कि भली रसराज नली उछली है ॥३२॥

टीका—यह रोमावली न होय, शभुगली कहै उरोज के बीच, राग रली कहै रागन की कुमारी होय की नाभी थल ते जुरे है द्वै फल की रसराज की नली होइ ॥३२॥

कवि—अज्ञात

कैधौं यह पान पै बसीकरन मत्र लिख्यौ,
देखि छबि मोहे कोऊ बिद्या पचसर की।
हृदय सरोबर सिगार जल भर्‍यो कैधौं,
उमड़ि चल्यो है नाभि कुडिका गहर की॥
छोटे छोटे आखरन अबला लिखायो याते,
आपनी सफलताई सुरत समर की।
जिन्हैं देखे नैनन की गति मति भाजी यह,
तेरी रोमराजी कैधौं बाजी बाजीगर की ॥३३॥

टीका—यह रोमराजी न होय वशीकरन मत्र की सिंगार को जल होय हृदय सरोवर मे की अक्षर होय सूरति रति कहै समर कामके की बाजी होइ बाजीगर की ॥३३॥

कवि—दिनेश

यौवन सरोवर मे अलक झलक कैधौ,
नेह नवबेली नाभि कूपते बिराजी है।
खजन नयन हरि बाँधिबे की बद्धी कैधौं,
राजत सुदेश महाबाँकी छबि छाजी है॥

अली अवली = भौंरा की पक्ति। विफली = निराश। शभुगली = दो स्तनो के मध्य का भाग। अनुरागरली = प्रेम में पगी। जुरे = जुड़े हुए। रसराज = शृगार ॥३२॥

पान = ताम्बूल। पचसर = कामदेव। गहर = गाढ़ा। आखरन = अक्षरो से। बाजी = खेल। बाजीगर = मदारी ॥३३॥

उदर अभूत निकसत श्याम राजै मुख,
महा अभिराम कामकीनी कैधौ बाजी है।
राखी अवरेख हिये मोहनी 'दिनेश' देखि,
रोम रोम राजी ताते नाम रोमराजी है ॥३४॥

टीका—की रजन नेत्र के बाँधिबे की बद्धी होइ, रोम रोम राजी है याते रोमराजी है ॥३४॥

कवि—मुकुन्द

सवैया—कनकाचल कंदर अंदर ते निरबात सिंगार लता लटकी।
तिय रोमवली किधौं सकर द्वै लखि बाल भुजंगिनि है ठटकी॥
चकवातकि कै 'कवि लालमुकुन्द जू' मीर सिकार दई फटकी।
मनु मैन मलंग चढ्यौ थकि तुंग जँजीर अरीन परै झटकी॥३५॥

टीका—कनकाचल०—कनक के गिरि अन्दर मे सिंगार की लता होइ लटकी है की उरोज महादेव द्वै के बीच भुअंगिनि होय, की कुच चकवा देखि मीर सिकार फटकी दियो, की मैन मलग ऊँचे चढ्या थकि परे जजीर होय यह रोमावली नहीं ॥३५॥

कवि—आलम

(उरोज वर्णन)

दंडक—मौनी विधि गंग तीर करत तपस्या किधो,
काम के तुका से लागे उठन उठौना के।
जोबन नरेश चौगान के निशान कैधौं,
श्रीफल ते सरस खिलौना फूल दोना के॥
'आलम' कहै हैं कलधौत के कलस कैधौं,
आनन्द के कन्द की मनोज रस होना के।
स्वेत कंचुकी मे कुचखपे नन्दनन्द प्यारी,
फटिक के सम्पुट में द्वै सरोज सोना के॥३६॥

अलक झलक = बालों की चमक। नवबेली = नई लता। बद्धी = रस्सी। अभिराम = मनोहर। बाजी = खेल। अवरेख = चित्रित करना ॥३४॥

कनकाचल = सुमेरुपर्वत। कंदरा = गुफा। निरबात = वायुरहित, निश्चल। सकर द्वै = दो शिव (दो स्तनों से अभिप्राय है)। बालभुअंगिनि = छोटी सर्पिणी। ठटकी = रुक गई। मैन = कामदेव। मलंग = सचान। तुंग = ऊँचे। अरी = अड़ गई ॥३५॥

टीका—की दुइ मौनी तप करै है की काम के तुका के लग उठे ई की जोबन नृप के निसाना होयँ, फूल के दोना ई की कचुकी फटिक के सपुट तामैं कुछ द्वै सरोज होय सोना के ॥३६॥

कवि—तारा

कैधौं विवि नीलकठ बसत सुमेरु पर,
मधुकर मति कैधौ सपुट सरोज हैं।
उलटे अछिद्र ताल श्रीफल रसाल कैधों,
यौबन के बाले कैधौं जने इक रोज है॥
पिय चवगान के निशान कैधौं 'ताराकवि',
तूँबा तरुनाई सिधु तरिबे को बोज हैं।
कुजर के कुम्भ की कलस युग कचन के,
मदन के मठ कैधौ कठिन उरोज हैं ॥३७॥

टीका—की दुइ नीलकण्ठ कहे महादेव होइ, की कुचपर श्यामता सो मधुकर होइ याते सरोज कहे कमल पर की उलटे तालफल होइ, की जोबन के बालक होय दुइ एकै दिन जनमे हैं की तरुनाई सि धु तरिबे के तूँबा होइ, की कुजर के कुम होइ ॥३७॥

कवि—रतन

सोहत सुरगु मुख रग मै दुरग सोहैं,
जिन रग सोहैं रग को है नारँगी पके।
'सुकवि रतन' सरबसी भरे उर बसी,
तरबसी करै उरबसी के समीप के॥

मौनी = अबोल। विवि = दो। तुका = ठूँठे तीर। निशान = पताका। श्रीफल = बेल या नारियल। कलधौत = सुवर्ण। कचुकी = चोली। खपे = ढँके हुए। सपुट = डिब्बा। सरोज = कमल ॥३६॥

नीलकठ = शिव। मधुकर = भ्रमर। ताल = ताड़ के फल। रसाल = आम। बाले = बच्चे। जने = उत्पन्न हुए। तूँबा = तुम्बे, लौवे। बोज = बल। कुजर = हाथी। कुभ = हाथी के सिर के दोनों ओर उभड़े हुए भाग। कचन = सुवर्ण। मठ = स्थान ॥३७॥

चमकत चीकने कपूर मनि कैसे वोप,
ओकत बिलोकत बिबेक ज्ञानदीप के।
सरस सरोजमुखी तेरे ए उरोज मूँगा,
मीर मसनदी मानो मदन महीप के ॥३८॥

टीका—रतन सरबसी कहै सरबस भरे है, उरबसी कहै उर मे बसे हैं, तरबसी करै कहै नीच बसावत हैं, उरबसी कहै इ द्र की अप्सरा के ढिग जे रहत हैं, बातर कहै कीचे बनावत है, उरबसी कहै हार को, तेरे उरोज मूँगा मीर मसनदी होइ की मदन महीप के ॥३८॥

कवि—जीवन

महा मजु नाभी सर सरूप के सलिल वर,
रोमावली नाल पर लसै भाँति भली है।
उदर रुचिर याते सोई बरनी न जात,
सिर पर स्यामता मधुप दुति रली है॥
बासना बलित अति ललित परसबे को,
पियमन मोहन की मनसा हू चली है।
'जीवन' नवीन दृग देखे होत लीन नव,
नागरी के कुच कैधौं कजन की कली है ॥३९॥

टीका—नाभी सर रूप जल रोमावली नाल पर लसै सिर श्यामता भौंर कुच कौल कली है ॥३९॥

लाल लाल रेसम की डोर सो बनाए जाल,
बाँध्यौ तकसीर बद जानि के सरासरी।
फटिक के भूमि माह दै दै मार्‌यौ बार बार,
ज्यौं ज्यौं वै उछारे त्यौं त्यौं सीस पै परापरी।

सुरग = सुन्दर रगीन। दुरग — दो रगों वाले। नारगी = सतरा। सरबसी = सर्वस्व। उरबसी = हृदय में स्थित। तरबसी = नीचे रहनेवाली। उरबसी = अप्सरा। वोप = प्रकाश। उरोज = स्तन। ॥३८॥

सरूप = स्वरूप। लसै = शोभित हैं। मधुप दुति = भौंरे की कांति। रली = पगा। बलित = युक्त। परसबे = स्पर्श करने। कजन = कमलों की। कली = कोंपल ॥३९॥

तऊ ऐसो निलज विचारै नहीं हारि जीति,
कुच के समान तनि नजर खराखरी।
नैननि सो हेरि हेरि कहत है बेर बेर,
गेंद दई मारे फेरि करिहै बराबरी ॥४०॥

टीका—फेरि गेंद ऐसो मेरो बराबरी करि है ॥४०॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

(कर की अंगुली वर्णन)

सवैया—की सुषमा सर कंज सनाल फुलाने है पुंज प्रभा परसै।
की करि सावक सुंड दलै कदली दुख दीनन के सरसैं॥
राम लला कर औ अंगुरी कहि 'गोकुल' यौ छबि को बरसैं।
पाँचई पात की पल्लव द्वै कलपद्रुम डारहि मे दरसैं ॥४१॥

टीका—यह अँगुरी न होइ पाँच पात की दुइ पल्लव कल्पवृक्ष के डार की है ॥ ४१ ॥

कवि—सेनापति

(मेंहदीयुत अंगुरी वर्णन)

दंडक—कोमल कमल कर कमल विलासिनि के,
रचि पचि कीन्ही बिधि सुन्दर सुधारी है।
राजत जराऊ अँगुरीन मै अँगूठी पुनि,
द्वै द्वै छला दुति राखि पोर यौ सँवारी है॥
मेंहदी की बूंद यौं बिराजति है बीच लाल,
'सेनापति' देखि पाए उपमा बिचारी है।
प्रात ही अनन्द ते अरुन अरबिन्द मध्य,
बैठी इन्द्र गोपिन की मानो पाँत बारी है ॥४२॥

तकसीर = अपराध। बद = बधन। परापरी = पट पट पडता रहा। खराखरी = एकटक ॥४०॥

सुषमा = अत्यन्त शोभा। करिसावक = हाथी का बच्चा। कलपद्रुम = कल्पवृक्ष ॥४१॥

बिधि = विधाता, ब्रह्मा। जराऊ = रत्न जड़े हुए। छला = अंगूठी। पोर = अंगुली की गाँठ। अरुन अरबिन्द = लाल कमल। इन्द्रगोपिन = बीर बहूटियों की। पाँत = पंक्ति। बारी = छोटी सी ॥४२॥

टीका—अरविंद के मध्य इंद्रवधू कहे बीरबहूटी बरसा मे होत तिनकी पतवारी होइ ॥४२॥

(नख अंगुली वर्णन)

दडक—मानो अधि गुञ्जिका से चंचुक चकोर चख,
चावक चमकचीज बिद्रुम तमाल के।
चेटक के चिन्ह कैधौ नाटक के सुन कैधौं,
हाटक के हुन्न देश दच्छिनके चाल के॥
जड़ित जराय मधु नायक अमोल मोल,
गोल गोल मोती मानो मनि हैं नृपाल के॥
अंगुरी अनीकी नीकी कनक कनी सी कैधौं,
कामिनी के नख कै नगीना काम लाल के॥४३॥

टीका—काम के लाल को नगीना है ॥४३॥

कवि—दास

सवैया—पत्र महारुन एक मिलायके लाइ छिमी तरुनी रग दीन्हे।
पाँखुरी पचको कजकी भानु मैं बान मनोजके शोणित भीने॥
पच दशानके दीपक सोकर कामिनिके लखि 'दास' प्रवीने।
लालकी बेंदुली लालरीकी लरी यौं युत न्याय निछावरि कीने॥४४॥

टीका—पाता लालमें मिलाइ कै छिमी होइ, की पाँच पँखुरी कज की की पाँच बान शोणित लगे काम के, की पचदशा कहे पाँच बाती दीप की होइ ॥४४॥

कवि—दिनेश

(भुजा वर्णन)

दडक—कचन लता सी चपला सी नाह नेह फाँसी,
मदन बिलासी काम केलि बेलि बाढी है।
परसत कोमल अमल मखमल हू ते,
दरसत लागत 'दिनेश' दुति गाढी है॥

चचुक=मृग। चख=चक्षु, नेत्र। चेटक=टोना। नृपाल=राजा॥४३॥

पाँखुरी पच=पाँच पखड़ियाँ। कज=कमल। मनोज=कामदेव। शोणित भीने=रक्त से सने। पचदशान=पाँच बत्तियों के ॥४४॥

हीरामनि लाल की अंगूठी अँगुरीन राजै,
मोहन के साथ मन मोहन सी ठाढी है।
भुजन निहारि अनुमान कै मृनाल मंजु,
सुघर सँवारी मानो काम कूट काढी है ॥४५॥

टीका—सुगम ॥४५॥

कवि—प्रताप

दंडक—सील की छमा है अनिमा हैं दिज दीननकी,
सुयश जमा है कै उमा है देन वर की।
रक्षक सदा है बल बिक्रम अदा है भीम,
गदा कै ददा हैं सिच्छदा हैं कवि कर की ॥
समर उजा है दुज दोप बिरजा है सदा,
पूजी जे कुजा हैं अनुजा हैं हिमकर की।
धरम धुजा है देन शत्रुन सजा हैं पुन्य-
पालन प्रजा हैं द्वै भुजा है रघुबर की ॥४६॥

टीका—धरम की पताका होइ ॥४६॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

(पीठि वर्णन)

सवैया—मानो मनोज की पाटी लिखे हित मत्रनकी परिपाटी बसीठि है।
जात उनै उनै कांतिके भारन जात दुनै दुनै जो परै दीठि है ॥
'गोकुल' बालके अंग बिलोकिहौं औरन को तब प्रीति उनीठि है।
कंचन केदलि के दल ऊपर सोवत साँपिनि बेनी न,पीठि है ॥४७॥

टीका—कंचन केदली के दल पर साँपिनी होय ॥४७॥

कंचन = सुवर्ण। चपला = बिजली। कामकेलि = काम क्रीड़ा। बेलि = लता। दुति = कांति। मृनाल = कमलकी नाल। काढ़ी = बनाई गई ॥४ ॥

छमा = क्षमा, पृथ्वी। अनिमा = सिद्धि। दिज = ब्राह्मण। जमा = पूँजी। उमा = पार्वती। अदा = चुकता। ददा = श्रेष्ठ, बड़े। सिच्छदा = सीख देने वाली। उजा = बलवान्। बिरजा = शून्य। कुजा = पृथ्वी से उत्पन्न, साता। अनुजा = बहिन। हिमकर = चन्द्रमा। धरमधुजा = धर्म की पताका ॥४६॥

मनोज की पाटी = कामदेव की तख्ती। परिपाटी = क्रम। उनै उनै = झुक झुक। दीठि = दृष्टि। कंचन केदलि = सुवर्ण केला। दल = पत्ता। बेनी = चोटी ॥४७॥

कवि—दास

'दास' प्रदीप शिखा उलटी कि पतग भई अवलोकत दीठि है।
मगल मूरति कचन पत्रकी मैन रच्यौ मन आवत नीठि है॥
काटि किधौ केवली दल गोफ को दीन्हा जमाइ निहारि अंगीठि है।
कॉधते चाकरी पातरी लक लौ सोभित मानो सलोनी की पीठि है ४८

टीका—कॉधते चाकरी, सुगम ॥४८॥

कवि—भरमी

आरसी बिमल पर नारी की सँवारी किधौं,
रूप के प्रवाह काम भूप चल्यौ जात है।
कैधौं कलधौत कैसी भूमि सुरमारग है,
मानको सुभाव कैधौं केदली को पात है॥
कैधौं यह भोडर के तबक तिलोछि धरे,
'भरमी सुकवि' कोऊ उपमा न गात है।
सरस सुघाट सुख आनन्दकी बाट कैधौं,
प्यारी तेरी पीठि देखि डीठि न समात है ॥४६॥

टीका—की यह भोडर को तबक होइ, भोडर नाम अबरक ॥४६॥

कवि—रसलीन

दो०—यक तरु घेरु लह्यो इतै, यह अचरज की बात।
द्वै तरु कदली जॉघ मै, पीठि एक दुइ पात ॥५०॥

टीका—द्वैतरु केदली जॉध तामै एक पत्र पीठि है ॥५०॥

जोरि रूप सुबरन रची, विधि रचि पचि तव पीठि।
कीन्ही रखवारी तहाँ, ब्याली बेनी ढीठि ॥५१॥

टीका—सुबरनकी पीठि तहाँ बेनी साँपिनि रखवारी किए ॥५१॥

मैन=कामदेव। नाठि=अरुचि। गोफ=नया निकला हुआ मुँह बँधा पत्ता। कॉध=कन्धा। चाकरी=चौड़ी। पातरी=पतली। लक=कटि। सलोनि=सुन्दरी ॥४८॥

आरसी=दर्पण। कलधौत=सुवर्ण। सुरमारग=देवपथ। भोडर=अभ्रक। तबक=पत्तर को पीटकर बनाया हुआ पतला वरक। तिलोछि=तेल लगाकर ॥४६॥

घेरु=घेर; गोलाई। सुबरन=सुवर्ण, सुन्दर स्वरूप। ब्याली बेनी=लटरूपी सर्पिणी ॥५१॥

कवि—मनिकंठ

(ग्रीवा वर्णन)

सुख को सदन देखि मदन मुदित होत,
बारिज बदन सुभ नाल सी बिसेखिए।
चारौ रीति नवो रस * हावभाव की प्रतीत,
छबि सो लपेटि हेम पिंडी कै उरेखिए॥
कैधौ 'मनिकठ' तीनि लोक की तरुनि जीति,
दुति तेही भाँति भाँति तीनौं रेखा लेखिए।
कनक के कबु कमनीयता के अबु भेटे,
आनद के सींव की अमोल ग्रींव देखिए॥५२॥

टीका—कनक के शख ताते अबु भेट ग्रीव॥५२॥

कवि—मंडन

तेरे मुख गावत गुपाल जू के गुनगन,
सारदा जो रहति है उर मे उरेखिए।
जिनके वै 'मडन' फटिक माल हार हाँस,
हिए पर तेई वै सिगार करि लेखिए॥
तेरे नेक बोल सो तौ सुर को सुहाग कोऊ,
मीठो राग सुनि रीझि रीझि करि तेखिए।
तोरि डारी तीनो ताँत मेरे जान बीन की तै,
प्यारी तेरे गर मै ये तीनो लोक लेखिए॥५३॥

---

* काव्य के आत्मस्वरूप रसकी परिपोषक पदसघटना 'रीति' कहलाती है इसके ४ प्रकार हैं—

१—वैदर्भी, २—गौडी, ३—पाञ्चाली, ४—लाटी।

नौरस ये हैं—१ शृगार, २—हास्य, ३—करुण, ४—वीर, ५—रौद्र, ६—भयानक, ७—अद्भुत, ८—बीभत्स, ९—शा त।

सदन=गृह। मदन=काम। मुदित=प्रसन्न। हेमपिंडी=सुवर्णका गोला। उरेखिये=अकित कीजिये। दुति=द्युति, काति। कबु=शख। अबु=जल। सींव=सीमा। ग्रींव=ग्रीवा, गरदन॥५२॥

सारदा=सरस्वती। मडन=अलकार। हाँस=हँसी। सुहाग=सौभाग्य। तेखिये=बिगडना, क्रुद्ध होना। ताँत=तन्तु, तार॥५३॥

टीका— तोरि डारी नीर की तीनो तानि तेरे गर मे तीनो लोक लेखिये ॥५३॥

कवि—प्रताप

निदर निकाई कल कबु औ कपोतन की,
सरस सुढार पारावार छवि पाथ की।
त्रिभुवन जीतिबे को त्रिगुन त्रिरेखा युत,
करन सदा जो सुभ सुजन सनाथ की ॥
कहैं 'परताप' बुद्धि बल की अमाय त्रयी,
ताप हर प्रबल प्रताप गुन गाथ की।
भीमा अरि कुल की अतुल बल थीमा एक,
सीमा सुख सिन्धु की कि ग्रीमा रघुनाथ की ॥५४॥

टीका—अरिकुल मारिबेको भीम है ॥५४॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

(मुख वर्णन)

सवैय—राम लला मुख की सुपमा दुरि जात है दर्पन दीह बिलासै।
आनन के उपमान है आनन ज्यों लखियें त्यों निकाई निकासै ॥
कैसे कहौं अरबिंद से है कुँभिलात लगे 'बृज' भान के भासै।
द्यौस न मद अमद निशा मई इदु कहाँ दिन रैन प्रकासै ॥५५॥

टीका—द्यौस में मंद नहीं रैनि मे अमद अस चंद्रमा नहीं है ॥५५॥

कवि—धुरंधर

सुधा के पयोधि करि मज्जन अरुन अग,
केशर के रग की बनक जब गहैगो।
'सुकवि धुरधर' सकल रूप सागर की,
सोभा को सकेलि काम केलि पुन्य लहैगो ॥

निकाई=सुन्दरता। सुढार=अच्छी प्रकार ढाले (बनाए) गये। पारावार=समुद्र। पाथ=जल। अमाय=कोप। भीम=भयकर। ग्रीमा=ग्रीवा, गरदन ॥५४॥

सुषमा=परमशोभा। दुरि जात=छिप जाता। दाह=देह। उपमान= जिससे उपमा दी जाती है। निकाई=सुन्दरता। कुँभिलात=मुरझा जाते है। भान=भानु, सूर्य। द्यैस (द्यौस)=दिवस, दिन ॥५५॥

सोरहौ कलानि पूरि पूरन कलक बिन,
निसि दिन सदा एक रूप जब रहैगो ।
येरे चद सरद के राधिका बदन सम,
तब तोसो कोऊ कबि कहैगो तौ कहैगो ॥५६॥

टीका—एरे चद तब कोऊ कहैगो, सुगम ॥५६॥

कवि—भंजन

कोउ कहै है कलक कोऊ कहै सिधु पक,
कोउ कहै छाया यह तमोगुन के भाग की ।
कोउ कहै राहु रद कोऊ कहै मृग मद,
कोऊ कहै नीलगिरि आभा आसपास की ॥
'भजन जू' मेरे जान चन्द्रमा को छलि बिधि,
राधे को बनायो मुख कान्ह के बिलास की ।
ता दिन ते छाती छेद भयो है छपाकर के,
देखियत वार पार नीलता अकास की ॥५७॥

टीका—कोऊ कहै कलक पक छाया तमोगुन की राहु रद लग्यो है, मृगमद है, नीलगिरि की आभा है, चद्रमा को छलि कै बनाए मुख राधे के वाही दिन ते छाती में छेद भयो चद्रमा के ताही ते मग नीलता होइ देखि परत अकाश की ॥५७॥

सूर मे न नील होत उगत नवीन ह्वै कै,
कुहू मै न छीन होत सोभा दई दियो है ।
कालिमा की अक नाहीं पूरण कलक बिनु,
रहत निशक अमी अमरन पियो है ॥
बिनु पग मृग रथ अचरज की है हद,
लाग्यो नहीं राहु रद ऐसो रमनियो है ।
'भजन जू' इन्दु एक अचरज देखियत,
कनक के लता पर उदै आनि कियो है ॥५८॥

सुधा = अमृत । पयोधि = समुद्र । मजन = स्नान । बनक = शोभा । केलि = क्रीडा ॥५६॥

पक = कीचड । राहुरद = राहु का दाँत । मृगमद = करतूरी । नीलगिरि = पर्वत विशेष । छलि = छलकर । छपाकर = चन्द्रमा ॥५७॥

सूर = सूर्य । दई = विधाता । कालिमा = कलक । अङ्क = चिह्न । अमी = अमृत । अमरन = देवताओं ने । राहुरद = राहु का दाँत ॥५८॥

टीका—इंदु कनक के लता पर कहै है, कनकलता तन मुख चंद्रमा ॥५८॥

कवि—चितामनि

सुन्दर बदन राधे सोभा को सदन तेरो,
बदन बनायो चारि बदन बनाय के।
ताकी रुचि लेन को उदय भयो रैनपति,
राख्यो मति मूढ निज कर बगराय कै॥
कहै कवि 'चिन्तामनि' ताहि निसि चोर जानि,
दियो है सजाय पाकसासन रिसाय कै।
याते निसि फेरै अमरावती के आस पास,
मुख मै कलंक मिसि कारिख लगाय कै ॥५६॥

टीका—राधा के बदन चारि वदन बनायो, ताहि देखि चंद्रमा अपनो कर बगरायो रुचि लेन हेत, चोर जानि पाकशासन इंद्र पकरि अमरावती के आसपास मुख मे कारिख लगाइ फिरावै है ॥५६॥

कवि—दास

आवै जित पानिप समूह सरसात नित,
मानै जलजात सो तौ न्याय ही कुमति होय।
'दास' या दरप को दरप कन्दरपको है,
दर्पन समान ठानै कैसे बात सति होय।
और अबलानन मे राधिकाको आनन,
बरोबरी को बल करै कबिकूर अति होय।
पैये निसिबासर कलंकित न अंक ताहि,
बरनै मयंक कबिताई की अपति होय ॥६०॥

टीका—चंद्रमा सम कहै राधे के बदन तौ कविताई को खराबी है या दरप को दरप कहै तेज काम को दरप का होइ ॥६०॥

चारिवदन = ब्रह्मा। रैनिपति = चन्द्रमा। बगरायकै = फैला कर। पाकसासन = इन्द्र। अमरावती = इन्द्र की नगरी। मिसि = बहाने से ॥५६॥

पानिप = द्युति, कांति। जलजात = कमल। दरप = दर्प, अहंकार। कंदरप = काम। सति = सत्य। कूर = दुष्ट। मयंक = चन्द्रमा। अपति = अप्रतिष्ठा ॥६०॥

कवि—प्रताप

सोभा सुख सागर को सुखद सरोज अति,
ओजमय परम प्रकास लहियतु है।
सुमद कुजा को सुख कुमुद विकासकारो,
पूरन कलाधर बखान बहियतु है।
कीबे को बदनको समान उपमान आन,
सुमुख सुकवि जीहा कोरि चहियतु है।
करि न सकत सहसानन बखान राम,
रावरे सुआनन अनूप कहियतु है ॥६१॥

टीका—सहसानन नहीं बखान करि सकत ॥६१॥

कवि—नाथ

(शीतला दाग वर्णन)

दण्डक-पूरण मयक कैधौ मेटि कै कलक कियो,
अक मै समेटि कै नखत बड़ भाग है।
कैधौं रगरेज मैन बाँधनू बिचित्र बांध्यौ,
कैधौं रूपछीर मैं उफनि आयो झाग है ॥
कैधौं नए सोभाके बये है बीज रचि रचि,
कचन के भूमि मैं जड़ित पुष्पराग है।
'नाथ' अनुराग है की फूल्यो मैन बाग है की,
सौति को सुहाग है की शीतला को दाग है ॥६२॥

टीका—पूरन चद्र में नखत होय की मैन रगरेज चूनरी बँधुरू कहै बूटेदार बाँधे है, की बीज कचनके भूमि पर बोये हैं की सोन पर पुष्प राग मनि जड़े हैं, रूप छीर कहै दूध में झाग कहै फेना उफलान है, अनुराग की मैन बाग है ॥६२॥

ओजमय = शोभा सपन्न। कुजा = सीता। कलाधर = चन्द्रमा। जीहा = जिह्वा। सहसानन = शेष। रावरे = आपके ॥६१॥

मयक = चन्द्रमा। अक = चिन्ह। नखत = नक्षत्र, तारे। मैन = कामदेव। बाँधनू = नई डिजाइन बनाने के लिए बाँधा गया साड़ी का बँधान। बये = बोये। पुष्पराग = पुखराज। मैन बाग = काम का बगीचा ॥६२॥

कवि—रसलीन

दो०— दाग शीतला को नहीं, मृदुल कपोलन चार ।
चिन्ह देखि इन ईठि के, परो डीठि के भार ॥६३॥

टीका—दागशीतला०—यह दाग नहीं है मित्र के दीठि की भार है ॥ ६३ ॥

(स्वेदकन वर्णन)

अमल कपोलन स्वेदकन, दुगन लगत यह रूप ।
मानहु कचन कम्बु पै, मोती जड़ी अनूप ॥६४॥

टीका—अमल कपोल०—कचन के शख पर मोती होठ ॥६४॥

कवि—बलभद्र

(चिबुक वर्णन)

दण्डक-कनक बरन कोकनद के बरन और,
झलकत झाँई तामें बसन रदन की ।
कीनी चतुरानन चतुर ऐसी रचि पचि
अलप सी चोकी चारु आसन मन्न की ॥
अगुल से बान उपमान की अवधि सब,
सुमिल सोपान मानो श्रीयके सदन की ।
सुन्दर सढार है चिबुक नव नायिका को,
मानो 'बलिभद्र' बादसाही है बदन की ॥६५॥

टीका—कनक बरन०—बसन रदन नाम वोठ, यह मदन की चोकी होइ, सोपान नाम सीढ़ी श्रीय के सदन कहै शोभा के घर की ॥ ६५ ॥

ईठि = इष्ट, प्रियतम । डीठि = दृष्टि, नजर ॥६३॥

अमल = स्वच्छ । कचन कम्बु = सोने का शख ॥६४॥

कोकनद = लाल कमल । बसनरदन = दंताच्छादन, ओठ । चतुरानन = ब्रह्मा । अल्प = अल्प, थोड़ी । मदन = कामदेव । सोपान = सीढ़ी । श्रीय = श्री, शोभा । सुढार = सुन्दर ढली हुई । बदन = मुख ॥६५॥

कवि—दिनेश

(चिबुकन मै बुन्द वर्णन)

प्यारी के ठोढी को बिन्दु 'दिनेश' किधौ बिसराम गुबिन्द के जी को।
चारु चुभ्यौ कनिका मनि नील को केधो जमाव जम्यौ रजनी को॥
कैधौ अनग सिंगार को रग लिख्यौ बर मन्त्र वशीकर पी को।
फूले सरोज मै भौर लसै किधौं फूल शशीमे लसे अरसी को॥६६॥

टीका—प्यारी के चिबुक०—यह चिबुक न होय शशी म फूल कहै चन्द्रमा में अरसी के फूल फूलो है॥ ६६॥

ज्ञान भयो जबते तबते तिय येक लखी मनि आप अतूल मे।
दामिनि त्यौ यमुना प्रतिबिंबित यौ झलकै तन नील दुकूल मैं॥
देखत ही सुख देखे बिना दुख जाय परी कितते उत भूल मे।
ठोढी पै श्यामल बुद गोपाल मनो अलिबाल गुलाबके फूलमे॥६७॥

टीका—ज्ञान भयो०—दामिनि को परछाहीं जैसे यमुना जल मे देखियत तैसे नील दुकूल मे चिबुक के बु द झलकै है॥ ६७॥

कवि—दास

छाक्यौ महामकरद मलिंद परयौ किधौं मजुल कज किनारे।
चद मे राहु को दत लग्यौ कि गिरी मसि भाग सुहाग लिखारे॥
'दास' रसीली हैं ठोढी छबीली की लाली की बिन्दु पै जाइए वारे।
मित्तकी दीठि गड़ी किधौं चित्तको चोरी गिरयो छबिताल गडारे॥

टीका—छविरूपी ताल, गडारे कहै गहिरम चित्त चोरी होय या मित्र की दीठि गडी है॥६८॥

बिसराम = विश्राम। गुविद = गोविन्द, श्रीकृष्ण। कनिका = कण, टुकड़ा। नाल = नीलमणि। जमाव = ओस। अनग = काम। पी = प्रिय, नायक। अरसी = अलसी, तीसी॥६६॥

अतूल = अतुलनीय। दामिनि = बिजली। नीलदुकूल = नीला रेशमी वस्त्र। श्यामलबुद = गोदने का चिन्ह। अलिबाल = भौरा का बच्चा॥६७॥

छाक्यो = तृप्त हुआ। मकरद = पुष्परस, पराग। मलिंद = भौरा। मसि = स्याही। सुहाग लिखारे = सौभाग्य लिखने वाले। मित्त = मित्र। गड़ारे = गड़े म॥६८॥

(अधर वर्णन)

दडक—बधुजीव जपाकर के हैं बर बधु जीव,
अति कम लहै काँति कमल हैं मदकर।
लालमनि विद्रुम मजीठि फल बिबन के,
समता न पावै प्रतिबिब है अमदकर॥
दसन बसन दुति असन विलोकि जग,
'गोकुल' पियूष पारावार सुख कदकर।
अबल अचल ह्वै कै रहिगो अधर मन,
आभा धर अधर विलोकि रामचन्द्र कर॥६९॥

टीका—न धुजीव नाम दुपहरीके बधुजीव कहै भाई और प्रान होय अति कम लहै कहै थार लहत है आभा कमल लाल मनि मूँगा बिबफल प्रतिबिम्ब के तात है। दसन बसन कहै वाठ अबल अचल ह्वे कै अधरमें रहिगो कहै अध बीच मे ही रहिगा॥६९॥

कवि—हरिलाल

केसर निकाई किसलय की रताई लिये,
झाँई नाहीं जिनकी धरत अलकतु है।
दिनकर सारथी ते देखियत एते सैन,
अधिक अनार के कलीन अरकतु है॥
लीला सी लसन जहाँ हीरासी हँसन राजै,
नैन निरखत अलकत असकतु है।
जीते नग लाल 'हरिलाल' लाल अधरन,
सुघर प्रबाल के रसाल झलकतु है॥७०॥

टीका—केसरि किसलय कहै केसरि के नये दल दिनकर सारथी अरुन जीते नगलाल हरिलाल कवि कहै है॥७०॥

बधुजीव = दुपहरिया। बधुजीव = भाई बन्धु। विद्रुम = मूँगा। दशन बसन = दन्तच्छद, ओठ। पियूप = अमृत। पारावार = समुद्र। अधर = बीच ही में। आभाधर = शोभाधारी॥६९॥

निकाई = सुन्दरता। रताई = लालिमा। दिनकर सारथी = सूर्य के सारथी, अरुण। अरकतु = टकराते। लसन = शोभा। हसन = हँसी। असकतु = आलस्य करते। प्रबाल = मूगा। रसाल = रसभरे।७०।

कवि—मनिकठ

अमल अरुन अरविन्द बिम्ब आभा देत,
सहज सुबास राखै माधुरी समर हैं।
सोत कोतवारी पिय मतवारी होत पूजे,
नय वारी सो सँवारी शोभा शुचिधर हैं॥
'मनिकठ' सूलम सुरेब हैं बँधूक फूल,
बरनी के चिन्ह पिय लोचन डगर हैं।
कैधौं लीक शीस गनि दीन्हैं बिधि कोक कला,
सुन्दरी सुलच्छनी कै शोभित अधर हैं ॥७१॥

टीका—अमल अरुन—सोत कोतवारी कहै लाल रग को सोता होय। पियको मतवारी कहै मस्त करे अधर मधु छाकि नै ॥७१॥

कवि—परशुराम

जपा के कुसुम ताकी छबि के चतुर मानि,
मानिक के मीत अति रोचक कलीब के।
बिद्रुम के दल द्वै बिराजैं हेमसम्पुट मैं,
राजत अनूप बहू जन के नसीब के॥
भावती के अधर मयूख के धरन हार,
कहैं 'प्रसाराम' रस दानी प्रान पीव के।
बिबन के बादी अनुराग कैसे प्रतिबिंब,
रजोगुन नायकी कि बधु बधुजीब के ॥७२॥

जपा के कुसुम०—रजोगुन के नायक की बधुजीव जो दुपहरिया ताको बधु होय ॥७२॥

अमल=स्वच्छ। अरुन=लाल। समर=भरे हुए। सोत=स्रोत, प्रवाह। बधूक=दुपहरिया। बरनी=आँख के रोए, बरौनी। डगर=मार्ग। लीक= लकीर। कोककला=चन्द्रकला ॥७१॥

बिद्रुम=मूंगा। हेमसम्पुट=सोनेका ढकना। नसीब=भाग्य। भावती =प्रिया। मयूख=किरण। प्रानपीव=प्राणप्रिय। बादी=प्रतिस्पर्धी। बधु=भाई, बराबर ॥७२॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

(दशन वर्णन)

सवैया—निसि ही म नछत्रन की छबि छाजत रायो भये दुति मद रली ।
दरक्यो उर दाड़िम दीपति देरि दुरै दबि दामिनि काति भली ॥
रघुनायक के अधराधर मे दशनावलि यो अवलोकि अली ।
कुरबिद के पल्लवमे 'बृज' बृन्द बिराजत मजुल कुदकली ॥७३॥

टीका—निशि ही मै—कुरबिद कहे लालमनि ताम कुदकली पल्लव ॥७३॥

कवि—रूप कवि

दडक—कैधौ कली बेला की चमेली की चमक चारु,
कैधौ कीर कमल मे दाडिम दुरायो है ।
कैधौ दुति मगल की मडल मयक मध्य,
कैधौ बीजुरी को बीज सुधा मे सिरायो है ॥
कैधौ मुकुताहल महावर मै रोप राखे,
कैधौ मैन मुकुर मे सीकर सुहायो है ।
'रूपकवि' राधिका बदन मै रदन छवि,
सोरहीं कला की काटि बत्तिस बनायो है ॥७४॥

टीका—मैन मुकुर कहे कामकै ऐना मे सीकर कहे स्वेद करी है ॥७४॥

कवि—चतुर

कैधौ मित्र मित्र मै बसाई है किरिनि ताते,
फूल्योई रहत अनुमान यह पायो है ।
कैधौ शशि मडल मे भाँई उडु मडल की,
कैधौ हासरस निज नगर बसायो है ॥

नछत्रन=तारें । द्यौस=दिवस, दिन । रली=हो गई । दरक्यो=फटने लगा । दीपति=दीप्ति कांति । दुरै=छिप गई । अधराधर=निचला ओठ । दशनावलि=दंतपंक्ति ॥७३॥

कीर=तोता, सुग्गा । दुरायो=छिपाया । मडल मयक=चन्द्रमडल । सिरायो=ठढा किया । मैनमुकुर=कामरूप दर्पण । सीकर=बूँद ॥७४॥

मित्र=सूर्य । मित्र मित्र=सूर्य का मित्र, कमल । उडुमडल=नक्षत्र समूह । हासरस=हास्यरस । दशन=दाँत । बानी=वाणी, जिह्वा । दो लरकै=दो लड़ा वाला ॥७५॥

दसन की पाँति कुदकलिन की भाँति आछी,
सोहत है ठाँति गन कोविदन गायो है।
मानहु विरचि तेरी बानी को 'चतुर' रानी,
दोलर कै मोतिन को हार पहिरायो है ॥७५॥

टीका—मित्र कहै सूर्य ताको मित्र कमल तामें किरिनि बसायो है की शशि के समीप मे नक्षत्र के मडल होइ की हासरस नगर बसाया, हास के रग सफेद की कुदकली पाँति होय की बानी कहै जीभ तेरी रानी होय ताको विधि दालर करि मोतिन के हार पहिराया है ॥७५॥

कवि—गंग

(मीसी वर्णन)

सवैया—को बरनै उपमा 'कवि गग' सो तोही मे है गुन ऊरबसी के।
जादिन ते दरसो मुसकानि सो कान्ह भये बस तेरे हँसी के॥
चद से आनन मे तिल राजत ऐसे बिराजत दाँत मिसा के।
फूलन के फुलवारिन मै मनो खेलत है लरिका हबसी के ॥७६॥

टीका—यह दाँतमें मीसी लगी है सो मानो फुलवारी म हबसिन के लरिका होइ ॥७६॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

(रसना वर्णन)

सवैया—की निगमागम आखर अर्थ प्रकाशक भेद कोऊ अस ना है।
की सुर सातहु की जननी सब मत्रनको सुषमा बसना है॥
की 'बृज' बानी के बीन के तार सुधाकर धारन की ससना है।
की रसनाह की सैन सुहावन कै रघुनदन की रसना है ॥७७॥

टीका—निगमागम वेदशास्त्र के अक्षर प्रकास करनहारी होइ अस कोऊ नहीं है, की सातों स्वरन की माता होय की रसनाह कहै सिंगार रस ताकी सेज होय ॥७७॥

निगमागम=वेदशास्त्र। आखर=अक्षर। अस ना=ऐसा नहीं। सुर=स्वर। सात स्वर ये हैं—१ षड्ज, २ ऋषभ, ३ गान्धार, ४ मध्यम, ५ पचम, ६ धैवत, ७ निषाद, इन्हीं के वाचक शब्द सगीत में क्रमश 'सा रे ग म प ध नि' माने गये है। बानी=सरस्वती। बीन=वीणा। रसनाह=रसनाथ, शृङ्गाररस। सैन=शयन, शय्या। रसना=जिह्वा ॥७७॥

कवि—भरमी

दंडक—गूढ़ गुन ग्रंथ को प्रकाश की करन हारी,
मूठ साँच कहे देत सबके मनस की।
नाद बेद भेद को उघारि देत आखरन,
कोमल रसाल जात बसुधा के बस की ॥
'भरमी' सुकवि पिय मन की हरन हार,
सुधा सो सुधारी जान गान हार यश की।
रसना की उपमा न होत कोटि रसना सो,
मन की सचौटी की कसौटी बतरस की ॥७८॥

टीका—मनकी सचौटी कहै साँची बात की मूल की कसौटी कहै बतरस की होय जामें खोट खरा प्रगट होत ताकी कसौटी कहिये ॥७८॥

कवि—बलभद्र

कमल बदन माँझ कमला के काज छवि,
राखी है कमल दल तलप सँवारी है।
कैधौं 'बलिभद्र' खट तन्त्रनकी लेखनी है,
कैधो खटस्वादन की परखन हारी है ॥
ललित तमोरा रंग गुनकी कसौटी मानो,
मन्त्रन की मूरि परमारथ की प्यारी है।
रसिक रसीली प्यारी तेरी मृदु रसना की,
पद पद हसन की रसानद कारी है ॥७६॥

टीका—कमलदल कै तलप कहै बिछौना होय, की षट्तन्त्र की लेखनी कहै कलम होइ की षट्स्वादन कै मधुर तिक्त लोना खार कटुक भाकस की जाननहारी है, रसानद कारी कहे रसा नाम पृथ्वी हो आनन्द की ॥७६॥

नाद=प्रणव संगीत की वह ध्वनि योगी लोग नाभि से ऊपर जिसका प्रत्यक्ष करते हैं। बेद=वेद शास्त्र। रसाल=रस से भरी हुई। सचौटी=सत्यता। कसौटी=खरे खोटे की सूचक। बतरस=बातचीत में मिलनेवाला आनन्द ॥७८॥

कमला=लक्ष्मी। तलप=तल्प, शय्या। षट्तन्त्र=षट्तन्त्र। षट्शास्त्र ये हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द। लेखनी= कलम। मूरि=मूल, जड़। हसन=हास्य ॥७६॥

कवि—सूरति

कैधौं विधि रसना की रची है कसौटी यह,
अरुन बरन अचरज मन मैं गह्यौ।
कैधौं तेरी बानी मनमानी ठकुरानी ताकी,
राती सेज फूल रग जात न कछू कह्यौ॥
'सूरति' सु कैधौं बोल रतन अमोल दान,
दै दै सब ही को सुख दुख सबही दह्यौ।
नेकहूँ बखानि सकै काहू को सो बस ना जो,
रस तेरी रसना सो रस ना कहूँ लह्यौ॥८०॥

टीका—कैधौं बिधि०—विधि रसना को कसौटी रची, अरुन बरन यह अचरज है कसौटी श्याम बरन होत बोल जो रतन अमोल है जासों बोलै ताको माल लेत, काहू के बस नाहीं है जो रस तेरे रसना में है सो रस कहूं नाहीं लह्यौ॥८०॥

कवि—बलदेव

(बानी वर्णन)

दडक—सुधा के समुद्र की लहरि सी कढत रहै,
याही को सुनाय लाल कीने तै अधीन है।
बन उपबन बैठि आय कै दुराय याते,
मेरे जान यहै कलकठी कठ ही रहै॥
'बलदेव' ऐसी न रची है न रचैगो बिधि,
मोतिन की उपमा करन लागी छीन है।
कमल के कोस पैठि गुजरत भौंर कैधौं,
बानी माँझ बानी जू बजाई आनि बीन है॥८१॥

टीका—सुधा के समुद्र०—कलकठी कहै कोकिला, कमल के कोश कहै कमल ऐसा मुख तामें जीभ जो बोलत है सोई मानो कमल के कोश में भँवर गुजरत है, की बानी में बानी कहै सरस्वती बीन बजायो॥८१॥

बिधि=विधाता, ब्रह्मा। कसौटी=खरे खोटे का परीक्षक। राती=लाल। अमोल=अनुपम, बिना मूल्य। रसना=जिह्वा॥८०॥

कलकठी=कोकिल। कोस=भीतर, मध्यभाग। बानी=बचन। बानी=सरस्वती। बीन=बीणा॥८१॥

कवि—सूरति

जाके एक अंस हंसबाहनी प्रसंसति है,
किन्नरी सुकौन जाकी कहो सर करिहै।
और कोकिला सो को कलाहू एक जाने नाहिं,
'सूरति' सुकवि गनती मे कौन धरिहै॥
बीना बेन तबलै बजाइ लीजै प्यारे लाल,
फेरि तुम्हैं उनहूँ की चरचा बिसरिहै।
सुधि बुधि सकल हिराय जैहै जानो यह,
जबै मेरी रानी जू की बानी कान परिहै॥८२॥

टीका—हंसबाहिनी कहै सरस्वती जाको प्रशंसा करती है किन्नरी काइ सरि कहै बराबरी करैगी। और कोकिला सो को कलाहू पद० अरु कोकिला सा कला एकौ नाही जानि पाए जो बानाम गुन है प्रिय के बीना कहै बीना बेनु कहै बाँसुरी॥८२॥

कवि—अज्ञात

(मुसक्यान वर्णन)

सिव सिर गंग जैसे जल की तरंग जैसे,
उडगन भंग जैसे करत पयान हैं।
मोतिन की हार जैसे दामिनिकी धार जैसे,
वोपी तरवारि जैसे तजत मियान हैं॥
दीपक की माल जैसे पावक की ज्वाल जैसे,
मोहिबे को लाल मन निपट सयान हैं।
तार जरजरी कैसे फूल फुलझरी कैसे,
जुगुनू ज्यो जरी कैसे तेरी मुसक्यान हैं॥८३॥

टीका—उडगन भंग नछत्र के गिरत मोतिन की हार तैसे दीपन की माल तार जरजरी कहै जरकसी फूल फुलझरी जुगुनू जरी कहै जड़े कैसे मुसकान है॥८३॥

अंस = अंश, भाग। हंसबाहनी = सरस्वती। किन्नरी = एक देव जाति विशेष। कला = अंश, चातुरी॥८२॥

उडगन = तारे। वोपी = चमकीली। मियान = म्यान, कोश। पावक = अग्नि। सयान = चतुर, अनुभवी। जरजरी = सोने की जरी। जरी = जड़ी हुई॥८३॥

कवि—भरमी

कोकनद कली जैसे खिलत बयारि लागे,
मद मुसकान उसकान है चमेली की।
आरसी मे भानु को प्रकास के उजास होत,
जैसे दीपमाल दीपै दीपति हवेली की॥
'भरमी' सुकवि दुति दामिनी सी कौंधति है,
चाँदनी सी चहूँबोर बात मे सहेली की।
चद की चमक चकचौंधति दसन दुति,
पियमन बसनि हँसनि अलबेली की॥८४॥

टीका—चन्द्रमा कै चमक चकचोंधत दशनमे पिय के मन को बसन कहै वस्त्र या वसन कहै बसीकरन है हसनि कहै हाँस नायिका का॥८४॥

कवि—केशवदास

कीधौं मुख कमल मैं कमला की जोति होति,
कीधौं चारु मुख चद्र चद्रिका चुराई है।
कीधौं मृग लोचन मरीचिका मरीचि कीधौं,
रूपक रुचिर रुचि रुचि सो दुराई है॥
सौरभ की शोभा की सदन घन दामिनी के,
'केशव' चतुर चित हूँ की चतुराई है।
ऐसी गोरी भोरी तेरी थोरी थोरी हाँसी मेरे,
मोहन की मोहिनी की गिरा की गुराई है॥८५॥

टीका—की मुखकमल में कमला कहै लछिमी या शोभा की जोति है की मृगलोचन की मरीचिका है कहै जासो मृगतृष्णा कहत है तेरी हासी थोरी गिरा कहै सरस्वती की गुराई होय॥८५॥

कोकनद = लाल कमल। उसकान = खिलना। उजास = उजाला, चमक। दीपति = दीप्ति, कांति। हवेली = महल। कौंधति = चमकती॥८४॥

चन्द्रिका = जुन्हाई। मृगलोचनमरीचिका = नेत्र रूपी मृगों की तृषा। मरीचि = किरणैं। सौरभ = सुगन्ध। दामिनी = बिजली। भोरी = मुग्धा। साधीसादी। मोहिनी = मोहित करने वाली। गिरा = वाणी। गुराई = गोरापन॥८५॥

कवि—ग्वाल

(मुखवास वर्णन)

दण्डक—पारिजात जाति हूँ न नारंगी सख्यात हूँ न,
चंपक फुलात हूँ न सरसिज ताब मैं।
माधवी न मालती मैं जूही मैं न जोहियत,
केतकी न केवड़ा की लपट सिताब मे॥
'ग्वाल कवि' ललित लवंग मैं न एलन मैं,
चंदन न चंद्रिका न केसरहि ताब मे॥
सेवती गुलाब मैं न अतर अदाब मै न
जैसी है सुबास कान्ह मुख महताब मैं॥८६॥

टीका—कान्ह मुख महताब कहै चन्द्रमा ॥८६॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

(नासिका वर्णन)

दण्डक—तिलौ न समान तुलैं तिलके प्रसून पुंज,
सोभा सरि सेत बिधि बाँधी हैं सुलॉक की।
किंसुक अगस्त कली हूँ मे न सुगंध रली,
स्वास मैं सुबास खुलै कोठरी मृगॉक की॥
'गोकुल' बिलोकि लागै कीर भीर हूँ हकीर,
छहरत छबि ऐसी मुकुत बुलॉक की।
नाक नर नाग लोक नाकहूँ निहारे अस,
निखरी निकाई नीकी नागरी के नॉक की॥८७॥

फुलात = विकसित होना। सरसिज = कमल। ताब = आभा। जोहियत = देखी जाती। सिताब = तुरन्त। एलन = इलायची। मुखमहताब = मुखचन्द्र ॥८६॥

तिलौ न = रंचमात्र भी नहीं। तुलै = समता कर सकते है। सरि = नदी। सुलॉक = सूराख, बेध, छिद्र। मृगाँक = कस्तूरी। कीरभीर = सुग्गों की पाँति। हकीर = तुच्छ। मुकुत = मोती। बुलॉक = नासिका का आभूपण। नाक = स्वर्ग। ना कहूँ = न कहीं। निकाई = सुन्दरता। नाक = नासिका ॥८७॥

टीका—शोभासरि कहै नदी में सेतु द्वै सुलाक कहै छिद्र है, स्वास म ऐसा सुवास है मानो मृगाक की कोठरी खुली है कहै कस्तूरी की या चन्द्रमा की कोर भीर इकीर कहै छोटे लागत है, नाक नर नागलोक नाक कहै स्वर्गलोक नरलोक में ना कहूँ नाहीं कहूँ अस देखे जैसा सोभा नागरी के नाक की है ॥८७॥

कवि—बलभद्र

सोभा को सकेलि ऊँची बेला बाँधी 'बलिभद्र',
राख्यौ समलोचन कुरगन को रोस है।
दीपति को दीपमुख दीप को सुमेर वह,
मृदुमुख सारस को सिफाकद जोस है॥
कलप सरोवर की कलिका सुगध फूली,
उपमा अनूपम को बिबुधन सोस है।
तिल को सुमन है की नासिका तरुनि तेरी,
सुरन की सरन की सौरभ को कोस है ॥८८॥

टीका—सोभा को सकेलि ऊँच बेला कहै गोलधूरा बाँधा है, मुखदीप जो है ताको सुमेरु होय की दीपति का दीप होय, सारस कहै कमल को सिफाक द कहै जो कमलके भीतर थिर होत जामें फल लागत है सुरन की सरन कहै सुर सात पाइ गल पिंगलादि के सरन होय या सुगध के कोस ॥८८॥

कवि—सेख

(नासिकावेह वर्णन)

सुनि चित चाहै जाके ककन की झनकार,
करत है सोई बात होत जो बिदेह की।
'सेख' भनि आजु है सुकाल्हि नाही कान्ह जैसी,
निकसी है राधे की निकाई जैसे नेह की॥
फूल की सी आभा सब सोभा लै सकेलि धरी,
फूलि ऐहौ लाल सुधि भूलि जैहौ गेह की।
कोटि कबि पढै तऊ बरनी न बनै कबि,
बेसर उतारे छबि बेसर के बेह की ॥८९॥

सकेलि = एकत्र करके। बेला = सीमा। कुरगन = मृगो का। सिफाकद = कमल की जड़। जोस = कांति, वेग। कलप = कल्प। बिबुधन = देवताओं को। सोस = अफसोस, चिंता। सुरन की सरन का = देवताओ के तड़ागा की। सौरभ = सुगन्ध। कोश = भण्डार ॥८८॥

विदेह = देहरहित। सकेलि = इकट्ठा कर। फूलिऐहो = प्रसन्न हो जाओगे। बेसर = नाक का एक आभूषण। वेह = बेध, छिद्र ॥८९॥

टीका—फूल की सी आभा देखि कहै फूलि ऐहो बेसरि उतारे जैसी छवि बेसरि की वेह को देखि करि ॥८६॥

(बेसरि वर्णन)

बदन सुराही मै छबीलो छबि छाक्यौ मद,
अधर पियाले छिन छिन मैं गहत है।
अलसाय पौढत कपोल परयक पर,
कबहूँ गजक जानि चाखन चहत है॥
प्रेम नग साथी ये तो सदा रहै अंक भरें,
छक्योई रहत कोऊ कछु न कहत है।
झुकि परै बात के कहे ते अनखात न्यारो,
बेसरि की मोती मतवार सो रहत है ॥९०॥

टीका—यह बेसरि की मोती या बेसरि मतवार को रूपक है,बदन सुराही कहै जामें मद धरत है छवि छाक कहै मदिरा है अधर जो पियाला है ताको छिन छिन ओठमें लगावत है। अलसाय कै मतवार सेज पर पौढ़त तैसे बेसरि कपोल सेज पर परत गजक खटाई मिठाई जानि चाखत है जो नग बेसरि में है सोइ साथी है, झुकि परै बात के कहत मस्त बात के कहत झुकत तैसो बात बोलत ही बेसरि झुकत है तैसे जानिए ॥९०॥

छक्यौ जल सागर बिंधायो तन आप आप,
अधर के बीच रह्यो और न चहत है।
बिधि के सयोगवस आनि परो बेसर मे,
बन्यो है बनाव मनि कचन सहित है॥
पूरन प्रताप चद पायो है मुखारबिंद,
एतो कहाँ लहै कत जेतो तू लहत है।
प्यारी के बदन पै मदन जू को मद पिये,
मोती मतवारो सदा झूमतै रहत है ॥९१॥

परयक=पर्यंक, पलग। गजक=वह वस्तु जो शराब पीने के बाद ज़ायका बदलने के लिए खाई जाती है, चाट। नग=रत्न। अनखात=क्रुद्ध होकर। मतवार=मतवाला ॥९०॥

बिधायो=विद्ध किया गया, छेदा गया। अधर=ओठ, आकाशमध्य। मनिकंचन=रत्न और सोना। कत=नायक। मदनजू=कामदेव ॥९१॥

टीका—बदन पै मदन जो काम अधर पर छकिके मानो मतवार ऐसो झूमै है ॥६१॥

कवि—किशोर

लगी जब आस तब उतरो अकाश ही ते,
सिन्धु जलजतु ग्रास कीन्ह्यौ सुख चीन्ह्यौ है।
बड़ो हितकार वाको उदर विदारि कढ्यौ,
चढ्यौ मोल भारी बास सपुटन लीन्ह्यौ है॥
कहत 'किशोर' भ्रम्यौ देस देस वोर लह्यौ,
ब्रज चितचोर जिय वारिफेरि दीन्ह्यौ है।
उर कै सुलाक मोती नासिका बुलाक भयो,
बड़ोई चलाक पै हलाक मन कीन्ह्यौ है॥६२॥

टीका—लगी जब आस आकाश तें उतरो स्वाति बुद ताहि सिन्धु के जल जतु सीपी पियो ताको उदर फारि निकरो बड़ो मोल भयो सपुट मैं बसो उर में सुलाक कहै छेद भयो नासिका बुलाक मोती हलाक करतु है ॥६२॥

कवि—केशवदास

'केशौदास' सकल सुबास को निवास यह,
कैधौ अरबिंद माँहि बिंदु मकरद को।
कैधौ चद्रमडल मैं सोहत असुरगुर
कीधौं गोद चदहू के खेलै सुत चद को॥
बाढो गुन रूप काम दिन दिन दूनौ किधौं,
सूँघत है चद्र फूल आनद के कद को।
नासिका निकाई हूते नीको नाक मोती बनी,
मानो मन उरझ रह्यौ है नँद नद को॥६३॥

टीका—चन्द्रमा के मडल मैं असुर गुर नाम शुक्र होय की चन्द्रमा अपने पुत्र बुधको गोदम लिए है अवर सुगम ॥६३॥

हितकार=हितैषी। उदरविदारि=पेट फाड़कर। सपुटन=डिब्बे में। वोर लह्यो=पार किया। वारिफेरि=अदला बदली। सुलाक=छिद्र, बेध। हलाक=क़त्ल करना ॥६२॥

सुवास=सुगन्ध। अरबिंद=कमल। मकरद=पराग। असुरगुर=शुक्र। सुत चद को=चद्रमा का पुत्र, बुध। नँदनद=श्रीकृष्ण ॥६३॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

(कपोल बर्णन)

दंडक—कैधौं नेह हाटक सरूप तोलिबे को तुला,
पला द्वै अनूप रस भूप जानि कियो है।
कीधौं सोभासिंधु ही में सुबरन शंख कीधौं,
सोन सम्पुटी में दाँत मुकतानि कियो है॥
राम के कपोल गोल नैन नृतकारी भूमि,
'गोकुल' मुकुर मैन कीधौं मानि कियो है।
राजत अमंद कीधौं राका परिवा के इंदु,
कोऊ एक मंडल में उदै आनि कियो है॥६४॥

टीका—कीधौ राका कहै पूरनमासी को चंद्रमा और परिवा के चन्द्रमा एक मंडल कहै एक ठाम भये॥६४॥

कवि—केशवदास

कीधौं हरि मनोरथ पथ की सुपथ भूमि,
मीन रथ मन हूँ की मनि न सकति छ्वै।
कैधौं रूप भूपति की आसन रुचिर चारु,
मिली मृगलोचन मरीचिका मरीचि ह्वै॥
कीधौं श्रुति कुंडल मकरसर 'केशौदास',
चितए ते चित चकचौंधि कै चलत च्वै।
गोरे गोरे गोल अति अमल अमोल तेरे,
ललित कपोल कैधौं मैन के मुकुर द्वै॥६५॥

टीका—मीनरथ कहै कामको रूप भूपको सेज होय की कुंडलमकर होइ सर कहै ताल के की यह मैन के मुकुर दुइ होइ॥६५॥

हाटक=सुवर्ण। तुला=तराजू। पला=पलड़े। रसभूप=श्रृंगार। सोनसंपुटी=सोने की डिबिया। मुकुरमैन=कामदर्पण। राका=पूर्णिमा॥६४॥

सुपथ=सुन्दर रास्ता वाली। मीनरथ=कामदेव। मृगलोचन मरीचिका=नेत्ररूप मृगों की तृष्णा। मरीचि=किरण। श्रुति=कान। अमल=स्वच्छ॥६५॥

कवि—कालिदास

चपला के ऐसे चार चमकै हैं छबि पुज,
छेदि निसरत झीने घूँघुट निचोल हैं।
'कालिदास' आसपास तरनि तरौनन की,
जोति किरनावली ललित अति लोल हैं॥
कान्ह अवलोकत बदन प्रतिबिंब निज,
कनक सरूप मानो मुकुर अमोल हैं।
लेत मन मोल करैं दृगन की तौल ऐसे,
गोरे गोरे गोल बने प्यारी के कपोल हैं॥६६॥

टीका—की चपला के चमक होइ की तरनि कहै सूर्य होइ तरयोना कहै वीर की कनकस्वरूप के मुकुर कहै ऐना होइ॥६६॥

कवि—परसराम

कैधौं रूप धरनी मैं राजत युगल खड,
कैधौं मीनकेतन के आरसी सुढारे हैं।
कैधौं हरिलोचन तुरगन के लीला थल,
कैधौं सरसीरुह के दल द्वै निहारे हैं।
'प्रसराम' कोसल मधूकन से चपक से,
चारु चद्रमा को कोनि कोरि कै निकारे हैं।
प्यारी गोल गोल अति ललित कपोल तेरे,
नीठि नीठि रचि करतार कर झारे हैं॥६७॥

टीका—की रूप कोऊ वस्तु ताको दुइ खण्ड होय की कामके ऐना होइ की हरिलोचन तुरंग ताके फिरबेकी भूमि होय की कमल के द्वै दल होइ॥६७॥

चपला = बिजली। झीने = महीन, पतले। निचोल = ओढ़नी। तरनि तरौनन = पद्मराग के तरिवनों (कान के आभूषण विशेष, ताटक)। जोति = ज्योति। लोल = चचल॥६६॥

धरनी = पृथ्वी। मानकेतन = कामदेव। सुढारे = अच्छी प्रकार ढाले हुए। हरिलोचन तुरगन = कृष्ण के नेत्ररूपी घोड़ा के। लीलाथल = क्रीड़ा भूमि। सरसीरुह = कमल। दल = पखुड़ी। मधूक = महुवा। कोनि = कोना। नीठि नाठि = कठिनाई से। झारे = झाड़े, पोंछे॥६७॥

कवि—श्रीपति

(तिल वर्णन)

दडक—फूले वारिजात मे लखात है मधुप केधौ,
सुषमा सरोवर मे रसराज पैठ्यौ है।
रति के मुकुर पै धरी है नीलमनि केधौ,
कामिनी के बदन परम छबि जेठ्यौ है॥
'श्रीपति' रसिकराज सुदर गुलाब बीच,
मृगमद बूँद रूप परम परेठ्यौ है।
ललित कपोलन मे तिल छबि देत मानो,
पूरन मयक मे निशाक सनि बैठ्यौ है॥६८॥

टीका—वारिजात में भौंर की शोभा सर में रसराज श्रृङ्गार पैठो है की रती के पेना में नीलम धरो है की गुलाब के बीच मृगमद बुद होय की पूर्ण शशि मे शनैश्चर होइ॥६८॥

कवि—रसलीन

दो०—जाल घुघुरु अरु दड भ्रू, नयनन मुलह बनाइ।
खींचत खग दृग जग त्रिया, तिल दाना देखराइ॥६६॥

टीका—कपोल में तिल यह न होइ यह बधिकरूपी नायिका दाना बिथराइ के खगरूपी मनको बझावै है॥६६॥

सब जग पेरत तिलन को, के न ठग्यौ यहि हेरि।
तुव कपोल के एक तिल, सब जग डार्‌यो पेरि॥१००॥

टीका—सुगम॥१००॥

वारिजात = कमल। मधुप = भौंरा। सुषमा = अत्यन्त शोभा। रसराज = श्रृङ्गार। मुकुर = दर्पण। जेठ्यो = बढा है। मृगमद = कस्तूरी। पूरनमयक = पूर्ण चन्द्र। सनि = शनैश्चर॥६८॥

मुलह = मुह्वा, धोखे की चिड़िया॥६६॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

(श्रवन वर्णन)

सवैया—की मन भूप के द्वै दरबान की कुडल भानु के भौन भला।
की जन दीन के बधु प्रबीन किधौं मन मोतिय सीप कला॥
सत्य असत्य की बात को तौलनि हार विचार तुला के पला।
की श्रुति बानी के पानी के कूप अनूप किधौं श्रुति राम लला।।१०१।

टीका—की मन भूपके कान दुइ चोपदार होइ क्योंकि चोपदार नृप ते खबरि करत तैसे कान जो सुनत सो मनमें प्रगट होत की कुण्डल भानु के घर होइ, की दीनजन के बधु होइ की मनरूपी मोती के सीप होइ की सत्य झूठ तोलहार विचार के तुला के पलरा होय की श्रुति कहे वेद के बानी जो पानी है ताके रहिबे के कूप कुँआ होइ ॥१०१॥

कवि—अज्ञात

पिय गुन आसन सरोज के सिंघासन हैं,
कैधौं विवि वासन सनेह रस भरे हैं।
साँच झूठ तौलिबे को तुला के पला हैं कैधौं,
किंसुक के पात से लपटि पाछे परे है॥
कैधौं विवि चक्र सहचक्र के सुधारे कैधौं,
कुडल कलानिधि विधि करि धरे हैं।
करन के छिद्र कै अछिद्र छबि ताए कवि,
कचन समीप मानो मुकुता से जरे है॥१०२॥

टीका—की दुइ वासन होइ सनेह के की दुइ चक्र कहे पहिया होइ चन्द्ररथ के की कान के छिद्र अच्छिद्र किये कचन के बीर पहिनाय के॥१०२॥

दरवान = द्वारपाल। तुला के पला = तराजू के पलड़े। श्रुतिबानी = वेद-वाक्य। श्रुति = कान॥१०१॥

विविवासन = दो पात्र। किंशुक = टेसू। विविचक्र = दो चक्र। कलानिधि = चन्द्रमा। करन = कान। कचन = सुवर्ण। मुकुत = मुक्ता, मोती॥१०२॥

कवि—दास

स०-'दास' मनोहर आनन बाल को दीपति जाकी दिपै सब दीपै।
श्रौन सुहाए विराजि रहे मुकुताहल संयुत ताहि समीपै॥
सारी महीन सो लीन बिलोकि बिचारत है कवि के अवनीपै।
सोदर जानि शशीहि मिली सुत संग लिये मनो सिंधुमें सीपै॥१०३॥

टीका—दीपति जाकी सब दीप मैं जाहिर है जो मुकता कान मैं ताकी उपमा सोदर कहै माना भाई जानि चंद्रमा को सीपी पुत्र लै कै मिली ॥१०३॥

कवि—बलभद्र

रूप के अटान की कि राखी है धुजा उतारि,
सारि कामयंत्र की कि कंचन के पोत है।
पियके बचन स्वाति बुंदन की सीप कैधौं,
सुनत ही मोद मुकुताहल से होत हैं॥
लोचन कुरंगन की कीन्हें है परिख घर,
'बलिभद्र' झाँकत झुकत लोल होत हैं।
सुखन के स्वर हैं श्रवन तेरे सुंदरी की,
दरी हैं सोहाग राग सागर की सोत है॥१०४॥

टीका—रूप के अटान के धुजा होय कामके यंत्र होय की कंचन के पोत होय वचन स्वाती बुंद के सीप होय की नैन कुरंग के परिख घर होय सुखन के स्वर है यह श्रवन की दरी होय गिरि कै खोह सोहाग की राग सागर को सोत जानि ॥१०४॥

दीपति = दीप्ति, कांति। दिपै = चमकती है। दीपै = द्वीपों में। श्रौन = कानों में। मुकुताहल = मुक्ताफल, मोती। सारी = साड़ी। अवनीपै = राजा को। सोदर = सहोदर भाई। सिंधु = समुद्र ॥१०३॥

अटान की = अटारियों की। धुजा = ध्वजा। सारि = पासा। कंचन के पोत = सोने के दाने। मुकुताहल = मोती। कुरंगन = मृगों। परिख = परीक्षा। दरी = गुफा ॥१०४॥

कवि—गोकुलदास 'व्रज'

(नेत्र वर्णन)

दण्डक—कोऊ कहै भृकुटी कमान ही के मैन बान,
मन महिपाल के दिवान बर जोर हैं।
कोऊ कहै खजन कुरग मन रजन हैं,
सोभा के सरोवर सरोज फूले भोर हैं॥
कोऊ कहै छबि सरिता के मीन मजु सोहैं
जन मन मानिक के चल चित चोर हैं।
'गोकुल' बिलोकि चारु चितै राम चद ओर,
मेरे जान जानकी के चख द्वै चकोर हैं॥१०५॥

टीका—रामच द्र चन्द्र लोचन, अपर सुगम॥१०५॥

भृकुटी कुटिल राजै मूठि सी बिराजै बर,
पलक मियान पुज पानिप रसाल है।
कज्जल कलित दोऊ कोर मे दुधार बर,
डोरे रतनारे जेब जौहर के जाल हैं॥
'गोकुल' बिलोकि निज नायक सनेह सनी,
स्वच्छ है कटाक्ष काट करती कराल हैं।
कमनीय कामिनि के रमनीय नैन कैधौं,
कामिन के मारिबे को काम करबाल हैं॥१०६॥

टीका—कामिनि के मारिबे को काम की करवाल कहै तरवारि॥१०६॥

कमान = धनुष। मैनबान = कामवाण। महिपाल = राजा। दिवान = मन्त्री। सरोज = कमल। सरिता = नदी। मीन = मछली। मानिक = माणिक्य। चख = चक्षु, नेत्र॥१०५॥

मूठि = पकड़ने का स्थान, मूठ। मियान = म्यान, तलवार का खोल। पुजपानिप = शोभा के समूह। रसाल = रसभरे। दुधार = दोनों ओर धार वाले। रतनारे = लाल लाल। जेब जौहर = सुन्दर प्रभा। करबाल = तलवार॥१०६॥

कवि—तारा

गुजा गिले खजन की भौंर भरे कजन की,
बारि बिधु मजन औ गजन समेत है।
नेह भरे सागर सनेह भरे दीपक से,
मेह भरे बादर सलोने लखि खेत है॥
तरल त्रिबेनी के तरगनि मे 'ताराकवि'
मानो सालिग्राम असनान के निकेत है।
मृगमद लागे साखा मृग हग दागे मैन,
छाजन मे पागे नैन ऐसे सोभा देत है ॥१०७॥

टीका—गुजा घाइनि घुँघुची की खजन होइ की कज पर भौंर होइ, अवर सुगम ॥१०७॥

कवि—गग

दीरघ ढरारे महा डोरे रतनारे लागे,
कारे तहाँ तारे अति भारे जे सुरग है।
कहै गुनि 'गग' जनु दूध ही से धोये पुनि,
कोये बिकसित सित असित सुरग है
पारद सरस चीर थिर मे थिरकि जात,
तिरछे चलत मानो कूदत कुरग है।
खैंचे न रहत अनुराग हूँ के बाग बर,
मानिनी के नैन कैधौं मैन के तुरग हैं ॥१०८॥

टीका—अनुराग के बाग ते खैंचे नाहीं रुकत, तिरछे चलत मानों काम के तुरग ॥१०८॥

गुजा = रत्ती। गिले = निगलता हुआ। नेह = प्रेम, तेल। मेह = जल। सलोने = सुन्दर। सालिग्राम = काले रग का वह शिला जो गडकी नदी के किनारे मिलती है और जिसे विष्णु का स्वरूप माना जाता है। निकेत = स्थान। मृगमद = कस्तूरी। शाखामृग = बदर। छाजन = वस्त्र। पागे = अनुरक्त।१०७।

दीरघ = दीर्घ। रतनारे = लाल लाल। सुरग = सुन्दर रगवाले। सित असित = श्वेत और काले। पारद = पारा। थिरक जात = नाच जाते हैं। कुरग = मृग। मैन के तुरग = कामदेव के घोड़े ॥१०८॥

कवि—नबी

मृग कैसे मीन कैसे खजन प्रबीन कैसे,
अजन सहित सित असित जलद से।
चर से चकोर से की चोखे कॉड कोर से की,
मदन मरोर से की माते रति मद से॥
'नबी कवि' नै ना से की और नैन वे ना से की,
सी पडे सलोना मध्य राते मृग मद से।
पय से पयोधि से की और सोधे सौध से की,
कारे भौंर के से अनियारे कोकनद से॥१०९॥

टीका—मृग मीन खजन से अजन युत स्यामसेत जलद कहे मेघसे चर से चकोर से चोखे काड बाण के नोक से मदन मरोर की माते ई मदते। नैना से कहे नै नाम नीति जे मनाही अनीति से हैं की ओर नैन नै ना० और नैन वै ऐसे नहीं हैं इत्यादि सुगम जानो॥१०९॥

बंधु बिधु कीर मैं चकोर को सो जोरा बैठ्यो,
कैधौं मृगमीन बाल हित कै बढाए हैं।
कैधौं मीनराज के जुगल मीन जग जुरे,
खजरीट टेक मानो पिजरा पढाए हैं।
मिलत जियाइबे को बिछुरत मारिबे को,
बानिक पियूप बिप बोरि कै कढ़ाए है।
कैधौं बिधि पूरन मयक मुख पूजा करी,
अलिन सहित मानो नलिन चढ़ाए है॥११०॥

टीका—की विधि पूरन मयक मुखका पूजा करि अलिन कहे भँवर सहित नलिन कहे कमल चढाया जो अजनयुत नेत्र हैं॥११०॥

प्रवीन = चतुर। सितअसित = श्वेत और काले। जलद = मेघ। कांड कोर = बाण का नोक। मदनमरोर = काम की एठन। राते = लाल। मृगमद = कस्तूरी। पयोधि = समुद्र। सोधे = सुनिर्मित। सौध = प्रसाद। कोकनद = लाल कमल॥१०९॥

बिधु = चन्द्रमा। कीर = सुग्गा, तोता। मीनराज = महामत्स्य। जग = युद्ध। खजरीट = खजन पक्षी। बानिक = शोभा। पियूष = अमृत। पूरनमयकमुख = पूर्ण चन्द्रमा रूपी मुख। अलिन = भौंरा के। नलिन = कमल॥११०॥

कवि—भंजन

कमल लरी के है सॅवारे सुघरी के हैं जु,
सुंदरता सीके है सती के हैं रती के हैं।
खजन अनी के हैं की गजन मनी के हैं की,
रजन धनी के हैं की 'भजन' अमी के है॥
ऐसे हरि नीके हैं न ऐसे हरिनी के हैं न,
राज रमनी के है न काम कमनी के है।
नैन मैन जी के हैं की बैन बैन जीके है की,
शोभा मूल ही के है की प्यारी प्रान पी के हैं ॥१११॥

टीका—नैन मेन के तीर हाइ की बैन बैन के जीव इत्यादि सुगम ॥१११॥

कवि—परबत

खजन खिजात जलजात की लजात हेरो,
हिरनो हेरात मुकुता न ठहरात है।
पचसर कीने रद भौंरन के भूले मद,
नट से बिचित्र चित्र हिये हहरात है॥
दीपक मलीन छीन मीन लागे मेरे जान,
तीने तीन रग राते अति इतरात हैं।
'परबत' प्यारे मकसूदन तिहारे दृग,
मारत निशक ना कलक ही डेरात है ॥११२॥

टीका—खिजात कहै खिसात है, पचसर काम मारत निशक कहै कछु डर नाहीं ॥११२॥

लरी = श्रृंखला। सुघरी = अच्छी घड़ी। सती = शिवपत्नी। रती = कामपत्नी, रति। अनी = पंक्ति, सेना। गजन = तिरस्कार करनेवाले। मनी = मणि। रजन = प्रसन्न करने वाले। भजन = नष्ट करने वाले। अमी = अमृत। हरि नीके = हे कृष्ण! अच्छे। हरिना के = मृगी के। राजरमनी = रानी। कामकमनी = कामपत्नी। मैन जी = कामदेव। बैन = वचन ॥१११॥

खिजात = खिसियाता है। जलजात = कमल। हिरनो = हरिण। पंचसर = कामदेव। रद = दाँत। हहरात = काँपता है। इतरात = घमण्ड करती। मधुसूदन = कृष्ण ॥११२॥

कवि—अज्ञात

काजर ते कारे अनियारे डारे मतवारे,
कमल ढरारे कैधौं अमृत के दौना हैं।
खजन सॅवारे कैधौं खज खर सान धारे,
कैधौं मन मोहनके मन के हरौना हैं॥
रूप जल वारे रस वारे डगमगत हैं,
नवल दुलारे कैधौं मृगन के छौना हैं॥
मदन निहारे पन्छी सीख देनहारे आली,
तेरे नेन ऐन मानो मेन के खिलोना हैं॥११३॥

टीका—अमृत के दौना कहे दौना हाय, पच्छी खजन के सीख देनहारे हैं ऐन कहे घर या यही मैन के खिलौना हाय॥११३॥

कवि—नाथ

झूमत झुकत भरे मद के अरुन नैन,
मानो मैन तून हैं कढत जाते सर हैं।
हाव किलकिंचित सरूप धरे 'नाथ' कैधौं,
मोहन बसीकर उचाट के अमर हैं॥
कैधौं मीन पैरत सहाब के सरोवर में,
मानिक जडित भूमि खजन सुढर हैं।
कैधौं अनुराग के लपेटि कै सिगार बैठ्यो,
कैधौं कोल पॉखुरी मै डोलत भॅवर हैं॥११४॥

टीका—सहाब कहे अरुन रग मानिकलाल मनि के भूमि म यह पुतरी खजन हाय की कोलपाखुरी पै भॅवर॥११४॥

अनियारे=तिरछे। ढरारे=शीघ्र प्रवृत्त होने वाले। खज=खाडा। खर=तीक्ष्ण। सानधारे=सान लगे हुए। छौना=बच्चे॥११३॥

मैनतून=कामदेव का तूणीर (तरकस)। हाव=काय जनित चेष्टाएँ। किलकिंचित=विभिन्न चेष्टाओं का मिश्रण। उचाट=उदासीनता। पैरत=तैरता है। कोलपाखुरी=कमल की पखुड़ी॥११४॥

किलकिञ्चित—नायक के सगम जनित हर्ष से नायिका में जो स्मित, शुष्क रुदन, हास्य, त्रास, क्रोध और श्रम आदि का साकर्य (मिश्रण) होता है उसे किलकिञ्चित कहते हैं। नायिका के सात्विक २८ अलकारों में यह भी गिना जाता है॥

कवि—नन्दन

राजे रतनारे दृग ऊपर उजारे भारे,
प्रेम मतवारे पिय गौन सुखदेन है।
गंजन कमल मृग मीन मद भंजन है,
अंजन लखे ते न रहत उर चैन है॥
'नंदन सुकवि' नँद नंदन पै ढुरे नेक,
रोस भरे देखे याते कहै कछु बैन है।
ऐसे देखे मै न मैनबान से बिराजे ऐन,
आज तेरे अजब गुलाबी रंग नैन है ॥११५॥

टीका—अस में नहीं देखे ऐन कहै येइ मैन के बान होय ॥११५॥

कवि—रघुनाथ

सवैया—आई हौ देखि सराहि न जात है या बिधि घूँघट मै फरके हैं।
मै तौ हौ जानी मिले दोऊ पीठे न्है कान लख्यौ की उन्हैं हरके हैं।
रंगन ते रुचि ते 'रघुनाथ' विचार कर्यो करता करके हैं।
अंजनवारे सही दृग प्यारी के खंजनवारे बिना पर के है ॥११६॥

टीका—अंजनवारे दृग प्यारी के पे ऐसे हैं की मानो बिना पर के खंजन होय ॥११६॥

कवि—मुबारक (ममारख)

पानिप के पानिप सुघरताई के सदन,
शोभा के समुद्र सावधान मन मोज के।
लाजन के बोहित परोहित प्रमादन के,
नेह के नकीब चक्रवर्ती चित चोज के॥
दया के निदान पतिव्रत के प्रधान युग,
नैन ए 'मुबारक' प्रधान नवरोज के।
मीनन के सिरताज मृगन के महाराज,
साहिब सरोज के मुसाहिब मनोज के ॥११७॥

रतनारे = लाल लाल। उजारे = प्रकाशमान। अंजन = काजल ॥११५॥

हरके हैं = रोके हैं। करताकर = ब्रह्मा के हाथ के बनाये हुये। खंजन बारे = खंजन के बालक। पर = पंख ॥११६॥

टीका—पानिप कहै शोभा के शोभा होय, लाजके बोहित कहै नौका, नेह के नकीब कहै चोपदार, सुगम ॥११७॥

कवि—रसलीन

दो०—भ्रू डाँडी काँटा तिलक, पल चख पुतरी बाँट।
तोलत मूरत्रि मित्र की, नेह नगर की हाट ॥११८॥

टीका—भौंह डाँडी काँटा तिलक पलरा पलक पुतरी बटखरा तौलत मित्र की मूर्ति नेह के बजार में ॥११८॥

कवि—बलभद्र

(तारे वर्णन)

दडक—पय भरे भाजन मैं पैरत मधुप कीधौं,
कीधौं छीरनिधि मध्य मंजु दीप कारे हैं।
बिसद बसन बीच चोवा के चुगुल युग,
मैन मुख देखिबे को दर्पन सँवारे हैं॥
कमल दलनि पर मनिमय देव कीधौं,
पिय मन द्विज पूजिबे को पाय धारे हैं।
छाती धरे छिति जीतिबे के काज 'बलिभद्र',
तम की तुरस की तरुनि तेरे तारे हैं ॥११९॥

टीका—पय कहै दूध के बर्तन में भँवर हाय की छीर कहै दूध के समुद्र में दीपक होइ कारे बसन में चोवा के छीट की मैन मुख देखिबे का दर्पन सँवारे है की कमल के दल पै मनि रूपी देवता की तम छाती पर धरे छिति जीतिबे छिति धर कहै राजा होइ ॥११९॥

पानिप के पानिप = शोभा की शोभा। सदन = घर। बोहित = माल ढोने वाले जहाज। परोहित = पुरोहित। प्रमोदन = प्रसन्नता से। नकाब = बदाजन। चोज = चमत्कार पूर्ण उक्ति। नवरोज = मुसलमानों और पारसियों में वर्ष का प्रथम दिन। सिरताज = सर्व प्रमुख। साहिब = पूज्य। सरोज = कमल। मुसाहिब = दरबारी। मनोज = काम ॥११७॥

द्विज = विप्र। छिति = पृथ्वी। तम = अन्धकार ॥११९॥

कवि—अज्ञात

फटिक के रापुट मे सोई शालिग्राम शिला,
कमल दलनि पर भोर से निहारे है।
मृगमद बिब के लसत प्रतिबिब कोधौं,
दापत दृगन पर कज्जल के बारे हैं॥
केधौ मरकत मनि मुकत सुकत पर,
कैधौ रतिनायक के सायक बिसारे है।
पियमन तारिबे को अवतारे तारे भारे,
बरुनी के बार मानो तरुनी के तारे हैं॥१२०॥

टाका- पियमन तारिबे का अवतारे कहे अवतार लिहिनि वारुनी के बार या तरुनी के तारे है॥१२०॥

सवैया—पकज के दल द्वै पर द्वै भँवरी रस लालच हेत खँगी है।
के नटनी सुरनायक की निरतै कल हाव सोभाव पगी है॥
बाल के नेन की पूतरिया निसिबासर लाल के ही मे लगी है।
कचन का झपरूप डबीन म खोलि धरी मनो नील नगी है॥१२१॥

टीका—पकज के दुइ दल पर मानो भौरी कहे अलि [illegible] की नटनी सुरनायक की कल[illegible] नृत्य करे है की साने के मछरी रूप कहे चादी के डिबिया [illegible] खोलि के धरी है [illegible]ल नगी होइ॥१२१॥

कवि—नीलकंठ

(कटाक्ष वर्णन)

तेरी भौंहे धनुष धरत कर कोप आप,
चपक के चाप के हू खेंचत सटात हैं।
तेरिये अलक ताम ललित कलित गुन,
मधुकर भये गुन कथत डरात हैं॥

फटिक के रापुट=स्फटिक की डिबिया। मृगमदबिंब=कस्तूरी का गोला। मुकुत=मुक्ता, मोती। सुकुत=शुक्ति, सीप। रतिनायक=कामदेव। सायक=बाण। बरुनी=आँख की पलक, बरौनी। तरुनी=नक्षत्र विशेष॥१२०॥

नटनी=अप्सरा। सुरनायक=इन्द्र। निरतै=नाचती है। पूतरिया=पुतली। ही में=हृदय में। झपरूप=मत्स्याकार। डबीन=डिबियों मे। नीलमगी=नीलम रत्न॥१२१॥

कहै 'नीलकंठ' सब तेरे अग अग हेरि,
नातर अनग ते सरम समुहात है।
जग जैतवार कोटि तेरि यै कटाक्ष ना तौ,
पाँच पाँच बान सो जहाँन जीते जात हैं ॥१२२॥

टीका—तेरियै कटाक्ष ते काम जग जैतवार है पाँचों बान ते कहूँ जहान जीति जात है। काम के पाँच बान हैं ॥१२२॥

कवि—ममारख (मुबारक)

कान्ह के बाँकी चितौनि चुभी झुकि,
कालिह की ग्वालिनि झाँकि गबाछन ॥
देखि अनोखी सी चोखी सी कोर,
अनोखी परी जित ही तित ताछन।
मारैई जात निहारे 'ममारख'
ए सहजे कजरारे मृगाछन।
काजर दे री न ए री सोहागिन,
आँगुरी तेरी कटैगी कटाछन ॥१२३॥

टीका—गवाक्ष नाम झरोखा ते देखे तेरे नैन मृग कैसे ऐसे तेरे कटाक्ष हैं। काजर न दे अगुरी कटि जायगी ॥१२३॥

कवि—अज्ञात

अबलक अग अग सुदरता जीन तामे,
काजर ब पाखर सु आप हाथ साजी हैं।
लाज है लगाम चितवनि गाम चाल मानो,
भृकुटी कुटिलता में कलँगी से छाजी हैं॥

खटात = जाँच में पूरे उतरते हैं। अलक = केश। गुन = डोरा। मधुकर = भौंरे। गुन = गुण। अनग = कामदेव। जैतवार = जयशाली। जहान = ससार ॥१२२॥

बाँकी = तिरछी। चितौनि = चितवन, दृष्टि। गवाच्छन = खिड़की से। कोर = कोना। ताछन = उसी क्षण। सहजे = एक साथ उत्पन्न, यमल। कजरारे = काजल लगे हुए ॥१२३॥

पूतरी सवार शुभ लिये चाह चाबुक को,
देखि के कटाक्ष खुरी भए लाल राजी है।
नाचे गुख कजन की थारी मैं सुभारी अति,
प्यारी तेरे नैन मैन भूपति के बाजी हैं ॥१२४॥

टीका—अबलक रंग सुधराई जी। काजर पाखर लाज लगाम चितवनि। लाल भृकुटी कलगी पूतरी सवार चाह चाबुक कोडा कटाक्ष खुरी गुन थारी पै नाचत कहै फिरत है तेरे नैन काम के घोडा हैं ॥१२४॥

कवि—अज्ञात (रसलीन ?)

दो०—अमी हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत, जेहि चितवत यक बार ॥१२५॥

टीका—अमी माहुर मद अमी श्वेत माहुर श्याम मद लाल अमी पिये जियै माहुर खाये मरै मद पिये झूमै जाके वोर ताकति है ॥१२५॥

स०—कोरन लौं दृग काजर देति हैं कारी घटा उमड़ी घन घोरन।
घोरन आली चढ़ी मानो सुंदरि बाग नहीं कहूँ देति हैं मोरन ॥
मोरन की धुनि बाढ़ति हैं अरु यों बरजो बरजो बर जोरन।
जोर न देव सखी पलकै अँगुरी कटि जैहैं कटाक्ष की छोरन ॥१२६॥

टीका—दृगमें काजर कोर लों देत सो मानो कारी घटा घोर, घोरन आली चढ़ी० घोरन कहे मानो घोडा पै चढ़ी बाग मोरन कहै फेरति नाहीं, मोर की धुनि कहै मजार की बोली बरजो कहे मना करती है बरजा कहे श्रेष्ठ प्रौढा मना करती है, बरजोरन कहै बरहै जेकरे जो जोरन देव सखी पलक जोर न देउ है सखी अगुरी कटाक्ष की कोर ते कटि जैहै ॥१२६॥

अबलक = कबरा, दोरंगा। जीन = घोड़े का पीठ पर की गद्दी। पाखर = झूल। साजी = सजाई हुई। लगाम = रास, बागडोर। चितवनि गाम = दृष्टि समूह। कलँगी = पक्षियाके रोयें अथवा रत्नों का बना एक गुच्छा जो राजाओं के मुकुट में रहता है। पूतरी = पुतली। बाजी = घोड़े ॥१२४॥

अमी = अमृत। हलाहल = विष। चितवत = देखते हैं ॥१२५॥

कोरन लौं = कोनों तक। घोरन = घोड़ामें। बाग = रस्सी। मोरन = मोड़ने। मोरन = मयूरों की। बरजो = रोको। बरजोरन = जबर्दस्ती, हठात् ॥१२६॥

कवि—बीरबर

सवैया—बेनी फुलेल चुचात खरी पट भीजत सीस ते रूप अन्हैयत।
आनन बीर घरे छबि पोत सोवा छबि का ललचो ललचैयत॥
'ब्रह्म' कहै सब छोडि के काहे न प्यारे के रूप को दखन जैयत।
कानन से तो कटाक्ष लगे कलधौत कटोरन दूध पिऐयत॥१२७॥

टीका—कानन तक दृग है कलधौत सोना के कटोरा में मानो दूध पियत है। मानो मृग सोनाके कटोरामें दूध पीवै॥१२७॥

कवि—शिरोमणि

लाल लखे ते 'सिरोमनि' आप लगाय फिरी जस जान न पावै।
पाछे परे तब वाही घरी चित चोरि चली फिरि कौन छुड़ावै॥
लागे कटाच्छ गिरे हरि घायल घूमत नेक सँभार न आवै।
ऐसे दई मुरि कै दृगकोर ज्यों चोर चपे पर चोट चलावै॥१२८॥

टीका—कटाच्छ लागे ते हरि गिरे कौन भाँति कटाच्छ लगो जैसे चोर जब दबे पर मारत है॥१२८॥

कवि—ठाकुर

एई हिय द्वार के कदीम रखवार दोई,
इनको छपाइ काहू ऊपरी लयो है री।
मै तो इन द्रोहिन के पहरे रही ती सोइ,
बारी खेत खायो बडो उलट भयो है री॥
'ठाकुर' कहत बूझे भरि भरि आँसू देत,
तनक न सोध देत कौन को दयो है री।
मेरे मन मेरी आली मोहिं यह जान परी,
दृग बटपारन के भेद मे गयो है री॥१२९॥

फुलेल=इत्र से। चुचात=चपचपी है। अन्हयत=नहलाया जाता है। छबिपोत=सौन्दर्य समूह। कलधौत=सुवर्ण॥१२७॥

मुरिकै=मुडकर। दृगकोर=कटाच्छ, नेत्रकोण। चपे=लज्जित, दबे हुए॥१२८॥

कदीम=पुराना। बारी खेत खायो=रक्षक ही भक्षक हो गया। सोध=पता। बटपार=लुटेरे॥१२९॥

टीका—एई दो दृग हिये द्वार के दरबान कहे रखवार रहे इन्हीं के भरोसे रही हूँ हैं सेवा हमारे मन का कोऊ दूसर नाहीं लिए है। इनहींके भेद में गेगे मन गया है अर्थात् यही कृष्णके रूप पर रीझे मन वही रम्यो है याते ऊढ़ा नायिका ॥१२६॥

(नेत्र तिल वर्णन)

राजै बाम लोचनी के तिल बाम लोचन मैं,
    ताकी छबि कहिबे को कौन धौं सयान है।
जहाँ तिल तहाँ नेह यह न सनेह जानि,
    चित्त चिकनाई को बिचारयो अनुमान है॥
शिशुता के भाव ते रुखाई दरसाय ताकी,
    एकै युक्ति आई जिय प्रीतम प्रमान है।
नाहक चतुर मन दीन छीन लेत नैन,
    तिल न लग्यौ है ताको पातक निशान है॥१३०॥

टीका—नाहक चतुर लोगन के मन को दीन और छीन करत है ताहि पाप कै यह निशान कहे चिह्न होय। यह नेत्र में तिल नहीं है॥१३०॥

(कज्जल वर्णन)

सवैया—प्रान पियारी सिंगार सँवारि लिये कर आरसी रूप निहारै।
    चंद से आनन की द्युति देखत पूरि रह्यौ उर आनँद भारै॥
    अंजन लै नख सो रमनी दृग अंजित यौं उपमान बिचारै।
    चीरि कै चोंच चकोरन की मानो चोपते चंद चुगावत चारै॥

टीका—चकोर की चोंच चीरिकै चन्द्रमा चारा चुँगावै है यह काजर नहीं देति है॥१३११

बाम = सुन्दर। बाम = बाँया। सयान = सयाना, चतुर। नेह = तेल। पातक निशान = पाप का चिह्न॥१३०॥

चारि कै = खोलकर। चोपते = प्रसन्नता से। चुगावत = चुगा रहा है। चारै = दाना॥१३१॥

कवि—बलभद्र

दडक—कजन के फद परे खजन तरफ कैधौं,
बाँधे जुगमीन नाग फाँसी सो मदन हैं।
काम कसेरुन के फूलन की कीच कीधौं,
कीधौं अहितूल की सिंगार के सदन हैं॥
विसिख पुलिन मैन माजे हैं प्रदीपन सों,
'बलि भद्र' मुनिन के मन के कदन हैं।
काजर की रेख अवरेखी लोचननि कैधौं,
कीन्हें चित चोरन के मेचक बदन हैं ॥१३२॥

टीका—कजन के फदे में परे हैं खजन तरफराय कहे डोलत हैं की जुगमीन फाँसी में बँधे हैं विसिख जो बान ताके मैन माजे है, काजर की रेख ऐसो है कि चित्त के चोरन के मेचक कहै बार होइ ॥१३२॥

(बरुनी वर्णन)

छुवत ही कोमल सिरस की सी पाँखुरी है,
खिन खिन खरी सरकति जाति छाती है।
निपटि अन्यारी नेक होत न हिये ते न्यारी,
अजौं नटमाल की अनी सी अहटाती है॥
मडल तिलौंछी असिकाछर करोछी अति,
अकुश सिगार की जई सी उलहाती है।
नैन मैन तीरन की फाँक सी तरेरी तीखी,
तरुनी की बरुनी ए बरनी न जाती है ॥१३३॥

टीका—तिलौछी तिलते वासी है असिकाछर करोछी० असि कहे तरवारि के सिकिलि ऐसी साफ है अकुश सिंगार ते प्रकट है यह नैन मैन के तीर के फाक हैं नाक से बरौनी हैं ॥१३३॥

कसेरुन=एक प्रकार का मोथा। विसिख=बाण। पुलिन=तट, किनारा। कदन=दु:खद। अवरेखी=लगा हुई, अकित। मेचक=श्यामल ॥१३२॥

सिरस=शिरीष पुष्प। खिन खिन=क्षण क्षण में। अन्यारी=काली। अनी=सेना, नोक। तिलौंछी=तेल लगा हुई। असिकाछर=तलवार की सी। करोछी=कुरेदी हुई। जई=अकुर। उलहाती=उगती, अङ्कुरित होती। फाक=नोंक। तरेरी=घिसी हुई। बरुनी=पलकों के बाल, बरौनी ॥१३३॥

कवि—कालिदास

नजर परेत उलहत उर आनन्द है,
लसत समूह सो कटाछन सपेद है।
'कालिदास' लोचन पियाले अवलोकत ही,
प्रीतम के अंग अंग पसरत सेद है॥
दोऊ हितकारी करि मोहत मुरारीजी को,
छकेई रहत लेते बिरत अखेद है।
चरन मै एक गुन भेद ना तो तरुनी के,
बरुनी औ बारुनी मै और कछु भेद है॥१३४॥

टीका—बरुनी और बारुनी में कछु भेद है काकु व्यंग तें बरुनी और बारुनी में कछु भेद नाहीं है॥१३४॥

कवि—सूरति

कैधौं दृग नगर के आसपास श्यामताई,
ताही के ए अंकुर उलहि दुति बाढे हैं।
कैधौं प्रेम क्यारी जुग ताके ए चहूँधा रची,
नील मनि सरनि की बार दुख डाढे हैं॥
'सूरति सुकवि' तरुनी के बरुनी न होयँ,
मेरे मन आए ए विचार चित गाढे हैं।
जेई जे निहारै मन तिनके पकरिबे को,
देखो इन नैनन हजार हाथ काढे हैं॥१३५॥

टीका—यह बरुनी नाहीं होय यह सब के मन पकरन के हेत नेत्र अनेक हाथ काढ़े हैं॥१३५॥

सेद=स्वेद, पसीना। छकेई=तृप्त ही। अखेद=प्रसन्न। बरुनी=बरौनी। बारुनी=सुरा॥१३४॥

श्यामताई=कालिमा। उलहि=उगकर। चहूँधा=चारों ओर। सरनि=मार्ग॥१३५॥

कवि—अज्ञात

लिख्यौ मननायक बनाय रसराज मसी,
कैधौं महा मोहनी के मन्त्र के बरन है।
कैधौं नैन चोरन के हाथ की अनूप असी,
कैधौं श्याम अगन के रगन के कन हैं॥
कैधौं ए पचास टूक सीवन की सार सुई,
कैधौं कारे तारन को किरनै को गन हैं।
कैधौं रूप पकज के ऊपर ए पक रेख,
कैधौं नैन तरुनी के बरुनी सघन है॥१३६॥

टीका—मननायक रसराज सिगार ताके रग श्याम ताको मसि कहै रोस नाई बनाय करि मन के अक्षर लिखे हैं की नैन चार के हाथ की असी होइ कहै तरवारि या सबरी जाते चोर सैध देत है, की पचास टूक के सियै की सूई होइ की रूप पकज पर पक कहै काच की रेख है की बरुनी होय॥१३६॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

(भृकुटी वर्णन)

दडक—कैधौं चन्द्रहास रसराज की कुटिल राजै,
काट है कठिन हाय भावन की सैन है।
कैधौ नीलमनि तार कसी कलधौत धनु,
काम महिपाल कर जाके बान नैन है॥
'गोकुल' बिलोकि बक अवली मलिंदन की,
आँखि अरबिद लोभ बसी दिन रैन है।
सीय भृकुटी मै श्रीय मैन कामिनी के मैन,
मैनकाहू में न काहू मै न कहो बैन है॥१३७॥

नायक=शृगार का आलबन। रसराज=शृङ्गार। मसी=स्याही। बरन=वर्ण, अक्षर। असी=तलवार। टूक=टुकडे। सीवन=साने। पकरेख=कीचड की रेखा॥१३६॥

चद्रहास=तलवार। सैन=सेना। कलधौत=सोना। बक=टेढी। अवली=पक्ति। मलिंदन=भौंरे। श्रीय=शोभा॥१३७॥

टीका—च द्रहारा तरवारि रसराज सिंगाररसकी की नीलमनि तारते न ी है धनु की ऑखि अरबिन्द रस के लोभी भार होय सीय भ्रकुटी में भीय कहै सोभा मैन कामिनी मे नहीं है ऐसो मैनकाहूमे न कहे मैनकाहू जा अप्सरा मे नहीं ऐसी शोभा काहू मैन कहो बैन काहू कहे किसी मे नहीं है ॥१३७॥

कवि—प्रताप

मरकत मनि की जुगल रेख राजै कीधौ,
मधुकर श्रेनी मकरंद लेन वारी हैं।
कीधौ कामधनु की बिराजै जुग जेहै किधौ,
तामरस दाम अभिराम अनियारी है॥
कहै 'परताप' आभा जिन की निहारि उर,
उकति निबेरि हेरि हेरि हिय हारी है।
उपमा त्रुटी है काम कलित कुटी है कैधौ,
भृकुटी ललित रघुनायक तिहारी है ॥१३८॥

टीका—जे है राम रोदा के तामरस कमल दाम नाम सूत के, सुगम ॥१३८॥

कवि—ग्वाल

कैधौं रमनीय रूप ऊपर बकारी बेस,
कीन्हीं महराज कामदेव बलधत की।
कीधौं परिपूरन पियूख की पियालनि में,
बैठे अहिनंद करि बक्रताई कत की ॥
'ग्वाल कवि' कैधौ हग द्वारे है बहारदार,
तापै मेहराब स्याम मीना ते लसंत की।
कैधौ सतरोहै न तरोहै होत जोहै जैसी,
सोहै मनमोहै बक भौहै भगवत की ॥१३९॥

टीका—अहिनद सॉप के बच्चा अवर सरल ॥१३९॥

मधुकर श्रेनी = भौंरों की पंक्ति। मकरंद = पुष्परस। तामरसदाम = कमलतंतु। अभिराम = सुन्दर। अनियारी = बंक, तिरछी। निबेरि = चुनना। कुटी = झोपड़ी ॥१३८॥

बकारी = शब्द। पियूख = अमृत। अहिनंद = सर्प के बच्चे। कत = भोग, शरीर। बहारदार = रमणीय, आनन्द दायक। मेहराब = द्वार के ऊपर का अर्द्ध मण्डलाकार बनाया हुआ भाग। सतरोहैं = टेढ़ी। तरौहैं = सीधी। बक = टेढ़ी ॥१३९॥

कवि—दास

स०–भावती भौंह के भेदनि 'दास' भले यह भारती आप गई कहि।
कीन्ह्यौ चहैं निकलक मयक जबै करतार बिचार हिये गहि॥
मेटत मेटत ह्वै धनुषाकृति मेचकताई की रेख गई रहि।
फेरि न मेटि सक्यौ सबिता कर रारि लियो अति ही फबिता लहि१४०॥

टीका—करतार ब्रह्मा मयक को बिनु कलक कीन चाहै। तब वह कलकी श्यामता धोवत धोवत ह्वै धनुष के आकृति श्यामता रहि गयी फेरि नाहीं धाइ सके वही रेख होइ॥१४०॥

कवि—मनिकंठ

अमल कमल पर गुजत भँवर युग,
प्रेम की तुला की सुभ डाँड़ी जोहियतु है।
कैधौ 'मनिकठ' हाव भाव के उकील ए है,
काम की कमान पिय मन मोहियतु है।
तनक मयक अक लोचन चपल राति,
ऊरध की अजन की आड रोहियतु है।
सोभा रस भासन सिगार रस आसन की,
कैधौ मनभावती कै भौंहैं सोहियतु है॥१४१॥

टीका—प्रेम के तुला के डाँडी होइ की हाव भाव के वकील अवर सुगम॥१४१॥

स०—गोरी किसोरी सु होरी सी देहु मो दामिनि की दुति देत बिदारै।
नारि नवै सब नारिन की तब नारि के रूप अनूप निहारै॥
भौंर सी भौंह न सोहि रही मुरकी उर ते न टरै पल टारै।
भीजे मनो मुख अम्बुज के रस भौंर सुखावत पख पसारै॥१४२॥

टीका—मुख कमल पर भौंर आपन पख पसारि सुखावत है सब नारिन कहै स्त्रीन की नारि नवै कहै खींचत है॥१४२॥

भावती=प्यारी का। भारती=सरस्वती। मयक=चन्द्रमा। मेचकताई=कालिमा। सबिता=सूर्य। फबिता=शोभा॥१४०॥

तुला=तराजू। उकील=वकील, वैधानिक प्रतिनिधि। कमान=धनुष। मयकअक= चन्द्रमा की गोद में। ऊरध=ऊर्ध्व, ऊपर। रोहियतु है=चढ़ा जा रहा है॥१४१॥

नारि=नाड़ी। नवै=झुकाता है। नारिन की=स्त्रियों की। मुरकी=रेखा। मुख अम्बुज=मुखरूप कमल॥१४२॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

(भाल वर्णन)

दंडक—कैधौं मनि मुकुट तरनि के मवास मंजु,
कीरति लतान की ललित आल बाल है।
कैधौं सीय नैन नटनागर के नृत्य थल,
कैधौं रसराज आले अजिर रसाल है॥
चंदन तिलक मलयाचल के शृंग कैधौं,
दिगबिजै पत्रिका है 'गोकुल' विशाल है।
कैधौं भागि भूमि आभा लहै अध चंदभाग,
भाल है अमद कैधौं रामचन्द्र भाल है ॥१४३॥

टीका—मनि तरनि कहै सूर्य के मवास कहै उदय के थल कीरति लता के आलबाल कहै थाल्हा। नैन नट के नर्तन की भूमि की रसराज के मंदिर के अजिर नाम आँगन चंदन के तिलक की उपमा मा।ो मलय के शृंग की यह दिगविजैपत्र होय की भाग्य की भूमि आभा लहत है की अर्द्धभाग चंद्रमा को भा लहै कहै भा नाम शोभा को प्राप्त है की रामचंद्र के भाल कहै माथ होइ ॥१४३॥

कवि—मंडन

रूप की नदी मै पार पाइबे को पारो है की,
काम को अखारो है की रति को भंडार है।
लाज को महल प्यारे 'मंडन' की आँखिन के,
पैठिबे को पैड़ो है की प्रेम रस सार है॥
राहु जानि बारन के भारन डेरानो यातो,
चंद्रमा को मानो अधखंड अवतार है।
यौवन के द्वार कै निकाई के निकास वो री,
गोरी को लिलार कैधौं शोभा को सिंगार है ॥१४४॥

टीका—यौवन के द्वार होइ की निकाइ कहै सुंदरताई के निकास होइ ॥१४४॥

तरनि = सूर्य। मवास = घर। आलबाल = थाला। नटनागर = चतुर नायक। आले = आलय, घर। अजिर = आँगन। रसाल = रसपूर्ण। अमद = विशाल ॥१४३॥

पारपाइबेको = थाह लेने को। पारो = पाल, दस्ता। अखारो = अखाड़ा, अड्डा। पैठिबे = घुसने। पैड़ो = मार्ग। लिलार = ललाट ॥१४४॥

कवि—बलभद्र

थापी कैधौं यश की जनम भूमि शशिवत,
उपजत जहाँ सब सुकृत को जाल है।
तिलक तरोवर की छाया है कलप तरु,
रस के अगारन को अजिर रसाल है॥
भाग कैसे बासन सुहाग कैसो आसन है,
मोहनी को शासन करयौ तौ बल लाल है।
काम के तुरगन की धापिका धरनि यह,
कैधौं 'बलिभद्र' भोरी भामिनी को भाल है ॥१४५॥

टीका—काम के तुरगन के फिरिबे की भूमि हाय की भाल ॥१४५॥

कवि—कालिदास

(भालबिंदु वर्णन)

करत उचाट पाट मत्रन को मत्र मानो
ललित ललाट तेरे हरत हियान है।
'कालिदास' बिलसत सेंदुर के बिंदु चारु,
सुदर गोबिद मन मोहन जियान है॥
सोने ते सलोन भाल झलक में सुन्दरी के,
जगमगी दियो लै तिलक सखियान है।
राहु पै चलायो है मयक यमधर सोतौ,
रहि गयो मेरे जान उर में मियान है॥१४६॥

टीका—राहु पै चलायो कहै मारयो है चन्द्रमा यमधर कहै तरवारि ताको मियान होइ रहि गयो है ॥१४६॥

थापा = स्थापित की। सुकृत = पुण्य। अगार = घर। अजिर = आँगन। बासन = पात्र। धापिका = दौड़ने की ॥१४५॥

उचाट = उच्चाटन। हियान = हृदयों को। जियान = जीवित रखनेवाले। यमधर = तलवार। मियान = तलवार रखने का स्थान ॥१४६॥

कवि—ब्रह्म

स०—ऐन सुरा बिदुली बिधु भाल में नाहिन मो मन तें टहलै।
चंद के बीच में कीच अमी अलि बालक आनि पर्यो चहलै॥
'ब्रह्म' भनै अलकैं घुंघरी अलि के कुल काटन को कहलै।
बैठि मयंक के कूल चिते पर कोऊ न पैठि सकै पहलैं॥१४७॥

टीका—ऐन कहे घर सुरा कहे मदिरा बिदुली बिधि कहे चन्द्रमा के भाल में चन्द्र में अमी के कीच ताते अलिबालक, अधर सहज॥१४७॥

कवि—मनिकंठ

(लट वर्णन)

दंडक—एक सीस सकित कलंक रेख छीन ह्वै कै,
बदन ससी मे दृग देखे अटकतु है।
कैधौं अलिबाल पाँति चलि थकी कंज ढिग,
अधर अमी को नागिनी सी छटकतु है।
पति मिलिबे को भुज यामिनी परारी एक,
सौति चित चाहकी चटक चटकतु है।
नैन नट नागर लकुट 'मनिकंठ' कैधौं,
कारी झपकारी प्यारी लट लटकतु है॥१४८॥

टीका—नैन नट के लकुट कहे छरी होइ॥१४८॥

कवि—प्रसाद

दृग मीन बाझिबे को बसी यह सखी कैधौं,
नागिन की बच्ची पीनै अमृत अमंद है।
प्रेम के कपाट खोलिबे को आँकुसी है कीधौं,
कैधौं 'परसाद' मन फाँसिबे को फंद है।

टहलै=हटता है। अमी=अमृत का। चहलै=कीचड़ में। अलकैं=केश। घुँघरी=घुँघराली॥१४७॥

यामिनी=रात्रि। चटक=गहरा रंग। नटनागर लकुट=नायक की छड़ी। झपकारी=बखरी हुई॥१४८॥

बाझिबे=फँसाने को। बसी=मछली फँसाने की कटिया। आँकुसी=काँटा। लगर=नाव रोकने के लिए जंजीरों से बँधा हुआ लोहे का बड़ा काँटा। कमंद=रस्सी॥१४६॥

रूप के जहाज बीच लगर लग्यौ है कैधौं,
मोहनी महल पर लसत कमद है।
चद की चटक पै राहु की सटक परी,
रही है लटकि लट साहेब पसद है ॥१४६॥
टीका—चद पर राहु को पाप परो है ॥१४६॥

कवि—परसराम

(पाटी वर्णन)

दडक—कैधौं रसनायक विहगम के पक्ष युग,
कैधौं प्रति पक्ष सौति जन के समोद के।
कैधौ तम पूरि द्वै कलाधर ते छ्यौ आय,
कैधौ विप्र बालक दिवाकर के गोद के ॥
'प्रसराम' कैधौं सामवेद के अनूप खड,
कैधौं काम नट के खेलौना मन मोद के।
पाटी के विभाग सो है पिय के अटल भाग,
नीर भरे मानो चार पटल पयोद के ॥१५०॥
टीका—नीर भरे मानो मेघ होइ ॥१५०॥

कवि—दिनेश

कैधौ बेनी पन्नगी के फन्न दुहुँ ओर राजै,
मृग दृग रोकिबे को रूप भूप घाटी है।
मुख विधुतान के बितान जुग मेरे जान,
कमल के ऊपर सिवारन की टाटी है ॥
कैधौं करतल रसराज राखे माथ दोऊ,
दीपति 'दिनेश' ताते ललित लिलाटी है।

रसनायक विहगम = शृङ्गार रूप पक्षी। प्रतिपक्ष = विपक्षी। कलाधर = चन्द्रमा। विप्रबालक = चन्द्र। दिवाकर = सूर्य। पटलपयोद के = मेघ के समूह ॥१५०॥

पन्नगी = सर्पिणी। बितान जुग = दो चँदोवे। सिवारन की = सेवार, जलकाई। टाटी = आड़ के लिये पर्दा। लिलाटी = मस्तक। घनपटली = मेघसमूह ॥१५१॥

येरी आगे मोहन मयूर से निरखि नाचै,
सघन के घन पटली के परिपाटी है ॥१५१॥

टीका—सघन घ गकी पटली होय ॥१५१॥

कवि—जगत सिंह

कैधौ यह बधू ब्याधी पाटी ठाटी माँग लागी,
पिय चख खंजन बझाये लाय लासा पर।
कैधौं मुख सरि सोऊ फनि काढ़ी सरि छबि,
आयो प्यासो जूरो फाग पाटी द्वै परारे पर ॥
कैधौ काम कानन मैं सात्विक की लीक लागी,
की अमी बदन पर देवतन को डगर।
चाँदनी बिछाय आछे बैठो दिजराज मुख,
आगे धरे सामुहें है सैफल सिपर पर ॥१५२॥

टीका—सिपर नाम ढाल होय ॥१५२॥

कवि—कालिदास

(मांग वर्णन)

दंडक—पहिले ही ललना नवेली अलबेली रची,
रचना सिमत की सहेलिन के संग है।
'कालिदास' कैसी पाटी पारत बनी है घनी,
अलकै अनूप बन्यो बदन को रंग है ॥
देखि मन सुंदर गोबिंद को आनन्द भयो,
कैसी बनि आई मनमोहनी की मंग है।
ले चल्यौ दुसाखा सुनि दीपक जगाइबे को,
जोबन महीपति के आगे ह्वै अनंग है ॥१५३॥

टीका—दूनों तरफके पाटी दुसाखा दीपक होय मसाल जोबन नरेशके आगे अनंग मसालची ॥१५३॥

ठाटी = सजाई हुई। चख = चक्षु। बझाये = फाँसे। लासा = गोंद। सरि = सरिता, नदी। जूरो = बालों का जूड़ा। सात्विक = सतोगुणीभाव। लीक = रेखा। अमी = अमृत। दिजराज = चन्द्रमा। सामुहें = सामने। सैफल = तलवार। सिपर = ढाल ॥१५२॥

सिमत = सीमत, माँग। अलकैं = केश। मनमोहनी = सुन्दरी। मंग = माँग। दुसाखा = मशाल। अनंग = कामदेव ॥१५३॥

कवि—अज्ञात

रेसमरसम सम सिरुह सुन्दरी के,
सघन घटा की स्यामताई अहटात है।
तापै दुहुँ वोर करतलन सँवारि पाटी,
पिय मन पारिबे को घाटी दरसात है॥
गूँथित गुनिन गजमोतिन सँवारि माँग,
ताकी उपमा को मति मेरी अकुलात है।
तमक चमक तमपुज के चमून चीरि,
मानो चारु चन्द्रमा की चौकी चली जात है॥१५४॥

टीका—जो बारन में मोती गुहे हैं ताकी उपमा तम को फारि चन्द्रमा की चौकी होय॥१५४॥

कवि—दास

सवैया—चीकनी चारु सनेह सनी चिलकैं दुति मेचकताहि अपार सो।
जीति लियो मखतूलके तार तमीतम तार दुरेफ कुमार सो॥
पाटी दुहूँ बिच माँगकी लाली बिराजि रही यौं प्रभा बिसतार सो।
मानो सिगारकी पाटी मनोभव सींचत है अनुरागके धार सो॥

टीका—दुरेफ कुमार कहै भँवर मानो सिगार की पाटी का काम अनुराग के जल से सीचै है॥१५५॥

कवि—रसलीन

दो०—माँग लगो ते बधिक तिय, पाटी टाटी वोट।
दोऊ द्रिग पच्छीन को, हनत एक ही चोट॥१५६॥

टीका—यह माँग नहीं बधिक की स्त्री पाटी की वोट दृगपच्छी औरन के मारत है॥१५६॥

रेसमरसम=रेशम के तागे। सिररुह=केश। अहटात=पता लगता है। घाटी=पर्वतों के बीच का सकरा मार्ग, दर्रा। चमून=सेनाओं को। चीरि=फाड़कर॥१५४॥

चिलकैं—आभा। मेचकताहि=श्यामलताको। मखतूल=काला रेशम। तमीतम=रात्रि का अन्धकार। दुरेफ कुमार=भ्रमर बालक। मनोभव=कामदेव॥१५५॥

बधिक=व्याध। वोट=पर्दा, आड़॥१५६॥

अरुन माँग पटिया नहीं, मदन जगत को मारि।
अस़ित फरी पर लै धरी, रकत भरी तरवारि ॥१५७॥

टीका—अरुन कहै लाल पाटी न होय मद। जगत को मारि स्याम ढाल पर रकत भरी तरवारि धरी ॥१५७॥

कवि—रतन

(सीसफूल वर्णन)

जगर मगर होत यमुना के जल कैधौं,
कोकनद कमनीय पूरन प्रभनि को।
सुकवि 'रतन' कैधौं राजत रतनवर,
कारी कुण्डलीस फनि ऊपर फवनि को॥
कैधौं सुरभान पर भान भोर ही को कैधौं,
उग्यौ भौन उत्तर दै तनूभ्र् तरनिको।
कैधौं प्रान प्यारी की सँवारी पारी पाटिन मैं,
सोहत सुभग सीसफूल लालमनि को ॥१५८॥

टीका—सुरभान नाम राहु पर भोर के सूर्य होय की भौम नाम मगल की तरनि नाम सूर्य के तनूभव कहै पुत्र ॥१५८॥

कवि—दिनेश

अग अग भूषन जराऊ के जगमगात,
चौकी चमकति छबि छाजै भाल गंड की।
कारी जरतारी की किनारी सुकुमारी की है,
पसरी किरिनि रुचि राजत प्रचंड की॥

असितफरी = काली ढाल ॥१५७॥

जगर मगर = चमचमाहट। कोकनद् = लाल कमल। कुण्डलीश फनि = सर्प का फण। फवनि = शोभा। सुरभान = राहु। भान = भानु, सूर्य। भौम = मगल। तनूभू = तनय, पुत्र। तरनि = सूर्य। पाटिन = माँग के इधर उधर के भाग ॥१५८॥

जराऊ = रत्नजटित। जरतारी = सुनहरे तारों से बनी हुई। पसरी = फैली हुई। मारतण्ड = सूर्य ॥१५९॥

भाग ते तखत बैठ्यौ सोहत सुहाग ताको,
छत्र है छबीले लट लागे दुति दड की।
सीस फूल सीस देश राजत 'दिनेस' केस,
घन घन ऊपर उदै जो मारतड की ॥१५६॥

टीका—की भाग तखत पर बैठो है, लट छत्र को दड होय की घन के ऊपर मारतण्ड कहै सूर्य उदै है ॥१५६॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

(केश वर्णन)

दडक—श्याम मखतूल कैधौं काम के दुकूल कैधौं,
रसराज मूल कैधौं सोभा निरधार है।
चौंर काम भूप के है घटा घन से अनूप,
तमोगुन रूप कैधौं नीलमनि हार है॥
'गोकुल' बिलोकि मृग मद ते समोये लोये,
कारे लहकारे भारे कुहूके कुमार हैं।
व्याल के है बार छबि ताल के सेवार कीधौं,
सोहैं शनि वार कैधौं सीय शिरवार है ॥१६०॥

टीका—व्याल के बार कहै साँपके बच्चा है छवि तालके सेवार की शनि बार कहै दिन या बालक की सिर बार कहै केश ॥१६०॥

कवि—घासीराम

कवित्त—कारे कजरारे सटकारे घुँघुरारे प्यारे,
मनि फनिवारे भौंर पायन लौ ऊटे हैं।
वासे फूल तेल से नरम मखतूल ऐसे,
दीरघ दरारे व्याल व्यालन लौ जूटे हैं॥

मखतूल = काले रेशम का कीमती वस्त्र। दुकूल = रेशमी वस्त्र। रस राज = श्रृङ्गार। मृगमद = कस्तूरी। समोये = सने हुए। लोये = लोचन। कुहू = अमावस्या। व्याल = सर्प। सेवार = जल का काई ॥१६०॥

कजरारे = काजल लगे से। सटकारे = चिकने और लम्बे। बासे = सुग न्धित। ऊटे = उमग भरे। जूटे = सटे हुए। चौंर = चँवर। तिमिर = अन्धकार। रैनि = रात्रि ॥१६१॥

'घासीराम' चारु चोर सरिता सेवार वारो,
ऐसी स्यामताई पै गगन घन लूटे हैं।
छाइ जैहै तिमिर निहाय रैनि आइ जैहै;
झारि बाँधु अजहूँ सँभारु बार छूटे है ॥१६१॥

टीका—नायिका के बार छूटे ताको देखि सखी कहै है तिमिर छाय जैहे राति आय जैहै या ते जल्दी बाँधु ॥१६१॥

कवि—शंभु

हठि माँगत बाट किधौ लछिमी की सरोज सो आनि सेवार अरे।
किधौं आरसी के घर ते उत 'शभु' समूह फनी छबि को बगरे॥
इमि राधिका के मुख के चहुँ ओर बिराजत बार महा सुथरे।
भजि चद चल्यौ बिचल्यौ रन ते तमबृन्द मनो जुरि पाछे परे ॥१६२॥

टीका—नायिका के मुख पर बार परो है की सराज सेवार में परो ताको लक्ष्मी राह माँगती है कि आरसी में साँपन के फन होय, चद्रमा रनते भागे पाछे तम घेरे है ॥१६२॥

कवि—कासीराम

कारे सटकारे फटकारे चटकारे नेक,
धूप दे सँवारे सुषमा समूह बसिगो।
कोकिला कुहू को सो दुहूँ को कियो मैलो मन,
'कासीराम' भौरन की भावनी की नसिगो॥
सावन के बन घन सघन तमाल तरु,
तरनि तनूजा ताहि हेरि हिये हँसिगो।
तेरे तन रूप की तरगिनि तरन मन,
पैरि वारपारन सेवारन मै फँसिगो ॥१६३॥

टीका—रूप तरंगिनि कहै नदीमें वार सेवारमें मन फँसिगो ॥१६३॥

बाट = रास्ता। फनी = सर्प। बगरे = फैलाता है। सुथरे = स्वच्छ। भजि = भागकर। बिचल्यौ = घबरा कर ॥१६२॥

चटकारे = चमकीले। कुहू = अमावस। दुहू = दोनों। तरनि तनूजा = यमुना। पैरि = तैर कर ॥१६३॥

कवि—जगत सिंह

मरकत तार कीधौं काली के कुमार कीधौं,
तम गुन हार कीधौं लतिका सिगार हैं।
कुहू की किरिनि धार कैधौं कोक कला चारु,
सनि के कितार कीधौं उठ्यौ धूमधार हैं॥
श्याम मखतूल तार शोभित सेवार कीधौं,
चमर सिगार कैधौं मोहको पसार हैं।
खींचि मृगमद सार डोरी बटी कैधौं मार,
मार अवतार कैधौं दार तेरे बार हैं॥१६४॥

टीका—मृगमद के काम डोरी बरी है अवर सरल॥१६४॥

कवि—श्रीपति

(बेनी वर्णन)

कंचन की पाटी पर काजर की धार मानो,
रूप माल पर अलि माल लटकति है।
कैधौं रति नायक के पीठि पै सिंगार लीक,
देखि कबितान की सुमति अटकति है॥
'श्रीपति' भनत कैधौं केसर के खंभ पैस,
दंभ भये मरकत लरी लटकति है।
कारी लहकारी बेनी पीठि पै सजत मानो,
रँगी रंग पाटी पै भुजंगी सटकति है॥१६५॥

टीका—मानो रंगी पाटी पर भुजंगी कहै साँपिनि लोटति है॥१६५॥

मरकत = पन्ना। चमर = चँवर। पसार = प्रसार, फैलाव। मृगमद = कस्तूरी। दार = स्त्री (सम्बोधन है)॥१६४॥

रूप = स्वरूप, चाँदी। अलिमाल = भौंरों की माला। लहकारी = लटकने वाली। पाटी = तख्ती। भुजंगी = सर्पिणी। सटकति = सरकता है॥१६५॥

कवि—आलम

लाँबी लहकारी बहु पेचन की भारी औ,
गरक सोंधे सारी न्यारी अतिशय झाक की।
बरनो कहा लौं वोप मदन की धोप कीधौं,
इन्द्र करि कोप तररानी एक ओक की॥
नटुवा की साटि कैधों 'आलम' सधायबे को,
कहाँ लौं बखानौ हौं पढ्यौ न बिधि कोक की।
नागिनी की तिमिर छपाकर मे छाय रही,
कटि पर बेनी की निसेनी सुरलोक की॥१६६॥

टीका—नागिनि की तिमिर छपाकर में छाय रही की सीढ़ी होइ सुर लोककी॥१६६॥

कवि—भगवंत

रैनि की उनीदी राधे सोवत सकार भये,
झीनो पट तानि परी पायन ते मुखते।
सीस ते उलटि बेनी कठ ह्वै के उर ह्वै के,
जानु ह्वै छवान ह्वै कै लागी रूधे रुखते॥
सुरत समय रति यौबन के महा जोर,
जीति 'भगवंत' अरसाय राखी सुखते।
हार को हराय मानो माल मधुकरन की,
राखी है उतारि मैन चपा के धनुख ते॥१६७॥

टीका—हारको हराय वह बेनी जो शीश ते पलटि गुप्त ह्वै कै एडी तक आइ परी है सो मानो मधुकर जो भँवर ताको माल मैन चपा के धनुप ते उतारि धरी है॥१६७॥

लहकारी = लहराने वाली। पेचन = लपेट, चक्कर। झांक = वेग। वोप = शोभा। धोप = तरवार, खड्ग। तरराना = अकड़, ऐंठ। ओक = घर। नटुवा = नट। साँटि = छड़ी। कोक = कामशास्त्र। छपाकर = चन्द्र। सुरलोक = स्वर्ग॥१६६॥
उनींदी = जागनेसे अलसायी। सकारे = प्रातःकाल। झीनो = महीन। छवान = एड़ी। अरसाय = आलस्य युक्त होकर। मधुकरन = भौंरों की। मैन = काम। धनुख = कमान॥१६७॥

कवि—ब्रह्म(बीरबल)

सवैया—राख्यौ मयक के पाछे फनी फन रूप बखानत याको हितू पर ।
नेहसनी बनी बेनी गुलाब निसेनी कोऊ सुख की नहि दू पर ॥
पीठि मै देखत दीठि धॅसै न उपाय बिलोकिए या बृज भू पर ।
अमृत पीवत पूॅछ डुलै मनो कचन के कदली दल ऊपर ।१६८॥

टीका—वह बेनी जो डोलत मानो मुख चद्रमा म अमी पीवति है ताते पूँछि डोलत है सॉपिनि होइ ॥१६८॥

कवि—दत्त

मृगनैनीके पीठि पै बेनी बिराजै, सुगध समूह समोय रही ।
अति चीकन चारु चुभी चित मै रविजा समता सम जोय रही ॥
'कविदत्त' कहा कहिए उपमा जनु दीपशिखा सम जोय रही ।
मनो कचनके कदली दल ऊपर सॉवरी सॉपिनि सोय रही ॥१६९॥

टीका—रविजा नाम यमुना सम जनु दीपकसिखा कचन सोना केरा कै पात तामें सॉपिनि होय बेनी नहीं ॥१६९॥

कवि—मनिकण्ठ

कै मधुपावलि मजु लसै अरबिद लगी मकरद नयो है ।
की रजनी 'मनिकठ' रिसाय के पाछे कै गौन कियो अरिसो है ॥
बेनी किधौं एक लक चुकै किधौं रूप मशाल को धूम करो है ।
कचन खभ के कध चढी थकि चद गह्यो मुख सॉपिनि सो है ।१७०।

टीका—यह बेनी न होय कचन के खभ पर चन्द्र थकि बैठ्यो है अमृत के लोभ सॉपिनि होइ पकरै है ॥१७०॥

मयक=चन्द्रमा । फनी=सर्प । हितू=मित्र । नेह=तेल, प्रेम । निसेनी=सीढ़ी । ॥१६८॥

समोय रही=सन गई । रविजा=यमुना । समजोय रही=सजा रही, इकट्ठा कर रही । मधुपावली=भ्रमर पक्ति । अरबिद=कमल । मकरद=पराग ॥१६९॥

अरिसो है=आलस्य युक्त । लक=कटि ॥१७०॥

कवि —अज्ञात

(जूरा वर्णन)

कैधों साँप गीडुरी दे फन उकसाय बैठ्यो,
कैधौं काम अंकुश सँवारिबे को पूरा है।
कंचन की गुटिका सो पाटी पारिबे को राख्यो,
कैधौं सालिग्रामको सरूप रूप सूरा है॥
कैधौं शनि करत तपस्या तीर कालिंदी के,
वृंदा कैसे फल देखियत मन रूरा है।
चीकने चटक मटकत कारे श्याम हूँ ते,
ऐसो सीस प्यारी के विराजमान जूरा है॥१७१

टीका—की साँप की गीडुरी की काम कै अंकुश की सोन कै गुटिका की सनि कहै शनैश्चर यमुना के तट तप करत सुगम ॥१७१॥

अचरज कला कलाधर धरि राखी पीछे,
कैधौं सुरभानु जानि कर बैर काँप्यो है।
कैधौं कंजकोश ढिग अलि मंजु गुंजत है,
मंजुल मनोज मग जानि सर सौंप्यो है॥
कैधौं अहि कारे लहकारे ते लहरि बारे,
सुधाकर जानि के नवीन नेह नाँध्यो है॥
चीकने चिकुर चारु चहचह्यो जूरो स्याम,
गेठि गैठि लटनि लपेटि मन बाँध्यो है॥१७२॥

टीका—यह अचरज है कलाधर के पीछे राहु बैठ्यो है की कंज कोश के ढिग अलि भौंर की अहि जो साँप सुरा चंद्र जानि आयो सुगम ॥१७२॥

गीडुरा = मंडल। अंकुश = प्रतिबन्ध, हाथीको वश करने का एक अस्त्र। गुटिका = गोटी। पारिबे को = बाँधने के लिये। कालिंदी = यमुना। वृंदा = तुलसी। रूरा = रुचिर, सुन्दर॥१७१॥

कलाधर = चन्द्रमा। सुरभानु = राहु। कंजकोश = कमलमुकुल। मनोज = काम॥१७२॥

कवि—जगत सिंह

(सुकुमारता वर्णन)

दण्डक—कैसे कै बखान करै कविता 'जगत सिंह',
साँस लेत पिय के न पास ठहरात है।
मूठी कैसी मारि गिरै डीठि के परे ते नेक,
सुषमाके भारते न चलो जात गात है॥
उपमा धरत न धरत धीर धरनी पै
लचकि लचकि लक लचि लचिकात है।
हिय के गिलिम वाले कोमल अमल आले,
बानी के निकाले पग छाले परि जात है॥१७३॥

टीका—कैसे कै बखान०—सुकुमारी ऐसी जाके पायन म छाले परिजात, बानी कहै बोल्तै कहै जो चल को काई कहत है वह बात बोल्तै पाय म छाल परि जात॥१७३॥

कवि—बलिभद्र

पलिका ते पाय जो धरत धाय धरनी पै,
छाले परै मग माँझ पैडक गवन ते।
लीलै जो तमोल तौ तौं ताप आवै 'बलिभद्र'
होत है अरुचि पान पीक अचवन ते॥
बारन के भार और चीरहू के तन भार,
याते नहि होती बाम बाहेर भवन ते।
लागै जो समीर तौ तौ पूरो परै सौतिनके,
फूल ज्यौं उड़त अलि पखके पवनते॥१७४॥

टीका—पालिकते पाय०—जैसे फूल अलि के पख ने लागे उडत तैसे वह बयारिलागे उडत॥१७४॥

गिलिम=मुलायम गद्दे। अमल=स्वच्छ। आले=उत्तम॥१७३॥

पलिका=पलँग। पैडक=पैदल। लीलै=निगल जाय। तमोल=ताम्बूल, पान। पीक=पान का थूक। अचवन=कुल्ला करना। चार=वस्त्र। बाम=सुन्दरी॥१७४॥

कवि—जगतसिंह

(सर्वाङ्ग वर्णन)

कमल पै चम्पकली तापै मुकता की फली
तापै केदली को खंभ तापै है भृङ्गीवर।
तापै भरी पानिप सरोवर लहरि लेत
तापै एकनाल कंज दोय कलीसे निकर॥
तापै हेमशाखा दोय पल्लव प्रबाल लीन्हे
ता बिच कनक कंबु तापर रसाल फर।
तापै बिंब तापै कीर तापै अरबिंद धनु
तापै इंदु तापै घन तापै सात्विकी डगर॥१७५॥

टीका—कमल पै चपकली०—कमल पग चपकली गुलफ मु कुताफली मुटना की गाँठि केदली खंभ जाँघ तापै हेम भृङ्गी छुद्रघंटिका सरोवर नाभी एक नाल कंज दोय कली सोन के उरोज हेम कहै सोने कै शाख कहै डार बुश्रो भुजा पल्लव प्रबाल पाँच अँगुरी युत हथेली हाथ कंबु शंख ग्रीवँ रसाल आम फर चिबुक बिंब श्रोष्ठि कीर नाक अरबिंद नेत्र धनु भृकुटी तापै इन्दु भाल घन बार सात्विकी डगर माँग मुक्तायुत॥१७५॥

कवि—संतन

(सौरभ वर्णन)

यमुना के आगमन मारग मे मारुतन भौंरनि के भीर निपटे से लखि पाए है।
'संतन सुकवि' सुखखानि पदुमिनी तेरो रूपको तरंगिनी अनंग दरसाए है।
बाहर कढ़न कहै तो सो ते अयानी कौन लेहै बदनामी घेर घर घर छाए है।
पट की लपट लपटति ता दिना ते आजु मानो उन गलिन गुलाब छिरकाए है

टीका—यमुना के आगमन०—जादिन ते तूँ वहि गली ते आइ है ता दिन ते वहिगली में सुगंध ऐसो आवै है की मानो गुलाब वहि गली छिरकाया है॥१७६॥

कवि—बिहारी लाल

दोहा—न जक धरत हरि ही धरे, नाजुक कमला बाल।
भजत भार भयभीत ह्वै, घन चन्दन बनमाल॥१७७॥

॥ इति श्री दिग्विजयभूषणे गोकुलकायस्थविरचिते अनेककविमत नखशिख वर्णन नाम पञ्चदशः प्रकाशः॥१५॥

टीका—नजक धरत०—भाजत कहै भागती है डेराय कै चन्दन और कपूर के लगाए॥१७७॥

इति श्री दिग्विजयभूषणे टीकायां नखशिखवर्णन नाम पंचदश प्रकाशः।

षोडश प्रकाश

ऋतु वर्णन

दोहा—अलकार मे रहत है, देश काल की बात।
तातें ऋतु वर्णन करों, समै सुभाव विभात ॥१॥

बसंत वर्णन

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

दडक-देश बन बागन के दल बदकारन को,
राजते निकारि पतझार कियो अत है।
शीतल समीर चलै दूत सब ठौर भले,
कोकिला पुकारै अर्ज बेगी मतिवत है॥
पल्लव नवीन ज्यौं खिलति पाए खैरख्वाह,
प्रजा प्रफुलित फूले फूल जो अनत है।
मान अनरीति की न रीति रहि जैहै 'बृज'
भूपदिगविजय नीति बिलसै बसत है ॥२॥

टीका—मान अनरीति की रीति न रहि जैहै ॥२॥

(दानी बसत रूपक)

पल्लव नवीन पट मगन विटप पाए,
मृदुल चलावै बात फैली है दिगत लों।
प्रभुता प्रसून पाय विटप लौं नै चलत,
गुजरत भौंर द्वार भीर गुनवत लो।

बदकारन = दुराचारियों। अर्ज = प्रार्थना। खिलति = राजाओं द्वारा सम्मानार्थ प्रदत्त पहनावा। खैरख्वाह = हितचिंतक। अनरीति = अनुचित व्यवहार, कुचाल। बिलसै = शोभित। विटप = वृक्ष। बात = वार्ता, वायु ॥२॥

फूल मकरंद लौं झरत दान नीर कर,
बन्दी जन गावैं यश पिक किलकत लो।
दानवत रूप जग भूप दिगविजै सिंह,
'गोकुल' अनूप भाति विलसै बसंत लो ॥३॥

(सिकार रूपक)

हरे तरु पात तैसे पहिन शिकारी पट,
फूल ऐसे प्रफुलित मुख तेजवन्त हैं।
चले मंद मारुत लौं हलका मतंगन के,
गुंजे अलि मंद मकरंद लौं झरत हैं॥
शिशिर के शीत सम सेरन को हेरि मारे,
हँकवा हँकारे पुंज पक्षी किलकत हैं।
'गोकुल' बिलोकि महाराज दिग विजय सिंह,
खेलत सिकार कैधौं बन मैं बसंत हैं ॥४॥

(नृपति आगमन रूपक)

देश देश धुन्धन के ग्वल दल पीरे भए,
भागत भरन लागे जानि बल अंत जो।
बहे पौन मंद मानो पुर के बहारैं पथ,
फूले लगे फूल प्रफुलित हितवंत भो॥
पल्लवित बौर सिर कलँगी रँगीन पट,
चोंढे कल गान करें पिक किलकंत सो।
बाग बन धाम धाम आभा अभिराम 'बृज',
आवन की धूम धाम नृपति बसंत को ॥५॥

मकरन्द=पराग, पुष्परस। दाननीर=दान के समय लिया जाने वाला जल, हाथी का दान वारि। पिक=कोकिल। किलकन्त=किलकारी, टेर ॥३॥

सिकारीपट=शिकार के समय पहनने योग्य वस्त्र। हलका=झुण्ड। मतगन के=हाथियो के। सेरन=सिंहों को। हेरि=खोज कर ॥४॥

बहारैं=साफ कर देते हैं। बौर=मञ्जरी। कलगी=पक्षियोंके कोमल रोयें से बनी वस्तु जिसे राजा लोग अपने मुकुट में लगाते हैं। चोढ़े=ओढ़कर। अभिराम=सुन्दर, मनोहर ॥५॥

(ब्याह बसंत रूपक)

पीत करि दिए पाती न्यौत बन पाँतिन को,
पल्लव नवल पुंज पहिरावा पायो है।
द्विज गन बोलैं शुभ आलीगन गान करैं,
भेरि सहनाई कीर कोकिल बजायो है॥
फूली बहु बेली फूल फबत रँगे दुकूल,
आमन के बौर मौर मंजुल बनायो है।
लता बनिता सी बनी बर सो बिटप 'बृज',
ब्याह बिधिवत सो बसंत बनि आयो है॥६॥

(फौज रूपक)

फूले है पलास लाल लहरै निशान सोई,
बौरे हैं रसाल बरछी सो धार साने की।
गुंजरत मंजुल मलिंद बृंद आस पास,
मंद गति मारुत गयंद है पयाने की॥
'गोकुल' पराग रज उड़ै पथ फूलन के,
कोकिला बिरद बर बोलै बीर बाने की।
मान बलवंत गढ़ फटा करिबे को अंत,
आयो न बसंत सैन मैन मरदाने की॥७॥

(नृत्त रूपक)

बागन में चारु चटकाहट गुलाबन के,
ताल देत तालिया तुलान तुक तंत की।
गुंजत मलिन्द बृन्द तान की उपज पुंज,
कलरव गान कोकिलान किलकंत की॥

पात = चिट्ठी, पत्ते। बन पाँतिन = बन पक्तियों को। नवल = नये। पहिरावा = पुरस्कारस्वरूप प्राप्त पहनने का वस्त्र। द्विजगन = ब्राह्मण लोग, पक्षीवृन्द। आलीगन = सखीगण, भ्रमरसमूह। बेली = सुन्दरी, लताएँ। फबत = शोभित हैं। दुकूल = रेशमी वस्त्र। मौर = मुकुट। बर = दूल्हा॥६॥

पलास = टेसू। निशान = पताका। बौरे = मञ्जरियाँ। साने = तेज का हुई। मलिन्द बृन्द = भौंरो का झुण्ड। गयंद = हाथी। पयाने = प्रयाण किया। रज = धूलि। बिरद = उपाधियाँ। बारबाने का = वीरों का रीति की। गढ़ = दुर्ग। मैन मरदाने की = बार कामदेव की॥७॥

'गोकुल' अनेक फूल फूले हैं रंगे दुकूल,
झूमैं आम बौर हाव भाव रसवत की।
लहरैं तरुन तरु छहरैं सुगध मद,
नाचत नटी लौं आवै बैहर बरात की ॥८॥

(संत रूपक)

झरे तरु पात त्यौं ही पातक पतन करि,
कोमल चलावै बात प्रेम रसवत है।
माधव मधुर रस पान करि गुजरत,
प्रफुल्लित सुमन प्रकाश जो दिगत है॥
बौरे है रसाल त्यौं ही छाप है तिलक भाल,
कोकिल सो गावै हरि कीरति अनत है।
'गोकुल' बिलोकि बन बाग तीरथन बीच,
सत की समाज सो बसत बिलसत है ॥९॥

(गज पवन रूपक)

बिहरै बिपिन मे बिटप की हलाइ डार,
कियो पतझार जाकी गति है दिगत लौ।
महकै सुगध मधु फूलन कपोलन के,
माते मधुकर गुजरत रसवंत सो॥
सिह सम सिसिर के सीत को सिसिर करि,
दीन्हो है भगाइ 'बृज' बड़े बलवत जो।
मद मद चलत झरत मकरद मद,
मदन मतग कैधौ मारुत बसत को ॥१०॥

तालिया = मजीरा या झाँझ बजाने वाले। तुकान = मिलाकर। तान = आलाप। किलकन्त = किलकारी मारकर। लहरैं = शोभित हैं। तरुन = तरुण, युवा। छहरैं = फैलती है। बैहर = बयार, वायु ॥८॥

पातक = पाप। बात = वार्ता, वायु। माधव = भौंरे, श्रीकृष्ण। सुमन = पुष्प, हर्षित मन। रसाल = आम, रसयुक्त। तिलक = तिलक नाम का वृक्ष, टीका। हरि = मनोहर, श्रीकृष्ण। तीरथन = तीर्थों, पुण्यक्षेत्रों ॥९॥

सिसिर करि = ठंढा (समाप्त) करके। मद = मस्त हाथी की कनपटी से झरनेवाला जल। मदन मतग = कामदेव का हाथी ॥१०॥

रंग बहु भाँतिन के पातिन के भाँतिन की,
देखि कै सनेह कली कढिहैं बढत की।
फूले बहु फूल पर गुंजत मलिन्द देखि,
फूलै मन चाह चित मित्र रसवंत की॥
'गोकुल' कलोल कल कोइलि के बोलन मैं,
थिर मति लोल होय परदेसी कंत की।
बौरी बन बेली लखि होइगी नवेली बौरी,
बहुत सुगंध बोरी बैहर बसंत की ॥११॥
मंजु मंजरीन पर गुंजत मलिन्द रिन्द,
पुंज परसून 'बृज' रस बरसै लगे।
ठौर ठौर कोकिला कलोल करि बोलै खग,
जलज थलज परकास परसै लगे॥
बहैं गंधवाह मन्द भरे हैं सुगन्ध भार,
परसत अंग मैं अनंग सरसै लगे।
विटप लतान मैं सरन सरितान मैं,
नरन बनितान मै बसंत बिलसै लगे ॥१२॥
पाय कै प्रसून रस मंजु गुंजै अलि पुंज,
अहित कपाली के विशिष हिय हूले हैं॥
यमकी जमाति जैसी जगत परान चल्यौ,
हरे हरे हरिबेको प्रान प्रतिकूले हैं॥
कूजै कल काकपाली त्यागे हित हेत आली,
ऐसे ऋतुराज मैं उपाय 'बृज' भूले हैं।
सोहैं सहकारन मे किंशुक की डारन में,
जो है कचनार मे अंगार फूल फूले है ॥१३॥

पातिन=पत्तियाँ। सनेह कली=प्रेम की बाड़ी। बढ़त=वृद्धि। कलोल=आमोद प्रमाद, क्रीडा। लोल=चंचल। बौरी=मंजरी युक्त। बनबेली=बनलता। नबेली=नवबधू। बौरी=पागल, विक्षिप्त ॥११॥

रिंद=स्वच्छन्द। परसून=प्रसून, पुष्प। गंधवाह=वायु। अनंग=कामदेव ॥१२॥

प्रसूनरस=पराग, मकरंद। अहित कपाली (अहित=शत्रु, कपाली=शिव)=कामदेव। विशिख=वाण। हूले है=भोंक दिया है। जमाति=

कवि – शेख

दंडक—सघन अखंड पूरि पंकज पराग पत्र,
अंकुर मधुप सन घटा घहनात है।
विरमि चलत फूली बेलिन के बारारस,
गुंथ के रादसे लेत सबनि सुहात है॥
'सेख' कहैं सारे सरवरन के तीर नीर,
पीवत न परसत ही हीरे सियरात है।
आवन बसत मन भावन मनोज तन,
पवन परेवा जनु पाती लिये जात है॥१४॥

कवि—मुबारक (ममारख)

स०—संग सखी के गई अलबेली महासुख सोवन बाग बिहारन।
बाढ़े बियोग बिलास गये सब देखत ही वै पलास की डारन॥
जानि बसंत औ कतु विशेश सखी लगी बावरी रोनै पुकारन।
च्वै चलिहैं चुरिया चलि आव री अंगुरि अजनु लाव अंगारन॥१५॥

टीका—उद्दीप। ते भग भया है यह अंगार चुरियाँ लाह की गलि जैहै॥१५॥

किंसुक झार कुसुम्बित डार ह्वै सीरी बयारि बहै जो बगारन।
आगि लगी है कहूं बिन काज न मैंहूँ सुनी समुझी ऋतु राजन॥
तेरी सौं तोहि डरौं मैं 'ममारख' सीरी करौ सखी ले जलधारन।
च्वै चलि है चुरिआ चलि आव री आँगुरि अजनु लाव अंगारन॥१६॥

समुदाय। परान चलयो=भागने लगा। काकपाली=कोयल। ऋतुराज=बसंत। सहकारन=आमों में। किंशुक=टेसू। कचनार=एक सुन्दर फूलों वाला पेड़ विशेष॥१३॥

सघन=घने। पंकज पराग=कमल का मकरंद। मधुप=भौंरे। घहनात है=बजता है। विरमि=रुक रुककर। बेलिन=लताओं के। सबनि=सबको। सारे=ठंडे। हारे=हृदय को। सियरात=शीतल करते हैं। पवन परेवा=वायुरूप कबूतर। पाती=पत्री, चिट्ठी॥१४॥

च्वै चलिहै=गलकर टपकने लगेगी। चुरिआ=चूड़ियाँ॥१५॥

किंसुक झार—टेसू की झाड़ियों में। कुसुम्बित=फूली हुई। सीरी=ठंडी। बगारन=घाटियोंमें। सौं=सौगन्ध, शपथ॥१६॥

कवि—कविंद

दंडक—तारे जहाँ सुभट नकारे पिक नाद जहाँ,
पैदल चकोर कोर बाँधे बद बेस की।
गुंजरत भौंर पुंज कुंजरत मोर जहाँ
पौन झकझोर घोर धमक हमेस की॥
भनत 'कविंद' सर फौज है बसन्त आली,
मिलै तंत कंत सो मनोज मन पेस की।
मानवारी गढपै गुमान ढाहिबे को आज,
चढी असवारी है निशाकर नरेस की॥१७॥

कवि—किशोर

धावैं तकि धावनि सबेर तजि काम काम,
धायो कर धनुष सुधा कर धराधरी।
हहरि उठे हैं सब लोग लोक सोर करि,
कल बिरहिनि को न परत जरा भरी॥
कहत 'किसोर' भौंर भौंर ठौर ठौरन मैं,
दौरनि मची है अति भोरन तरातरी।
तेहवंत तरुन गुमान गुन गेहवंत,
नेहवंत निरखि बसंत की भराभरी॥१८॥

टीका—तेहवन्त कहै तेजवन्त या बलवन्त॥१८॥

सुभट = अच्छे योद्धा। नकारे = नगाड़े, वाद्य विशेष, नौबत। बद्वेश = पेटी। कुंजरत = कूजते हैं। मनोज = काम। मानवारी = मानिनी। गुमान = घमंड, गर्व। निशाकर = चन्द्रमा॥१७॥

धावनि = जल्दी जल्दी चलना, शीघ्र गति। काम = कामना। काम = कामदेव। सुधाकर = चन्द्रमा। धरा = पृथ्वी। हहरि उठे हैं = काँप उठे हैं। लोक = मार्ग। कल = चैन, आराम। भौंर = समूह। तेहवंत = क्रोध भरे, बलवान्। नेहवंत = प्रेमी॥१८॥

मलैगिरि मारुत के मिसि बिरहाकुलनि,
दिसि दिसि ब्यालन को बिप बगरायो है।
तापर 'किसोर' तैसे पचमन बल राग,
कोक की कलान भीनी कोकिलन गायो है ॥
को न सुनि मोचै मान लोचै कान्ह मिलन को,
सोचै कौन स्याम देखि नभ घन छायो है।
आमन के मौंर लागे अकुरन मौर लागे,
भौंर लागे भ्रमन बसत अब आयो है ॥१९॥

टीका—आगमन बसत ॥१९॥

अवनि अकास अम्बु अनिल अनल आभा,
औरै भाँति भई जो मनोज महिमत की।
करि जनि मान या दिसान ह्वै गई है मद,
मति छ्वै गई है सब जानु जगजत की ॥
कहत 'किसोर' जोर जरब कुयोगिन को,
भोगिन को भावती बियोगिन के अत की।
उलही उमगन ते लखो लसि रही तैसे,
लहलही लौदन पै लहरि बसत की ॥२०॥

टीका—बसत सुभाव वर्णन ॥२०॥

मिसि = बहाने। ब्यालन = सर्पों। बगरायो = फैलाया। पचम = पंचम स्वर से। नवल = नया। कोक = चन्द्रमा। भीनो = सना हुआ। मोचै = छोड़ दे। भौंर = समूह, झुण्ड। मौर = बौर ॥१९॥

अवनि = पृथ्वी। अम्बु = जल। अनिल = वायु। मनोज = काम। महिवत = महिमावान्। जोर जरब = भीषण आघात। भावती = रुचिकर। उलही = उल्लसित। लहलही = हरी भरी। लौदन = गुच्छा ॥२०॥

कवि—कृष्णलाल

आगे आगे दौरत वकील गधवाह ऐसे,
पाछे पाछे भौंरन की भीर भट भीम है।
बाजे राजे किंकिनी मँजीर कल गाजे जबै,
घूँघुट धुजा मै मैन सीमधुज सीम है॥
'क्रस्न लाल' सौरभ यौ चन्दन पै जाकी जीति,
ऐसो कौन भूतन मै गब्बर गनीम है।
मदन महीप बाज सदन सु सिरताज,
मदन बहादुर की कापर मुहीम है॥२१॥

टीका—वकील ग धवाह पौन ॥२१॥

कवि—मडन

स०—बीतन लागे बसत के बासर औधि की आस अजौ अभिलाखा।
छीन भई तन भो तन अतर दाह निरतर कौन सो भाखो॥
'मडन' ए इतने सँग राखि पियारे की सीख न तीखन नाखो।
दारुन भार अगार की आगि रुई मे लपेटि कहाँ लगि राखो॥२२॥

टीका—अतिविरह ते व्याकुल कहै है की रुई में आगि कवलों छुपाइए॥२२॥

कवि—प्रहलाद

सूर सहकार सीस बौरन के तोर करे,
भौंरन की बानी बेस बाजे रतिनाह की।
परभृत बदीजन बेहद बिरद बोलै,
झझा पौन ढाढी लखि बाढी पीरदाह की॥

गधवाह = वायु। किंकिनी = करधनी। मजीर = नूपुर। मैनसीम धुज = कामदेव की सामा ध्वजा। सीम = चिह्न, निशान। गब्बर गनीम = शक्तिशाली शत्रु। कापर = किसपर। मुहीम = चढ़ाई, आक्रमण ॥२१॥

बासर = दिन। औधि = अवधि, समय। अजौं = आज भी। सीखन = शिक्षाओं को। तीखन = तीक्ष्ण। दारुन = प्रचड ॥२२॥

सहकार = आम। तोर = वदनवार। बेस = बढ़कर, अधिक। रतिनाह = कामदेव। परभृत = कोयल। वदीजन = स्तुतिपाठक, भाट। बिरद = स्तुति। झझा = बूँदाबाँदी युक्त। किसुक = टेसू। ॥२३॥

कहै 'प्रहलाद' कवि किंसुक कि शूल फूल,
सूल उपजावैं गति कहाँ है निवाह की।
बिरही बचैगी कैसे चाहकनि जात हेत,
चढ़ी फौज प्रबल बरात बादसाह की ॥२३॥

टीका—बसंत फौज रूपक ॥२३॥

कवि—मान

मोरे मोरे मोर तरु मंजीरन मिलि आली,
गंधगुन भई मंद मारुत झकोरे लेत।
नवल किसोरी लोनी कम्पयुत लतिकानि,
लपटि लपटि रस आनन्द अथोरे लेत ॥
गरल की गाँठ से गठे से गठें सेर कढ़े,
किरन अमान 'मान' गढ़ हठि छोरे लेत।
काम कैसे चार ऋतु राज कैसे सहचर,
चचर करत चञ्चरीक चित्त चोरे लेत ॥२४॥

सवैया—आयो बसंत तमालन ते नव पल्लव की दुगि जोति जगी है।
फूलि पलास रहे जित ही तित पाटल रातहि रंग रँगी है ॥
मौरि के आवन सार भई तेहि ऊपर कोकिल आनि खँगी है।
भागन भाग बचो बिरहीजन बागन बागन आगि लगी है ॥२५॥

टीका—बागन मे आगि लगी फूल को देखि कहै है ॥२५॥

मोरे मोरे = नीलम सी आभावाले। मजीरन = नूपुरों। लोनी = सुन्दर। गरल = विष। गठेसे = बने हुए से। सेर कढ़े = जिसमें सेरका चित्र बना हो। अमान = अपरिमित। गढ़ = दुर्ग, किला। चार = दूत। सहचर = मित्र। चचर = एक राग, चाँचरी। चञ्चरीक = भौंरे ॥२४॥

तमालन = एक सदाबहार वृक्ष। दुगि = दुगनकार। पाटल = रक्त, गुलाब। मौरि = मंजरी। सारभई = गौरवयुक्त। खँगी = दुख दे रही ॥२५॥

कवि—देव

को बचिहै इन बैरी बसंत के आवत जोबन आगि लगावत ॥
बौरत ही करि डारत बौरी भरे विष बौरी रसाल कहावत ॥
ठहै है करेजन को किरचै कवि 'देव' जू कोकिल बैन सुनावत।
बीर कि सो बलबीर कि सों उडि जाइहै प्रान अबीर उड़ावत ॥२६॥

बैरी बसंत के आवत ही बन बीच दवागिनि सी पजरैगी।
जोगिनि सी बनि है बन माल बियोगिनि कैसे कै धीर धरैगी ॥
गुंजन वै अलि पुंजनके सुनि कुंजन कोइलि कूक करैगी।
सूल से फूले पलाशन की डरिया डरपावन डीठि परैगी ॥२७॥

टीका—पलास देखि डर पावती हौ ॥२७॥

कवि—अज्ञात

दंडक—कोऊ कह्यो जाय कान्ह आई है बसंत ऋतु,
कोकिल के बोलन को बृज मे बखाने हैं।
हिये सुलगति आगि ऊधो फूँक दई आइ,
मरत बनै न जे वै बचन सुजाने हैं ॥
ये हू पर काम कमनैत ने गही कमान,
नेही गोपि नैनन के तारिका निसाने हैं।
खिले अनखिले अधखिले हैं पुहुप नाहीं,
एक बान मारे एक छोंडे एक ताने हैं ॥२८॥

टीका—यह फूल जो अधखिले हैं सो न होइ यह काम के बान जो फूले हैं फूल वह बान छाडे जो कली है वह फूल को कामबान ताने है ॥२८॥

बौरत=बौर आते ही। बौरी=पागल। विषबौरी=जहरीली लता, बछनाग। रसाल=रसभरे आम। करेजन=कलेजा। किरचै=साधी लुकाली तलवार ॥२६॥

दवागिनि=बनकी अग्नि। पजरैगी=प्रज्वलित होगी। बनमाल=वनपंक्ति। डरियाँ=डालैं। डरपावन=भयानक। डीठि=दृष्टि ॥२७॥

ऊधो=उद्धवजी। कमनैत=धनुर्धारी। कमान=धनुष। तारिका=आँखकी पुतली। पहुप=पुष्प ॥२८॥

कवि—कालिदास

दंडक—मधुकर माल बन बेलिन के जाल पर,
कोकिला रसाल पर कुहुक अमन्द की।
मन्द पौन शीतल सुभास नई बागन,
विलास मई 'कालिदास' रास मकरन्द की॥
देखिए सयान बैसाख में पयान करै,
कान्ह को दया न होत गोपिन के वृन्द की।
कैसे देखि जीहैं चढ़ि चाँदनी महल पर,
सुधा की चहल वसुधा की चार चन्द की॥२९॥

टीका—कैसे जीवैगी सुधा की चहल देखि॥२९॥

कवि—अज्ञात

तरु पतझारन मैं रमित पहारन मैं,
किसलित डारन मैं दीपति दिगंत है।
त्रिबिध समीरन मे जमुना के तीरन मे,
उड़त अबीरन मे झलाझलकत है॥
छाय रह्यो गुंजन मे अलि पुंज कुंजन मे,
गान मे गोपाल ऐसे रूप दरसंत है।
फूल मैं दुकूल मै तड़ागन मै बागन मे,
डगर मे नगर मे बगरो बसंत है॥३०॥

टीका—तरुपतझारिनादिक वसंत प्रकाश॥३०॥

मधुकरमाल=भौंरों की पंक्ति। बनबेलिन=बन की लताओं। अमन्द=तीव्र। रास=ढेर। मकरन्द=पराग। सयान=चतुर, नायक। पयान=गमन। सुधा=अमृत। वसुधा=पृथ्वी।॥२९॥

रमित=बसी हुई। किसलित=पल्लव युक्त। दीपति=द्युति, कान्ति। त्रिबिध=तीनप्रकार की (शीतल मन्द सुगन्ध)। समीर=वायु। झला=शोभा। झलकत है=झलकती (दीखती) है। दरसत=दीखता। डगर=मार्ग॥३०॥

कवि—किशोर

सवैया—सुदर सोहै सुगधित अग अभग अनग कला ललिता है।
तैसी 'किसोर' सुहात सुयोगिनि भोगिनि हूँ को मनोहरता है॥
सग अली अवली रवि राजत अग रसीली बसी करता है।
कोमलता जुत बीर बसत की बैहर की बनिता की लता है॥३१॥

टीका—यह बैहर है कि वनिता की लता है॥३१॥

मलयज गिरि तरु कोपते कढी है चढी,
मजु मकरद पुज पानिप अपार सी।
कहत 'किसोर' चारि बोरन विषम वेष,
प्रबल प्रचड पेखि सिर पतझार सी॥
अलि बिष बूडी बलि करत कहा है जापै,
सौरभ की लहर धरी है खरी धार सी॥
रहत न रोकी बेर चहत बियोगिन पै,
बैहर बसत की तिरीछी तरवार सी॥३२॥

टीका—यह बयारि बसत की तरवारि सी है, वियोगी का मारो चाहौ है॥३२॥

अवनि ते अम्बर ते द्रुमनि दिगम्बर ते,
अपर अडम्बर ते सखि सरसौ परै।
कोकिल की कूकन ते हियन की हूकन ते,
अतन भभूकन ते तन तरसौ परै॥
कहत 'किसोर' कज पुजन ते कुजन ते,
मजु अलि गुजन ते देखु दरसौ परै।
बसन ते बासन ते सुमन सुबासन ते,
बैहर ते बनते बसत बरसो परै॥३३॥

टीका—बसन्त सब ठौर प्रकाश॥३३॥

अभग=अनाशवान्, शाश्वत। अनगकला=कामकला। ललिता=सुन्दर। वशीकरता=वश में करनेवाली। वनिता=स्त्री॥३१॥

मलयज=चन्दन। कोश=मध्यभाग। कढ़ी=निकली। पानि=शोभा। बूड़ी=डूबी हुई। सौरभ=सुगन्ध। खरी=तीक्ष्ण॥३२॥

कवि—हरिजन

आए ऋतुराज महराज महिमंडल मे,
तिस की दपट आगे सिसिर हेमंत को।
कवि 'हरिजन' कहै प्यारी परबीन सुनो,
याको तो बचाव है मिलन एक कंत को॥
दुदुभि धुकार यकताल हूँ को झनकार,
मेरे जान घटा है मदन मयमंत को।
पूरन प्रताप दिन प्रभुता बढ़ति आवै,
कोकिल पढ़ति आवै बिरद बसंत को॥३४॥

टीका—ऋतु धर्म॥३४॥

कवि—गुलाल

गौन हव होन लागे सुखद सुभौन लागे,
पौन लागे बिपद बियोगिनि के हियरान।
सुभग सवादिले सुभोजन लगन लागे,
जगन मनोज लागे जोगिन के जियरान॥
कहत 'गुलाल' बन फूलन पलास लागे,
सकल बिलासन के समय सुनियरान।
दिन अधिकान लागे ऋतु पति आन लागे,
भान लागे तपन वो पान लागे पियरान॥३५॥

दपट=भय, डाँट। दुदुभि=एक बाजा। धुकार=ध्वनि, गर्जना। यक्ताल=एक तार वाला छोटा बाजा। बिरद=यशोगान॥३४॥

गौन=गमन, यात्रा। हव होन लागे=समाप्त होने लगे। सुभौन=सुन्दर भवन। । विपद=जहरीले। हियरान=हृदयों को। जियरान=जावों (चित्तों) को। सुनियरान=अच्छी प्रकार निकट आने लगे। अधिकान=बढ़ने। पान=पत्ते। पियरान=पीले॥३५॥

कवि—सगम

भौरन के पुज गुजरत आवैं कुजर ले,
कोकिला नकीब तेई कुहुक सुनावैगे।
लाल लाल किसुक पै लसैं आसमान छ्वै छ्वै,
बौर बरछीन की अधिक रूप छावैग॥
'सगम' कहत काम कारीगर कोप कै कै,
त्रिविध समीर सोई सुरँग चलावैंगे।
मानिनी गनीमन के मान गढ तोरिबे को,
सकल समाज सो बसत राज आवैंगे॥३६॥

टीका—बसत कौ समाज॥३६॥

कवि—मनसाराम

प्यारे के बियोग आली उठी आगि बृदावन,
जरती सहेठ कुज सुन्दरी महा महा।
बौरे कचनार आँच उठति पलासन ते,
कुसुम करील डीठि परत जहाँ जहाँ॥
'मन्साराम' तिन्हैं भटि आवत समीर बीर,
तयो जात तन ताली लगति तहाँ तहाँ॥
मृग अधमरे बिललात हैं भँवर कारे,
कोइलिया कोप कै पुकारती कहाँ कहाँ॥३७॥

टीका—बसन्त मे वियोग कथन॥३७॥

कवि—मधुसूदन

सवैया—आयो बसत हसत सखी सुनि आए न कत न पाए सँदेसे।
कूकत कोकिल चारि दिशा हिय हूक परी तिय लूक के लेसे।

कुजर=हाथी। किसुक=टेसू, पलाश। बौर=आम का मजरी। गनीमन=शत्रुओंको। गढ=किले॥३६॥

सहेठ=प्रेमी प्रेमिका के मिलनेका सकेत स्थल। महामहा=बड़ी बड़ा। बौरे=खिलने लगे। करील=एक कँटीला झाड़ा जिसमें पत्तियाँ नहीं होती। समीर=वायु॥३७॥

याहि चितै डरपै 'मधुसूदन' जात नहीं बन याहि अनैसे।
फूलि रहे पतझार सुकिसुक लोहू भरे नख नाहर जैसे ॥३८॥

टीका—यह फूलि रहे पलास सो न होय यह नाहर कहे सेर नख। में भरे है लोहू को ॥३८॥

कवि—हरिकेश

दंडक—मलय समीर धीर फारि ले अधीर मोहि,
नसुक उसीर नीर धीरन उधार ले।
कहै 'हरिकेस' चंद जारि लै घरीक तूँही,
साँची बिष कंद चारु चाँदनी पसार लै॥
अब ही मिलत मोको नंद के दुलारे प्यारे,
तोलौं तूँ उतार कारी कोइल कल्हार ले।
गार ले गरब गरबीले तूँ अनंग किन,
मेरे इन अंगन अनंग बान झार ले ॥३६॥

टीका—मेरे अंग में ए अनंग बान को झारिले ॥३६॥

॥ इति बसंत वर्णनं समाप्तम् ॥

कवि—गोलकुप्रसाद 'बृज'

ग्रीष्म ऋतु वर्णन

दंडक—सूखे बन बाग रूख आपगा तड़ाग कूप,
लूक से लगत मारतंड के बिलास हैं।
केहू थल मिले जल खोलै ताते तेल कैसे,
बहैं परचंड पौन प्यारी की बिलास हैं।

हूक=टीस। लूक=ज्वाला। अनैसे=आशंका से। नाहर=सिंह ॥३८॥

नेसुक=थोड़ी देर। उसीर=खस। जारिलै=जला ले। घरीक=घड़ी भर। उतार=बुझा ले। कल्हार ले=भून ले। गारले=निकाल ले। गरब=घमण्ड। अनंग=काम। अनंग बान=काम बाण। झार लै=चला कर खाली करले ॥३६॥

जगत के जीवन को जीवन है जीवन मैं,
'गोकुल' बिलोकि जग जेल प्यास आस है।
आँवा से अकास लागै धरा धावा तावा ऐसे,
महल पजावा ऐसे आँवा से अवास है ॥४०॥

टीका—जीवन नाम जल जगजीवन नाम मेघ पौनप्यारी अर्थ कहै पौन को मित्र आगि ॥४०॥

कवि—भूधर

सीरे तहखाने तामे खासे खसखाने सोधे,
अतर गुलाब का बखानैं रपटत है।
'भूधर' सँवारे हौज छूटत फुहारे और,
बारे भरि ताबदान धूप दपटत है॥
ऐसे समै गौन कहूँ कैसे कै बनै तो प्यारे,
सुधा को तरंग प्यारो अंग लपटत है।
चंदन किवार घनसार के पगार दई,
तऊ आनि ग्रीषम की झार झपटत है ॥४१॥

टीका—चंदन के किवार घनसार कहै कपूर की पगार कहै दीवार ॥४१॥

कवि—कृष्णलाल

खासे खस खाने खासेखाने तहखाने नल,
छूटत सरोज को सुगंध रपटी रहै।
अँतर अरगजेसो केसरि गुलाब नीर,
छिरक किवार द्वार झार झपटी रहै॥

रूख = वृक्ष। आपगा = नदी। लुक = आग का लपट। मारतंड = सूर्य। ताते = गरम। पौनप्यारी = अग्नि। जीवन को = प्राणियों का। जीवन = प्राण। जीवन = जल। आँवा = भट्ठा। धरा = पृथ्वी। धावा = आक्रमण। पजावा = भट्ठा। अवास = घर ॥४०॥

सीरे = ठंढे। तहखाने = तलगृह, भुँइधरा। खसखाने = खस से घिरी कोठरी। रपटत = फैलती। ताबदान = प्रकाश पात्र, दीपक। दपटत = डराती है। गौन = गमन, यात्रा। किवार = द्वार। घनसार = कपूर। पगार = दीवाल। झार = ज्वाला ॥४१॥

'कृस्नलाल' जेठ में गमन कैसे कीजे प्यारे,
चंदन मले के तक अंक दपटो रहै ।
ज्वाल उदभटी कुचवटी कामगटा तटी,
हटी मरहटी नटी लटी लपटी रहै ॥४२॥

टीका— ज्वाल उदमाणी करि पगल पु यनी फरि कामगरो कहै रामुद्र तटी कहे तट पर सीतल थल के मरहटी लपटी रहै ॥४२॥

कवि—सुमेर

५ डक—जीवन का नास कर ज्वाला को पकास कर,
भोर ही ते भासकर आसमान छायो है ।
धमका धमक धूप सूखत तलाव कूप,
पोन कौन गौन भौन आगि मैं तपायो है ।
ताकि थकि रहे जकि सकल 'सुमेर कवि',
ग्रीषम अचर चर खचर सतायो है ।
मेरे जान काहू वृषभान जग मोचन का,
तीसरो त्रिलोचन को लोचन खोलायो है ॥४३॥

टीका—वृषभान कहे वृषराशि के सूर्य ॥४३॥

चंडकर झारन झकोर तस ताप पौन,
तोरत तमाल मनु मद दिन भारो सो ।
धर्प के धरनि गिरि तम के प्रताप जाके,
देखत गजेज रेज जगत निहारो सो ॥
तरु छीन छाया सर सूखत समुद्र बन,
करनि बिचारि देखो आतप ॲगारो सा ।
छावत गॅगन धूरि धावत धधात आवै,
चाॅप चढ़ो ग्रीषम गयद मतवारो सो ॥४४॥

टीका—ग्रीषम गयद रूपक ॥४४॥

त्रासकर = डरानेवाला। भासकर = भास्कर, सूर्य। गौन = गमन, सचार। तचायो = तपाया, गरम किया। जकि = हठपूर्व कहकर। अचर चर = स्थावर जङ्गम। खचर = सूर्य। वृषभान = वृषराशि का सूर्य। त्रिलोचन = शिवजी ॥४३॥

चण्डकर = सूर्य। झारण = आँच से। भारो = बड़ा। गजेज = अहंकार। ॲगारो = जलता हुआ कोयला। चाॅप = दबाव। गयद = हाथी ॥४४॥

कवि—श्रीपति

अमल अटारी चित्रसारी बारी रावटी मैं,
बारह दुवारी मैं किवाँरी गध सार की।
कामानल छाइ रह्यौ चाँदनी बिछौना पर,
छवि फबि रहीं छीरसागर कुमार की॥
'श्रीपति' गुलाब वारे छूटत फुहारे प्यारे,
लपटैं चलत तर अतर बयार की।
भूपननिवारी घनसार भीजी सारी भरि,
तऊ न बुझानी नेक ग्रीषम के झार की॥४५॥

टीका—ग्रीषम के तपनि॥४५॥

कवि—बेनी

जेएँ बिना जीरन सो जल की जिकिरि जीभ,
जरयौ जात जगत जलाकनिके जोरते।
कूर सर सरिता सुखाइ सिकता मैं भई,
धाइ धूरि धौरनि धराधर के वोरते।
'बेनी कवि' कहत अनातप चहत सब,
अगिनि सो आतप प्रकास चहुँ वोरते॥
तवा सो तपत धरामडल अखण्डल सो,
मारतड मडल दवा सो होत भोरते॥४६॥

॥ इति ग्रीष्म ऋतु वर्णन समाप्तम् ॥

टीका—बिना खाए जीरन जल त्रिखा सब काल में बनी रहै॥४६॥

अटारी = अट्टालिका, कोठा। चित्रसारी = चित्रशाला, चित्रों से सजा हुआ सोने का कमरा। रावटी = बारहदरा। गधसार = चन्दन। फबिरही = शोभित हो रही। छीरसागर कुमार = चन्द्रमा। घनसार = कपूर॥४५॥

जेंए = पिये। जीरन = त्रस्त। जिकिर = चर्चा। जलाकनि = तेज धूप। सिकतामै = बालुमय। धौरनि = श्वेत। धराधर = पर्वत। अनातप = छाया। आतप = धूप। मारतण्डमण्डल = सूर्यमण्डल। दवा = बनाग्नि॥४६॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

(पावस ऋतु वर्णन)

दण्डक—धाए हैं धुँधारे 'बृज' धाराधर धूर वारे,
कौधो चखचौंधी नौधानेह जग ह्वै रह्यो।
छपे मारतण्ड चण्ड बगरे बलाक झुण्ड,
चले हैं प्रचण्ड पौन झंझा झरि बै रह्यो॥
आसन असीन एक किए जोग भोग वीर,
काम के संयोग मे मयूरी मोर कै रह्यो।
ललित ललाम ऋतु पावस प्रकाश पेखि,
पथिकबधू के धाम धूम धाम ह्वै रह्यो॥४७॥

कवि—महाकवि

उमड़ि घुमड़ि घन घेरि के घमण्ड कीन्हो,
चपला समेत चहूँ ओरन ते झूमरे।
निशि दिन जापी तापी बोलत पपीहा पापी,
क्रूर हैं कलापी ऐसे थोर सोर घूमरे॥
जियैगी वियोगी कैसे ऐसे समे 'महाकवि',
जोगीते वै भोगी भए फोरि फोरि तूमरे।
देखु मेरी आली अब मैन के मतंग छूटे,
धाए जावै धुरवा ये धौरे धौरे धूमरे॥४८॥

धुँधारे = मटमैले। चखचौंधी = चकाचौंध। नौधा = नवधा, सब प्रकार। छपे = छिप गये। मारतण्ड चण्ड = प्रचण्ड सूर्य। बगरे = फैले हैं। बलाक = बगले। झंझा = वर्षायुक्त पवन। बैरह्यो = प्रसार कर रहा है। पावस = वर्षा। पथिक बधू = विरहिणी॥४७॥

चपला = बिजली। झूमरे = झूलते हुए। जापी = रटनेवाला। तापी = सतस करनेवाला। कलापी = मोर। तूमरे = तुम्बे। मैन के मतंग = काम के हाथी॥४८॥

कवि—सिह

श्याम घटा नाहीं एतो धूमन की छटा छाहीं,
दामिनि कहाँ है एते चोखा उठैं धुरमैं ।
गरज कहाँ है एतो घोर फूटे थभन के,
जूगनू कहाँ है ए चिनग उडे सुरमैं ।।
मेघ बूँद नाहीं ए बुझावत फिरत देव,
तिनही के छाटे आइ परैं भूमि फुर मैं ।
'सिह' कहै दावानल आय कै बुझावै कौन,
एरी आगि लागी है पुरदर के पुर मैं ॥४६॥

टीका—यह पावस न होय । यह दावानल पुर दर इन्द्रपुर में आगि लगी है कौन बुझावै ।।४६।।

कवि—मुबारक

धाराधर भूमि ऋतु धरा से धधाय धाये,
धौर हरधमकाए धाय धका देत हैं ।
झझा पौन झकझोर झूकन झकोर झोक,
झिल्ली गन झाल जाल झझकत प्रेत हैं ।।
बिरह बलाय ते 'मुबारक' कही न जाय,
तो बस सहाय हेत चढे खल खेत हैं ।
दादुर दिवार चढे चातिक तमार चढे,
गिरि चढे मोर सिर चढे मीनकेत हैं ।।५०॥

टीका—पावस सुभाव ।।५०।।

कवि—शिवनाथ

ऐसी झिर बूँदन मै दूँदनै उठायो काम,
मूँदै मुख प्यारी बेनी गूँथै नव हरि कै ।
कहै 'कवि शिवनाथ' झिल्ली गन गाजत हैं,
सावन मे बहै रस लहरी छहरि कै ॥

चिनग = चिनगारी । पुरदर = इन्द्र ॥४६॥

धाराधर = मेघ । धरा = पृथ्वी । धोरहर = ऊँची अटारी । झझापौन = सवृष्टिक वायु । झूकन = झोंका । झाल = झाँझ नामक बाजा । झझकत = भडकता है । दादुर = मेंढक । तमार = सूर्य । मीनकेत = कामदेव ॥५०॥

ऊनरी सुकज्ञ दुति दूनरी दृगन बाढ़ी,
घूनरी कहत खौरि देनरी गहरि कै।
ऊनरी घटा में गोरी तू न री अटा पै बैठु,
खून री करैगी लाल चूनरी पहिरि कै ॥५१॥

टीका—।।एक सखी ते कहै है, ऊनरी पद ऊनरी कहै उनये घटा में तू अटा पर नहि है खून करैगी लाल चूनरी पहिरि ।।५१।।

कवि—बृजचंद

सघन घटान छबि जोति की छटान बीच,
पिक उर ठान जोति जी गन जुई परै।
हार हिय हरित नवीन नद भरित,
झरीन झूर झूरित सो धरनि धुई परै ।।
ऐसे में किसोरी गोरी झूलत हिंडोरे झुकि,
झकन झकोरे केलि कुलनि कुई परै।
कीजिये दरस नँदनद 'बृज चद' प्यारे,
आजु मुख चद पर चूनरी चुई परै ।।५२।।

टीका—सघन घटा में छबि राकाम है ।।५२।।

कवि—किशोर

ऊमडत झूमडत घूम घन आयो घेरे,
कोरै देत निनद नगारन की धूम को।
कहत 'किसोर' चारो ओरन ते जोरा करी,
थोरे देत जर बिजुरिन वारी धूम को ।।
झझकर झंझा तैसी झुकि झुकि झोरे देत,
झालरै तमालन की झाप झाप झूम को।
जलजा को जोरे देत जलद को फोरे देत,
जलन को ठोरे देत बोरे देत भूम को ॥५३॥

टीका—ऋतुरीति कथन ।।५३।।

ढूँढनै = उत्पात। झिल्लीगन = झींगुर। ऊन = कम, न्यून। दून = दुगुना। दृगन बाढ़ी = आँखों में बढ़ गई। घूनरी = कलात्मकता से। खौरिदेन = स्नान करना। ऊनरी = उमड़ती हुई। अटा = छत, अटारी ॥५१॥

निनद = शब्द। जर = जल। झंझा = वर्षा सहित वायु। जलज = कमल, जलद = मेघ। भूम = भूमि, पृथ्वी ॥५३॥

कवि—पूखी

झूर की झरन झार झर सी झरन अग,
　　झंझा की झकोर झार झपटी झरीन में।
छटा की उछट छवि छपत छपाकर की,
　　छाइ रही छनदा सुहाई दिन दीन मै।
चातिक चिहार चखचौंधि चारु चहूँ दिसि,
　　चच्छुन चकोर चकवान के विहीन में।
ता बस परे हैं 'पूखी' का बस पराए देस,
　　पावस मैं तामस रह्यो न बिरहीन मैं ॥५४॥

टीका—झंझा नाम बयारि की झकोर, छटा के चमकते छपाकर की छपन चातिक पपीहा को सोर, चकवा न देखि परे ता बस कहै जेकरे बस परे हैं, का बस कौन बस परदेस में पावस म तामस कहै क्रोध विरही म न रहि गये ॥५४॥

अंबर ठठान फेन फूटत फटान जैसे,
　　चढ़े नटवान छवि छाजत छटान की।
बोढि दुपटान बुंद चुअत लटान 'पूखी',
　　तन लपटान मानो मन्न कटान की॥
चातक रटान नदी नद उपटान जग,
　　जगल बहान मुर बाद ज्यौं बटान की।
पीय के तटान परे कुसुम पटान ठाढी,
　　ऊपर अटान लेत लहरैं घटान की ॥५५॥

टीका—अंबर कहै आकाश मेघ के जमाव है जैसे नट बाँसै पै चढ़त ॥५५॥

झर = बूँदा बाँदी। झरन = गिरना। झार = सारे, सब। झरी = वर्षा की झड़ी। छपाकर = चन्द्रमा। छनदा = बिजली। चिहार = पुकार। चखचौंधि = आँखों की चमक। पावस = वर्षा। तामस = क्रोध ॥५४॥

ठठान = समूहों में। फटान = बदाओंसे। नटवान = अभिनय के लिये। लटान = लटों से। रटान = फुकारना। उपटान = उमड़ने, बाढ़ आने। अटान = अटारियों में ॥५५॥

कवि—गुरुदत्त

सवैया—पीव कहाँ कहि देव तो सावरा पावस मे रस बीच कहाँ है ।
जीवन नाथ के साथ बिना 'गुरुदत्त' कहै तुम जीव कहाँ है ॥
बानी सुनी जब से तब ते यह जानी न जात सखीव कहाँ है ।
पीव कहाँ कहिके पपिहा केहिसो तुम पूछत पीव कहाँ है ॥५६॥

टीका—पीव कहाँ है कहि देव कासो तुम पूछत ॥५६॥

गरजी घन घोर घटा घुमड़ी जब ते बिरहा जु भयो सरजी ।
सरजीव भये मृगदादुर चद लिए रति नागर की मरजी ॥
मरजी जो उठी पिक की धुनि लै चपला चमके न रहै बरजी ।
बरजी बरजी जिय को सजनी भयो चातक मो जिय को गरजी ॥

॥ इति पावस ऋतु वर्णन समाप्त ॥

टीका—गरजी कहै बोली है जब ते विरह सरजी भये, सर कहै बान भयो, दादुरादिक काम के मारे जी उठे, पिक की धुनि लै चपला चमकै, बरजे नहीं माने गरजी कहै डेरवाह डेराव मेरे जी का ले जारे भये ॥५७॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

शरद ऋतु वर्णन

दडक—ह्वै गये बिमल जल आपगा तड़ाग थल,
अवनि अकास मे प्रकास पुज ह्वै रहे ।
सूखे पानि पेखि किए पाथिक पयान पेखि,
आग खजरीट कज प्रफुलित ह्वै रहे ॥
भूप मनोभव के अभूत दूतराज 'बृज',
पचभूत मै प्रभूत सारदी के ह्वै रहे ।
कान अँखियान मुख घ्रान निज चाहै रुचि,
चह चही चाँदनी अमंद चंद बै रहे ॥५८॥

सरजीव = चञ्चल । रतिनागर = कामदेव । मरजी = मरकर जीवित । चपला = बिजली । बरजी = रोकी हुई । बरजा = छोड़ा हुई, विरहिणा । गरजी = इच्छुक ॥५७॥

आपगा = नदी । अवनि = पृथ्वी । पानि = जल । पयान = गमन । खजरीट = खञ्जन । कज = कमल । मनोभव = कामदेव । पचभूत = पाँचो तत्व (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश ।) प्रभूत = बहुत ॥५८॥

टीका—भूप मनोभव कहे काम के दूत हाय पचभूत कहे पौन पानी आगि प्रथ्वी अकास में प्रकास ऋतु को है ते पाँचों अग मे रुचि आपनी ह्वै रही ॥५८॥

कवि—मुरारि

आई ऋतु सरद गगन बिमलाई छाई,
खजन की राजी पुज कुजन बसै लगी।
हरित हरित पथ पथिक निवारे पथ,
अकथ 'मुरारि' बोध जग बिलसै लगी ॥
सुमन सरासन के सुमन सरासन ते,
छूटि कै सुमन सर आली ही ग्रसै लगी।
तालन कमल फूले कमल वितूले अलि,
अलि पर पीतिमा पराग की लसै लगी ॥५६॥

टीका—सुमनसरासन कहे काम, सुमन सरासन कहे धनुषै ते सर कहे बान छूटि कै ग्रसै लगे ॥५६॥

कवि—किशोर

हरत 'किसोर' जो चकोर जो चकोर निसि,
ताप कलि कुमुदिनि कज कली छन्द भो।
मानिनीनिहू के मन दरप दलित करि,
कदरिपु कवलित करि जगबन्द भो ॥
मुद्रित कमल अवलीकर तिमिर कब,
लीकर दिसान धवलीकर अमन्द भो।
अबुध अमित करि लोकन मुदित करि,
कोक अमुदित करि समुदित चद भो ॥६०॥

टीका—लोक के जीवन को मुदित कोक चक्रवाक को विरह च द्रमा को प्रकाश ॥६०॥

राजी = पक्ति। हरित = हरे। अकथ = अवर्णनीय। बोप = शोभा। सुमनसरासन = कामदेव। सुमन = पुष्प। शरासन = धनुष। सर = बाण। वितूलै = फूलते हैं। अलि = भौरा। पीतिमा = पीलापन ॥५६॥

कुमुदिनी = कमलिनी। कजकला = कमल की कली। छद = उपासनार योग्य। दरप = घमड। जगवद = ससारका वन्दनीय। अवला = पक्ति। तिमि

कवि—सेनापति

बिबिध बरन सुरचाप के न देखियत,
मानो मनि भूषन उतारि धरे भेरा है।
उत्तम पयोधर बरसि रस गिरि रहे,
नीके न जगत फीके सोभा को न लेस है।
'सेनापति आए ते सरद ऋतु फूलि रही,
आस पास कास खेत खेत चहूं देस है।
जोबन हरन कुम्भ योनि उदये ते भई,
बरषा बिरधि ताके सेत मानो केस है ॥६१॥

टीका—जीवन हरन कुभयोनि अर्थ जल के हरन कुभयोनि अगस्त उदे भो ॥६१॥

आस पास पुहुमि प्रकास के पगार साहै,
बनन अगार डीठि ह्वै रही बिबरसे।
पारावार पारद अपार सो दिसन बूडी
चद सूर दोऊ दिन राति बिधि बरसे॥
सरद जुन्हाई जन्हु धाई धार राहस सु—
धाई सोभा सिंधु नभ शुभ्रगिरिंदरसे।
उमड्यौ परत जोति मडल अखड सुधा—
मडल मही मे बिधु गडल बिचरते॥६२॥

टीका—उमड्यो कहै बरसो है जोति सुधामंडल च द्रमा ते ॥६२॥

कवलीकर = अन्धकार को निगलता हुआ। धवलीकर = सफेद करता हुआ। अबुध = समुद्र। अमित = असीम। मुदित = प्रसन्न। अमुदित = अप्रसन्न। समुदित = उदय ॥६०॥

सुरचाप = इन्द्रधनुष। पयोधर = मेघ। रस = जल। जीवन = जल। कुभयोनि = अगस्त्य। बिरधि = वृद्ध। सेत = श्वेत ॥६१॥

पुहुमि = पृथ्वी। पगार = परकोटा। अगार = घर। बिबर = बिल। पारावार = समुद्र। पारद = पारा। सूर = सूर्य। सुधाई = अमृतमय। बिधु = चन्द्र ॥६२॥

स०—सेत पहार अगार भए अपनी जनु पारद भा पर वारी।
होत ही इदु उदोत लसै चहुँ वोर मे सोर चकोर के भारी॥
फूली कुमोद कली निकली अवली अलि की बलि मै निरधारी।
कोपि कै चद तियान के मान पै आजु मियान ते तेग निकारी॥६३॥
॥ इति सरद ऋतु वर्णन समाप्त ॥
टीका—तिय के मान पै चन्द्र कोपि के तरवारि काढी है ॥६३॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

हेमन्त ऋतु वर्णन

दण्डक-मद तमहर के किरिनि ते अहर लघु,
द्रौपदी दुकूल सो बढन लागी राति है।
पानी की कहानी कहे कॉपि उठै काय 'बृज'
जोग भोग वारे सेवै प्यौनप्यारी ख्याति है॥
सीत ते सभीत जग देखो अचरज यह,
पजरै प्रबल उर आगि अधिकाति है।
प्रान करै अत कूर काल बिना अत रितु,
होय न हिमत किरतत की जमाति है॥६४॥
टीका—तमहर सूर्य पौन प्यारी अगिनि किरतत यमराज ॥६४॥

कवि—गोविन्द

दाबे चारो कोर राजै नूपुर निसान बाजै,
छाजै छबि कर कुच भट भिरबो करै।
सिंहासन सेज सोहैं सीस सीसफूल छत्र,
अलख अनोखे चारु चौंर ढरिबो करै॥

अगार=घर। पारदभा=पारेकी शोभा। वारी=न्यौछावर। उद्योत=प्रकाश। कुमोद=कुमुद (कमलकी एक जाति विशेष) तेग=तलवार॥६३॥

तमहर=सूर्य। अहर=दिन। दुकूल=वस्त्र। पौनप्यारा=अग्नि। पजरै=जलती है। किरतत=कृतान्त, यम। जमाति=सेना॥६४॥

मैन मन्त्र मन्त्री देत भावन बढ़त भूरि,
बंदीजन भूषन बिरद ररिबो करै।
हिमि की हिमाई सुखदाई सी 'गोविंद' दोऊ,
एक ही रजाई मुदजाई करिबो करै ॥६५॥

टीका—एक ही रजाई कहे रानी दोनों मुद से रहे हैं ॥६५॥

कवि—देव

कपत हियोन हियो कपत हिए क्यों हँसी,
तुमैसी अनोखी नेक सीस मैं ससन देहु।
अम्बर हरैया हरि अम्बर उज्यारो होत,
हेरि कै हँसौ न कोई हँसै तो हँसन देहु॥
'देव' दुति देखिबे को लोयनिमै लागी रहैं,
लोयन मैं लाज लागे लोइन लसन देहु।
हमरो बसन देहु देखत हमारो कान्ह,
अबहूँ बसन देहु ब्रज मैं बसन देहु ॥६६॥

टीका—हमरो बसन कहे वस्त्र देहु ब्रज में बसन कहे बसै देहु बसन कहे बस नाहीं ॥६६॥

कवि—राम

परत तुसार भार काँपै हिय हार हार,
रजनी पहार दिन आगि जैसे फूस की।
द्वार द्वार परदे परे हैं भरे तूलन के,
भीतर सँवारि धरे पलग जलूस की॥
'राम कवि' कहत हनत सीत अब तब,
आवरे सुजान तेरी छाती आबनूस की।
जैसे तैसे कान्ह खट मास लौं बितीत कर्‌यौ,
निपटि जवाल भई काल रैनि पूस की ॥६७॥

टीका—तूलनाम रूई आबनूस काष्ठ विशेष ॥६७॥

कोर = कोने। छबिकर = शोभायुक्त। भट = योद्धा। अलख = अदृश्य। चौर = चँवर। मैनमन्त्र = कामकला। भावन = वासना। बिरद = उपाधि। ररिबो = रटा। हिमाई = शीतलता। मुदजाई = आनन्द ॥६५॥

हियोन = हेमन्त। अम्बर हरैया = वस्त्र हरनेवाला। लोयनिमैं = लावण्य मय। लोयनमें = आँखोंमें। लोइन = वस्त्र। बसन = वस्त्र, रहना ॥६६॥

कवि—बीठल

परत तुसार झार उठत अपार भार,
द्वार भो पहार पूस आँगन सुहात है ।
बीछी कैसे छौना भरे मानहुँ बिछौना माँझ,
दिस हू बिदिसि लागे घेर घर घात है ।
'बीठल' सुहित अति गति मति भूलि जात,
चातिक करात जब बोलै आधी राति है ।
बिरह ते रही राति पिय बिन रही राति,
आवै नियराति तिय जाति पियराति है ॥६८॥

टीका—राति नियराति आवति तिय पियराति आवै है ॥६८॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

दण्डक-द्योस मै दिवाकर के कर हिमकर कर,
निकर निवास हिमि गिरि ते हिमत की ।
'गोकुल' बिलोकि पेट सिमिटि कै पीठि होत,
पानी कहे काँपि उठै काया बलवत की ॥
खचर सचर भूमिचर के सताइबे को,
काम दूत पौन बहै दूती राति तत की ।
दोहर उरोज मे गरम को दुरावै रोज,
दोहर ह्वै दोऊ देह कामिनी औ कत की ॥६९॥

टीका—दोहर उरोज अर्थ दोहर कहै दो महादेव में गरम को छुपावै रोज दोहर ह्वै दोऊ देह कहै दोहर नाम गिलेफ को है तैसे नायिकानायक के देह एक में ऐसे मिलि रहे हैं ॥६९॥

हियहार=मनोहर । पहार=बड़ी भारी । तूल=रूई । आबनूस=एक काली ठोस लकड़ी । जराल=झक्कर, भार रूप । रैनि=रात्रि ॥६७॥

बाछी=बिच्छू । छौना=बच्चे । करात=कराहता हुआ । नियराति=निकट आती है । पियराति=पीली पड़ जाती है ॥६८॥

द्योस=दिन । दिवाकर=सूर्य । हिमकर=चन्द्रमा । करनिकर=किरण समूह । सिमिटि=सिकुड़ कर । खचर=पक्षी । सचर=जगम । भूमिचर=पृथ्वीचर=पृथ्वी के प्राणी । दोहर=दोहरे, दोनो के । उरोज=स्तन ॥६९॥

कवि—पद्माकर

अगर की धूप मृग मद की सुगन्ध वर,
बसन बिसाल जाल अंग ढकियतु हैं।
कहै 'पद्माकर' सुपौन को न गौन जहाँ,
ऐसे भौन उमँगि उमगि छकियतु हैं॥
भोग औ सँजोग हित सु ऋतु हिमंत ही में,
ऐते और सुखद सुहाये बकियतु हैं।
तान की तरंग तरुनापन तरनि तेज,
तेल तूल तरुनी तमाल तकियतु हैं॥७०॥

॥ इति हेमन्त ऋतु वर्णन समाप्त ॥

टीका—तान तरङ्ग। तेज सूर्य तेल तूल रुई तरुनी तमोल सुख दायक है हिमंत में ॥७०॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

शिशिर ऋतु वर्णन

दण्डक—आई लैन डोरी पाँच पंचमी बसंत जग,
बदली बयारि रीति बैरी बलिवंत की।
'गोकुल' प्रबल बल हिमि हिमि कर खल,
सहमि अबल होन लागे गति अंत की॥
दिन लागे बढ़न बिपल पल मित्रकर,
अबिनै घटन लागी रजनी हिमंत की।
सिसिर के सीत भीत सीसर लगन लागे,
आगमन जानि आगे नृपति बसंत की ॥७१॥

टीका—यह बसंत की लैन डोरी होइ काम नृपति की आइ ताहि देखि बैरी बलवंत बयारि की रीति बदली, मित्रकर सूर्य के कर कहे किरिनि बढ़ै लगी, मित्र कहे हित के कर कहे हाथ बढ़ै लागे अविनै राति की अधिकाई घटन लागी, सीसर कहे सीत कम लागन लागे ॥७१॥

अगर=सुगंधि द्रव्यविशेष। मृगमद=कस्तूरी। बसन=वस्त्र। सुपौन=हवा। गौन=गमन, प्रवेश। छकियत=खेले जाते हैं। तरुनापन=यौवन। तरनि तेज=सूर्य की धूप। तूल=रुई। तमाल=तम्बाकू ॥७०॥

हिमि=हिम, तुषार। हिमिकर=चन्द्रमा। सहमि=काँपते हुए। मित्र कर=सूर्य किरण ॥७१॥

कवि—सेनापति

अब आयो माह प्यारो लागत हैं नाह,
रवि करत न दाह जैसे अवरेखियतु है।
जानि जो न जात बात कहत बिलात दिन,
छिन सो न तातो तन को बिसेषियतु है॥
कलप सी राति सौ तो क्यौंहू न सिराति सोये,
सोइ सोइ जागे पै न प्रात पेखियतु है।
'सेनापति' मेरे जान दिन हू मे राति होति,
दिन मेरे जान सपने मे देखियतु है॥७२॥

टीका—दिन की छोटाई अति बरनो है॥७२॥

धायो हिम दल हिम भूधर ते 'सेनापति',
अंग अंग पर परजगम विरत है।
पैये न बताई भागि गई है तताई सीत,
आयो आतताई छिति अबर घिरत है॥
करतु है जारी भेष करि कै उज्यारी ही को,
घाम बार बार बेरि बेरि सुमिरत है।
उत्तर मे भागि सूर ससि को सरूप करि,
दच्छिन के छोर छिन अधिक फिरत है॥७३॥

टीका— उत्तर दिशि में सूर्य शशि को रूप धारन कियो॥७३॥

कवि—कालिदास

बाग के बगर अनुराग भरी खेलै फागु,
बाल अलबेली मनमोहनी गुपाल की।
'कालिदास' ललित ललो है छबि छलकत,
नथ मुकतान के कपोलन के भाल की॥

माह = माघ। नाह = नाथ, स्वामी। अवरेखियतु है = देखा जा सकता है। बिलात = समाप्त होता है। तातो = गरम। कलप = कल्प। सिराति = समाप्त होती॥७२॥

हिमिदल = बरफ का समूह। तताई = गर्मी। आतताइ = दुष्ट। जारी = ठंढा, जाड़ा। उज्यारी = सफेदी। घामबार बार = गर्मी के दिन, धूपवाला दिन। सूर = सूर्य॥७३॥

राज करो चंद अरविंद ते न काज आज,
देखिबे को बाँकी छबि बदन रसाल की ।
बरुनी पलक पर भृकुटी तिलक पर,
बिथुरी अलक पर झलक गुलाल की ॥७४॥

टीका—होरी बरनन ॥७४॥

कवि—हिरदेस

चंदन चहल चित्र महल 'हृदेस' मांहि,
रसन तिवान सो प्रमोद सखियान मे ।
खूब खस फरस फुहार फुही फेलि रही,
भरे अति सीतल समीर छतियान मे ॥
गोरे गात सोहै गरे गजरा चमेलिन के,
गहे बर सुघर सहेली अतिरान मे ।
गोद लै उरोज कर परस गुलाब आब,
छिरकत लाडिलो ललीके अखियान मे ॥७५॥

टीका—गोद म लेके गुलाब छिरके ॥७५॥

बसन बगीचे सींचे केसर उलीचे कीचे,
अतर सुगंधन के परत फुहारे है ।
राजत 'हृदेश' फागु मस्त मन मोहन पे,
उड़त गुलाब जनु जलधर भारे है ॥
बाल भाल मोतिन की माल पे गुलाल धूरि,
भासत रसाल छबिजाल चटकारे है ।
मानो पंचबान के सिंगारे रूप कारे भारे,
तारे आसमान मे गुलाबी रंग धारे है ॥७६॥

॥ इति श्रीदिग्विजय भूषणे ऋतुवर्णनं नाम षोडश: प्रकाश ॥

टीका—पचवाण काम के रूप धारे हैं ॥७६॥

बगर = महल । ललो हैं = लाली लिये हुए । नथमुकता = नासिका की बाली के मोती । बाँकी = मनोहर । रसाल = रसभरे । बरुनी = बरौनी । बिथुरी = बिखरी हुई, खुली हुई । चंदनचहल = चंदन की कीच । चित्रमहल = रंग भवन ॥७४॥

खस = उशीर । फरस = फर्श । फुही = पानी की महीन बूँद । गर = गले में । गजरा = हार । गुलाब आब = गुलाबजल ॥७५॥

उलीचे = गिराये हुए । कीचे = कीचड़ । छबिजाल = छवि के समूह । चटकारे = चमकीले । पंचबान = कामदेव ॥७६॥

नायिका वर्णन

दो०—अलंकार को कहत है, भूषन अंग बिहार।
तातें नायक नायिका, बरनन कियो विचार ॥१॥

कवि—मतिराम

उपजत जाहि बिलोकि कै, चित्त बीच रति भाव।
ताहि बखानत नायिका[1], जे प्रवीन कबिराव ॥२॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

कुंभ कुसुंभ ढरैं मगमें पग मंजु धरैं बिहरैं गजगामिनि।
जात उनै उनै केहरि लंक मयंकमुखी तन दीपति दामिनि॥
आँखिन में अलसौनि चितौनि हितौनि की हाँस है जोन्हकी जामिनि।
जाहि बिलोकि रहे हरि रीझिके होयगी ऐसी न कामकी कामिनि ॥३॥
टीका—जाका देखि हरि रीझि रहे ॥३॥

स्वकीया[2]—

चौ०—जो निज प्रेम लाज जुत होई। स्व किया ताहि कहैं कबि सोई ॥४॥

१—जिसके दर्शनमात्र से नायक के हृदय में रति का प्रादुर्भाव होता है उसे नायिका कहते हैं। वह मुख्यतः तीन प्रकार की होती हैं—(१) स्वकीया, (२) परकीया और (३) सामान्या (वेश्यादि)।

२—शास्त्र एवं परम्परानुसार विवाहिता अपनी पत्नी 'स्वकीया' नायिका कहलाती है और उसमें उत्पन्न रति भावको ही ग्रंथकारों ने उत्तम रति माना है, साहित्यदर्पणकार ने इसका लक्षण यों किया है—

"विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मकरा पतिव्रता स्वीया।"

(सा० द० ३।५७)

कुंभकुसुंभ = कुसुंभी रंग के घड़े। उनै उनै = झुक झुक। केहरिलंक = सिंह की सी (पतली) कटि। मयंकमुखी = चन्द्रबदना। दीपति = चमक रही है। अलसौनि = आलस्य का भाव। चितौनि = दृष्टि। हितौनि = हितकारिणी, प्रेयसी। जोन्ह का जामिनि = चाँदनी रात। काम की कामिनि = रति ॥३॥

सोति सरमात हरगात गुरजन गेह,
लखि सुख सात सरो सुन्दरी रिझात है ।
निकर निकाई की निकास ते प्रकास होत,
आस पास आभा अभिराम दरसात है ॥
'गोकुल' बिलोकि वृषभान की कुमारि भाव,
भानु कैसे भाव सब भाँति ठहरात है ।
चंद दुति मंद ज्यों अनन्द चकई के वृन्द,
आभा अरविंद ज्यों उलूक त्यों लुकात है ॥५॥

टीका—भाव कैसो भाव चंद सम सौति ... सम गुरुजन आदि सखी अरविंद का सुख यथासंख्य ते रचकाया ॥५॥

कवि—देव

सौतिन के महा दुख सखिन के सुख रान,
होत गुरजन के गुन को गरूर है ।
'देव' कहै लाख भाँति भाँति अभिलाष पूरि,
पति उर उमगत प्रेम रस पूर है ॥
तेरो फल बोल कला भामिनि है स्वाती बुंद,
जहाँ जाइ परे तहाँ तेराई सगुर है ।
ब्याल मुख बिष ज्यों पियूष ज्यों पपीहा मुख,
सीपी मुख मोती मुख कदली कपूर है ॥६॥

टीका—व्याल के मुखमें विष पपीहा के मुखमें अमृत और सीपी मुख मोती औ केदली मे कपूर स्वातिबुंद पते थल परे ते यह उत्पन्न होत तसे तेरे बचन है ॥६॥

निकर = समूह । निकाई = सुन्दरता । निकास = गुलना, निकलना । अभिराम = मनोहर । वृषभानु की कुमारि = राधा । भाव = चेष्टाएँ ॥५॥

उमगत = उमड़ता है । रसपूर = रस का समुद्र । फल बोल कला = मधुर बोलने की कला । ब्याल = सर्प । पियूष = अमृत ॥६॥

दोहा—स्वकिया' मे है चारि विधि, मुग्धादिक के भाव।
ज्ञात अज्ञात बिश्रब्ध अरु, कहौ नवोढ सुभाव ॥७॥

टीका—स्वकीया में चारिभेद ज्ञात जोवना, अज्ञात जाग्रता, विश्रब्ध नवोढा, नवोढा ॥७॥

नहि जानै अज्ञात है, जानै जोबन ज्ञात।
चाह न चाह बिस्रब्धकहि, डरि नवोढ सकुचात ॥८॥

टीका—ना जाने अपने तरुनाई को अज्ञात, जानै ज्ञात इत्यादि ॥८॥

कवि—देव

सवैया-भारी भरो बिवि भौंहन रूप सुआरु दुहू लचि छोरन डोलै।
नीको चुनी को लिलाट मे टीको सुखैचि खेलार खरे गुन खोलै॥
बालपनो तरुनापन बाल को 'देव' बराबरि के बल बोलै।
दोऊ जवाहिर जौ हरी मैन ज्यौं नैन पलान पला धरि तोलै॥६॥

टीका—नैन के पलरा में तालै है॥६॥

अवलोकन मे पलकौ न लगै पल को अवलोके बिना पलकै।
पति के परि पूरन प्रेम पगी मन और सुभाय लगे ललकै॥
तिय की बिहँसी ही बिलोकनि मैं मन ऑखिन आनन्द यौं छलकै।
रसवन्त कवित्तन को रस ज्यौं अखरान के ऊपर ह्वै झलकै॥१०॥

२—स्वीया के तीन भेद हैं—(१) मुग्धा, (२) मध्या और (३) प्रौढा। प्रथमा (मुग्धा) को ग्रन्थकारने चार प्रकार की माना है—(१) ज्ञात यौवना। (२) अज्ञात यौवना। (३) विश्रब्ध नवोढा और (४) नवोढा।

यहाँ पर विचारणीय है कि आकर ग्रंथों मे मध्या एवं प्रौढाकी तरह मुग्धा के भेद नहीं माने गये हैं केवल वयोमुग्धा, काममुग्धा, रतौवामा और मृदु क्रोधे ये चार स्वरूप मुग्धता के माने गये हैं। भानुदत्त की 'रस मंजरी'के आधार पर प्रकृत ग्रन्थकारने जिनका उक्तरूपमें रूपान्तर कर दिया है। अत्यन्त लज्जादिसे अनुराग का संवरण आदि और भी भावविभेद इसके कुछ लोगों ने माने हैं।

बिबिभौंहन = दोनो भौंहों में। सुआरु = सुचारु, अत्यन्त सुन्दर। दोऊ = दोनो (बाल्य और यौवन)। जवाहिर = रत्न। मैन = कामदेव। पलानपला = पलक रूप तराजू ॥६॥

पलक = ऑखोंके पक्ष्म। पल = क्षण। पगी = सनी हुई। सुभाव = स्वभाव। ललकै = ललचाते हैं। अखरान = अक्षरों के ॥१०॥

टीका—जैसे रसाल कलिका के भार मञ्जरी में झलक है तैसे नायिका के अंग में ॥१०॥

कवि—चतुर्भुज

कबहूँ सुचि दीपकली सी लगे कबहूँ वर चंपक माल नवीनी ।
मोहन मंत्र सो सौंह करै पुनि नैनन खंजन की छबि छीनी ॥
बोठ निछावर विद्रुम है री 'चतुर्भुज' या उपमा लखि लीनी ।
केसर की रुचि कंचन रंग सिंगार के रूप की मंजरी कीनी ॥११॥

टीका—सिंगार के रूप की मंजरी नाम और है ॥११॥

कवि—पद्माकर

(ज्ञात यौवना[1])

सवैया—चौक में चौकी जराय धरी तेहि पै खरी बाल बगार के सौंधे ।
छोरि धरी हरी कंचुकी न्हान्ह को अँगन ते जगे जोति के कौंधे ॥
छाई उरोजन की छबि यों 'पदुमाकर' देखत ही चकचौंधे ।
भागि गई लरिकाई मनो करि कंचन के दुइ दुन्दुभी औंधे ॥१२॥

टीका—कंचन के दुन्दुभी नगाड़ा उलटे नगारे होय ॥१२॥

कवि—दास

(अज्ञात यौवना[2])

सखी तैं हूँ हुती निसि देखत ही जिन पै वे भई निवछावरियाँ ।
जिन्ह पानि गह्यो हुतो मेरो तबै सब गाइ उठीं ब्रज छावरियाँ ॥

१—जो अपने यौवन के आगमन को समझ लेती है, वह ज्ञात यौवना है यही काममुग्धा है क्योंकि अपनी युवावस्था का ज्ञान तो इसे हो जाता है किन्तु रतिकला में अनभिज्ञ है ।

२—जो यौवन के आगमन को नहीं समझ पाती वह अज्ञात यौवना कहलाती है, यह वयामुग्धा है जिसे अपने यौवनोद्गम का ही ज्ञान नहीं रतिकला तो दूर की बात है ।

सुचि = स्वच्छ । दीपकली = दीपक की लौ । सौंह = इशारे, शपथ । बोठ = ओठ ॥११॥

चौक = आँगन । जराय = जड़ाऊ । न्हान = नहाने को । औंधे = उलटे, नीचे को मुख किये ॥१२॥

अँसुवा भरि आवत मेरे अजौं सुमिरे उनकी पग पाँवरियाँ।
कहि को है हमारे वै कौन लगै जिनके सँग खेलि हैं भाँवरियाँ ॥१३॥

टीका—जिनके सग भाँवरी घूमी हैं वे हमारे कौन लागै यह बात मुग धई का है ॥१३॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

चित चौंकि चकी मति मेरी ठगी लखि आजु अचभव एक अली।
यक सग मैं भूरि भुवगम भीर चढी धनु द्वै सब भाँति भली॥
'बृज' राजै तहाँ जुग मीन मनोहर कीर कला फल बिंब बली।
अलि आरसी मैं अवलोकि अबै अरबिन्द में फूली है कुंद कली ॥१४॥

टीका—चित चौंकी मति मेरी ठगी गई, यह नायिका सखी ते कहती है, कि मैं आज आरसी में यह देखो याते भ्रम भया ताते अज्ञातयौवना, अपने प्रतिबिंब अगन का नहीं जा था ॥१४॥

कवि—लाल

(ज्ञात यौवना)

दण्डक-आली अलबेली सग आपसी सहेली लीन्हे
राजति नवेली रूप बेली सी लुनाई सों।
उरज दुरावै तानि आँगी तनी बार बार
गोवै रोम राजी चारु चित चतुराई सा॥
चलि बलि देखो अति आनँद उरेखो उर,
राँची तिय प्राची सी तरुनि तरुनाई सों।
लाल रग अधर गुलाब रग अग भए,
कौल की सी पाँखैं भई आँखैं अरुनाई सा ॥१५॥

टीका—कौल की पखुरी ऐसी अरुनाई आँखि में भई ॥१५॥

पानि = हाथ। बृज छावरियाँ = बृज की लड़कियाँ। पाँवरियाँ = जूतियाँ। भाँवरियाँ = विवाह का परिक्रमाएँ ॥१३॥

चकी = चकित सा। अचभव = आश्चर्य। भुवगम = सर्प ॥१४॥

आपसी = अपने सदृश। रूपबेली = रूप की लता। लुनाई = सुन्दरता। उरज = स्तन। आँगातनी = चोली के बन्द। गोवै = छिपाता है। रोमराजी = रोमावली। बलि = प्रियसखि। उरेखो = मानो। राँची = रची है। प्राची सी = पूर्व दिशा सी। तरुनाई = यौवन। कौल = कमल। पाँखें = पखुड़ियाँ। अरुनाई = लालिमा ॥१५॥

कवि—दास

(विश्रब्ध नवोढ़ा[1])

सवैया- हौं तो कह्यो कछु बातें करेंगो प्रवीन बड़े बलदेव को भैया ।
पैगुन जानती तौ यह सेज हो भूलि न सोवती बीर दुहैया ॥
'दास' इतै पर फेरि बुलावत यौं अब आवत मेरी बलैया ।
आवौं तौ जो तौ कहौ करि सौंह की आजु करेंगे न काल्हि की नैया ।१६।

टीका—आज को नैया । करि है, जस काल्हि किया है, कछु नाह कछु अपनाह भयो याते विश्रब्ध नवोढ़ा ॥१६॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

सुठि सूधे सुभाव सुहाय प्रभाउ करो उर जात सरोज कली ।
छबि छाय रही उलही दुलही केहि भाँति कहौ 'बृज' रूपरली ।
निसि चोरमिहीचनि खेलत में बृजचन्द मिलापकी बात चली ।
अरविंद से आनन मंद भयो तन काँपत दीपसिखा से अली[2] १७॥

टीका—खेलत में बृजचन्द के मिलाप की बात कहै नरन्हा ली, अरविंद से मुख मंद भयो, क्योंकि बृजचन्द के सुनते ही तन दीपसिखा सो कपायमान क्योंकि यात नाम नयारि, ताते नवोढ़ा ॥१७॥

१—विश्रब्ध नवोढ़ा वह नायिका है जिसे यौवनोद्गम पर रतिकला का अनुभव तो हो जाता है किंतु संकोच या भय के कारण उससे अनिच्छा प्रकट करती है, यही "रती वामा" है ।

२—यह नवोढ़ा का उदाहरण है नवोढ़ा वह नायिका है जिसे प्रथम रति का अनुभव होता है ।

इस प्रकार 'स्वकीया मुग्धा' के ४ स्वरूप हुए ।

प्रवीन = चतुर । पैगुन = अवगुण, बुराई । दुहैया = अहीर । सौंह = शपथ । नैया = तरह ॥१६॥

सुठि = सुन्दर । सूधे = सीधे । उरजात = रतन । सरोजकली — कमल का कोंका । उलही = उमड़ती । दुलही = दुलहिन । चौरमिहीचनी = आँख मिचौनी ॥१७॥

(मध्या)

जाके लाज मनोज समान । मध्या[1] ताहि कहै मतिमान १८॥

कवि—ऋषिनाथ

खेलन को बन कुंजन में सुनि मंजु सखीन के संग गई ।
सामुहे भेंट भयो 'रिषिनाथ' लखे मन मोहन प्रेममई ॥
छोड़ी न लाज छपाय कै अंचल घूँघट ओट पिछौड़ी भई ।
मींजत हाथ हिये पछितात सुपीठि में दीठि दई न दई ॥१९॥

टीका—कामते पिछौड़ी भई लाजते कहत पीठि में आँख न भई ॥१९॥

कवि—बृजचन्द

ललना लजीली उर कामहूँ ते कीली नीली
सारी में लसै ज्यौं घटा कारी बिच दामिनी ।
कहैं 'बृजचन्द' हुती संग मैं सहेलिन के,
हेरत हँसत बतरात हंस गामिनी ॥
तौलौं तहाँ गेह में सनेह भरो आयो नाह,
बैठि गयो ताको लखि बैठि गई भामिनी ।
कंत हेरै सामुहे तौ अन्त हेरै इंदु मुखी,
अन्त हेरै कंत तौ न अन्त हेरै कामिनी ॥२०॥

टीका—कंत सन्मुख ताकै तौ वह अनत ॥२०॥

---

१ मध्या वह नायिका है, जिसमें लज्जा एवं (काम) भावना ये दोनों समान रूप से हों। यह तीन प्रकार की होती है—(१) धीरा (२) अधीरा (३) धीराधीरा, जैसा कि आगे उदाहरणों में स्पष्ट किया गया है। दर्पणकार ने इसका लक्षण यों दिया है—

"मध्या विचित्रसुरता प्ररूढस्मरयौवना ।
ईषत्प्रगल्भवचना मध्यमव्रीडिता मता ॥" (सा० द० ३।५९)

सामुहे=सामने। प्रेममई=स्नेहभरा (दृष्टि से)। ओट=ओट, आड़। पिछौड़ी भई=पीछे को लौट गई। दीठि=दृष्टि। दई न दई=दैव ने नहीं दी ॥१९॥

कीली=भरी हुई। दामिनी=बिजली। बतरात=बातचीत करती। नाह=स्वामी, नाथ। सामुहै=सामने। अन्त=अन्यत्र। न अंत= न अन्यत्र अर्थात् सामने ॥२०॥

(प्रौढ़ा)

रति भरि प्रीति जाहि चित होई। प्रौढ़ा ताहि कहत सब कोई ॥२१॥

कवि—दास

दीपक ज्योति मलीन भई मनि भूषन जोति की आतुरिया है।
'दास' न कौलकली बिकसी निजु मेरी गई मिलि ओगुरिया है॥
सीरी लगे मुकुतावलि तेउ कपूर की धूरि नरी पुरिया है।
पौढ़े रहो पट वोढ़े लला निसि बोले नहीं चिरिया चुरिया है॥२२॥

टीका—यह चिरिया नाहीं बोलै है मेरी चुरिया को खनक, भोर को छिपावै ताते प्रौढ़ा ॥२२।

कवि—नेवाज

छतिया छतिया सो लगाये दोऊ दोऊ जी मे दुहूँके समान रहे।
गई बीति निसा पै निसा न भई नए नेह मे दोऊ बिकाने रहे॥
पट खोलैं 'नेवाज' न भोर भए लखि द्यौस को दोऊ सकाने रहे।
उठि जैबे को दोऊ डेराने रहे लपटान रहे पट ताने रहे॥२३॥

टीका—उठि जावै का डर दूनों के मनमे है ॥२३॥

(धीरादि)

मान समै मध्या त्रिविध, प्रौढ़ा हू त्रै भाँति।
धीरा बहुरि अधीर गनि, धीरा धीरा जाति ॥२४॥

१—प्रौढ़ा यह नायिका है जो कामकला म निपुण हो और नायक पर अत्यन्त अनुरक्त हुई सर्वदा रति की चाह करती हो। यह रतिकला म इतनी अभ्यस्त हो जाती है कि नायक को आक्रान्त कर लेती है अर्थात् उससे जो चाहे सो करवा सकती है। दर्पणकार ने इसका लक्षण यो किया है—

''स्मरान्धा गाढ़तारुण्या समस्तरत कोविदा।
भावोन्नता दरव्रीडा प्रगल्भाक्रान्तनायका॥'' (सा० द० ६०)

यह तीन प्रकार की होती है—(१) धीरा (२) अधीरा (३) धीराधीरा।

आतुरिया = अधिकता। कौल कली = कमल का गाफ। निजु = निश्चय ही। सीरी = ठंढी। पुरिया = सनी हुई। पौढ़े रहो = सोये रहो। चिरिया = पक्षी। चुरिया = चूड़ियाँ ॥२२॥

समाने रहे = घुसे रहे। निसा = रात्रि। द्यौस = दिन। सकाने = हिचकते ॥२३॥

(मध्याधीरा[1])

कोप जनावै व्यग बचन कहि ॥२५॥

कवि—हरिजन

दण्डक-मेरे नैन अजन तिहारे अधरन पर,
शोभा देखि गुमर बढाया सब सखियाँ।
मेरे अधरन पै ललाई पीक लाल तैसे,
रावरो कपोल गोल नोखी लीक लखियाँ॥
कवि 'हरिजन' मेरे उर गुन माल तेरे,
बिनु गुन माल रेख सेख देख अँखियाँ।
देखौ लै मुकुर दुति कौन की अधिक लाल,
मेरी लाल चूनरी तिहारी लाल अँखियाँ॥२६॥

टीका—मुकुर लेकर देखो अर्थ यह जैसी तुमारी आँखि लाल है॥२६॥

(मध्या धीराधीरा[2])

धीर बचन कहि कै तिय रोवै॥२७॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

सवैया-जैसे मिले बृषभान कुमारि मुरारि निहारि गहे कर तैसे।
तैसे तहाँ तिल फूलन ते बगराइ बयारि दवानल कैसे॥
कैसे भयो हरि हेरि कहो 'बृज' बोली हरे मुख चातिक ऐसे।
ऐसे ढरे अरबिदन ते मकरन्द घने घनबुदन जैसे॥२८॥

१—जो अपराधी (परकीयादि ससर्गरत) पति के प्रति अपने क्रोध का परिहास पूर्वक व्यङ्ग्य वचनोंसे व्यक्त करती है वह 'मध्या धीरा' नायिका है अर्थात् केवल व्यङ्ग्योक्तियो द्वारा उसके अपराध को जताकर धैर्य धारण कर लेती है।

२—'मध्याधीराधीरा' वह नायिका है जिसके वचनो से तो क्रोध व्यक्त नहीं होता कि तु रोने आदिसे प्रकट हो जाता है।

नैन = नेत्र। गुमर = गर्व, अभिमान। नोखा = अद्भुत। लखियाँ = दिखता हैं। गुनमाल = गुणो का पक्ति, सूतम गुँथी माला। बिनुगुन माल = अवगुण, बिना सूत का माला। रेख = रेखा। मुकुर = दर्पण॥२६॥

बृषभान कुमारि = राधा। मुरारि = कृष्ण। बगराइ = फैलाकर। अरबिदन = कमलो से। मकरद = पराग। घनबुद = वर्षा का बृ द॥२८॥

टीका—तैसे तिलफूल जो नाक ताते ऊभी साँस भरी तब करि यह कह्यौ कि काह भयो तब गोली चातिक ऐसे पी कहाँ रहे यह कहते हो श्ररविंद रसे नैन ते श्राँसू गिरे ताते मध्या धीराधीरा ॥१८॥

(मध्या अधीरा[1])

करै अनादर पति को रिसि करि ॥१९॥

कवि—मीरन

नैन रँगे सब सैन जगे ते लगा ते लगे मन को ललचावन।
मेरियौ रीझ किधौ पिय प्यारे का रूप खरो लगे रीझि रिझावन॥
'मीरन' आज की आवन ऊपर भावन छ्वै करिए कर पावन।
आए कहूँ अनतै बसिकै मनभावन लागे तऊ मन भावन॥२०॥

टीका—अनतै बसि कै आए तऊ मन भावन ॥२०॥

(प्रौढ़ा धीरा)

उर उदास रति ते करि आदर। प्रौढ़ा धीरा[2] मानत सादर॥२१॥

दो०—हाव भाव आदर अदब, गुरा रुपमा करि चंद।
आवत ही ब्रज चंद के, तनी तनी के बंद॥२२॥

टीका—ब्रजचंद को आवत देखि तनी के बंद तनी कहै कसि बाँधी रति ते रूखी ताते प्रौढ़ा धीरा ॥२२॥

(प्रौढ़ा अधीरा)

तरजन ताड़न फूल से मारे। प्रौढ़ अधीरा[3] कवि सुविचारे॥२३॥

१—'मध्या अधीरा' वह नायिका है जो नायक की इस प्रवृत्ति को नहीं सह सकती और परुषोक्तियों द्वारा अपने क्षोभ को व्यक्त कर देती है।

२—'प्रौढ़ा धीरा' वह नायिका है जो अपराधी पति के दिखाऊ आदर सूचक कार्यों में व्यस्त रह कर रति में उदासीन सी रहती है।

३—'प्रौढ़ा अधीरा' वह नायिका है। जो अपने कोपको छिपा नहीं सकती और नायक को सुरतादि मे पादप्रहारादि से स्पष्ट ताड़ित एवं तर्जित करती है।

सैन = सकेत। रीझ = अनुराग। भावन = भावना। पावन = पवित्र। अनतै = अन्यत्र। मनभावन = प्रियतम (नायक)। मनभावन = मनोहर॥२०॥

हावभाव = काम जनित चेष्टाएँ और विकार। अदब = लज्जा। ब्रजचन्द = श्रीकृष्ण। तनी = कस गये। तनी कै = अंगिया के। बन्द = तानी॥२२॥

कवि—देव

पीक भरी पलकैं झलकै अलकैं सुभले भुज गोजन की।
छाइ रही छबि छैल की छाती म छाय है छोट उरोजन की॥
ताहि चितै कै तबै अँखियाँ तिरछी चितई अति ओजन की।
लाल की ओर बिलोकि कै बाल सुखैचि सनाल सरोजनकी ॥३४॥

टीका—सनाल कमल गैंचि मारिबे का प्रौढ़ा अधीरा ॥३४॥

(प्रौढ़ा अधीरा धीरा)

रति ते रूखी डर देखरावे। प्रौढ़ अधीरा[1] धीरा गावै ॥३५॥

दो०—बाल लखे नँद लाल को, लाल नयन खरदंड।
नैन तिरीछन बान मनु, भौहें चढ़ी कोदंड ॥३६॥

टीका—नैन बान भौहैं कोदण्ड कहे धनु ऐसी चढ़ी ॥३६॥

(जेष्ठा कनिष्ठा)

प्रथम पियारी बहु घट प्यारी। जेष्ठ[2] कनिष्ठा कह्यो बिचारी ॥३७॥

१—'प्रौढ़ाऽधीराधीरा' वह नायिका है जो उत्कर्ष पूर्वक कही गई उक्तियों द्वारा अपराधी नायक को खिन्न कर देती है और रति के प्रति रूक्ष बन जाती है।

२—'स्वकीया' नायिका के, 'मुग्धा' भेद को छोड़कर शेष 'मध्या' और 'प्रौढा' प्रत्येक 'धीरा, अधीरा, धीराधीरा', भेद से छ प्रकार हुए, ये छहों भेद भी प्रत्येक (१) ज्येष्ठा और (२) कनिष्ठा नाम से दो दो प्रकार के होते हैं ज्येष्ठा = उत्तम, कनिष्ठा = साधारण। यह नायिका के स्वभावपर निर्भर करता है। यदि वह उत्तम स्वभाव की हुई तो उसके इस कोप में भी उत्तमता रहेगी अर्थात् शिष्टतापूर्वक कोपप्रदर्शन होगा यदि स्वभाव में अधमता हुई तो कोपप्रदर्शन में भी अशिष्टता रहेगी।

इस प्रकार मुग्धा ४, मध्या ६ और प्रौढा ६, सब मिलाकर 'स्वकीया' नायिका के १६ भेद हुए।

पीक = पानका थूक। अलकैं = केश। छैल = चतुर (नायक)। छोट = छोटे। उरोज = स्तन। चितई = देखी ॥३४॥

कोदंड = धनुष। तिरीछन = तीक्ष्ण, टेढे ॥३६॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

परसे न कहे बनि आज कछू अवलोकि प्रिया परभा बरसो।
बरसो घन ता समै घेरि नभ्य थहु देखत छपा ललिता दरसो।
दरसो है त्रिलोचन पाछे परे गुरु आछे बिलोकि छपा करसो।
करसो वृषभान कुमारि गुपालि सखो अंग हेरि हरे परसो ॥३८॥

॥ इति स्वकीया ॥

टीका—ताही समै मन बरसो हरि ललिता सो कहो की यह बेरा जब ललिता के नेन पीछे परे तब हरि वृषभानु सुता को अंग छुए ॥३८॥

(परकीया¹)

दो०—बिन ब्याही पर पुरुष सों, प्रीति अनूढा नारि।
ब्याही पति तजि पर पुरुष, प्रीतिहि ऊढा धारि ॥३९॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

जग मैं बड़े जाहिर माहिर हैं परबीन कुलीन सिरोमनि है।
गुन आगर रूप उजागर वै 'बृज' सील के सागर म गनि है॥
परि पूरन पुन्य कहाँ इतनो मन ही को मनोरथ को जनि हैं।
सखि सूरति साँवरी मूरति मैन निहारत नेन कहा बनि हैं ॥४०॥

१—अपनी विवाहिता पत्नी के सिवा किसी अन्य स्त्री से कोई पुरुष प्रेम करे तो वह 'परकीया' नायिका कहलाती है, जो दो प्रकार की होती है (१) अनूढा (अविवाहिता = कन्या), (२) ऊढा (जिसका अन्य पुरुष से विवाह हो चुका है किन्तु प्रेम इतर नायक से कर रही है।)

प्रस्तुत ग्रन्थकार ने परकीया (ऊढा अथवा अनूढा) के पाँचभेद किये हैं—(१) गुप्ता, (२) लक्षिता (३) मुदिता, (४) अनुशयाना और (५)कुलटा। 'गुप्ता' वह नायिका है जो अपने प्रेम को छिपा लेती है।

पुनः इसको तीन प्रकारकी माना है १—भूतगुप्ता, २—वर्तमानगुप्ता, ३—भविष्यगुप्ता अर्थात् जो भूतकालिक नायकरति को छिपा लेती है वह भूतगुप्ता, वर्तमानकालिक प्रेम का गोपन करनेवाली 'वर्तमानगुप्ता' और भविष्यकालीन सभी भावों की गोपिनी 'भविष्य गुप्ता' कहलाती है।

परसे = स्पर्श कर। ललिता = सखी का नाम। दरसो = देखो। दर = कुछ। छपाकर = चन्द्रमा ॥३८॥

जाहिर = प्रसिद्ध। माहिर = दक्ष। परवीन = प्रवीण, चतुर। गुन आगर = गुणों के घर। उजागर = प्रकाशमान ॥४०॥

टीका—सखी साँवरी मूरति मूरति मैन की देखत कहा बनि है ॥४०॥

(ऊढ़ा)

कवि—मकरन्द

गाइ के तान बजाइ के बाँसुरी माहि के मोहनी मो सिर दीनी ।
ऐंठि कै पाग उमेठि के पेचन टेढ़ी सी चाल चले रस भीनी ॥
रीझ रिझाये कै जात भए मकरन्द कहौ सुकहा गति लीनी ।
जाँव री का पर नाउँ री बूझत साँवरी मूरति बाउरी कीना ॥४१॥

टीका—कासो गाँव बूझौ ॥४१॥

(परकीया)

षट्भेद

गुप्ता तीनि भाँति करि जानो । भूत गोप व्रतमान बखानो ॥
सुरत गोप जो भविष कहावै ॥४२॥

कवि—देव

(भूतगुप्ता)

घर भीतर बाहेरहूँ बन बागन बैरिनि बीर बयारि बही ।
झँझरी के झकोरनि ह्वै कै झकोर बढे हिय मे नहि जात कही ॥
'कवि देव' कहो कहि के सकै आइए जीकी बिथा नहीं जात कही ।
अधरानि को फोरति अग मरोरति हारन तोरति जोर बही ॥४३॥

टीका—यह बयारि झँझरीन के मग आइ हार तोरा अग मरोरत याते भूत गुप्ता ॥४३॥

कवि—अमरेश

(वर्तमान गुप्ता)

एक छिन एक दिन जनम दुहूँ को भयो,
उमगे अनद बाजे बाजन बधाई के ।
एक सो सँवारे बिधि रूप रग अग सब,
मिलत सुभाइ भरे बल जू के भाई के ॥

पाग = पगड़ा । उमेठिकै = मरोड़कर । पेच = मोड़ । नाँउ = नाम । बाउरी = पागल ॥४१॥

झझरी = झाँकी । झकोरनि = झोका से । झकोर = तेजवायु । अधरानि = ओठों को ॥४३॥

भनै 'अमरेश' सुरा सरित समान ज्ञान,
भेद है न कोऊ भेद लोग औ लुगाई के ।
माई यह कैसो तें कही कीतन जोरी तन,
जोरी नापवे मा होत गरे लो कन्हाई के ॥ ॥४४॥

टीका—एक हो भरी [illegible] को [illegible] जो [illegible] हो तो उनके गरे तक हो, याते [illegible] ॥४४॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

(भविष्यगुप्ता वर्णन)

सवैया-डरिहौ भुज पास गरे उनके 'बृज' आवत धायक ने भरिहौं ।
धरि हौं उर धीर न बीर की सौंह अहीर गवारन को हरिहौं ॥
हरि हौं नहि फेरो हूँ मेरी गली जनि आवैं करार यही करिहौं ।
करि हौसन ते लड़िहौ भिड़िहौ अड़िहौं छुड़िहौं न कछू डरिहौ ॥४५॥

टीका—हरिहौं न हेरौ, [illegible] जौ यहि गली फेरि आइ हैं, याते भविष्य ॥४५॥

(विदग्धा[1] वचन क्रिया)

फल फूल सपल्लव आम के बौर,
अबै अलि जाइ निशानहि लावै ।
घर पावन पुंज बहारि करौं,
सजि सेज सुगन्ध महा छबि छावै ॥
'बृज' राखि हौं खोलि केवार सबै,
निसि काजनी कौन भरी हरि आवै ।
पिय पाती हिमन्त की अन्त मे आई है,
आइहै कन्त बसन्त मनावे ॥४६॥

उमगे = उमड़ आये । बाजन = बाजे । सुभाई = स्वभाव ॥४४॥

डारिहौं = डालूँगी । भुजपास = बाहुबन्ध । धायक = दौड़कर । बीर = भाई । हौसनते = शौकसे ॥४५॥

१—'भूत वर्तमान भविष्य गुप्ता' नायिकायें जो अपनी प्रीति को छिपाती हैं वे या तो उक्तियों द्वारा या क्रियाओं द्वारा । उक्तिचातुर्य से इस रति भाव का गोपन करनेवाली 'वचनविदग्धा' और क्रियाचातुरीसे छिपानेवाली 'क्रिया विदग्धा' कहलाती है ।

पावनपुंज = अत्यन्त स्वच्छ । बहारि = झाड़ू लगाकर ॥४६॥

टीका— हिमत के अंत में अइ ई यह पाती जो परदेशते आई है, तामें यह लिखो है यह अपने मित्रको सुनावत है ॥४६॥

(क्रिया चातुरी)

सग सखीजन के सजनी नव नागरि नार के जात हैं कारन।
पाँय पखारत ढारत पानि निचोरत बोरत चीर औ बारन॥
बजुल मंजुल पुंज निकुंज ते आइ गयो हरि प्रेम पगारन।
भानुजा मैं वृष भानुजा लै 'बृज' फूल जपाकर लागी बगारन ॥४७॥

टीका—भानुजा कहे यमुना वृषभानुजा राधाजी जपाकर कहे दुपहरिया को फूल बगारे कहे छोड़े अर्थ यह की जलनाम वन में दुपहरी में मिलिहि ॥४७॥

(लक्षिता[1])

पर पति रति लक्षित सखि करई ॥४८॥

कवि—कवि गोकुल प्रसाद 'बृज'

आइ हौ खेलन होरी बिमोहन सोहन गोहन भाव भरी।
छोंड़ि दे संक मयंक मुखी 'बृज' कीजिये रंग उमंग भरी॥
मूठि अबीरन सो भरि के हरि ऊपर घात अनेक करी।
देखति हौं कब की मैं खरी अब काहे न जात उड़ाय अरी ॥४९॥

टीका—अबीर मूठी भरि उडाइबे को मित्र को देखि सात्विक भाव स्वेद भए, याते पंक ह्वै गयो, याते लक्षिता ॥४९॥

कवि—बोधा

तुम जानती हौ कै अजान सबै करि आगे को ऊतरु धावती हौ।
बतराती कछू की कछू हित के अनुराग की आँख छपावती हौ॥

पाँय पखारत = पैर पोछता है। ढारत पानि = पानी गिराता है। निचोरत = निचोड़ता, कचारता है। बोरत = डुबाता है। चीर = वस्त्र। बारन = बालो को। बजुल = झाड़ी। पगारन = घरों में। भानुजा = यमुना। जपा = जवा ॥४७॥

१—बहुत छिपानेपर जिसका पर पुरुष प्रेम सखी आदि के द्वारा लक्षित हो जाता है वह 'लक्षिता परकीया' नायिका है।

बिमोहन = मोहित करनेवाले। गोहन = साथ। मूठि = मुष्ठ ॥४९॥

हम काहू परी जो मन करिबे 'कवि बोधा' कहै तुरत दावना छो।
बदनामी की गैल बचाइ रह्यौ कुल काहे कलंक लगावती हौ ॥५०॥
टीका—बदनामी के गैल बचाओ ॥५०॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

(मुदिता)

निज चाही बातै सुनि मोद ॥५१॥

ब्याह भयो जबते तबते निज नायक के मन सूझत सौति नहीं।
नागर नारि ते पूछो हरे हँसि गौनो बनो अब लेन चही ॥
सो सुनि सोच सकोच कियो 'बृज' बूझि कछू हित हेत लही।
लावहु बेगि न बेर लगावहु हेरि हरे हरषाय कही ॥५२॥

टीका—नायक कहौ सौति नहीं नायिका को हरषाय की बात अब गौने कि सौति को आइ ॥ सौति हरषाइ कहै यह आगमन है उस पर यह नायिका मुदिता को नायक तो सौति के वश्य रहैगा तो मैं मिलन की मिलापी बात हरष भया ॥५२॥

(अनुसयना प्रथम)

कहि संकेत विनाश ॥

सवैया— कामिनी कंत बसंत बहार विहारन बाग गई निज गेह को।
रोस न रोसन रोसनी रोसन छाइ रही कवि फूल अछेह को ॥
हेरि हरे हिय हूल उठी 'बृज' जानि परयो लखि बाढ़ अनेह को।
फूली फली कदली न लतानि भली लखि नदली ढहि [illegible] को ॥५३॥

१—ग्रन्थकार के अनुसार 'मुदिता' नायिका वह है जो मनचाही बात सुनकर प्रसन्न हो। वास्तवमें मुदिता वह कहलाती है जिसे नायक के संकेत स्थल पर आनेका निश्चित विश्वास रहता है।

२—अनुसयना वह परकीया नायिका है जिसका नायक मिलन की इच्छा पूर्ण न हो सके। यह तीन प्रकार की होती है (१) जिसका मिलना। संकेत स्थल ही नष्ट हो जाय। (२) जिसे यह चिंता हो कि दूसरा भावी संकेतस्थल रहेगा या नहीं। (३) जो उचित समय पर संकेत स्थल में न पहुँच सकी और पश्चात् व्याकुल हो। अनुसयना शब्द संस्कृत के 'अनुशयाना' शब्द का अपभ्रंश है जिसका अर्थ होता है पश्चात्ताप करती हुई।

ऊतर = उत्तर, आगे। गैल = मार्ग ॥५०॥

नागर नारि = चतुर नायिका। गौनो = गौना। हितहेत = भलाई के लिये। हरे = कृष्ण को, पति को ॥५२॥

टीका—कदली को फरी देखि दुःख भया अर्थ यह कि जब कदली फरत तब काटि डारि जात कटे पर संकेत विनाश ताते अनुसैना ॥५३॥

(दूसरा संकेत अभाव)

गौने के द्योस छ सात हुते गई बाग बिलोकन प्रेम बढ़े।
लोनी लता लवली अवली लहरें छहरें छबि छाह मढ़े॥
रोसन रोसनी मंजुल पुंज मनोहर कोकिल कीर पढ़े।
खोई हैं ताल तमाल तहाँ 'ब्रज' काहु बिलोकत आह बढ़े ॥५४॥

टीका—खोई ताल तमाल देखि दुःख भया ऐसा मेरे समुझिबे में है है कि याहीं संकेत अभाव ते ताते दूजी ॥५४॥

कवि—पद्माकर

(तीसरी अनुसयना संकेत पर न जाय)

चारिहु ओर ते पौन झकोर झकोरनि घोर घटा घहरानी।
ऐसे समै 'पदुमाकर' कान्ह की आवत पीतपटी फहरानी॥
गुंज की माल गुपाल गरे ब्रज बाल बिलोकि थकी थहरानी।
नीरजते कढ़ि नीर नदी छबि छाजत छीरज पे छहरानी ॥५५॥

टीका—कृष्ण के गरे में गुंजमाल देखि क्योंकि नायक संकेत के चिह्न लायौ हो । ग० याते तीसरी ॥५५॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'ब्रज'

(कुलटा)

॥ जो बहुनायक ते रति मानै ॥

नंद सो रस नागर को तजिकै गुन आगर सागर को न पत्यानी।
रतिवंत तवागन त्यागि दई धनवंत अनूपम रूपन मानी॥

१—जिसकी काम वासना तृप्त न हो और उसके लिये बहुत पुरुषों का संसर्ग करे वह कुलटा कहलाती है (कुलेषु = बहुषु, अटति = भ्रमति इति कुलटा)।

['परकीया नायिका' के प्रथमत ऊढ़ा—अनूढ़ा भेद से दो, पुनः गुप्ता आदि भेदों से प्रत्येक के ५।५ इस प्रकार १० भेद हुए]

रोसनी रोसन = प्रकाश फैल रहा है। अछूह = निरन्तर । हूल = पीड़ा ॥५३॥

लवली = प्रफुल्लित । छहरें = फैल रहा ॥५४॥

पीतपटी = पीला दुपट्टा ॥५५॥

नर नारन जो नहि नेह न है 'बृज' पावन नीर बिहाय भयानी।
सुख घातकी है यह चातकी नारि रहै दुख सेनै से ताता को पानी ॥५६॥
॥ इति परकीया ॥

टीका—[illegible] पानी को सबै [illegible] [illegible] सुख को घातकी [illegible] [illegible] ॥५६॥

(अन्य संभोग दुखिता)

निज पति रति पर तिय तन हेरी।
दुखित अन्य संभोग बिरारी ॥५७॥

कवि—श्रीधर

तार किनारिन की झलकै पलका पे मनोजन वोज अभान है।
चूरी चुनी वो चुनौती के ढेरन बारा बना कर को इत खात है॥
'श्रीधर' सो अफसोस महा यह रोस कछूक सो जानो न जात है।
रात को यौ उतपातन कै गरे लाल को आन छला छलि जात है ॥५८॥

टीका—मेरे लाल को कौन छला छलिके लियो, [illegible] को देखि कहै है ॥५८॥

(प्रेम गर्विता)

निज पति प्रेम तिया जो भाखै ॥५९॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

मनमोहन को कहनावति यो मनमोहनी है हम [illegible] [illegible]।
भल भूषन अंग मे लागत दूषन भूषित के केहि हेत लिए॥
निज नैन निरन्तर चाहै न अन्तर बीच बढ़ो दुइ देह लिए।
'बृज' दो तन मे मन एक अलो मिधि काग के गोलक लौन [illegible] ॥६०॥

टीका—[illegible] एक काग के गोलक लौं [illegible], यह बात नायिका अपने नायक को कहती ताते प्रेम गर्विता ॥६०॥

परघानी = तिरस्कार किया। सुख घातकी = सुखनाशिनी ॥५६॥

अनछला = दूसरी नायिका ॥५८॥

कहनावति = कहावत। काग के गोलक = कौवे का आँख का गोला जो दोनों आँखों के मध्य में होता है और जिससे वह दोनों ओर देखता है। लौन = सुन्दर ॥५९॥

(रूप गर्विता)

जा निज रूप गरब की बातैं।
कहि बोले तिय गरब अदातैं ॥६१॥

कवि—महाराज

लाल लेउ बात न अपानो करो नात न,
लगाय लेउ गात न भुलावो सुधि खान की।
मींजि मारो मान ते चरित अभिमान ते सु,
तान तेजि पाइ बीरी देहौ मुख पान की ॥
'कवि महाराज' ब्रजराज हूँ पलक माँझ,
चेरो करो ठेलौ तौ दुहाई पचबान की।
बेधे दृग कोरन मरोरा भौंह भोरन ते,
डोरन ते डोरौं तौ हौं बेटी वृषभान की ॥६२॥

टीका—दृग कोर की मरोर ते मारा, भौंह के भावन ते बामौ करौ व्यंग यह कि मेरे भौंह नैन ऐसे ताते रूप गर्विता ॥ २॥

कवि—मोतीलाल

एकै आनि नीरज के दल अँखियान तार,
दरसत निहारै पै परै न पावै पलकैं।
एकै आनि दाड़िम दसन दुति मान एकैं,
श्रीफल उरोजन मिलावै कोच कलकैं ॥
'मोतीलाल' मूँदे भे सकुच भुजमूल तक,
दासिए अनोखी छिगुनी की छबि छलकै।
कहाँ ते हो आई इहि ओर भूल मोहि भाई,
बृज की लुगाई लोग देखि रुचि ललकैं ॥६३॥

टीका—नीरज के दल दाड़िम इत्यादि समता करत हे लेकै यह गर्व ॥६३॥

मान = प्रमाण। छिगुनी = कानी उँगली। लुगाई लोग = नारीनर। ललकै = चाहते हैं, ललचते हैं ॥६३॥

कवि——दया देव

(मानिनी)

कौल कैसी बेली प सहेली कुम्हिलाय गई,
फूली सी फिरत ते नवेली [illegible] वामके ।
कहै 'दयादेव' आन अनमा । बे अम्रल,
[illegible] कारे लगि [illegible] चित्र से है धामके ॥
इते तो अनोखी अनखाइल सो अनखात,
जोन्ह है जनावत है कहै मद [illegible]के ।
हा हा हरि बोले [illegible] छोड़ि द अलाखी मान,
मान अरु बान बिना छूटे कौन कामके ॥६४॥

टीका——मान और बान बिना छूटे [illegible] ॥६४॥

विषहू ते मेरी बात लागत बुरी है अब,
तब समुझगी जब चित्त चाक चढ़ैगो ।
लाल उठि जहै फिरि कबहु न ऐहै लखि,
सखी मुसकैहै देखि दुखगान बाढ़ैगो ॥
कहै 'दयादेव' कही काहू की न मानति हौं,
मानागी तो लोग झूठी साँची सीख पाढ़ैगो ।
मान कीन्हो कान है जो मान ते हरत मान,
मान कहाँ पान है जो याके रस बाढ़ैगो ॥६५॥

टीका——मान का पान है जाते रस बढ़े है अर्थ यह रस [illegible] है ॥६५॥

(गनिका)

धन लै जो रति पति से करई ॥६६॥

१——जो केवल धनके लिये नायक से प्रेम करती है वह सामान्या या गणिका कहलाती है ।

अनखाइल = रुष्ट हुई ॥६४॥

साँचै पाढ़ैगो = सिखा पढ़ा देगो ॥६५॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

दंडक—अतर लगाइ तन जब उर बसी जाइ,
हेरि कै अतर धन उर बसी देत है।
मुकुता करत भाव भूषन बनाव करि,
मुकुता अभूषन लहत हित हेत है॥
'गोकुल' अनूप सुबरन अंग को सँवारि,
सुबरन रूप लेइ जाइ जा निकेत है।
बारनारि बराबरी कहा करै कुल नारि,
मन हीरा दै कै मन हीरा वह लेत है ॥६७॥

टीका—अतर धन कहै गोपधन उर बसी हृदै मां बसी और उर बसी हार मुकुता कहै बहुत मुकुता मोती सुबरन अच्छ सुवरण सोना हीरा मन कहै हियमन हीरा कहै जवाहिर ॥६७॥

(सर्वरति)

कवि—अकबर साह

सवैया—'साह अकब्बर' बाल की चाह अचित गही चल भीतर भौने।
सुन्दरि द्वार ही दृष्टि लगाय के भागिबे को भ्रम पावत गौने॥
चौंकत सी सब ओर बिलोकत सक सँकोच रही मुख मौने।
यौं छबि नैन छबीली के छाजत मानो बिछोह परे मृगछौने॥६८॥

टीका—मृग छौना ताते नवोढ़ा ॥६८॥

'साहि अकब्बर' एक समै चले कान्ह बिनोद बिलोकन बालहि।
आहट ते अबला निरख्यौ चकि चौंकि चली कर आतुर चालहि॥
त्यौं बलबेनी सुधारि धरी सुभई छबि यौं ललना अरु लालहि।
चपक चारु कमान चढावत काम ज्यौं हाथ लिये अहि बालहि ॥६९॥

टीका—कमान हाथ लिए अहिबाल पद० ॥६९॥

केलि करै बिपरीति रमै सु 'अकब्बर' क्यौं न दती सुख पावै।
कामिनि की कटि किंकिनि कान किधौ गन प्रीतम के गुन गावै॥
बिंदु छुटी मन मे सुलिलाट ते यो लट मे लटको लगि आवै।
साहि मनोज मनो चित में छबि चन्द लए चकडोरि खिलावै॥७०॥

अतर = अत्य त। उर = छाती। बारनारि = वेश्या ॥६७॥

दता = लिपटा हुई। बिंदु = बेंदी। लट = वेणी। चकडोरा = चकई नामक खिलौने में लपेटा हुआ सूत। कोककला = रतिविद्या। बिगलित = बिखरे हुए। मराल अबला = हंसिनी ॥७०॥

टीका —च द्रमा को लखे चक डारी होइ ॥७०॥

कवि—हरिकेश

रची बिपरीति रति प्रीतम के प्रीति प्यारी,
जामे अति छाजे कोक सकल कलान की।
'कवि हरिकेश' बिगलित केस बेस दुति,
गलित करत अहि ललित ललान की॥
लचकत कटि मचकत किंकिनी की कल,
हाँसी री करत है मराल अबलान की।
कर तामरस तमरा र जब गहै प्यारी,
प्यारे को मिटत टव सकल छलान की ॥७१॥

टीका—रागरत रति कामिदा की सुरति है ॥७१॥

(मध्या सुरत)

कवि—नेवाज

मुख चुम्बन मे मुख ले जो भजै पियके मुख मैं मुख नायो चहै।
गल बाँही गोपाल के मेलत ही मुख नाहीं कहै मनते न कहै॥
नहि देत 'नवाज' छुये छतिया छतिया से लगाए ते लागी रहै।
कर खैंचत सेज की पाटी गहै रति मैं रति की परिपाटी गहै॥७२॥

टीका—सेज की पाटी रति की परिपाटी ॥७२॥

कवि—दास

काम कहै करि केलि ढिठाई औ लाज कहै यह क्यौं हु न हाने।
लाज की वोरते लोचन ऐचत काम के वोरते प्रेम सलोने॥
'दास' बस्यो मन बामको काम मै लाजत ज्यौं निज धर्मन कोने।
त्यौं मन काम करो करै प्यारी पै लाज औ काम लरो करै दूने॥७३॥

टीका—लाज काम पद ते मध्या की सुरति ॥७३॥

तामरस = कमल। तमसक = अधकार के भय से। टेव = स्वभाव। छलान = छल कपट ॥७१॥

मेलत = डालते ही। पाटी = लकड़ी। परिपाटी = प्रथा, रीति ॥७२॥

ऐंचत = खींचती है। सलोनो = सुन्दर। बाम = नायिका ॥७३॥

कवि—उदयनाथ

(प्रौढ़ा रति)

रग पगी सेजपर जग मगी सोभा चारु,
मनिमय मदिर मयूखन अथाह की ।
'उदैनाथ' तामे प्रान प्यारी अरु प्यारे लाल,
कोक की कलान केलि करत अथाह की ॥
किंकिन की धुनि तैसे नूपुरको नाद सुनि,
सौतिन के बाढत बिषाद बाढ गाह की ।
त्रिभुवन जीति की उछाह को बजत मानौ,
नौबति रसील मनमथ बादसाह की ॥७४॥

टीका—केलि समै किंकिनि के शब्द मनमथ बादशाह की नौबति बाजति है ।

कवि—ब्रह्म

काम कलाधिक राधिका आधिक रात लौं काम की बात बनाई ।
काम सो कान्हर दै कुच पै कर सोय रहे रति काम की नाई ॥
'ब्रह्म' जराय की मुद्रिका दै सु सखी लखि कोटिन भा तन भाई ।
देखन को पिय को तिय की हिय की अँखिया मनो बाहिर आई ॥७५॥

टीका—सुगम ॥७५॥

कवि—कालीदास

कुदन की छरी आबनूस की छरी सी लागै,
सोन जुही माल कैधौं कुवलय हारसो ।
कैधौं बधु कालिका कलक सो कलित भई,
कैधौं रति ललित बलित भई मारसो ॥
'कालिदास' कादम्बिनि दामिनि मिली है कैधौं,
अनल की माल मिलि रही धूम धारसो ।
केलि समै कामिनी कन्हैया सो लपटि रही,
मानो लपटानी है जुन्हैया अधकारसो ॥७६॥

रगपगी = रग में मगन । कोक = काम । विषाद = दु ख । नौबति = मगल सूचक वाद्य ॥७४॥

अधिक रात = अर्धरात्रि । जराय = नग जड़ी हुई । भा तन भाई = शोभा शरीर पर झलकी ॥७५॥

कुदन = सुवर्ण । आबनूस = एक काली लकड़ी । सोनजुही = पुष्पविशेष । कुवलय = नील कमल । बधुकलिका = दुपहरिया की कला । बलित भई = लिपट गई । कादम्बिनि = मेघमाला । धूमधार = धुएँ का प्रवाह ॥७६॥

टीका—जुन्हैआ अधकार में मिली याते सुगम ॥७६॥

कवि—रूपनरायन

(सुरतांत]

सवैया-रमि के रति मन्दिर में तरुनी रंग रावटी में रस माले किया।
पगि प्रेम मैं पूरि पबीन के प्यार सों मोतिन हीं में दुसाले किया॥
'कवि रूपनरायन' आरसी ले कर आनन पै बस वाले किये।
अरबिंदन बैर कियो बरु लौं मनो भानु के इन्दु हवाले कियो ॥७७॥

टीका—अरबिंद ते सुगम ॥७८॥

कवि—बेनी

रति रंग जगी चख मींजत ज्यों तब त्यों मनमोहन चोपत सा।
'कवि बेनी' हहा करि हाँसी कियो सो जगावत जागे न कोपतसा॥
कर मंडित मोतिन के गजरा द्रिग मींडत आनन ओपत सा।
अरविंदन को पकरे मनो तारे कलानिधि भूपति सौंपत सा ॥७८॥

टीका—कलानिधि कहे चन्द्रमा ॥७८॥

कवि—मंडन

सजल जलद पर दामिनी लसत केधौं,
कामिनी को रूप रतिपति सो छुरत है।
बदन सुरत पिय मुख सों जुरत केधौं,
कमल के फूल सों कलानिधि मिलत है॥
'मंडन सुकवि' श्रम स्वेद ते सलिल होन,
देह ते निकसि निज नेह पिगलत है।
टूटि टूटि मोती सीस फूल ते गिरत केधौं,
मेरे जान तरनि तरैया उगिलत है ॥७६॥

टीका—तरनि कहे सूर्य तरैया कहे नक्षत्र ॥७६॥

रंगरावटी = रंगमहल का दालान। रसमाले कियो = प्रेम से लिपट गई।
दुसाले = छेद। हीमें = हृदय में। हवाले कियो = सौंप दिया ॥७७॥

तेव = क्रोध। चोपत = प्रसन्न होते हैं। ओपत = आभापूर्ण होते हैं।
रतिपति = कामदेव। सुरत = सुरता है। तरनि = सूर्य। तरैया = तारे ॥७६॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

[गनिका सुरत]

सुषमा ससी करै सो मुख माय सी करै,
प्रभा नछत्र सी करै कपोल स्वेद सीकरै ।
नैन बान सी करै कटाक्ष काट सी करै,
भौंह भाव 'गोकुल' चढाव चाप सी करै ॥
ऑगी कोक सी करै देखाय कै हँसी करै,
सनेह की रसी मै मति रसिक कसी करै ।
अंग मै लसी करै अनंग रति सी करै वो,
सी करै बसी करै हमेस ही बसी करै ॥८०॥

टीका—सुषमा शशी करै शोभा चन्द्रमा के करकै मुखमें वसै है, नैनबान सी सी वाक नैनबान से ऑगी कोक सी करत हमेस ही बसी करै कहै बसीकरन मन्त्र है ॥८०॥

अष्ट नायिका वर्णन

(प्रोषित-पतिका)

पिय परदेस बिकल तिय होई

कवि—अज्ञात

जोगी जोग त्यागे हम जोग भोग दोऊ त्यागे,
जोगी भखै पौन हम पौनहूँते लटि है ।

१—नायिका के स्वकीया, परकीया और सामान्या ये मुख्य भेद तथा इनके विभिन्न उपभेद उदाहरणों सहित पहले कहे जा चुके हैं । उनमें से प्रत्येक भेद के पुनः ये ८ भेद हो सकते हैं अर्थात् उन विभेदों में वर्णित प्रत्येक नायिका आठ प्रकार की होती है ।

२—प्रोषित पतिका वह नायिका है जिसका नायक विदेश गया हो और वह उसके विरहमें व्याकुल रहती हो ।

सुषमा = परम शोभा । ससी करै = चन्द्रमा का । नछत्र = तारे । स्वेदसीकरै = पसीने की बूँदें । ऑगी = अँगिया, चोली । कोक = चकवा । रसी = डोरी । कसी करै = बाँध देती है । लसी करै = शोभित होती है । सीकरै = सी सी शब्द करती है । बसी करै = वश में कर लेता है । बसी करै = रहती है ॥८०॥

जोगी छेदै प्रान हम हियोप्रान वोऊ छेदै,
जोगी धारै धूरि हम भूरिहू ते हटि है ॥
जोगी हाथ सींगी हम स्याम गुन सींगी भई,
जोगी कर दंड हम दंड हरी ठटि हैं ।
आसन सी आसी ऊधौ ओध सी अँध्यारी देखो,
जोगी के जुगुति ते बियोगी कहाँ घटि है ॥८१॥

टीका—जोगी के जतन ते, वियोगिनि के रीत कछु घटि नाहीं ॥८१॥

कवि—अहमद

जादिन ते प्रीतम बिदेस को गमन कीन्हो,
तादिन ते ललना अनद सी छरी रहै ।
'अहमद' केहूँ मिसि हेरि हेरि चहूँ दिसि,
अँगुरिन छाले परे गनत घरी रहै ॥
लोचन सँकोचन सा बतिया दुरावति है,
मोचन चहत प्रान औचक परी रहै ।
दुखु सुखो जंभा लागी सुरति अचंभा लागी,
कंचन के खंभा लागी रंभासी खरी रहै ॥८२॥

टीका—सुगम० ॥८२॥

कचन में आँच लागी चुनी बिन गारि गई,
भूषन भये है सब दूषन उतारि ले ।
बालम बिदेस ऐसी बैस मे न लागे आगि,
बरि बरि उठै हियो बिरह बयारि ले ॥

भखै=भक्षण करता है । छटि है=विरक्त, उदासीन । सींगी=श्रृंगी नाम का बाजा जो हिरन के सींग का बनता है । आसी=बैठी । ओध=मिलन का निर्धारित समय । अँध्यारी=काठ के डंडे में लगा हुआ पीढ़ा जिसे साधु लोग सहारे के लिये रखते हैं । जुगुति=साधना के उपाय । घटि=न्यून ॥८१॥

छरी=छली हुई । मिसि=बहाने । औचक=उकटे मुँह । जंभा=जँभाई आलस्य । रंभा=कदली ॥८२॥

एरी पर घर कत माँगन को जैहै आली,
आँगन मैं चंद ते अँगार चारि झारि लै ।
साँझ भये भौन माँझ बाती को न देति लेसि,
छाती मे छुआइ दिया बाती आनि बारि लै ॥८३॥

टीका—बिरहागिनि ऐसी छाती में प्रज्वलित है की बाती छुआइ कै दिया बारि लै ॥८३॥

कवि—कविराज

सुख सेज सुगन्ध सुधाकर सीत समीप सुहात नही सखियो ।
'कविराज' कहै इन भाँतिन कैसे बिना जगजीवन जाइ जियो ॥
कबहूँ बिरहागिनि मैं तप त्यौं कबहूँ धर नीर मे बोरि दियो ।
पियके बिछुरे हियरा इहि काम लोहार के हाथ को लोह कियो ॥८४॥

कवि—अभिमन्यु

औधि टरी हरि आवन की मनभावन ही की लगी जक वाके ।
काम की पीर बढ़ी 'अभिमन्यु' धरै नही धीर धका धकी वाके ॥
है बिधि सो तिय दै बिधि पाँख मिलो उड़ि जाइ रहो उर काके ।
जो पर आँखिन पीव मिलै सखी पाख जु है चकई चकवा के ॥८५॥

टीका—जो पर कहै यह शब्द एक लोकबाली है, जोपर कहै पर आँखिनते पीव मिलै तो पर चकवा औ चकई के हो तौ क्यों निशिमें बिछोह होत ॥८५॥

कवि—भगवंत

पीक ही की लीक उर लीक सी लगी है यह,
लाल लीक मेरी तुम अब रस पागे हौ ।
आरसी लै देखो नेक आरसी भयो है कहा,
आरसी लगत मुकुरत मेरे आगे हौ ॥

चुनी=रत्न । बैस=वयस, अवस्था । बरि बरि उठै=बार बार जलउठती है । अँगार=जलते कोयले ॥८३॥

जक=रट । धकाधकी=धुकधुकी ॥८५॥

कपटी महाउर महाउरते जानियत,
पाय परसत जाउ जाके पाय लागे हौ।
भोरहीते आए 'भगिवत' मोहि भोरवन,
कौन पतिनी के पतिनो के राग जागे हौ ॥८६॥

टीका—आरसी पैना लै कै देखो आरसी कहै आलसहा कहा भगो अर्थ कहा गति जाग्यो है, कपट महाउर है तुमारे महाउर कहै जावक तें जान्यौ, भोरते आए हमको बहकावन, कौन पतिनी कहै नायिका के राग है पति नीके जागे हो ॥८६॥

(कलहांतरिता)

करि कै कलह अंत पछिताय ॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

मन भूप से कान ए दूत जबै पुर प्रीतम की कछु बात बताई।
'बृज' नीति निरूपन को तुरतै नृप नैन दिवानहि सों ठहराई ॥
बन नाम सुभानके काम किये रिसिकै कोतवाल पै बोलि पठाई।
रसनाकर दौड़ी चवाई के चोप फिराय दिये हठहाके दोहाई ॥८७॥

टीका—मन भूप ते कान दूत पुर प्रीतम कहै नायक की बात अपराध को कहै मन भूप ने नैन दिवान को मन्त्र ठहरावन को आज्ञा दई। नैन श्रावन नाम कैसी रीति करो जिनसे नै कहै नीति नहीं अर्थ रोन चितानि रस॥ कहै जीभ की दौड़ी परपञ्च की चोप अर्थ कटु बच। कहो पछितात तातें कलहा तरिता ॥८७॥

१—कलहांतरिता वह नायिका है जो रति की इच्छा रहते हुए भी नायक के किसी अपराध से रूठ जाती है, नायक सामान्यत मनाता है वह रूठी ही रहती है तब नायक छोड़कर चला जाता है तो रति पूर्ति न होनेसे पश्चात्ताप करती है।

पीक=पान का थूक। लीक=लकीर। रसपागे=रसरग मे रँगे। आरसी=दर्पण। आरसी=आलसी। आरसी=काट सी। मुकुरत=इन्कार करते हो। महाउर=आलता। भोर बन=भोले भाले बनकर ॥८६॥

चवाई=निन्दक। चोप=चाह, इच्छा। दोहाई=पुकार ॥८७॥

(विप्रलब्धा[1])

आपु जाय संकेत मे, पिया मिलै नहि ताहि।
सून देखि बिलखै दुखी, विप्रलब्ध कहि जाहि ॥८८॥

कवि—चैनराय

साजि कै सिंगार हार जाल गज मोतिन के,
सुन्दरि छबीली छबि जैसे कछु रति है न।
मनके मनोरथ के रथ पै गमन करि,
पहुँची निकुंज जहाँ है न नन्द नंद ऐन ॥
'चैनराय' वाके उर मैन के मरूर उठे,
मीन ज्यौं बिनाही नीर लाजते न बोलै बैन।
फूलत गुलाब री गई ती तिय पास अब,
लागो चमकाउन गुलाब चुटकी सी दैन ॥८६॥

टीका— जब सकेत सून देखे दुख भयो ॥८६॥

(उत्कंठिता[2])

पियकरार करि, नहि जब आवे।
उत्कंठिता देखि दुख पावै ॥६०॥

निकुंज = झाड़ी। मैन के मरूर = काम की मरोड़ या पीड़ा ॥८६॥

१—विप्रलब्धा का अर्थ होता है वञ्चिता = ठगी गई। संकेत स्थल में पहुँचकर प्रतीक्षा करने पर भी जिसका नायक वहाँ नहीं पहुँच पाता वह विप्रलब्धा है।

२—संकेत स्थल में नायक की प्रतीक्षा करती हुइ और "नायक अभी तक क्या नहीं आया, आता है या नहीं" इस प्रकार की चिंता करती हुई नायिका उत्कंठिता कहलाती है।

[उत्कंठिता और विप्रलब्धा में यह अंतर है कि विप्रलब्धा को नायक नहीं मिलता और निराश होना पड़ता है, उत्कंठिता को नायक मिलता है किंतु विलम्ब से।]

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

कठिन कठोर जग नेह को निबाहबोई,
कारिबोई सहज सयान लाग गों भखे।
'गोकुल' बखाने कूर नरन ते रहा दूरि,
परै नहि पूर सुख फूल फल को चखे॥
पाछे पछिताय सठ सेमर का सेवे जिन,
पाय भय भरा सुआ सम मनसा झखे।
को लहै अकौल ते अनन्द कौलगुनी लोक,
कौल मित्र को लगन न कौल मित्र के लखे॥९१॥

टीका—कौल मित्र सूर्य देखा अरु कौल कहै करार मित्र को नहीं देखो॥९१॥

कवि—कविंद

सरसी सिंगारन ते जामे जेब जोबन की,
खरी बहु भाँतिन ते आभा अभिराम की।
भनत 'कविंद' जरी सारी की झलक जाकी,
दुरिते दमक अँधियारी भारी धाम की॥
ऐंठ सखियान त सकोच सोच भारने कछू,
बारी बिरहागिनि की कारी है अनाम की।
औधि एक जामकी न गाई च्यारि जाम की सु
जामकी भई है सुलगाई काम जाम की॥९२॥

टीका—औधि एक'जाम कहै पहर जामकी नाम रंजक वा पलीता॥९२॥

भुवा = हुई। झखै = खिन्न होता है। कौल = करार। कौल मित्र = सूर्य॥९१॥

सरसी = सरयुक्त, तलैया। जेब = शोभा, जरी = चाँदी या सोने के तार। ऐंठ = अकड़, घमंड। बारी = जलाई हुई॥९२॥

(स्वाधीनपतिका[1])

जाके पीतम होय अधीन।
स्वाधिन पतिका कहै प्रवीन ॥९३॥

कवि—श्रीपति

अतर लजात मृगमद पछितात बारि-
जात हारि जात देखे सौरभ को तत है।
'श्रीपति' अगार मैं अगर उदगार सी है,
बगर बगर छबि छाजत अनत है॥
होकर सुखन सुख सौतिन हँसी करन,
पतिहि बसीकरन जीकरन जत है।
मदन जसीकरन रति मैं रसीकरन,
सीकरन तेरी री बसीकरन मन्त्र है॥९४॥

टीका—सीकरन जो रति मैं तेरा बसीकरन मन्त्र है॥९४॥

(वासकसज्जा[2])

पिय आगमन जानि सुभ साजै।
सेज सिगार मोद मन राजै॥९५॥

बगर बगर = फैली हुई। होकर = हृदयका। जीकरन = विजया बनाने वाला। जसीकरन = यश बढ़ाने वाला। रसीकरन = रसोत्पादक। सीकरन = सासी शब्द करना॥९४॥

१ जिस नायिका का नायक उसपर इतना अनुरक्त रहता है कि उसे छोड कर अन्यत्र नहीं जाता और उसकी प्रत्येक इच्छाको पूर्ण कर देता है वह 'स्वाधीन पतिका' कहलाती है। (५)

२ प्रियतम के आगमन को निश्चित समझकर जो अपने शरीरको सुसज्जित करती है वह 'वासकसजा' नायिका है। (६)

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

चहचही चाँदनी चँदोवा चन्द्र चन्द्रिका सी,
तासये फराक फली फरस जराके हैं।
तापे गोल गिरदा पे छिर के सुगन्ध भर,
तापे बिछवाए सेज फूलन फलाके हैं॥
चहल पहल पौरि 'गोकुल' महल माँहि,
आवे एक जावे गुनी गावे गान नीके हैं।
ललित ललाम घनस्याम के मिलन काम,
साम ही से धूम धाम धाम राधा जी के हैं॥९६॥

टीका—साम ही ते धूम धाम याते मोधा वासकसज्जा ॥९५॥

(अभिसारिका[1])

पियहि बुलावे या निज जावे।
अभिसारिका तीनि विधि भावे॥९७॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

लागि है देह मे दीह निदाघ दिवाकर की करि ताहि जरावे।
कारी निसा उजियारी करें मग चोक के चोच चकोर चलावे॥
जोन्ह की जामिनि में वह कामिनि गोकुल आवन जाहिन भावे।
ऊतरु दीजे न कीजे बिलम्ब कहौ केहि भाँति इहाँ वह आवे॥९८॥

टीका—इहाँ कौन भाँति तें वह आवें ताते तुमही चलो ॥९८॥

चहचही = चमकती हुई। चँदोवा = वितान। फराक = दूर दूर तक। फरस = फर्श। गिरदा = घेरा। पोर = ड्योढ़ी ॥९६॥

निदाघ = गर्मी।

कारके = आँगन के। निज जान = मेरी समझ से। चामाकर = सुवर्ण ॥१॥

१—काम के वशीभूत होकर रतितृप्ति के लिए जो प्रियतम को अपने पास बुलाती है या स्वयं उसके पास जाती है वह 'अभिसारिका' नायिका कहलाती है।

कवि—संभु

सोवै लगे घर के बगर के केवार खुले,
बीती निज जान जुग जाम जुग जामिनी।
चुप चाप चोरा चोरी चौंकत चकत चित,
चली हित पास चित चाह भरी भामिनी॥
पैठत सँकेत के निकेत 'सभु' सोभा देखि,
ऐसी बन बीथिनि बिराजि रही कामिनी।
चामीकर चोर जानै चपलता भोर जानै,
चाँदनी चकोर जानै चोर जानै दामिनी॥९९॥

टीका—चोर जानै चामीकर कहै सोना होय॥९९॥

(शुक्लाभिसारिका[1])

कवि—रघुनाथ

सौरभ सकल ढार सुमन ते गूँथे बार,
भूषन मनिनवार माँग मुकुता भई।
हीरन के हीरे हार चदन चढाये चारु,
सुर सरिता के ढार सुर सरिता रई॥
कवि 'रघुनाथ' बस करिबे को चली बाल,
मुख की मरीची जाल दिसि मढि कै लई।
चाव चढ्यो चखन चकोरन के चकाचौंधि,
चापि गयो चद चटकीली चाँदनी भई॥१००॥

टीका—ऐसो प्रकाश मुख को भयो की चद्रमा की चाँदनी छवि गई॥१००॥

मनिनवार = मणियोवाले। हीरे = हृदय में। सुर सरिता = आकाशगङ्गा। मरीचि जाल = किरणो का समूह। मढिकै = आवेष्टित कर॥१००॥

१—शुक्लपक्ष में और श्वेत वस्त्रों से अभिसार करनेवाली नायिका शुक्लाभिसारिका तथा कृष्ण पक्ष में और कृष्ण वस्त्रों से आवृत नायिका कृष्णाभिसारिका कहलाती है।

(कृष्णाभिसारिका)

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

पावस अमावस की रैनि अंधियारी अति,
स्याम के सिंगार स्यामा सिगरो अनन्द है।
नीलमनि भूषन बिरचि 'बृज' अंग अंग,
सारी कारी घूँघट में मुख सुख कन्द है॥
पौन के झकोर ते उघारि गयो सीस पट,
आभा अभिराम फैली आनन अमन्द है।
चहके चकोर मोर चके चहुँधा के चोर,
मानो मेघ मध्य ते निकसि आयो चन्द है॥१०१॥

टीका—मेघ कहे घन के मंडल ते चन्द्रमा निकसा॥१०१॥

कवि—मकरंद

काजर सी रंगी रैनि कारी सारी अंगनि में,
चली मृगनैनी लखि अति ही अथाहनी।
कवि 'मकरंद' जागे चुहुल चुरैल कर,
चमकै अकेली गैल ज्यों चिराक चाहिनी।
दसहूँ दिसान घन गरजि निसान उठे,
बोलत मसान बीर लुजक निलाहिनी।
मनिवारे सांपन के पोवड़े जड़ाऊ जड़े,
सोहत है जाके अभिसार हूँ में साहिनी॥१०२॥

टीका—मनिवारे कहे मनिधर सांप के पांवड़े कहे बिछौना बिछे मग कहे पथ में॥१०२॥

सिगरो = सम्पूर्ण। चके = चकित हुए। चहुँधा = चारों ओर॥१०१॥

अथाहनी = अगाध। चुहुल = हँसी, मखौल। निसान = रणसिंघा, पाँवड़े = उपानह, जूते॥१०२॥

(दिवाभिसारिका)

कवि—पद्माकर

दिन के केवार खोलि कीन्हीं अभिसार पै न,
जानि परी कछू कहाँ जात चली छल सी।
कहै 'पद्माकर' न नाकरी सिकारै जाहि,
काँकरी पगन लागे पंकज के दल सी॥
कामद सो कानन कपूर ऐसी धूरि लागै,
परसे पहार नदी लागति है नल सी।
घाम चाँदनी सो लागै चंदन सो लगत रवि,
मग मखतूल सो मही हूँ मखमल सी॥१०३॥

टीका—ऐसी काम ते उनमत्त है की घाम चाँदनी लागत याते प्रौढ़ा॥१०३

(प्रवत्स्यत्पतिका[1])

कवि—वंशीधर

कुटिल अक्रूर क्रूर बैरी काहू जनम को,
चेटक सो लाके सिर लैकै ब्रज भूरि गो।
व्याकुल बिहाल बाल 'बंसीधर' लाल बिन्दु,
मानिलौ है दीन खीन प्रेम रस भूरि गो।
चरन उठाइ चितवत ऊँचे धाम चढ़ि,
चिन्ता सो चकित भई चैन ऐन चूरिगो।
बार बार कहत बिसूरि जल नैन पूरि,
धूरि न उड़ात आली अब रथ दूरिगो॥१०४॥

टीका—धूरि नहीं देखि परै है अब दूरिगै॥१०४॥

मखतूल=काला कोमल रेशम॥१०३॥

अक्रूर=एक यदुवंशी, जिसे कंस ने कृष्णको मथुरा लाने के लिये भेजा था। चेटक=इन्द्रजाल विद्या। भूरिगो=मुड़ गया। झूरिगो=सूख गया। चैन ऐन चूरिगो=आनन्द का प्रासाद ढह गया। बिसूरि=स्मरण करके॥१०४॥

१—जिस नायिका का नायक शीघ्र ही विदेश को जानेवाला है अर्थात् शीघ्र ही होनेवाले नायक वियोग से जो अभी से व्याकुल है वह 'प्रवत्स्यत्पतिका' नायिका है।

कवि—पजनेस

भोर कठोर हियो करि कै तिन सौंपी बिदा भो बिदेस फेईछे ।
बागरा गाल कहै 'पजनेस' इठे रात के तकरी ज्यों निराछे ॥
काहर ताको रवादिल बाल को खैंचे लगो मन कूबलो भाछे ।
बालखिला को गिला करिके हरि आगे चले प परे पग पाछे ॥१०५॥
टीका- पाग पीछे ही परत आगे नहीं रहि जात प्रेमाधिक्यते ॥१०५॥

(आगतपतिका)

"जो आवै परदेस ते पीतम"

कवि—गोकुल प्रसाद 'ब्रज'

ब्रज आवन को मनभावन भौन मुखागर धावन बोलि पठाई,
वह आय सबै गुर लोगन को बतलान लग्यो हरि की कुशलाई ।

ईछे = इच्छा से । तकरी = कुलटा बुरे आचरण की स्त्री । निराछे = देखता है । बालखिला = पुराणानुसार ऋषियों का एक समूह जिसका प्रत्येक ऋषि अँगूठे के बराबर माना गया है । गिला = उलाहना ॥१०५॥

मुखागर = सामने ॥१०६॥

१—जिस विरहिणी का नायक परदेश से आ गया हो या शीघ्र आ रहा हो वह 'आगतपतिका' नायिका है ।

[यहाँ पर प्रकृत ग्रन्थकार का मत आलोच्य है, "आगनायिका वर्णन" शीर्षक देकर इन्होंने सभी आचार्यों में इन आठ भेदों के अन्दर स्वीकृत 'खण्डिता' नामक नायिका भेद का न तो लक्षण दिया है और न उदाहरण, किन्तु कुछ ही आचार्यों द्वारा माने गये 'प्रवत्स्यत्पतिका' एवं किसी अप्रसिद्ध आचार्य द्वारा कहे गये 'आगतपतिका' भेदों को लेकर आठ के स्थान पर ९ भेद कर दिये गये हैं, इसमें ग्रन्थकार का क्या तात्पर्य है इसे सहृदय विद्वज्जन ही जानें । हम यहाँ पाठकों की सुविधा के लिये 'खण्डिता' नायिका का लक्षण और उदाहरण दे रहे हैं—

'खण्डिता' वह नायिका है जिसका पति रात्रि में उसे छोड़कर अन्य नायिका से रति क्रिया करता है और प्रातःकाल उसके संयोगचिह्नों से युक्त ही प्रकृत नायिका के पास आता है । जैसे—

बाल ! कहा लाली भई, लोयन कोयन माहिं ।
लाल ! तिहारे दृगन की, परी दृगन में छाँहि ॥

परदेश को बेस सदेस कह्यौ सुभ साइति जाहि लला ठहराई ।
सुनिबे को चली लिय बात भली कछु दूरि गई फिरि क्यों फिरि आई ॥१०६॥

टीका—कछु दूरि गई कामते जब लाज आयो तब फिरि आई ॥१०६॥

कवि—मुकुंद

कर की कर चारु चुरी करकी करकी लरकी किन सुदरि की ।
दरकी कुच कचु तनी तरकी तरकी लगे ऑख मनो सर की ॥
सरकी सिर सारी सुबेसर की सरकी न 'मुकुद' मनोहर की ।
हरकी अति ओप सुधासर की सरकी छबि सुभ्र सुधाकर की १०७॥

टीका— सुधासर कहै अमृत के ताल सर की छवि भागि गई, छवि सुधा कर कहै च द्रमा के ॥१०७॥

कवि—शशिनाथ

गाइहौ मगल चारु घने सखि आवत ही तन ताप बुझाइहौ ।
आरहौं पाइ गुलाबन सो कमखाब के पॉवड़े पुज बिछाइहौ ॥
छाइहौ मदिर बादिले सो 'ससिनाथ जू' फूलन की झार लाइहौ ।
लाइहौ सोतिन के उर साल जबै ह॒ँसि लाल को कठ लगाइहौं॥१०८॥

टीका—लाइहो सौतिन के उर शाल कहै वियोग करोगी ॥१०८॥

कवि—संतन

कालिह के साँझहि ते सजनी हौं खड़ी दुचिते अँसुवान बहाऊँ ।
जो अबकी अपनी इन आँखिन 'सतन' प्यारे को देखन पाऊँ ॥

करकी = कड़क गई । करकी = दाना । लर = लड़ हार । दरकी = फट गई । कचु = कचुकी, चोली । तरकी = तड़क गई । तरकी = एक विशेष तृण । सर = तालाब । बेसर = नासिका का आभूषण । हरकी = फीकी, हलकी । ओप = चमक । सुधासर = अमृत का तड़ाग । सरकी = खिसक गई ॥१०७॥

पाँवड़े = खड़ॉऊ या जूते । बादिले = कामदानी के तार से बना वस्त्र । साल = छिद्र ॥१०८॥

दुचिते = अनमनी । रागिनी = अनुरागवती । पागहि = पैर पकड़कर, पगड़ी ॥१०९॥

आजु तो नाहर सो घर आइके चलि गयो सखि होत पराके ।
[illegible] ॥१०९॥

टीका—[illegible] ॥१०९॥

कवि—प्रवीन राय

कुरकुट कोटि कोटि कोठरी निवारि राखौं,
चुन दै चिरैयनि को मूँदि राखौं जलियौ ।
सारंग में सारंग मिलाऊ हो 'प्रवीन राय'
सारंग दै सारंग की जोति करौं थलियौ ॥
तारापति तुम सो कहत कर जोरि जोरि,
भोर मत कीजियो सरोज मुद कलियो ।
मोहि मिलो इन्द्रजीत धीरज नरिन्द्र राज ।
एहो आजु चन्द नेकु मंद गति चलियो ॥११०॥

टीका—हे चन्द्र आज मंद चलो क्यों कि राति अधिक होय ॥११०॥

॥ इति नायिका ॥

(अथ नायक)

पति उपपति वैसिक निज परतिय । वेश्या रत यह रीति समुझि जिय ॥

(पति[1])

'विधि सो ब्याहै है पति नायक'

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

सिर मौर मनोहर पाग रँगी अँग बागो बनी कटि मैं पटुको री ।
वर मंडप मानिक कुंभ धरे हरि भाँवरि घूमत भावतो री ॥

१—शास्त्र एवं परम्परानुसार जिस पुरुष के साथ स्त्री का विवाह होता है, वह पुरुष उस स्त्री का पति कहलाता है ।

कुरकुट = घास फूस । चून दै = चारा देकर । जलियौं = जालों में । सारंग = हाथ । सारंग = केश । सारंग = भूमि, समुद्र । थलियौं = स्थल । तारापति = चन्द्रमा । मुद = विकास ॥११०॥

'बृज' मंजुल माँग में देन के हेत लिये कर सेंदुर पक भयो री।
अरबिन्द से नैन गुबिन्द के है अवलोकि अली बृषभानु किसोरी ॥११२॥

टीका—अरबिंद ते नेन भये क्यों बृपरासि भानु कहै सूर्य का देखि ११२॥

(उपपति)

कवि—पूषी

बेनी मृगमद की झुकन मृग मद की,
शरद कोकनद की सु शोभा रद करी है।
फूलन के हार हार हिये किये है बिहार,
'पूषी' ताहू की बिहार कहाँ नाहिं परी है॥
अतरस भीनी झीनी कंचुकी कुचन पर,
रचना रची हूँ रची बीरी मुख भरी है।
जात बन छरी जिन मेरी मति छरी सोभा,
सोन केसी छरी लक छरी करि छरी है॥११३॥

टीका—बनछरी कहै बनकी देखी हाय सोन कहै कञ्चन की छरी है, जिन मेरे मति का छली है ॥११३॥

कवि—सदानन्द

केसर कलित पचतोरिया ललित लाल,
लहँगा लहत लक लोने पर घेरदार।
जगमगै जडित जड़ाऊ पग पायजेब,
पंकज प्रभानि प्रभा पाँवडे गडेरदार॥
'सदानन्द' सुन्दर सघन घुँघरारे कच,
कंचुकी पै डारे अहि कारे मानो फेरदार।
ऐ उदार ऐनानि मरोरदार तोर दार,
करत कजाकी कजरारे नैन कोरदार ॥११४॥

टीका—ऐंडदार ऐनक है मृगा कैसे ॥११४॥

मौर = मुकुट। बागे = वस्त्र। पट्टुको = चादर ॥११२॥
शरद कोकनद = शरद कालीन लाल कमल। रद = दाँत ॥११३॥
१—दूसरे की स्त्री से प्रेम करनेवाला 'उपपति' कहलाता है।

(वैसिक)

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

सोन सलाक सी राजत सुन्दरि कञ्चन कुंभ उरोज तने हैं।
दाँत लसै मुकुतावलि से 'बृज' ओठ बिराजत बिद्रुम से हैं॥
हीरा से हौंस लसै मनि नील के हार से हार बिराजे घने हैं।
बाल बिलोकि बिचारत हौं इतने धन लै कितने धन दै हैं॥११५॥

टीका—इतने धन ले के कितनो दै है॥११५॥

(प्रोषित पति)

कवि—मुकुन्दलाल

प्रानजोत जोगी मदनागिसे मयंक मुखी,
प्रानघाती पापी कोन फूली है जुही जुही।
भृङ्गी गन गान कैधौं मैन कैधों मैन नान,
दच्छिन पवन कैधौं कोकिला कुही कुही॥
मधु की मयंक के 'मुकुन्दलाल' तरुनाई,
रजनी निगोड़ी रंग रंगन छुही छुही।
जौलौं परदेशी प्यारो मन में बिचार करैं,
तौलौं तूती प्रगट पुकारी रे! तुही! तुही!॥११६॥

टीका—तौ लौं तूती कहे पन्छी पुकारो तुही तुही अर्थ नायक रागरूपी इमही को तुही तुही कहा॥११६॥

इति दिगविजय भूषणे नायिका नायकवर्णन नाम सप्तदश प्रकाशः॥

पचतोरिया=एक प्रकारका महीन कपड़ा। लंक लोने=सुन्दर कमर। घेरदार=घुमाववाला। पायजेब=नूपुर। पाँवड़े=जूते। कजाकी=बटमारी, लुटेरापन। कोरदार=कोने वाले॥११४॥

मनिमोल=मालूम॥११५॥

दच्छिन पवन=मलयवायु। निगोड़ा=नीच, दुष्ट। तूती=पक्षी विशेष॥११६॥

१—वेश्या से प्रेम करनेवाला नायक "वैशिक" कहलाता है।

२—जो नायिका को छोड़कर परदेश में चला जाता है और वहाँ उसके विरहमें व्याकुल रहता है वह 'प्रोषित पति' है।

अष्टादशः प्रकाशः

(कवि प्रौढोक्ति[1])

कवि प्रौढोक्ति ते होत है, रचना बिबिधि प्रकार ।
ताते बरनन करत हौं, उचित ग्रन्थ निरधार ॥१॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

छप्पे—सूबा पावन अवध, ताहि मे पहिला पाए ।
फिरि वह बाचक लिए होत पुनरुक्त न लाए ॥
आदि एक में गनो अत मे गिनती नौ लौ ।
तिन दूनौं के मध्य अक सब लघु करि तौ लौ ॥
यह समुझि आगरे की सभा लाट जबै तकमा दिए ।
महाराज दिग्विजय सिह के नव नम्बर याते किए ॥२॥

टीका—अवध मे पहिला नम्बर जो यहाँ वही होय तौ पुनरुक्त होय । याते पहिला म्बर किये, आदि म एक और अ त में नौ लै गिनती है नव अरु एक के मध्य अङ्क सब लघु है याते अवध मे पहिला इहौ नवाँ किए ॥२॥

१—कवि अपनी विशेष प्रतिभा से कविता में कुछ विशेष चमत्कार ला देता है जो कविप्रौढोक्ति कहलाती है, यह चमत्कार शब्दगत ही होता है अर्थगत नहीं । इसीलिए इसे शब्दशक्तिमूलक ध्वनि का भेद माना गया है । इसमे वस्तु से वस्तु, वस्तु से अलकार, अलकार से वस्तु या अलकार से अलकार की प्रतीति होती है अत यह चित्रकाव्य से भिन्न है ।

(नौ प्रशंसा)

छप्पै—नवे खण्ड मे नरपति नवे पत नवे व्याकरन ।
नवे नाथ नव रतन, भक्ति नवधा अग तारन ॥
नवे निद्धि रस नवम नव वाचक नवीन भनि ।
नव पहाड़ के आदि अत म दास नव गनि ॥
'ब्रज' सभा आगरे आम मे, जानि लाद रान नौ लिय ।
महाराज दिग्विजे सिंह के नव नाम याते लिये ॥२॥

टीका—नव खण्ड है नव व्याकरण नव नाथ भनि नव निद्धि नव रस नव नव कहै नवीन वाचक है इत्यादि जानो ॥२॥

१—

६ खण्ड—इलावृत, भद्राश्व, हरि, केतुमाल, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, किंपुरुष और भरत ।

६ ग्रह—सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु ।

६ व्याकरण—इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, आपिशलि, शाकटायन, पाणिनि, अमर, जैनेन्द्र ।

६ नाथ—नागार्जुन, जड़भरत, हरिश्चन्द्र, सत्यनाथ, भीमनाथ, गोरक्षनाथ चर्पट, जलधर और मलयार्जुन ।

६ रत्न—माणिक्य, मुक्ता, मूँगा, पन्ना, पुखराज, हीरा, नीलम, वैडूर्य और गोमेद ।

नवधाभक्ति—श्रवण, मनन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन ।

६ निधि—महापद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और खर्व ।

६ रस—शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, अद्भुत, वीभत्स और शान्त । नौ के प्रत्येक पहाड़े में जो अंक आते है उन्हें परस्पर जोड़ा जाय तो नौ ही होता है जैसे १८ में ८ + १ = ६, २७ में २ + ७ = ६ आदि ।

(के सी एस आई षट अक्षर बरनन)

छप्पै—केहरि सो बल किये, घेरि बागी करि मारे।
सील सीव कै सिन्धु सिकारी स्वच्छ बिचारे।
एक स्वामि को सेइ समर मै जै जस पाये।
आदिल आदर अनी इसाई लोग बचाये॥
यह बात बूझि बिकटोरिया हेत छ इव अक्षर बिखे।
महाराज दिगविजय सिंह को के सी एस आई लिखे ॥४॥

टीका—के० सी० एस० आई० यह षट बरन खिताब के केहरि आदि पद ते जानो केहरि, सील एक समर आदिल ईसाई षट् पदन में आदि के अक्षर लिए के० सी० एस० आई० भयो ॥४॥

(कचेहरीके चारि वर्णन)

छप्पै—कलम कागदन कलित, काम काजी कोविद नर।
चेत चाकरे चतुर चोपदारन आसा कर॥
हरिकारे हरकार हेत हाकिम हुकुम बर।
रीति नीति की राखि रिआया मन्त्री मति धर॥
कहि 'गोकुल' राजत यह जहाँ कहत कचेहरी ताहि को।
लहि भूप दिग्विजय सिंह सब राजकाज सुभ जाहि को ॥५॥

टीका—कचेहरी चारिपद कलम चेतक हरिकारे रीतिनीति कलम आदि चारिपदन के अक्षर मिलाए ते कचेहरी भयो ॥५॥

(दसांग काव्य वर्णन)

दण्डक—सब्द देह पानि पग छंद व्यग्य जीव मन
मुख व्यञ्जन सो धुनि बानी निकसत है।
लक्षना द्विबिधि अच्छ हाव भाव है कटाक्ष,
श्रवन विभाव गुन गुनै सरसत है॥
नासिका विशद वृत्ति रीति कुल कानि बानि,
भूपननि भूषन बसन बिलसत है।
कबिता दसाग बर बनिता को 'कवि पति—
बृज' पुंज पुन्य ही ते दाऊ दरसत है ॥६॥

टीका—शब्द छन्द व्यङ्ग आदि पदनते दश अंग काव्य कहे ॥६॥

"पुनः"

सवैया- 'शुभ शब्द सुदेह है दीपति अर्थ सबै अंग रीति विमोहत है ॥
रस मंजुल है मन व्यंग्य सजीव विलास प्रिया गुन सोहत है ॥
'ब्रज' वृत्ति वय क्रम भूषन भूषन एक न दूषन जोहत है ।
कविता सम स्वच्छ बनी बनिता कवि नायक लोगन मोहत है ॥

टीका —कविता सम नायिका कवि नायक को मोहत गात [illegible] ॥७॥

(गनिका श्लेष मे दसांग काव्य)

दण्डक- ²सबदै अरथ वित पति कोस ते निकारि,
पद ते परम धुनि कढ़ते रहतु है ।
मोहै मन लक्ष्य सुभ लक्षनै अनूप रीति,
नेम महाजन ही की जामे निबहतु है ॥

१—कविता और वनिता के १० अङ्गों की समता इस प्रकार है—

शब्द = देह । अर्थ = कान्ति । रीति (गौड़ी, पाञ्चाली, वैदर्भी, लाटी) = कर चरणादि अवयव । रस = मन । व्यंजना = आत्मा । गुण, ओज, प्रसाद माधुर्य = विलास । वृत्ति = उपनागरिका आदि । वयः क्रम = शैशव, यौवन, वार्द्धक्य । अलंकार = आभरण । दोष = अवगुण । छठे पद्य की अपेक्षा यह उपमा अधिक स्पष्ट है ।

२—इस पद्य के दोनों अर्थ इस प्रकार हैं—(१—कविता, २—वनिता)

सबदै = शब्द, सब देकर । अरथ = अर्थ, धन । वितपति = व्युत्पत्ति, धनी । कोश = अमरकोष आदि पर्यायबोधक ग्रन्थ, खजाना । पद = अक्षर समूह, पैर । धुनि = ध्वनि, शब्द । शुभ लक्षणै = रूढ़ि आदि लक्षणा, अच्छे लक्षण (चिह्न) । अनूपरीति = अनुपम कोमलादि, सुन्दर ढंग । नेम = नियम गुनगन = माधुर्य ओज आदि, दया दाक्षिण्यादि । भूषण = उपमादि अलंकार, नूपुरादि आभरण । छन्द = वसन्ततिलकादि । हावभाव = चेष्टाएँ । और भाव नाएँ । भारती = सरस्वती, सौन्दर्य । त्रिविधकविता = अभिधा—लक्षणा व्यञ्जनात्मिका । त्रिविध वनिता = स्वीया—परकीया—वेश्या ॥८॥

गुन गन भूषन बिभूषि जल देशकाल,
छंद बंद हाव अनुभाव उमहतु हैं ।
भारती की लाड़िली है कविता त्रिविध भाँति,
बनिता की जैसी तीनि जाति दरसतु हैं ।।८।।

टीका—सादे अरथ शब्द अर्थ कोशतें निकारिपदन म धुनि होय और लक्षना होय रीति चारि भाँति महाजन कहे जो बड़े लोग कहे होइ इत्यादि त काव्य होत है । गनिका पक्षे—सबदे अरथ कहे सब धन देत है कोस कहे खजाने ते निकारि जब वह नृत्य मर्मे में पदतें धुनि नूपुर की करति है सोहै मन लक्ष कहै लाखन को मन मोहत है नेम गहत है याते नेमा गनिका धन लै अवध बदत महाजन जो धनवन्त लोग है याही भाँति और जानो ।।८।।

यहि कबित्त ते स्वकीया परकीया गनिका निकसै है ।।

(दूषन देन हारे पर)

सवैया—पतिआत न काहुहि की परतीति चके से रहैं सबही ते निते ।
चलि जात भले ढिग दीठ भले अति चंचल चारिहु वोर चिते ।
'बृज' बोलत को फिरि को फिरि को हम ऐसन को जगजीव जिते ।
उठि भोर सो दोष अपावन हेरत काग से है कवि क्रूर किते ।।९।।

टीका—बोलत है को अर्थ हमारे अस को ।।९।।

मति मंजुल माली है पुंज कवीश लता कबिता को सँवारत हैं ।
बर कोबिद हैं रखवार बली ढिग मूढ़ मतंग निवारत हैं ।।
'बृज' बाग बिहारन हार सो सज्जन भूषन फूल पियारत हैं ।
सम सूकर सो सठ दुर्जन हैं जिन दूषन नेक निहारत हैं ।।१०।।

टीका—जैसे सूकर बाग में जाय तौ नर्कहि हेरे तैसे दुर्जन दोष हेरैं है ।।१०।।

गूढ़ अगूढ़ न जानत मूढ़ बतावत हैं जग में कबि एकै ।
दूषन के नहि आवत भूषन दोष लगावत औरै अनेकै ।।
आपन भूल न नेक बिचारत हैं पर निन्दक जाहि बिबेकैं ।
ऐसे हैं चूतिया चेत नहीं चित न्यूतर चोट लगे सिर सेकै ।।११।।

टीका—ऐसे हैं की जहाँ दूषन होय तहाँ तौ जानते नाहीं ।।११।।

(झूठे पर)

दण्डक झूठो देह धारि हरि छले बलि बावन ह्वै,
भए प्रतिहार द्वार त्यागी प्रभुताई है ।
झूठो जो स्वयम्बर देखायो हरि नारद को,
साप अंगीकार करि नरतन पाई है ॥
झूठई निदरि 'ब्रज' वेद को विधान जग,
भए बौध रूप जहाँ सुख न देखाई है ।
झूठे की झुठाई आदि मीठी है अमी सो अति,
अन्त मे जहर सो कहर करुआई है ॥१२॥
टीका—झूठ तौ पहिले सुधा सम पाछे जहर ते अधिक ॥१२॥

कवि—दास

जुगनू गन भानु के आगे भली बिधि आपने जोतिन को गुन गैहैं ।
'दास' जबै तुक जोरि निहारि कबिन्द उदारन की सरि पैहैं ॥
माछी मसा जो खगाधिप सो उड़िबे की बड़ी बड़ी बात चलैहैं ।
तौ करतारहु और कुंभार ते एक बिना झगरो बनि ऐहैं ॥१३॥
टीका—करतार कुम्हार ते हलुक होय है ॥१३॥

कवि—शिव कवि

बैठी सभा कहुँ ऊँटन की 'शिव' भाँति अनेक किए है उछाहैं ।
आइ गए गदहा तित हैं गुनवन्तन की गहि के चित चाहैं ॥
रेंकि के राग कियो तहँ ही गुनि रीझि मिले करि के चहँ बाहैं ।
ये उनके तब डील सराहै हैं वै उनके मिलि बोल सराहैं ॥१४॥
टीका—ऊँट गदहाके अ योक्ति बूझौ सठन के सराहना ॥१४॥

(सूम पर)

कवि—अज्ञात

दण्डक-दानी कोऊ नाहिनै गुलाब दानी पीकदानी,
गोंददानी घनी इनहीं में शोभा लहे हैं ।

खगाधिप = गरुड़ ॥१३॥

मानत गुनी को गुनही मे परगट देखो,
याते गुनीजन मन समाधान गहे है ॥
हयदान हेमदान गजदान भूमिदान
सुकबि सुनाए जो पुरानन में कहे हैं ।
अब तौ कलमदान जुरदान जमदान,
पानदान खानदान कहिबे को रहे है ॥१५॥

टीका—सुगम ॥१५॥

कवि—ठाकुर

ऐरी मेरी बीर कन्त कौन के कमान जाहि,
राजन के मीत पै न चलत उपाउरी ।
तन दुति छीन भई मनवा मलीन भई,
मनसा बिकल कल 'करत' न बाउरी ॥
'ठाकुर' कहत या जहान पै जरब फैली,
भई मति मैली कछु जतन बताउरी ।
खैबे काज सौह राखी कीबे काज पाप राखी,
लीबे काज अपजस दीबे काज लाउरी ॥१६॥

टीका—खैबे काज सौह अर्थ कसम खात है खाइके देवे मे ॥१६॥

तथा—

सेवक सिपाही हम उन रजपूतन के,
दान किरपान कबहूँ न मन मुरके ।
नीति देनवारे है मही मैं महिपालन को,
होकर त्रिसुद्ध है कहैया बात फुर के ॥
'ठाकुर' कहत हम बैरी बेवकूफन के,
जालिम दमाद है अदेनिया ससुर के ।
चोजन के चोज रस मोजन के पातसाह,
ठाकुर कहावत पै चाकर चतुर के ॥१७॥

टीका—चाकर चतुर के पै हम ठाकुर कहाते अर्थ बड़े आदमी ॥१७॥

जरब = हानि, चोट ॥ १६॥

मुरके = लौटता है । त्रिसुद्ध = मनसा वाचा कर्मणा पवित्र । फुर = स्पष्ट ।
चोज = हँसी, मखौल ॥१७॥

तथा—

जो पै इन द्रोहिन के दौलति न होती तौ,
सुपथिन के पोथ इहाँ भूलि हू न परते।
भागवान भागन के जानि कै अधीन होत,
या पै एक मीनकला कोटिन बिगारते ॥
'ठाकुर' कहत गुनगान के बिभाव कर,
आपनी सभा में बैठि कौन को निदरते।
हाय जौ सुजानन के गरज न होती तौ,
अजान ए अभागे अभिमान का पै करते ॥१८॥

टीका—जौ सुजान लोगन को गरज न होती तौ अजान कहै मूर्ख अभिमान न करते ॥१८॥

कवि— दूलह

मानै सनमानै तेई मानै सनमानै सन
मानै सनमानै सनमान पाइयतु है।
कहै 'कवि दूलह' अजानै अपमानै अप—
मान सो सदन तिनही कै छाइयतु है ॥
जानत हैं जेऊ तेऊ जात हैं बिराने द्वार,
जानि बूझे भूले तिन को सुनाइयतु है।
काम बस परे कोऊ गहत गरूर तौ वा,
आपनो जरूर जाजरूर जाइयतु है ॥१९॥

टीका—आपने हेत जाइबो जरूर है ॥१९॥

कवि—बेनी

गोरे गोरे भुज दृढ दीरघ बिसाल नैन,
बदन रसाल जाके सुषमा बखाने हैं।
'बेनी कवि' कहै जाके अजब जलूस सोहैं,
हाजिर हजूर पूर पहुमी खजाने हैं।

निदरते = उपेक्षा या तिरस्कार करते ॥१८॥

ऐसे नरनाहर को देखिबे को चित्त भयो,
तातें कबि आस पास आनि ठहराने है।
मै तो मरदाने जानि जस के कबित्त कीन्हें,
द्वारे चोपदार कहै साहेब जनाने है ॥२०॥

टीका—मैं मरद जानि कवित्त कियो ॥२०॥

कवि—सुखदेव

सवैया-तेरे चलाये चल्यो घर ते डरप्यो नहि नीर समीर औ धूपै।
पाल्यो मैं तोहि हिए हित कै हठ तेरी सों माँग्यौ हहा करि भूपै ॥
ऐसे सखा 'सुखदेव' सुलोभ है तोर सनेह तें सोरि सरूपै।
मेरी बिदाई के बार फटीक ह्वै जाइ मिल्यौ नृप सिंह अनूपै ॥२१॥

टीका—हे लाभ मेरे बिदाई के समै तू नृपति को लगा अर्थ यह की अब उनके लाभ लगा कुछ देत नहीं ॥२१॥

कवि—श्रीपति

दण्डक-उर्द के पचाइबे को हींग अरु सोंठि जैसे,
केरा के पचाइबे को घिव निरधार है।
गोरस पचाइबे को सरसो प्रबल दण्ड,
आम के पचाइबे को नीबू को अचार है ॥
'श्रीपति' कहत परधन के पचाइबे को,
कानन छुआय हाथ कहिबो नकार है।
आजु के जमाने बीच राजा राउ सबै जानै,
रीझि के पचाइबे को वाह वा डकार है ॥२२॥

टीका—वाह है वा डकार आजु जमाने कहे समै में ॥२२॥

कवि—भगवंत

सवैया-कट्टर ताज लो भिक्षुक लाज लो बीन अवाज लो लावरदेवा।
पूस के मास मे फूस को तापनो भूत को जापनो झाँझरी खेवा ॥

फटीक = निर्लज्ज ॥२१॥
निरधार है = कहा गया है ॥२२॥

है 'भगि रत' इते नहिं काम को राम के नाम को छोहि न लेवा।
साधु को लूटनो धर्म को छूटनो भूम को भूटनो सूम की सेवा ॥२३॥

टीका—साधु को लूटनो सूम को सेवा है ॥२३॥

(झूठे पर)

कवि—प्रधान

आजु जो कहै सो आठ मास लौं न लागे ठीक,
कालिह जो कहै तो मास सोरह चलावहीं।
पाँच दिन कहै पाँच बरष बिताय देहिं,
पाँच जो कहैं तो लै पचास पहुँचावहीं॥
भाषत 'प्रधान' जो वै ताहू पै न त्यागै द्वार,
अपना लजात फेरि वाहू को लजावहीं।
ऐसे सत्यभाषी सरदार है देखैया जहाँ,
काहे को पवैया तहाँ जीवन लौ पावहीं ॥२४॥

टीका—सुगम ॥२४॥

(सुकवि कुकवि पर)

कवि—देवी दास

दण्डक—सुन्दर सुघर मृदु आखर मधुर तर,
मनोहर मोदकर गुनन समेत है।
काहू कबिराज की अवाज है अमृत रूप,
जामे भरी भारती कलोल मोल लेत है।
ताहि सुनि कर कहै कुतो सूर समझहीन,
निज दोष देवे माँह और को सचेत है।
'देवी दास' जैसी ढीली चोली देखि सूखी नारि,
हिय को न खोजै दोस दरजी को देत है ॥२५॥

टीका—ढीली चोली देखि सूखी नारितैसे मूरख समझते नहीं कवि को दोष देत ॥२५॥

झाँझरी खेवा = वह नाव जिसके पेंदे में छेद हो। घूटनो = निगलना ॥२३॥
पवैया = पानेवाला, याचक ॥२४॥

(लोकोक्ति)

ईंट को बदन नीम को चदन चेरी को नदन बाम को घूसा।
माते की आन डफाली की तान औ गूँगे को ज्ञान कपूत को रूसा॥
रंक को रीझिबो मौजी की खीझि अजान की प्रीति जुआर को चूसा।
राजा को दूसर छेरी को तीसर रेंड के मूसर खासर खूसा॥२६॥

टीका—ईंट को बदननाम सदुर फाली नाम डफाली॥२६॥

कवि—श्रीपति

(अन्योक्ति)

सारस के नाद कर बाद न सुनत जामै,
नाहक ही बकवाद दादुर महा करैं।
'श्रीपति' सुजान जहाँ खोज न सरोजन की,
फूले न फफूल जाहि चित दै चहा करैं।
बकन की बानी की बिराजत हैं राजधानी,
काई सो कलित पानी हेरत हहा करैं।
घोंघन के जाल जामैं नरई सेवाल ख्याल,
ऐसे पापी ताल को मराल लै कहा करैं॥२७॥

टीका—ऐसे पापी तालरूपी नरके इहाँ गुनी हसका कहा सुख॥२७॥

कवि—शंभु

तेरो कैसो पानी वह बापुरो कहाँ सो ल्यावै,
वाके कीच बीच मेंडु गन के उमाह है।
तो सो बिबुधन की बिराजत समाज अरु,
मेटत मुनी के तँय कलि वारो दाह है।
एरे मानसरवर तोमे जे रहत 'शंभु',
तिनको करत एक तैं ही उतसाह है।
काह पावै अनगनो मुकुता बिशाल कहूँ,
ताल करि सकत मराल कै निबाह है॥२८॥

नन्दन = पति, प्रिय। डफाली = मुसलमान भिखारियों की एक जाति विशेष। रूसा = रूठना॥२६॥

बापुरो—बेचारा, गरीब। मेंडुगन = मेंढकसमूह। उमाह = उमङ्ग, उत्साह। अनगनो = असख्य॥२८॥

टीका—तेरे द्वौ विबुध चेतन की सभा ॥२८॥

कवि—घासीराम

कोरियो चमार चिरी मार को जु यार करि,
प्यार करि सदन सुपच मन भाए हैं।
छिपिया कुम्हार नाऊ दौन के सुदामे तरो,
गीध के अगाऊ ह्वै कै जाय गुन गाए हैं॥
'घासीराम' राजी ह्वै बिदुर घर भाजी खाई,
पाजी भीलनी के बेर जूठे गुह लाए हैं।
कहिए कहाँ लौं कलिकाल के अँदेसे ऐसे,
नीचरंगी ठाकुर ठिकाने होत आये हैं॥२६॥

टीका—आगे ते ठाकुर लोग नीचन पै रीझे हैं॥२६॥

कवि—शिव

जग मे रसीले जे जसीले दयावान लोग,
सेवा श्रम बूझत न काहू को छलत हैं।
दाता ज्ञाता सूर वा सपूत साहसी जे कोऊ,
तिनके बचन कबहूँ न बदलत हैं॥
कहैं 'सिव कवि' गुनवन्तन के तिनहीं सा,
सहज मे सकल मनोरथ फलत हैं।
सूम दगाबाजन सों सुबुक मिजाजन सा,
सीलहीन राजन सों काज न चलत हैं॥३०॥

यथा—

मीन जल बल फाँसीवालन के छल बल,
बैदन के मल बल जानै बैदगोत है।
गायन के गल बल नकली नकल बल,
कोरिन के नल बल पेटहि परोत है॥

सुपच = श्वपच, चाण्डाल। अँदेसे = आशंका ॥२६॥

सुबुक मिजाज = ओछे स्वभाव वाले ॥३०॥

'शिव कवि' सुरन के सुधा को अचल बल,
मुनिन सुथल बल करत उदोत है।
महा महिपालन के दल बल होत अरु,
खल महिपालन के छल बल होत है ॥३१॥

टीका—छलबल सुगम ॥३१॥

यथा—

लछिमी तिहारी एक कृपा के कटाक्ष बिन,
कूर धूरतन के बदन ध्याइबे परे।
झूठे महिपालन के झूठे गुन गाइ गाइ,
बानी जगरानी तासों बैरु ठाइबे परे॥
कहै 'शिव कवि' सूम दाता कै बखानियत,
रन ते बिमुख सूर ठहराइबे परे।
काहू के न धधन के निज पेट धधन के,
दौलति मदधन के ढिग जाइबे परे॥३२॥

टीका—दौलति ते मद अ व है तिनके आधीन होनो ॥३२॥

कवि—अज्ञात

(कवि प्रौढ़ोक्ति)

जघन उघारि बसनन दूरि डारि करि,
रसना उतारि जल भीतर ह्वै जाइए।
सीसी करै काहि अरु अधरनि राग धरै,
दूरि करै कज्जल गरे सो लपटाइए॥

कृषीवाल = किसान, खेतिहर। बैदगोत = वैद्य समुदाय (मलायत्तं बलं पुंसां शुक्रायत्तं तु जीवितम्—प्राणी की शक्ति उसके मल के अधीन रहती है और जीवन वीर्य के अधीन—भाव प्रकाश) गल = जुगाली करना। कोरिन = बुनकर। नल = सूत को भरने की नली। परोत = जुलाहों (कोरियों) का एक औजार जिसपर वे सूत लपेटते हैं। सुथल = पुण्य क्षेत्र। उदोत = प्रकाश ॥३१॥

पति के समीप जब पति के विपरीत लागे,
बहरि न गेरो जल कोलि [illegible]।
वैयाकर्ण मतवारे जानै कहा मतवारे,
वारि जो नपुंसक तौ वारिज न चाहिए ॥२२॥

टीका—व्याकरण के पढ़ैया मतवारे कहा जानै [illegible] जो नपुंसक वारिज न चाहौ ॥२३॥

कवि—गंग

दंडक—आवत हौं चलो सिव सैल ते गिरीस जी ने
मिलो हुतो मोहि जहाँ सागर सगर को।
कविन के रसना की पालकी पै चढ़े जात,
संग सोहैं रावरो प्रताप तेजवर को॥
'कवि गंग' पूछी तुम को हो कित जैहौ उन,
कह्यो मोसा हरि के सनेसा [illegible] को।
जस मेरो नाम मेरो दसौं दिसा काम मेरो,
कहियो सलाम हौं गुलाम बीरबर को ॥३४॥

टीका—कवि के रसना कहे जीभ ताकी पालकी पै [illegible] ॥२४॥

कवि—जैन महम्मद (जैनुद्दीन अहमद)

सवैया—खेत खगी सरदार हजार मैं जूझ गे आपनी फौज ते फूटिके।
दौरिके 'जैन महम्मद' बार दई सिर मे तरवारि जो छूटिके॥
आधो रह्यो धर घोरे धरीक लौं आधो गिरो धरनी पर टूटिके।
मानहु मान गिरीस ते कै रही गौरि गिरी अरधंग ते छूटिके ॥२५॥
टीका—मानो गौरि महादेव के अंग ते छूटि परी ॥२५॥

शिवशैल = कैलास। गिरीशमाने = शिवजी से मानकर ॥२४॥

कवि—रामदास

पूरित बिबिध गुन सार सरिता अनेक,
गुनवान उमगि उमँगि सब धाय कै।
भावगम्य गमक महीपति नदीपति पै,
आवत स्वभाव द्रुत साहस बढाय कै ॥
यद्यपि अनिच्छित अतृप्त गुन आपगा सु,
नृप जलरासि गुन रसपै लोभाय कै ॥
बीचि ब्याज लेत उठि आगे बढि 'रामदास',
आप रूप लेत करि आप मे मिलाय कै ॥३६॥

टीका—गुनी नदी राजा समुद्र बीच लहरी ॥३६॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

(सूम पर)

दडक—बारन के आरथी को बारन मनोरथ कै,
बाजी के मँगैया बाजी आवत निकेत हैं।
गाहक कनक पत्र पावैं न कनक पत्र,
रूप के लेवैआ ते छपाइ रूप लेत हैं ॥
पयसो चहत ताहि पय सो लगावैं बहु,
लोभी कवड़ीन लाभ कोड़ि लाहु लेत है ॥
'गोकुल' बिलोकि सूम मगन बिहीन पट,
माँगै जो बखानि तऊ द्वार पट देत हैं ॥३७॥

टीका—बारन हाथी बारन बरज व बाजि घोडा फिरि आवै। कनकपत्र कचन के बरतन कनकपत्र धतूर के पाता रूप चाँदी रूप स्वरूप पयसो पैसा दोप कौडी बराटिका कौडिला पट दरवाजा पट कपडा ॥३७॥

नदीपति = समुद्र । बीचि ब्याज = तरग के बहाने ॥३६॥

कनकपत्र = सुवर्ण का पत्र, धतूरे का पत्ता। रूप = चाँदी, आकृति। पयसो = पैसा, जल। कवड़ोन = कौड़ी भी नहीं ॥३७॥

(कपड़ा पच्छे)

पगरी सुभग सोहै कटि पटुको बिराजै,
भुज उर माल भाहैं लखि के सयान है।
अधर अमल गुल बदन प्रकास पुञ्ज,
दरसे नैन सुख लहैं आभा अधिकान है॥
'गोकुल' बिलोकि छबि छाजै मारकीन अस,
राजै तनजेब काह कीजिए बखान है।
मिलै बनमाली नाहीं कह्यौ यह आली बात,
बृज की बजार में बजाज की दुकान है॥३८॥

टीका—पगरी पटुका उरमाल अधर गुलबद। नैनसुख। मारकीन। तनजेब यह बजाज की दुकान पर है दूजा अर्थ—री सखी पगरी सिर में सोहत कमर में पटुको गरे माला अधर ओठ गुल कहे फूल जैसा बद। देखि। नैन ते सुख होत है छबि मार कहै काम की नहीं है ऐसी ॥३८॥

आस पास आलिन की अवली बिलोकियत,
सुभग सुगंध मंद बगरै विमल है।
के सकै बखानि छबि प्रफुलित मित्र लखि,
बिकसि लसी है रंग अमित अमल है॥
'गोकुल' बिलोकि बैस यौवन बिलास जाके,
सर में बसत जाहि गति अविचल है।
आली कहै कान्है मिली कहाँ वृषभान लली,
नाहीं आली मे सो कही कोमल कमल है॥३९॥

टीका—आली की अवली कहै श्रेणी आली सखी येऊ कहै भौंरा बार इत्यादि जानिये॥३९॥

छप्पै—दूत दूरदरसीय सैन पतवारि प्रबल गति।
सुंदर खेवनहार नीति मन्त्री न विमल मति॥

केसकै=बालों का। केसकै=कौन समर्थ है। मित्र=सखा, सूर्य, यौवन बिलास=जवानी की शोभा। यौ बनविलास=जो जल का विहार॥३८॥

बरद वान गभीर महाजन लोग बडे नर।
चहुँ खार कटार डाँड परभट लड़ाक कर॥
भरि लगर अबिचल कौल है राज समाज जहान गहि।
'बृज' वारपार सुख भोग वै देश सिधु की लहरि लहि ॥४०॥

टीका—दूत दूर दरसीय सैन पतवारी ॥४०॥

दडक— चारौं दिसि राजन गजन दिगविजय हेत,
चारो दिसि दिग्गज मतग चारि साध्यौ है।
पूरब दछिन देश पच्छिम को जीति आयो,
पूरब बघेल खड बन को उपाध्यौ है॥
सम्बत बरन[४] बिबि[२] खड[९] इन्दु[१] पूस पूर,
भयो भट भेरो जोर जुद्ध करि काँध्यौ है।
भूप दिगविजयसिह सिह के समान गाँसि,
गज पै गजब फाँसि डारि गर बाँध्यौ है॥४१॥

टीका—यह गज जो भफाए गए है सो चारिऊ निशान के दिग्गज चारिऊ दिशि के राजन गजन के जीतिबे को चारि बीर पठै दिए हैं तासो भूप ने सम्वत् १६२४ पूस सुदि १५ को बभायो ॥४१॥

सवैया— बेद पुरान पुरातम लोग सदै जिनके गुन गावत हैं।
आदि न अत अनत महातम अत अनत न पावत हैं॥
'गोकुल' सो अवधेस के धाम चरित्र विचित्र दिखावत हैं।
जाहि के नार ते भे करतार सोई निज नार छिनावत हैं॥४२॥

टीका—जाके नाल ते ब्रह्मा भये सो हरि नार छिनावत॥४२॥

दूरदरसीय=दूरदर्शी, दूर (भविष्य) की बात सोचने वाला। पतवारि=डाँड़े, विश्वासयुक्त। बरदवान=लक्ष्य भेदी बाण। महाजन लोग=श्रेष्ठ व्यक्ति, धनिक समूह ॥४०॥

उपाध्यौ=उद्विग्न कर दिया। "अङ्काना वामतो गतिः" इस नियम के अनुसार इन्दु १, खड ६, बिबि २, वर्ण ४=१६२४ सं०। काँध्यो=भार वहन किया, सम्पूर्ण दायित्व ले लिया। गाँसि=घेर कर ॥४१॥

सारद नारद सेस गनेस सदै जिनको जस जोवत हैं ।
चारिउ आकर जीव जिते हियमांहि हित जिन सोवत हैं ॥
'गोकुल' मोह बिनास ते जासु प्रकासन विश्व जो ज्यावत हैं ।
अवधेश तनै सोइ आइ भए अब दूध पिबे कहँ रोवत हैं ॥४३॥

टीका—दूध के हेत रोवत ॥४३॥

सनकादिक नारद सारद आदिक ध्यान सदा सबही उरधारैं ।
जग जाकर नाम दिवाकर तेज भयानक मोह निसा निरवारैं ॥
कहि 'गोकुल' सो अवतार लिये वर प्रेम के पावन नैन निहारैं ।
मन मोद सों मातु लै गोद तिन्हैं तिन ऊपर राई औ लोन उतारैं ४४

टीका—राई लोन उतारै ॥४४॥

लटकैं घुँघुवारि लटूरी लटैं अनखी छबि भाल में भावत हैं ।
दृग खंजन कंज से आनन में दसनावलि द्वै दरसावत हैं ॥
कहि 'गोकुल' बाघनहा कटि किंकिनि नूपुर सोर मचावत हैं ।
तन झीन झँगा घनस्याम छटा दुति दामिनि को दमकावत हैं ४५॥

टीका—झँगा नाम झुलिया ॥४५॥

सुर सारद सेस खगेस सदै गुन गावत अंत न पावत हैं ।
मुनि मानस जोग समाधि करैं तबहूँ प्रभु रूप न आवत हैं ॥
कहि 'गोकुल' सोई अव्यक्त अनादि धरे नर देह लखावत हैं ।
अवधेस के आँगन में अगना तिन को चलिबोई सिखावत हैं ४६॥

टीका—चलब सिखावत ॥४६॥

नार=नाल । (नाभि से उत्पन्न कमल की डंडी) । नार=स्त्री, मज्जा तन्तु से निर्मित नली ॥४२॥

जोवत हैं=गाते हैं । आकर=समुद्र ॥४३॥

राई औ लोन उतारैं=भूत बाधा आदि त्रास निवारण के लिये राई लोन उतारती हैं ॥४४॥

अगना=स्त्री (कौशल्यादि) ॥४६॥

सवैया–अरबिंद ते आँखिन पै लटकी अलकावलि मानो अलीगन गाछे ।
कलरौ किलकारिन को उपमान विचारत गोकुल एक न आछे ॥
तन झँगुली झीन प्रभा झलकै कटि काति मनोहर काछनी काछे ।
अवधेस के आँगन कौसिलानन्द अनन्द सों धावत कागन पाछे ॥४७॥

टीका—कागन पाछे धावत ॥४७॥

दण्डक–रघुबर रघुबीर रघुराउ रघुराज,
भजै रघुराई रघुनायक ललाम को ।
रघुकुल मनि रघुबंस के विभूषन जो,
रघुपति रघुनाथ राघौ अभिराम को ॥
रघुबंस तिलक अनन्द रघुनन्द रूप,
राजिव नयन रावनारि गुणधाम को ॥
रामचंद्र भरत लखन सत्रुहन संग,
च्यारि मुक्ति देत 'बृज' जपै चारि नाम को ॥४८॥

टीका—रकार रघुवीरादिनाम प्रसंसा ॥४८॥

दस अवतार

स०–मीन ह्वै बेद पयोधि सो काढि बराह हिरन्य बिलोचन मारे ।
कच्छप भूमि धरे प्रह्लाद नृसिंह छले बलि बावन द्वारे ॥
छत्रिन को प्रसराम दसानन राम ह्वै कंस को कृष्ण सँघारे ।
जे हरि बौध कलकी कला 'बृज' विष्णु बिसंभर दीन उबारे ॥

टीका—दस अवतार वर्णन ॥४६॥

द०–नरकी चढत बारि नीचे ते निकरि ऊँचे,
देति है बड़ाई बडो विद्या जो हुनर की ।
नर कीते स्यार सम जाते मिलै हाड माँस,
सिंह नर ढिग जस मोती गज नर की ॥

गाथे = गुँथे हे । कलरौ = कलरव, मधुरध्वनि । कछनी = करधना ॥४७॥
चारिमुक्ति = सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, और सायुज्य ॥४८॥
हिरण्यविलोचन = हिरण्याक्ष नामका दैत्य, विश्वंभर, जगत के रक्षक ॥४६॥
नर = नल (पानी का) । हुनर = कला । नरकी = नारकीय, नीच ।
नर = मनुष्य । परबीन = चतुर । नरकी = नरक में जानेवाले ॥५०॥
कला = ज्योति । पोत = काँच की गुरिया ॥५१॥

नर कीजै जग मे निधारि 'गुज' बात द्याय,
कूरन ते ,रि गीति परबीन नर की ।
नरकी न होइ नरहरि की भगति करा,
सौरभ नरक नांधै नाव तन नर की ॥५०॥

टीका— रकी कहे रुमी लागि ऊँ ो का न हत ॥५०॥

कविन ते विनय

सिंह के समान रान कैसे करि सकै स्वान,
कलानिधि आगे कैसे जुगुनू कला धरै ।
'गोकुल' बिलोकि त्योंहीं मेरी है ढिठाई यह
कीन्ही कविताई बुध आदरै तो आदरै ॥
कवि लोग जौहरी है जाहिर जगत जाके,
रतन पदारथ कवित्त मुकता लरै ।
तहाँ गुन पोत को न होत रानमान दान,
जैसे कोऊ दीपक देखावत दिवाकरै ॥५१॥

टीका—कविन सो ि ाय करत है को मेरी कि िताइ पात ि राम आपलोग मुकता वरण करने हैं ॥५१॥

दोहा—रज कनिका लघु लोग पै, करिबो निजे प्रकारा ।
बड़ी नहीं कछु बात है, भानु गुनी के पास ॥५२॥

टीका—रज कनिका कहै बारू मे जो नायक भा ु का प्रकारा करिबो कछु बड़ी बात नहीं है, जैसे लघु गु ी परगुनी नृपति का आदरन कछु बात नहीं ॥५२॥

कवि कोविद गुनवत सा, विनै करों कर जोरि ।
बिगरो बरन सुधारिये, अपनी ओर निहोरि ॥५३॥

टीका—कवि कोविद गुनवत रा वि ती जो अच्छर अ ावनो होय ताहि सुधारि लीजै ॥५३॥

॥ इति श्री दिगविजयभूषण नामक ग्रंथ कविप्रौढोक्ति वर्णन
गोकुल कायस्थ विरचिते टीकाया अष्टादशः प्रकाश
शुभं लिखितं नाथूरामेण, सं० १६२५॥

निहोरि = अनुग्रह करके ॥५३॥

क—नामानुक्रमणी



ख—अलंकारानुक्रमणी

अलंकार — पृष्ठ

ग—छन्दानुक्रमणी

घ—नायिकाऽनुक्रमणी

गोकुल कवि की वंश परम्परा

